निर्णय के तट पर

(प्राचीन दुर्लभ शास्त्रार्थों का संग्रह)

द्वितीय भाग

अमर स्वामी सरस्वती

शास्त्रार्थ महारथी वेद, पुराण मर्मज्ञ
शास्त्रार्थ युद्ध की शत् कलाओं में निपुण,

संग्रहकर्ता एवं सम्पादक

लाजपत राय अग्रवाल

(वैदिक मिशनरी)

प्रकाशक :

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह)

द्वितीय भाग

आर्य पुस्तकालय

सम्पादक एवं संग्रहकर्त्ता
अमर स्वामी सरस्वती
लाजपत राय अग्रवाल

प्रकाशक
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०)
भारत

द्वितीय संस्करण
मार्च सन् २००२ ई०

मूल्य : भारत में 1000.00 रूपये
विदेशों में [illegible] पौण्ड

वैदिक पुस्तकालय

सर्वाधिकार सुरक्षित : © अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद (उ०प्र०)
प्रतिष्ठाता : श्री लाजपत राय अग्रवाल

प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

सम्पादक एवं संकलनकर्त्ता : (१) अमर स्वामी सरस्वती (२) लाजपत राय अग्रवाल

मूल्य : भारत में 1000/- रूपये (विदेशों में प्रचास पौंड)

मुद्रक : श्री पी०एस० अग्रवाल (प्रोपराईटर)
मै० तायल ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस, ३३५, अम्बेडकर रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)
मोबाइल : ६८१०५०८०५७

लेजर टाइपसैटिंग : श्री मदन लाल सैनी, गली संगतराशां, पहाड़गंज, नई दिल्ली

संस्करण : तीसरी बार प्रकाशित (दिसम्बर सन् २००१ ई०)

प्रूफरीडर : श्रीमती अजीता मुरली (कार्यालय सहायक) "राजभवनम्" वेल्लमकुलंगरा
पो० हरीपाड़, जि० आल्लपुरा (केरल) टेलीफोन : (०४७६) ४१४२३२

जिल्दसाज : (१) नईम बुक बाइंडिंग हाऊस–गाजियाबाद (फोन : ४७३१३६८)
(२) मलिक़ बुक बाईन्डर–गाजियाबाद (फोन : ४७४८६६३)

पुस्तक प्राप्ती स्थान :
१. अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
२. विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली–६
३. राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६
४. चौखम्बा ओरियेन्टला, बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–६
५. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा, दयानन्दभवन रामलीला मैदान नईदिल्ली–२
६. मोतीलाल, बनारसीदास, बैंग्लोंरोड, जवाहरनगर, दिल्ली–७
७. आर्य प्रकाशन, ८१४, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली–६
८. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–१
९. आर्यसमाज बड़ा बाजार, पुस्तक विक्रय विभाग, १, मुंशी सद्दरूदीन लैन कलकत्ता–७
१०. आर्य समाज, १६, विधानसरणी (पुस्तक विक्रय विभाग) कलकत्ता–६
११. हिन्दी बुक सैन्टर, ४/५, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–२
१२. हिन्दी साहित्य सदन, १८/२८, पूर्वी पंजाबी बाग, नई दिल्ली–२६
१३. साहित्य केन्द्र प्रकाशन, डी–४३२, गली नं०–६, भजनपुरा–दिल्ली–५३

NIRNAY KE TAT PER (Vol.2)

Published by:-

LAJPAT RAI AGGARWAL (Proprietor)
M/S. AMAR SWAMI PRAKASHAN VIBHAG
1058, VIVEKANAND NAGAR, GHAZIABAD-201001 (U.P.) INDIA
PHONE : 0120-4701095

Second Edition : 2002

Price : in India : Rs 1000.00 only
Other Countries-70 Pounds

सम्पादकीय

पाठक वृन्द !

परम् पिता परमात्मा की असीम कृपा से निर्णय के तट पर ग्रन्थ का यह द्वितीय भाग छप कर आपके हाथों में है, हमारे पूर्ण प्रयास करने के बावजूद भी सारी शास्त्रार्थ सामग्री इस भाग में नहीं आ पाई, परिणाम स्वरूप इस श्रृंखला का अगला भाग छापना आवश्यक हो गया है, जिसमें उपलब्ध बकाया सभी शास्त्रार्थों का समावेश करने का प्रयास किया जायेगा। ''पूज्य श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा थी कि सभी प्रकाशित अथवा अप्रकाशित शास्त्रार्थों का प्रकाशन इस श्रृंखला के अन्तर्गत एक बार अवश्य हो जाना चाहिये। हमें इस बात की खुशी है कि हम उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ति में सफल हो रहे हैं। इस कार्य में अनेकों कठिनाईयां हैं, मुझे ग्रन्थ छपाने में कोई परेशानी नहीं है। परेशानी अगर है तो इस बात की है कि कोई भी विद्वान अनुवाद एवं सम्पादन कार्य के लिए नहीं मिल पाता, जबकि मैं उचित पारिश्रमिक भी देने को तैयार हूँ। तथा दूसरी समस्या है कि ग्रन्थ छपवा कर कहाँ रक्खूं ? पुस्तकें जितनी मात्रा में बिकनी चाहिये उतनी मात्रा में बिकती ही नहीं हैं, जबकि मैं नाम मात्र लाभ पर ही प्रचारार्थ साहित्य वितरण करना चाहता हूँ। लाखों रूपया इस प्रकाशन में लगा हुआ है तथा लग रहा है। पैसा लगता ही चला जाये और उसकी वापसी न हो तो समस्या ही है, अतः मेरा अनुरोध है कि सभी आर्य भाई–बहन इन अनुपम एवं अनुपलब्ध ग्रन्थों को मंगा–२ कर अवश्य अध्ययन करें।

मुझे आर्थिक रूप से कोई चिन्ता नहीं है, अतः कोई भी विद्वान उपरोक्त कार्य में सहयोग देने हेतु अगर तैयार हो तो मुझसे सम्पर्क करे, मैं यथाशक्ति हर सम्भव उनकी सेवा करूंगा जिससे इस प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। मैं चाहता हूं कि हमारा जो भी प्राचीन मूल साहित्य निरन्तर समाप्त होता जा रहा है उसे प्रकाशित कर पुनः प्रकाश में ला सकूं, मेरा यह संकल्प आप लोगों के सहयोग पर ही आधारित है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि इस संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य देश–विदेश के कौने–२ में पहुँच रहा है, जिस निमित्त इस संस्था को स्थापित् किया गया था उसके लिए यह संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो रही है।

पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दी गई प्रेरणा आज भी मेरे मस्तिष्क में कार्य कर रही है, तथा जीवन भर करती रहेगी, मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता, परमेश्वर से प्रार्थना है कि मेरी यह भावना सदा बनी रहे, और जितना भी अधिक से अधिक हो इस तरह के सामाजिक कार्यों में, तथा साहित्य के प्रचार एवं प्रसार करने में मेरा योगदान सदा बना रहे।

किमधिकम् लेखेन् !!

विदुषामनुचर :–

''लाजपत राय अग्रवाल''

(प्रतिष्ठाता)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद

समर्पण

आर्य जगत के महान सन्यासी महर्षि दयानन्द की सेना के महान सेनानी, ब्राह्मण समाज
के पूज्य, क्षत्रिय समाज में अग्रणी, महात्मा, स्वनामधन्य जिन्होंने अपना सर्वस्व
आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार में समर्पित कर दिया।
प्रमाण महार्णव, रामायण, गीता, महाभारत, के महान व्याख्याता
वेद शास्त्र - उपनिषद मर्मज्ञ, पुराण, कुरान आदि अवैदिक
मतों के मानमर्दन करने वाले, अद्वितीय वक्ता शास्त्रार्थ
केशरी, जिन्होंने दिग्दिगान्तरों में शास्त्रार्थों
द्वारा वैदिक सिद्धान्तों की विजय
वैजन्ती फहराई।
उन

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के प्रति

जिस दिव्य गुरु ने ''अग्निना अग्नि समिध्यते'' को जीवन में चरितार्थ कर सैंकड़ों
शिष्यों को व्याख्याता, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर, डाक्टर, और न जाने
क्या-क्या उच्च पदों के योग्य बना उन्हें दलित व पीड़ितजनों के लिए
उनमें हितैषी भावना भर कर समाज को समर्पित किया। इसी
''अजेय योद्धा'' जिन्होंने ४ सितम्बर सन् १९८७ ई० को
सांय पांच बजे अपने जीवन के ९६ वर्ष पूरे कर
इस नश्वर देह का त्याग किया,
उनकी पुण्य स्मृति में यह ग्रन्थ
''सादर समर्पित'' है।

समर्पणकर्त्ता-
''लाजपत राय अग्रवाल''

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक एवं संग्रहकर्ता व सम्पादक —

"LAJPAT RAI AGGARWAL" (Govt. Contractor)

परिचय - प्रिय लाजपतराय जी एक अच्छे योग्य एवं होनहार युवक हैं । इनकी कार्य करने की लगन अद्भुत है, यह बच्चा एक प्रसिद्ध सम्पन्न अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुआ एवं अपने पूर्वजों की भांति रात–दिन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है । इनके परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं । इनके परिवार में से ही इनके तायरे भाई **"श्री कृष्ण चन्द जी"** दिल्ली राज्य के उप–राज्यपाल भी रहे । जिला सहारनपुर में इनके यहां अच्छी–खासी जमींदारी है । श्री लाजपत राय जी के बाबा श्री लाला महताब राय जी आदि कट्टर ऋषि भक्त थे । बड़े–बड़े विद्वानों का इनके यहाँ आना–जाना रहता था ।

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान श्री अमर स्वामी जी ने सैकड़ों इतने बड़े–बड़े विद्वान, अपने सानिध्य में तैयार किये हैं जो सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं, श्री लाजपत राय जी भी उन्हीं में से एक हैं।

श्री लाजपतराय जी के स्तूत्य प्रयास से ही यह शास्त्रार्थों का संग्रह तैयार हो सका, परमेश्वर इस बच्चे को दीर्घायु प्रदान करें एवं यह हमेशा अपने कार्यो में सफलता प्रदान करें । इसके साथ–साथ श्री अमर स्वामी जी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने कठिन तप व त्याग से ऐसे अद्भुत लगनशील रत्न तैयार किए हैं ।

अब लाजपत राय जी एक उच्च श्रेणी में राजकीय ठेकेदार हैं। विद्युत विभाग व अन्य अनेकों सरकारी विभागों में सिविल से सम्बन्धित सभी कार्यो का इनको एक अच्छा अनुभव है । बल्कि यों कहिए कि जो एक अच्छे कान्ट्रेक्टर (ठेकेदार) के अन्दर प्रतिभा होनी चाहिए, वो इनमें मौजूद है । इतने व्यस्त कार्यो में से भी समय निकाल कर वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु प्रकाशन विभाग को चलाना, इनकी लग्न का एक नमूना ही कहा जा सकता है ।

वैदिक धर्म का –
बिहारी लाल शास्त्री "काव्यतीर्थ"
(बरेली)

@vaidicbooks

शास्त्रार्थ महारथियों की नामावली

आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी –

१. श्री स्वामी विरजानन्द जी दण्ड़ी, २. महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, ३ श्री पण्डित भीमसैन जी शर्मा (इटावा), ४. श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर, ५. श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती, ६. श्री पण्ड़ित गणपति शर्मा जी, ७. श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, ८. श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, ६. श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती, १०. श्री पण्ड़ित तुलसीराम जी स्वामी (मेरठ), ११. श्री पण्ड़ित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), १२. श्री पण्ड़ित आर्यमुनि जी महामहोपाध्याय (लाहोर), १३. श्री पण्ड़ित राजाराम जी शास्त्री (लाहोर), १४. श्री स्वामी योगन्द्रपाल जी (दीनानगर), १५. श्री पण्ड़ित देवप्रकाश जी अरबी फाजिल (अमृतसर), १६. श्री पण्ड़ित छुट्टनलाल जी स्वामी (मेरठ), १७. श्री पण्ड़ित अखिलानन्द जी कविरत्न, १८. श्री पण्ड़ित मुरारीलाल जी शर्मा (सिकन्दराबाद) उ०प्र० १६. श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), २०. श्री स्वामी अनुभवानन्द जी शान्त, २१. श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती सहारनपुर (उत्तर प्रदेश), २२. श्री महाशय बनारसीदास जी (लखनऊ) २३. श्री पण्डित कालीचरण जी (आगरा) २४. श्री पण्ड़ित धर्मभिक्षु जी (लखनऊ) २५. श्री लाला बख्शीशराम जी (दीनानगर), २६. श्री लाला वजीर चन्द जी (रावल– पिण्ड़ी) २७. श्री पण्ड़ित दीनानाथ जी फिलास्फर (लाहोर) २८. श्री प्रोफेसर देवी दयाल जी (लाहोर), २६. श्री पण्ड़ित भगवददत्त जी रिर्सचस्कालर, ३०. श्री पण्ड़ित रामगोपाल जी शास्त्री (दिल्ली) ३१. श्री पण्ड़ित बिहारीलाल जी शास्त्री (बरेली) ३२. श्री पण्ड़ित मनसाराम जी वैदिक तोप ३३. श्री पण्ड़ित नन्दकिशोरदेव शर्मा (उत्तर प्रदेश) ३४. श्री पण्ड़ित शिवशर्मा जी (सम्भल) ३५. श्री पण्ड़ित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ (बिहार) ३६. श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा, ३७. श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती, ३८. श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ३६. श्री स्वामी कर्मानन्द जी (हरियाणा), ४०. श्री पण्डित पूर्णानन्द जी (लाहोर), ४१. श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ (सिकन्दराबाद), उत्तर प्रदेश, ४२. श्री दादा बस्तीराम जी,(हरियाणा) ४३. श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति ४४. श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, ४५. श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी, ४६. श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु , ४७. श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक, ४८. श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, ४६ श्री ठाकुर इन्द्रवर्मा जी (न्होटी) अलीगढ़ (उ॰प्र॰), ५०. श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, ५१. श्री रामचन्द्र जी देहलवी, ५२. श्री पण्डित शान्तिस्वरूप जी (मौहम्मद अली कुरेशी), ५३. श्री पण्डित हनुमान प्रसाद जी (कानपुर) ५४. श्री पण्डित वंशीधर जी पाठक (बरेली) ५५. श्री पण्डित बुद्धदेव जी (धार), ५६. श्री पण्डित विद्याभिक्षु जी एम॰ ए॰ (रुदौली), उत्तर प्रदेश ५७. श्री पण्डित धर्मवीर जी आर्य मुसाफिर (आगरा) ,५८. श्री मुन्शी बलदेव प्रसाद जी (बरेली), ५६. श्री बाबू पन्नालाल जी (बरेली), ६०. श्री जगदम्बा प्रसाद जी (शाहजहांपुर), ६१. श्री पण्डित जगदीश चन्द (विज्ञान भिक्षु) जी, ६२. श्री पण्डित विद्यानन्द जी मन्तकी (वाराणसी), ६३. श्री ठाकुर अमर सिंह जी (अमर स्वामी सरस्वती) गाजियाबाद, (उ॰प्र॰), ६४. श्री प्रण्डित भगवान स्वरूप जी (अजमेर), ६५. श्री डाक्टर श्रीराम आर्य (कासगंज), ६६. श्री पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, ६७. श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री (अलीगढ़) ६८. श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री (खतौली) ६६. श्री पण्डित शान्तिप्रकाश जी (गुडगांवा), ७०. श्री पण्डित देवव्रत जी शास्त्री (दिल्ली) ७१. श्री पण्डित शेर सिंह जी कश्यप (मुजफ्फरनगर), ७२. श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी (पटना), ७३. श्री आचार्य रामानन्द जी शास्त्री (बिहार) ७४. श्री पण्डित गंगाधर जी शास्त्री (पटना) ७५. श्री पण्डित सत्यमित्र शास्त्री (गोरखपुर), उ.प्र. आदि – आदि।

वैदिक पुस्तकालय

जैन सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी –

१. सर्वश्री, स्वामी कर्मानन्द जी, २. पण्डित राजेन्द्र जी, ३. छेदालाल जी ४. पन्नालाल जी, ५. गोपाल दास जी वरैया, ६. बनारसी दास जी जैन, ७. वर्द्धमान जी शास्त्री आदि ।

ईसाई सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी –

१. सर्वश्री, पादरी जानसन (यूरोपियन संस्कृतज्ञ), २. पादरी फ्रेंक जानसन, ३. पादरी ज्वाला सिंह जी, ४. पादरी एस॰ एम॰ पाल, ५. पादरी रलाराम जी, ६. पादरी अब्दुलहक जी, ७. महबूब मसीह नाबीना, ८. पादरी खड्ग सिंह जी आदि।

मुस्लिम सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी –

१. सर्वश्री, मौलाना सनाउल्ला साहिब (अमृतसरी), २. मौलाना रोशनअली अख्तर, ३. गाजी– महमूद उर्फ धर्मपाल, ४. मौलाना अबुल फरह (पानीपती) ५. मौलाना खुदादाद (गुरदासपुर) ६. मौलाना अल्लादित्ता बुखारी, ७. श्री मौलवी मोहम्मद अली साहिब जी, ८. श्री मौलवी खलील अहमद उर्फ बाबा खलील दास चतुर्वेदी, ९. मौलाना सज्जाद हुसैन जी, १०. मौलाना इदरीस अहमद खाँ, ११. श्री जैड ज़िलानी जी, १२. श्री आरिफखान एडवोकेट, आदि।

(कादियानी) अहमदी सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी –

१. सर्वश्री, हाफिज रोशनअली, २. मीर कासिमअली, ३. अब्दुर्रहमान मिश्री, ४. मुहम्मद उमरशर्मा, ५. फजलमुहम्मद शर्मा आदि।

(लाहोरी) अहमदी सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी –

१. सर्वश्री, मोलवी अब्दुलहक विद्यार्थी, २. मौलाना इस्मातुल्ला खाँ, ३. मिर्जा मुजफ्फरबेग, आदि।

पौराणिक सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी–

१. सर्वश्री, पण्डित भीमसेन जी शर्मा (इटावा), २. अखिलानन्द जी कविरत्न, ३. ज्वाला प्रसाद मिश्र (मुरादाबादी), ४. कालूराम जी शास्त्री (कानपुर), ५. माधवाचार्य शास्त्री (दिल्ली), ६. लक्ष्मीचन्द जी "कौल" (करनाल), ७. श्रीकृष्ण शास्त्री (रोपड़), ८. यदुकुलभूषण शास्त्री (मुलतान), ९. गुरुदत्त जी १०. भीमसेन जी (पंजाबी), ११. प्रकाशानन्द जी (हुजरो वाले), १२. चन्द्रशेखर शास्त्री (स्वामी निरंजनदेव तीर्थ "पुरी के शंकराचार्य"), १३. रुलियाराम जी (अमृतसरी), १४. प्रेमाचार्य जी शास्त्री (दिल्ली), १५. विश्वेश्वराचार्य जी (बनारस) आदि।

।। ओ३म् ।।

पोल खुलते ही पुराणों का, महातम घट गया।
बुद्ध की बुद्धि बंध गई, मद जैनमत का घट गया।।
दम घुटा तौरत का, छल, बल जबूरी कट गया।
जी जला- इंजील का, दिल बाइबिल का फट गया।।
सामने कुरआन के ले, वेद चारों अड़ गये ।
मार मन्त्रों की पड़ी, पर - आयतों के झड़ गये।।
डूब कर गहरे दलायल में, गपोड़े सड़ गये।
कुल हदीसों के हवाले भी, भंवर में पड़ गये।।

"महाकवि श्री पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा" "शंकर"

वैदिक पुस्तकालय

निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह - भाग २)

छब्बीसवें शास्त्रार्थ से आरम्भ
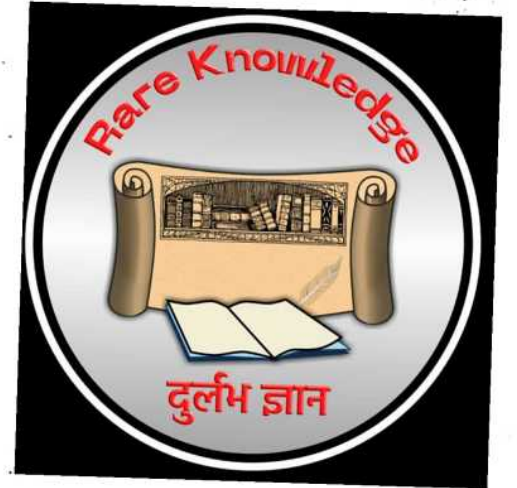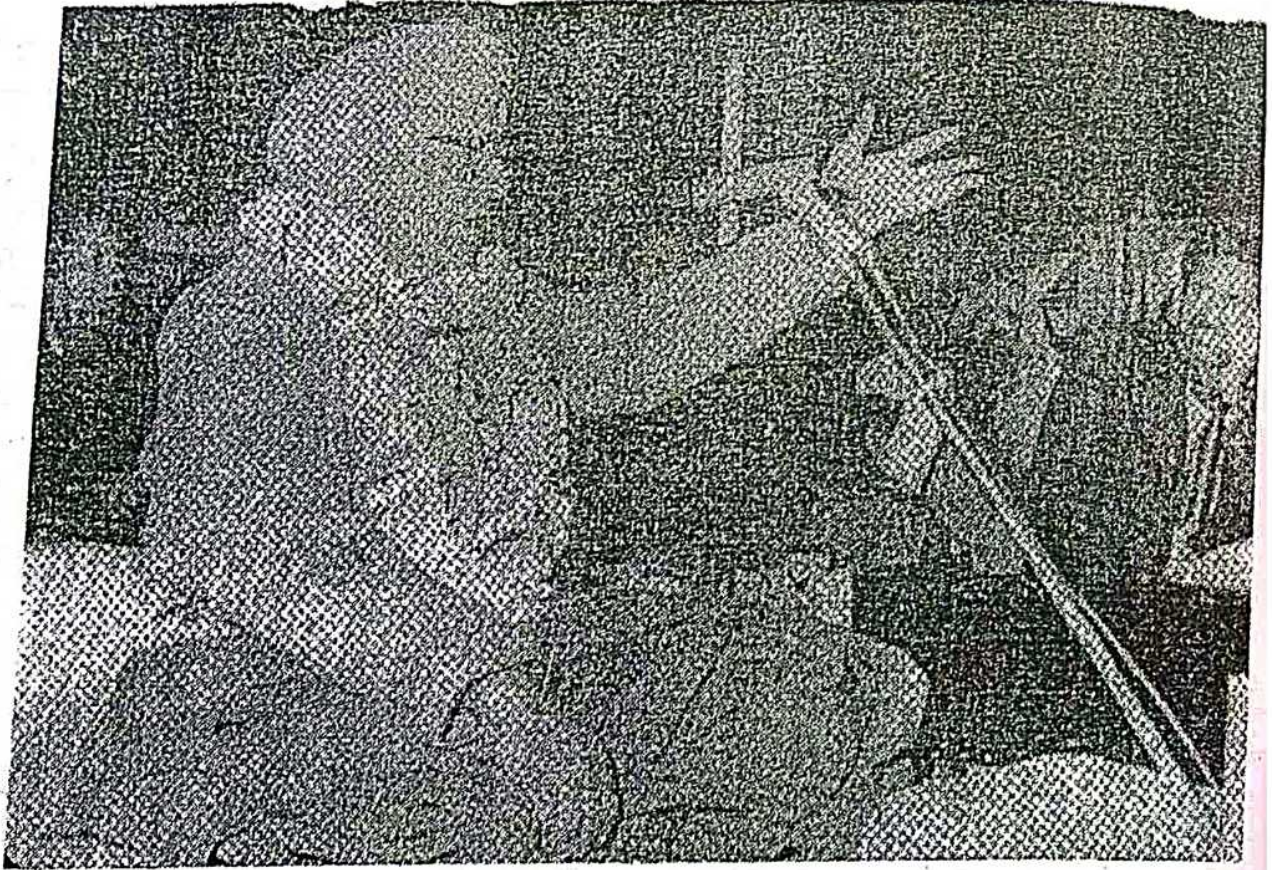
आये कोई माई का लाल मैदान में :-

यह विरक्त, यह वीर पुरूष, यह अमर स्वामी सन्यासी। पाखंडों का सदा सदा विद्रोही, ईश विश्वासी।।
जीवन भर जो रहा पूजता वैदिक आदर्शो को। सदा सदा आमन्त्रित करता आया संघर्षो को।।
वेद ज्योति से अपने जीवन को ज्योतित कर डाला। निज वाणी व लेखनी से, जग अलौकिक कर डाला।।
शास्त्र समर में यह योद्धा जिस जां पर अड़ जाता है। कौन हिला पाये अंगद का पांव गड़ जाता है।।
दयानन्द का सैनिक यह, सेनानी यह आर्य सेना का। बढ़ा जिधर को ॐ ध्वजा ले, फहरी विजय पताका।।
तर्क वाण, जव यह, प्रमाणों का वेत्ता बरसाता है। पाखंडों का दुर्ग धराशायी हो गिर जाता है।।
क्या साहस ले, साम्प्रदायवादी विवाद की ठाने। हैं पुराण, कुरआन, बाईबिल, सब जाने पहचाने।।
इसी मनस्वी, ज्ञान वारिधि का यह अभिनन्दन है। इस विरक्त के स्वागत में पुलकित हर्षित जन मन है।।
जुग-जुग जिये, सदा चमके तेजस्वी ! तेरा जीवन। यही कामना है ईश्वर से, ''शरर'' यही अभिनन्दन।।

निवेदक-
''प्रोफेसर उत्तमचन्द शरर एम०ए०''
(पानीपत)

वैदिक पुस्तकालय

विषयानुक्रमणिका

नोट :– पच्चीस शास्त्रार्थ पूर्व प्रकाशित "प्रथम खण्ड" में आ चुके हैं।

नोट- उपरोक्त अड़सठवें शास्त्रार्थ के साथ ही इस शास्त्रार्थ श्रृंखला का यह द्वितीय भाग समाप्त हो ता है। शेष शास्त्रार्थ अगले भागों में आयेगें।

------------ : o : ------------

वैदिक पुस्तकालय दुर्लभ ज्ञान

क्र.सं.	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं.
५८.	"नीमच" मध्य प्रदेश	पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं. अखिलानन्द कविरत्न	१६२६ ई.	सत्यार्थप्रकाश प्रभृतिग्रन्थ सर्वथा वेद विरूद्ध हैं ?	३४७
५६.	"नीमच" मध्य प्रदेश	पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं. अखिलानन्द कविरत्न	१६२६ ई.	क्या आर्यसमाजी स्वयं स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को जूतों से कुचलते हैं ?	३५४
६०.	"नीमच" मध्य प्रदेश	पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं. कालूराम जी शास्त्री	१६२६ ई.	क्या भागवतादि पुराण वेद के विरूद्ध हैं ?	३५६
६१.	"नीमच" मध्य प्रदेश	पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं. अखिलानन्द कविरत्न	१६२६ ई.	क्या सनातनी लोग सनातन सिद्धान्तों का आचरण नहीं करते हैं ?	३६४
६२.	"अरनियां" (बुलन्दशहर) उत्तर प्रदेश	पं. ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी तथा पं. माधवाचार्य जी शास्त्री	१६५७ ई.	सनातनधर्म वेदानुकूल है या आर्यसमाज ?	३७०
६३.	"भिवानी" (हरियाणा)	पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं. अखिलानन्द कविरत्न	१६२६ ई.	वर्णव्यवस्था, गुण, कर्म और स्वभाव से है या जन्म से ?	३७६
६४.	"आरा" (बिहार)	पं. तुलसीराम स्वामी तथा पं. हीरानन्द बाबू ,व रामानन्द ,व पं. देवकीनन्दन	१८६१ ई.	क्या मूर्तिपूजा वेदानुकूल है ?	३८०

छब्बीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : "जिसौला", परगना– खतौली
जिला – मुजफ्फरनगर (उ॰ प्र॰)

दिनांक : २६ जनवरी सन् १८८७ ई॰
विषय : क्या मूर्तिपूजा वैदिक है ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : पं॰ ज्योति स्वरूप, व पं॰ देवदत्त शर्मा,
(हिन्दुओं) सनातनधर्मियों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : पं॰ कमलनयन शर्मा
आर्यसमाज की ओर से सहायक : शास्त्रार्थ की भूमिका में देखिये।
हिन्दुओं की ओर से सहायक : " " " " " "
शास्त्रार्थ के आयोजनकर्ता : खैरातीराम, रामसरनदास उर्फ सरनलाल और रघुवीर सहाय व नन्दराम एवं मूल चन्द।
मध्यस्थ : स्वयं पाठकगण (श्रोतागण)
सभापति : पण्डित देवदत्त शर्मा,

नोट– यह शास्त्रार्थ प्रथम बार श्री लाला खैरातीरामजी रईस, ग्राम – "जिसौला" की आज्ञा से विद्या दर्पण प्रैस, मेरठ में सन् १८८७ ई॰ में "श्री कल्याणराय जी" ने प्रकाशित किया था। उसके बाद अब प्रकाशित हुआ है। हम "वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर" के अधिकारियों के विशेष आभारी हैं जिनके सौजन्य से हमें यह मूल कापी प्राप्त हुई है।

XXXXX

आवश्यक दृष्टव्य –

पच्चीस शास्त्रार्थ प्रथम भाग (निर्णय के तटपर) में प्रकाशित किये जा चुके हैं, जो "अमरस्वामी प्रकाशन विभाग से ही फरवरी सन् १९८२ ई॰ में पहली वार छपे थे"। इच्छुक व्यक्ति प्रकाशन से प्राप्त कर सकते हैं।

निवेदक –
"लाजपत राय अग्रवाल"

दो शब्द

मेरी बहुत समय से यह इच्छा थी कि किसी भी तरह से यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री प्रकाशित हो जावे, अनेकों व्यक्तियों ने भी इसे अत्यावश्यक समझा एवं मुझे बार-बार कहा कि —**"स्वामी जी इस कार्य को अगर आपने पूरा न किया तो यह कार्य रह जावेगा एवं यह अमूल्य सम्पत्ति आपके साथ ही चली जावेगी।"** परन्तु इसे पूरा करने में मेरे सामने कठिनाइयां ही कठिनाइयां थी मैं बड़ा ही धर्म संकट में पड़ गया, क्या करूं मुझे कोई रास्ता नजर नहीं आता था। अगर किसी को छपाने के लिए दूं तो कहाँ से दूँ क्योंकि ये मसाला तो बैठकर बनाना पड़े, सबको बना बनाया हलुआ चाहिए, वो मैं कहां से लाऊं ? मेरे पास न लेखक है न कोई सुविधा ! कोई कुछ सहयोग देने का आश्वासन भी देता तो वह आश्वासन ही बन कर रह जाता।

आखिर मैंने अपने प्यारे पुत्र लाजपत राय को ही पकड़ा, जबकि वह इस कार्य को बिल्कुल ही छोड़ चुके थे, उन्होने मेरी बात को मना नहीं किया और यह भार अपने कन्धों पर ले लिया। इस ग्रन्थ की प्रकाशन कहानी को लिखूं तो बहुत लम्बा लेख हो जावेगा, संक्षेप में इतना ही कहता हूँ कि मैंने उनकी लगन व परिश्रम को देखा है, उन्होंने अपने व्यस्त समय में से भी समय निकाल कर रात-दिन भाग दौड़ करके इस कार्य को पूरा किया, उनकी धर्मपत्नी वीना गुप्ता एम॰ ए॰ भी कम पुरूषार्थी नहीं हैं, उसने भी अपना भरपूर सहयोग इस कार्य को प्रदान किया, अनेकों आर्य भाइयों ने भी जो सहायता इस कार्य में दी वे भी कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं, कुछ आर्य भाईयों ने मुझे व इस कार्य को बनावट समझा एवं गलत विचारधारा भी फैलाई, परन्तु उनका इसमें कोई दोष नहीं है **"दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंक कर पीता है"** उनके साथ कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने ऐसा ही किया कि किसी भी नाम पर पैसा तो ले लिया बाद में न वह चीज मिली न ही पैसा। मैंने सबको एक ही बात कही कि **"इस कार्य में देर भले ही हो जाये पर अन्धेर नहीं"** कुछ ने मेरी बात पर विश्वास किया कुछ ने नहीं। इस कार्य में जो-जो मुख्यतः अड़चने सामने आई वह लाजपत राय जी ने **"इस प्रकाशन में देरी का कारण"** वाले लेख में उद्‌धृत भी की हैं।

मैं अधिक देर बैठ नहीं सकता, कहीं चल-फिर नहीं सकता, ज्यादा देर लिख नहीं सकता, ये सब आयु का तकाजा है। तो भी मन में ये बात जरूर है कि जो भी हो सके समाज के लिए कर जाऊं, अब जो शास्त्रार्थ शेष रह गये हैं वो भी तीसरे भाग में आ जायेंगे, मुझे विश्वास है वह भी मेरे जीवन काल[१] में ही प्रकाशित हो जायेंगे। भाईयों ! शास्त्रार्थ गये, शास्त्रार्थ का युग गया, अब शास्त्रार्थ के नाम पर स्वप्नमात्र रह गया, मैं चाहता हूँ कि हमारे सभी पूर्वज शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ भी मेरे शास्त्रार्थो के साथ-साथ ही प्रकाशित हो जावें। उनका कुछ संग्रह किया जा चुका है, कुछ हो रहा है। उसे भी जल्दी ही प्रकाशित किया जावेगा। और अधिक क्या लिखूं ? आप सभी को पुनः आशीर्वाद व धन्यवाद देता हूं जिनके सहयोग से यह महान पवित्र कार्य सम्पन्न हुआ।

वैदिक धर्म का —

"अमर स्वामी सरस्वती"

नोट — [१] इस शास्त्रार्थ श्रृंखला का यह तीसरा भाग **"निर्णय के तट पर"** भी स्वामी जी के जीवनकाल में ही प्रकाशित हो गया था। हाँ ! चौथा भाग स्वामी जी के देहावसान के बाद ही प्रकाशित हो पाया था। हमारा पूर्ण प्रयास है कि अब पाचँवा भाग भी, दिसम्बर सन् २००१ई॰ तक तैयार होकर पाठकों तक पहुंच जायेगा।

विदुषामनुचरः—

"लाजपत राय अग्रवाल"

करता हुआ संस्कारों का साक्षात्कार भी करने लगा।

योग दर्शन में सूत्र है:-- **"संस्कार साक्षात् करणात् पूर्व जाति ज्ञानम्"** संस्कारों का साक्षात्कार करने से पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। यह पतंञ्जलि महाराज का सत्य वचन है। मुझको बहुत बातें पूर्वजन्म की याद आयी ग्राम-घर-मकान भी ज्ञान में आने लगे। महर्षि दयानन्द जी महाराज के पास अनेक बार जाने, उनकी प्रेरणा से गायत्री का जाप करने अम्बादत्त शास्त्री का शास्त्रार्थ ऋषि के साथ कराने पंडित हीरा वल्लभ जी का शास्त्रार्थ ऋषि दयानन्द के साथ कराने की प्रेरणा देने तथा शास्त्रार्थो को सुनने की बहुत सी बातें प्रकट हुई तभी पूर्वजन्म के स्थान का निश्चय हो गया कि वह **"अहमदगढ़"** ही था। यद्यपि मूर्ति पूजा पर मेरा विश्वास नहीं रहा था तो भी कमलनयन (कमल नेत्र) को अपने बहुत से साथियों के अधिक आग्रह से एक शास्त्रार्थ आर्य समाज के साथ मूर्तिपूजा पर ही करना पड़ा। शास्त्रार्थ में पंडित कमलनयन (कमल नेत्र) जी की रूचि नहीं थी तो भी अन्यमनस्क का सा शास्त्रार्थ किया ही है। जो यह एक छोटा सा शास्त्रार्थ आपके सम्मुख उपस्थित है।

पंडित कमल नयन की प्रेरणा से पंडित अम्बादत्त शास्त्री तथा श्री पंडित हीरा वल्लभ जी शास्त्री को ऋषि दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ करने को बुलाया गया था। मेरा विश्वास है कि दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित तथा दर्शनों के भाष्यकार श्री पंडित उदयवीर जी शास्त्री पूर्व जन्म में पंडित हीरा वल्लभ शास्त्री थे।

श्री पंडित हीरा बल्लभ जी शास्त्री के पांडित्य का यह सब से प्रबल प्रमाण है कि वह छः (६) दिन तक ऋषि दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ में टिक सके और अन्त में सत्य को स्वीकार करके अपने साथ लायी हुयी पाषाण आदि की मूर्तियों को गंगा में विसर्जित कर दिया।

उन शास्त्रार्थो को सुनने वाले पंडित कमलनयन को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा हृदय से नहीं हो सकती थी पर अनेक साथियों के आग्रह से मनोरंजन के रूप में ही यह एक छोटा सा शास्त्रार्थ कर लिया।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

वैदिक पुस्तकालय

इस शास्त्रार्थ के विषय में "आवश्यक दृष्टव्य"

यह शास्त्रार्थ ग्राम "**जिसौला**", परगना–खतौली, जिला–मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) में २६ जनवरी सन् १८८७ ई॰ को हुआ था आगामी २६ जनवरी सन् १९८६ ई॰ को इस शास्त्रार्थ को हुये ९९ वर्ष व्यतीत हो जायेगें और १०० वां वर्ष आरम्भ हो जायेगा।

हमारे पास इस तरह के बहुत से पुराने शास्त्रार्थ मौजूद हैं। इस शास्त्रार्थ के कर्ता मुख्य रूप से दो पण्डित थे आर्य समाज की ओर से श्री पं॰ देवदत्त जी "**कर्णवास**" जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। ऐसा मेरा विचार है वैसे शास्त्रार्थ में यह कहीं भी लिखा हुआ नहीं है कि पण्डित जी कहां के निवासी थे। कर्णवास के श्री पं॰ देवदत्त जी को मैं भली भांति जानता था महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्यमुनि जी दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी॰ ए॰ वी॰) कालेज लाहौर में प्रोफेसर थे। संस्कृत तथा शास्त्रों के दिग्गज विद्वान थे। मेरे साथ उनका भी बहुत प्रेम था। उन्होंने बहुत ग्रन्थ लिखे थे उन ग्रन्थों के प्रकाशक श्री पण्डित देवदत्त जी कर्णवास निवासी ही थे।

सनातन धर्म की ओर से पण्डित कमलनयन (कमल नेत्र) जी थे। उनका निवास स्थान भी शास्त्रार्थ की पुस्तक में नही लिखा है पर मैं जानता हूं कि वह– (अहमदगढ़) जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे।

पूर्व जन्म की स्मृति –

मेरा जन्म चैत्र–शुक्ल प्रतिपदा (नये सम्वत् का प्रथम दिन) सम्वत् १९५१ विक्रमी को ग्राम "**अरनियां**" जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था जब मैं तीन चार वर्ष का हुआ तो मैंने अपने परिवार वालों को बताया कि मैं पूर्व जन्म में अहमदगढ़ का पण्डित "**कमल नयन**" था। मेरे परिवार वालों ने कई कारणों से इसका पता लगाना अच्छा नहीं समझा ऋषि दयानन्द जी का चित्र (खड़ा) मैंने देखा तो मैंने पिता जी को बताया कि मैंने इनको कर्णवास में देखा था मुझको कुछ पता नहीं लगा कि "**अहमदगढ़**" कहां है? श्रीमान भाई सरदारसिंह जी उपदेशक मुझको मेरी कही हुई बात सुनाया करते थे कि तुम बचपन में ऐसा कहा करते थे। उन्होंने भी मुझको यह नहीं बताया कि अहमदगढ़ कहां है? मैं अपने ग्राम में १८ वर्ष की आयु के पीछे रहा ही नहीं, उससे पहले भी विद्याध्यन में था और पीछे भी २३ वर्ष की आयु तक विद्याध्यन में ही रहा पश्चात लाहौर चला गया।

सन् १९३९ ई॰ में हैदराबाद का सत्याग्रह हुआ। मैं और भाईसाहब श्री कुंवर सुखलाल जी आर्यमुसाफिर हम दोनों सत्याग्रह करके गुलबर्गा (दक्षिण निजाम स्टेट) की जेल में बन्द थे। वहां अहमदगढ़ के कुछ युवक थे। मैं उनसे मिलकर प्रसन्न होने लगा और यह धारणा मेरी बन गयी कि मेरा पूर्व जन्म का स्थान अहमदगढ़ ही होगा। मुझको बाल्यकाल में यह भी याद था कि मेरी मृत्यु पानी में डूबने से हुई थी। मैं अहमदगढ़ गया वहां जाकर एक तालाब भी देखा उसको देखकर यह समझने और कहने लग गया कि मेरा जन्म और मृत्यु का स्थान "**अहमदगढ़**" है।

योग में मेरी बड़ी रूचि थी मैंने पहले भी योग की शिक्षा अनेक योगियों से ली थी। पर विशेष शिक्षा महान विद्वान "**श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज**" से सन् १९३८ ई॰ से हरिद्वार में लेनी आरम्भ की थी। वह स्वामी जी महाराज योगी सियाराम जी महाराज (एम॰ ए॰) के शिष्य थे उनकी कृपा से मैं योगाभ्यास

नोट – अब यह शास्त्रार्थ लगभग ११३ वर्ष पुराना हो चुका है।

"सम्पादक"

त्र्आवश्यक निवेदन

– शास्त्रार्थ का आयोजन कराने वालों की ओर से –

इल्तमास जरूरी बख़िदमत नाज़रीन व सामईन हम लोग बसिदक दिल ज़ाहिर करते हैं कि– इस मुबाहिसा से हमारी ग़रज सिर्फ़ अहकाक़ हक़ थी, और कुछ नहीं, जो कुछ इस रिसाला में दर्ज हुआ है, वह बिल्कुल सही–सही बिलारू–रियायत दर्ज हुआ है, अगर कोई अहले हक़ किसी अमर की सेहत किया चाहे वह बिलातकल्लुफ यहां तक कदम रजा फर्मावें।

मकानात की कैफ़ियत और मुबाहिसे की असल कापी दस्तखती फरीकेन बचश्म खुद देख लेगें "सपर्य्यगाच्छुक्रं........" इस मन्त्र के अर्थ आखिरी बार पडिंतान फरीकेन ने बकलम खुद लिखे हैं, उसमें का–की–को–के बगैरा या इमला की दुरुस्ती के लिए भी कलम नही उठाया गया। बाक़ी बयान चूंकि एक कातिब लिखता गया था, इसलिए इसका इमला और इबारत दुरुस्त कराई गई है, और वह भी इस अहतियात से कि–मानी पर कुछ असर न पड़े, यानी जहां कहीं किसी लफज के छूट जाने या जियादा लिख जाने से इबारत बे रबत् होती थी, उसको दुरुस्त कर दिया है। और बढ़ाये या घटाये हर्फ़ (लफ़ज) को खतूत बदानी (ब्रेकेट) के अन्दर लिख दिया है। ताकि लोग समझ जावें कि– असल जो हमारे पास मौजूद है, इसमें इबारत किस तरह दर्ज है ?

-इल्तमस-

"खैराती राम" **"रघुवीर सहाय"**

रामसरन दास उर्फ सरनलाल **नन्दराम व मूलचन्द**

नोट –

इस उपरोक्त पत्र का शुद्ध हिन्दी में अनुवाद, शास्त्रार्थ केशरी महात्मा अमर स्वामी जी महाराज द्वारा नीचे दिया जा रहा है।

अनुवाद –

हम लोग सच्चे हृदय से यह प्रकट करते हैं कि इस शास्त्रार्थ से हमारा प्रयोजन केवल सत्य को जानना ही था और कुछ नहीं। जो कुछ पुस्तिका में लिखा गया है वह सर्वथा सत्य–सत्य, बिना किसी पक्षपात के लिखा गया है। यदि कोई सत्य जानने के इच्छुक ठीक–ठीक प्रमाण लेना चाहें तो बिना संकोच यहां पधारें।

शास्त्रार्थ के स्थान की स्थिति तथा शास्त्रार्थ की मूल पाण्डुलिपि दोनों ओर के पण्डितों के हस्ताक्षरों सहित अपनी आंखों से देख लेंगे। **"सपर्य्यगाच्छुक्रं......."** इस मन्त्र के अर्थ अन्तिम बार दोनों ओर के पण्डितों ने अपनी लेखनी से लिखे हैं। उसमें का–की–को–के आदि या लेख को शोधने के लिए भी लेखनी नहीं उठाई गई। शेष वक्तव्यों को एक लेखक लिखता गया था इसलिए उसको कहीं–कहीं ठीक किया गया है और वह भी यह ध्यान रखते हुए कि कहीं अर्थो पर प्रभाव न पड़े। जहां कहीं कोई अक्षर या शब्द छूट जाने या अधिक लिखे जाने से लेख अव्यवहारिक सा होता था उसको ठीक कर दिया गया हैं तथा बढ़ाये या घटाये गये अक्षर को कोष्ठक (ब्रेकिट) में लिख दिया है जिससे कि लोग समझ जायें कि मूल लेख जो हमारे पास विद्यमान है उसमें लेख क्या लिखा हुआ है ?

–निवेदक–

"खैराती राम" **"रघुवीर सहाय"**

रामसरनदास (सरनलाल) **नन्दराम व मूलचन्द**

दो शब्द

आदरणीय ! पाठकगण !!

मैंने इस शास्त्रार्थ का विवरण ज्यों का त्यों इसलिए प्रकाशित किया है ताकि आज के व्यक्ति भी देखें कि एक सौ वर्ष पहले किस तरह के शास्त्रार्थ हुआ करते थे ? हालांकि व्याकरण आदि की दृष्टि से तो इसमें काफी अशुद्धियां मौजूद हैं एवं भाषा के लिखने में तो कहना ही क्या ?

परन्तु अगर आप थोड़ा सा भी ध्यान पूर्वक पढ़ेगें तो आसानी से सभी भाषा का अर्थ समझ में आ जायेगा। मैं समझता हूं किसी भी चीज में वास्तविक को फेर बदल करने से उसकी वास्तविकता ही समाप्त हो जाती है।

रही प्रेस कापी बनाने की बात ? आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि ६६ वर्ष पुरानी इस पुस्तक के कागज का क्या हाल होगा ? मैं संक्षेप में केवल इतना ही कहूंगा जब तक इसका लेखन कार्य किया, जून की भयंकर गर्मी में। पंखा चलाना तो दूर ! मैं किसी खुले स्थान पर भी नहीं बैठ सकता था, क्योंकि पता लगा कि हवा का झौंका आया और सब तहस–नहस हो गया तो भी कार्य करना तो आवश्यक था, जैसे–तैसे पूरा किया मूल कापी बहुत ही खस्ता हालत में होने के कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। यह शास्त्रार्थ मुझे **"आर्य वानप्रस्थाश्रम-ज्वालापुर (हरिद्वार)"** वालों ने दिया था। मैं उनका हृदय से आभारी हूं। जिन्होंने ऐसी लुप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए सहयोग प्रदान किया। पाठकगण पढ़ें और लाभ उठावें।

मेरी सभी आर्य सज्जनों से प्रार्थना है कि अगर ऐसे कोई शास्त्रार्थ किन्हीं सज्जनों को प्राप्त हों जो आज तक इस शास्त्रार्थ श्रृखंला (निर्णय के तट पर) में प्रकाशित न हो पाये हों, उनके प्रकाशनार्थ तुरन्त प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित करें। हम उनके नाम का उल्लेख करते हुए इस श्रृखंला में अवश्य स्थान देंगे तथा उनका हृदय से आभार प्रकट करेंगे। धन्यवाद !

विदुषामनुचरः–
" लाजपतराय अग्रवाल"
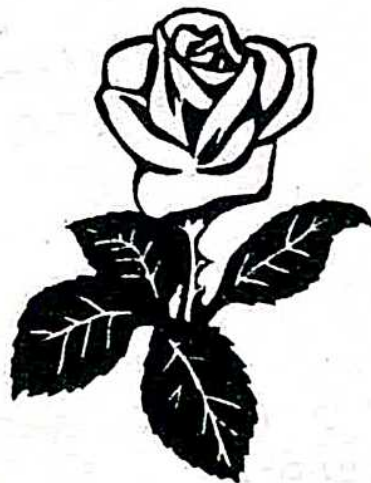
वैदिक पुस्तकालय

मूल पुस्तक से (भूमिका)

ग्राम "**जिसौला**" (जिला मुजफ्फरनगर) में सहारनपुर से कुछ आर्यसमाजी सज्जन पहुंचे और आर्य समाज का प्रचार करते हुए मूर्तिपूजा का खण्डन किया, उनमें मुंशी मुरारीलाल जी मन्त्री आर्य समाज सहारनपुर, चौबे जगजीवन लाल जी, सभासद आर्य समाज मथुरा, लाला रामप्रसाद जी, पडित राम प्रसादजी, लाला मथुरादास जी, सभासद आर्यसमाज सहारनपुर, लाला सुभरामल्ल जी रईस खतौली के साथ "**जिसौला**" पहुंचे इन्होंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर अच्छे व्याख्यान दिये और मूर्तिपूजा का खण्डन भी किया। सनातनधर्मी श्री पण्डित रामचन्द्र जी भी इसी बीच वहां आ गये, और कुछ बात–चीत (शास्त्रीय चर्चा के रूप में) आरम्भ हो गई। पण्डित रामचन्द्र जी ने मूर्ति पूजा के पक्ष में– "**सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्राराक्षः सहस्रपाद्**" (यजुर्वेद अध्यांय ३१ मन्त्र १) बोला और इसका अर्थ यह किया कि – परमेश्वर के हजार सिर हैं, हजार आंख और हजार पांव है।

मुंशी मुरारीलाल जी सभासद आर्यसमाज सहारनपुर ने कहा कि इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है। इससे पहले कि श्री मुंशी मुरारीलाल जी इस मन्त्र का अपनी ओर से कुछ अर्थ बताते पंडित रामचन्द्र जी जोर–जोर से कहने लगे कि इस मन्त्र का पदच्छेद करो, अन्वय करो और पदार्थ करो।

फिर पण्डित रामचन्द्र जी संस्कृत बोलने लगे। श्री मुंशी मुरारीलाल जी संस्कृत नहीं बोल सकते थे, अतः उन्होंने कहा कि मैं इस मन्त्र का हिन्दी भाषा में अर्थ करता हूं, आप मेरे किये अर्थ का खण्डन करिये, और इस मन्त्र से मूर्तिपूजा सिद्ध करिये– पण्डित रामचन्द्र जी यह नहीं माने, झगड़ा बढ़ने लगा, तो बहुत से लोगों ने यह निश्चय किया कि, दोनो फिरकों (पक्षों) के पण्डित यहां बुलाये जावें और इस विषय पर शास्त्रार्थ कराया जावे, कि –

"मूर्ति पूजा वेदानुकूल है या वेद के विरुद्ध?"

मेरठ से श्री स्वामी स्वात्मानन्द जी भी आर्य समाज की ओर से आये, दोनों पक्षों के विद्वानों एवं अधिकारियों ने मिलकर कुछ नियम निश्चय किये, जिनमें मुख्य नियम केवल यही था कि दोनों पक्षों से प्रमाण, वेद–मन्त्र (मूल) भाग के ही दिये जायेंगे। पाठकों की जानकारी के लिए पूरे नियम जो निश्चय किये गये थे, नीचे दिए जाते हैं। देखिये –

१. सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को लिखा जाय वा लिखवाया जाय।
२. ऐसे पूर्वोत्तर पक्षों के प्रत्येक लेख पर दोनों के हस्ताक्षर करवा लेवें।
३. प्रत्येक पक्ष के कथन को वक्ता के द्वारा सब प्रकार से समझ कर जो योग्य वक्तृता होगी, वक्ता की भाषा में लिखी जायेगी।
४. आवश्यक व्यवस्था प्राप्त कर लें जिसके अनुसार सम्पूर्ण तात्पर्य पूरा–पूरा प्रकट हो जाये।
५. उक्त नियमानुसार पूर्व पक्ष से पूछ कर वह आवश्यक बातें जो उचित प्रतीत हों लिख लेवें।
६. ऐसे सम्पूर्ण कार्य जो सभा के प्रबन्ध में हानिकारक प्रतीत हों उनके निवारणार्थ प्रधान निज इच्छानुसार उत्तम प्रबन्ध कर लेवें।

दुर्लभ ज्ञान

७. प्रत्येक प्रश्नोत्तर पत्र की तीन प्रति लिखवाकर एक–एक दोनों पक्षों को दी जायेगी और एक प्रधान के पास रहेगी। प्रधान उन प्रतियों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर करा लेंगे। और अपनी प्रति पर भी हस्ताक्षर करेंगे।

८. सम्पूर्ण लेख (शास्त्रार्थ) मातृभाषा में होंगे, किन्तु प्रमाण उसी भाषा में दिये जायेंगे, जिसमें कि वह उपस्थित होगें।

९. वेद संहिता से अन्य ग्रन्थों का प्रमाण देने का अधिकार किसी पक्ष वाले को न होगा और न वह लिखा जायेगा।

१०. यदि किसी को संहिता के किसी मन्त्रार्थ में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न होगी तो उसके निवारणार्थ– एतरेय, शतपथ, साम, गोपथ,निघण्टु, निरुक्त ही का प्रमाण होगा।

११. पूर्वोक्त ग्रन्थों से भिन्न भी युक्तियों से स्वपक्ष के सिद्ध करने के निमित्त प्रत्येक पंक्ष को अधिकार होगा परन्तु जिन युक्तियों को प्रधान–योग्य समझेगा वह लिखाया करेगा।

१२. शास्त्रार्थ इस प्रकार आरम्भ होगा कि प्रथम प्रश्नकर्ता को अपने पक्ष के सिद्ध करने में जो कुछ प्रमाण रखना होगा सम्पूर्ण कह कर लिख देगा, तदनन्तर उत्तर पक्ष सम्पूर्ण प्रमाण जो पूर्व प्रक्ष के खण्डन में जानता हो उसी प्रकार कहकर वह भी लिख देगा।

१३. प्रश्नकर्त्ता के प्रशनान्त उत्तर पक्ष का उत्तर होगा और जब तक वह पक्ष समाप्त न हो, शास्त्रार्थ होता रहेगा, किन्तु प्रधान को पक्षपात देख वा शास्त्रार्थ का तात्पर्य अर्थात् निर्णय का बोध होकर बन्द कर देने का अधिकार होगा।

१४. शास्त्रार्थ समाप्त होने के पश्चात सम्पूर्ण शास्त्रार्थ छपवाया जायेगा, इस शास्त्रार्थ के लिए सबको उचित होगा कि अपनी–अपनी बुद्धि अनुसार तात्पर्य निकाल लेवें।

१५. प्रत्येक पक्ष वाले की ओर से पांच से अधिक सम्भाषणकर्त्ता न होंगे। और उनके नाम शास्त्रार्थ होने से प्रथम, प्रधान को लिखा दिये जावेगें और प्रधान प्रत्येक पक्ष को एक दूसरे के नाम बता देगें।

१६. केवल उन पांच महाशयों के जो कि शास्त्रार्थ करने के लिए नियत किये जायेंगे, अन्य किन्हीं मनुष्यों को बोलने का अधिकार न होगा और एक समय में एक से अधिक महाशय न बोल सकेंगे। हां ! अन्य सहायक पुरुषों को अधिकार सम्मति मात्र का होगा सो एक प्रश्नोत्तर में दस मिनट पर्यन्त तीन बार तक अर्थात् एक–एक बार सम्मति देने में दस–दस मिनट का समय दिया जायेगा।

१७. जब किसी पक्ष वाले को अपना सहायक बदलने की आवश्यकता हो तो नवीन सहायक को पूर्व महाशय के प्रथम कथन का भार अपने ऊपर लेना होगा, अर्थात् पूर्व सहायक के प्रश्नोत्तरों का उत्तरदाता होगा यदि इसे स्वीकार न करे तो उसे सहायक श्रेणी मे सम्मिलित न करना चाहिये।

१८. यदि दोनों ओर से कोई किसी प्रकार के अपशब्द का प्रयोग करे वा किसी प्रकार से असभ्यता प्रकट करे तो सभापति स्वयम् वा किसी और की प्रार्थना पर प्रथम रोक दे द्वितीय बार ऐसा होने पर यथोचित्त शासन करे।

– दस्तखतकर्ता –

हिन्दु धर्मसभा की ओर से –

१. पंडित सेवकराम शर्मा

आर्यसमाज की ओर से–

१. भीमसेन शर्मणः

– दस्तखतकर्ता –

हिन्दु धर्मसभा की ओर से –

२. " रामचन्द्र
३. " हरयश जी हरियशः
४. " कमलनेत्र शर्मा
५. " दसष हरिप्रसाद
६. " मित्रसैन शर्मा
७. " हजारीदत्त शर्मा
८. " गंगाधर शर्मा
९. " वेद्यराम शर्मा

आर्यसमाज की ओर से–

२. देवदत्त शर्मणः
३. बलदेव शर्मणः
४. ज्योति स्वरूप (अंग्रेजी में)
५. राधाकृष्ण (" ")
६. मुरारीलाल (" ")

नोट –

हिन्दू धर्म सभा की ओर से श्री पंडित कमलनयन शर्मा जी शास्त्रार्थ कर्ता थे, अन्य विद्वान् सहायक रूप में विराजमान थे, आर्य समाज की ओर से, श्री ज्योति स्वरूप जी एवं श्री देवदत्त शर्मा जी शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियुक्त किये गये थे, अन्य विद्वान् सहायक रूप में विराजमान थे।

यह शास्त्रार्थ श्री लाला खैरातीराम जी रईस ग्राम जिसौला की आज्ञा से विद्यादर्पण प्रेस, मेरठ में, **"श्री कल्याण राय" जी ने प्रथम बार प्रकाशित किया था, उसके बाद अब छप रहा है। ऐसा हमने वैसे इस शास्त्रार्थ के मुख पृष्ठ पर भी नोट दे दिया है।"** नियम निश्चय होने के पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, उसे पढ़िये और लाभ उठाइये यह सभी प्रमाणित सामग्री मैंने मूल कापी से ही ली है। जो मेरे पास मौजूद है।

वैदिक धर्म का–
"अमर स्वामी सरस्वती"
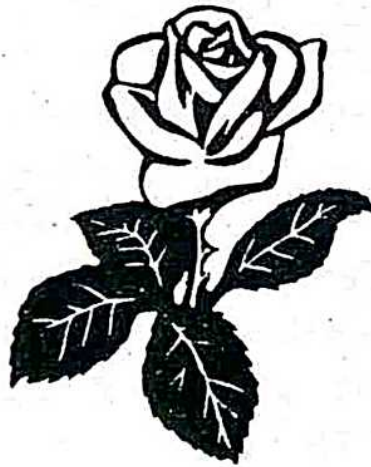
@vaidicbooks

शास्त्रार्थ आरम्भ

आर्य उवाच –

वेद में ईश्वर की ओर से जीवों को कर्त्तव्य कर्मों का विधान किया गया है। यदि मूर्तिपूजन वेद विहित है तो इस विषय में भी वेद से ही प्रमाण देना होगा। वेद शब्द से जो मैंने उच्चारण किया है, उससे (यह पद पढ़ना ही छोड़ देना चाहिए) मेरा तात्पर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से है, जो मन्त्र भाग के नाम से प्रसिद्ध है।

मूर्ति पूजन के खण्डन को स्पष्ट करने के लिए मैं अपने व्याख्यान में तीन भाग करता हूं।

१. ईश्वर के गुणों का वर्णन।
२. ईश्वर की प्रतिमा नहीं है।
३. प्रतिमा पूजन का वेद में निषेध है।

(प्रथम भाग) ईश्वर के गुणों का वर्णन –

ईश्वर स्वरूप के विषय में यजुर्वेद संहिता के अध्याय, ४०, मन्त्र ८. का प्रमाण देता हूं।

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ। शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातययोऽर्थान् व्यदधाच्छास्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८.)

अर्थ – वह परमात्मा सब जगह व्यापक, जगत का उत्पादक और शुद्ध पवित्र, शरीर से रहित, अछेद्य अर्थात् फोड़े–फुन्सी, नाड़ी आदि के बन्धनों से रहित, अन्तर्यामी, सबका मालिक स्व प्रकाश (है) उस परमात्मा ने नित्य अपनी प्रजा के लिए सब अर्थों और कर्मों का विधान किया है।

(द्वितीय भाग) ईश्वर की प्रतिमा नही है –

अब इसके लिए प्रमाण वेद का ही प्रस्तुत करता हूं। प्रथम भाग में अपने कथन के अनुसार **"ईश्वर के गुणों का वर्णन"** विषयक वेद का ही प्रमाण प्रस्तुत कर अर्थ भी कर दिया है। अब आप **"प्रतिमा नहीं है ईश्वर की"** इसके लिए यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र : को देखिए–

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मामाहि ꣳसी दित्येषः यस्मान्नजात इत्येषः।।

(यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३.)

अर्थ – जिस परमात्मा का बड़ा यश प्रसिद्ध है, उसकी प्रतिमा नहीं है, वह हिरण्यगर्भ अर्थात् ऐसा परमात्मा है। जिसके आधारभूत सारे तेजस्वी व यशस्वी (पदार्थ) आधारभूत (यह भी न होना चाहिए क्योंकि यही पद पहले आ चुका है) वह मुझको न मारे, फिर कैसा है वह परमात्मा कि जिससे साक्षात् कोई उत्पन्न नहीं हुआ।

इसमें **"हिरण्य"** शब्द के अर्थ में प्रमाणः–

"ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृत ꣳ हिरण्यम्।।" श. का. ६ अ. ७.

एवं

"अथ एतरेय ब्राह्मणे यशो वै हिरण्यं ।" पं. ७ अ. ३.

(तृतीय भाग) प्रतिमा पूजन का वेद में निषेध है –

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते ।
ततोभूय इवते· तमोयउसम्भूत्या ꣳ रताः।।

(यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र ६,)

इस मन्त्र में प्रतिमा पूजन का जबर्दस्त निषेध किया गया है, देखिए अर्थ भी– वह अन्धकार में जाते हैं, जो कारण स्वरूप जगत की उपासना करते हैं, और वह उससे भी अधिक अन्धकार में जाते हैं, जो कार्य स्वरूप जगत की उपासना करते हैं। अर्थात् जो स्थूल पृथ्वी आदि विकार को पूजते हैं।

अधिकोक्ति –

मनुष्य जब किसी को अपना उपास्य देव मानता है तो उसे अपना पूज्य मान सर्वथा प्रसन्न करना चाहता है, क्योंकि प्रत्येक उपासक अपना कल्याण अपने उपास्य देव की प्रसन्नता ही में जानता, मानता, और प्राप्त कर सकता है। यदि उसका उपास्य श्रम–गुण विशिष्ठ है, और उसके कर्म एवं स्वभाव उपासक से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम हैं, तो वह तदनुकूल आचरण स्वीकार करेगा, क्योंकि कोई किसी के विरुद्ध आचरण करता हुआ किसी को प्रसन्न नही कर सकता।

यदि मनुष्य अपना उपास्य अपने से अधिक शक्ति वाला और गुण वाला न मान किसी ऐसे पदार्थ में पूज्य बुद्धि करे, जो यथार्थ में न उसकी तरह चैतन्य शक्ति रखता है, न उसमें किसी प्रकार का बल, वीर्य,पराक्रम दीख पड़ता है, वा जिसके गुण–कर्म–स्वभाव, शिष्टाचार विरुद्ध और लोकगर्हित है तो वह कुछ भी उन्नति न करके केवल अवनति को प्राप्त होगा, और मनुष्य की जो अभिलाषा कल्याण प्राप्त करने की थी, वह उसे कदापि प्राप्त नहीं होगी। पुनः उसका वह कर्म निष्फल रहेगा। और मनुष्यत्व का कुछ भी उसे लाभ न होगा, अपितु हानि ही होगी, क्योंकि जैसा उपास्य होता है, वैसा ही उपासक भी हो जाता है। अर्थात उपास्य और उपासक के गुण, कर्म और स्वभाव में किसी कक्षा तक सदृश्यता हो जाती है। यदि वेद में मूर्तिपूजा का विधान हो तो, मूर्ति पूजन के मण्डन करने वाले महाशय क्या यह बतलावेंगे ?

१. क्या ईश्वर मूर्तिवान है ? और उसकी मूर्ति कितने प्रकार की हैं ? कैसी हैं ? और किस–किस प्रकार की बनानी चाहिए ?

२. मूर्ति पूजा के विषय में विधि वाक्य जिससे यह प्रतीत हो कि मनुष्यों को उसकी मूर्ति अवश्यमेव पूजनी चाहिए, और उससे क्या लाभ होगा ? (उत्तर दें)

नोट –

यह प्रमाण वेद संहिता अर्थात् मन्त्र भाग से जिसको ऊपर स्पष्ट कर चुका हूं, ठीक–ठीक ऐसे ही पते के साथ देना चाहिए जैसा मैने दिया है।

हस्ताक्षर –

"ज्योति स्वरूप"

हिन्दूरुवाच –

जो–जो भाषा मन्त्र के अर्थ की लिखी वह कौन–कौन से पद की है ? उसका जुदा–जुदा छेवा देकर निश्चय कर दें कि कौन–कौन प्रमाणों से इन अर्थो की भाषा लिखी है ? हमको उन पदों से निश्चय हो जाना चाहिए कि इस पद का यह अर्थ है और इस प्रमाण से होता है।

दूसरे जो प्रतिमा का निषेध किया वह कौन से मन्त्र से प्रतिमा पाई, और संहिता में कौन सा मन्त्र है ? क्योंकि बिना प्राप्त हुए निषेध नहीं हो सकता है, जो कोई निषेध होता है, वह प्राप्त ही का होता है।

जैसे अपने घर में बारं–बार चांदी देखी जाती है। उसको सूर्य के तेज प्रताप से सीपी में चांदी प्रतीत होती है। तब उसको शंका होकर के निषेध किया जाता है कि सीपी में चांदी नहीं है। इससे प्रमाण लिखें कि मूर्ति इस मन्त्र से पाई थी। उसका निषेध किया, जो–जो वस्तु प्राप्त है, उसी का निषेध है।

हस्ताक्षर –

"कमल नेत्रस्य"

आर्य उवाच–

पदच्छेद करने और अर्थ करने की विधि को वर्णन करना, उस समय तक आवश्यक नहीं है, जब तक यह सिद्ध न हो कि अर्थ समझने में भ्रान्ति हुई या अर्थ अशुद्ध कर लिया गया। पहला भाग पंडित जी के लेख का केवल समय व्यतीत करना ही प्रतीत कराता है। वहुत प्रसिद्ध है कि अर्थ व्याकरण और कोष की सहायता से किया जाता है। और किसी विशेष प्रमाण की उस समय तक आवश्यकता नहीं होती जब तक भ्रान्ति या अशुद्धि न बतलाई जावे।

दूसरे भाग में कहा गया है कि प्राप्त वस्तु का ही निषेध किया जाता है, ईश्वर विषय में सर्वथा असंगत है सब ही जानते हैं कि ईश्वर त्रिकालज्ञ है उसे अपनी सर्वज्ञता से उसने ऐसी बातों का निषेध किया है, जिन्हें जीव तीनों काल में से, किसी एक काल में करता है, करेगा, या किया है। लोक में भी अप्राप्त वस्तु का निषेध दृष्टिगोचर होता है। जैसे कहते हैं, बालू में तेल नहीं है, अथवा वन्ध्या के पुत्र नहीं होता, आकाश में फूल नहीं लगते, शशक के सींग नहीं होते, और वेदों में आज्ञा पाई जाती है, कि गौहिंसा मत करो, तो भी कोई वेदवित् नहीं कह सकता कि गौहिंसा की आज्ञा देने के पश्चात्त निषेध किया गया है। अतः प्रार्थना है कि पूर्वोक्त प्रकार से उत्तर दिया जाये।

हस्ताक्षर –

"ज्योति स्वरूप"

आर्य उवाच –

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धं।

कविर्मनीषी, परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-स्वतीभ्यः समाभ्यः।। ८।।

(यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८.)

सः। पर्य्यगात्। शुक्रम्। अकायम्। अव्रणम। अस्नाविरम्। शुद्धम्। अपापविद्धं। कविः। मनीषी। परिभूः। स्वयम्भूः। याथा तथ्यतः। अर्थान्! व्यदधात्। शाश्वतीभ्यः। समाभ्यः। **(इति पदपाठ)**

यो यमत्तीतैमन्त्रैरूक्त आत्मा सस्वेत रूपेणोत्याह। यम्मन्त्रः **(सपर्य्यगात्)** सन्त्रान्मापरि समन्तादगात् गतवान् आकांश वध्या पीत्यर्थः। परिउपसर्गः। अगात् क्रिया पदम् **(शुक्रम्)** शुद्धम् ज्योतिष्मद्दीप्तिमन्त्रित्यर्थः। **(अकायम्)** लिंग शरीर वर्ज्जित इत्यर्थः **(अव्रणम्)** अक्षतम्। **(अस्नाविरम्)** स्नावाशिरान विद्यन्तेयस्मिन्नित्यस्ना विरम्–अस्नाविरमव्रण मित्याभ्यां स्थूलशरीर प्रतिषेद्यः। **(शुद्धम्)** निर्म्मलम् **(अपापविद्धम्)** धर्म्माधर्म्मादि पाप वर्जितम्। शुक्रमित्यादीनिवचांसि लिंगत्वेन परिणीयानि कविर्मनीषी पुर्लिगत्वेनोपसंहारात् **(कविः)** क्रान्तदर्शीः सर्वद्दक **(मनीषी)** मनसः– ईशिता–सर्वज्ञ ईश्वरइत्यर्थः **(परिभूः)** सर्वेषामुपरिभवतीति। **(स्वयम्भूः)** स्वयम्भवतीति तथा सनित्य मुक्तईश्वरोः **(याथातथ्यतः)** सर्वज्ञत्वात्। यथा तथाभावो याथातथ्यम् यथाभूत् कर्म्म फलसाधनतोर्थान्। कर्त्तव्यपदार्थान्। विहितवान् **(शाश्वतीभ्यः)** नित्याभयोनादिरूपाभ्यः। **(समाभ्यः)** जीवेभ्यः।। यद्वा संवत्सराख्येभ्यः।। पूर्वोक्त विशेषणै रीश्वरस्य मूर्तिरर्थात्प्रति कृतिर्न प्रत्तीयत।

हस्ताक्षर –

"देवदत्त शर्म्मणः"

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण मस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धं।
कविर्मनीषी,परिभूः स्वयम्भूर्याथातत्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-स्वतीभ्यः समाभ्यः।। ८।।
(यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८)

(सपर्य्यगात्)............ वह परमेश्वर सर्वव्यापक है।
(शुक्रम्)............ शीघ्रता से कार्य करने वाले
(अकायम्)............. काया (शरीर) रहित
(अव्रणम्)............. फोड़े (जख्म) और छिद्रों से रहित
(अस्नाविरम्)........... नस नाड़ी के बन्धन से रहित
(शुद्धं)............... सर्व दोषों और अपवित्रताओं से रहित
(अपापविद्धम्)........... सर्वथा पाप रहित
(कविः)............... बड़ा विद्वान् क्रान्तदर्शी
(मनीषी)............... महान् ज्ञानवान्
(परिभूः)............... सबका शासक सबका स्वामी है (उसने)
(स्वयम्भूः)............. स्वयं प्रकाशमान् अपने सर्व कार्य स्वयं करने वाला
(याथातथ्यतः)........... ठीक–ठीक यथा योग्य
(अर्थान्)............... करने योग्य कार्यो का विधान और
(व्यदधात्)............. संचालन किया
(शाश्वतीभ्यः)........... प्रवाह से अनादि सृष्टियों
(समाभ्यः)............. समयों के लिए

हस्ताक्षर –

"देवदत्त शर्मा"

हिन्दुरुवाच –

जो कुछ सभापति ने "सपर्य्यगात्" इस ऋचा का अर्थ करा है, यह अर्थ नहीं है।

स पर्य्यगाच्छुक्र मकायमव्रणमस्ना विरं शुद्धमपाप विद्धम्। कविः मनीषी परिभू स्वयम्भूः र्याथातथ्यतोऽर्थान् विदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

सः परि आगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्। अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम्। कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतः अर्थान् विअदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। इति पदच्छेदः

एवम्भूतात्मज्ञस्य फलमाह य एव मात्मानं पश्यति स इदृशं ब्रह्म पर्य्यगात् परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः कीदृशं शुक्रम् शुक्तम् शुद्धम् विज्ञानानन्दस्वभावम् अचिन्त्य शक्ति अकायम् न कायः शरीरं यस्यतत् अकायत्वादेवाव्रणम्। अक्षतम् अस्नाविरं न विदन्ते स्नावाः शिरा यत्र तद् स्नाविरम् स्नायु रहितम् अकायत्वादेव शुद्धम् अनुपहतम् सत्त्वरजसतमोभिः अपाप विद्धम् न पाप विद्धम् क्लेश कर्मविपाकाशयैर स्पष्टम् अकायम्

व्रण मस्नाविरमिति पुनरूक्त माथितिश यद्योतनाय ऋभ्यासे भूयां समर्थम्मन्युन्त, इति यास्कोक्तेः निरूक्त-१-४२।।

ई दृशं ब्रह्मात्मज्ञः प्रतिपद्यत इत्यर्थः पुनरत्तस्यैव फलान्तरमाह ईदृशं उपासकः शश्वतीभ्यः समाभ्यः निरन्त मनन्त वर्ष प्राप्तये याथा तथ्यतः। याथातथा भावो याथात्थ्यं यथा स्वरूपमर्थान् व्यदद्यात् विहितवान् तक्त स्व स्वामि सम्बन्धै चेतना चेतनै रथै रूप भोगं कृतवान् इत्यर्थः की दृशः कविः क्रान्सदर्शी मनीषी मेधावी परि सर्वतो भवतीतिपरिभूः ज्ञानवलात् सर्व स्वरूपः स्वयम्भवतीतिपरिभूः।

ब्रह्मरूपेण भविता ईदृशोपि पूर्वोक्त शुक्र मकाय मित्यादि विशेषण विशिष्ठं ब्रह्म प्राप्नोतित्यर्थः एव ऋनतस्य प्रति मेत्यारम्य सपर्य्यगाद्यन्तमेतन्मन्त्रत्रयं शुद्ध ब्रह्मोपासना विषयकं ननु मूर्ति पूजन निषेध विषयकं कुतो मूर्ति पद वाचकत्वाभावात्। यञ्चात्र प्रतिमा पदं तच्च सादृश्यपरम्।।

भावार्थ –

जो अस आत्मा कु देखता है, सो अस ब्रह्म कू प्राप्त हो जाता है। कैसा ब्रह्म है विज्ञान आनन्द स्वभाव है, न हि चिन्तमन करीजा है, शक्ति जिसकी नहीं है, शरीर जिसके शरीर के न होनें से फोड़ा फुन्सी रहित है। नाड़ी रहित है। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण कर कै रहित है, क्लैष कर्म फल और आशय अन्तःकरण इन कर कै स्पर्शित नहीं है ऐसे ब्रह्म कू ब्रह्मज्ञानी प्राप्त होता है। ऐसा उपासक बहुत वर्षों के प्राप्त होने के वास्ते सो उपासक ऐसा स्वरूप कू विधान कंहता है। नाम त्याग दिया स्व स्वामी सम्बन्ध भाव जिस न चेतन जड़ों कर कै उपभोग करता है, वह उपासक कैसा है? कवि है, मनीषी है। मेधावी है, और ज्ञान बल करकै सर्व स्वरूप है, और ब्रह्म कर कै सर्व स्वरूप हो जाता है। ऐसा वो ज्ञाता है। शुद्ध अकाय इत्यादि विशेषणों कर कै युक्त जो ब्रह्म है, तिस कूं वह प्राप्त होता है।

"न तस्य प्रतिमा......." इति मन्त्र से ले कर कै **"सपर्य्यगात्........"** इस मन्त्र पर्यन्त तीनों मन्त्रों कर कै मूर्ति का खण्डन होना साबुत नहि हो सक्ता है, क्योंकि मूर्ति पर **"प्रतिमा"** शब्द नहीं है, क्योंकि प्रतिमा शब्द सादृश्य पर है।

दस्तखत –

"कमलनेत्र" (कमलनयन)

सत्ताईसवां शास्त्रार्थ

स्थान : "फीरोज़ाबाद" जिला आगरा (उ॰ प्र॰)

विषय : क्या जैन मत की तालीम मनुष्यमात्र के लिए हितकर है ?

दिनांक : १६ से २० मार्च सन् १८८८ ई॰

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. पण्डित देवदत्त जी शर्मा
२. पण्डित भीमसेन जी शर्मा

जैनसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. पण्डित छेदालाल जी
२. पण्डित पन्नालाल जी

आर्यसमाज के मंत्री : गंगाराम जी वर्मा

जैनसमाज के मंत्री : छेदालाल जी (जैन धर्मिणः)

अन्य उपस्थित सज्जन जैनियों की ओर से : लाला मञ्जूलाल साहब,
लाला प्यारेलाल साहब,
सेठ फूल चन्द जी, आदि।

अन्य उपस्थित सज्जन आर्यो की ओर से : श्रीमान् रायसाहब सोहनलाल जी,
पण्डित ठाकुरप्रसाद शास्त्री,
पण्डित सीताराम चतुर्वेदी, (मैनपुरी)
पण्डित गंगाधर जी,
श्रीमान चतुर्वेदी कमलापति जी इत्यादि।

शास्त्रार्थ से पहले

जिला आगरा में एक **"फीरोजाबाद"**® नामक कस्बा है। वहां जैनियों का तीर्थ है। प्रतिवर्ष चैत्र में मेला होता है। यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्य स्थान हैं, वहां आर्यसमाज की उन्नति वा स्थित होना कठिन होता है। इसी के अनुसार नगर फीरोजाबाद में भी आर्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महा अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। उन्होंने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किए। दो एक बार समाज में अपना आदमी भेजा कि हम मतविषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। समाज से पत्र द्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं।

इस प्रकार की बातें आर्यसमाज फीरोजाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थी कि इतने में सनातन आर्य–धर्मोपदेशक **श्री स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीजी सम्वत् १६४४ विक्रमी के फाल्गुन मास** में इस फीरोजाबाद नगर में पधारे और सनातन धर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैन धर्मावलम्बी **सेठ फूलचन्द जी** ने कहा कि मतविषय पर वार्त्ता होनी चाहिए। जिसका मत ठीक और सनातन निकले, द्वितीय पक्षवाला उसी का ग्रहण करे। स्वामी भास्करानन्दजी के साथ सेठ फूलचन्दजी ने और उक्त स्वामीजी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिसका पक्ष गिर जावे, वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तब स्वामी भास्करानन्दजी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करने वाला हो,उसको बुलाओ। इस पर सेठ फूलचन्दजी ने पं. पन्नालाल जैनधर्मी को बुलाया। वे किसी विशेष कारण से न आए। तब यह बात निश्चित हुई कि **प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक** मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो।

इस बात का लेख भी समाचारपत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट हो गई। दोनों पक्षवालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए, परन्तु जैनपक्ष के पण्डित द्वितीया तक नहीं आये। आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आ गए, तब सर्वसम्मति के अनुसार **पण्डित गंगाधरजी उपदेशक** आर्य समाज जसवन्तनगर ने सेठ फूलचन्दजी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से आरम्भ होना चाहिये, जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है। इसलिए (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहिये, जिससे शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो। इस पर उक्त सेठजी ने उत्तर दिया कि हमारे पण्डित लोग तृतीया को आजावेंगे, उसी समय सब नियमादि तय हो जावेंगे।

जब जैन पण्डित द्वितीया की रात को आ गए, तो उसी समय में समाज के मंत्री और उक्त पण्डित गंगाधरजी ने फिर जाकर सेठजी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बंध जाने चाहिए तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत हो जाने चाहिए, जिससे शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो। तब उन्होंने यह कहा कि ये सब बातें सभा में एकत्रित होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुनने से दोनों पक्ष की ओर से दो–दो प्रबन्धकर्त्ता नियत किए गए। आर्यो की ओर से सभापति आर्य्य समाज फीरोजाबाद श्रीमान् **चतुर्वेदी कमलापतिजी त्र्और पं. गंगाधरजी** और जैनियों की ओर से **लाला मञ्जूलाल साहब** तथा **लाला प्यारे लाल साहब** नियत हुए। फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिए कहा गया। वह पुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो, वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई जमींदार हो, चाहे किसी मजहब

® **"फिरोजाबाद"** आजकल स्वयं जिला है जो दिल्ली–कानपुर मुख्य रेलमार्ग पर स्थित है, यह नगर काँच के सामान का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है, यहां से काँच द्वारा निर्मित सामान सारे भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों तक प्रचुर मात्रा में निर्यात किया जाता है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

का ही क्यों न हो ? उसको दोनों पक्षवाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें । वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्षों के शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा अपने पास रक्खे । जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उसको यथोचित रोके। इस पर **सेठ फूलचन्दजी** ने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिए जावेंगे, और शास्त्रार्थ का समय भी उसी समय नियत कर दिया जायेगा। मंत्री और पं. गंगाधरजी सबको धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुए आर्य पण्डितजनों से निवेदन किया कि उन्होंने प्रातःकाल शास्त्रार्थ के नियम, पंच और विय स्थिर करने के लिए कहा है। सबकी सम्मति हुई है कि प्रातःकाल ही सही। तब प्रातःकाल सेठजी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जाने स्वप्न हुआ था। प्रातःकाल और का और ही (विचित्र) ठाट रच मारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी न थे) लिख भेजा। इस पर मन्त्री ने एक पत्र उर्दू जुबान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिए कि यह पत्र आपका ही है। इस पर सेठजी साहब के अनुयायी पण्डित आदि लाल पीले हुए और कहा कि हमको म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी ? इस पर मंत्री और पं. गंगाधरजी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गए और कहा कि आपने पंचम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभी तक न किया । तब उन्होंने उस पत्र पर पं. छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिए और उत्तर दिया कि नियम और पंचम मनुष्य का सब निश्चय पत्रों से हो जायेगा, आप पत्र का उत्तर दीजिये। मंत्री ने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान, स्थान, नियम और जिन जिन विषयों पर शास्त्रार्थ हो, निश्चय कर लेवें। उन्होंने मेरे कथन को सुना अनसुना करके यही जबाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिए। मन्त्री ने कहा बहुत अच्छा, परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा। मंत्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया। इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उनका अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू बनाया है, आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं, इसलिए मिलकर प्रबन्ध करना चाहते है और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो, जब तक कोई और कारण खड़ा हो जाएगा तो शास्त्रार्थ होना बचा रहे और आर्य्यो का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिए पत्रव्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे।

जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र –

(श्रीः)

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फीरोजाबादनगरस्थजैनधर्मिकृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम्। शरव्यङ्केद्वब्दीयप्रथम चैत्रशुक्लपक्षगुर्वन्विततृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरणितम्मुद्रितं च। अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पाथोऽधिघण्टाध्वननावध्यधैव कर्त्तव्यः परन्तु शास्त्रार्थपदशक्यस्य शास्त्रीयवाक्य तात्पर्य्यावोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा शास्त्रार्थनन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृते भाषायां च जगद्वैदित्यन्नेयः। शास्त्रार्थापेक्षितजयाजय निर्णेतृम ध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलापातो वानुष्ठेयः। एतावतैवालमल्पाङ्गनतोऽप्यभिप्रायावगन्तृज्ञेषु।

**संयत् १९४५ विक्रमी
प्रथम चैत्र शुक्ल ३
गुरुवारे,**

**भवत्स्नेहिनः –
फीरोजाबादस्था जैनधर्मावलम्बिनः
नियतसमयात्पूर्व पत्रोत्तराभिलाषिणश्च
हस्ताक्षर – छेदालाल जैन.**

भाषार्थ –

श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फीरोजाबाद नगरस्थ जैनधर्मवालों के लिए नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिए कि सम्वत् १६४५ विक्रमी के प्रथम चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा। इस प्रकार उन – उन शहर आदि में आप लोगों ने कहा और छपाया है, इससे यह शास्त्रार्थ १० बजे से ४ बजे तक आज ही कर लेना चाहिए, परन्तु शास्त्रार्थ पद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों में संस्कृतरूप होने से आपस में संस्कृतभाषणपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिए, यह हमारी इच्छा है। शास्त्रार्थ के पश्चात् उसका विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद कराके जगत् को विदित करना चाहिए। जय पराजय का निश्चय करने वाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है। उसका विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिए। इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जानने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है।

समीक्षा –

सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिए कि पूर्वोक्त जैनधर्मियों का संस्कृतपत्र कैसा है ? इसमें शब्द, अर्थ और सम्बन्ध की कहां – कहां अशुद्धि हैं, सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं. जियालाल तथा पं. मिहिरचन्द्रजी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इसका पूर्ण अनुमान इससे हुआ कि जैनों के पं. छेदालालादि ने ज़ो पत्र सभा में सबके समक्ष लिखे (जिसमें मिहिरचन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं, उनमें इससे बहुत अधिक अशुद्धियां हैं। अर्थरूप अशुद्धियां तो उनमें भाषार्थ से ज्ञात हो जावेंगी। **"शराब्ध्यंके द्वब्दीय"** यहां 'अंकेन्द्व' ऐसाः चाहिए। अस्तु, छोटी – छोटी बातों पर ध्यान देकर बड़ी अशुद्धि देखिए– **"मध्यंस्थ विवेचनं......वानुष्ठेयः"** 'विवेचनं' नपुंसक लिंग का विशेषण **"अनुष्ठेय"** पुर्लिङ्ग के साथ किया है। संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है। इससे यह अनुमान होता है यदि धनादि के लोभवश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं. जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव न थी। ईश्वर विमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई, जिससे उनकी बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं।

उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र–

।। ओ३म् ।।

श्री मज्जैनधर्मावलम्बिषु,

भवतां पत्रं समागतं, रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन विषये किमपि न लिखितम्। शास्त्रार्थप्रबन्ध कर्त्तारः पञ्च सज्जनाः पूर्व नियोजनीयाः। पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति। ततो यैर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः। यत्र यत्र विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्य एव।

हस्ताक्षराणि – "गङ्गारामवर्म्मणः"
फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य.

संवत् १६४५
चैत्र शु. ३.

भावार्थ –

श्री मान् जैनधर्मावलम्बि योग्य–पत्र आपका आया, रात को जो निश्चय हुआ था उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहिए। इसके पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिए। इसके अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है। जिस – जिस विषय में शास्त्रार्थ हो , वह भी लिखना चाहिए।

उपरोक्त पत्र के जाने पर जैनियों का द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया वह निम्न प्रकार था –
श्रीमदार्यमतानुयायिनः,

भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्। शास्त्रार्थसमयः संस्कृत एव भविष्यतीति नियमः। मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्र एव लिखितः मञ्जुलालप्यारेलालौ प्रवन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणि कारयितुमागतेभ्यो गङ्गाराम वर्म्मभ्योऽवर्णि, विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थकाले भविष्यति, यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्थानाँल्लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि। शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्य पत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम्।

संवत् १६४५ विक्रमी
प्र॰ चै॰ शु॰ ३ वृ॰

१२ बजे
दिन के

हस्ताक्षर –
"छेदालाल"
जैनधर्मिणः

भावार्थ –

श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायियों ! आपका भेजा हुआ पत्र मिला। शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं। हमारी ओर से मंजूलाल व प्यारेलाल प्रबन्धकर्त्ता होंगे। शास्त्रार्थ का स्थान जैनपाठशाला होना चाहिए सो हस्ताक्षर कराने को आए गंगाराम वर्मा से कह दिया था। विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जायेगा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं परन्तु समय, नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा। शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उसके पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है ?

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से उत्तर–

।। ओ३म्।।

मावन्मारजित्क्षान्तसदसदुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः !

तत्रभवतां पत्रमातुङ्गितम्। क्षुतार्थानेहाः पूर्वभाविनियमेतरेतरोररीकृतान्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः। जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतकि। कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयकविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात्। वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम्। यच्चोक्तं शास्त्रार्थकाल एव विषयो निर्णय इति तन्न, कुतः? सति कुडये चित्रं भवतोतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः। तच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम्।

प्र॰ चै॰ शु॰ ३
सम्वत् १६४५,

हस्ताक्षर –
"गङ्गारामस्य"

भावार्थ –

श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होने वाले महाजनों में श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियों ! आपका यह पत्र आया, शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत हो जाने के पश्चात् दोनों पक्ष वालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिए। जय पराजय का निश्चयकर्त्ता कोई निज मनुष्य नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्यवक्ता पक्षपातरहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनो पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो,वह मध्यस्थ हो सके सो सर्वगुणाकार पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होने मध्यस्थ

से होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है। इसलिए वादीप्रतिवादी के लेख द्वारा स्पष्ट किया हुआ विषय ही जय पराजय का सूचक हो जाएगा अर्थात् उस लेख से अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय कर लेंगे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जब तक भित्ति (दीवार) न बन जाये, उस पर चित्र – विचित्र – चिन्ह धरना बन नहीं सकता। इसी प्रकार पहले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ आरम्भ हो सकता है और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय हो जाने के बाद उत्तर देने में क्या कारण है? सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हम लोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई हो तो (इकतरफी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीत कर हुआ, यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का तृतीय पत्र –

श्री मदार्यमतानुसारिणः

द्वितीयपत्रङ् घण्टात्रय कालात्यय उपलब्धम् भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्य स्थासम्भवोऽभाणि, लेखद्वारा जयाजय-स्पष्टताऽगीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषय निर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थान समयसंस्कृतभाषा शास्त्रार्थविषये किञ्चदपि नाऽभाषि, यदि विषयनिर्णयोत्तरमेवशास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापर्णाङ्कविचार्य्याकारि, मध्य स्थासम्भवे शास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेंऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्रयादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तहि सप्तघण्टाध्वनिमारभ्य दशघण्टाध्वनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान त्र्यागत्य कर्त्तव्यः, विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः, नोचेदलम्वृथा समयात्येन।

सम्वत् १६४५ विक्रमी	४ बजे	हस्ताक्षर–
प्र. चै. शु. ३ बृ.	**दिन के**	**"छेदालाल"**
		जैनधर्मिणः

भावार्थ –

श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियों ! आपका दूसरा पत्र तीन घण्टे में मिला, आपने जय पराजय के निश्चयकर्त्ता अर्थात् मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेख द्वारा जय पराजय स्पष्टतया स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने के पहले विषय का निर्णय चाहते हो। शास्त्रार्थ का स्थान, समय तथा संस्कृत वा भाषा (हिन्दी) में होने के विषय में कुछ नहीं कहा। जो विषय का निश्चय होने के पश्चात् ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचार पत्रों में विषय का निर्णय किये बिना क्या विचार (सोच) के छपाया था ? (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव, लेख द्वारा शास्त्रार्थ तो वादीप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है। फिर उस समाज के मन्त्री आदि के यहाँ एकत्र करने का क्या प्रयोजन था ? तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैन पाठशाला स्थान में आकर करना चाहिए। शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिए और यह न हो तो व्यर्थ समय न खोना चाहिए अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिए।

नोट –

सब महाशयों को ध्यान देना चाहिए कि हमारे लेख में और इनके लेख में क्या भेद है ? हमने लिखा था कि दोनों पक्ष की सम्मति से पहले नियम स्थिर हो जायें, फिर शास्त्रार्थ के लिए समयादि का विचार किया जावे, सो नियमों के लिए तो कुछ उत्तर न दिया। इसका कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्र के अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी हों तो शास्त्रार्थ करने से डरते

हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाना चाहते हैं। शास्त्रार्थ का विषय समाचार पत्रों में न छपाया तो उसका अभिप्राय यह कोई सिद्ध नही कर सकता कि बिना ही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जाएगा। ऐसा हो तब तो बिना कारण के भी कार्य हो जाया करे। जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटे से भोजन बनाऊंगा ? इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं, जैसे अभाषि अभाषि आदि के स्थान में प्रयुक्त है। (पूर्वम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्धि है। क्योंकि ओष्ठ्य वकार के परे परसवर्ण हो सकता है, दन्त्योष्ठ्य वकार के परे नहीं होता। इत्यादि अनेक–अनेक अशुद्धियां हैं।

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर –

।। ओ३म्।।

श्रमत्सीमन्तपतावलम्बिपु,

भावत्कपत्रमागतमालोक्येदमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मित नियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः । समाचारपत्रपु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं बाधकं मन्यते भवद्भि शास्त्रार्थ सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थ परिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव। समयश्च भवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि। यदि तत्रभवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थ चिकीर्सन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति, किन्त्वस्मल्लिखित शास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मित्तनिय मांश्च स्वीकुर्वन्तु। यदि काचिद्विप्रतिपत्तिः स्यात्तदाभि मतविषयसिय मांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु। अद्य तु भवन्निय मितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः। यतः कालादारभ्य सायं प्रातर्वा श्वो भविता से लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्व जानीयामेति शम्।

साढ़े चार बजे (सायं)

हस्ताक्षर–

"गङ्गारामस्य"

भावार्थ –

श्रीमान् जैन धर्मियों के समीप निवेदन– आपका पत्र आया, उसका उत्तर दिया जाता है। शास्त्रार्थ का स्थान, समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भाषा में बनाये नियमों में है, सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचारपत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किए बिना शास्त्रार्थ होगा ? विषय का निश्चय हुए बिना शास्त्रार्थ होना अशक्य है, इसमें क्या आप कुछ बाधक समझते हो ? शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिए, उसका लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिए है। आपने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा, उसको हम लोग भी स्वीकार करते हैं। यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो, बार–बार पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है ? किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाए नियमों को स्वीकार कीजिए यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिखकर भेजो। आज तो आपके नियत किए समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल कब से कब तक होना चाहिए सो आप लिखिए जिससे हम लोग भी पहले से जान लें और उद्यत रहें।

उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्नलिखित नियम और विषय भी जैनियों के पास भेजे गए थे –

१. शास्त्रार्थ में पाँच पुरुष प्रबन्धकर्ता होने चाहिए, दो – दो उभय पक्ष की ओर से रहें, जिनको अपने–अपने पक्ष वाले नियत करें–एक प्रबन्धकर्ता सभापति मध्यस्थ हो, जिसको दोनों पक्ष वाले

सम्मति कर नियत करें।

२. शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में व सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिसको उभय पक्ष स्वीकार करे।

३. शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें, किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें।

४. दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहले अपनी–अपनी ओर से लिख के एक–दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रखें।

५. सभा में एक बार में एक ही वादी या प्रतिवादी बोले, अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे।

६. प्रश्न के लिए जितना समय रहे, उससे चौगुना समय उत्तरदाता को मिले।

७. अपने–अपने पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पाँच–पाँच मनुष्य शास्त्रार्थ के लिए नियत करें।

८. जो जो विषय शास्त्रार्थ के लिए नियत हो, उसके विरुद्ध पप पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे।

९. यह शास्त्रार्थ अक्षर–अक्षर यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जावे। दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तरदाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच बीच में होते जावें।

१०. शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो। पर प्रश्न का उत्तर लिखाने के पश्चात् उसका आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे।

११. एक बार में एक प्रश्न ही हो सकेगा, उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार या दस बार से अधिक न होना चाहिए।

१२. संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आ पड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे, उसको प्रथम नियत कर लेवें।

१३. शास्त्रार्थ जैनधर्मियों की इच्छानुसार दिन में या रात्रि में हो, पर चार घण्टे बाद उठने पर ही किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा, अर्थात् प्रतिदिन चार घण्टा से अधिक न होना चाहिए।

१४. उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने–अपने मत को मानते अवश्य हों, अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा।

१५. दोनों पक्षों वाले वादी प्रश्न या उत्तर करने के लिए १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे।

१६. यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदलना चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा। सभापति की आज्ञा बिना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा।

शास्त्रार्थविषय –

१. **अनन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा ?**
२. **जीवः कोऽस्ति, तस्य चेश्वरेण कः सम्बन्धः ?**
३. **चतुर्विंशतित्तीर्थङ्कराः केभूऽवन् किं च तेषां सामर्थ्यम? कियत्परिमाणानि च तच्छरीराणि?**
४. **जीवरक्षा च क्वपर्य्यन्तं भवितुं शक्या ?**
५. **रथयात्रा काऽस्ति, किमर्थं च कर्त्तव्या ?**
६. **अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्वज्ञानं वेति ?**

उपरोक्त संस्कृत विषयों का हिन्दी भावार्थ –

१. जिसका एक सर्वोपरि से भिन्न कर्ता नहीं हो सकता, ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ?

२. जीव कौन है, और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ?

३. चौबीस तीर्थङ्कर कौन–कौन हुए, उनका क्या–क्या सामर्थ्य था, और कितने–कितने बड़े उनके शरीर थे ?

४. जीव रक्षा कहां तक हो सकती है ?

५. रथयात्रा क्या है और किस लिए करनी चाहिए ?

६. और को और समझना मिथ्याज्ञान है, वा तत्त्वज्ञान ?

नोट –

इसके पश्चात् जैन सम्प्रदाय की ओर से चुप्पी साध ली गई परन्तु समाज में बदनामी न हो, इसी उद्देश्य से पत्र लिखा गया, जो इस प्रकार था, देखिये –

इस पर जैनियों का जो पत्र आया –

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रवन्धकर्त्तादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियतसमयद्वयात्ययनञ्च कृतम्। इदानीं दशघण्टा ध्वनिता ऽतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्त्तुमसमर्था इत्यनुमितमित्यलम्।

हस्ताक्षर–

सम्वत् १६४५ विक्रमी	**१० बजे**	**"छेदालाल"**
प्र. चै. शु. ३ वृ.	**दिन के**	**जैनधर्मिण;**

भावार्थ –

श्रीमान् आर्य मतानुयायियों ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्ता आदि का निश्चय हो जाने पर भी तुम नहीं आये। शास्त्रार्थ के नियत दो समय भी टाल दिए, अब दस बज गए इससे तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो,यह अनुमान है।

नोट –

इससे पहले जो पत्र भेजा, उसके साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मन्त्री और चतुर्वेदी कमलापति जी, सभापति सेठ फूलचन्द जी के पास इस अभिप्राय से गए कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा रहा तो कल तारीख १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा, इसलिए आमने–सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्री ने सेठजी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख व सुनकर सम्मति कर लीजिए। इस पर भी उनके सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिए। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा, पर उन्होंने सिवाय लबड़ धों–धों के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं मानी। इसके पश्चात् मन्त्री आदि चले आए और नियम जो ले गए थे, उनको पत्र द्वारा भेजा। उसका उन्होंने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा, जिसका हमारे पत्र से कुछ सम्बन्ध नहीं था। हमने लिखा कुछ उन्होंने उत्तर और ही कुछ दिया, **"ऽाम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे"** । इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि **"प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय हो चुका तो तुम नहीं आये"**। क्या हम लोग इनके नौकर हैं जो इनके बुलाने मात्र से इनके घर पर शास्त्रार्थ के लिए

चले जाते और प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय कहां हो चुका था ? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ? शास्त्रार्थ के मूल कारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय आपने मनमाना लिख भेजा। क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था ? जिसको हम निर्विवाद मान लेते। (जो महाशय इस पर ध्यान देगे उनको यथावत् ज्ञात हो जाएगा कि जैन लोग बिना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला करके अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे)।

इसके पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्यो की ओर से उत्तर दिया गया –

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः,

पूर्वमप्यस्माभिरलेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततरस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्व यमतिक्रान्तमिति। यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रू युस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात्। यदि भवन्तः शास्त्रार्थ कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यौ नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु। वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थ कर्त्तु सन्नद्धाः। यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थ चिकीर्षन्तीति। अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं, तदिदानीं सद्यो दातव्यमिति।

हस्ताक्षराणि –

गङ्गारामवर्म्मणः
फ़ीरोज़ाबाद
स्थार्यसमाजामात्यस्य,

सम्वत् १९४५ विक्रमी
प्र. चै. शु. ३.

भावार्थ –

पहिले भी हमने लिखा था (कि सबसे पहिले नियम स्थिर करना चाहिए तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किए बिना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिए। ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला, कुछ उत्तर नहीं दिया, इससे तुम्हारा पराजय हुआ। यदि आप नियम–पत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उल्हाना मान भी लिया जाता। यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुतः अन्तःकरण से चाहते हैं, तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। यदि आप नियमों के बिना ही हल्ला–गुल्ला किया चाहते हों, तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं हैं। हम लोगों ने जो पत्र भेजा था, उसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया, सो शीघ्र दीजिए।

नोट –

यह उक्त पत्र जब भेजा गया, तब इस पर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनकी ऐसी लीला देखकर सामाजिक पुरुषों ने बस्ती के भद्रपुरुषों को बुलाकर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियम को स्वीकार कर लीजिए। प्रयोजन यह था कि हम लोग जो नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, उनको मध्यस्थ होकर देख लीजिए कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एक–सा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है। इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उनकी बातें सुन के और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्दजी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते ? इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड़वाल की बातें कहीं। जिससे शास्त्रार्थ होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्रजनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं।

ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि–"**हमको ठीक निश्चय हो गया कि आर्य्यो के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु**

टालमटूली करते हैं। हम सबके सामने लिख सकते हैं कि आर्यो का जय और जैनियों का पराजय हुआ।"

इस पर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत्पुरुषों से एक शपथ पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिए-वह पत्र यह है :-

"हम सत्य परमात्मा को जानकर कहते हैं कि हम लोग आर्यो की तरफ से जैनियों के पास गये। हमने शास्त्रार्थ करने में जैनियों को इन्कार पाया"।

हस्ताक्षर - "लक्ष्मीचन्द्र गुप्त" हस्ताक्षर- "गुलजारीलाल" हस्ताक्षर - "रघुवरदयाल"

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे, सब को विश्वास हो गया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा, कल अपने-अपने घर चलेंगे। यह सब समाचार तारीख १५ मार्च को हुआ। इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ। सब लोग सो गए। तारीख १६ मार्च सन् १८८८ ई॰ को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच सन्ध्यादि करके आए। तब तक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गए। बहुतेरे लोगों ने तो जैन सेठजी से जा-जाकर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे। तब तो सेठजी को बड़ा सोच-विचार करना पड़ा। इधर आर्य्यसमाज की ओर से भी दो एक पुरुष गए और सेठजी से कहा कि अब भी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक-ठीक निश्चय कीजिए नहीं तो हमारे पंडित आज अपने-अपने स्थान को चले जावेंगे। इस पर सेठजी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजुलाल व प्यारेलाल जी आ जावें तब सलाह करके उत्तर देवें। पश्चात् सामाजिक जन चले आये। इसके पश्चात् सेठजी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनी लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्दजी और आर्यो की ओर से पण्डित भीमसेनजी शर्मा दोनों महाशय जैनपाठशाला में बैठकर नियमों का निश्चय कर लेवें और उनको दोनों पक्ष वाले स्वीकार करें।

जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया। सबकी सम्मति से पण्डित भीमसेन शर्मा और चतुर्वेदी कमलापतिजी सभापति जैन पाठशाला में गए और सेठ फूलचन्दजी वहां इसीलिए जाकर बैठे थे। वहां पहुंच कर दोनों की सम्मति से विशेषकर सेठ फूलचन्दजी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हीं को काट-छाँट के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्ध प्रति करा जी जावे। सभा के आरम्भ में पांचों प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें। इस प्रकार बातें चीतें होते - होते दस बज गए थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था। इसलिए उसी समय नकल होकर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकत्ताओं को भोजन भी करना था। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नकल कराई गई और सबने भोजन किया, तब तक शास्त्रार्थ का समय हो गया। मनुष्यों को शास्त्रार्थ में जाने के (प्रवेश करने) लिए टिकट बँट गए थे। टिकट सेठजी की ओर से बांटे गए थे। उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्यलोग जैनपाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आए। कोतवाल साहब कितने ही यमदूतों के साथ प्रबन्धार्थ आये। जब सब लोग यथावस्थित बैठ गए, तब यह प्रस्ताव आर्य्यो की ओर से हुआ कि जो नियम पण्डित भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्दजी ने नियत किए हैं वे सभा में सुना दिए जावें। तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे। इस पर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दिये जावें।

वे नियम इस प्रकार हैं -

१. सभाप्रबन्धक के लिए पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुए। आर्य्यो की ओर से चौबे कमलापतिजी और पण्डित गङ्गाधर त्रिपाठी जी, जैनों की ओर से लाला मंजूलालजी और

लाला प्यारे लालजी और उभय पक्ष की ओर से एक चौबे ज्वालाप्रसाद जी सभापति। इन पांचों महाशयों को निम्नलिखित नियमानुसार सभा का प्रबन्ध करना होगा।

२. सभा में वे महाशय जायेंगे कि जिनके पास टिकट होगा, पर वे सभारथ पुरुष दो सौ से अधिक न होंगे।

३. प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहिये। प्रश्न के लिए पांच मिनट और उत्तर देने के लिए २० मिनट समय नियत किया है और जब तक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

४. उभयपक्ष की ओर से दो दो पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित होकर वार्त्ता करें, अर्थात् आर्य्यों की ओर से पण्डित देवदत्तजी और पण्डित भीमसेनजी और जैनियों की ओर से पण्डित छेदालालजी और पण्डित पन्नालालजी। इनसे भिन्न कोई न बोल सकेगा।

५. यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायेगा। दो प्रति उभयपक्ष की ओर से, तीसरी सभापति की ओर से। और इन तीनों प्रतियों पर उभयपक्ष के पण्डितों और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहिए।

६. शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सबको सुना देना चाहिए।

७. शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा विचार न किया जायेगा। सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे।

८. उभयपक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने – अपने ही मत के मानने वाले हों, अर्थात् अन्य मतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलेंगे।

९. उभयपक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे।

१०. शास्त्रार्थ जैनियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो, पर चार घण्टे से अधिक प्रतिदिन न होगा। समय की पूर्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिए।

११. तारीख २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहेगा। तथापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सकेगा।

ये सब नियम सुनाए गए। इस पर जैन लोगों ने अनेक शंका पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए। इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ। इसका कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग हिन्दी भाषा में करने का हठ करते थे। आर्य लोग संस्कृत में होने पर इसलिए बल देते थे कि जैन लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पण्डित मिहिरचन्द्र और जियालाल (जिनको कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे। वस्तुतः जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का बल नहीं था परन्तु उनमें **"निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते"** जैसे वृक्षरहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी बड़ा मालूम होता है, वैसे छेदालाल, पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ – कुछ संस्कृत जानते

थे, सो सेठ फूलचन्दजी ने भी इनके ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पण्डित मिहिरचन्द्र और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरोसे शास्त्रार्थ का बल बाँधा था और इसी बल से संस्कृत में करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी। पर जब नियम स्थिर किए गए, तब यह निश्चय हो गया कि अन्य पक्ष का पण्डित अन्य की ओर से मुखत्यार बनके शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो–जो पण्डित जिस–जिस की ओर से नियत हो, वह उस मत को यथावत् मानता हो। इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गए। जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया, तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इन्कार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझेंगे, इससे भाषा में होवे । इसका उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह बल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी, इसलिए संस्कृत में ही होना चाहिए।

इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते होते जैनियों ने एक मध्यस्थ वाला नया झगड़ा और छेड़ दिया। इस पर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पण्डित छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्दजी, श्रीधरजी तथा जो–जो पण्डित आर्य्यसमाजी और जैनियों के मत में नहीं, उनमें से चाहे जो पण्डित मध्यस्थ कर लिए जावें। जो शास्त्रार्थ लिखा–पढ़ी द्वारा हो सो उनके पास भेज दिया जावे, जिसके पक्ष को वे अच्छा बतलावें, उसका पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यो की ओर से पण्डित भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ होकर सत्य कहे। बहुधा पण्डित लोग थोड़े – थोड़े धन के लोभ से ईसाईयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते है, (जैसे पण्डित मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैनमत को मानते नहीं तथापि धनलोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खण्डन करने आए हैं), तो किसका विश्वास किया जावे ? और कदाचित कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे, तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवेंगे ? मेरी समझ में जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानेंगे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हजार पांच सौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पण्डित रूप बाजीगरों से बजवा देंगे।

इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहले नियम भले ही मत मानो किन्तु अब पंचो की सम्मति से और नए नियम बना लिए जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिए तथा बिना नियमों के हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे। जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई अवश्य होवे। ऐसे होते होते ढ़ाई घण्टे बीत गए। सभा के सब लोग व्याकुल हो गए और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है। तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग,चाहे किसी कारण से, शास्त्रार्थ न करेंगे, उन्हीं का पराजय समझा जाएगा। यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि बिना नियमों के उट–पटांग शास्त्रार्थ किया जावे, (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति कर ली थी कि आर्य लोग बिना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करेंगे। इसलिए हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवेंगे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया, इससे उनका पराजय हो गया), तो भी अनिष्ठ परिणाम देखकर विचार किया कि हम अब बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में दोनों पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डितों के नाम लिख लिए थे। इसके पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिए। तब (अहमहमिका) का झगड़ा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे। सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले एक साथ ही अपना – अपना प्रश्न लिख के अपने – अपने प्रतिपक्षियों को देवें। इसके अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ – अब आप आगे शास्त्रार्थ को पढ़िये और अपना ज्ञानवर्धन करिये।

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

(प्रथम दिन शुक्रवार, तारीख १६ मार्च सन् १८८८ ई०)

प्रथम प्रश्न पत्र जैनियों का —

भोविद्वज्जनवर्य्याः ! जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं। प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन। प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अ्रतः तत्स्वरूपं किं कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः।

हस्ताक्षर —
"छेदालालजैनधर्मिणः"

हस्ताक्षर —
"पन्नालालजैनमतानुयायिनः"

भाषानुवाद —

भो विद्वानों में श्रेष्ठजनो ! जगत में वर्त्तमान पदार्थो का प्रमेय होना सर्वसाधारण, (मिहिरचन्द्रकृत भाषानुवाद — **"पदार्थों को प्रमेय मानते है"** ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है। पदार्थ शब्द षष्ठयन्त है, उसको द्वितीयान्त करना ठीक नहीं, केवल अस्ति सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है।) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है, इसलिए उसका स्वरूप क्या है, उसके भेद कितने हैं, उसका विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है, उसका स्वतः प्रामाण्य वा परतः प्रामाण्य क्या है ? यह हमारा प्रश्न है। इसके साथ ही आर्यो की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न किए गए —

प्रथम प्रश्न पत्र आर्यों का —

मुखमार्गान्वेषणार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति। जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः। जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य अ्राहोस्विदनित्यः। जिनजैनपदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति। तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा, यदि सफलं तर्हि किंफलकम्?

हस्ताक्षर —
"भीमसेन शर्म्मणः"

हस्ताक्षर —
"देवदत्तशर्म्मणः"

भाषानुवाद —

सुख का मार्ग खोजने के लिए सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं, उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन सम्प्रदाय से कैसे हो सकती है ? जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन, जैन का वाच्यार्थ क्या है ? और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध है ? जिन शब्दवाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य ? जिन व जैन इन दोनों पदों और इनके वाच्य अर्थो के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल है वा निष्फल? यदि सफल है, तो उसका क्या फल है ?

विशेष—

यह पत्र लिखकर जैनियों को दिया गया और इससे पहला जैनियों का पत्र आर्यो के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्यो के पंत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है, वह आर्यो के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है ? और साथ ही इस पर भी ध्यान रखें कि जैनियों के पत्र का जो आर्यो ने उत्तर दिया है, वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है ?

आर्यों के प्रथम पत्र के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र –

मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायेनः युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं ऋावश्यकः। तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः, ऋतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य ऋादौ परामर्शो युक्तः।

हस्ताक्षर –
"छेदालाल"

हस्ताक्षर –
"पन्नालाल"

भाषानुवाद–

प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है। इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है, क्योंकि प्रमाण निश्चय के बिना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है, इससे हमारे कहे पूर्वपक्ष का पहले विचार करना चाहिए।

विशेष –

इस पत्र में **"ममोक्तपूर्वपक्षस्य"** यह बड़ी भारी अशुद्धि है। विद्वानों को इनका पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जाएगा। इन पहले दो पत्रों में बड़ी–बड़ी अशुद्धि कम है क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना, सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे। तब आर्यो ने कहा कि वह शास्त्रार्थ आर्यो और जैनियों का है। यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावें।

इस पर मिहिरचन्द्र चिढ़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं, किन्तु दोनों को पतित समझता हूं। परन्तु यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार **"संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्"** वैदिक धर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षो से आचरण करने वा उनका धान्य खाने से मैं भी पतित हो गया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरो को पतित कहते ? एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता। चोर–चोर मौसेरे भाई होते हैं। इससे मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की भी ओर नहीं, दोनों को पतित समझता हूं, परन्तु रुपये की ओर हूं, क्योंकि रुपया पतित नहीं है, उसी से प्रयोजन है। अब आर्यो ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है, उसको ध्यान देकर प्रश्नों के अक्षरों से मिलाइये –

जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्यो का दूसरा पत्र –

'ऋपदं न प्रयुञ्जीत' इति शब्दशास्त्रनियमात्। अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं, सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात्, प्रथम-प्रश्न इति लेखोऽपभाषणम्। यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्प्रवात्प्रमाणविषयकः पश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्सायसमहेत्वाभासः। ऋस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात्। अतश्च तद्वविषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेत्यवे सिद्धे व्यर्थ एव। तद्भेदाश्च यथाशास्त्रंद्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा, प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।

हस्ताक्षर –
"भीमसेनशर्मणः"

हस्ताक्षर –
"देवदत्तशर्मणः"

भाषानुवाद –

व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिसमें विभक्ति नहीं, ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करें। पद उसको कहते हैं जिसके अन्त में सुप् और तिङ् हो। इस कारण **"प्रथमप्रश्न"** यह शब्द व्याकरण के विरुद्ध होने से **"प्रथमग्रासे भक्षिकापातः"** के तुल्य लिखा गया है। क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे? इस पर पण्डित मिहिरचन्द्र लिखते हैं –**"एक विसर्गमात्र की अशुद्धि है"**, क्या व्याकरण में विसर्गमात्र की अशुद्धि कम होती है? कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परिच्छा करेंगे। विद्यार्थी ने कहा–महाराज! मेरी परीक्षा तो आप करेंगे ही, पर आपकी तो परीक्षा **"परिच्छा"** शब्द से पहले ही हो गई। वही वृत्तान्त पण्डित मिहिरचन्द्र जी का हुआ, कि जिनको विसर्ग, व्यवहार,विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इनमें कौन वकार लिखना चाहिए। इससे इनकी भी परीक्षा हो गई और सबको भी ज्ञात हो जावेगा। क्या उसी पाडित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते है? अस्तु!

विशेष –

यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थो को प्रमेयत्व है, तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थो में **"प्रमाण"** नहीं समझा जावेगा? जब जगत के सब पदार्थो में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेयरूप में आ गया, तो उसके भी प्रमेय हो जाने से प्रमाण रहा ही नहीं, फिर उसका प्रश्न करना कभी ठीक नही हैं। जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उसको निर्णय किया चाहते हो तो उसके निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहोगे, सब साध्य पक्ष में आ जाने से प्रमेय हो जाएगा क्योंकि तुम सर्वसाधारण पदार्थो का प्रमेय कह चुके हो। तो तुम्हारा प्रमाणविषयक प्रश्न भी सब पदार्थो के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है। इससे तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नही रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थो में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आ गया।

यदि कहो कि हमको अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं, तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुमने प्रमाण–निश्चित समझ लिया, फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बनता। यदि तुमको प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते। अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता है, वह सब प्रमाणपूर्वक है। जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है, इससे क्षुधा की निवृति होकर सुख होगा, इसलिए भोजन करें। यदि सन्देह हो कि यह भोजन हमारे योग्य (अन्न) है वा नहीं, तो भोजन करना भी न बने। मनुष्य जिसको नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है, उसको ग्रहण करता, और जिसको दुःख का हेतु जानता है, उससे सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है, तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाणपूर्वक होने से तुमने प्रमाण को जान लिया, फिर प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता, तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक्–पृथक् शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाणफल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है। उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है।

आर्यो के द्वितीय पत्र के उत्तर में जैनियों का तीसरा पत्र –

जगद्वत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात् प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः, कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयंरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्षाक्रान्तत्वेन दूषणगणवाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसा

धारणप्रमेयत्वे सिद्वे व्यर्थ एव। एतदप्ययुक्तंकुतः यदि ग्रस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नीचेत्समायातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः ग्रतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्ठाः ग्रपि च प्रमाणविषयो नोक्तः किं तर्हि अस्ति या नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात्।

हस्ताक्षर –
"छेदालालजैनधर्मिणः"

हस्ताक्षर –
"पन्नालालजैनमतानुयायिनः"

भाषानुवाद –

आपने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आ गया, इससे प्रमेय हुआ तो प्रमाणविषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ। यह आपका लिखना बिना विचारे है, क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषय रूप है, प्रमाण रूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं, अन्यथा लक्षण को भी लक्षयत्व होने से अनेक दूषण आ जाएंगे, और यह भी आपका कहना अयुक्त है कि प्रमाणपूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण विषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ हैं क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हो तो अङ्गीकार करो, जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया, इससे प्रमाणविषय हमारा प्रश्न सार्थक है। और उसके भेद शास्त्र के अनुसार दो–दो, तीन–तीन,चार चार वा आठ आठ है, यह लेख भी विशेषरहित संदेहरूप है, क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद है, और किस प्रकार से कहे हैं, और प्रमाणविषयक नहीं कहा, वह है या नहीं स्पष्ट कहो, और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा, सो इस आपके कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ। और उसका प्रामाण्य स्वतः परतः होता है, इस आपकी उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नांई स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती।

नोट –

जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां है, जैसे–१– हेत्वाभासरिति। २– विषयंरूपत्वात्। ३– लक्षाक्रान्तत्वेन। ४– सार्थिकः। ५– उद्दिष्ठाः। ६–नैकान्तकः। ७– भवंतोऽप्यंगीकुर्वतु। इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धियां हैं। यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उससे पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती, सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई है। इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इनके पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं, जिनसे जैन पंडितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी।

जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में आर्यो का तृतीय पत्र –

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा। यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम्। यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्व भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः।

हस्ताक्षर –
"भीमसेनशर्मणः"

हस्ताक्षर –
"देवदत्तशर्मणः"

भाषानुवाद –

सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है वा अप्रमाणपूर्वक ? अर्थात् सोच समझ के मनुष्य कार्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान ? यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं, तो आपका प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाणपूर्वक हुआ, अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना, तो तुमको प्रमाण का बोध हो गया, अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके, तो प्रमाण में सन्देह न होने से तुम्हारा प्रमाण विषय में प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि बिना प्रमाण के व्यवहार होते हैं, तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथम पत्र में लिखे जिन जैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचार पक्ष में लाने योग्य मानते हो, तो जिन पद और उसके वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य हो गया, किन्तु सिद्ध नहीं रहा।

इससे यह आया कि तुमको अपने जैनमत पर विश्वास नहीं, यदि विश्वास होता तो उसको प्रामाणिक मानते। जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में संदेह न होने से प्रश्न क्यों करते ? जब तुमको अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है ? इसलिए तुम्हारे मत में सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा, क्योंकि प्रमाण वही कहाता है, कि जिससे विषय का निश्चय हो, और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करे, वह प्रमेय कहाता है, सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का रहना भी दुस्तर है।

नोट –

यह पहिले दिन तारीख १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। सब अपने – अपने घर को चले गए। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कल कब शास्त्रार्थ होगा ? उसका समय पहिले से नियत होना चाहिए। परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिकर न थी। और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोताजनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था, इससे जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो। पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था, क्योंकि जैनियों के प्रतिपक्षी आठों पहर कटिबद्ध हो रहे थे। इस कारण आर्य्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को तारीख १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा और तारीख १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर तारीख १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था, उसका उत्तर जैनियों को देना था, और जैनियों के तृतीय पत्र का उत्तर आर्यों को देना था। आर्यों का पत्र जैनी ले गए थे और जैनियों का पत्र आर्य ले गए थे और अपने – अपने घर विचारपूर्वक उत्तर लिखकर लाए। जैनियों को उत्तर लिखने के लिए घर पर अन्य मतावलम्बी पण्डित लोगों की सहायता मिल गई, जिससे अच्छे प्रकार लिखा जा सका।
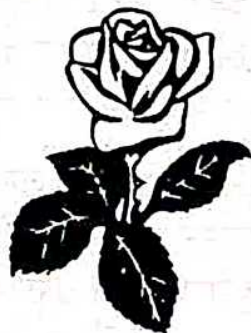
वैदिक पुस्तकालय

द्वितीय दिन शनिवार तारीख १७ मार्च

आर्य्यो के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र –

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तं। नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वममाप्राणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात्। प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमसक्यं। येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात्। नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः। यूयं जानीथ नवेति पृच्छते। अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्त्वेन नायोग्यत्वं। अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरङ्गीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यद्यस्मदुक्तपदार्थानाम्मेययत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वादभवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं। अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः। अन्ततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इति लेखकृद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृष्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम्।

हस्ताक्षर – हस्ताक्षर –

"छेदालालजैनधर्मिणः" "पन्नालालजैनधर्मिणः"

भाषानुवाद –

आपने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक हैं या अप्रमाणपूर्वक ? यह आपका कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही होते हैं या अप्रमाणपूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाणपूर्वक कोई अप्रमाणपूर्वक होते हैं तो। और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाणपूर्वकता है, वह प्रमाण क्या, इससे हमारा प्रश्न सार्थक है और हमको तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है। पूछते इसलिए हैं कि आप भी उसको जानते हैं या नहीं ? हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों का सम्मत इससे अयोग्य नहीं है। हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आपकी इच्छा है, वे जैसे प्रमेय हैं, उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते है। परन्तु जो प्रमेय है, वह साध्य अवश्य होता है, यह नहीं कह सकते क्योंकि व्याप्ति का अभाव है। इसी लेख से आपने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थो को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उसका अर्थ भी साध्य हुआ, इससे तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं, यह आपका कहना भी निर्बल है और प्रमेय किस प्रमाण के आधीन है ? इससे हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आपने भी प्रमाण के बिना प्रमेय का अभाव होता है,यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण को माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् – पृथक स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं, यह हमने जान लिया।

नोट –

यह पत्र लिखकर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सबकी सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं। पीछे आर्यो की ओर से पण्डित देवदत्त शास्त्री ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के संबंध में कहा। इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े

होकर कहा, उस पर भीमसेन शर्मा ने कहा, जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिए समय दिया गया, इस पर तो जैनी प्रसन्न थे, पर जब आर्य पण्डित बोल चुके तब फिर भी पीछे बोलना चाहें। तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलोगे, उतनी ही बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलेंगे अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उनके उत्तर देकर जैनमत की पोल खोलना प्रारम्भ किया (जिसको प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल कर अपने मत की गोल–माल व पोल–पाल को दबाते थे कि हमारे मत पर विचार न चलने पावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी । इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न होकर भाषा में बोलने के लिए टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं, फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूल (मट्टी पलीद) होगी। इसलिए भाषा में बोलकर समय पूरा करें, परन्तु आर्य्यों की इसमें भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किए पीछे जैनमत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई।

पहले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देखकर शास्त्रार्थ के स्वीकारकर्त्ता जैनपक्षी सेठ फूलचन्दजी को अनेक जैनियों ने जा–जाकर धमकाया और कहा तुमने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया ? हमारा मत जैसा है हम लोग वैसा मानते हैं। इस प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्दजी को लज्जित किया। इससे सेठ फूलचन्दजी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़े रहे और दूसरे ही दिन से सभा में नहीं आए। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इससे प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यो ने अपना चौथा पत्र सुनाया :–

आर्यो का चौथा पत्र जैनियों के तृतीय पत्र के उत्तर में –

।। ओ३म्।।

तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्च तदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरङ्गीक्रियते ? यदि विषयरूपत्वमूरीक्रियते तन्न, युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते। यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं, तस्योपरि, विचारः सर्वस्मात् पूर्व कर्त्तु युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकप्रमृमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्व प्रमाणं सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते-यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

हस्ताक्षर –
"भीमसेनशर्मणः"

हस्ताक्षर –
"देवदत्तस्य"

भाषानुवाद –

तीसरे पत्र में नौ अशुद्धि निश्चित हुई हैं, सो जैनियों के तीसरे पत्र के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धि में व्याकरण का बोध न होने से है, यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीयपत्र में जो विषय है, उसका उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिससे विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जायेगा तो उसको प्रमेय कहेंगे, प्रमाण नहीं कह सकते। फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिए, यह कथन नहीं बन सकता क्योंकि जो स्वयं प्रकाशस्वरूप हो और अन्य पदार्थ उसके प्रकाश से देखे जावें, वह प्रमाण कहाता है। जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिए द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही प्रमाण वही है जिसको सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं, किन्तु वह स्वयंसिद्ध है। कहीं–कहीं किसी प्रमाण का निश्चय करना पड़ता है, तब उसको प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नही कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे कितने नेत्र हैं, कैसे हैं, मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है, तब वह यह नहीं विचारता कि जिस कानून से मैं न्याय करूंगा, उसी को पहिले निश्चय कर लूं कि वह कानून ठीक है वा नहीं किन्तु कानून के अनुसार न्याय करने लगता है। ऐसे ही मत विषय पर विचार होना चाहिए। प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इसलिए इस पर बार–बार लिखना पिसे को पीसना है। तथापि यह कह सकते हैं कि–यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिन जैनादि पदार्थों को आपने विषयरूप माना वा विषयिरूप माना है ? इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो ? यदि कहो कि जिन जैनादिकों को विषयिरूप प्रमाण मानते हैं, तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं, इससे पूर्वापर वदतोव्याघात हो जायेगा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया। इससे तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण–निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है, इससे कोई दोष नहीं आता।

अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाणविषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया। यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानो की सेवा करो और पढ़ो, तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने जैन मत को ग्रहण किया तो उसको कुछ अच्छा समझ लिया होगा, इसलिये हमको जो तुम्हारे जैनमत में शंका है, उन प्रश्नों का उत्तर दीजिए। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आपके प्रमाणविषयक उत्तर बराबर देते आ रहे हैं। ऐसे कहां तक टालोगे ? हमारे किये प्रश्न पर सबसे पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्रमाणपत्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हमको सुख मिले और दुःखों से छुटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहेंगे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक–ठीक समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोज़न है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का कल्याणकारी कौन मत है ? यही हमारा प्रश्न है। इसका उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया। जैनमत पर जब परीक्षा चलेगी कि जैनमत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाणयुक्त है, इत्यादि विचार होने में जैनमत की समीक्षा प्रमाण से होगी, तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध हो जायेगा। इसलिए प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिए। उस जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिए कि यदि जिन पदार्थों से कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्यवाला है, तो वही सनातन सर्वनियन्ता

ईश्वर सिद्ध हो जायेगा। ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वमेव कट जायेगा। यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा, तो उस आधुनिक जिनक अनित्यवादि गुणों का आरम्भ है। क्यों कि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है, वह अपनी उत्पति से पहिले हो गए समाचारों को नहीं जान सकता, ऐसा हो तो तब पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे, सो असम्भव है। इसलिए किसी समयविशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता। फिर ऐसे अल्पज्ञ जिनकी उपासना कदापि कल्याणकारिणी नहीं हो सकती। इसलिये यह जैन सम्प्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता।

नोट –

इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यो ने अपना पत्र सुनाकर जैनियों को दिया, और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुनाकर आर्यो को दिया तथा कुछ भाषा में अपने – अपने पक्ष की ओर से दोनों पक्षों के पण्डितों ने कहा। पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानने वाले थे, उन्होंने तारीख १७ को सन्ध्या से बार–बार सन्देश भेजकर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल तारीख १८ को किस समय से शास्त्रार्थ होगा ? और आर्यो की ओर से पण्डित ठाकुरप्रसाद शास्त्री जी आगरे से आ गए थे, इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पण्डित ठाकुरप्रसादजी आर्यो की ओर से बोलें। और विशेषकर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फ़ीरोजाबाद की इच्छा थी कि पण्डित ठाकुरप्रसादजी बोलें तो ठीक हो।

अगले दिन तारीख १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ। सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे। प्रथम पण्डित ठाकुरप्रसादजी शास्त्री को नियत करने का विचार चला। इस पर जैनियों ने बहुत वादविवाद चलाया। उनकी इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें, वा आर्य्य लोग यह कह देवेंगे कि पण्डित ठाकुरप्रसादजी को न बोलने देओगे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे, तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावें।

सो आर्यसमाजी उनको कब छोड़ते थे ? अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने के पश्चात् २ बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।
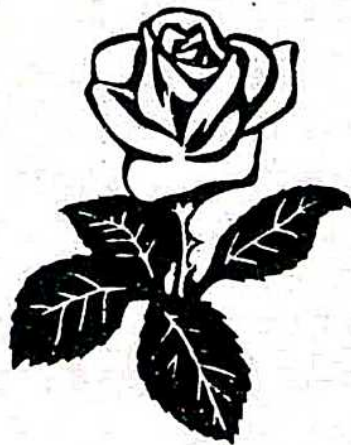
तृतीय दिन रविवार, तारीख १८ मार्च

आर्यो के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवा पत्र –

यच्च पूर्वपत्रे भवद्भिरुट्टङ्कितं न लिखितप्रश्नामुत्तरन्तु जातं भूयपिष्टपेषणवदब्रूम इति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानाँ कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चैत्यशिरश्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति। तदपि चित्रं खपुष्पमितिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परत इत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन। यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिवालभापितं त्र्याम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादिनां विषयविषयित्ववरणनात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति यत्र २ साध्यस्तत्र २ विषयो नेति व्याप्तेरभावात्। किञ्च जिनमतं सप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतं प्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः दृढं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूव कथनीयः

हस्ताक्षर –
"पन्नालालजैनधर्मिणः"

हस्ताक्षर –
"छेदालालजैनधर्मिणः"

भाषानुवाद –

जो पहिले पत्र में आपने कहा कि आपके लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके, फिर पिष्टपेषण के समान कहैं, सो आपका कहना ठीक नहीं। प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा। तुला के बिना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस बिना शिर के वचन को कहनेवाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ। यह भी अत्यन्त आश्चर्य है, क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है, कहते कि आपने यह नही कहा किस पदार्थ कि अपेक्षा से स्वतः और किसकी अपेक्षा से परतः, इस युक्ति के बिना इस आपके कथन को अतिसाहसपूर्वक समझते हैं। बहुत विडम्बना से क्या है। और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं, तो जिनजैनादि पदार्थो को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप, जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं क्योंकि आपके कहे पदार्थो को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थो के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया, यह निग्रहस्थान की प्राप्ति है, यह आपका कहना भी बालक अर्थात् अज्ञानी का सा ही है, क्योंकि **"पूछे आम बताये अमरूद"**, इसके समान प्रमाणनिरूपण समय में जिनजैनादि का विषय विषयित्व वर्णन करते हो। और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न हो सके, क्योंकि जहां जहां साध्य वहां–वहां विषय नहीं, यह व्याप्ति नहीं। और हमको तो जैनमत प्रमाणसिद्ध है, परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है ? इस आपके विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है, जिससे आपको जिनमत की दृष्टिता करावें। और नित्य और अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है, इससे तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो।

आर्य्यों का पांचवा पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में –

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः। श्रीमद्भि, सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वममाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम्। एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमिति सिषाधयिषितम्। व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना। अत्रायं प्रश्नः- व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्युक्तमिति वाक्यघटितायुक्तत्वरूपसा यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसा ध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते ? दृश्यते च सर्वेषान्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वेनायुक्तोयं हेतुः। निरवच्छिन्नमूलधूमसत्ववह्नेरवश्यं भावनियमात्। किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकाशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्त उपेक्ष्यो भवतां लेखः। अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः। विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत्प्रमाणं किमित वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशय इति रात्रिन्दिवयोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात्। अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते, नायं नियमः। प्रमाणानि च शास्त्राज्ञानवतां प्रमाणत्वेन ज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रतिबन्धकानि भवन्तीति सम्मतम्। प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे। भवद्भिरपि कति प्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं, ततश्च सिद्धमेतत् यद्वादिनोः सभायां मतप्रावल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते। अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं भुत्सु।

हस्ताक्षर –
"भीमसेनशर्मणः"

हस्ताक्षर –
"देवदत्तशर्मणः"

भाषानुवाद –

आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक या अप्रमाणपूर्वक होते हैं, इसमें अयुक्त साध्य हैं, और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है। इसमें यह प्रश्न है कि व्यवहारवैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है। क्या मनुष्य अयुक्तत्त्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार में नहीं प्रवृत होता ? सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं। वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहारवैलक्षण्यरूप हेतु है, इससे हेतु है अयुक्त है। जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्निके अवश्य होने का नियम है। और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आपका लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है। वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावेंगे। और विरोध यह है कि जिससे व्यवहारों को प्रमाणपूर्वकत्व है, वह प्रमाण क्या, इससे प्रश्न सार्थक है। इसमें **"वह प्रमाण क्या"** इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हमको प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं, सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्त विरुद्ध है। और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के बिना किये ही प्रवृत हों। और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाणरूप से जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाणरूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते, यह सम्मत है। और प्रमाणनिर्णय के बिना किये भी विद्वान और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत होते है। तुमने भी कितने प्रमाण और उनके क्या लक्षण यह निर्णय किए बिना ही पत्र लिखा,। इससे यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है। जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है, तो सभा में आकर उस विषयक प्रश्न करो, विद्वानों में इतना बहुत है।

नोट –

यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैनमत पर कुछ विशेष कहा गया। तब पं. छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजीकृत सत्यार्थप्रकाश को लेकर कोई–कोई दोष दिखाए और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है। **"सर्वदर्शनसंग्रह"** के पुस्तक में कुछ दिखाया कि यह जैनमत नहीं है, इत्यादि कहा। उसका यथोचित उत्तर दिया गया। जो जो वार्त्ता बिना लिखी हुई है, उन सबको यथावत् कोई नहीं कह सकता, इसलिए सबका लिखना उचित नहीं है।

यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उसके सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे। और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है, इसलिए विशेष बढ़ाना ठीक नहीं।

इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो, परन्तु आर्य लोग कब मानते थे ? इस प्रकार १८ तारीख को ४ बजने में ५ मिनट शेष रहे, उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पंडितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे, उसको सुनकर जैनी बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया। इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहन जी और श्रीमान् राय सोहनलाल जी ने कहा कि अभी समय बाकी है, हल्ला न करो। श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेषकर राय सोहनलाल जी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यान होने के लिए सभा से निवेदन किया।

इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठकर चल दिए। इससे शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इनकी योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई। सभा में कोलाहल मच जाने से वहां व्याख्यान न हुआ। तात्पर्य यह था कि इस दिन इनकी पोल अच्छे प्रकार खोली गई, कुछ शेष रही थी, यदि बैठे रहते तो सभी इनकी पोपलीला प्रकट हो जाती आर्य लोग भी अपने – अपने घर चले गये।

सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् रायसाहब सोहनलालजी के स्थान पर तारीख १८ को संध्या के ७ बजे पण्डित ठाकुरप्रसादजी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा। तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिए गए, नियत समय पर व्याख्यान हुआ। नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई। पण्डित जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैनमत की अच्छी प्रकार समीक्षा की। सभा की समाप्ति में पण्डित सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्यो की प्रशंसा निम्न कविताई में पढी–

कवित्त

ईश अवराधक, शुभसत्यता प्रकाशक, अवगुणादि नाशक, सुशासक विज्ञान के।
देशगति सुधारैं, वेदसम्मत प्रचारैं, वाक्य उचित उचारैं, नहिं ग्राहक धनदान के।।
विद्यानुरागी, असत्य मत त्यागी, ऐसे बड़भागी, हित चिन्तक जहान के।
"सीताराम" पुलकित ह्वै, पुनि २ धन्यवाद देत, कहांलगि गाऊं गुण, आर्य्यमहान् के।।

आपका शुभचिन्तक –
"सीताराम चतुर्वेदी"
(मैनपुरी)

वैदिक पुस्तकालय

नोट –

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि तारीख १६ को कब से शास्त्रार्थ होगा ? इसलिए एक पत्र सेठ फूलचन्दजी के नाम भेजा जो निम्न प्रकार था।

।। ओ३म् ।।

सेठ फूलचन्दजी योग्य ---- !

आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिए कि कल शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा ? प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है, इससे अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिए।

रात्रि ८ बजे, प्र० चैत्रशुदी ६ रवौ
१८–३–सन् १८८८ ई०

हस्ताक्षर –
"गङ्गाराम"
मन्त्री,
आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

नोट –

इस पत्र का उत्तर सेठजी ने कुछ नहीं दिया। और अनेक लोगों से जैनियों की अन्तरंग चर्चा सुनी गई कि अब जैनी लोग शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते।

तब तारीख १६ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास भेजा गया कि –

।। ओ३म् ।।

श्रीयुत लाला मञ्जूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्दजी जैनधर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आपका शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ हो जावे, इसमें क्षणभर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये। क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े–बड़े कार्य को छोड़कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिए आये हैं। यदि आप कहें कि हमारे मेलें में हानि होती है और समय थोड़ा है, तो हमको पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करेंगे ? यदि आपको किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिए। यदि आप आज दस बजे से शास्त्रार्थ न करेंगे तो आपका पराजय समझा जावेगा। हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। इस पत्र का उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

दिन सोमवार, तारीख १६–३–सन्१८८८ ई०

आपका कृपाकांक्षी–
"गंगाराम वर्मा" मन्त्री,
आर्यसमाज, फ़ीरोज़ाबाद

नोट –

इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया। तारीख १६ से पत्र लेना भी बन्द कर दिया। तब तारीख १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिखकर भेजा गया, सो भी नहीं लिया। पीछे समाज के दो चार सज्जन लोग उस पत्र को उनके पास ले गए तब भी सेठ जी ने वह पत्र न लिया।

तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिखा दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते। सो यह भी नहीं लिखा। तब आर्य लोगो ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैनमत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठजी के समीप ले जाइए। वे लोग ले गए, तब भी पत्र नहीं लिया, परन्तु आर्य लोगों ने उनको साक्षी कर लिया। वह आर्य्यो का भेजा हुआ छठा पत्र यह था कि :–

जैनियों के पांचवे पत्र के उत्तर में आर्य्यो का छठा पत्र –

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः। अधुना प्रतिभाति चैतद्यद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते। अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते। प्रत्यक्षानुमानोपमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्या चतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्। वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानं चेति प्रमाणद्वयम्। साङ्ख्ययोगयोश्च सिद्धान्ते प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणनीति प्रमाणत्रयम्। पूर्वमीमांसक मतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थपत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते। उत्तरमीमांसकारस्तु व्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्यु ररीकुर्वन्ति। लक्षणानि च प्रत्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम्। यथा च प्रात्यक्षप्रमायाःकरणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिधेपेलिमम्। अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमगतज्ञानकरणमैतिह्यम्। अर्थादा पत्तिरर्थापत्तिः यत्राभिधीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः सम्भवो नामाविनाभावितोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादनयस्य सत्ताग्रहणम्। अभावविरोध्यभूतं भूतस्येति। प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेपु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया। तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः श्लिकुलेख इत्यलमतिपल्लवितेन।

हस्ताक्षर –
"भीमसेनशर्मणः"

हस्ताक्षर –
"देवदत्तशर्मणः"

भाषानुवाद –

आपके पहिले पत्र में प्रमाण के स्वरूप,भेद और विषय का प्रश्न था, इससे स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया। अब जान पड़ता है कि आप उनके लक्षणज्ञान से सर्वथा शून्य हैं, इसलिए वे प्रमाणस्वरूपादि प्रकारान्तर से तुमको बोध होने के लिए दिखाए जाते है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं। वैशैषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान दो प्रमाण माने हैं सांख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम तीन प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमांसा के चार न्याय वाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव आठ प्रमाण माने हैं। उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण हैं। प्रमाणों के लक्षण प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं, इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं। यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणसहित आध घड़ी में उत्तर दीजिए। आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में **"तुलामन्तरेण"** इत्यादि लेख हैं वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है। इसलिए उपेक्षणीय है। इति शम्।।

नोट –

यह पत्र भी न लिया और जैनियों की ओर से प्रबन्धकर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना बन्द कर दिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते, किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्ताओं ने शास्त्रार्थ होना बन्द कर दिया।

इस प्रकार का एक पत्र जैनप्रवन्धकर्ताओं ने वनाकर सभापति के हस्ताक्षर करा लिए, पर आर्यप्रवन्धकर्त्ताओं के पास लाये तो इन्होंने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैन लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहे तो जैनों और आर्य्यों की ओर से दस–दस आदमी एक स्थान में दस–दस हाथ की दूरी पर वैठे रहें, वीच में पुलिस वैठी रहे, कोई किसी से वोले नहीं। वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उसका उत्तर अपनी–अपनी विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले रईस के प्रति देवें। इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं, कि जिससे उपद्रव कदापि न होवे। परन्तु जैनों ने किसी की एक न सुनी और शास्त्रार्थ करने से सर्वथा पीछे हट गए।

इसके पश्चात् आर्य्य लोगों ने तारीख २० दिन मंगलवार को एक विज्ञापन शहर में दिया कि –

।। ओ३म् ।।

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से हमारे जैन भाईयों के शास्त्रार्थ न करने के कारण हमारे विद्वान पुरुष स्वस्थान को आज पधारेंगे। इससे हम फिर भी एक घण्टे का अवकाश जैनमतावलम्वियों को देते हैं कि शंकानिवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आकर करें। विद्वानों के चले जाने के वाद उनका शास्त्रार्थ करने के लिए कहना उचित एवं मान्य न होगा।

प्र. चैत्र शु. ८ भौम दिन,
२०-३-८८ ई.

हस्ताक्षर –
"गंगाराम वर्मा"
मंत्री,
आर्य्यसमाज, फ़ीरोज़ावाद

नोट –

इसके पश्चात् सब लोग अपने – अपने नगरों को पधारे, जो दूर–दराज वाहर से आए हुए सज्जन थे। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

अट्ठाईसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "काशी" (उत्तर–प्रदेश)

दिनांक : सन् १८७६ ई० (लगभग) "स्वामी दयानन्द जी महाराज के काशी में चतुर्थ बार आने के समय"

विषय : विभिन्न वैदिक सिद्धान्तों पर (प्रश्नोत्तर)

प्रश्नकर्त्ता : श्री माधवराव जोशी (नेपाल निवासी) (अमर शहीद श्री शुक्रराज जी शास्त्री के पिताजी)

उत्तरदाता : महर्षि दयानन्द जी महाराज

उपस्थित : जनरल डम्बर जंग बहादुर

नोट –

यह लुप्त सामग्री **"पूज्य अमर स्वामी जी महाराज"** द्वारा उनके पुस्कालय से प्राप्त हुई।

" सम्पादक "

महर्षि दयानन्द जी से भेंट

नेपाल राज्य में—ललित पत्तन **"पाटन"** नामक एक नगर है जिसको पाटन—कहा जाता है, इस नगर में एक समृद्ध और प्रतिष्ठित जोशी परिवार रहता था – उसमें **"श्री माधवराव जोशी"** – एक योग्य व्यक्ति थे, नेपाल राज्य में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी राज्य परिवार में भी उनका अच्छा सम्मान था।

जोशी ने सुना कि एक अद्‌भुत सन्यासी जिसका नाम **"दयानन्द"** है भारत में—सनातन धर्म का प्रबल खण्डन करता है वह मूर्तिपूजा—अवतारवाद और मृतकश्राद्ध आदि—सनातन धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध—व्याख्यानों द्वारा प्रचार करना तथा इन मन्तव्यों के मानने वालों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारता है।

स्वामी दयानन्द जी उन दिनों काशी में आये हुए थे जोशी जी पता लगाते—लगाते उनके पास काशी पहुंच गए—संन्यासी और विद्वान् का सम्मान ही करना चाहिये इस भावना से वह—ऋषि दयानन्द के चरणों में शिव भक्त हाथ जोड़ प्रणाम करके उनके समीप बैठ गए तथा जिज्ञासा के साथ उन्होंने ऋषि से कुछ प्रश्न किए और ऋषि ने बड़ी साधुता द्वारा उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। आप भी पढ़िये—

"अमर स्वामी सरस्वती"

महर्षि दयानन्द जी से प्रश्नोत्तर

पण्डित माधवराव जोशी –

जातिभेद है वा नहीं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पृथक् जाति है यही जातिभेद है।

पण्डित माधवराव जोशी –

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियों का शास्त्रों तथा लोक व्यवहार में जो भेद पाया जाता है क्या वह जाति नहीं और क्या यह जाति भेद नहीं है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

यह जाति भेद नहीं, वर्ण भेद है सो यह भेद गुण कर्म, और स्वभाव से है जन्म से नही।

पण्डित माधवराव जोशी –

ईश्वर, साकार (मूर्तिमान) है या अमूर्त्त—निराकार है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

परमेश्वर—निराकार—सच्चिदानन्द स्वरूप है।

पण्डित माधवराव जोशी –

परमेश्वर को प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

यथावत् योगसाधन करने से परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

पण्डित माधवराव जोशी –

वह योग साधन क्या है, और वह किस प्रकार किया जाता है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

यम, नियम्, आसन, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के ८ (आठ) अंग हैं। भले प्रकार–सिद्धि के लिए तीन घड़ी (लगभग एक घण्टा) रात्रि शेष रहते–उठ–शौचादि से निवृत हो आसन लगा, प्राणायाम करके–ओ३म् या ओ३म् सहित गायत्री का अर्थ सहित जाप करते जाओ। यदि तुम्हारा संस्कार अच्छा होगा तो ईश्वर प्राप्ति अवश्य होगी।

पण्डित माधवराव जोशी –

सांख्य शास्त्र में ईश्वर असिद्ध है ऐसा क्यों कहा है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

सांख्य दर्शन के कर्त्ता–महर्षि कपिलमुनि अनीश्वरवादी नहीं थे। **"ईश्वरासिद्धे"** का अभिप्राय यह है कि **"ईश्वर जगत् का उपादान कारण सिद्ध नहीं हो सकता है"** अर्थात् जगत् का निमित्त कारण है। भ्रष्ट बुद्धि वाले लोगों के भाष्य पढ़ने से यह भ्रम हो जाता है कि इस सूत्र में ईश्वर को **"असिद्ध"** बताया है।

पण्डित माधवराव जोशी –

क्या छओं दर्शन परस्पर विरुद्ध हैं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

नहीं ! छओं दर्शनों में अविरोध है। छः दर्शनों में सृष्टि के छः कारणों का विशेषता से वर्णन है (१) न्याय में परमाणुओं का, (२) मीमांसा में कर्म का, (३) सांख्य में तत्वों का, (४) योग में बुद्धि (ज्ञान) का और (५) वेदान्त में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म का विशेष वर्णन है, दर्शनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है।

पण्डित माधवराव जोशी –

यज्ञोपवीत पहनना चाहिये या नहीं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज –

जो सदाचारी, विद्वान, वेदाभ्यासी, धर्मात्मा लोग हैं उनको यज्ञोपवीत अवश्य पहनना चाहिए। मूर्ख–दुराचारी को नहीं पहनना चाहिए।

नोट –

इतने प्रश्नोत्तरों के पश्चात् ऋषि ने गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। सन्ध्या करने की प्रतिज्ञा स्वामी जी ने कराई। सत्यार्थप्रकाश ऋषि के पास उस समय नहीं था, इस कारण उससे उस समय श्री जोशी जी वंचित रहे।

उसके पश्चात् काशी से नेपाल पहुंचने पर माधवराव जी जोशी–जनरल डम्बर जंग बहादुर जी के साथ–नेपाल राज्य में ही **"पोरवरा"** नामक नगर में गए। वहां के नैपाली प्रसिद्ध वैद्य–चिनिया वैद्य ने माधव राव जी को उस ही समय अपने घर पर बुलाया। उन वैद्य जी के घर पर रद्दी में **"सत्यार्थ प्रकाश"** ऋषि दयानन्द का अमर ग्रन्थ पड़ा हुआ दिखाई दिया। जोशी जी ने उनकी रद्दी में से उसे उठा लिया और वैद्य जी से कहा कि **"मैं इसको पढ़ूंगा और आपको इसके बदले में आयुर्वेद की कोई उत्तम पुस्तक भेज**

दूंगा।" वैद्य जी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जोशी जी ने सत्यार्थ प्रकाश को बार–बार पढ़ा और उससे बहुत ही प्रभावित हुए पौराणिक पन्थ समूल उनके हृदय व मस्तिष्क से निकल गया।

सत्यार्थप्रकाश में बताये गये वैदिक सिद्धान्तों का जीवन भर प्रचार करने का उन्होंने प्रण कर लिया। मूर्तिपूजा, मांस भक्षण, मद्यपान आदि बुराइयों के विरुद्ध माधवराव जी ने प्रबल प्रचार प्रारम्भ कर दिया इससे पौराणिक पोंगा पन्थियों ने उनका घोर विरोध किया उस समय नेपाल राज्य का सब कारोबार राणाओं के हाथ में था, उनमें से चन्द्रशमशेर राणा नेपाल के प्रधान मन्त्री थे वह महाराजा और ३ सरकार कहलाते थे।

नामधारी पण्डितों ने माधवराव जोशी के विरूद्व उनको बुरी तरह भड़काया और उनको राजद्रोही भी बताया, नास्तिक धर्मविरोधी, धर्मभ्रष्ट आदि न जाने क्या–क्या बताया।

राजपुरोहित ने शास्त्रार्थ का बहाना करके माधवराव जी को चन्द्रशमशेर जी राणा के दरबार में बुलाया माधवराव जी के हितैषियों द्वारा माधवराव जी को बताया गया कि वहां शास्त्रार्थ आदि कुछ भी नहीं होगा, केवल आपको पिटवाया जायेगा यह सुनकर भी वह दरबार में चले ही गये उन्होंने सोच लिया कि–पिटवाने का काम तो वह लोग यहां भी कर सकते हैं जो भी हो वह हो, ओखली में सिर दिया है तो मूसलों की चोटें तो पड़नी ही हैं। माधवराव जी के साथ पंजाब निवासी मास्टर गुरुदयाल जी बी. ए. भी गए वह भी आर्य समाजी थे। दरबार में दो–चार ऊट–पटांग से प्रश्न करके उत्तर देने पर माधवराव जी को मारना–पीटना आरम्भ कर दिया, खूब पीटा उनका शरीर लहु–लुहान हो गया, मास्टर जी को भी बुरी तरह पीटा गया। बुरी तरह क्षतविक्षत होने पर माधवराव जी ने कहा कि –

"यह राज दरबार है यहाँ तो सबकी रक्षा ही होनी चाहिए, यहां ही इस प्रकार मारा जाता है तो बाहर क्या कुछ न होगा ? हम भी तो इस राज्य की ही प्रजा हैं आप तो फांसी भी दे सकते हैं फिर दरबार में आपके सामने हमको पीटा जाये तो फिर हमारी कहाँ रक्षा होगी ?

ऐसा सुनकर राणा जी ने मार–पीट तो बन्द करवा दी पर माधवराव जी को जेल में भेज दिया और मास्टर गुरुदयाल जी बी. ए. को राज्य से बाहर निकालने के लिए पुलिस के हवाले कर दिया।

पंजाबी मास्टर गुरुदयाल जी को पुलिस राज्य से बाहर निकालने के लिए ले गई पर उनका कुछ भी पता नहीं चला कि वह कहां गए अनुभव यह ही किया जाता है कि उनको कहीं ले जाकर समाप्त कर दिया गया एवं माधवराव जी के पैरों में मोटी–मोटी बेड़ियां डलवाकर जेल भेज दिया गया।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"

उन्नतीसवाँ शास्त्रार्थ —

स्थान : "राजदरबार" काठमाण्डू (नेपाल)

@vaidicbooks

दिनांक : सन् १६४१ ई० (लगभग)
विषय : मूर्ति पूजा उचित है या अनुचित ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री (अमर शहीद)
पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : गुरू श्री पण्डित हेमराज जी
उपस्थित व्यक्ति : श्री ३ महाराज चन्द्र शमशेर जी एवं अन्य सभी दरबारीगण

शास्त्रार्थ से पहले

शुक्रराज जी नेपाल से आकर गुरुकुल सिकन्दराबाद में ही रहते थे, जो माधवराव जोशी के पुत्र थे। माधवराव जी दार्जिलिंग चले गये। वहां आर्य समाज की स्थापना की और बहुत प्रचार कार्य किया। हमारे पूज्य गुरू जी श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर दार्जिलिंग जाते थे तब माधवराव जी जोशी के घर में भोजन करना पसन्द करते थे।

श्री शुक्रराज जी जब गुरुकुल सिकन्दराबांद में पढ़ते थे तब मैंने (अमर सिंह आर्य पथिक) ने उनको कई बार देखा, बहुत सुन्दर सुडौल और सुदृढ़ उनका शरीर था। बहुत हंसमुख प्रसन्नचित पुरुषार्थी और परिश्रमी युवक थे। मेरे साथ उनका बहुत अच्छा प्रेम था। वे बड़े ही श्रद्धावान थे।

सन् १९४० ई॰ में शुक्रराज जी ने लाहौर जाकर पंजाब यूनिवर्सिटी से शास्त्री की परीक्षा दी और उसमें अच्छे नम्बर लेकर उत्तीर्ण (पास) हुए, गुरुकुल महाविद्यालय सिकन्दराबाद से स्नातक हुए और **"शास्त्री"** के साथ–साथ गुरुकुल से **"विद्याभूषण"** की उपाधि भी मिली।

नेपाल को प्रस्थान –

स्नातक होकर नेपाल पहुंचे और महाराजा चन्द्र शमशेर ३ सरकार से भेंट की। एवं अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया।

महाराज ने कहा कि आपका यहां पण्डितों के साथ दरबार में शास्त्रार्थ होना चाहिए, जिससे पता लगे कि भारत से क्या – क्या पढ़कर आये हो ? श्री शुक्रराज शास्त्री जी ने कहा–श्री महाराज। आपने मेरे पिताजी के साथ भी शास्त्रार्थ अपने दरबार में करवाया था और उनको दरबार में ही इतनी मार पड़ी थी जो आयु भर याद रहेगी।

श्री तीन महाराज चन्द्रशमशेर जी ने कहा –

उस समय मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई थी, उसके लिए मैं अब तक पछताता हूँ। अब ऐसा नहीं होगा आप आओ आपका शास्त्रार्थ सब लोग शान्ति से सुनेंगे। शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और नियत समय में ही दरबार में अकेले ही पहुँच गए।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"

वैदिक पुस्तकालय

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री तीन महाराज चन्द्रशमशेर जी –

हां ! गुरु जी अब इन शास्त्री जी के साथ शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। आप प्रश्न कीजिए ये उनका उत्तर देगें। देखते हैं ये भारत में क्या–क्या पढ़कर आये हैं।

श्री गुरु हेमराज जी –

मूर्ति पूजा करना ठीक है कि नही ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

किसकी मूर्ति पूजा करना।

श्री गुरु हेमराज जी –

परमेश्वर की।

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

परमेश्वर निराकार रुपरहित और अमूर्त है उसकी मूर्ति किस प्रकार और कैसे बनाई जा सकती है?

श्री गुरु हेमराज जी –

राम तो मूर्तिमान परब्रह्म परमेश्वर है उनकी मूर्ति तो बन सकती है।

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि श्री राम जी ने सीता के वियोग में अत्यन्त दुःख अनुभव किया और कहा–

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी,।
मन्येद्विदितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।।

पूर्व मया नूनमभीप्तितानि,।
पापानिकर्मा ण्यिसत्कृत क्रतानि।।

तत्राय मद्या पततो विपाको,।
दुःखेन दुःखं यदहम् विषामि।।

अर्थ – मेरे समान पाप करने वाला भूमि पर कोई और है यह मैं नही मानता हूं अर्थात् मैं बड़ा पाप करने वाला अद्वितीय व्यक्ति हूँ।

कोई यह कहता कि हमने आपको कोई पाप कर्म करते नहीं देखा–तो श्री राम जी ने आगे और कहा कि, पूर्व जन्म में मैंने निश्चय ही पाप कर्म किए थे जिनका विपाक–फल अब मेरे साथ विद्यमान है कि दुःख से दुःख में मैं प्रविष्ट होता जाता हूं।

श्री राम जी अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं और अपने पिछले कर्मों का फल इस दुःख को बता रहे हैं–परन्तु **"योग दर्शन"** में पतञ्जलि जी ईश्वर का लक्षण यह बताते हैं–

''क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।''

अर्थात् क्लेश, कर्म विपाक–कर्म फल आशय पूर्व जन्म कृत कर्मो के संस्कार इनसे सर्वथा सम्पर्क रहित पुरुष विशेष–ईश्वर है। अर्थात् जिसको क्लेश होता है जो उत्तम, मध्यम निकृष्ट कर्म करता है और

जो पूर्व किए अपने शुभाशुभ कर्मों का सुख दुःख रूप फल भोगता है वह परब्रह्म कैसे हो सकता है ? विश्वामित्र ऋषि की आज्ञा पाकर श्री राम जी ने संध्या वन्दन किया देखिये –

कौशल्या सुपुत्रा राम, पूर्वा संध्यां प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल, कर्त्तव्यं दैवमान्हिकम् ।।

अर्थात् विश्वामित्र जी ने कहा– कौशल्या की अच्छी सन्तान राम ! प्रातः संध्या का समय हो गया है। हे नर केसरी ! उठो और संध्यादि नित्य कर्म करो। आगे वाल्मीकि जी कहते हैं –

तस्पषः परमोदारं, वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ, जेपतुः परमं जपम् ।।

उस ऋषि के परम उदार वचनों को सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों उत्तम नरों ने स्नानादि से निवृत्त होकर परम जप (ओ३म् और गायत्री) का जाप किया। परमेश्वर ही परमेश्वर की संध्या, उपासना कैसे और क्यों करता ? अतः स्पष्ट है कि श्री राम जी श्रेष्ठ मनुष्य थे परब्रह्म नहीं। तुलसीदास जी की रामायण (रामचरित मानस) में भी कहा गया है –

प्रात समय मुनि आयसु दीन्हा ।
तबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा ।।

विगत दिवस मुनि आयसु पाई।
सन्ध्या करन चले दोऊ भाई ।।

अतः साफ पता चलता है कि वह ईश्वर, निराकार अमूर्त है इसलिए मूर्ति पूजा असिद्ध है।

श्री गुरु हेमराज जी –

श्रीकृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म हैं उनकी मूर्ति बन सकती है ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

श्री कृष्ण जी ने स्वयं गीता में कहा है कि –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। ६१।।

अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सबके हृदय में स्थित है – – – – – – आदि – आदि।

तमेव शरणं गच्छ, सर्व भावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परांशान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम् ।। ६२।।

(गीता अध्याय १८ श्लोक ६१ व ६२)

हे अर्जुन ! उस ही की शरण को तुम सर्व भावनाओं से युक्त होकर प्राप्त करो। उसकी ही कृपा से तुम परम शान्ति और मोक्ष को प्राप्त करोगे।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।। १४।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।। १५।।

(गीता अध्याय १३ श्लोक १४ व १५)

अर्थात् वह ईश्वर सबके बाहर और सबके भीतर है। वह सबको चलाता है और स्वयं अचल है।

सूक्ष्म होने के कारण कठिनाई से जाना जाने योग्य है। वह दूर से दूर तथा निकट से निकट तक है। सारी इन्द्रियों के गुणों का उसमें प्रकाश है पर सब इन्द्रियों से रहित है।

यहाँ श्री कृष्ण जी अपने से भिन्न जानकर ईश्वर का वर्णन कर रहे हैं। इससे सिद्ध है कि वह परमेश्वर नहीं थे।

श्री गुरु हेमराज जी–

सारे संसार में शिवलिंग की पूजा होती है। शिवलिंग की स्थापना सारे संसार में की जाती है तो क्या शिवलिंग की पूजा करने वाले सब संसार के लोग मूर्ख ही हैं ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

सारे संसार में तो न शिवलिंग की स्थापना की जाती है, न सारे संसार में शिवलिंग की पूजा होती है। केवल भारत मे ही शिवलिंग है सो भी सारे भारत में नहीं है। भारत में भी कहीं है, कहीं नहीं है। भूमण्डल में ३ अरब से अधिक मनुष्य रहते हैं और भारत में लगभग ३३ करोड़, उनमें से भी केवल थोड़े से लोग शिवलिंग पूजने वाले होंगे। भारत में ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध, पौराणिकों में भी वैष्णव आदि शिवलिंग की पूजा नहीं करते हैं। क्या इन थोड़े से लोगों का नाम सारा संसार है ?

शिवलिंग की पूजा अर्थात मूत्रेन्द्रिय की पूजा वाम मार्गी मूर्खो और स्वार्थियों ने ही चलाई है। इसमें सन्देह नहीं है। इसी मूर्ति पूजा के कारण देश को भारी हानि उठानी पड़ी, करोड़ों अरबों रूपयों की मन्दिरों की सम्पति लूटी गई।

नोट –

इतने प्रश्नोत्तर होने पर महाराजा चन्द्रशमशेर राणा ने कहा कि अब बहुत देर हो गई है इसलिए शास्त्रार्थ बन्द कर दो। बस बन्द हो गया। कोई विद्वान बुद्धिमान और न्याय प्रिय महाराजा होता तो शुक्रराज जी का भारी सम्मान करता और उनकी विजय की घोषणा करता **"अन्धेर नगरी चौपट राजा।"** परन्तु महाराजा चन्द्रशमशेर ३ सरकार ने मन में सोच लिया कि इसने दयानन्दी ढ़ंग की विद्या पढ़ी है यह राज्य में रहेगा तो उथल–पुथल मचा देगा इसलिए इसको जमने नहीं देना चाहिए।

तत्पश्चात राजा साहब ने प्रकट रुप में कहा – **"अच्छा शास्त्री जी आप अच्छे विद्वान हैं अब जाइये फिर कभी आपको बुलाया जायेगा।"** इसके पश्चात् उन पर क्या बीती ? एवं अन्त में उनको फांसी पर लटकना पड़ा पूर्ण जीवनवृत जानने के लिए मेरी पुस्तक **''शुक्रराज शास्त्री का धर्म बलिदान''** जो श्री लाजपतराय जी ने **"अमरस्वामी प्रकाशन विभाग"** से ही पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया है – मंगाकर अवश्य पढ़ें।

वैदिक धर्म –

''अमर स्वामी सरस्वती''

वैदिक पुस्तकालय

दूंगा।" वैद्य जी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जोशी जी ने सत्यार्थ प्रकाश को बार–बार पढ़ा और उससे बहुत ही प्रभावित हुए पौराणिक पन्थ समूल उनके हृदय व मस्तिष्क से निकल गया।

सत्यार्थप्रकाश में बताये गये वैदिक सिद्धान्तों का जीवन भर प्रचार करने का उन्होंने प्रण कर लिया। मूर्तिपूजा, मांस भक्षण, मद्यपान आदि बुराइयों के विरुद्ध माधवराव जी ने प्रबल प्रचार प्रारम्भ कर दिया इससे पौराणिक पोंगा पन्थियों ने उनका घोर विरोध किया उस समय नेपाल राज्य का सब कारोबार राणाओं के हाथ में था, उनमें से चन्द्रशमशेर राणा नेपाल के प्रधान मन्त्री थे वह महाराजा और ३ सरकार कहलाते थे।

नामधारी पण्डितों ने माधवराव जोशी के विरूद्व उनको बुरी तरह भड़काया और उनको राजद्रोही भी बताया, नास्तिक धर्मविरोधी, धर्मभ्रष्ट आदि न जाने क्या–क्या बताया।

राजपुरोहित ने शास्त्रार्थ का बहाना करके माधवराव जी को चन्द्रशमशेर जी राणा के दरबार में बुलाया माधवराव जी के हितैषियों द्वारा माधवराव जी को बताया गया कि वहां शास्त्रार्थ आदि कुछ भी नहीं होगा, केवल आपको पिटवाया जायेगा यह सुनकर भी वह दरबार में चले ही गये उन्होंने सोच लिया कि–पिटवाने का काम तो वह लोग यहां भी कर सकते हैं जो भी हो वह हो, ओखली में सिर दिया है तो मूसलों की चोटें तो पड़नी ही हैं। माधवराव जी के साथ पंजाब निवासी मास्टर गुरुदयाल जी बी॰ ए॰ भी गए वह भी आर्य समाजी थे। दरबार में दो–चार ऊट–पटांग से प्रश्न करके उत्तर देने पर माधवराव जी को मारना–पीटना आरम्भ कर दिया, खूब पीटा उनका शरीर लहु–लुहान हो गया, मास्टर जी को भी बुरी तरह पीटा गया। बुरी तरह क्षतविक्षत होने पर माधवराव जी ने कहा कि –

"यह राज दरबार है यहाँ तो सबकी रक्षा ही होनी चाहिए, यहां ही इस प्रकार मारा जाता है तो बाहर क्या कुछ न होगा ? हम भी तो इस राज्य की ही प्रजा हैं आप तो फांसी भी दे सकते हैं फिर दरबार में आपके सामने हमको पीटा जाये तो फिर हमारी कहाँ रक्षा होगी ?

ऐसा सुनकर राणा जी ने मार–पीट तो बन्द करवा दी पर माधवराव जी को जेल में भेज दिया और मास्टर गुरुदयाल जी बी॰ ए॰ को राज्य से बाहर निकालने के लिए पुलिस के हवाले कर दिया।

पंजाबी मास्टर गुरुदयाल जी को पुलिस राज्य से बाहर निकालने के लिए ले गई पर उनका कुछ भी पता नहीं चला कि वह कहां गए अनुभव यह ही किया जाता है कि उनको कहीं ले जाकर समाप्त कर दिया गया एवं माधवराव जी के पैरों में मोटी–मोटी बेड़ियां डलवाकर जेल भेज दिया गया।

वैदिक धर्म का –
"अमर स्वामी सरस्वती"

उन्नतीसवाँ शास्त्रार्थ —

स्थान : "राजदरबार" काठमाण्डू (नेपाल)

दिनांक : सन् १९४१ ई० (लगभग)
विषय : मूर्ति पूजा उचित है या अनुचित ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री (अमर शहीद)
पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : गुरू श्री पण्डित हेमराज जी
उपस्थित व्यक्ति : श्री ३ महाराज चन्द्र शमशेर जी एवं अन्य सभी दरबारीगण

शास्त्रार्थ से पहले

शुक्रराज जी नेपाल से आकर गुरुकुल सिकन्दराबाद में ही रहते थे, जो माधवराव जोशी के पुत्र थे। माधवराव जी दार्जिलिंग चले गये। वहां आर्य समाज की स्थापना की और बहुत प्रचार कार्य किया। हमारे पूज्य गुरू जी श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर दार्जिलिंग जाते थे तब माधवराव जी जोशी के घर में भोजन करना पसन्द करते थे।

श्री शुक्रराज जी जब गुरुकुल सिकन्दराबाद में पढ़ते थे तब मैंने (अमर सिंह आर्य पथिक) ने उनको कई बार देखा, बहुत सुन्दर सुडौल और सुदृढ़ उनका शरीर था। बहुत हंसमुख प्रसन्नचित पुरुषार्थी और परिश्रमी युवक थे। मेरे साथ उनका बहुत अच्छा प्रेम था। वे बड़े ही श्रद्धावान थे।

सन् १९४० ई॰ में शुक्रराज जी ने लाहौर जाकर पंजाब यूनिवर्सिटी से शास्त्री की परीक्षा दी और उसमें अच्छे नम्बर लेकर उत्तीर्ण (पास) हुए, गुरुकुल महाविद्यालय सिकन्दराबाद से स्नातक हुए और **"शास्त्री"** के साथ–साथ गुरुकुल से **"विद्याभूषण"** की उपाधि भी मिली।

नेपाल को प्रस्थान –

स्नातक होकर नेपाल पहुंचे और महाराजा चन्द्र शमशेर ३ सरकार से भेंट की। एवं अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया।

महाराज ने कहा कि आपका यहां पण्डितों के साथ दरबार में शास्त्रार्थ होना चाहिए, जिससे पता लगे कि भारत से क्या – क्या पढ़कर आये हो ? श्री शुक्रराज शास्त्री जी ने कहा–श्री महाराज। आपने मेरे पिताजी के साथ भी शास्त्रार्थ अपने दरबार में करवाया था और उनको दरबार में ही इतनी मार पड़ी थी जो आयु भर याद रहेगी।

श्री तीन महाराज चन्द्रशमशेर जी ने कहा –

उस समय मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई थी, उसके लिए मैं अब तक पछताता हूँ। अब ऐसा नहीं होगा आप आओ आपका शास्त्रार्थ सब लोग शान्ति से सुनेंगे। शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और नियत समय में ही दरबार में अकेले ही पहुँच गए।

वैदिक धर्म का –
"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री तीन महाराज चन्द्रशमशेर जी –

हां ! गुरु जी अब इन शास्त्री जी के साथ शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। आप प्रश्न कीजिए ये उनका उत्तर देगें। देखते हैं ये भारत में क्या–क्या पढ़कर आये हैं।

श्री गुरु हेमराज जी –

मूर्ति पूजा करना ठीक है कि नही ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

किसकी मूर्ति पूजा करना।

श्री गुरु हेमराज जी –

परमेश्वर की।

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

परमेश्वर निराकार रुपरहित और अमूर्त है उसकी मूर्ति किस प्रकार और कैसे बनाई जा सकती है?

श्री गुरु हेमराज जी –

राम तो मूर्तिमान परब्रह्म परमेश्वर है उनकी मूर्ति तो बन सकती है।

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि श्री राम जी ने सीता के वियोग में अत्यन्त दुःख अनुभव किया और कहा–

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी,।
मन्येद्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।।

पूर्व मया नूनमभीप्सितानि,।
पापानिकर्मा ण्यिसत्कृत क्रतानि।।

तत्राय मद्या पततो विपाको,।
दुःखेन दुःखं यदहम् विषामि।।

अर्थ – मेरे समान पाप करने वाला भूमि पर कोई और है यह मैं नही मानता हूं अर्थात् मैं बड़ा पाप करने वाला अद्वितीय व्यक्ति हूँ।

कोई यह कहता कि हमने आपको कोई पाप कर्म करते नहीं देखा–तो श्री राम जी ने आगे और कहा कि, पूर्व जन्म में मैंने निश्चय ही पाप कर्म किए थे जिनका विपाक–फल अब मेरे साथ विद्यमान है कि दुःख से दुःख में मैं प्रविष्ट होता जाता हूं।

श्री राम जी अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं और अपने पिछले कर्मो का फल इस दुःख को बता रहे हैं–परन्तु **"योग दर्शन"** में पतञ्जलि जी ईश्वर का लक्षण यह बताते हैं–

''क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।''

अर्थात् क्लेश, कर्म विपाक–कर्म फल आशय पूर्व जन्म कृत कर्मो के संस्कार इनसे सर्वथा सम्पर्क रहित पुरुष विशेष–ईश्वर है। अर्थात् जिसको क्लेश होता है जो उत्तम, मध्यम निकृष्ट कर्म करता है और

जो पूर्व किए अपने शुभाशुभ कर्मों का सुख दुःख रूप फल भोगता है वह परब्रह्म कैसे हो सकता है ? विश्वामित्र ऋषि की आज्ञा पाकर श्री राम जी ने संध्या वन्दन किया देखिये –

कौशल्या सुपुत्रा राम, पूर्वा संध्यां प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल, कर्त्तव्यं दैवमान्हिकम् ।।

अर्थात् विश्वामित्र जी ने कहा– कौशल्या की अच्छी सन्तान राम ! प्रातः संध्या का समय हो गया है। हे नर केसरी ! उठो और संध्यादि नित्य कर्म करो। आगे वाल्मीकि जी कहते हैं –

तस्यषः परमोदारं, वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ, जेपतुः परमं जपम् ।।

उस ऋषि के परम उदार वचनों को सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों उत्तम नरों ने स्नानादि से निवृत्त होकर परम जप (ओ३म् और गायत्री) का जाप किया। परमेश्वर ही परमेश्वर की संध्या, उपासना कैसे और क्यों करता ? अतः स्पष्ट है कि श्री राम जी श्रेष्ठ मनुष्य थे परब्रह्म नहीं। तुलसीदास जी की रामायण (रामचरित मानस) में भी कहा गया है –

प्रात समय मुनि आयसु दीन्हा ।
तबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा ।।

विगत दिवस मुनि आयसु पाई।
सन्ध्या करन चले दोऊ भाई ।।

अतः साफ पता चलता है कि वह ईश्वर, निराकार अमूर्त है इसलिए मूर्ति पूजा असिद्ध है।

श्री गुरु हेमराज जी –

श्रीकृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म हैं उनकी मूर्ति बन सकती है ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

श्री कृष्ण जी ने स्वयं गीता में कहा है कि –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। ६१।।

अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सबके हृदय में स्थित है – – – – – – आदि – आदि।

तमेव शरणं गच्छ, सर्व भावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परांशान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम् ।। ६२।।

(गीता अध्याय १८ श्लोक ६१ व ६२)

हे अर्जुन ! उस ही की शरण को तुम सर्व भावनाओं से युक्त होकर प्राप्त करो। उसकी ही कृपा से तुम परम शान्ति और मोक्ष को प्राप्त करोगे।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।। १४।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।। १५।।

(गीता अध्याय १३ श्लोक १४ व १५)

अर्थात् वह ईश्वर सबके बाहर और सबके भीतर है। वह सबको चलाता है और स्वयं अचल है।

सूक्ष्म होने के कारण कठिनाई से जाना जाने योग्य है। वह दूर से दूर तथा निकट से निकट तक है। सारी इन्द्रियों के गुणों का उसमें प्रकाश है पर सब इन्द्रियों से रहित है।

यहाँ श्री कृष्ण जी अपने से भिन्न जानकर ईश्वर का वर्णन कर रहे हैं। इससे सिद्ध है कि वह परमेश्वर नहीं थे।

श्री गुरु हेमराज जी–

सारे संसार में शिवलिंग की पूजा होती है। शिवलिंग की स्थापना सारे संसार में की जाती है तो क्या शिवलिंग की पूजा करने वाले सब संसार के लोग मूर्ख ही हैं ?

पण्डित शुक्रराज जी शास्त्री –

सारे संसार में तो न शिवलिंग की स्थापना की जाती है, न सारे संसार में शिवलिंग की पूजा होती है। केवल भारत मे ही शिवलिंग है सो भी सारे भारत में नहीं है। भारत में भी कहीं है, कहीं नहीं है। भूमण्डल में ३ अरब से अधिक मनुष्य रहते हैं और भारत में लगभग ३३ करोड़, उनमें से भी केवल थोड़े से लोग शिवलिंग पूजने वाले होंगे। भारत में ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध, पौराणिकों में भी वैष्णव आदि शिवलिंग की पूजा नहीं करते हैं। क्या इन थोड़े से लोगों का नाम सारा संसार है ?

शिवलिंग की पूजा अर्थात मूत्रेन्द्रिय की पूजा वाम मार्गी मूर्खों और स्वार्थियों ने ही चलाई है। इसमें सन्देह नहीं है। इसी मूर्ति पूजा के कारण देश को भारी हानि उठानी पड़ी, करोड़ों अरबों रूपयों की मन्दिरों की सम्पति लूटी गई।

नोट –

इतने प्रश्नोत्तर होने पर महाराजा चन्द्रशमशेर राणा ने कहा कि अब बहुत देर हो गई है इसलिए शास्त्रार्थ बन्द कर दो। बस बन्द हो गया। कोई विद्वान बुद्धिमान और न्याय प्रिय महाराजा होता तो शुक्रराज जी का भारी सम्मान करता और उनकी विजय की घोषणा करता **"अन्धेर नगरी चौपट राजा।"** परन्तु महाराजा चन्द्रशमशेर ३ सरकार ने मन में सोच लिया कि इसने दयानन्दी ढ़ंग की विद्या पढ़ी है यह राज्य में रहेगा तो उथल–पुथल मचा देगा इसलिए इसको जमने नहीं देना चाहिए।

तत्पश्चात राजा साहब ने प्रकट रुप में कहा – **"अच्छा शास्त्री जी आप अच्छे विद्वान हैं अब जाइये फिर कभी आपको बुलाया जायेगा।"** इसके पश्चात् उन पर क्या बीती ? एवं अन्त में उनको फांसी पर लटकना पड़ा पूर्ण जीवनवृत जानने के लिए मेरी पुस्तक **"शुक्रराज शास्त्री का धर्म बलिदान"** जो श्री लाजपतराय जी ने **"अमरस्वामी प्रकाशन विभाग"** से ही पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया है – मंगाकर अवश्य पढ़ें।

वैदिक धर्म –
"अमर स्वामी सरस्वती"

वैदिक पुस्तकालय

तीसवाँ शास्त्रार्थ —

स्थान : "किराणा" (मुजफ्फरनगर) उत्तर प्रदेश

विषय	: मन्त्र–ब्राह्मण दोनों वेद हैं वा केवल मन्त्र भाग ही ?
दिनांक	: १६ दिसम्बर सन् १८६३ ई०
पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	: श्री पण्डित गोकुलचन्द जी,
पौराणिकों की ओर से सहायक	: श्री पण्डित गोकुलानन्द जी,
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	: श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी,
शास्त्रार्थ के अन्त में निर्णयार्थ कुछ मुवज़िज़ व्यक्तियों की राय	: श्री सादिक़ हुसैन वकील, श्री मुहम्मद हुसैन बक्स : श्री अहमद हसन, श्री मौहम्मद जफ़रयाब अली आदि
आर्यसमाज के मन्त्री	: रामकृष्ण मन्त्री, आर्य समाज – **"बनत"** (जि० मुजफ्फरनगर) उत्तर प्रदेश
पौराणिक पक्ष के मन्त्री	: श्री पण्डित किशोरी लाल जी
अन्य उपस्थित उपदेशक व सम्मानित व्यक्ति	: श्रीमान पण्डित गोविन्द सहाय शर्मा (उपदेशक–मेरठसभा) व पौराणिक पक्ष की ओर से श्री पण्डित हरवंशलाल जी एवं अनेकों अन्य दोनों पक्षों के रईस एवं कस्बे किराणा व बाहर से पधारे अनेकों मुवजिज व्यक्ति।

आभार –

मैं श्री जगदीशचन्द जी वेदालंकार जो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के **"पुस्तकालयाध्यक्ष"** हैं उनका हृदय से आभार मानता हूं जिनकी मदद से इस शास्त्रार्थ की मूल कापी प्राप्त हुई।

निवेदक –

" लाजपत राय अग्रवाल "

प्रकाशकीय

प्रिय ! पाठक गण !! इस शास्त्रार्थ को हुए अब लगभग ६२ वर्ष व्यतीत हो गए। जिसके पढ़ने पर पता लगता है कि ''**शास्त्रार्थ**'' हमारे वैदिक धर्म के प्रचार में कितने सहायक थे ? एवं पुराने उपदेशकों की लगन एवं व्यवहार का पता भी चलता है। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने सच ही कहा है कि–

पुराने आर्य नेताओं ने अपने घरों को उजाड़कर आर्यसमाज को बनाया था।
नये आर्यसमाजी नेता आर्यसमाज को उजाड़कर अपने घरों को बना रहे हैं[१]।।

पहले विद्वानों ने कितने परिश्रम व मुसीबतों का सामना कर करके आर्य समाजों की स्थापना की थी, वैदिक धर्म का प्रचार किया था। परन्तु आज उसका बिल्कुल विपरीत हो रहा है, आर्य समाजों में ताले लगे पड़े हैं। जगह–जगह पर लड़ाई झगड़ों का वातावरण बना हुआ है। जो वर्तमान अधिकारियों के अपने निजि स्वार्थों को साबित करता है। अधिकारी गण भी वैसे ही हो गए हैं एवं उपदेशक एवं साहित्य प्रचारक भी पक्के व्यापारी बनकर रह गए हैं। तो ऐसी स्थिति में समाज का प्रचार कैसे हो ?

सभी कुछ उल्टा हो रहा है, सभा संस्थाओं में भी वही स्वार्थ घुसा होने के कारण प्रचार बिल्कुल चौपट हो गया है। परमेश्वर करे इन्हें सद्बुद्धि मिले, एवं कम से कम अपने पूर्वजों की इस तपस्या की तरफ ध्यान दें। तो इस स्वार्थ परती से दूर रहकर शान्तिपूर्वक समाज का प्रचार करें। एक बार फिर वही प्रचार की धूम मच जावे।

क्या ज़माना था कि अगर कहीं कोर्ट–कचहरी में पता चल जावे था कि ये आर्य समाजी है तो उसे बिना गवाही के छोड़ दिया जाता था, आज उसका बिल्कुल विपरीत है। आखिर क्यों ? मेरे आर्य भाई अपने गिरहबान में झांककर जिस दिन देखेंगे और इसका उत्तर जानना चाहेंगे तो स्वयं को ही दोषी पायेंगे।

इस भाग में मैंने और भी पुराने से पुराने शास्त्रार्थ संग्रहीत करने का यत्न किया है। तो भी जो शेष सामग्री रह जावेगी उसे तीसरे भाग में दे दिया जावेगा !

मेरा दृढ़ संकल्प है कि "**किसी भी तरह की शास्त्रार्थ सामग्री हो उसे प्रकाशित कराकर सुरक्षित करा सकूं। जबकि मेरा मुख्य कार्य तो ''सिविल व अन्य विशेष प्रकार के कार्यों के निर्माण की ठेकेदारी का है।''** अब वही मेरी आय का साधन है, पुस्तक प्रकाशन तो केवल मेरा शौक रह गया है। जिसके प्रेरणा स्त्रोत केवल ''**पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज**'' ही हैं। जिनका मैं जन्म–जन्मान्तरों तक ऋणी रंहूगा।

किमधिकम् लेखेन् !!

निवेदक –

''**लाजपतराय अग्रवाल**"

---

१ आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति पर पूज्य अमरस्वामी जी महाराज द्वारा इसी तरह के अनेकों "**अमर सूत्रों**" को लिखा गया था, जिनको निर्णय के तट पर ग्रन्थ के "**प्रथम भाग**" में उनके जीवन चरित्र के साथ प्रकाशित किया गया है। जिन किन्हीं सज्जन को उन सूत्रों की विशेष जानकारी प्राप्त करनी हो तो उक्त जगह पर देख सकते हैं।

"**सम्पादक**"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि मैं **पण्डित तुलसीराम स्वामी** जो प्रायः कस्बा "**किराणा**" में उपदेशार्थ जाया करता था, और उपदेश वैदिक धर्म का किया करता था, एक बार जब कि मैं बाजार में उपदेश कर रहा था, तो पौराणिक पण्डितों ने एक पत्री (चिट्ठी) मेरे पास भेजी, यथा–

पत्री – आपकी इच्छा कुछ "**मूर्ति विषयक शास्त्रार्थ**'' पै हो तब आण[1] (आ) कर अपने मन का संदेह कहो हम वेद से मूर्ति पूजन निश्चय करे देते हैं, आपको शुभं भूयात्।

हस्ताक्षर –

"पण्डित हरवंशलाल" **"पण्डित किशोरीलाल"**

मैंने उत्तर दिया–

''प्रणाम करता हूं, जो आपने आश्मार्चन में वेद से निर्णय करा है, वह पत्र द्वारा भेज दीजिए खण्डन के सबूत हम पत्र द्वारा ही भेज देंगे।''

इस पर किसी ने कुछ लेख न दिया परन्तु जुबानी यह निश्चय रहा कि १५ दिसम्बर सन् १८६३ ई॰ को उभय पक्ष वाले अपने–अपने पन्डितों को बुलाएंगे, तब शास्त्रार्थ होगा। जिस पर आर्य समाज ''**बनत**'' (जिला मुजफ्फरनगर) की ओर से मैंने निम्नलिखित नियमों का पत्र रजिस्ट्री कराकर पण्डितों के पास भेज दिया गया –

(उर्दू से नकल तर्जुमा)

।। ओ३म्।।

विदित हो कि कुछ आर्य और कुछ हिन्दुओं के दरम्यान यह निश्चय हुआ कि प्रथम (प्रतिमा पूजन) द्वितीय (पितृ कर्म) का शास्त्रार्थ केवल वेद संहिताओं के प्रमाणों से किया जाए और सबको लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से सिद्ध कर दिया जाये कि (प्रतिमा पूजन) और मरे हुओं को (पितर) मान कर उसका पितृ कर्म करना जैसा कि अविद्वानों के कारण आजकल प्रचलित हैं, वेद संहिताओं से सिद्ध होता है वा नहीं ? इस प्रयोजन से इस शास्त्रार्थ को नियमानुसार करने के लिए और सबको इस शास्त्रार्थ से सत्य के फल प्राप्त होने के अभिप्राय से यह नियम स्थिर हुए हैं, इस शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करने के लिए एक या दो महाशय ''**प्रधान**'' नियत होकर उनको वे अधिकार दिए जायेंगे। और फिर नियमानुकूल शास्त्रार्थ होगा।

१. उज़रत शास्त्रार्थ लिखता और लिखवाता जाये।

२. ऐसे पूर्वोत्तर (उपरोक्त) पंक्तियों के प्रत्येक लेख पर दोनों के हस्ताक्षर करा लेवें।

३. प्रत्येक पक्ष के कथन को वक्ता के द्वारा सब प्रकार समझ जो योग्य वार्तालाप होगा वक्ता की भाषा में लिखा जाएगा।

४. आवश्यक व्यवस्था प्राप्त कर लें जिससे सम्पूर्ण तात्पर्य पूरा–पूरा प्रकट हो जाए।

शास्त्रार्थ की नकल (मूल प्रति) से ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं पर उर्दू व अरबी वाक्यों को, कोष्ठक में देकर हिन्दी शब्दों में पाठकों की सुविधा के लिए उदधृत कर दिया गया है।

– सम्पादक

५. उक्त नियमानुसार पूर्व पक्ष वालों से पूछकर वह आवश्यक बातें जो उचित प्रतीत हों लिख लेवें।

६. ऐसी समस्त बातें जो सभा के प्रबन्ध में हानिकारक प्रतीत हों उनके रोकने के लिए प्रधान स्वयं इच्छानुसार उत्तम प्रबन्ध कर लेवें।

७. प्रत्येक प्रश्नोत्तर पत्र की तीन प्रति (कापी) कराकर एक–एक कापी दोनों पक्ष वालों को दी जाएगी और एक प्रधान के पास रहेगी, प्रधान कापियों पर उभय पक्ष के हस्ताक्षर करा लेवेंगे। और अपनी कापी पर भी उभय पक्ष के हस्ताक्षर करा लेवें, एवं अपने भी हस्ताक्षर तीनों प्रतियों पर कर देंगे।

८. समस्त लेख और समस्त शास्त्रार्थ मातृभाषा (आम फहम) में होगा परन्तु प्रमाण उसी भाषा में दिए जायेंगे जिसमें कि (जिस भाषा में) वे उपस्थित होंगे।

९. वेद संहिताओं से भिन्न पुस्तकों का प्रमाण अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए हिन्दू पण्डितों को अधिकार न होगा कि दें–क्योंकि आर्यगण वेदातिरिक्त किसी पुस्तक को नहीं मानते परन्तु अपने किए हुए अर्थों के साक्षी में केवल–शतपथ,ऐतरेय, साम, गोपथ, निघण्टु और निरुक्त का ही प्रमाण प्रस्तुत करेंगे, अन्यथा अर्थ अशुद्ध माना जावेगा। और आर्य पण्डितों को अपनी प्रतिज्ञा सिद्ध करने के लिए वेद संहिताओं से लेकर समस्त ग्रन्थों के प्रमाण देने का अधिकार होगा, क्योंकि हिन्दू पण्डित वेद तथा अन्य सब ग्रन्थों को मानते हैं।

१०. उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त युक्ति से प्रतिज्ञा के सिद्ध करने के लिए प्रत्येक पक्ष को अधिकार होगा, परन्तु प्रधान जिन–जिन युक्तियों को योग्य समझेगा लिखवाया करेगा।

११. शास्त्रार्थ इस प्रकार आरम्भ होगा कि प्रथम प्रश्नकर्त्ता अपने पक्ष अर्थात् प्रतिज्ञा के सिद्ध करने में जितने प्रमाण रखता होगा सम्पूर्ण कह कर लिख देगा तदनन्तर उत्तर पक्षी, सम्पूर्ण प्रमाण जो पूर्व पक्षी के खंडन में जानता हो उसी प्रकार कहकर वह भी लिख देगा।

१२. प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नान्त जहां तक इच्छा हो उत्तर पक्षी का उत्तर होगा। जब तक वह पक्ष समाप्त न हो, शास्त्रार्थ होता रहेगा, परन्तु प्रधान को पक्षपात देखकर वा शास्त्रार्थ के तात्पर्य का बोध होकर शास्त्रार्थ बन्द कराने का अधिकार होगा।

१३. शास्त्रार्थ होने के पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रार्थ छापा जायेगा, इस शास्त्रार्थ के लिए सबको उचित होगा कि अपनी–अपनी सम्मत्यनुसार तात्पर्य निकाल लेवें।

१४. प्रत्येक पक्ष की ओर से पांच से अधिक सम्भाषणकर्ता न होंगे और उनके नाम शास्त्रार्थ करने से पूर्व प्रधान जी को लिखा दिए जायेंगे और प्रधान प्रतिपक्षी को एक–दूसरे के नाम बता देंगे।

१५. उन पांच महाशयों के अतिरिक्त जो शास्त्रार्थ के लिए नियत किए जावेंगे उनके अलावा अन्य पुरुषों को बोलने का अधिकार न होगा, और एक समय में एक से अधिक महाशय न बोल सकेंगे, अन्य सहायक पुरुषों को सम्मत्ति देने मात्र का अधिकार होगा। सौ एक प्रश्नोत्तर में दस मिनट पर्यन्त तीन बार तक अर्थात् एक–एक सम्मति देने में दस–दस मिनट का समय सम्मति देने के लिए दिया जाएगा अधिक नहीं।

१६. जब किसी पक्ष वाले को अपना सहायक बदलने की आवश्यकता हो तो नवीन सहायक को पूर्व महाशय के प्रथम कथन का भार अपने ऊपर लेना होगा अर्थात् वह पूर्व सहायक के प्रश्नोत्तर का भी उत्तरदाता होगा, प्रत्येक पक्ष अपने पक्ष वालों में से निर्वाचित महाशय को सहायक नियत करेगा, अन्य को नहीं और सहायक नियत करने का प्रत्येक पक्ष को अधिकार होगा।

१७. यदि दोनों की ओर से कोई किसी प्रकार का अपशब्द यानी खिलाफ़ये तहज़ीब का प्रयोग करेगा या किसी प्रकार कोई पक्ष–विपक्ष के विरुद्ध करे तो सभापति स्वयं या किसी पक्ष की प्रार्थना पर प्रथम रोक दे, दूसरी बार ऐसा होने पर इच्छानुसार प्रबन्ध करे।

१८. जब तक शास्त्रार्थ उक्त दोनों विषयों पर होता रहेगा, अर्थात् आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त अन्य किसी विषय पर शास्त्रार्थ न होगा, और न करने का अधिकार, किसी पक्ष को कदाचित भी होगा शास्त्रार्थ के पश्चात् सभापति की आज्ञानुसार अन्य विषय पर होगा, यदि आज्ञा न होगी तो नहीं होगा।

१६. प्रत्येक पक्ष को अपने शब्द – प्रमाण – युक्ति से और युक्ति को शब्द प्रमाण से मिला देना होगा, अन्यथा जिन पक्ष की पुष्टि उक्त नियम के प्रतिकूल होगी उसी समय प्रधान महाशय उसके कथन को निष्फल समझकर उसको रोक देंगे।

२०. जो–जो लोग शास्त्रार्थ करेंगे उन – उन को प्रथम स्पष्ट तथा लेख द्वारा यह प्रकट कर देना होगा कि हम अमुक–अमुक देवता की प्रतिमा बनाकर पूजना अपना धर्म समझते हैं और यह भी सिद्ध करना होगा कि पीतल, चाँदी, सोना, काष्ठ और पाषाणादि की मूर्ति बनाकर पूजने में यह फल है, और न पूजने में यह दोष है। और उनके निर्माण की रीति परिमाण सहित और तोल सहित इत्यादि–। और यह सब बातें वेद संहिताओं से सिद्ध करनी होंगी, यह नियम, धर्म सभा के पण्डितों के लिए है, और जो निराकार, अद्वितीय व्यापक ब्रह्म ही की उपासना धर्म समझते हैं उनको यह सिद्ध करना होगा कि प्रथम, ईश्वर के गुण, द्वितीय इस विषय की ईश्वर की प्रतिमा नहीं, तृतीय यह कि वेद में प्रतिमा पूजन का निषेध है, और जिसका पक्ष वेद से विवरण पूर्वक स्पष्ट सिद्ध न होगा, वही पक्ष पराजित समझा जायेगा, और उभयपक्ष का यह कर्त्तव्य होगा, कि अपनी प्रतिज्ञा को अत्युत्तम रीति से सिद्ध करेगा। और अपर पक्ष को निषिद्ध करेगा अर्थात् दोनों पक्ष वाले अपने–अपने पक्ष के दोषों को हटावें और प्रतिवादी के पक्ष में प्रश्न करके दोष खड़े करते जायें, इसी को शास्त्रार्थ कहते हैं और माना जायेगा, अतएव अन्य सब विषय इसी रीति पर स्पष्टतया सिद्ध करना होगा, परन्तु प्रथम मूर्ति पूजन पर शास्त्रार्थ आरम्भ होगा, क्योंकि यह विषय अन्य सब विषयों में मुख्य तथा प्रसिद्ध है अन्य सब विषय इसकी शाखा हैं और इसी पर हिन्दू धर्म निर्भर है।

२१. और शास्त्रार्थ कर्त्ता, मन्त्री, प्रधान, समाज तथा सभा के अतिरिक्त अन्य जिस किसी को सभापति सभा में आने की आज्ञा टिकट द्वारा वा अन्य किसी प्रकार से देगा वह ही सभा में आ सकेगा अन्य नहीं, क्योंकि उस सभा में शान्ति कायम रखने का भार उसके ऊपर है।

(नकल-"रामकृष्ण", मन्त्री आर्य्य समाज-बनत)

(नकल उर्दू से तर्जुमा)

वक्तव्य –

बारह दिसम्बर को उक्त नियम और निम्नलिखित पत्र भी आर्यो ने भेजा।

।। ओ३म्।।

आज दफ़तर आर्य्य समाज – **"बनत,"**
१२ दिसम्बर सन् १८६३ ई०।

श्रीमान्,

श्रीयुत् ! पण्डित हरवंशलाल साहब वगैरह नमस्ते।

आपकी सेवा में निवेदन है कि जो चिट्ठी आपकी हमारे पास बिनावर शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजन के बारे में आई हैं, बरतबक् उसके हम आर्य्यगण बमूजिब कवायद मुबाहसे मुजव्विज़े मुरसिले खिदमत वाला करने के साथ निहायतखुशी के तैयार हैं, या सोलह दिसम्बर तक और निज़तारीख मज़कूरे को बज़रिये इश्तहारात मुश्तहर करा चुके हैं कि जिसकी आपको बखूबी इत्तला है। अब आपको मज़ीद चिट्ठी के इत्तला देता हूं कि मैं तारीख मज़कूरे को जरुर वा जरुरमये पण्डित श्री भीमसेन शर्मा व श्री पण्डित स्वामी तुलसीराम शर्मा हाज़िर हूंगा आप मन्जूरी क़वायद मुबाहिसा बनीज शास्त्रार्थ व वापिसी डाक इत्तला फ़रमाइयेगा वरना यह साफ मान लिया जावेगा कि वेद संहिताओं में मूर्ति पूजन नहीं है, और शाया (प्रकाशित) कराया जावेगा, लेकिन यह बात मंजूर हो सकती है कि अगर बिल फ़ैल आपके पास सामग्री शास्त्रार्थ के मुतल्लिक मौजूद न हो तो और कोई तारीख बजाये इसके मुकर्रिर करके व वापिसी डाक मुझको इत्तला दो और यह भी बाज़े हो कि मुक़ाम सभा का भी आप ही मुकर्रिर फ़रमाइयेगा और जिम्मेवार आप ही होगे लेकिन दर–सूरत न करने शास्त्रार्थ के हार आपकी मानी जावेगी जब तक जवाब चिट्ठी का न आयेगा पण्डित लोग वतन मुकीम रहेंगे दर सूरत न होने शास्त्रार्थ के आपको सब खर्चा पंण्डितान का देना होगा क्योंकि अब्बल चिट्ठी तुम्हारी भेजी हुई है और दफ्तर आर्य समाज में मौजूद है।

''रामकृष्ण''
मन्त्री-आर्यसमाज़ - "बनत"
(मुजफ्फरनगर)

वक्तव्य –

इस पत्र का उत्तर तारीख १५ तक नहीं आया न नियमों का स्वीकारास्वीकार भेजा परन्तु–श्रीमान पण्डित तुलसीराम स्वामी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध तारीख १४ दिसम्बर को ही कस्बे (किराणा) में उपस्थित हो गये। क्योंकि उनको तारीख १५ के शास्त्रार्थ की सूचना थी। और श्रीमान पण्डित गौविन्द सहाय शर्मा उपदेशक आर्योपप्रतिनिधिसभा मेरठ प्रान्त भी तारीख १५ के प्रातःकाल ही (किराणा) में उपस्थित हो गए, परन्तु पौराणिक पक्ष में बाहर से जो पण्डित आने वाले थे कोई नहीं आया, हमने प्रसिद्ध कर दिया कि हमारे पण्डित नियत तिथि पर शास्त्रार्थ करने को उपस्थित हैं और पौराणिक

पक्ष का कोई पंडित तारीख १५ की सायंकाल तक भी नहीं आया अस्तु अब तारीख १५ भी व्यतीत हो गई, अतएव हम लोग वापिस (बनत को) जाते हैं। (क्योंकि इस समय किराणा में आर्य समाज मौजूद न था) और यदि दो दिन तक फिर भी पौराणिक पक्ष के पण्डित आ जायें और हमको सूचित किया जावे तो हम पुनरपि शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित होंगे, निदान आर्य पण्डित बनत वापिस चले आये, तारीख १६ की रात्रि के ६ बजे हमको उर्दू पत्र द्वारा सूचना मिली कि पण्डितगण आ गए, इसलिए शास्त्रार्थ को चलिये। इस निमन्त्रण के अनुसार हम आर्य लोग द्वितीय बार फिर किराणा में शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हुए, और तारीख १६ को हमने यह खबर उर्दू पत्र द्वारा पौराणिक पण्डितों को दी, कि हम दोबारा शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हैं, नियमो की स्वीकारी से सूचित कीजिए, इस पर रात्रि के साढ़े ६ बजे हमें उत्तर मिला कि –

श्री मित्रवर मन्त्री आर्य समाज (बनत) उपस्थित किराणा ! जय श्री कृष्ण चन्द्र की ! कृपा पत्र आपका आज पांच बजे सायंकाल पहुंचा देखकर अति हर्ष हुआ जिसमें यह वृत्तान्त लिखा था कि – हम दो बार शास्त्रार्थ करने को आये अब आप अपने नियमों को लिखकर शास्त्रार्थ करना आरम्भ कीजिए, धन्य है आपको जिनके गुरु ऐसे सत्यवक्ता थे, आप उनके शिष्य क्यों न हो[1]। अब हमारे पण्डितों को दो दिन हो चुके हैं आए हुए[2] आपके साथ अर्थ जैसे कि आपने लिखा था, अब आप कब आए कहां और किसके सामने शास्त्रार्थ करने को कहा ? ज्ञात होता है कि आपने शोकावस्था में कोई स्वप्न वा मनो राज्य देखा होगा अस्तु!! हमारे शास्त्रार्थ नियम यह हैं कि विषय–पाषाण आदि मूर्ति पूजन, इस पर प्रमाण मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद स्मृति सूत्र और युक्ति होंगे इसका प्रबन्ध ऐसा होगा कि शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में लिखकर होगा, प्रथम वादी अर्थात् आर्य समाजी मूर्तिपूजा खण्डन के प्रमाण अपने पूर्वोक्त प्रमाणों को आध घण्टा में लिखकर अपने हस्ताक्षर कर धर्मसभा पण्डित प्रतिवादी को देगा। प्रतिवादी उन प्रमाणों का खण्डन कर अपने मूर्ति पूजा मण्डन पर उसका डेढ़ गुणा काल अर्थात् पैंतालीस मिनट में अपने हस्ताक्षर कर वादी को वापिस देगा। उस पत्र का प्रत्युत्तर वादी उसके डेढ़ गुणा काल अर्थात् एक घण्टा ७५ मिनट में पूर्वोक्त रीति से लिखकर देगा, पश्चात् द्वितीय पत्र का प्रत्युत्तर वादी एक घण्टा ४१ मिनट में देगा। पूर्वोक्त रीति से हस्ताक्षर कर देगा यह दोनों शास्त्रार्थ पत्र सभा में सुना दिए जायेंगे, पश्चात यह दोनों पत्र निर्णयार्थ वहां के श्री एडिस साहब बहादुर कलैक्टर एम० ए० जिला की सेवा में या प्रोफेसर संस्कृत लाहोर कालेज की सेवा में भेजे जायेंगे। जिस पत्र को वेदादि प्रमाणों से उक्त जांचकर अपने हस्ताक्षर कर पूर्वोक्त महाशय वापस भेजेंगे। वही पक्ष विजयी समझा जावेगा। और इसका जो व्यय (खर्चा) साहेब की फीस और तुम्हारे पण्डितों का खर्चा तथा हर्जा होगा वह पराजित पक्ष को देना होगा, यदि यह भी शास्त्रार्थ न मानों तो कल १८–१२–६३ को एक बजे दिन के मुन्शी कुवँरसैन जीं कायस्थ के (घर) में आप पधार के अपने सत्यवादी स्वामी दयानन्द को तथा उनकी पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ ई० को सत्य कर दिखाओ तब हम पराजित हो जावेंगे, आप विजयी होंगे।

टिप्पणी –

(१) आपने बढ़ाया है।

(२) दो दिन कहां हुए ? १६ तारीख रात्रि के नौ बजे सूचित किया जिस पर १७ तारीख चार बजे हम उपस्थित हैं।

यदि यह दोनों सुगम शास्त्रार्थ रीति को न मानोगे अपनी गड़बड़ाध्यायी करोगे और शास्त्रार्थ न करोगे, तब हमारे पण्डितों को बुलाने आदि का खर्च और हर्ज आप लोग राजकीय नियमानुसार देने को योग्य होंगे। इसका स्वीकार या इन्कार पत्र द्वारा आप हमको कल तारीख १८–१२–सन् १८६३ ई॰ समय आठ बजे तक कृपा कर दीजियेगा।

यह पत्र हमने आज ६ बजे रात्रि को भेजा है

(नकल) हस्ताक्षर–

''पण्डित किशोरीलाल''

वक्तव्य –

निम्नलिखित उत्तर आर्यो ने दिया, यथा–

"किराणा"

१८–१२–१८६३ ई॰

।। ओ३म् ।।

श्रीयुत् पण्डित किशोरीलाल जी !

महाशय नमस्ते ! जब कि मैं सो गया था, तो आपकी चिट्ठी पण्डित तुलसीराम स्वामी जी के पास आई, प्रातःकाल पाकर उत्तर देता हूं, हमारा दो बार आना किराणा में प्रसिद्ध है, यहां के सैकड़ों मनुष्यों ने देखा कि तारीख १४ के सायं–काल को हमारे पण्डित शास्त्रार्थ करने को आये परन्तु तब यह देखा गया कि १५ तारीख की सायंकाल तक आपके पक्ष में पण्डित गोकुलानन्द आदि नहीं आए, तब (बनत) को वापस चले गए, और आपकी प्रतीक्षा करते रहे। जब १६ तारीख की रात्रि को आपने अपने पण्डितों के आने की सूचना दी तारीख १७ को हम पुनः उपस्थित हुए हैं। फिर जो आप गाजर–गुठली करते हैं इनसे आपकी इच्छा शास्त्रार्थ न करने की प्रतीत होती है, हम १२ दिसम्बर सन् १८६३ ई॰ को नियम शास्त्रार्थ रजिस्ट्री पत्र द्वारा आपको लिख चुके हैं कि वापिसी डाक नियमों को स्वीकार कर भेजिए। उन्हीं नियमों का स्वीकार हमने कल फिर मांगा था, जिस पर आप नवीन अधूरे पक्षपात पूर्ण तीन नियम लिखकर शास्त्रार्थ को टालना चाहते हैं, ऐसा कीजियेगा तो आप पर निःस्संदेह हमारी वृथा समय हानि करने का दोष स्थापित् होगा।

हम केवल ऋग् आदि संहिता चतुष्टय को मानते हैं, अर्थ पर विवाद होगा तो ब्राह्मणादि हमारे नियमों में लिखित ग्रन्थों की साक्षिता अवश्य ली जाएगी। हम तो केवल धर्म का निर्णय करने को शास्त्रार्थ करते हैं, आप रुपये की हार–जीत द्वारा द्यूत (जूआ) भी खेलना चाहते हैं, हम जुआ खेलना पसन्द नहीं करते हैं। पण्डित जी ? आप पण्डित गोकुलानन्द जी की ऐंचातानी में न आइए, शुद्ध हृदय से हमारे पूर्व प्रेषित नियमों को स्वीकार कर भेजिये–(जिससे) कि शास्त्रार्थारम्भ हो जावे, वृथा समय न खोइये, इति–

आपका प्रेमी –

उर्दू में हस्ताक्षर– ''रामकृष्ण''

तारीख १८–१२–६३ को ६ बजे प्रातः कैम्प आर्य प्रचार किराणा पत्र धर्म सभा की ओर से–

मित्रवर,

।। श्रीः ।।

मन्त्री आर्य समाज बनत ! उपस्थित किराणा, जय श्री कृष्ण चन्द्र जी की ! आपका कृपा पत्र मिला तारीख १८–१२–६३ का हमको साढ़े नौ बजे दिन के मिला, समस्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ, मित्रवर हमारे नियमों

के अर्न्तगत सब आपके नियम शास्त्रार्थ के आ गए हैं जो कृपा दृष्टि से देखियेगा। अस्तु ! आज जो आपने पूर्व नियमों का हवाला देकर संहिता मात्र को स्वीकार कर शास्त्रार्थ करना चाहते हो, वह नियम नं० ६ मे भी लिखा है, अतः आप पहले इसी पर शास्त्रार्थ कर लो, कि एक पण्डित हमारा तथा एक पण्डित आर्य समाज का बाहर जाकर हमारे नियमानुसार वेद निर्णय का शास्त्रों अर्थात् संहिता ही को मान कर शास्त्रार्थ हो सकता है कि **"मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद तथा सूत्र स्मृति बिना माने शास्त्रार्थ हो सकता है ?"** लिखकर उभय पक्ष हस्ताक्षरकर प्रथम सभा में सुनावें पश्चात् वह वेद शास्त्र मिस्टर एडिस साहेब बहादुर एम० ए० (संस्कृत) की सेवा में भेजा जावे, जो साहेब मोमूफ़ (सही) निर्णय कर दें उसी पक्ष वाले की हार जीत समझी जावेगी। और जो आपने लिखा कि हम जुआ नहीं खेलते है, तब मित्र क्या कलेक्टर साहेब हमारे नौकर हैं ? जो बिना फीस अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खोवेंगे। और बिना खर्चा–हर्जा दिए, झूठा पक्ष फिर भी और (अन्यत्र) स्थान में ऐसे ही मिथ्यावाद करने को उपस्थित होगा, अतः पहले ही–५००) रुपये आज कचहरी तहसील में जमा कराकर यह शर्त वहां लिखा दो, कि जिसको कलैक्टर साहेब वेद शास्त्रार्थ में हरा वा जिता दें वही पक्ष हारा वा जीता हुआ समझा जावेगा। जब पक्षी वह रुपया ५००) (पांच सौ) फ़ीस साहेब तथा अपने धर्म काम में लावेगा, अस्तु !

यदि ये भी न हो सके तब क्या हमारा दूसरा शास्त्रार्थ नियम हमारे लिखे पत्र में नही देखा कि, अपने स्वामी दयानन्द तथा उनके मिथ्या ग्रन्थों को जिनमें सैकड़ों मिथ्या पाखण्ड भरे हैं, जिनमें से दस ही सिद्ध कर दो तो तब ५००) रु० लेने को योग्य होंगे, जो आज पहिले ही जमा करा लिया जावेगा। बिना द्रव्य दण्ड के कौन जानेगा देशान्तर में कि कौन हारा और कौन जीता ? यदि आज भी इन पूर्वोक्त दोनों नियमों को न स्वीकार करोगे, तो अपना उन्मत्त–प्रलाप ही करोगे तब आप पराजित (हारे) हुए समझे जावोगे और हमारा हर्जा–खर्चा के देनदार होवोगे।

आज बिना इन दो नियमों के स्वीकार या इन्कार के और व्यर्थ लिखा–पढ़ी मे समय व्यतीत न करना। इसका उत्तर ठीक १२ बजे दिन तक मिले।

तारीख १८–१२–६३ हस्ताक्षर –
समय दस बजे,. ''पंडित किशोरी लाल''

।। ओ३म् ।।

किराणा
१८–१२–६३

श्रीयुत, पण्डित किशोरी लाल जी, महाशय नमस्ते !

आपका कृपा पत्र १० बजे प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन है कि यदि आप हमारे १२ तारीख के भेजे २१ नियमों को अपने नियमों के अन्तर्गत समझते हैं तो कृपा करके स्पष्टतया हमारे २१ उक्त नियम स्वीकृत करके ही भेज दीजिए–क्योंकि, आपकी सम्मति में हमारे २१ नियम आपके विरुद्ध तो हैं ही नहीं किन्तु अन्तर्गत हैं, जब आप २१ नियमों को जो (१२ तारीख को उर्दू में हमने भेजे थे) स्वीकार पूर्वक हस्ताक्षर करके वापिस कर देंगे तब हम ५००) रुपये जमा करने आदि विषय का उत्तर देंगे, क्योंकि बिना नियमों के रुपया जमा करना (न करना) नहीं बन सकता। विशेष क्या लिखूं। इति।।

कैम्प आर्य धर्म प्रचार, किराणा
समय साढ़े दस बजे–१८–१२–६३ ई० आपका प्रेमी –
" रामकृष्ण "

धर्मशास्त्रस्य एभिर्वचनैरितिहापपुराणसञ्ज्ञाब्राह्मणेभ्योऽन्येषां सिद्धा तथा च इतिहासो भारतादि पुराणं ब्रह्मवैवर्त्तादि अतएव इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समनुवृंहेत् विभेत्यल्पश्रु ताहेदो मामयं प्रहनिष्यति इति मनुवाक्ये वेदार्थस्वीकारे भारतादीनामपि प्रमाणं मन्तव्यमस्ति तथा चायमेव मनोराशयः वेदकथनेन मन्त्रब्राह्मणात्मको गृह्योऽयमेव जैमिनेर्भावः तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषे ब्राह्मणशब्द अस्यायं भावः तस्य देवस्य चोदका तेषां मन्त्र इति व्यवहारास्स मन्त्रात्मकः शेषो ब्राहणात्मक इत्यसम्। शेषमग्रे।।

उत्तर आर्य्यों की ओर से यथा –

।।ओ३म्।।

१८।१२–६३

श्रीयुत पण्डित किशोरीलाल शर्म्मन्नमस्ते,

श्रीमत्प्रेषितं पत्रमागतं तदुत्तरथता सहासं मया निवेद्यते यत् ६।१३।२० एतत्संख्याकान्नियमान्विहायाऽन्यान् स्वीकुर्वाणाः सर्वानेवास्मल्लिखितनियमान् पुनर्भन्तः (१८-यावदुक्तविषयहयात्मकः शास्त्रार्थो न समाप्तिं गमिष्यति नहि तावदपरः कश्चित्प्रस्तावः केनापि शक्ष्यते कर्त्तुम्) इत्यस्मल्लिखितसर्वनियमान्तर्भूताऽष्टादशनियमस्वीकारे सति उक्तप्रतिमार्चामृतश्राद्धविषयाभ्यां भिन्नं वेदसञ्ज्ञविचारात्मकं विषयभारभमाणाः कथं नाप्रकृतविषयारम्भात् अर्थान्तरादिनिग्रहग्रहग्रहीताः यथोक्तं न्यायदर्शने ''प्रकृदार्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम्'' इति यच्च पूर्वार्य्यभाषालिखितस्वीयपत्रे ''अस्मन्नियमान्तर्गतास्सर्वे भवन्नियमा'' इतिविन्यस्तं पूर्व श्रीमद्‌भिस्तत्र यदि सर्वेऽप्यस्मन्नियमा भवन्नियमान्तर्गताः तर्हि कथं पुनर्नवम त्रयोदश, विंशा न स्वीक्रियन्ते पूर्व स्वीकृत्यानन्तरमस्वीकारो हि प्रतिज्ञान्तररूपनिग्रहस्थाने पातयति भवतः। अत्राह गौतमः प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम्'' इदानीं विरम्यते विस्तरभिया परन्तु नास्माभिर्विषयान्तरमारभ्यते कुतो यत आहुर्गोतमाचार्य्याः निग्रहस्थानप्राप्तस्याऽनिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षण'' मिति शास्त्रपथमनुसरन्तो वयं निग्रहग्रहगृहीतान्भवत उपेक्ष्य नहि पूर्वोक्तनिग्रहस्थानं गमिष्यामः इति भवत्प्रेष्ठो रामकृष्णः

१८।१२।६६ अष्टघण्टानादसम्मये लिखितम्

पण्डित किशोरीलालकरकमलयोर्विलसतु पत्रमदः किराणास्थ धर्मसभायाम्।

{संस्कृत पत्रों का सङ्क्षिप्ताशय देशभाषा में}

पौराणिकों के पत्रों का आशय –

मित्रवर मन्त्री, आर्यसमाज विदितं हो कि आपके नियमों में ६।१३।२० नियमों को छोड़ अन्य सब स्वीकृत हैं हमने तुम्हारे नियम मान लिए तब तुम हमारे नियमों को मान लो प्रथम यह है कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद स्तुति सूत्र ये स्वतः प्रमाण होंगे, द्वितीय यह कि दयानन्द के मिथ्या ग्रन्थों के सत्यासत्य का निर्णय, हमारे यह दो नियम स्वीकार कर पाँच सौ रूपये तहसील में जमा करके पूर्वोक्त दोनों शास्त्रार्थों में से यदि एक भी होगा तो मिस्टर एडिस साहब हमारी तुम्हारी हार जीत का निश्चय कर देंगे, जो दोनों ओर से मध्यस्थ होंगे प्रथम मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद है इस पर विचार होगा। आशा है कि आठ बजे तक इसका उत्तर संस्कृत में देना।

हस्ताक्षर–

''किशोरीलाल''

वक्तव्य -

इस पर धर्मसभा ने एक पत्र संस्कृत मे भेजा, उसकी प्रति अक्षरशः छाप कर उसका आशय भाषा में प्रकाशित करेंगे। परन्तु इस पत्र का उत्तर संस्कृत ही में हमारी ओर से जाने पर फिर धर्मसभा को संस्कृत लिखने का दुबारा साहस न हुआ, यथा-

।। श्रीः ।।

मित्रवर मन्त्रिन् ! आर्य्यसमाज किराणोपस्थितविदितमस्तु किं यदष्माभिरुभयपत्रेपु स्वकीयेपु नियमा लिखिताः तेषामेभिर्विना (६) (१३) (२०) सर्वे स्वीकृता अतएव यदास्माभिर्युष्माकं नियमा उररीकृतास्सन्ति तथा तदास्मदीयणियमा अप्युररीकर्तव्या (१) तत्र प्रथमोयं नियमः मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्वतः प्रमाणम्। तथा स्मृतिसूत्रस्यापि (२) द्वितीयोऽयं दयानन्दमिथ्यारचितग्रन्थानां सत्यासत्यकरणे भविष्यति एतत् स्वीकारं कृत्वा ५००) पञ्चशतरूपकं तहसील इर्ति राजकीयस्थाने निक्षेपं कृत्वा पूर्वोक्तयोर्हयोरेव शास्त्रार्थयोः करणे यद्येकोपि शास्त्रार्थः प्रथमो भविष्यति तथैव जयाजययोरस्माकं तथा युष्माकं जयपराजययोरस्माकं तथा युष्माकं श्रीमिष्टरएडिससाहव इति प्रसिद्धः निर्णयं करिष्यति य उभयपक्षान्मध्यस्थो भविष्यतीति अतः प्रथमं मन्त्रब्राह्मणात्मको वेद अस्यंव मननोपरि भवद्यः सूत्र्यते अशास्ति एवं संस्कृतभाषायामस्योत्तरमष्टघण्टाबादनात्पूर्वं देवमित्यलम्।।

तारीख १८।१२।८३

हस्ताक्षर -

''पण्डित किशोरी लाल''

वक्तव्य -

इसके साथ दूसरा पत्र बिना हस्ताक्षर का आया वो भी नीचे उद्धृत किया जाता है यथा-

।। श्रीः ।।

भो आर्य्यसभोपदेशका ! श्रीमल्लिखितपत्रे संहितामात्रो वेदः इति मननं लभ्यते तत्रैवं प्रथमा विचारणा संहिता-मात्रो वेदइति केनाप्तवचनेन मन्यते प्रत्युत तद्विपरीतिलक्षणं दृश्यते यथाहि कात्यायनसूत्रं मन्त्रब्राह्मणयोर्नाम धेयं वेद इत्यात्मकमस्ति तदनुकूलं व्याकरणमहाभाष्यम्। यथाहि कियान् शब्दशास्त्रस्य विषयश्चत्वारो वेदस्साङ्गास्सरहस्या बहुधाभिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेदएकविंशतिधा वाह्वृचं नवधाथर्वणो वेदः वाकोवाक्यमितिहासः पुराणम्। वैद्यकविद्या इत्येतावान् शब्दशास्त्रस्य विषयः एवमेव मनुवाक्ये प्रत्यक्षे दरिदृश्यते यथाहि उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा सर्वथा वर्त्तते यज्ञइतीयं वैदिकी श्रुति इदञ्च वचनं ब्राह्मणभागेष्वेव लक्ष्यते नतु संहिताभागेपु यथा च उदिते होतव्यमनुदिते होतव्यं समयाध्युषिते होतव्यमित्यात्मकं ब्राह्मणमस्ति विधिर्विधायक इत्यात्मकेन गौतमेन सूत्रेण ब्राह्मणवाक्यतायां निश्चयीकृतमस्ति एवं विधायकवचनानि ब्राह्मणग्रन्थेष्वेव मिलन्ति यथा अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः अहरहस्सन्ध्यामुपासीत इत्यादीनि यथा हि श्रुतिप्रमाणको धर्म इति वैशेषिकसूत्रमस्ति तथाच श्रुतिप्रमाणकस्यैव स्वीकारे कृते अहरहस्सन्ध्याचमनप्राणायामादिकरणे शन्नोदेवीरित्यादिभिः प्रमाणं नोपलभ्यते मन्त्रभागे यदि संहितामात्रेणाग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामं इत्यादि तर्हि विधायकत्वादुक्तगोतमीयसूत्रेण संहितानां ब्राह्मणत्वं संघटेत तर्हि संहितानामपि त्वन्मुखाब्राह्मणवन्न प्रमाणमिति भवत्पक्षएव खंडयते भवत्कथनादेव अन्यत्रापि समारोपणादात्मन्यप्रतिषेध इत्यस्य भाष्ये वात्स्यायनेन निरणायि यथान्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विशयः अन्य इतिहासपुराणधर्मशास्त्रस्य यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः पुरावृत्तकथनमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थानं

कात्यायन का यह वचन कि–''**मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः**'' यह परिभाषा होने से केवल यज्ञविषय में चरितार्थ हो सकता है न कि सर्वत्र, तथा व्याकरणमहाभाष्य में–''**क्रियान् शब्दशास्त्रस्य विषयः**'' इत्यादि से शब्दशास्त्र भर अभिप्रेत है न कि वेद, तब समस्त ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते किन्तु शब्दशास्त्र हैं इससे ब्राह्मण को वेदत्व नहीं आता। ''**उदितेऽनुदिते चैव**'' इत्यादि मनुवाक्य भी केवल यज्ञविषयक होने से सर्वत्र ब्राह्मण का वेदत्वसाधक नहीं– ''**विधिर्विधायक**'' यह न्यायसूत्र विधि का लक्षण करता है न कि वेद का ! अतएव ''**अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः**'' इत्यादि वाक्यों की विधिवाक्यता सिद्ध होती है न कि (**वेदता शन्नोदेवीः**) आदि मन्त्र यथार्थ में आचमनादि क्रियाओं का संकेत करते हैं क्योंकि (अब् लिंङ्ग) अर्थात् जल की व्याख्या युक्त है–यह भी कोई प्रमाण है कि संहिता में विधिवाक्य होने से उसकी ब्राह्मणता सिद्ध हो जावे यदि ऐसा हो तब तो समस्त धर्मशास्त्रादि के विधिवाक्यों को ब्राह्मणत्व सिद्ध हो जावे, ''**समारोपणा**'' के भाष्य में जो मन्त्रब्राह्मण का विषय यज्ञ है ऐसा लिखा है इससे मन्त्रब्राह्मण की वेदसंज्ञा नहीं आती किन्तु दोनों का विषय यज्ञ है। रही यह बात कि इतिहास पुराण का विषय भिन्न लिखने से ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा नहीं–सो अप्रकृत है इस पर शास्त्रार्थ नहीं है कि ब्राह्मणों को ही इतिहासादि कहते हैं वा अन्य को ! न हमारे पत्रों में ऐसी प्रतिज्ञा है कि ब्राह्मणों की इतिहास संज्ञा है तथा यदि ब्राह्मणों से इतिहास भिन्न भी हो तब भी ब्राह्मण, वेद–नहीं हो सकते, यूं तो मनुस्मृति से इतिहास भिन्न है तब क्या मनुस्मृति वेद हो गई ? यह नियम नहीं कि जिसकी इतिहासादि संज्ञा न हो उसकी वेदसंज्ञा आवश्यक हो, इत्यादि, शेष आगे–

नोट –

इस पर धर्मसभा से संस्कृत में लिखने का साहस न रहने से भाषा में निम्नलिखित पत्र आया, यथा–

।। श्रीः ।।

मित्रवर मन्त्री आर्यसमाज बनत ! उपस्थित किराणा को ज्ञात हो कि हमने शास्त्र परीक्षार्थ आपको संस्कृत पत्र भेजा था सो शास्त्र में अन्ध परम्परा न्याय लिखा है वह सत्य है या मिथ्या ? ज्ञात हुआ कि सत्य है कि आपके गुरु घण्टाल दयानन्द के गुरु विरजानन्द (**अन्धव्यैयाकरण**) थे उनके चेले दयानन्द जिन्होंने के प्रथम ग्रन्थ व्याकरण का वाक्यप्रबोध बनाया हैं जिसमें अनेक अशुद्धियाँ हैं वह ग्रंथ भी हमारे पास मौजूद है तथा दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश छापा सन् १८८४ ई. के सूची (८) समुल्लास में लिखा है कि (**ईश्वर भिन्नस्याः प्रकृतेः**) यही अन्ध परम्परा सन् १८८७ ई. तथा ६१ में भी छपी हैं। हम जानते थे आप व्यायाकरण नैयायिक या वैदिक होंगे तब हमारे संस्कृत मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद मानने पर कुछ उत्तर लिखोगे। वह तब कुछ न हो सका। यह लिख मारा कि आप निग्रहस्थान में आ गए हो। धन्य है ! यदि आपके पत्र में अशुद्ध पदों तथा निग्रह का वर्णन करें तब दूसरा प्रकरण हो जावेगा तथा तुम्हारे बाल बोद्यार्थ भाषा ही में लिखते हैं कि हमने तुम्हारे (२०) नियमों का उत्तर व नाम भीमसेन जिसका नाम तुमने अपने नियम पत्र में मिथ्या लिखा था उसके नाम से रजिस्ट्री करा, तारीख १५–१२–सन् १८६३ ई. को भेज दिया था जिसकी रसीद हमारे पास है जब ज्ञात हुआ कि तुम्हारा लिखना मिथ्या है कि भीमसेन नहीं आया तब आपको नागरी पत्र जिसमें हमारे (३) नियम हैं उन्हीं नियमों में तुम्हारे १७ नियम अंतर्गत हैं जिसका विवरण यह है कि तुम्हारा ६ व २० नियम अस्वीकार करने पर हमने मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद स्मृति सूत्र लिखा। यदि आपको प्रथम संहिता ही वेद स्वीकार हो स्वतः प्रमाण और न ऐतरेय आदि ब्राह्मण तथा स्मृति सूत्र तब इस पर शास्त्रार्थ कर लो प्रथम इससे ६। २० नियमों का निर्णय हो जायेगा। जब कोई मध्यस्थ मानोगे तब इससे १३ वें नियम का खण्डन है कि तुम कहोगे हम जीते, हम कहेंगे हम जीते सब अपने–अपने बुद्धिनुसार शास्त्रार्थ का परिणाम विचार लेवेंगे। अय!

द्वितीय पत्राशय –

हे आर्य्यसमाज के उपदेशकों ! आपने जो संहितामात्र वेद मानकर लिखा भी है सो कौन से प्रमाण से ? किन्तु आपके विरुद्ध कात्यायन जी कहते हैं कि **"मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः"** और व्याकरण महाभाष्य में भी शब्दशास्त्र का विषय कितना है यह प्रश्न करके उत्तर दिया है कि ४ वेद अङ्गों और रहस्यों सहित १०० यजुर्वेद की शाखा, १००० साम की, २१ ऋग् की, ६ अथर्व की शाखा आदि–आदि इतना शब्द शास्त्र का विषय है तथा मनुस्मृति में भी **''उदितेऽनुदिते''** इत्यादि वाक्य वैदिकीश्रुति कहा और **"उदिते होतव्यम्"** इत्यादि ब्राह्मण में मिलता है संहिता में नहीं तथा गोतम ने भी **''विधिर्विधायकः''** इस सूत्र से विधायकों को विधिवाक्य कहा सो ब्राह्मन मे विधायक वाक्य हैं जैसा– **"अग्निहोत्रं जुहुयात्"** इत्यादि तथा वैशेषिक सूत्र में **''श्रुतिप्रमाणवाला धर्म है''** ऐसा कहा है सो प्रतिदिन सन्ध्या आचमन प्राणायामादि का उपदेश **''शन्नो देवी''** इत्यादि मन्त्रों से नहीं मिलता और यदि विधायकवाक्य संहिताओं में भी हो तो आप ही के मुख से गौतम सूत्रानुसार **(विधिर्विधायकः)** आपका पक्ष खण्डन होता है क्योकि संहिता को भी ब्राह्मणत्व सिद्ध होने से सप्रमाणता हुई। **(समारोपणा०)** के भाष्य में वात्स्यायन कहते हैं कि मन्त्रब्राह्मण का विषय यज्ञ है और पुरावृतान्त इतिहास पुराण का विषय तथा लोकव्यवहार व्यवस्था धर्मशास्त्र का विषय इससे सिद्ध हुवा कि ब्राह्मणों से भिन्न महाभारतादि की इतिहास और ब्रह्मवैवर्तादि की पुराण संज्ञा है और जैमिनि भी **(तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषं ब्राह्मणशब्दः)** करके मन्त्र का शेष ब्राह्मण बतलाते हैं अतएव वेद का भाग ब्राह्मण हुवा–शेष आगे।

उत्तर आर्य्यों की ओर से का भावार्थसंक्षिप्त –

।। ओ३म्।।

१८ | १२ | १८६३ ई.

श्रीयुत् पण्डित किशोरीलाल जी ! नमस्ते,

आपका (संस्कृत) पत्र आया उसके उत्तर में निवेदन है कि जब हमारे (२१) नियमों में केवल ६।१३।२० को त्यागकर अन्य स्वीकृत हैं तो अठारहवां स्वीकृत हुआ जिसमें लिखा था कि जब तक मूर्ति पूजा व मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ समाप्त न हो ले तब तक अन्य विषय पर न होगा (देखो नियम १८ पृष्ठ ५) यदि यह स्वीकृत है तो आपने जो मन्त्रब्राह्मणपरक शास्त्रार्थ आरम्भ किया इससे आप न्यायशास्त्र **(प्रकृतादर्थात्०)** सूत्रानुकूल (अर्थान्तर) नामक निग्रह (स्थान) में गिरे। और पूर्व जो हिन्दी के पत्र में आपने हमारे सब नियमों को अपने नियमों के अन्तर्गत कह कर स्वीकारा था तब फिर अब नियम संख्या ६। १३। २० के अस्वीकार करने से आप **(न्यायदर्शन-प्रतिज्ञाता०)** सूत्रानुसार (प्रतिज्ञान्तर) नामक निग्रह (स्थान) में भी आ गये, परन्तु यदि आपके समान हम भी उभय स्वीकृत प्रतिमा–पूजा, मृतकश्राद्ध को त्याग आपके मन्त्रब्राह्मणात्मक लेख का उत्तर लिखें तो **"पर्य्यनुयोज्योपेक्षण"** नामक निग्रहस्थान में आवें, सो हम ऐसा न करेंगे–क्योंकि निग्रहीत उपेक्षा, **(पर्य्यनुयोज्योपेक्षण)** कहाती है।

(१८–१२–६३ समय ८ बजे धर्मसभा में पण्डित किशोरीलाल जी को मिले)।

आपका प्यारा–

''रामकृष्ण''

मन्त्रब्राह्मणात्मक लेख पर टिप्पणी –

प्रथम तो प्रतिज्ञा के विरुद्ध इस विषय का लेख ही उनको हमारे उल्लिखित न्यायसूत्र के अनुसार निग्रहस्थान में गिराता है तिस पर भी उनके प्रमाणों की समीक्षा दिग्दर्शनमात्र की जाती है यथा–

।। श्रीः।।

मित्रवर, मन्त्रिन् बनत ! उपस्थित किराणा, जय श्रीकृष्ण !

इस हमारे पत्र का जो हमने यथाक्रम उत्तर (कु) लिखा था सो (आफ) ने कोई क्रम न लिखा कि हम मन्त्र ब्राह्मण पर प्रथम निश्चय करेंगे कि ये वेद हैं या दयानन्दरचित ग्रन्थों के सत्यासत्य पर इन दोनों विषयों का उत्तर नहीं लिखकर द्रव्य दण्ड से इन्कार लिखा अतः पूर्वोक्त दोनों विषयों में से किसी (एक) विषय पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर तत्पश्चात् मूर्तिपूजा शास्त्रार्थ समाप्त होने पर साहब के निर्णय के पश्चात् ५००) रुपया जयपराजय पर लिया दिया जावेगा यदि इस वख्त (आप) के पास न हो तो मूर्तिपूजा के जयपराजय के बाद को लिख दीजिएगा। देनेलेने का पारलौकिक व्यवहार विना लौकिक व्यवहार के होता नहीं। द्रव्य व्यय का (प्रश्न) प्रथम आप ही कि तरफ़ से हुआ था, उत्तर शीघ्र यथाक्रम भेज के हमारे पास सभा स्थान में पधारो।

हस्ताक्षर –

तारीख १६। १२। ६३

''किशोरीलाल पण्डित''

वक्तव्य –

प्रिय पाठकगण ! यह पत्र १२ बजे के लगभग ही हमारे पास आया, उस समय हम धर्मसभा वालों के स्थान में ही शास्त्रार्थ के निमित्त जाने को तैयार थे अतएव यह सोचकर (कि) इसका उत्तर वहीं दे देंगे सभा स्थान को चले–जिनके मकान पर सभा थी उन्होंने उर्दू में रुक्का लिख भेजा आर्य्यों के पास कि आप मेरे मकान पर आवेंगे तो कुछ विघ्न न होगा आप विश्वास रक्खें किन्तु जो संस्कृत न पढ़ा हो वह बातचीत शास्त्रार्थ में न बोले। हमने यह स्वीकार किया और सभास्थान में पहुंचे वहां स्थानाधीश ने एक ओर पौराणिकों की मेज कुर्सी लगा रखी थी, दूसरी ओर आर्य्यों के लिए भिन्न मेज कुरसी लगाई थी जब हमने मेज पर समस्त वेदवेदाङ्गों के पुस्तक लगाये तब पौराणिक पक्ष में से पण्डित गोकुलानन्द बोले कि यह मेज किसका है ? कि जिस पर आर्य्य पुस्तकें रखते हैं। स्थानाधीश ने कहा कि, हमारी है जो हमने उनके वास्ते भी लगाई है, तब गोकुलानन्द जी चुप हुवे। प्रथम हमारे पण्डित तुलसीराम स्वामी ने प्रस्ताव किया कि आज तक जो पत्र व्यवहार हुआ है सो सब हम भरी सभा को सुनावेंगे कि जिससे सभा यह जान लेवे कि अब तक पत्रों में टालमटोली और बेकायदा बातें कौन पक्ष लिखता रहा? इसको पौराणिकों ने नामंजूर किया क्योंकि पत्र पढ़े जाते तौ पोल खुलती और कहा कि हमारे पत्रों का यथाक्रम उत्तर नहीं दिया। इस पर पण्डित तुलसीराम स्वामी ने कहा कि सब पत्रों को हम सभा में सुना दें कि जिससे यह प्रतीत हो जावे कि कौन यथाक्रम उत्तर नहीं देता, इस पर भी पौराणिकों ने कहा कि सब पत्र पढ़ने में समय नष्ट होगा इत्यादि–इत्यादि, तब पण्डित तुलसीराम स्वामी के कथनानुसार हमने यह लिख दिया कि –

।। ओ३म्।।

"किराणा" १६। १२।६३

श्रीयुत पण्डित किशोरीलाल जी नमस्ते,

क्रमबद्ध अब तक आपने उत्तर दिये वा हमने ! यह बात आज सभ्य पुरुषों से सामने तै होगी अब तक आप कहते हैं कि आपके उत्तर यथाक्रम नहीं, हम कहते हैं कि आपके नहीं, अतएव आज जुबानी वक्तृताओं आदि से आज तक का वृत्तान्त स्पष्ट हो जावेगा। इति।।

आपका प्रेमी –

''रामकृष्ण''

बालमित्र जब दो वादी–मुद्दयी, मुद्दाअलेह में लड़ते हैं तब बिना न्यायाधीश के उनका (फैसला) कौन कर सकता है ? यदि मुकदमा फौजदारी तब बिना दण्ड के एक मिथ्यावादी कब बच सकता है ? अतः हमने पांच सौ रुपये का पत्र जय पराजय पर लिखा है। यदि मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद का शास्त्रार्थ न कर सको तब दयानन्द मिथ्या ग्रन्थों में ही सत्यासत्य का शास्त्रार्थ बिना मध्यस्थ के कर लो, पांच सौ के हार जीत पर। यह तीन नियमों के बराबर लिखने पर भी न कुछ उत्तर देते हो, यही तुम्हारा पाण्डित्य है ? कि – निग्रहरथान में आप आ गए हो। धन्य हो ! यदि हम निग्रह का लक्षण लिखें तब तुम्हारे समझ में स्वप्न में भी न आवेगा। और दूसरा प्रकरण हो जावेगा। अतः उसको और व्याकरण अशुद्धियों को नहीं लिखा। अब अन्त में फिर आपको लिखते हैं कि जहां–जहां तुम्हारे गुरु ने शास्त्रार्थ किया है वहां–वहां हारे है ऐसे ही तुम समाजी लोग। व्यर्थ लिखने में काल को व्यतीत करते हो। यदि तुममें कोई पंडित हो तब आज हमारे व्याख्यान स्थान में १२ बजे आवो वहां पुलिस का सब प्रबन्ध आदि नियमों का हो जावेगा। यदि न आ सको तब हमको अपने व्याख्यान स्थान में बुलावो आप पुलिस आदि का बन्दोबस्त कर लो या तहसील में ५ – ५ ही पुरुष चलो प्रथम पांच सौ रूपये स्थापन कर विरुद्ध ३ नियमों पर विवाद दूर कर शास्त्रार्थ मन्त्रब्राह्मणात्मक पर या दयानन्द मिथ्या ग्रन्थों के सत्यासत्य पर शास्त्रार्थ हो वह मिस्टर ऐडिस वा प्रोफेसर लाहौर के पास निर्णयार्थ भेजा जावे इसके निर्णय होने पर मूर्तिपूजन, श्राद्धादि भी शास्त्रार्थ कर लो। यदि आज इस पत्र का उत्तर यथाक्रम न लिखोगे व यथाक्रम न मानोगे तब तुम्हारा पत्र (तत्र भवति) वाला न लिया जावेगा। हमारे खर्चा–हर्जा के व्यर्थ काल व्यतीत करने से देने के योग्य अदालत से होंगे। इसका उत्तर आज यथाक्रम १० बजे ता० १६–१२–सन् १८६३ ई. तक देवें।

(तारीख १६–१२–६३ प्रातः ७ बजे) "दस्तखत"

"किशोरीलाल"

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत महाशय पण्डित किशोरीलाल जी योग्य !

नमस्ते ! आप जो हमारे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मूर्ख आदि सिद्ध करने पर अधिक घमण्ड करते हैं और उस महात्मा को बुरे शब्दों से पुकारते हैं यह तो प्रकरण विरुद्ध और असभ्यता नहीं समझते ? और जब हमने आपको निग्रहस्थान में घेरा उसका उत्तर बिना दिए यह समझ लेना कि इसका उत्तर तो आपको समझ में न आवेगा ऐसा कह कर टालते हैं। निग्रह का अर्थ कदाचित् न समझने से ही आपने उत्तर न दिया हो तो हम समझा देते परन्तु आप तो अपने मुख से ही दयानन्द सरस्वती जी की हार–हार पुकारते हैं इससे आपकी जीत नहीं होगी किन्तु निर्णय के पश्चात् हार–जीत का शब्द कहना चाहिए श्री पण्डित भीमसेन शर्मा जी के पास आपने उत्तर क्यों भेजा ? मेरे ही पास भेजते तो इतना विलम्ब ही क्यों होता ? शास्त्रार्थ विषयक नियमों पर बातचीत तो मुझसे और उत्तर कहते हो कि प्रयाग भेज दिये, धन्य हैं ! पराजित पक्ष को इतना दण्ड ही बहुत है कि श्रोता लोग पराजित पक्ष को हीन समझ त्याग देंगे, धन दण्ड की आवश्यकता सांसारिक झगड़ों में होती है पारमार्थिक में नहीं। हमारा आपका वाद परमार्थ में है। यह आपने बड़ी कृपा की कि हमको अपने स्थान में बुलाया है सो हम आपके पास बारह बजे आवेंगे आप पुलिस का प्रबन्ध कीजिए वा न कीजिए। यदि आप शान्तिपूर्वक बातचीत करेंगे और अपने पक्ष के साधारण पुरुषों को रोक सकेंगे तो पुलिस का प्रबन्ध भी हो वा न हो हम तो गरीब लोग आपके नगर में धर्मप्रचार व शास्त्रार्थ के लिए आए हैं आप हमको शान्तिपूर्वक आसनादि देकर नियमों का विवाद दूर कर लीजियेगा। जिससे प्रकृत प्रतिमापूजादि विषयक शास्त्रार्थ में विघ्न न हो ॥

(१० बजे दिन १६।१२।६३) आपका प्रेमी –

"रामकृष्ण"

शास्त्रार्थ आरम्भ

प्रथम पौराणिक पण्डितों में से पण्डित गोकुलचन्द जी खड़े हुए और १० मिनट में निम्नलिखित प्रमाण ब्राह्मणों के वेद होने में दिये। यथा –

पौराणिक पण्डित श्री गोकुलचन्द जी –

१. **"मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः"** – इस कात्यायन सूत्र से सिद्ध है कि मन्त्र व ब्राह्मण दोनों वेद हैं।

२. **"मन्त्रवार्णिकमेव"** इत्यादि व्याससूत्र पर भाष्यकार **"तावनस्य महिमा"** इत्यादि ब्राह्मण का उदाहरण लिखते हैं इससे सिद्ध है कि भाष्यकार ब्राह्मण को वेद मानते हैं।

३. **"तच्चोदकेषु मन्त्राख्या। शेषे ब्राह्मणशब्दः"** इन जैमिनि सूत्रों से सिद्ध है कि इन मन्त्रों से शेष जो वेद भाग है उसकी ब्राह्मण संज्ञा है, इससे भी सिद्ध है कि ब्राह्मण वेदों का शेष भाग होने से वेद हैं इत्यादि।

४. **"चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः"** इत्यादि महाभाष्य से भी सिद्ध है कि ४ वेद अंगों व रहस्यों सहित हैं जिनमें ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १००, सामवेद की १०००, अथर्ववेद की ६ शाखा वेदों में शामिल हैं इत्यादि।

५. **"तदप्रामाणयमनृतव्याधातपुनरुक्तदोषेभ्यः"** न्यायसूत्र पर वात्स्यायन भाष्य में **"पुत्रकामः पुत्रेट्या यजेत"** इत्यादि ब्राह्मण वाक्य उदाहरण रूप में दिए हैं जिससे सिद्ध है कि वात्स्यायन को ब्राह्मणों का वेद होना अभीष्ट था।

६. **उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।**
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतियं वैदिकी श्रुतिः।।

(मनुस्मृति)

मनुजी कहते हैं कि उदित, अनुदित, समयाध्युपित सर्वथा यज्ञ वर्त्तमान है यह वैदिकी श्रुति है। सो यह श्रुति ब्राह्मण में मिलती है अतएव अनुमान होता है कि मनु जी ब्राह्मण को वेद मानते थे।

७. **"न वियदश्रुतेः।"** वेदान्तसूत्र पर शंकराचार्य्य कहते हैं कि आकाश की उत्पत्ति वेद में लिखी है। **"तस्माद एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत"** इत्यादि ब्राह्मण का उदाहरण देते हैं इससे सिद्ध है कि व्यास जी आकाश की उत्पत्ति को वेदाविरुद्ध कहते थे अतएव उस पर शंकराचार्य्य दिखलाते हैं कि वेद (उक्त वचन ब्राह्मण का है) में आकाश की उत्पत्ति लिखी है इससे सिद्ध है कि व्यास तो नहीं किन्तु शंकराचार्य्य ब्राह्मणादि को वेद मानते हैं।

नोट –

इतना कहकर १० मिनट बीत गए तब इसका उत्तर पण्डित तुलसीराम स्वामी ने हमारी ओर से इस प्रकार दिया। यथा :–

।। ओ३म्।।

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी –

१. पण्डित गोकुलचन्द जी का प्रथम प्रमाण (**मन्त्र ब्राह्मणयोः.......**) कात्यायन की यज्ञपरिभाषा है अतएव

वक्तव्य –

पाठकगण ! इतने पर भी पौराणिकों ने पत्रों का पढ़ा जाना और उन पर बहस करना नहीं स्वीकार किया और पण्डित गोकुलानन्द ने प्रकृत, प्रतिमापूजादि विषयक शास्त्रार्थ को त्याग कर कहा कि दयानन्दरचित समस्त पुस्तकें अशुद्ध हैं और आर्य्यसमाज का यह नियम ३ "**वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है**" आदि–आदि किस शास्त्र के अनुकूल है और वेद में समस्त विद्याएं कहां हैं ? इत्यादि तब पण्डित तुलसीराम स्वामी ने उत्तर दिया कि यद्यपि दयानन्द सरस्वती रचित पुस्तकें वा आर्य्यसमाज का तीसरा नियम शुद्ध है वा अशुद्ध ? इस पर शास्त्रार्थ नहीं है, किन्तु वेदों में प्रतिमार्चा वा मृतश्राद्ध है वा नहीं इस पर शास्त्रार्थ ठहरा है ऐसी दशा में यदि दयानन्दसरस्वती की पुस्तकें वा नियम शास्त्रविरुद्ध अशुद्ध भी हों तो भी इस नियत विषय के शास्त्रार्थ में हमारी कोई हानि नहीं और पण्डित गोकुलानन्द का कथन प्रकरणविरुद्ध है हमको इस पर बहस नहीं करनी है परन्तु इतना तो भी कहते हैं कि मनुजी ने भी यह माना है कि – "**भूंत भव्यं भविष्यंच्चसर्वे वेदात्प्रसिद्ध्यति**" अर्थात् जो हुवा, जो है, जो होगा सो सब वेद से प्रसिद्ध होता है' इससे भी सिद्ध है कि वेद में भूत, भविष्य, वर्त्तमान की उपयोगी सब विद्याऐं हैं उसी के व्याख्यानरुप से ऋषि लोग विद्याओं का प्रकाश करते रहे। इस पर पण्डित गोकुलानन्द ने मनुस्मृति की पुस्तक लाकर पटक दिया और कहा कि यह श्लोक मनुस्मृति में दिखाओ कहां है ? झूठे प्रमाण देते हो !! इस पर दो मिनट तक ढूंढ़ने से न मिला तब तो पौराणिकों के हर्ष का ठीक न रहा मारे हर्ष के आपे से बाहर हुवे जाते थे कि इतने ही में हमारे पण्डित गोविन्द सहाय जी ने उक्त श्लोक ढूंढ कर पण्डित तुलसीराम स्वामी को इशारा किया और पण्डित तुलसीराम ने समस्त सभा को दिखा दिया कि जिसका जी चाहे बांच (पढ़) ले, और कहा कि बस ! अब पौराणिक परास्त समझने चाहिए क्योंकि उन्होंने यह कहा था कि यह श्लोक मनुस्मृति में नहीं है जब मनुस्मृति में निकल आया तब उनको अपना पक्ष त्याग देना चाहिए इत्यादि–तब पण्डित गोकुलानन्दादि बोले कि ५००) रुपए की हार जीत लिखो इस पर प्रथम तो पण्डित तुलसीराम ने यही कहा कि यदि किसी के पास ५००) रुपए न हों तब क्या उसका पक्ष ही ठीक न माना जायेगा परन्तु पौराणिकों के हठ पर हमने यह भी स्वीकार किया कि अच्छा नियमों पर हस्ताक्षर करिए हम ५००) रु० का प्रबन्ध भी कर देंगे तब तो पण्डित गोकुलानन्द जी यहाँ से भी हटे और कहने लगे कि तुम हमारा वक्त खराब करते हो यदि तुमको करना है तो १०–१० मिनट वक्त लेकर तफ़रीह (मजे) के वास्ते गुफ्तगू करो नहीं तो जाने दो इत्यादि पण्डित गोकुलानन्द सदा ऐसे क्रोध में बोलते थे कि समस्त सभ्य पुरुष अपने जी में उनको जाने क्या खयाल करते होंगे अस्तु हमने यह भी स्वीकारा कि खैर बिना नियमों के ही हमको १०–१० मिनट के समय विभाग से जुबानी शास्त्रार्थ भी स्वीकृत है परन्तु प्रथम आप संहिता से प्रतिमा पूजा १० मिनट में सिद्ध करें तब हम १० मिनट में खण्डन करेंगे पण्डित गोकुलानन्द ने मुसलमानों की तरफ इशारा करके कहा कि कोई शख्स कुरान शरीफ़ के १५ सिपारों को **(आधे कुरान को)** मानकर कहे कि इतने से ही फलां बात साबित कर दो तब क्या इलाज है इसी प्रकार ये लोग संहितामात्र वेद के एक हिस्से को मानते हैं और कहते हैं कि इतने ही से मूर्तिपूजा सिद्ध कर दो इत्यादि तब पण्डित तुलसीराम स्वामी ने उत्तर दिया कि यदि आप संहिताओं को केवल वेद का एक भाग मानते हैं और दूसरा भाग ब्राह्मणादि ग्रन्थों को। तब यह लिख दो कि संहिताभाग से प्रतिमापूजा सिद्ध नहीं होती किन्तु दुसरे भाग ब्राह्मणादि से सिद्ध होती हैं–जब आप यह लिखदेंगे तब हम आपके अभिमत ब्राह्मणभाग से सिद्ध हुए मूर्तिपूजन को भी स्वीकार कर लेंगे परन्तु पौराणिक अपने जी में जानते थे कि संहिता से सिद्ध नहीं होता ऐसा लिखने पर हमारा पराजय हमारे ही मुख से स्पष्ट हो जावेगा अतएव टालमटोल कर प्रथम यही शास्त्रार्थ करना चाहा कि –"**मन्त्रब्राह्मण दोनों वेद हैं वा मन्त्र भाग ही**"। हमने यह भी स्वीकार किया तब इस प्रकार शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। आप इस शास्त्रार्थ की विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त करिये।

"रामकृष्ण"

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ द्वितीयं वैदिकी श्रुतिः।।

(मनुस्मृति)

इस मनु के श्लोकस्य "वैदिकी श्रुतिः" ये दो पद भी ब्राह्मण परक नहीं क्योंकि ब्राह्मण में भी उक्त श्लोक के सदृश पाठ, नहीं, यदि मान भी लिया जाये कि आशय मिलता है तो आपके मतानुसार कात्यायन परिभाषा से केवल यज्ञ विषयक ही है, अन्यत्र नहीं अतएव **"ब्राह्मणादि वेद नहीं"**।

७. **"न वियदश्रुतेः"** इस व्याससूत्र में व्यास जी आकाश की उत्पत्ति नहीं मानते, क्योंकि वेद विरुद्ध है। ब्राह्मण को वेद नहीं मानते, संहिता में लिखी नहीं व्यास के विरुद्ध, जो शंकराचार्य **"तस्माद्वा एतस्मा .....**" इस ब्राह्मण वाक्यानुसार आकाश की उत्पत्ति मानते हैं तो वेद विरुद्ध और व्यास विरुद्ध और मूल विरुद्ध व्याख्या है, अतएव व्यास के सामने उनके विरुद्ध शंकराचार्य का वचन प्रमाण नहीं, तथा हम पण्डित जी को यह भी सम्मति देते हैं कि यह शंकर का प्रमाण न दें क्योंकि शंकर दिग्विजय में उनके भावी शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजा के विरुद्ध भी लेख मिलेंगे, जो पण्डित जी को कठिनाई में डालेंगे, यथा –

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः कापालिकैवैष्ण,
वैरप्यन्यैरखिलैः खिलं खलु खलैदुर्वाधिभि वैदिकम्।
मार्ग रक्षितुमुग्रवादिविजयं नो मान हैतोर्व्यधात,
र्सवज्ञो न यतोऽस्य सम्भवति संमानग्रहग्रस्तता।। ६५।।

(शंकरदिग्विजय सर्ग १५ श्लोक ६५)

शंकराचार्य जी ने देवी के उपासक, पशुपति के उपासक, क्षपणक, कापालिक वैष्णव तथा अन्य समस्त खलों के साथ जो शास्त्रार्थ करके विजय किया सो अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए नहीं किन्तु केवल वैदिक मार्ग की रक्षा के लिए, अतएव हम पण्डित जी को सम्मति देते हैं कि–वह शंकर का प्रमाण न दें। क्योंकि ऐसा करने पर उनको आगे कष्ट में पड़ना होगा हम व्यास के मूल सूत्र को मानते हैं, उसके विरुद्ध शंकराचार्य को नहीं, अतएव **"ब्राह्मणादि वेद नहीं"**।

नोट –

इतना कहकर उनके दिए सातों प्रमाणों का उत्तर श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी दे चुके, तब पण्डित गोकुलचन्द जी का खड़े होने का भी साहस नहीं हुआ, परन्तु पण्डित गोकुलानन्द जी एक कोरा कागज हाथ में लेकर कहने लगे कि –

पौराणिक पण्डित श्री गोकुलानन्द जी –

देखो भाईयों हमारे पण्डित श्री गोकुलचन्द जी ने, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, ये (बीस) प्रमाण दिये, परन्तु आर्य पण्डित ने सिवाय नहीं–नहीं के यानी ये भी नहीं, ये भी नहीं, अन्य कोई प्रमाण नहीं दिया।

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी –

पण्डित जी हमारी भाष्य संहिता को हम तुम दोनों प्रमाण मानते है, अतएव हमें प्रमाण देने की

वैदिक पुस्तकालय

उसकी प्रवृत्ति सर्वत्र नहीं हो सकती क्योंकि परिभाषा केवल अपने विषय में प्रवृत होती है न कि सर्वत्र, आशय कात्यायन का यह है कि जहां–जहां यज्ञ प्रकरण में इस (वेद) शब्द का उच्चारण करें वहां–वहां मन्त्र व ब्राह्मण दोनों समझो। इससे सब जगह मन्त्र और ब्राह्मण वेद नहीं माने जा सकते। जैसे पाणिनिमुनि अष्टाध्यायी में कहते हैं कि– **(वृद्धिरादैच)** तथा.. **(अदेंङ्गुणः)** अर्थात् जहां–जहां (वृद्धि) पद का व्याकरण में हम प्रयोग करें वहां – वहां आ, ऐ, ओ ये तीन अक्षर समझो और जहाँ – जहाँ (गुण) पद का प्रयोग करें वहां–वहां अ, ए, ओ, ये तीन वर्ण समझो इससे यह नहीं सिद्ध हो सकता कि सर्वत्र (वृद्धि) पद से आ, ऐ, ओ समझे जावें और दर्शनशास्त्रों में (गुण) पद से अ, ए, ओ का ग्रहण कोई बुद्धिमान् नहीं करेगा–यद्वा, किसी ने अपनी पुस्तक में यह संकेत कर लिया कि लफ़ज (अलिफ) से (आर्य्य) समझो और लफ़ज (वे) से पौराणिक। और फिर (अलिफ़) व (वे) की बहस शुरु हो तो क्या कोई अक्लमन्द शख्स (अलिफ़) या (बे) के माने सचमुच सब जगह (आर्य्य) वा (पौराणिक) समझेगा ? कभी नहीं। इसी प्रकार कात्यायन का वचन भी ब्राह्मण की वेदसंज्ञा का विधायक नहीं। अतएव **"ब्रह्मणादि वेद नहीं"**

२. **"मान्त्रवर्णिक मेव"** यह व्याससूत्र जो टीकाकार ने **"तावानस्य महिमा"....** इत्यादि उदाहरण दिया यह उसकी भूल है क्योंकि शुद्धपाठ यजुर्वेद संहिता के ३१ वें अध्याय में – **"एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांञ्च पुरुषः पादोऽस्य विश्वाभू........"** इत्यादि मौजूद है अतएव उसको यह वेदवाक्य शुद्ध–शुद्ध उदाहरण में रखना था। इससे सिद्ध हुआ व्यास जी ने तो सूत्र का लक्ष्य इस यजुर्मन्त्र को रक्खा था टीकाकार ने भूल वा अज्ञान से अन्यत्र का उदाहरण लिख दिया अतएव **"ब्राह्मणादि वेद नहीं"**।

३. **"शेषे ब्राह्मण शब्दः......"** का अर्थ भी जैमिनि के अभिप्राय तथा प्रकरण के विरुद्ध किया क्योंकि जैमिनि जी स्वयं (शेष) पद का अर्थ बतलाते हैं कि **(शेषः परार्थत्वात्)** ब्राह्मण शेष इसलिए कहाते हैं कि पराया अर्थ करते हैं अर्थात् वेद का अर्थ करते हैं अतएव सिद्ध हुआ कि **"ब्राह्मणादि वेद नहीं"** किन्तु वेद के अर्थ करने वाले टीकारूप हैं।

४. **"चत्वारो वेदाः साङ्गाः......"** इत्यादि व्याकरण महाभाष्य में भी शब्द शास्त्र का विषय बतलाया गया है कि, **"क्रियान् शब्द शास्त्रस्य विषयः ...."** शब्द शास्त्र का विषय कितना है ? **उत्तर**–चार वेद अंगों और रहस्यों सहित तथा १०० यजुर्वेद की शाखां, १००० साम की, २१ ऋग् की, ९ अथर्व की,वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैधक इतना शब्द शास्त्र का विषय है। इतना कहने से ब्राह्मणदि ग्रन्थ, शब्द शास्त्र हुए परन्तु वेद नहीं हुए और यदि **"चत्वारो येदाः"** इतने से चार वेद के अन्तर्गत समस्त ब्राह्मणादि समझे जाते तो उन–उन के नाम भिन्न न आते इससे भी सिद्ध है कि महाभाष्यकार ने चार वेदों से ब्राह्मणादि को भिन्न समझा तभी तो भिन्न ग्रहण किया, अतएव **"ब्राह्मणदि वेद नहीं"**।

५. **''तद प्रामाण्य मनुतव्या....,''** इत्यादि न्यायसूत्र पर भी जो वात्स्यायन जी ने **''पुत्रकामः पुत्रेष्टया यजेत''** ब्रह्मण वाक्य दिया सो यहां भी कुछ वेद परीक्षा प्रकरण नहीं किन्तु शब्द प्रमाण की परीक्षा है सो हम यह कब कहते हैं कि ब्राह्मण **(शब्द प्रमाण)** में नहीं हैं, किन्तु हम तो यह कहते हैं कि ब्राह्मण वेद नहीं **(शब्द प्रमाण) ''मनकूल शहादत''** अवश्य ब्राह्मण हुए। परन्तु वेद पद का तो न सूत्र में और न भाष्य में लेश मात्र भी **(नाम)** नहीं है। अतएव **"ब्राह्मणादि वेद नहीं"**।

मैं करीब ४५ मिनट के जलसे बहस में बैठा रहा जिस मसले पर मेरे रूबरू बहस हो रही थी, उसमें काबिल दलायल आर्य धर्म के पण्डित साहब के और वहमस ला वेद की तहकीकात और ब्रह्म परमेश्वर के वहदानियत का था, अगरचे मैं हर दो मजहब से वाकिफ नहीं हूं – मगर अकल इस बात को दरयाफत कर सकती है कि किस फरीक की हुज्जत पुरजोर और लायके उसूल हैं। रिवायात नक़ली को मैं कुछ नहीं समझ सकता था, न मैं उसकी निसवत् (विषय में) कुछ राय ज़ाहिर कर सकता हूं। न करना चाहता हूं। मगर दलायल अक़ली और क़वायद सर्फो महब जो आर्य धर्म के पण्डित साहब ने अपनी पुरजोर तकरीर में बयान फरमाये वह इन्साफयाने तौर पर पण्डितान धर्म सभा की दलायल और क़वायद से बदरजहा बहतर और पुरजोर थे तीन दलायल तक़रीर में आर्य धर्म के पण्डित साहब ने बयान की थी, उनमें से दो का जवाब दलायल नक़ली से जिसको मैं पहले कह चुका हूं कि मैं नहीं समझ सकता, दिया गया, मगर एक दलील का मुतलक़ जवाब दिया ही नहीं गया, अब उसके मायनी इसमें आगाह करने की ज़रूरत नहीं है।

हस्ताक्षर–

"सादिक हुसैन वकील मुनसफी"

२. तहरीर मुन्दर्जे वाला से मैं भी इत्तफ़ाक करता हूं। अर्थात् (इस लेख से मैं भी सहमत हूं)।

हस्ताक्षर–

"मौहम्मद हुसैन बख्श" (उर्दू)

३. मैं शुरू वक्त से ता इखतिताम जलसे नहीं बैठा सिर्फ करीब दो घण्टे के हाजिर जलसे रहा, बवजह होने वक्त नमाज़ के उठकर जलसे मज़कूरे बाला से चला आया लेकिन बहालत नाशिशत (सभा) मेरी जहां तक में गौर करता हूं तक़रीर पण्डित आर्य धर्म की इन्साफ़ाना व पुरजोर थी लेकिन नतीजा कोई नहीं निकला मगर पण्डितान हिन्दू के (ने)तीन कलमे खिलाफ़े तहजीब इस्तेमाल क़िए, जिनमें कि उनकी तौहीन होती थी, मगर पण्डितान् आर्य निहायत तहजीब वो कुशादा पेशानी (प्रसन्न मुद्रा) से जवाब देते थे।

हस्ताक्षर–

"फैज़उल्ला"

४. रायबाला से मुत्फिक हूं। अर्थात् उक्त राय में मेरी भी सहमति हैं।

हस्ताक्षर –

"अहमदहसन"

५. मेरी राय **"शरीक राय मुन्शी सादिक हुसैन मुत्फिक है"** इस कदर मैं भी ठहरा था। अर्थात् **"मुन्शी सादिकहुसैन के लेख से मेरी भी सहमति है"**। मैं भी उनकी तरह ही मुबाहसे में रहा।

हस्ताक्षर–

"अमानत अली वकील"

६. "मैं करीब दो घण्टे के सभा में हाजिर रहा और हर दो फरीक की गुफ्तगू खूब सुनता रहा, मगर मुझको जुबान संस्कृत में वाक़फ़ियत नहीं है इस बाइस (वजह) से मसायल नकली को कुछ नहीं ब्यान कर सकता हूं। मगर दलायल अक़ली जो जुबान गोहरे फिशां जनाब पण्डित तुलसीराम से सभा में आए निहायत मुदल्लिल पुरतकरीर मुनासिब मालूम होते थे।

आवश्यकता ही नहीं, तुमको ब्राह्मण का देवत्व सिद्ध करना था, जिसको हम नहीं मानते, उस पर आपके पण्डित गोकुलचन्द जी ने जो–जो प्रमाण दिए उन–उनका मैंने उत्तर देकर स्पष्ट किया कि उक्त प्रमाण आपके पक्ष को पुष्ट नहीं करते।

नोट –

इस पर बहुत से लोग "**बोलो सनातन धर्म की जय**" बोलते हुए खड़े हो गए, और उठते हुए कुछ पौराणिकों ने एक साधारण मुसलमान से यह कहलवाया कि "**मेरी समझ में आर्य पण्डित ऐसी गुफ्तगू करते हैं जैसी नेचरिये (नाचने वाले) और हिन्दू पण्डित ऐसी, जैसी कि हम अहले इस्लाम !**" जिसका तात्पर्य कुछ न था, क्योंकि जब नेचरिये व मुसलमानों में बहस हो और (नेचरिये) वा मुसलमान दोनों में से एक परास्त हो जाये, तब इस दृष्टान्त से आर्य वा हिन्दुओं की जय–पराजय उक्तमुसलमान के कथनानुसार निकले, अस्तु अन्त में कई प्रतिष्ठित रईस मुसलमानों ने आर्यो के पक्ष की प्रबलता, हस्ताक्षर युक्त लिख दी जिनकी अक्षर–अक्षर की नकल हम नागरी अक्षरों में इस शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित कर रहे हैं, पाठकगण वहां देख सकते हैं।

इस शास्त्रार्थ का परिणाम –

इस शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) का असर यह हुआ कि बाजार के कई वैश्यों (महाजनों) ने आकर आर्यों से निवेदन किया कि आपकी विजय हुई है, आप बाजार में एक–दो व्याख्यान देकर समाज स्थापित कीजिए, बहुत लोग समाज में भर्ती होंगे। और आर्य धर्म स्वीकारेंगे, तदनुसार श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी ने व्याख्यान दिए और २२ **दिसम्बर सन् १८६३ ई० को श्री मान लाला हरवंशलाल साहूकार किराणा के स्थान पर हवन हुआ और नगर निवासी २३ (तेईस) प्रतिष्ठित पुरुषों ने समाज में नाम लिखाये, और आर्य समाज की स्थापना की गई**"।

आभार प्रकट –

परमेश्वर इस समाज को चिरायु करे इस शुभ कामना के साथ में विशेष धन्यवाद श्री पण्डित तुलसीराम स्वामीजी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर देश तथा अवध को देता हूं कि जो किराणा मे १५ दिसम्बर सन् १८६३ ई० को सराय में ठहरे, जब कि किराणे में कोई सामाजिक सहायक इतना प्रबल न था कि उनको ठहरा कर सहायता द्वारा शास्त्रार्थ कराता, परन्तु धन्य हो श्री पण्डित तुलसीराम जी का, जो ऐसे असहाय नगर में शास्त्रार्थ से न हटे।

द्वितीय धन्यवाद यहां के जैनियों को है जिन्होंने धर्म निर्णयार्थ ठहरने को हमें स्थान तथा फर्श आदि–सब प्रकार की सहायता दी, अब अन्त में जो एक मुसलमान ने आर्यो की वार्ता **"नेचरियों"** के सदृश बतलाई थी उसके विरुद्ध कई रईस व मौलवी–मुसलमानों ने "**आर्यो की विजय**" लेख द्वारा प्रमाणित किया, वह लेख उर्दू से नागरी करके अक्षर–अक्षर लिख देते हैं विद्वान् लोग स्वयं समझ लेगें। इति।।

हस्ताक्षर–

"**रामकृष्ण**" – मंत्री आर्यसमाज (बनत)

जिला – मुज़फ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)

इस शास्त्रार्थ के विषय में कुछ मुवजिज़ (प्रतिष्ठित) लोगों की राय –

१. हस्ताक्षर नामा मुबाहसा जलसा मावैन आर्य धर्म प्रचारक कैम्प किराणा व धर्म सभा किराणा जिला मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)।

इक्कतीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "आगरा" आर्य समाज–मोती कटरा(उत्तर–प्रदेश)

दिनांक : १२ सितम्बर सन् १८६६ ई० (प्रथम दिन)
विषय : वेदों की उत्पत्ति, कब, कहां, और कैसे, हुई ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : पण्डित कृपाराम शर्मा जगरानवी
(स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती)
शास्त्रार्थकर्त्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी अबुलफ़रह साहिब (पानीपती)
सहायक : १. मौलवी जहांगीर खां साहब
२. श्री मौलवी अब्दुलमजीद साहिब
३. काज़ी जुहुरूल्लहसन साहब
आर्य समाज के मन्त्री : प्रण्डित कृपाशंकर एम० ए० (प्राज्ञशास्त्री)
आर्य समाज के प्रधान : बाबू जमनादास बिश्वास "वकील"
सभापति : बाबू जोज़फ फ़ारनन साहब(सिविल लाइन आगरा)
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री जलसा बाबू

नोट –

(१) पण्डित कृपाराम जी शर्मा (जो बाद में स्वामी दर्शनानन्द जी) के नाम से विख्यात हुए उनका जन्म स्थान **"जगरावा"** जिला लुधियाना (पंजाब) था, इसलिए उनको ज़गरानवी कहते थे. मैंने उनके मकान में एक बार तीन व्याख्यान दिए। उनके दो पुत्र थे, श्री नृसिंह देव जी तथा श्री अमरनाथ जी।

(२) यह शास्त्रार्थ १२ सितम्बर से १५ सितम्बर सन् १८६६ ई. तक अर्थात् चार दिन तक लगातार होना था परन्तु किन्हीं कारणों वश तीन दिन ही यह शास्त्रर्थ हो पाया था , जिसका विवरण हमने प्रत्येक दिन व दिनांक के हिसाब से अलग–अलग दिया है।

"अमर स्वामी सरस्वती"

मगर मैं मज़कूर फिकरे दोबारा तहरीर करता हूं के मुझको मसायल नकली की तरजीह या गैर तरजीह का कुछ इलम् नहीं, मगर दलायल माकूल बोहत मुसलहसन और काबिले तारीफ थे, और ज्यादा मैं कुछ तहरीर नहीं कर सकता, मगर तक़रीर पण्डितान हुनूद (हिन्दू पण्डित) की गुफ्तगू मसायल अक़ली मेंज्यादे जोर नहीं रखती थी। मगर सवाल आखिरूलज़िकर (पण्डित) आर्य का जवाब पण्डितान् साहब हनूद (सनातन धर्मी पण्डित) ने नहीं दिया।

हस्ताक्षर–

''मोहम्मद जफ़रयाब अली''
(बख़्त्त–इंगरेजी)

७. मैं सभा में मौजूद था, पण्डित की तकरीर अकली बहुत जोर की थी, और एक सवाल का जवाब पण्डित साहब मोसूफ़ का पण्डितान् हिन्दू ने नहीं दिया।

इस्ताक्षर–

''ख्वाजा मोहम्मद हसन''

८. रायबाला से मैं मुत्फ़िक हूं। (ऊपर लिखी राय से मैं सहमत हूं)

हस्ताक्षर–

(मूल कापी में ठीक नहीं पढ़े गये-इसलिए छपे नहीं)

।। इति।।
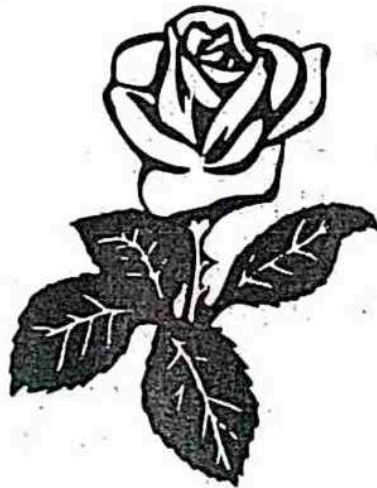
@vaidicbooks

७. शास्त्रार्थ में हवाला व सबूत सत्य शास्त्रों और उलूम मुतफारका के काबिल तसलीम होंगे (जिन किताबों को समाज प्रमाण मानती है) माने जावेंगे, और वह शास्त्र जिनको समाज नहीं मानती उन्हें नहीं माना जायेगा। एवं सवाल जवाब के बीच में किसी को बोलने का अधिकार नहीं होगा। और उसके मुकाबले में मौलवी साहब के लिए कुतुब इस्लामियां (इस्लामी ग्रन्थों) का हवाला दिया जावेगा।

८. मौलवी साहब को कुरान व अन्य मुसलमानों के मान्य ग्रन्थों पर किए गए प्रश्नों को मानना होगा, एवं पण्डित जी को वेद प्रमाण मान्य होंगे।

९. शास्त्रार्थ करने से पहले उसके विषय निश्चित कर दिए जावेंगे।

१०. प्रश्नकर्त्ता एक बारी में दस से ज्यादा प्रश्न नहीं करेगा।

११. सवाल करने वाले को दस मिनट और जवाब देने वाले को पन्द्रह मिनट दिये जायेंगे।

१२. पहले जो साहब सवाल करेगें उनको मुबाहिसे के अन्त में उत्तर का उत्तर देने का अधिकार होगा अर्थात् वह (ग्यारहवीं बार) बोलने का अधिकारी होगा जिसे दूसरे पक्ष वाले को सुनना होगा।

१३. शास्त्रार्थ के अध्यक्ष को अधिकार होगा कि कोई नियम विरुद्ध बात कहने पर झगड़ा आदि होने के डर से शास्त्रार्थ समाप्त कर दें।

१४. शास्त्रार्थ के बीच में जब तक एक सवाल का जवाब न हो जावे तब तक दूसरा सवाल नहीं किया जावेगा। तथा कोई भी वक्ता विषयान्तर में नहीं जावेगा।

१५. नियम तय हो जाने पर दो प्रतियों पर दोनों शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ताक्षर होंगे, और गवाही भी होगी। जिसमें एक कापी (इन्तजाम करने वाले अफसरों) को दी जावेगी।

१६. कोई भी व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो उसे शास्त्रार्थ में आने के लिए अध्यक्ष की अनुमति अवश्य लेनी होगी।

१७. सभा के बैठने का तरीका भी दोनों मतों की सहमति पर होगा।

१८. शास्त्रार्थ की मध्यस्थ आम जनता होगी। और रोज का शास्त्रार्थ रोज ही प्रैस में प्रकाशित किया जावेगा और दोनों तरफ से दस-दस रुपये इसकी छपाई में खर्च वास्ते देने होगें। यह छपाई का भार दोंनों मज़हबों की सहमति से होगा और छपा हुआ मैटर ऐसी जगह पर रखा जावेगा जिसे दोनों पक्ष सुरक्षित समझेंगे।

निवेदक–

दस्तखत – **"जमनादास"** (सभापति)
आर्य समाज (आगरा)

नोट –

मौलवी जहांगीर साहब ने इन नियमों को मन्जूर नहीं किया और न अपने नियम बनाकर भेजे बल्कि ये भी न लिखा कि हमको फ़लां नियम मन्जूर हैं और फलां जगह हम ये तजबीज़ करते है, केवल मुबाहिसा का नाम सुनते ही **''ये नियम सख्त हैं''** कहकर बात को समाप्त कर दिया। और शाम को दो–तीन सौ मुसलमान

शास्त्रार्थ से पहले

मालूम होवे कि पण्डित कृपाराम शर्मा ज़गरानवी १० सितम्बर सन् १८६६ ई० को वास्ते अपील वेद प्रचार फ़न्ड (बुलन्दशहर) से आगरा में आये, और एक विज्ञापन आम जनता के लिए प्रकाशित कराया गया, जब व्याख्यान हो चुका तो मौलवी जहांगीर खां साहब आगरा ने कुछ सवाल किए, जिनका जवाब दिया गया, दूसरे रोज वेद प्रचार फ़न्ड के वास्ते अपील थी, उसके नोटिस दिए जाने पर शाम को मौलवी साहब कई मुसलमान दोस्तों के साथ तशरीफ़ लाए और बातचीत, दरम्यान (बीच) आर्य समाज व मौलवी साहब के साथ होने की ख्वाहिश (इच्छा) जांहिर (प्रकट) की।

पण्डित कृपा शंकर एम० ए०, प्राज्ञशास्त्री सैक्टरी आर्य समाज ने आज के दिन अपील में नुकसान होने के ख्याल से मुबाहिसे के लिए मौलवी साहब को कहा कि आप कल शाम के ६ बजे से ६ बजे तक बाक़ायदा तरीके से मुबाहिसा कर सकते हैं। जिससे आवाम (जनता) को फायदा न पहुंचे उस मुबाहिसे को करना व्यर्थ है, मौलवी साहब ने इस बात को मन्जूर (स्वीकार) कर लिया, और इस बात का आम ऐलान कर दिया गया, परन्तु यह ऐलान बजरिया नोटिस न था, बल्कि जो लोग लैक्चर सुनने आए थे, उन्हीं को जुबानी कह दिया गया, अगले रोज सुबह ही बाबू जमनादास विश्वास वकील प्रेजीडेन्ट आर्य समाज ने कवायद (नियम) बनाकर मौलवी साहब के पास पंडित दौलतराम जी के हाथ भेजे, जिस पर मौलवी साहब ने यह कहकर कि ये नियम सख्त हैं अपने दस्तख़त नहीं किए, वे नियम इस प्रकार हैं–

१. मुबाहिसे के लिए एक वक्त मुकर्रर होगा। दो या ढाई घण्टा प्रतिदिन इस कार्य के लिए नियत होंगे, यानी ६ बजे शाम से साढ़े आठ बजे रात्रि तक।

२. जमायत हर दो जानब (दोनों तरफ के आदमी) दस–दस से ज्यादा न होंगे, और कोई शख्स (व्यक्ति) उनमें जो जामाए फसलियत व अलमीयत से मुबर्रा हो अर्थात् (जो आलिम व फाजिल न हो) उसे उनमें शामिल नहीं किया जाएगा।

३. सिवाय मौलवी साहब और पण्डित साहब के मन्जूर किये बिना किसी को कुछ भी सवालात और जवाब देने का अधिकार न होगा।

४. सभ्यता के खिलाफ कोई बात नहीं कही जाएगी।

५. हर एक तरफ से दो–दो व्यक्ति शास्त्रार्थ को लिखने वाले नियत्त होंगे। पहले सवाल करने वाले के मुंह से जो लफ़ज निकलेंगे उनको लिखकर सुनाया जाएगा। उस पर दस्तख़त सवालकर्त्ता के होंगे। इसी तरह जवाब देने वाले के भी दस्तखत आदि होंगे। और दोनों तरफ के मुबाहिसा करने वालों के हवाले एक–एक पर्चा किया जाएगा।

६. अपने किए हुए सवाल या जवाब में दोनों वक्ता सुधार कर सकते हैं परन्तु पूरे को ही बदलना चाहें तो नहीं बदल सकते।

लिखवाये, जो इस प्रकार थे –

१. जमीन और आसमान के बीच अर्थात् दुनियां में खुदा एक है और उस एक की ही पूजा करनी चाहिए। और जिसने इस सच्चे तरीके की शुरूआत की है उसे अपना मार्गदर्शक नियत करें वह मार्गदर्शक (पैगेम्बर) हजरत मौहम्मद साहब ही हमारे **"रसूल"** हैं। उन्हीं पर ईमान लावें।

२. चौबीस घण्टों में सिर्फ खुदा की इबादत पाँच बार करनी चाहिए। जिसको **"नमाज़"** कहते हैं।

३. वह पवित्र स्थानं जहां से खुदा का नाम शुरु होता है, जिसे **"बैतुल्ला"** (अल्लाह का घर) कहते हैं मालदार मुसलमान जाकर उनके दर्शन करें। अर्थात् **"हज़"** करें।

४. मालदार व्यक्ति गरीबों को खैरात देवें जिसे **"ज़कात"** कहते हैं।

५. अपनी कामवासना को मारने के लिए हर साल एक महीना **"रोजे"** रक्खे। इस्लाम के अन्दर ये पांच फर्ज़ हैं। जिनमें से एक को भी इन्कार करने वाला **"काफ़िर"** माना जाता है।

नोट –

वो किताव जो इन पांचों उसूलों (नियमों) को बताती है, वह और जो खुदा की भेजी हुई है उसको **"कुरआनशरीफ"** कहते हैं।

दस्तखतकर्त्ता –
खादिमउल्कौम (इस्लाम का सेवक) –
"मौलाना अबुल फ़रह" पानीपती
सैक्रेट्री–कैशरी यतीमखाना (आगरा)

आर्य समाज के उसूल (नियम) –

आर्य समाज के सिद्धान्त में एक सर्वव्यापक परमात्मा की उपासना करने और दूसरे इन्सान को उपासना में दखल न देने और ईश्वर के निर्देशों को जो चारों वेदों से सृष्टि के आदि से अन्त तक बगैर किसी परिवर्तन के अपने बनाने वाले के सर्वज्ञता और पूर्ण ज्ञानको बताते हैं। उसके अनुसार अमल करना है। जिसके अन्दर कर्म, उपासना, ज्ञान, जीव के मलविक्षेप और आवर्ण रुप दोषों को दूर करने के वास्ते बतलाये गए हैं। उसके अनुसार कर्म करने से आंर्य समाज **"नज़ात"** (मोक्ष) मानता है।

नोट –

इस पर मौलवी साहब ने अव्वल तो ये सबब हिन्दी और संस्कृत भाषा के न जानने के कारण बहुत से शब्दों को न समझकर मौलवी साहब ने अर्थ पूछने आरम्भ किये। जब वो बतला दिए गए तो हवाला मांगा कि वेद के किस अध्याय में लिखा है ? तो उनको हवाला यजुर्वेद अध्याय ३१ का दिया गया। नाज़रीन, हम कल शास्त्रार्थ आरम्भ करने से पहले ये बतलाना चाहते हैं कि जनाब मौलवी साहब ने अहले इस्लाम के रास्ते में उनके नियमों के विरुद्ध चलकर किस कदर कांटे बोये हैं ?

आज तक जिस कदर मौलवी साहेबान ने हमसे बातचीत की, ये कभी नहीं माना कि इस्लाम की नींव

भाईयों के साथ आर्य समाज मन्दिर में तशरीफ़ लाये। और उस वक्त भी मौलवी साहब ने नियम तय करने में वक्त टालना चाहा, सिर्फ इन नियमों के विरोध में लेक्चर शुरु कर दिया। जिसका जवाब पण्डित कृपाशंकर M.A. जी ने बहुत ही अच्छे रुप में दिया, लेकिन मौलवी साहब ने नियम सख्त बतलाकर मुबाहिसे से किनारा करना चाहा, चूंकि लोग मुबाहिसा की खबर सुनकर बहुत संख्या में आये थे, इस वास्ते आर्य समाज ने यह मुनासिब न समझा कि अपने क़ायदे (नियमों) पर जिद (हठ) करें हालांकि वह नियम दोनों के वास्ते हर तरह ठीक थे। जिनसे मौलवी साहब बहाना बनाकर मुबाहिसे से पिण्ड छुडाना चाहते थे, इस पर आर्य समाज ने उनको कहा कि जैसे भी आप चाहें करें, परन्तु जिस तरह भी हो सके शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे। इस वास्ते जो नियम मौलवी साहब ने कहे उन्हीं पर शास्त्रार्थ करना मन्जूर कर लिया। नियम जो शास्त्रार्थ के लिए पुनः नियत्त हुए वह निम्न प्रकार हैं।

१. जो भी पक्ष जिस विषय पर बोले वह उसे प्रमाण सहित सिद्ध करे।

२. बोलते समय कोई गलत बात न कही जावे जिससे पूर्वजों की बेइज्जती हो।

३. बहस मूल बातों को मद्देनज़र रखकर की जावेगी, इधर-उधर की बातों (विषयान्तर) पर नहीं होगी।

४. जब शास्त्रार्थ में किसी पुस्तक का प्रमाण दिया जायेगा तो उसे पुस्तक से पढ़कर सुनाना होगा। यदि पढ़ न सके तो सिर्फ उसका अर्थ बताना होगा और वह अर्थ कहां लिखा है ? उस किताब को भी दिखाना होगा।

५. जो सवाल हमारी तरफ से होंगे उनका जवाब तुमको देना होगा, और जो वे पेश करेंगे उनका जवाब मैं दूंगा।

६. प्रश्नकर्त्ता तीन बार बोलेगा, और जवाब देने वाला दो बार बोलेगा, यानी सवाल करने वाला सवाल करेगा, एवं जवाब देने वाला जवाब देगा, सवाल करने वाला आखिरी ज़िरह (बहस) करेगा, जवाब देने वाला उसका जवाब नहीं देगा।

७. एक दिन अहले इस्लाम की तरफ़ से सवाल होंगे, दूसरे दिन आर्य समाज की तरफ से। अगर उस दिन कोई बात अधूरी रह जाएगी तो सोमवार का दिन दोनों पक्षों के लिए होगा।

८. सवाल करने वाले को दस मिनट तथा जवाब देने वाले को पन्द्रह मिनट का समय दिया जाएगा। इन नियमों के लिखे जाने के बाद ये तय हुआ कि नजात (मुक्ति) के वास्ते जो नियम दोनों मजहबों में हों वह लिखे जावें, ताकि उस पर बहस हो सके उस पर अहले इस्लाम ने अपने उसूल (सिद्वान्त) लिखवाये, चूंकि इन्तज़ाम ज़रूरी के वास्ते यह बात आवश्यक समझी गई कि कोई दूसरा न बोल सके। इस पर मौलवी जहांगीर साहब ने कहा कि-सहायता लेना आवश्यक है, इस पर श्री पण्डित कृपाराम शर्मा जी ने कहा कि बस एक-एक व्यक्ति ही बोलेगा दूसरे की मदद नहीं ले सकेगा, इस पर बहुत देर तक मौलवी साहब ने कोशिश की लेकिन, जब यह तय हो गया कि दूसरा आदमी इम्दाद नहीं देगा तो मौलवी जहांगीर साहब को अहले इस्लाम ने अलग कर दिया और वह खुद अपनी कमजोरी को समझकर अलग हो गये और उनकी जगंह **"मौलवी अबुल फ़रह साहब पानीपती"** (सैक्रेटरी, यतीमखाना, आगरा) नियत्त हुए। मौलवी अबुल फरह साहब ने आते ही इस्लाम के उसूल

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती –

हाज़रीन जलसा ! आप साहिबान् को यह मालूम है कि फलाँ मन्त्र और फलां अध्याय से यह लिखा गया है कि–यजुर्वेद या सभी वेद किस वक्त में किस ऋषि पर रचे थे, उस ऋषि की जीवनी बताओ ? कि वह किस जगह का रहने वाला था और क्या उम्र उसने पाई ? और किस–किस शहर में उसने मुनादी की और कौन–कौन उसकी मुनादी से वेद के जानने वाले हुए और उनके नाम और उनके शार्गिद (अनुयायियों) के नाम की जिन्होंने उनको तालीम दी, और इस बात का सबूत भी पेश करो कि वो तुम तक, सिलसिलावार कैसे पहुंचा ? और इस बात का सबूत दो कि सबसे पहली कौन किताब है ? चूंकि ये तवारीखी सवाल है, इसलिए पण्डित जी तवारीख खोलकर दिखावें अन्यथा और कोई जवाब नहीं माना जायेगा।

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

वेद–अग्नि, वायु, अगिंरा, आदित्य इन चार ऋषियों पर दुनिया के आरम्भ में उतरे। तवारीख बारह सो या दो हजार साल से ज्यादा की नहीं मिल सकती, वेद को नाज़िल (उतरे) हुए एक अरब छयानवें करोड़ से ज्यादा हुए, तवारीख का ऐसे–ऐसे विषयों में दखल (नोट) नहीं हो सकता। क्योंकि उस समय सृष्टि का आरम्भ था, जो ऋषि सृष्टि के आरम्भ में उनके बाद पैदा हुए उनको सिखलाना, या देना, या उतरना जो (तिब्बत) देश में हुआ। जो सबसे ऊंचा देश माना जाता है। क्यों कि उस समय दूसरे देश पानी में से निकले ही न थे, और न ही कहीं पर किसी जगह आबादी थी। इस वास्ते उन्होंने अपने चेलों को पढ़ाया जो आज तक सिलसिले वार चला आता है। जिसकी वजह से वेद श्रुति कहलाते हैं, चूकि वेदों में किसी व्यक्ति का जिकर नहीं और ना ही कोई इन्सान उसके बनाने वाला साबित हुआ, इस वास्ते उसके क़दीम (पुराना) होने में कोई शक (संशय) नहीं। उन ऋषियों का चाल–चलन योग समाधि और वेदों का प्रचार करना था, **''ज़िन्दावस्था''** वगैरा किताबों में वेदों का नाम मौजूद है, और **''तौरेत''** वगैरा में **''ज़िन्दावस्था''** के मानने वाले आतिश परस्तों (अग्निपूजकों) का जिकर है और इन्जील, जबूर, कुरान में तौरेत का जिकर है, लेकिन वेद में इन किसी का कहीं भी जिकर नहीं है। जिससे पता चलता है कि वेद इन सबसे पहले के हैं। चूकि वेदों का एक–एक अक्षर अपने आप में सुरक्षित है, जिससे वेदों को (गवाही) की कोई जरुरत नहीं है। इसलिए वेदपाठी वेद को एक जैसा ही बोलते हैं।

मौलवी श्री अबुलफरह साहब पानीपती –

हज़रात सामईन् ! (उपस्थित सज्जनों) सोचो !! कि पण्डित जी साहब ने जो वाज किया (कहा) है कि वेद जो तिब्बत में हुए तो वह पहले किस भाषा में थे ? उसकी तारीख दिखाओं, में जुबानी नहीं मानता। हमारे यहां कुरान में मौहम्मद साहब की सवानेउमरी (जीवनी) लिखी हैं जब वेद क़दीम (प्राचीन) है तो खुदा और ऋषि क़दीम (प्राचीन) थे, इसलिए उनकी तारीख़ दिखाओ, अन्यथा बनावटी बात मानी जायेगी। जीवनी, अर्थात् तारीख आदि अगर उनके हाथ की लिखी नहीं है तो हम सही नही मानते। दयानन्द सरस्वती ने चारों नाम घड़ दिए हैं कोई व्यास को चारों वेदों का निर्माता कहता है, चारों वेदों को हिन्दु मानते हैं। परन्तु उनके बनाने वाला कौन है ? इसमें मतभेद हैं। जब तक किसी व्यक्ति का चाल–चलन न पता हो तो उसे खुदा की पुस्तक दी गई, ऐसा नहीं मानते। कई लोग कहते हैं कि वेद में सच्ची तालीम है, परन्तु हम कहते है कि सच्ची तालीम (शिक्षा) **"इन्जील और कुरान''** में हैं। 'किस्सा' कहानी का बयान अगर किसी किताब में न हो तो क्या वह खुदा की बनाई हुई मानी जायेगी ? अगर वेदों के प्रकाश

मुहम्मद साहब ने डाली, बल्कि आदम तक इस्लाम को लेजाकर प्राचीन साबित करने की कोशिश की। यहां तक कि हमने जब इस्लामी नियमों के अनुसार इस्लाम की शुरुआत मुहम्मद साहब से बतलायी तो क़ाजी–जुहरुल्लहसन साहब (स्योहारवी) ने जिनका खिताब उनसे चार गुणा ज्यादा है, उसकी तरदीद (खण्डन) की। लेकिन शुक्र है कि मौलवी अबुल फरह साहब ने हमारे इस एतराज को कबूल कर लिया है कि इस्लाम की बुनियाद (नींव) डालने वाले हज़रत मोहम्मद साहब हैं। चूंकि दोनों मौलवी साहब इस्लाम की तरफ से वकील होकर आर्य समाज के खिलाफ़ बहस कर रहे हैं, एक इस्लाम को आदम तक ले जाकर क़दीम (प्राचीन) बनाना चाहता है, दूसरा इस्लाम जो मुहम्मद साहब ने नींव डाली ऐसा कहता है। इस वास्ते मौलवी साहेबान को चाहिए कि पहले अपने घर में फैसला कर लें कि मोहम्मद साहब इस्लाम की बुनियाद डालने वाले हैं या नहीं ? या तो मौलवी अब्दुल् मजीद साहब क़ाजी जुहरूल्लहसन साहब के दावे को झुठा साबित करके अपने दावे को सही साबित करें या काज़ी साहब, मौलवी साहब के दावे को गलत साबित करके अपने दावे को सही साबित करें।

दूसरी बात यह है कि आज तक किसी अहले इस्लाम का यह दावा नहीं है कि **''खुदा का नाम मक्का से शुरु हुआ''** और उससे पहले खुदा का नाम नहीं था। जहां तक इस्लामी रिवायातों (परम्पराओं) से पता मिल सकता है, तो मक्का का बनना इब्राहीम पैगम्बर तक माना जा सकता है, क्या हमारे मुसलमान दोस्त इस बात क़ो कबूल करने को तैयार हैं कि मक्के से ही खुदा का नाम शुरु हुआ ? इससे पहले न था। अब हम असल मुबाहिसा जो तारीख १२ नवम्बर को हुआ उसे लिखते हैं। चूंकि यह दिन मौलवी साहब के सवालात् के वास्ते निश्चित हुआ था, इस वास्ते मौलवी साहब ने सवाल आरम्भ किए– आगे आप भी इस मुबाहिसे को पढ़कर अपना ज्ञानार्जन करें।

" सम्पादक "
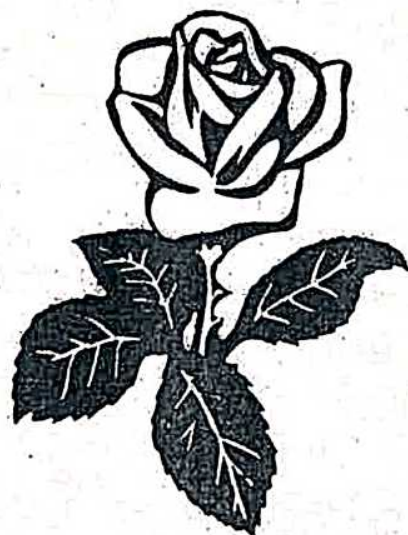
बत्तीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "आगरा" आर्य समाज, मोतीकटरा (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : १३ सितम्बर सन् १८९९ ई० (दूसरा दिन)
विषय : इलहामी पुस्तक कौन ? वेद या कुरान !
शास्त्रार्थकर्ता आर्यसमाज की ओर से : पंडित कृपाराम जी ज़गरानवी (स्वामी दर्शनानन्द जी)
शास्त्रार्थकर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलाना अबुलफरह साहब पानीपती
सहायक : मौलवी जहांगीर खां साहब, मौलाना अब्दुलमजीद साहब
काज़ी जुहुरुल्लहसन साहब,
आर्यसमाज के मन्त्री : पंडित कृपाशंकर शर्मा एम० ए०, प्राज्ञशास्त्री
आर्यसमाज के प्रधान : बाबू जमनादास बिश्वास "वकील"
सभापति : श्री जोज़फ फारनन्
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री जलसा ब्राबू

करने वाले ऋषि एक ही जमाने में हुए तो बताओ किस मुल्क में हुए ? उनकी जीवनी आदि बतलाओ अगर कोई तवारीख न थी तो एक अरब छयानवें करोड़ साल से ज्यादा होने का हाल कैसे मालूम हुआ ? मेरा सवाल त्वारीख से सम्बन्ध रखता है। जब तक सही समय व तारीख आदि नहीं बतलायेंगें तो तब तक मैं अन्य कोई जवाब नहीं मानूंगा।

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

मौलवी साहब ने जो वेदों के नाजिल (प्रकट) होने में जो अलग–अलग राय बतलाई और वेदों के होने में तारीख़ का सबूत मांगा, और ये कहा कि ''कई लोग कहते हैं कि वेद महर्षि व्यास जी ने बनाये हैं'' मौलवी साहब इस बात को हवाला देकर बतलायें कि **"वेद' - व्यास कृत हैं"** क्योंकि ये बात आज तक किसी हिन्दू के द्वारा नहीं कही गई। वेदों के (परमात्मा कृत) होने में कुल हिन्दू और आर्य एक मत हैं। जो मैंने बयान किये हैं। आपने जो एक अरब छयानवें करोड़ का सबूत मांगा, तो उसका सबूत नित्य पता यानी **''अहले हनूद''** (हिन्दुओं की जन्त्री) से मिलता है। जिसमें हर रोज़ एक दिन घटता और बढ़ता रहता है। जिसके हिसाब सही होने का सबूत ग्रहण वगैरा हैं। क्योंकि हिसाब मे एक भी गलती हो जाये तो सारा हिसाब ही गलत हो जाता है। लेकिन आज तक ज्योतिष का हिसाब ग्रहण वगैरा के सम्बन्ध मे गलत साबित नहीं हुआ। जिससे एक अरब छयानवें करोड़ साल से ज्यादा समय से दुनिया की पैदायश व वेदों का होना साबित होता है। हर एक बात के वास्ते जो दुनिया के आरम्भ से सम्बन्ध रखता है, उसमें अक़ली और इल्मी सबूत जरुरी है। तवारीख़ की ज़रूरत नहीं। क्योंकि तवारीख़ में हर बात लिखी नहीं जाती। आप इस बात का सबूत किताबी रूप में पेश कीजिए कि **"वेद"-व्यास जी ने बनाये"** क्योंकि पहले ही नियमों में यह लिखा जा चुका है कि हर एक को अपने दावे का सबूत पेश करना होगा।

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती –

अफ़सोस ! मेरे सवाल को गौर से न सुना, या मैं ये समझूं कि मेरे जवाब कान लगाकर न सुने गये मेरा सवाल ये था कि तारीख से सबूत दीजिए कि **'' वेद किस ऋषि पर नाज़िल हुए''** ? तथा कौन से मुल्क में ये ऋषि थे ? एवं एक ही ज़माने मे वेद उतरे हैं या अलग–अलग समयों में ? ऋषियों ने किन–किन को पढ़ाया उनका सिलसिला बताओ ? ये वही वेद हैं जो ऋषियों पर उतरे थे इस बात का क्या सबूत (प्रमाण) है ? अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा नाम किसी वस्तु के हैं या किन्हीं ऋषियों के हैं तथा एक करोड़ की तारीख बतलाइये ? कि तुम पर ये वेद किस तरह सिलसिलावार पहुंचा ? भाईयों ! पंडित जी ने मेरे सवाल के उत्तर में कोई भी तवारीखी सबूत पेश नहीं किया, और ना ही ऋषियों के पैदा होने की जगह बतलाई, सिर्फ नाम बतलाये हैं, जबकि ऋषि कदीम थे, और खुदा भी कदीम था। तो तीन कदीम हो गये, (वेद, ऋषि और खुदा) और उन देशों का नाम जिनमें ये ऋषि पैदा हुए थे, नहीं बतलाया, मुल्क तिब्बत बतलाया तो उसे साबित करें ? और ऋषियों का पाक होना भी साबित करें, एवं, उनके बचपन, जवानी, और बुढापे का हाल साबित करें। भाइयों ! पण्डित जी साहब ने मेरे किसी भी सवाल का माकूल जवाब पेश नहीं किया।

नोट –

बावजूद इसके कि इस बात का जवाब पहली बार दिया गया था, कि अंगिरा आदि ऋषि मुल्क तिब्बत में हुए, अगरचे सवाल से इसका कोई खास सम्बन्ध नही था लेकिन आर्य समाज को अपनी सच्चाई जाहिर करनी थी, इसलिए मौलवी साहब के मामूली से मामूली सवालों का जवाब भी दिया गया। जिस प्रकार समय नियत था १५ मिनट, उसी समय के अनुसार उत्तर भी दिया जाता रहा। नियम के अनुसार मौलवी साहब तीन बार कह चुके, और हमें इसके बाद बोलने का हक नहीं था, इस वास्ते अन्त में उनके सवालों का जवाब नहीं दिया गया। ये सवाल मौलवी साहब को चाहिए था कि प्रथम बारी में ही करते, जबकि जवाब देना शेष था, तो इनके जवाब दिए जा सकते थे। परन्तु मौलवी साहब ने उस समय ये सवाल नहीं किये। उसके बाद दूसरे दिन का मुबाहिसा शुरु हुआ जिसमें आर्य समाज की ओर से अहले इस्लाम पर सवाल होने थे।

पेश नहीं किया। परन्तु मैं अब अपनी बात का जवाब देने से पहले सबूत पेश करता हूं–देखिए–कुरान पहले आयत पांच पारा की सातवीं आयत मे लिखा है– (इसी प्रकार मौलवी साहब ने कई आयतों के पते लिखवा दिए) – और कहा कि पैगम्बर की जरूरत के विषय में जो ऋषियों की आवश्यकता है वही पैगाम्बर की है। अर्थात् जो ऋषियों के विषय में आपका जवाब था, वही पैगाम्बरों के विषय में हमारा जवाब है। हमें अफ़सोस है कि आपने कुरान व तौरेत को पढ़कर नहीं देखा। कि क्या कमी थी, क्योंकि ये बहस उसूल से निकल गई है। इसलिए मैं इस वास्ते दूसरा समय निश्चित करूंगा। क्योंकि ये बहस पांच उसूलों के अन्दर नहीं है जो मुबाहिसा शुरु करने से पहले नियत किए थे। तो **''खुदा को मक्कार और दगाबाज कहा गया है''** जिस वक्त आप कुरान पढ़ेंगे तो यह छोटी सी बात आपको मालूम हो जायेगी, जब १३०० साल से इस्लाम आरम्भ हुआ तो उससे पहले नजात (मुक्ति) का क्या तरीका था? नियम से इस बहस का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर मैं बहस करना चाहूं तो मैं आर्य समाज के पचास व्यक्तियों पर आक्षेप कर सकता हूं। लेकिन मैं नियम से गिरूंगा नहीं। इसलिए आप भी कान खोल कर सुन लें अर्थात् पुनः याद दिलाता हूं कि बहस नियम के अन्तर्गत ही करें। हमारा नियम यह है कि एक खुदा की परस्तिश (पूजा) हो। **आप हमारे यहां खुदा की परस्तिश बताओ कहां होती है?** पांच वक्त की नमाज के विषय में, जकात (खैरात) देने के विषय में, अफसोस! कि ये अधूरा सवाल रह गया, आदम का बहिश्त से गिरना, और सीढ़ी वगैरा का इस्लाम के नियम से कोई सम्बन्ध नहीं, आप अगर इस बात को यूं कहें कि **''हम पूछते हैं''** जब कल के नियमों में यह बातें तय हो गई कि बहस नियमान्तरर्गत होगी, तो जो पांच नियम इस्लाम के तय हुए हैं उनके अनुसार ही बहस करें। आदम को नमाज़, रोजा, खाना, काबा और खुदा वगैरा से क्या ताल्लुक है? मुझे संख्त अफसोस है। मैं हर्गिज़–हर्गिज़ जवाब नहीं दूंगा। प्रधान जी खड़े होकर इन्साफ करें।

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

आपने नोट में लिखवा दिया था कि कुरान शरीफ़ को हम कलामे इलाही (खुदाई किताब) मानते हैं, और जो व्यक्ति कुरान पर सन्देह करता है, वह आपके ख्याल के अनुसार **"काफ़िर"** है। इस वास्ते कुरान शरीफ़ का सम्बन्ध उसूल (नियम) से हैं, दूसरे आदम के सिजदा के कुरान में होने से शर्क की बहस जारी है। जो पहले नियम से सम्बन्धित है। इस वास्ते आदम के मुताल्लिक (सम्बन्ध में) बहस करना नियम के खिलाफ़ नहीं है। मौलवी साहब कल बावजूद इस बात के बता देते कि वैदिक धर्म के मानने वाले वेद और शास्त्रों के प्रमाण मानेंगे लेकिन अपने खिलाफ़ नियम वेद व शास्त्र को छोडकर तवारीख का सबूत मांगा था। जो कि बिल्कुल नियम विरुद्ध था। आज कुरान शरीफ़ के अन्दर विषय की सच्चाई जानने के लिए सबूत देने से इन्कार किया जाता है। मैं पूछता हूँ यह कहां का इन्साफ है?

मौलवी श्री अबुलफरह साहब पानीपती –

मैंने कल अपने बयान में पांच उसूल कुरान के लिखवा कर कहा था कि कुरान के अन्दर ये नियम इस्लाम के हैं, अगर उसके भेजे हुए, रसूल, रोजा, नमाज़, जकात, और हज्ज़ ये पांच को जो न माने वह काफ़िर हैं। अगर किस्सों पर बहस की जावे तो इस हिसाब से कुरान में मूसा का किस्सा भी तथा औरों का भी है। आदम के किस्से का और हमारी नजात (मुक्ति) से कोई ताल्लुक (सम्बन्ध) नहीं। वेद में हर एक ज्ञान का जिकर है, अगर बहस की जावे तो मैं सब लोगों के सामने ये कहता हूँ कि वेद जिसको ईश्वरकृत मानते हो तो पहले उनके **''मन्त्र ईश्वरकृत है''** इसका प्रमाण (सबूत) दो। जिसमें थोड़ी भी समझने की बुद्धि होगी वह जान लेगा कि आदम के किस्से से इसका क्या सम्बन्ध है? किस्से तो ''ईसा, मरियम, नूह, जिकरिया, मूसा'' सबके हैं, ये मैं भी जानता हूँ और यह भी कि ये बहस फ़रूआत् (विषय से बाहर) से है। एक खुदा की इबादत कुरान शरीफ़ के खिलाफ साबित कीजिए तो मैं निहायत खुशी से उस पर गौर करके आपको जवाब देने को तैयार हूँ। जब कुरान या वेद का सबूत (प्रमाण)

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

चूंकि मौलवी साहब ने जो उसूल (नियम) अहले इस्लाम के बतलाए हैं उनका खण्डन खुद उनकी पुस्तक कुरान शरीफ़ से होता है, इस वास्ते इस्लाम बजाये खुदापरस्ती के शर्क (मौहम्मद साहब को शामिल करना) अर्थात् अल्लाह के साथ मौहम्मद साहब को भी जोडने की शिक्षा देता है। उसके खुदाई कलाम (वाक्य) होने में हमारे निम्न एतराज हैं–

१. जो व्यक्ति मकर (मक्कार) दगा करने वाला, कर्ज मांगने वाला, और कसमें खाने वाला हो तो क्या उसे खुदा कहा जा सकता है ?

२. कुरान शरीफ १३०० साल से नाजिल (पैदा) हुआ, उससे पहले दुनिया की नजात (मुक्ति) का क्या तरीका था ? अगर मुसलमान भाई ये कहें कि कुरान शरीफ से पहले इन्जील और इन्जील से पहले जबूर, और जबूर से पहले तौरेत, थी, तो ये बतायें कि आदम से लेकर मूसा तक लोग किस किताब पर अमल करते रहे अर्थात् किस किताब के आदेशानुसार चले ? अगर कोई किताब थी तो उसे पेश करें। अगर कोई किताब न थी तो खुदा की जात पर अर्थात् खुदा पर बेइन्साफी (अन्याय) का इल्जाम (दोष) लागू होता है। क्योंकि आदम से लेकर मूसा तक जिस क़दर आदमी हुए उनको नजात (मुक्ति) का तरीका ही न बतलाया और मूसा पर तौरेत नाजिल की (उतारी)। और ये भी बतलायें कि खुदा तौरेत में क्या लिखना भूल गये थे, जिसको पूरा करने के वास्ते जबूर भेजी, और जबूर में क्या कमी रह गई थी कि जिसको पूरा करने के लिए इन्जील भेजी। तौरेत जबूर, और इन्जील में ऐसा कौन सा इल्मी उसूल (ज्ञान का सिद्धान्त) न था जिसको बतलाने के वास्ते कुरान शरीफ आया जबकि कुरान के बनाने वाले ने बार–बार अपने विचारों को गलत समझ कर उनको रदद् किया। तो अब उसके सही होने का क्या सबूत है ? और हज़रत मौहम्मद साहब को जो पैगाम्बर माना जाता है, पैगाम्बर के माने पैगाम (संदेश लाने वाला) और पैगाम (संदेश) हमेशा फासला (दूरी) से आया करता है। तो बतलायें कि खुदा और इन्सान के बीच कितना फासला है, जिस वास्ते सन्देश लाने के लिए पैगाम्बरों की जरुरत पड़ी ? और जो खुदा सबका बनाने वाला एवं सब कुछ बनाने वाला, और सबको चलाने वाला, उसको फरिश्तों का मोहताज (आधीन) होना पड़ा, और आदम को जमीन पर अपना नायब निश्चित करके फरिश्तों को शर्क (मौहम्मद साहब को अल्लाह के साथ मिलाकर) की तालीम देनी पड़ी।

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती –

हज़रात सामईन ! (उपस्थित सज्जनों), मैंने अपने कल के बयान में ये बात लिखवा दी थी कि शास्त्रार्थ नियमानुसार होगा, और दोनों पक्ष नियम से ही मुबाहिसा करेंगे बिना नियम के नहीं। और हमने ये सब उसूल की बातें पहले ही लिखवा दी थी। परन्तु हमें अफ़सोस है कि उन सबको भूला कर पण्डित साहब ने वो गुब्बार जो पण्डित जी के दिल व दिमाग में भरा हुआ था इजहार (जाहिर) कर दिया। और हमारे सारे इस्लामी उसूलों को ध्यान में नहीं रक्खा। हमें लगता है कि पण्डित जी ने उन सब बातों को भुला दिया है। लिहाज़ा मैं इस गुफ़्तगू का जवाब एक ही लफ़ज में दूंगा। **''भाई ये काम ज़िद का नहीं है बल्कि इन्साफ का है''** और यहां सब लोग बैठे हैं, और पण्डित साहब ने लिखवाया है कि कुरान शर्क की तालीम देता है। मैंने कल नियम में लिखवाया था कि कोई भी बात बिना सबूत के पेश न की जावे। परन्तु मुझे अफ़सोस है कि पण्डित जी ने कोई सबूत

(महसूसियत) जो कि जवाब न देने से जाहिर हुआ, देखा जावे तो यह खुद जाहिर करता है, अगर कुरान की इन आयतों को जिनमें शर्क को मना किया है, मान लिया जावे। और जिन आयतों में आदम को सिजदा का हुकम है उन्हें भी मान लिया जावे तो मुतजाद (परस्पर विरोधी) हुकम के होने से कुरान को खुदाई होने में और उससे कभी वाक़या (दोष) होता है, कि वह स्वयं ही अपनी बात को आप काटता ही रहा। यह कि कोई शख्स अपने अज़ीज (प्रिय) की क़सम खाये तो क्या हर्ज है? लेकिन कुरानी खुदा ने तो दौड़ने वाले घोड़ों की क़सम और ज़मीन व उसके बिछाने वाले आदि ऐसी बहुत सी चीजों की कसम खाई है जिसको मौलवी साहब खुदा का अज़ीज साबित नहीं कर सकते। और ज़मीन को बिछाने वाला सिवाय खुदा के अन्य कोई दूसरा नहीं। फिर खुदा होते हुए उसे जमीन के बिछाने वाले की कसम खाने का क्या प्रयोजन है? और साथ ही यह भी लिखा है कि **"कसम खाने वाले का ऐतबार नहीं होता।"** बशर्ते के वो दलील हो, जो बहुत मक्कार है और मकर की आदत रखता है उसके ज़लील (बुरा) होने में क्या शक (सन्देह) है? क्योंकि मकर (दगा) के वास्ते दफ़ा ४१७ (चार सौ सत्तरह) नियत्त है, इसलिए जो दगा–फरेब करता है उसकी सदाकत (सच्चाई) किसी चीज से साबित नहीं हो सकती। और कुरानी खुदा ने कुरान की सच्चाई के वास्ते खुद कसमें खाई हैं जो कुरान ही से काबिल सबूत नहीं रहती। इसलिए मौलवी साहब का दावा अक्ली दलील से, जिससे मुद्दल्लिल (दलील के साथ) करके दिखाना चाहिए था गिरा हुआ है।

मौलवी साहब से ये मेरा सवाल है कि आप किसी प्रामाणिक तवारीख से यह सबूत दें कि आदम कितने दिनों तक बहिश्त (स्वर्ग) में रहे? और जब बहिश्त से गिराये गये तो किस सन् और किस तारीख को गिराये गये? और जब बहिश्त से हज़रत गिरे थे तो उनकी उम्र क्या थी? और वो बहिश्त जिससे हज़रत आदम गिराये गए थे वह जमीन पर थी या आसमान पर? और गिरते समय वो किसी सीढ़ी के द्वारा गिरे थे या उन्हें ऐसे ही धकेल दिया गया था? इसका प्रमाण आप किसी प्रामाणिक पुस्तक से दीजिए। सिर्फ मुसलमानों की लिखी किताब सबूत के काबिल नहीं मानी जावेंगी।

नोट –

इस पर ये आज का दिन भी समाप्त हो गया और अगले दिन मौलवी साहब ने वेदों पर ऐतराज किए। और उस रोज अन्त में यह बात भी तय हो गई कि अगले रोज़ से – **"वेद के इल्हामी किताब होने और कुरान के इलहामी किताब होने पर"** बहस की जावेगी, यह बात आम तौर पर सभी श्रोताओं के सामने तय हो गई। और उसके अनुसार अगले दिन मौलवी साहब ने वेदों के इलहाम होने की बाबत बहस की। और इस बात का प्रमाण मांगा कि इलहामी पुस्तक में क्या प्रमाण होना चाहिए? और ये भी जिस क़दर मौलवी साहब से हो सका वेदों के विषय में बहस की गई, जिस बहस को श्रोतागण तारीख की बहस से अच्छी तरह मालूम कर सकते हैं। लेकिन जिस रोज मौलवी साहब से कुरान की छानबीन के वास्ते सवाल करने का निश्चय हुआ था, उस दिन उन्होंने इज़ाजत (स्वीकृति) ही न दी, जिससे आम जनता को मालूम हो गया कि मौलवी साहब कहाँ तक हक पसन्द (सच्चाई को पसन्द करने वाले) थे? या उन्होंने ज़िद की, अगचें मौलवी साहब ने स्वयं लिखवाया था कि – **"ये काम जिद का नहीं इन्साफ का है"** और आर्य समाज ने आरम्भ से ही तहक़ीक़ात (छानबीन) को ही मद्देनज़र (ख्याल में) रखकर अपने बनाये हुए कुल कायदों (नियमों) के खिलाफ़ (विरूद्ध) मौलवी साहब ने अपने बनाए हुए नियमों के अनुकूल बहस मन्जूर की लेकिन मौलवी साहब ने अपने नियमों को खुद ही तोड़ दिया, और तहक़ीक (सच्चाई) से किनारा किया। उसका हाल सभी वहां उपस्थित सज्जनों को मालूम है। इस वास्ते ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रधान –

"जमना दास विश्वास"

(वकील)

दिया जावे तो उसके साथ तवारीख़ का सबूत ज़रूरी देना होगा। अग्नि, वायु, आदित्य, अगिंरा का जमाना, वेद का सिलसिला, आदिं के साथ तवारीखी सबूत दो, हम भी कुरान से इसी से सम्बन्धित प्रश्न के जवाब में तवारीख सहित जवाब देगें, आप अक़ली, नक़ली, या दलीली, कोई तो सबूत दीजिए जनाब !

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

आपने पहले दिन आर्य समाज के नियम पर बहस नहीं की थी, बल्कि उसूलों के बजाय वेदों पर बहस की थी, इसलिए पांच नियम कुरान के अनुसार आपने बतलाये, इस वास्ते केवल कुरान पर ही बहस की गई है। क्योंकि जो इन पांचों का मूल है मूल के ग़लत हो जाने से सब उसूल ग़लत हो जायेगें। चूंकि नमाज़ में सज़दा होता है, और फ़रिश्तों को भी आदम के लिए सज़दा करने का आदेश दिया गया है। ये मैं भी जानता हूं कि ये पुराना किस्सा है लेकिन इसका उसूल से ताल्लुक है, क्योंकि जैसे इबलीस ने आदम को सिज़दा नहीं किया तो वह काफ़िर हो गया, अगर सिज़दा करने का हुक्म खुदा की तरफ से न होता सिर्फ किस्सा ही होता तो उसका उसूल से ताल्लुक न होता, लेकिन खुदा, खुद सिज़दा का हुक्म दे, और सिज़दा न करने वाले को सज़ा दे जिस तरह सरकार किसी फेल (हुकम) के न मानने पर सज़ा दे तो वह फ़ेल सरकार का हुकम माना जाता है। इस वास्ते जब खुदा ने आदम को सिज़दा न करने पर इबलीस को सज़ा दी तो ये सिज़दा, खुदा का हुकम था, और जो खुदा का हुकम है वही उसूल है यानी **''कसमों से शर्क साबित नहीं किया था, ब्लकि ये कहा था जो शख्स "कसमें खाता है" वो खुदा कैसे हो सकता है"** ? खुदाबन्द करीम कसमें खाकर यकीन दिलाने वाला **''खुदा नहीं हो सकता''**। क्योंकि कहा भी है ? कि **''कसम खुर्दन खुदरा कसम साख्तन् अस्त''** कसम खाना अपने आपको सन्देहयुक्त सिद्ध करना है। खुदा को किसी कसम खाने की ज़रूरत ही नहीं वो हर एक दिल में जिस ख्याल को चाहे डाल कर यकीन दिला सकता है।

आप सबको मालूम हो गया होगा कि किसी विद्वान् को **''कसम''** (शपथ) उठाकर समझाने की ज़रूरत नहीं होती वह तो दलीलों से समझा सकता है। आपने जो ऋषियों पर वेद के इलहाम होने और पैग़ाम्बरों के आने का मुकाबला किया ये ठीक नहीं है। क्योंकि वेदों में यह नहीं लिखा कि– **"फ़रिश्ते पैगाम लेकर आये''** ब्लकि वहां पर तो परमेश्वर के हर जगह मौजूद होने से उन ऋषियों की आत्मा में जो परमात्मा सर्वव्यापक है उन्हीं से उपदेश मिला, यह बतलाया गया है। इस वास्ते जो शख्स पैगाम लाने का दावेदार है उसके लिए यह जरूरी है कि पहले खुदा व इन्सानों के बीच फ़ासला (दूरी) का होना साबित करे। मौलवी साहब मेरे सवाल का जवाब दें कि पैगाम्बर की जरूरत क्यों हुई ? जब तक खुदा और इन्सान के बीच कोई दूरी न मालूम हो जावे तब तक पैगाम्बर की जरूरत नहीं साबित हो सकती ? मैंने जो १३०० वर्ष से इस्लाम की बुनियाद बतलाकर कहा था कि उनसे पहले किन उसूलों की पैरवी से इन्सानों की निजात (मुक्ति) होती थी। और जो उसूले निज़ात (मुक्ति के सम्बन्ध में नियम) खुदा की तरफ से जारी थे वो उसूल कुरान शरीफ के मुआफिक (अनुकूल) थे या नहीं ? और उन उसूलों में क्या कमी थी ? जिसको कुरान ने आकर पूरा किया। उसका सम्बन्ध कुरान के साथ है। और जब तक उन किताबों से जो ईसा, दाऊद और मूसा पर नाज़िल हुई (उतरी)। जो अहले इस्लाम की तरफ से मानी जाती हैं। जब तक किसी नये उसूल का पैदा होना और उनके नियमों का रद्द होना, साफ़ शब्दों में ज़ाहिर न हो तबतक कुरान की जरूरत ही नहीं साबित होती। और जो पुस्तकें हजरत मूसा–ईसा और दाऊद पर उतरी थी, वह क्यों मनसूख (रद्द) हुई। और जिस खुदा ने अपना हुकम तीन बार रद्द किया हो उसका अभी भी क्या सबूत है कि वह कुरान को रद्द न करेगा ? इसका जवाब मौलवी साहब ने बिल्कुल नहीं दिया। मौलवी साहब ने सवालों का जवाब बिल्कुल नहीं दिया, बल्कि उनके बार–बार के अफ़सोसों से, पता चलता है कि सवालों का जवाब **''अफसोस''** से देते हैं। मुझे शख्त अफ़सोस है कि मेरे बहुत से सवालों का जवाब छोड़कर अपने दावे में एक भी सबूत न देते हुए अफ़सोस ही अफ़सोस करते हैं। उनके दिल की इस फिलिंग

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती –

साहेबान ! "**क्या वेद इलहामी किताब है**" इस विषय पर मेरे सवालात् इस प्रकार हैं।

१. किसी पुस्तक की (मिन्जानब अल्ला) अल्ला की तरफ से अर्थात् "**ईश्वरकृत**" साबित करने के लिए किन–किन गवाहियों की जरूरत है ?

२. ये के वो दलायल और कवायद (दलीलों और नियमों) में से वो कौन से हैं जिन पर कसने से किसी किताब का अल्ला की तरफ से "**ईश्वरकृत**" होने का सबूत होता है ?

३. ये के वो नियम और कायदे कौन से हैं जो इस बात के लिए नियत्त किए जावें ? खुदा की किताब उन विशेषताओं के अनुकूल होनी चाहिए कि तमाम जमाने के अकलमन्दों को समझा सके।

४. वो कायदे व उसूल जो खुदा की किताब पहचानने के लिए नियत्त किए गए हों वह उकलेदस (ईश्वरीय ज्ञान) के पक्ष में हैं या कम है या ज्यादा है या बराबर है ?

५. वो सब कायदे या मियार (रुतबा) कौन सा है जिससे खुदा की किताब पहचानी जा सके। और वो कौन से रुतबे का शख्स होना चाहिए जिसकी तारीफ़ से खुदा की किताब पहचानी जा सके।

६. गवाहियां किसी किताब की "**मिन्जानब अल्ला**" (ईश्वर कृत) साबित करने के लिए पैश की जा सकती हैं वो कितनी किस्म की हैं ?

७. वो शहादतें (गवाहियां) जो किसी किताब को ईश्वरकृत होना साबित करती हों अन्दरूनी गवाहियां होनी चाहिए या बाहर की ?

८. यदि वो गवाहियां अन्दर की हैं तो कौन–कौन सी किस्म की हैं ? और अगर बाहर की हैं तो किस व्यक्ति की बनाई हुई है या वो चुनी हुई हैं ?

९. ये के जो शख्स अपने ज्ञान की ताकत से या अपनी मज़हबी जिद की ताकत से किसी किताब पर जोर देता है, क्या ? उसके बयान में गलती हो सकती है या नहीं ? और अगर वो "**ईश्वरकृत**" उसे साबित करना चाहे। बस इन नौ सवालों पर जवाब। पण्डित साहब एक नज़र डालकर गौर फरमावें और विस्तारपूर्वक हर एक का जवाब व अता–पता दें।

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी –

१. पहले सवाल का जबाब ये है कि परमेश्वर की बनाई हुई किताब के लिए इस बात की आवश्यकता है कि वह किताब परमेश्वर की ज़ात (परमेश्वर) पर किसी प्रकार का इल्ज़ाम (दोष) न लगाती हो।

२. दूसरी बात का उत्तर ये है कि परमेश्वर ने इस दुनिया को बनाया है और दुनिया का कुल सिलसिला परमेश्वर के हाथ का बनाया हुआ है। बस जो किताब उसके विरुद्ध न हो वह ईश्वर की किताब है।

तैतीसवाँ शास्त्रार्थ —

स्थान : "आगरा" आर्य समाज, मोतीकटरा (उत्तर प्रदेश)

@vaidicbooks

दिनांक : १४ सितम्बर सन् १८६६ ई॰ (तीसरा दिन)
विषय : क्या वेद इलहामी किताब है ?
शास्त्रार्थकर्ता, आर्यसमाज की ओर से : पण्डित कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी (स्वामी दर्शनानन्द)
शास्त्रार्थकर्ता, मुसलमानों की ओर से : मौलाना अबुलफरह साहब, पानीपती
मुसलमानों की ओर से सहायक : १. मौलवी जहांगीर खाँ साहब,
२. मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब,
३. काज़ी जुहरूल्लहसन साहब,
आर्यसमाज की ओर से मंत्री : पण्डित कृपाशंकर शर्मा, एम॰ ए॰, प्राज्ञशास्त्री
आर्यसमाज की ओर से प्रधान : बाबु जमनादास, विश्वास "वकील"
शास्त्रार्थ के सभापति : श्री जोजफ फारनन्
शास्त्रार्थ के सदर (प्रधान) : श्री जलसा बाबु

३. तीसरा सवाल यह है कि, जब परमेश्वर औरतों को हिदायत (शिक्षा) करे, अगर औरत पति वाली हो तो वह भी दूसरे पति से औलाद पैदा कर सकती हैं जबकि उसका पति नपुंसक हो।

४. मुल्की जुबान (देशी भाषा) की किताब पर ऐतराज है कि संस्कृत किस देश की भाषा है ?

५. आप साहेबान का ये दावा है कि ये चार वेद परमेश्वर की किताब हैं इसलिए मेहरबानी करके आप केवल ये किताबें किस देश में उतरी हैं और वहां कौन लोग रहते हैं ? पैगाम्बर को जरूरी है कि नेकचलन (सदाचारी) हो, किसी तारीख से बतलाईये ? कि ये लोग एक ही समय में थे, या भिन्न–भिन्न समयों में थे ? और क्या ये चारों वेद एक ही समय में उतरे हैं या अलग–अलग समय में ? और अगर एक ही वक्त में उतरे थे तो किस तरह उतारे गये थे ? लिखवा दिये थे या याद करवा दिए गये थे ? और उन्होंने किस–किस तरह सुना ? इसका हवाला दो कि आपके पास सीधे आए थे ? क्योंकि पण्डितजी ने कहा है कि पहले तारीख का सिलसिला नहीं था।

६. नजूम (ज्योतिष) के हिसाब से प्राचीनकाल की बातें कैसे ज्योतिष से बताई गई हैं? और इस बात का प्रमाण दीजिए कि जिन्होंने वेदों की तालीम दी थी वो कहां मरे, और कहां रहते थे ? और रहन–सहन उनका क्या था ? क्या परमेश्वर ने हाथों हाथ उनको अपना कलाम (उपदेश) दिया था या किसी के द्वारा पहुंचाया था ? और अगर वह खुदा की किताब थी तो क्यों यह कोशिश न की गई कि यह खुदा की किताब है? और तुमको ये वेद किस व्यक्ति से मिले ? जिसने यह कहा हो कि ये वेद हैं ? एवं तुम तक सिलसिलेवार ये वेद कैसे पहुंचे ?

जब तक ठोस प्रमाण आप नहीं दिखायेंगे तो हम मानने को तैयार नहीं हैं। आप इसका हवाला त्वारीखी दीजिए वर्ना हम उनका जवाब विस्तारपूर्वक देंगे।

पण्डित श्री कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी –

चारों वेद सृष्टि के आरम्भ से हैं जो चार ऋषियों पर उतरे, जिनका नाम, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा था। जिसके लिए ये प्रमाण मौजूद हैं, जो आज नहीं बनाये गए बल्कि लाखों वर्ष पहले के मौजूद हैं देखो ? **"ऐतरेय ब्राह्मण पन्चकापन्च कण्डिका ३२"** यानी ऋग्वेद अग्नि ऋषि पर उतरा, यजुर्वेद, वायु, ऋषि पर उतरा, सामवेद आदित्य ऋषि पर उतरा एवं अथर्ववेद अंगिरा ऋषि पर उतरा। इसके बाद देखो– **"सायणाचार्य के ऋग्वेद के भाष्य की भूमिका पृष्ठ ३, छापा बम्बई।"** सृष्टि के आरम्भ में पैदा होनें वाले खास जीव यानी देवर्षि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, पर वेद का प्रकाश होने से, क्योंकि अग्नि वगैरा के दिल में ईश्वर ने वैदिक ज्ञान का प्रकाश किया। इस वास्ते योग सूत्र ने भी ईश्वर को सबका गुरु माना है जैसे लिखा है – **"स एषः पूर्वेषामपि गुरुः"** यानी वो परमेश्वर दुनिया में सबसे पहले होने वाले इन्सानों का गुरु है। यानी उसने उनको शिक्षा दी थीं, उसके साथ अथर्व वेद जो बम्बई में छपा है उसका पृष्ठ नं॰ २ देखिए– वहां भी अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, इन चारों ऋषियों का सृष्टि के आदि में होना और उनके दिलों में वेदों का प्रकाश होना बतलाया है। अलावा उसके यह कहना कि वेद किस मुल्क में उतरे ? उसका जवाब यह है कि जिस जगह पर सृष्टि का आरम्भ हुआ उस जगह का नाम **"तिब्बत"** है जो आजकल की खोज से भी यही बात प्रामाणिक है। क्योंकि दुनिया में सबसे ऊंचा पहाड़ हिमालय है। और जमीन पानी के अन्दर से निकली है। जिसका सबूत देखो कि – **"सबसे पहले परमात्मा ने प्रकृति को हरकत देकर आकाश पैदा किया, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, इन तत्वों की पूर्व हालत अर्थात् ये परमाणु रूप**

३. उसके लिए जो नियम जरूरी हैं कि वह किसी मुल्क की भाषा में न हो दूसरे उसमें किसी आदमी का किस्सा कहानी न हो तीसरे जिस तरह परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में सूर्य की रोशनी दी है और इन्सान ने चिरागों की रोशनी बीच में बनाई है, इसी तरह वह दुनिया के आरम्भ से हो चौथे उस किताब में आपस में विरोध न हो, पांचवे कोई बात इल्मी उसूल के विरुद्ध न हो, छटे उस किताब में एक ही बात को बिना मतलब के बार–बार दोहराया न गया हो।

४. इस सवाल का जवाब ये है कि परमेश्वरीय नियम केवल व्यक्ति की बनावट से सम्बन्ध रखते हैं, अन्य किसी चीज से नहीं, और वह बनावटी भी है ईश्वरीय किताब के लिए जो नियम लागू किये जा सकते हैं वो ईश्वरीय सिफात (परमेश्वर के गुणों) के अनुसार लिए जावेंगे।

५. परमेश्वर की किताब को साबित करने के लिए जो नियम करने के लिए हो सकते हैं वह परमेश्वर के गुणों से हो सकते हैं, किसी आदमी के फ़र्जी ख्यालात (बनावटी विचारों) से नहीं हो सकते।

६. हर एक किताब की छानबीन करने के लिए दो तरह की गवाहियों की जरूरत है, एक उन बेगर्ज़ व्यक्तियों की जिन्होंने नियमानुसार उसके नियमों को समझकर उनके बारे में अपनी राय दी हो। दूसरे उसके मज़मूनों (विषयों) के अन्दर से।

७. इस सवाल का जवाब छटे सवाल के उत्तर में आ गया कि अन्दरूनी व बहरूनी शहादतों की जरूरत है, अन्दरूनी शहादतों के लिए ये बात जरूरी है, –

(१) कि वो उस किताब की जरूरत को साबित करें ।

(२) हर किस्म के ज्ञान के विरुद्ध न हो ।

(३) जिस तरह परमेश्वर के बनाए हुए एक बीज के अन्दर एक बड़े भारी वृक्ष के बनने की ताकत होती है, इसी तरह उसके अन्दर भी थोड़े शब्दों में अच्छे दर्जे के उलूम (ज्ञान) होने चाहिए। पुरानी कहानी–किस्से नहीं होने चाहिए। अगर बाहरी गवाहियां ली जावें तो उन आदमियों की ली जानी चाहिए जिनमें कामवासना (विषयवासना) न हों। जिनकी वाणी सच्चाई के लिए, उनके लिखे अनुसार में से एक भी शब्द अक़ल (बुद्धि) के खिलाफ़ न मिल सके। जो व्यक्ति ईश्वर के साथ योग और समाधि का सम्बन्ध करके किसी सच्चे उलूम (ज्ञान) के बारे में जानकारी प्राप्त करके अपनी राय (मशवरा) दे। तो उसका कथन ठीक माना जा सकता है। जिस तरह आग के निकट रहने पर लोहे के अन्दर आग के गुण आ जाते हैं,उसी तरह परमेश्वर की उपासना करने वाले योगी हर एक बात के तत्व को समझ सकते हैं। हां अगर कोई आम विषयी व्यक्ति अपनी जानकारी के जोर से कोई बात कहे तो उसका झूठा–सच्चा दोनों हो सकते हैं। अर्थात् सब तरह के प्रमाण अब अगर मौलवी साहब चाहें तो मैं अन्दरूनी व बहरूनी वेदों के सम्बन्ध में देने को तैयार हूँ। और रहा इन सवालों का विस्तारपूर्वक जवाब देना ! तो वो १५ मिनट के समय में मुश्किल है, लेकिन फिर भी मैंने संक्षेप में जवाब लिखवा दिए हैं।

मौलवी श्री अबुलफरह साहब पानीपती –

१. यजुर्वेद के अध्याय १३ में मन्त्र २०, व अध्याय २१ में मन्त्र १४ व अध्याय १६ में मन्त्र ६४ के दयानन्द भाष्य में इसका अनुवाद इस प्रकार किया है –

२. जिस औरत को औलाद न होती हो उसको जरूरी है कि दूसरे पति से औलाद प्राप्त करे।

थी कि मौलवी साहब वेद के विषय में ऐतराज करेंगे। जैसा कि तीसरे रोज अपनी योग्यता के अनुसार सवाल किये थे। उनके पास पूरी तारीख़ का सबूत मांगने के सिवाय और कोई दलील न थी। लेकिन आदम के सम्बन्ध में आपका तारीखी वाला सबूत देने में इन्कारी थे, जिसको कह दिया कि **"उसूल-इस्लाम से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है"**। उस रोज मौलवी साहब घर से यह फ़ैसला करके आये थे कि वह शास्त्रार्थ नहीं करेगें। क्योंकि आज आर्य समाज की तरफ से कुरान पर ऐतराज करने का दिन निश्चित था, जिसको सुनना मुत्तास्सब मुसलमानों (जिद्दी मुसलमान) को नागवार (बुरा) लगता था। इस वास्ते बजाय उसके कि आर्य समाज को सवालों का मौका दिया जावे, क्योंकि नियमानुसार ये आवश्यक था, लेकिन मौलवी साहब ने अपने सब नियमों को अलग रख करके ये कहा कि आज उस शर्क (मोहम्मद साहब को अल्लाह के साथ जोड़ना) वाले सवाल का जवाब दूंगा। जब उनसे यह कहा गया कि ये सवाल नियमानुसार समाप्त हो चुका है, यानी आर्य समाज की ओर से तीन बार कहा जा चुका है और अहले इस्लाम की तरफ़ से नियमानुसार दो बार जवाब दिया जा चुका है, तब इस वास्ते वायदे के अनुसार आज आर्य समाज को कुरान पर ऐतराज करने का अवसर दिया जावे।

लेकिन अफ़सोस ! कि मौलवी साहब उसके लिए तैयार न हुए और अपने तमाम वायदों को एक–दम छोड़ दिया और कहने लगे कि मैं अन्त में अवश्य बोलूंगा। जब उनसे कहा गया कि आज पहले आपके बोलने का समय नहीं है। तो मौलवी साहब ने कहा कि जिस शर्क के वास्ते अहले इस्लाम ने जंगल कसनून (..........) से भर दिये और लाखों के खूनं बहा दिये उस शर्क के मसले का फ़ैसला इस तरह से नहीं हो सकता। इस वास्ते आज से उसी मसले पर बहस होनी चाहिये। जब जवाब दिया गया कि आपने तो कायदे बनाते समय यह तय कर लिया था कि सायल (सवाल करने वाला) तीन बार बोलेगा, जवाब देने वाला दो बार बोलेगा। जब इस नियम के अनुसार बहस समाप्त हो चुकी है और आप कुरान पर बहस करने का वायदा भी कर चुके हैं तो सिवाय शोर मचाने और झगड़ा करने के कोई अनुकूल जवाब नहीं दिया। जब कोई व्यक्ति कुछ बोलता तो मौलवी साहब ज़रूर उसके प्रत्युत्तर में बोलने को तैयार होते। और उन्होंने ऐलानियां (खुले आम) कहा कि मैं सिवाय शर्क वाले मसले के और नये सवाल करने नही दूंगा और न ही सवाल करने का मौका दिया। यहां तक कि आर्य समाज की तरफ़ से बहुत नर्मी से कोशिश की गई कि इस क़दर लोगों का वक़्त फ़िज़ूल ज़ाया (बर्बाद) न किया जावे, बल्कि असली मज़मून (विषय) पर बहस की जावे। लेकिन मौलवी साहब इस बात पर तैयार न हुए। जिसकी वजह ये थी कि मौलवी साहब खुद हिन्दी–संस्कृत से नावाकफ़ (अनभिज्ञ) और उसूल मुबाहिसा (शास्त्रार्थ के नियम) से भी बेख़बर थे। और सच्चाई की छानबीन करना उन्हें स्वीकार न था। वे मुसलमानों को जोश दिलाकर झगड़ा कराना चाहते थे। जिन लोगों ने मौलवी साहब की हालत को उस वक्त देखा होगा, उनसे ये बातें छुपी हुई नहीं हैं।

अगर उस रोज मौलवी साहब बहस करते तो कुरान की तहक़ीकात (छान–बीन) हो जाती, लेकिन मौलवी साहब की ज़िद पर और बहस न करने से पब्लिक ने जो नतीजा निकाल लिया वह हर एक आदमी दिल से ज़ानता है। मौलवी साहब का उस रोज़ बहस से गुरेंज (टालना) करना, जिस दिन उ़न पर ऐतराजों का जवाब देना आवश्यक था। इस बात को साबित करता है कि मौलवी साहब बिल्कुल भी हक पसन्द (सच्चाई पसन्द) नहीं है। उस शास्त्रार्थ के बाद जो आगरा वालों ने मौलवी साहब के खिलाफ़ एक विज्ञापन निकाला था जिससे उनकी योग्यता और सच्चाई का नक्शा दिखाई देता है। अफ़सोस इस बात पर हुआ कि हमारे मुसलमान दोस्तों ने अपनी मज़हबी छान–बीन के वक्त पर एक ऐसे व्यक्ति को अपना वकील बनाया जो विपक्ष के सिद्धान्तों से नावाकफ़ (अनभिज्ञ) होने के अलावा इल्म माकूल **"सत्य ज्ञान"** से भी नावाक्फ़

में थे उनको हरकत (क्रिया) दी तो उस हरकत से सर्वप्रथम आकाश पैदा हुआ, आकाश से वायु हुई, वायु के बाद अग्नि पैदा हुई अग्नि के बाद जल पैदा हुआ, जल के बाद जमीन जाहिर हुई, क्योंकि सबसे पहले हिमालय की चोटियाँ पानी में से बाहर निकलीं, इस वास्ते जिन पर सृष्टि का आरम्भ हुआ और वहीं पर ऋषियों के दिल में जो कि सृष्टि के आरम्भ में पैदा हुए थे उनमें अलग-अलग वेदों का प्रकाश हुआ।" ये सवाल करना कि वेदों को लिखवा दिए थे या समझा दिए थे यह कहना गलत है बल्कि इस वेद रूपी ज्ञान को उन ऋषियों के दिल में प्रकाश किया था।

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती –

ज़र्रा (परमाणु) आसमान व जमीन खुदा ने अलग कर दिया, क्या पण्डित जी ये पहले मिले हुए थे ? पहली चोटियाँ हिमालय की पानी में से निकलीं इसका प्रमाण क्या किसी किताब में है ? पण्डित साहब का यह कहना कि चार वेद सृष्टि के आरम्भ में उतरे और आगे चलकर ये ज़िकर करते हैं कि खुदा ने ज़र्रात (परमाणुओं) को हरकत (क्रिया) दी और सब अलग–अलग हो गये, तो इस कौम (हिन्दुओं) में साफ समझा जाता है कि वायु, हवा को कहते हैं, ये बतलाना चाहिए कि ये ऋषियों के नाम हैं या अनासार (तत्व) के नाम हैं ? तो किस मुबर्रख़ (इतिहासकार) ने लिखा है कि सबसे पहले हिमालय पहाड़ पानी के अन्दर से निकला। आपका यह . कहना कि चारों ऋषि एक ही ज़माने में मौजूद थे तो इसका हवाला किसी प्रमाणिक पुस्तक से दो। मेरी समझ में नहीं आता भाईयों ! कि अल्लाह को क्या जरूरत पड़ी थी कि चारों वेद एक ही ज़माने में उतारें ? मेहरबानी करके पंडित जी महाराज आप किताब से सबूत पेश कीजिए कि हिमालय पहाड़ पहले निकला था, और ये ऋषि लोग उस वक़्त थे , वेद के किसी पन्ने या मन्त्र से बताइयें कि तिब्बत देश में ये ऋषि एक ही ज़माने में थे। ये भी बताइये, कि खुदा ने किस तरह उनके दिल मे तालीम (शिक्षा) डाल दी, क्या ख़तरा (डर) के तौर पर कोई ख्याल (विचार) दिल में पैदा हुआ था ? या ये समझा दिया गया था कि तुम खुदा के दोस्त हो। जिस क़दर हवाले पंडित जी साहब ने दिए थे, उनमें से किसी से भी ये साबित नहीं होता कि लगभग एक अरब छयानबें करोड़ की बात कोई लेखक बतला दे। तब बिना किसी आधार के कैसे ये बातें मान ली जावें ?

यह इतिहासकार बतलावें कि **"ऋषि हिमालय पर उतरे"** वे लेखक उसी जमाने में के थे ? एवं यह बतलायें कि तिब्बत में जो औलाद पैदा हुई वह किस तरह हुई ? वह औलाद उन्हीं ऋषियों से पैदा हुई या किसी औरत से ? और फिर ऋषि तो मौजूद थे ऋषियन कहां से आ गई ? औरतें तो आरम्भ में थी ही नहीं। तो औरतें कहां से आई या बिना औरतों की ही औलाद पैदा हो गई ? एवं बतलाइयें कि कौन–कौन ऋषियों के शार्गिद (शिष्य) थे जिनको उन्होंने वेद सुनाया था, उस वक्त का पूरा हाल बताओ। एवं उस हाल को सिलसिलेवार बताओं कि जिसके माध्यम से वेद तुम तक पहुंचे ? और ये भी बतलाइयें कि जब वो किसी मुल्क की जुबान न थी तो वेद संस्कृत भाषा में कैसे बना दिये हैं ?

नोट –

इसके बाद क्योंकि तीसरे दिन का समय नियमानुसार तीन बार सवाल करने वाले का एवं दो बार जवाब देने वाला बोल चुका था, इसलिए, इस बार उस सवाल को वहीं पर छोड़ना पड़ा अगले रोज मौलवी साहब पर आर्य समाज की तरफ़ से सवाल होने थे, लेकिन मौलवी साहब पहले दिन भी जवाब देने के वास्ते तैयार न थे बल्कि उन्होने यह सोच लिया था कि जिस तरह हो सकेगां,उस तरह सवालों पर भी टालूंगा और पहले दिन **"विषय से बाहर है"** यह कहकर वक़्त टालते रहे। लेकिन दूसरे दिन यह बात तय हो चुकी

इस मुबाहिसा के आरम्भ को मैं बिल्कुल नहीं जानता था, और इस वजह से जो वार्तालाप उनके बीच हुई मैं उसे पूर्ण रूपेण समझ न सका, मगर थोड़ी देर के बाद ही मुझे मालूम हुआ कि मौलवी साहब इस बात की कोशिश करते थे कि जो बात आज बहस के लिए है, उस पर बहस न हो। बल्कि बजाये उसके किसी खास विषय पर बहस करना चाहते थे। जिस पर कई दिन पहले बहस हो चुकी थी, और साथ ही जलसे में उपस्थित लोगों की तरफ ध्यान देकर कहते थे कि हमको जो कुछ कहना है वही कहेंगे। ये बात ध्यान में रहे कि इस तरह की वार्तालाप करने से मैंने रोका, मगर मौलवी साहब ने नही सुना, और ना ही ऐसी गुफ्तगू (वार्तालाप) करने की स्वीकृति ली।

अंतिम पण्डित जी ने मौलवी साहब की इस दरख्वास्त (प्रार्थना) को भी मंजूर कर लिया और कहा कि जो शर्ते मौलवी साहब ने बहस के लिए मन्जूर की थी, उन्हीं के अनुसार शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे। बाद में कुछ वार्तालाप के जो ज्यादातर मौलवी साहब की तरफ से थी, जिसको मैं शोरोगुल की वजह से अच्छी तरह न समझ सका, और यह मालूम हुआ कि आम लोगों में किसी तरह का सख्त जोश फैल गया है, इसलिए मैंनें शान्ति भंग न हो इसी ख्याल से तत्काल शास्त्रार्थ बन्द करा दिया।

दस्तख्त –

"जोज़फ फारनन्"

सिविल लाईन (आगरा)

नोट –

उपस्थित सज्जनों ! एक विज्ञापन जो इस अवसर के बाद मौलवी साहब के खिलाफ निकला है। उसको हमने इसलिए नहीं लिखा कि उसका शास्त्रार्थ से सीधे तौर पर कोई सम्बन्ध न था।

"प्रबन्धक"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
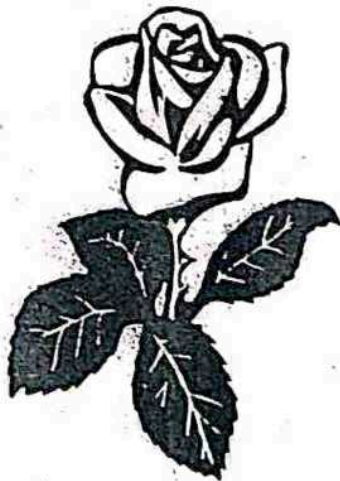
था जिस पर ये फर्ज था कि वो अपने दावे के अनुसार व अपनी शर्त के अनुसार बुद्धि से सिद्ध करके दिखलायें। लेकिन जो गरजते हैं वो बरसते नहीं। मौलवी साहब ने दावे तो बहुत किये, जिनमें बहत्तर इल्मों की किताबें लाने का जिक्र किया, लेकिन दावे सब खोखले ही नजर आये, खैर! मौलवी साहब ने खुद आर्य समाज को शास्त्रार्थ करने के वास्ते चेलेन्ज दिया था, यानी मौलवी जहांगीर खां साहब खुद आर्य समाज में मुबाहिसा **"शास्त्रार्थ"** करने आये और खुद ही शास्त्रार्थ में जवाब न दे सकने से मौलवी अबुलफ़रह साहब को अपनी जगह छोड़कर चल दिये।

लेकिन मौलवी साहब ने कुरान की सच्चाई के उत्तर में सिवाय इन अलफ़ाज (शब्दों) के **''ये ऐतराज़ उसूल से बाहर हैं''** मैं हरगिज़ जवाब नहीं दूंगा, और कुछ भी सबूत नहीं दिया। अगर्चे मौलवी साहब ने खुद ही नियमों के खिलाफ़ बहस की, क्योंकि वे वैदिक सिद्धान्तों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। लेकिन इस तरफ़ से सच्चाई को जानने के लिए अपना ध्येय समझ कर उनके हर एक सवाल का जवाब दिया गया। और मौलवी साहब ने अव्वल तो पहले रोज ही सवालों के जवाब देने से मना कर दिया, और दूसरे रोज तो सवालों के करने से पहले ही इतना घबरा गये कि शास्त्रार्थ का जलसा ही प्रधान जी को समाप्त करना पड़ा, अगर मौलवी साहब इस दिन पूरे तौर से बहस करते और हमारे ऐतराजों का जवाब देने से इन्कार न करते तो हमें **"कुरान की छान-बीन"** [१] लिखने की मेहनत बर्दाश्त न करनी पड़ती क्योंकि सवालात् का जवाब मौलवी साहब से ही मिल जाता। हमने जो कुछ लिखा है उसका कारण सिर्फ़ हमदर्दी है कि हमारे मुसलमान भाई जो कुछ समय पहले हमारे भाई ही थे, और सिर्फ़ ना समझी की वजह से एक अलग सम्प्रदाय में बंट गये, और अपने बाप-दादों (पूर्वजों) के मुकम्मल (पूरे) धर्म को छोड़कर जिसमें सिवाय खुदा के दूसरे की उपासना जायज न थी, मर्दमपरस्ती और काबापरस्ती में चले गये। इस मुबाहिसा के साथ "कुरान की छान-बीन" का हिस्सा अलग छापा गया है। मुबाहिसा आर्यसमाज आगरा व अहले इस्लाम का समाप्त हुआ।

इस शास्त्रार्थ के विषय में सभापति व प्रेज़ीडैन्ट की राय

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री जलसा बाबू की राय –

मैंने मौलवी अबुलफ़रह और पण्डित कृपाराम की तक़रीर (व्याख्यान) वेद या कुरान के इलहामी किताब होने पर सुनी, मेरी राय में पण्डित जी की तक़रीरें बामायनी (ठोस) मोंजूं (सही) होती थी, मौलवी साहब की तक़रीरों से यह पता चलता था कि या तो उन सवालों को जो पण्डित जी पूछते थे वह समझ ही नहीं पाते थे या अगर समझते भी थे तो जवाब नहीं दे सकते थे। मौलवी साहब ने पण्डित जी के एक भी सवाल का सही जवाब नहीं दिया बल्कि अपनी ही इधर-उधर की हांकते रहें, पण्डित जी ने जवाब लगभग ठीक-ठीक दिये थे,

आपका ख़ैरअन्देश—

"जलसा बाबू"

२. शास्त्रार्थ के सभापति श्री जोज़फ़ फारनन् की राय –

मैं एक रोज शास्त्रार्थ देखने की दृष्टि से जो उर्दू की जुबान में हो रहा था आर्य समाज मन्दिर में गया, पण्डित कृपाराम शर्मा व श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब के बीच उर्दू जुबान में हो रहा था, क्योंकि मेरा किसी फ़रीक (पक्ष) से कोई ताल्लुक (सम्बन्ध) न था, इसलिए उन लोगों ने मुझे मीर मजलिस (सभापति) बना दिया।

---

(१) यह पुस्तक आपको हमारे यहां प्राप्त हो जायेगी।

" प्रवन्धक "

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

शास्त्रार्थ से पहले

मौलवी सनाउल्ला ने आर्य समाज मजीठा के वार्षिकोत्सव पर हदीसों को मानने से मना किया, हमारे पास उस समय किताबें न थी, इसलिए १६ अक्तूबर सन् १९०४ ई॰ को मुबाहिसा आर्य समाज और दीनेइस्लाम के बीच होना तय हुआ जिसका विषय था कि –

"वेद इल्हामी किताब है या कुरान ?"

इसका इन्तजाम चार प्रसिद्ध व्यक्तियों के हाथ में था, जिनका नाम था–

१. सरदार प्रगट सिंह जी, २. प्रद्युम्न सिंह जी,
३. कृपाल सिंह जी, ४. हरनाम सिंह जी।

मुसलमान लोग मुबाहिसे से घबराये हुए अपनी पोल खुलती हुई देखकर पहले ही अपने ओसान्बाख्ता (होशोहवास) खोये हुए थे।

अगर्चे तालीम इस्लाम में हदीस प्रामाणिक पुस्तक थी, और उन पर भी हमें ऐतराज करने का हक था, लेकिन मौलवी साहब एवं उनके साथ के लोगों ने हदीसों से साफ मना कर दिया। और कह दिया कि **"हदीसें"** इस्लाम में शामिल ही नहीं है। अफ़सोस !!

दो दिन की बहस के बाद मुबाहिसा कल डेढ़ घण्टा हुआ, अगर्चे शास्त्रार्थ के उत्सव की बैठक ११ बज़े से ३ बजे तक रही, लेकिन मौलवी साहब ने चालाकी से बाकी सारा समय बर्बाद कर दिया, उस डेढ़ घण्टे के अन्दर जो बहस हुई थी, उसमें फैसला इस बात पर लिखा गया था कि, मौलवी साहब ने जो ये कहा है, कि – **"कुरान में कहां लिखा है कि हव्वा आदम की औलाद थी ?"** और उसकी पसली से निकली थी। इसका सबूत आर्य समाज दे और ये बात कि वेदों में मूर्ति पूजा लिखी है, वो मन्त्र जिसमें मूर्ति पूजा लिखी है, मौलवी साहब लिख दें, परन्तु आर्य समाज की तरफ से आयत कुरान की जो सूरतनिशा की पहली आयत थी, वह लिख दी गई। जिसका अनुवाद है –**"वो रब्ब तुम्हारा वो है जिसने पैदा किया तुमको एक जान से, और अगिंक्ता (संकेत) किया उसने उसकी औरत को"** अर्थात मौजुल कुरान में साफ लिखा है कि– **"हव्वा आदम से पैदा हुई"** और पैदा होने से वह उसकी औलाद थी, बस ! आदम नें अपनी सगी बेटी से निकाह किया। मौलवी साहब का ऐतराज था कि वेद आवागमन को मानते हैं इसलिए वेद माँ और बहन में कोई भेद नहीं रखता। हमारा जवाब था कि मौत के बाद हमारा शारीरिक सम्बन्ध नहीं रहता। माँ और बहन का सम्बन्ध शारीरिक है, और वह यहीं मौत के समय तक समाप्त हो जाता है। बस इसलिए हम पर कोई ऐतराज नहीं। हाँ ! कुरान बाप का सगी बेटी के साथ निकाह करना जायज मानता है, जैसा कि आदम और हव्वा के निकाह की मिसाल यहां मौजूद है। आर्य समाज की तरफ से लिखकर पेश किया गया था कि इसका जिकर फलाँ आयत (कुरान) में है। लेकिन मौलवी साहब न कुछ लिख सके और न कुछ जवाब दे सके। इस वास्ते उनकी बड़ी–बुरी तरह से हार हुई। और तांगे पर सवार होकर फौरन भाग गये।

मजीठे का बच्चा–बच्चा इस बात का गवाह है। और आर्य समाज का प्रशंसक है।

निवेदक –

"स्वामी योगेन्द्र पाल"

चौतीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "मजीठा" जिला अमृतसर (पंजाब)

@vaidicbooks

दिनांक : १६ अक्टूबर सन् १६०४ ई०
विषय : वेद इलहामी किताब है या कुरान ?
शास्त्रार्थकर्ता आर्य समाज की ओर से : स्वामी योगेन्द्र पाल जी
शास्त्रार्थकर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी सनाउल्ला साहिब, अमृतसरी
मुसलमानों की ओर से मन्त्री : मौलवी इमामुल्लद्दीन जी
शास्त्रार्थ के प्रधान : सरदार कृपाल सिंह जी,
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री पण्डित दुर्गादत्त जी

जिसका जवाब आर्य समाज की ओर से लिखकर यह दिया गया था –

मैं हर विषय का सवाल जो मौलवी साहब पेश करेंगे या जिस पर वो बहस करेंगे, इलज़ामी सवाल उन पर करूंगा, और उनका जवाब लूंगा।

तहरीरी दस्तख्त –
"योगेन्द्र पाल"

इस पर मौलवी सनाउल्ला ने लिखकर यह पेश किया था –

मैं इलज़ामी जवाब जो इसी किस्म से होगा, सुनूंगा और जवाब दूँगा और गैर मुतल्लिक (विषय से हटकर) पर ऐतराज करके प्रधान जी का ध्यान इधर दिलाऊंगा, प्रधान जी उसका जो भी फैसला करेंगे मैं उसका पाबन्द रहूंगा।

दस्तख्त –
"सनाउल्ला"

प्रैज़ीडैन्ट साहब (प्रधान) सरदार कृपालसिंह जी का लिखित आदेश –

मौलवी साहब ! आप अपने इस पर्चे को वापिस लें, जिसमें आपने शर्तों के विरुद्ध अपनी बातें लिखी हैं कि कुरान पर ऐतराज, बहस के सम्बन्ध में नहीं, और ये नाजायज है।

-----**"कृपालसिंह"**
(प्रधान–मुबाहिसा)

मौलवी साहब –

मैं इस पर्चा को वापिस हरगिज नहीं लूँगा।

प्रधान जी –

मेरा कहना नहीं माना जाता।

मौलवी साहब –

अच्छा मैं वापिस ले लेता हूँ।

मौलवी सनाउल्ला साहिब –

मेरे सवाल के जवाब में आपने मान लिया है कि वेद का मुद्दयी कोई नहीं, या यूं कहिये कि वेद अपना मुद्दयी किसी को नहीं बताता, बस ! इसकी मिसाल इस तरह की हुई कि, हम हाकिम के पास दरख्वास्त गुजारें कि मुझको फलां व्यक्ति से इतना रुपया लेना है फलां–फलां गवाह हैं, मगर अर्जी देने वाले का नाम ही न हो तो कोन मुन्सिफ (हाकिम) उस अर्जी पर गौर करेगा ? बल्कि उसको रद्दी के सन्दूक में डाल देगा, आप इसी पर उसको भी समझ लीजिए। कुरान इल्म इलाही के अनुसार है, उसमें कोई भी बात इल्म इलाही के विरुद्ध नहीं है। मगर ये सब कुछ तहक़ीक (छान–बीन) करने के बाद पता चलेगा कि दोनों किताबों का मुद्दयी कौन है ? कुरान कहता है कि–"**ला यति कलबातिल मनयदीदुल मन खलफ़ा**"अर्थात् कोई बाहरी वस्तु उसके दायें या उसके पीछे से उसके पास नहीं आती, और न ही कोई (प्राचीन खोज) से और न ही आने वाले समय से, कुरान की तक़जीब (झूठी साबित) हो सकती है। मगर ये सब गवाहियों का दर्जा है। आप पहले दावा क़ायम करें, मुद्दयी बतलावें, तथा ये बतलावें कि मेरा ये दावा है, फिर गवाह लावें, आप ये समझ लें क्रि, मैं इन्साफ़ के ख़िलाफ़ न खुद चलूंगा और न आपको चलने दूँगा।

शास्त्रार्थ आरम्भ

१६ अक्टूबर सन् १६०४ ई० को आर्य समाज मजीठा व दीने इस्लाम के बीच शास्त्रार्थ हुआ– जिसमें आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता श्री स्वामी योगेन्द्र पाल जी व दीने इस्लाम की तरफ से मशहूर मनाज़िर मौलाना सनाउल्ला साहिब जी नियत्त हुए।

मौलवी सनाउल्ला साहिब –

नियमानुसार जब तक कोई मुद्दयी (दावा करने वाला) न हो, दावा चल नही सकता, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम वेद व कुरान के सम्बन्ध में बहस करते हुए यह देखें कि मुद्दयी कौन–कौन हैं ? बस मेरे मुख़ातिब (विपक्षी) यह बतलावें कि वेद किन–किन लोगों पर इलहाम हुआ था ? हिन्दू ! **"ब्रह्माजी, चार मुख वाले पर इलहाम हुआ"** ऐसा कहते हैं। क्या आर्य समाज वाले भी उसी पर इलहाम हुआ कहते हैं या कुछ और कहते है ? गर्ज ! जो उनका दावा हो उसे बतलादें, और वेद से ही उसका सबूत पेश करें। कुरान कहता है कि,–**"मौहम्मद रसूलल्लिलाह"** यानी मुहम्मद, अल्लाह के रसूल (पैगाम्बर) हैं। ये इस बात का बुनियादी रास्ता है।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

वेद परमात्मा का ज्ञान है, यजुर्वेद में लिखा है कि–**"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे"** –देखो **"यजुर्वेद अध्याय ३१"** फिर यजुर्वेद के अलावा अथर्ववेद में भी है, कि यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, परमात्मा का ज्ञान है, देखो– **"अथर्ववेद कांड १३"** एवं मनुस्मृति में कहा है कि –**"वेद"**– अग्नि, वायु, आदित्य, अगिंरा ऋषियों के हृदयों में प्रकाशित हुए। देखिये –

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयम् ब्रह्म सनातनम्।
दुदोहयज्ञ सिद्धयर्थम्, ऋग्, यजु, साम, लक्षणम् ।।

इलहामी किताब के लिए उस इल्म इलाही के अनुसार होना जरूरी है, इसलिए वेद का ज्ञान, इल्म इलाही (ईश्वर के ज्ञान) के अनुसार है। इसलिए **"वेद ईश्वरीय ज्ञान है"**, कुरान, इल्म इलाही के अनुसार नहीं है इस वास्ते **"कुरान इलहामी किताब नहीं है।"**

नोट –

इस पर मौलवी सनाउल्ला ने लिखित रूप से कहा कि स्वामी योगेन्द्र पाल जी ने गैर मुतल्लिक (विषयान्तर) सवाल पेश किये हैं। स्वामी जी ने कहा कि जो शर्ते मैंने मंजूर की हैं उसी में ये शर्त है कि सवालों का जवाब देते हुए फ़रीकेन को अख्तियार होगा कि इलजामी जवाब दें और ऐतराज करें, और अपने सवालात् ऐतराजी जो फ़रीक़ सानी (दूसरे पक्ष) की इलहामी किताब पर हो तहरीर (लिखें) करें। अगर केवल जवाब ही दिया जावे तो वो फ़रीक जो पहले मौतरिज (प्रश्नकर्त्ता) बना है फिर जवाब के जवाब में लिखता रहेगा। उसको ऐतराज करने का अवसर न मिलेगा, इस पर मौलवी साहब ने बहुत देर के इशरार (आग्रह) के बाद कहा कि बहुत अच्छा ! जिस किस्म का और जिस विषय का मेरा सवाल हो उसी मजमून और किस्म का सवाल मुझ पर किया जावे।

तहरीरी दस्तख्त –

"सनाउल्ला"

परन्तु हिन्दुओं का इस बहस से कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि बहस आर्यसमाज से हो रही है मौलाना साहब ! हिन्दुओं से नहीं। अन्यथा हम भी कह सकते हैं कि – शेखों का कहना है कि मौजूद कुरान अहले सुन्नत व ज्जमात, ब्याज उसमानी यानी मौजूदा कुरान सिर्फ सुन्नत जमात वालों का है, क्योंकि यह खलीफा उस्मान का जमा किया हुआ है, देखो–**"तोहफा असनाअसरीया यो क्रसफुल अन रूल बसायर"** दूसरों को अपना बेटा बनाना यह विषयान्तर में जाना है, आपने अपनी शर्त की पाबन्दी नहीं की ये हम कहते हैं कि **"मुत्ता"** (किसी दूसरे की औरत को पैसा देकर एक–दो रात के लिए अपनी बना लेना) जैसी खराब रसम कुरान में मौजूद है, खुदा का शैतान से मुबाहिसा कुरान में मौजूद है। देखो– **"कुरान सुरत, ऐराफ़ असादुल्-हजर व बक़र"** और देखो–**"मुबाहिसा तक़जीव बराहीन अहमदिया जिल्द १"** आपने झूठ कहा और सच से गुरेज (किनारा) कर गये। खुदा ने शैतान को बहकाया, शैतान ने जब **"फ़ीहा अगोतेनी"** कहा तो खुदा ने कोई जवाब नहीं दिया, बस खुदा खुद ही हार गया।

आसमान क्या चीज है जिसे आप देखते हैं ? साईस की किसी किताब से हवाला दें, इसके अतिरिक्त कुरान दुराचार और शराब पीने की शिक्षा देता है। जो शरह व क़वायद तबिया (इन्सानियत) के खिलाफ हैं। इसमें न तिब्बीयात् (चिकित्सा) का बयान है और न आत्मिकज्ञान और न ही कोई फ़िलासफ़ी (दार्शनिकता) की कोई बात है अर्थात् कुरान गुनाह करने की शिक्षा जबर्दस्ती देता है, और गुनाहगारी का इलज़ाम खुदा को देता है। और कुरान ही तमाम बदकारियों की जड़ है, हमने वेद का मन्त्र व हवाला पेश कर दिया है कि वह वेद परमेश्वर का अपना ज्ञान है। आपने उसका बिल्कुल ख़याल नहीं किया, और शोरबे की तरह डकार गये। (जनता में हंसी – – – –) हम अपने हर दावे का सबूत देते है। और आप इस बात का ख्याल रक्खें कि–लाफ़–गजाफ़ (झूंठी बातों) का तरीका कुरान का है हमारा नहीं।

नोट –

जिस वक्त ये बातें स्वामी जी ने कहनी आरम्भ की थी तो बीच में ही मौलवी साहब ने सभ्यता एवं शर्तो के विरुद्ध अनाप–सनाप बोलकर विध्न डालना चाहा, बजाय इसके कि वो चुप बैठकर सुनते बल्कि बहुत जोर–जोर से शोर मचाने लगे। इस विध्न डालने व शोर मचाने का मक़सद ये था कि स्वामी जी की बातें श्रोतागण न सुन सकें, इसलिए उनको प्रधान जी ने खड़ें होकर जबर्दस्ती मना करके चुप किया। इसी ज़द्दो–ज़हद में सारा समय समाप्त हो गया।

मौलाना सनाउल्ला साहिब –

मेरी समझ में नहीं आता कि आर्य लोग इन्साफ़ के रास्ते से क्यों जी चुराते हैं ? मैं हैरान हूं कि आर्य समाज जैसी शिक्षित संस्था, कानून के ख़िलाफ कार्यवाही करें कि मुद्दयी का तो पता ही नहीं और दावे का कोई मसाला नहीं। इस पर भी बेमतलब आर्य कहे जा रहे हैं कि–**"वेद इलहामी है"** ! **"वेद इलहामी है"** !! बेमतलब रट्ट लगाये जा रहे हैं !!! क्यों ऐसी किताब को इलहामी बतलाते हैं जो किसी गुमनाम व्यक्ति ने घड दी हो ? साहिबान ! इलहामी होने का दावा एक बड़ा आला (अच्छे) दर्जे का है। जब तक उसके मुद्दयी व हालात मालूम न हों उसका दावा ही सुनने के काबिल नहीं है, मैं हैरान हूं कि आर्य समाज किस तरह पब्लिक की आंखों में ख़ाक (मिट्टी) ड़ालता है। शैतान को खुदा ने दुनिया के गुमराह करने को मुकर्रर नहीं किया, इसलिए स्वामी जी से मेरी अर्ज़ है कि आप किसी आयत का हवाला दीजिये और उसे पढ़कर सुनाइये जिस किताब का हवाला दें, क्योंकि ये शर्तो में शामिल है कि असली इबारत (लिखित रूप में) दिखानी होगी। असहाब क़हफ़ किसको कहते हैं ? और वह क्यों निज़ाम (इन्तज़ाम) के खिलाफ़ है ? - - - - बीच में ही स्वामी

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

वेद का मुद्दयी (दावेदार) स्वयं परमेश्वर है। यह हमने पहले भी कहा है, इस वास्ते आपका यह कहना कि वेद का कोई मुद्दयी नहीं, यह सही नहीं है। आपकी मिसाल भी सरासर गलत है, जबकि वेद का मुद्दयी परमात्मा मौजूद है, और कुदरत का निज़ाम (प्रबन्ध) उसका गवाह है। आपका यह कहना कि–**"वेद का कोई मुद्दयी नहीं, या वेद अपना मुद्दयी किसी को नहीं बनाता"**, यह सरासर इन्साफ़ का खून करना है।

कुरान जमीन को बिछौना और आसमांन को छत बतलाता है, हालांकि ज़मीन गोल है, और आसमान कोई चीज नहीं, और कुरान में शैतान का मुबाहिसा खुदा से, और खुदा का शैतान की दलीलों से हार जाना और खुदा का शैतान को **"दुनिया को गुमराह करने वाला"** मुकर्रर (नियत्त) करना बुद्धि के विरुद्ध है।

याजूज–माजूज (फरिश्तों के नाम) की कहानी और असहाब का किस्सा, और सद् सिरकन्दी का किस्सा और यद् बैज़ा का किस्सा कोई सबूत ईश्वर की क्रिया में और इतिहास में नहीं है। अर्थात् जो बातें वास्तविक नहीं है, कुरान उनको वास्तविक बतलाता है इस वास्ते वह कलामेइलाही अर्थात् **"ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकता"**।

मौलवी सनाउल्ला साहिब –

वेद का मुद्दयी खुदा कहना ये तो एक वही मिसाल हुई कि– **"जिसका कोई नहीं उसके हम"**! खुदा ने कहाँ कहा है कि–**"मुद्दयी मैं हूँ ?"** और किसने उसे यह दावा करते हुए सुना ? इसका जवाब दो। इसलिए हमारी ऊपर दी गई मिसाल ठीक है। खुदा **"इलहाम"** देता है, तो उसको किस व्यक्ति द्वारा प्रकट किया गया ? किस क़दर गज़ब की बात है कि हिन्दू तो ब्रह्मा जी को कहे, और आर्य–समाज उसका उल्टा कहे, और अग्नि वगैरा को लिखें ? फिर ये अन्तर कि हिन्दु तो **"ब्राह्मण और सहिंता"** दो हिस्से वेद के बताते हैं, और आर्य समाज उसका आधा कहे, अर्थात् केवल मात्र सहिंता भाग को प्रमाण माने। दावे में अन्तर ! मुद्दयी का अता–पता नदारद !! और कहते जावें कि–**"वेद इलहामी हैं"** !!! वाह–वाह क्या खूब है ? किसी ने ठीक ही कहा है कि – **"पीरा न मे परन्द मूरीदाँ में परानन्द"** अर्थात् पीर खुद नहीं विख्यात होते बल्कि मुरीद उनको प्रसिद्ध करते हैं। और वैदिक धर्म की शिक्षा ये है कि दूसरे का बेटा अपना बना लो जिससे कि कोई सम्बन्ध ही नहीं। जमीन को बिछौना कहना, इस वास्ते ठीक है कि हम उस पर सोते हैं, जमीन की गोलाई जो आप कहते हैं, वह किसी को सोने से नहीं रोकती, आसमांन को हम बराबर देखते हैं, यूनान के दार्शनिक इसको साबित करते हैं। आपने किस दलील से इसको मना किया है ? एवं खुदा और शैतान का संवाद कुरान में नहीं हैं, आर्य समाज की मामूली गज़ाफ़जनी (झूठी बात) है, वो केवल उसका अर्ज़ मारूज़ (निवेदन) है जिस तरह से प्रजा, राजा से निवेदन करती है। बाकी अगली टर्न में कहूँगा, आप पहले मुद्दयी को लावें वक्त तंग है, प्रधान जी का इशारा हो रहा है। वो न हो, स्वामी जी, कि,– **"मुद्दयी सुस्त और गवाह चुस्त"** इस बात का ख्याल रखकर जवाब दीजिए। कि मुद्दयी भी चुस्त व मजबूत हो। बोदा (कमज़ोर) व नकली मुद्दयी हरगिज न माना जावेगा।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

वेद में परमेश्वर ने कहा है कि हम उसके मुद्दयी हैं, वेदों को–

अग्निवायु रविभ्यस्तु त्रयम्, बृह्म सनातनम् ।
दूदोह यज्ञ सिद्धयर्थम्, ऋग्, यजु, साम, लक्षणम् ।।

(मनुस्मृति)

अर्थात् वेदों को ऋषियों के हृदय में प्रकट किया। उन्होंनें उपदेश किया, हिन्दू ब्रह्मा से कहते हैं,

होने वाला नहीं है। इसके जवाब में सिर्फ ये कह देना ही काफी है कि–वेद तमाम बुराईयों और गुनाहों की जड़ है (जनता में शोरोगुल............) वेद बाकायदा तनासुख (आवागमन) के सिद्धान्त से माँ–बहन में भेद नहीं रखता। यानी तमीज नहीं रखता, वेद ने कोई मुक्ति के सही उपाय नहीं बतलाये जिससे कि खुदा के बन्दे मुक्ति पा सकें। वेद दुनिया में बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) फैलाता है। हिन्दुस्तान के हिन्दु इसकी जिन्दा मिसाल मौजूद हैं। जो एक ऐसी शर्मनाक कार्यवाही है कि अगर तमाम किस्म की खूबियाँ ही हों तो भी उस बुत–परस्ती के मुकाबले में सब हेच (नीचे) हैं। कुरान में **"मुता"** का सबूत पेश करें। वह आयत पढ़ो और सिर्फ तर्जुमा सुनाओं कि कुरान में कहाँ लिखा है कि खुदा हार गया, और शैतान जीत गया ? इस पर मैं क्या कहूंगा कि–**'झूठों को खुदा समझें'** दूसरे के लड़के को अपना बतलाना, जब वेद की शिक्षा है, और अक़ल के ख़िलाफ है, तो मैं ख़िलाफे अक़ल के उदाहरण के रूप में इसको पेश कर सकता हूँ। आप इसको अक़ल के मुताबिक बनायें, दुराचारी व शराबी होने का सबूत दो कि कुरान कहाँ इसकी शिक्षा देता है ? वरना झूठ कहते हुए शर्माओ। आगे के लिए मैं प्रधान जी का ध्यान दिलाता हूं कि कोई भी दावा बिना किताब की नकल के दर्ज न होने दें। वेद को अगर तिब्बीयात (चिकित्सा) का दावा है तो क्या स्वामी जी बतायेगें कि पेशाब में कितने अजज़ा (कण) वेद ने बताये हैं ?

आर्य समाज की ये गलती है कि शिक्षा देने वाली पुस्तक को तिब्बीयात (चिकित्सा शास्त्र) समझता है। मेहरबानी करके मुद्दयी को लाईये। सज्जनों वो देखो स्वामी जी की तरफ उनकी यह खामोशी बेवजह नहीं है, खुदा के मुद्दयी होने की बाबत मैं कह चुका हूँ कि वो इलहाम करने वाला है, तो इलहाम लाने वाला कौन है ? इसका जवाब दें।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

नाजरीन् ! जिस तरह मौलवी साहब ने याजूज–माजूज के किस्से से मना किया, उसी तरह शहाब, साकब से भी इन्कार किया। फिर यह बेज़ा और साँप की लाठी और लाठी का साँप बनना और मौजज़ा ये मूसा (मूसा के चमत्कार) को भी मना किया, हलांकि कुरान सूरत **"ऐराफ़"** में लाठी का सांप बनना और सूरत **"कशिस"** में यह किस्सा बराबर मौजूद है। देखिये उसका तर्जुमा सुनिये–**"और निकाल लिया उसने हाथ अपना फिर वह सफेद था, वास्ते देखने वालों के,** कहा अमीराने फ़िरऊन ने तहक़ीक यह अलबत्ता **जादूगर है बड़ा,** "फिर देखो–सूरतुल्ल कशिस में है – **"और यह कि डाल दे असा (लाठी) अपना, पस जब देखा उसको हिलता है गोया कि वह सांप है"।**

मौलवी साहब ! अपने खलल दिमाग का इलाज कीजिये, और कुरान की इन आयतों पर नज़र मारिये, ताके आपकी ज़हालत और अज्ञानता का बोझ आपके सिर पर से उतरे। और खुदा तुमको सद् उपदेश दे। वेद कोई गुमनाम किताब नहीं है, परमेश्वर का नाम उसमें दर्ज है। माफ कीजिये ! आप झूठ बोलते हैं, कुरान में लिखा है–**"अन्नाजालनांअलशयातीन औक्याअल्जीना लायोमनून्"** अर्थात् सूरत ऐराफ़ में है कि–**"हमने बनाया शैतानों को उन लोगों का दोस्त जो ईमान नहीं लाते जिससे जाहिर है कि शैतान को खुदा ने आदम को बहकाने के वास्ते बनाया और उसको इजाज़त दी कि वह दुनिया को बहकावे"** सूरत कहफ़ में चन्द शख्सों का कई सौ साल तक ग़ार में सोना ख़िलाफेवाकया है ? **"याजूज-माजूज"** का किस्सा और उनका बाहर निकलना तथा उनके रोकने के लिए सद् सिकन्दरी बनाना क्या ख़िलाफ़ेवाक़या नहीं है ?

कोई दीवार लोहे वा तांबे की ढ़ली हुई दुनिया में नहीं है। दूसरे के बेटे को अपना बनाना खिलाफ़े बहस है, वेद तनासुख (आवागमन) के सिद्धान्त में माँ–बहन और बेटियों में फर्क नहीं करता है, यह भी ख़िलाफे बहस है। इसका जवाब यह है कि इन्सान का सम्बन्ध (ताल्लुक) मां–बहन से जिस्मानी है जो मौत के बाद नहीं रहता, फिर न कोई आत्मा किसी का बाप है और न बेटी, और न बहन बल्कि यह ताल्लुक़ इसी दुनिया

योगेन्द्रपाल जी क्रोधित होते हुए बोले - - -,

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

अफ़सोस ! बेहद अफ़सोस !! मौलाना ने किस चालाकी की राह से कितनी नावाकफियत जाहिर की, क्या ही अच्छा होता कि अगर मौलवी साहब मुझसे पूछते कि कुरान किसे कहते हैं ? और रसूल किसका नाम है? और ईमान क्या चीज है ? और अल्ला किस जानवर का नाम है ? ताकि मौलवीयत और इस्लामीयत सब धरी की धरी रह जाती ! और मुसलमान हज़रत बिगड़ खड़े होते, और हज़रत मौलवी को तो भागते रास्ता न मिलता। "मुसलमानों में जर्बदस्त खलबली व शोरोगुल – – – – – " नाजरीन् ! (उपस्थित सज्जनों) मैं जानना चाहता हूँ कि–क्या कुरान के इन शब्दों से मना करना तथा उनके प्रति बिल्कुल ही नादान बन जाना, क्या पब्लिक की आंखों में मिट्टी झोंकना न था ?

मौलाना सनाउल्ला साहिब –

आप खामोश रहिये ! और तहज़ीब से बात करिये !! क्या आप बतायेगें कि– असहाब कहफ़ का किस्सा क्या हैं ? और क्यों वह इल्मेइलाही (ईश्वरीय ज्ञान) के खिलाफ़ है? सिर्फ़ किसी बात को ये कह देना कि–वो ख़िलाफे अक़्ल है, वह ख़िलाफे अक़्ल नहीं कहलाता याजूज़–माजूज की बाबत बतलाइये कि कुरान में कहां लिखा है ?

स्वामी योगेन्द्र पाल जी –

मौलवी बनें और कुरान के इतने बड़े किस्से से मना ! **"झूठ पर खुदा की मार"** देखो कुरान सूरतुल कहफ़ में लिखा है कि – **"कहा उन्होंने ए जुलकरनैन तहक़ीक (निश्चय) याजूज और माजूज फ़िशाद करने वाले बीच जमीन के पस आकर देवें तेरे वास्ते कुछ माल ऊपर इस बात के कि कर देवें तु दरम्यान हमारे और दरम्यान उनके एक दीवार"** फिर लिखा है कि– **"लाओ मेरे पास टुकड़े लोहे के, यहाँ तक के जब बराबर कर दिया दरम्यान दोनों पहाड़ों के क़हा फूकों यहां तक कि जब कर दिया इसको आग, कहा ले आओ मेरे पास, डालूँ ऊपर उसके गला हुआ तांबा पस न कर सके ये कि चढ़ आवे ऊपर और न कर सकें कि करे वास्ते उसके सुराख"** देखो– कुरान सुरत कहफ़।

नोट –

जिस पर मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ के बीच में ही, विद्वान मुसलमानों के सामने, जो वहां बैठे थे, याजूज–माजूज का किस्सा कुरान में कहां है ? कहकर मना कर दिया। फिर स्वामी योगेन्द्र पाल जी ने कहा कि भाइयों ! अगर इसी तरह मुबाहिसा होता रहा तो उम्मीद है कि मौलवी सनाउल्ला कुरान से भी मुन्किर हो जावेगा। अर्थात् (नास्तिक) हो जायेगा।

मौलाना सनाउल्ला साहिब –

सद् सिकन्दरी का क्या ज़िकर है ? उसे लिखा हुआ पढ़कर दिखाना होगा, स्वामी जी ये कान खोलकर सुन लें कि आज ऐसे ही पिण्ड छोड़ने वाला मैं भी नहीं हूं। वो लाठी से सांप बनने वाली आयत भी बतलाईये ? और लफ़ज सुनाइये, मगर इन सब बातों से पहले आपका फ़र्ज है कि वेद का मुद्दयी बतलावें, और उसको पेश करें, एवं उसकी जिन्दगी के हालात सुनावें, दूसरे के नुतफ़ा (वीर्य) से जन्में बच्चों को अपना बनाना भी जरा अक़्ल के मुताबिक सिद्ध कीजिए। मैं अफसोस करता हूँ कि आप आर्य समाज की मेम्बरी में क्यों ऐसे मजबूर हैं ? मैं ये बात प्रधान जी को भी कहता हूँ एवं उनका ध्यान इधर दिलाता हूँ कि स्वामी जी से किताब मंगवाकर दिखवायें, जिसमें इनकी कही बातें लिखी हों। ऐसे ही मुजबानी जमा खर्च से कुछ

सुनाई। अहले मजलिस में आर्य, मुसलमान, और खालसा भाई तथा सनातनी सभी लोग मौजूद थे, जिनके सामने मजीठा के वार्षिकोत्सव पर मौलवी साहब ने सही मुस्लिम की हदीस से मना किया था, कि इन हदीसों में वहां कुछ नहीं लिखा हुआ है। और स्वामी जी ने उनके जवाब में कहा था कि अगर वहां न लिखा होगा तो हम मुसलमान हो जायेंगे। वर्ना सनाउल्ला को आर्य बनना पड़ेगा। जिस पर सनाउल्ला कुछ जवाब न दे सके थे, और उस समय मौलवी साहब की हालत वाक़ई देखने लायक थी।

नोट – वो हदीसें* जो शास्त्रार्थ में पेश की गई थी, उनका तर्जुमा इस प्रकार है

(१) **"आयशा से रिवायत है कि हममें से जो कोई हायजा (हैज़ अर्थात् मासिकधर्म से) होती हो तो रसूल्लिलाह उसको हुकम करते तयवन्द (कटिवन्ध) बांधने का, फिर मुवाशरित करते हैं उसके साथ"।**

फिर लिखा है –

(२) **"जाबर से रिवायत है कि हम एक मुट्ठी खजूर और आटा देकर मुत्ता किया करते हैं, कई दिन के लिए रसूल और अबु बक़र के अहद में हत्ता के मना किया उससे उमर ने"।**

जब ये हदीसे पेश हुई तो तमाम मुसलमानों का रंग फक्क पड़ गया, और मौलवी सनाउल्ला की खूब कलई खुली। और लोग आर्य समाज की हक़बयानी पर ईमान लाये। क्या ही अच्छा होता ये तर्जुमा मौलवी सनाउल्ला साहब के सामने सुनाया जाता!

और इस तरह इस अज़ीमुश्शान मुबाहिसे का बसद अमनो–ईमान ख़ातमा हुआ। हम सरदार साहब श्रीमान् सरदार कृपाल सिंह जी व सरकार के शुक्रगुज़ार हैं कि जिन्होंने हमें इस मुबाहिसा में बड़ी मदद दी। "तमाम शुद"।।

"पण्डित दुर्गादत्त"– मन्त्री
आर्यसमाज **"मजीठा"** जिला अमृतसर

मजीठा के शास्त्रार्थ का निर्णय

वाक़या १६ अक्तूबर १९०४ को स्थान **"मजीठा"** तहसील अमृतसर में मुबाहिसा, स्वामी योगेन्द्र पाल साहब व मौलवी सनाउल्ला साहब के दरम्यान बाबत **"दीने इस्लाम व आर्य समाज की तालीम"** पर हुआ। इस शास्त्रार्थ में, मैं प्रधान था, मेरे सामने फ़रीक़ेन की रजामन्दी से ये अमर करार पाया मुबाहिसा आरम्भ होने से पहले अहले इस्लाम की तरफ़ से तजवीजे (सोच विचार) हुई कि मुबाहिसा बन्द हो जावे। चूनाचे मौलवी साहब की तरफ से एक दो पैग़ाम आये कि मुबाहिसा बन्द हो जावे, परन्तु इसकी सूचना दूर–दूर तक पहुंच चुकी थी, इस वास्ते शास्त्रार्थ का बन्द करना ठीक नहीं समझा गया। आखिरक़ार सरकार तक बात पहुंची कि शास्त्रार्थ बन्द हो–चूनाचें इसमें मेरी और दूसरे आदमियों की तलबी होकर जो कि मेरे साथ इस काम में शामिल थे, जनाब तहसीलदार साहब अमृतसर की अदालत में पेशी हुई। हमने तमाम हाल बयान कर दिया, और तहसीलदार साहब को यकीन दिला दिया कि झगड़ा होने का कोई डर नहीं, चूनाचे उन्होंने उसी वक्त जनाब डिप्टी साहब बहादुर जिला अमृतसर को सूचना दे दी कि झगड़ा होने का कोई खतरा नहीं

नोट –

* मेरे पास हदीसों की मूल कापी जो इस शास्त्रार्थ में पेश की गई थी, मौजूद हैं। उनके छापने का यहाँ कोई औचित्य नहीं था। एवं तर्जुमा भी मूल कापी के अनुसार ही दिया गया है। इसका शुद्ध हिन्दी में अनुवाद नहीं किया क्योंकि इन आयतों का बहुत ही गन्दा अर्थ है।

वैदिक धर्म का–
"अमरस्वामी सरस्वती"

में इसी शरीर के साथ है। मौत के बाद नहीं। हां ! कुरान जरूर बेटी और बाप में हर्गिज तमीज (फर्क) नहीं करता, देखिये– हव्वा का आदम से पैदा होना, और आदम का इससे समागम करना अर्थात् अपनी सगी बेटी से व्यभिचार करना है। ज़ैद और मौहम्मद साहब का किस्सा सूरतेअहज़ाब में मौजूद है, जैनब से जो मौहम्मद साहब के बेटे की बहु थी उससे मौहम्मद साहब ने बिना निकाह किये सोहबत (व्यभिचार) किया जो सरासर नाजायज था, कोई भला–मानस ऐसा नहीं करता, वेद–मूर्ति पूजा की शिक्षा नहीं देता है मगर कुरान संगे असवद (जो मक्का की दीवार में लगा हुआ भारी काला पत्थर आज भी मौजूद है) को बोसा देने की और तवाफ़ (परिक्रमा) करने की शिक्षा देता है। जो सरासर शिर्क व गुमराही है। अलावा इसके कुरान आदमपरस्ती की मक़रूह (बुरी) तालीम देता है, और फरिश्तों से आदम को सिज़दा (प्रणाम) कराता है।

नोट –

स्वामी जी इतना कह ही रहे थे कि मौलवी सनाउल्ला तैस में आये, और कहने लगे कि– प्रैजीडैन्ट साहब इन्हें समझावें कि यह (आर्य) किताबी हवाला पेश करें इस पर प्रैजीडैन्ट साहेब शास्त्रार्थ के प्रधान श्री सरदार कृपाल सिंह जी ने कहा कि–हव्वा का आदम की औलाद होना स्वामी जी कुरान से साबित करें, और वेद का बुतपरस्ती फैलाना मौलवी साहब वेद मन्त्र लिख कर के साबित करें, और लिखें कि वेद के किस मन्त्र में मूर्तिपूजा की हिदायत है ? जो अपना सबूत न दे सके वो हारा हुआ समझा जावेगा, और दूसरा पक्ष अपना सबूत दे देगा तों वह जीता हुआ समझा जावेगा।

नोट –

चुनाचे स्वामी जी साहब ने अपने दावे के सबूत में ये निम्न आयात् कुरान की लिख करके प्रैजीडैन्ट साहब की सेवा में पेश कर दी, जिनका तर्जुमा यह है–

"ऐ लोगों डरो ! परवरदिगार अपने से जिसने पैदा किया तुमको एक जान से और पैदा इससे जोड़ा उसका और फैलाये उनसे मर्द और औरत बहुत से"।

"सूरतुल्ल निशा"

इस आयत की व्याख्या में मौजुल कुरान में सफ़ा ११७ में दर्ज है कि –

"हव्वा आदम से पैदा हुई"

यही जिकर तौरते में है देखिये,–

"मौजुल कुरान"

"जब लिया परवरदिगार तेरे ने बेटों आदम के से बेटों उनके से और औलाद उनकी को और गवाह किया उनको ऊपर जानों उनकी के"

"तौरेत किताब पैदायश अध्याय २"।

नोट –

प्रैजीडैन्ट साहब ने इस पर्चे के पहुंचने के बाद फ़र्माया कि ज़नाब मौलवी साहब ! **"स्वामी जी ने अपने दावे के सबूत में कुरान से आयतें लिख दी"** आप भी वेद से वो मन्त्र जो मूर्ति पूजा की आज्ञा देते है, लिखकर पेश करो। मौलवी साहब ने साफ इन्कार किया, तो उस वक्त प्रधान जी ने कहा कि तो मेरी तरफ़ से शास्त्रार्थ समाप्त हैं। और हाज़रीन् मज़लिस ! तकलीफ़ न फ़र्मावें बल्कि अब तशरीफ़ ले जावें। फिर मौलवी साहब बिना कुछ वेदों के सबूत दिये ही चले गये। इसके बाद स्वामी जी ने वहां उपस्थित श्रोताओं के सामने उनके कहने के अनुसार व्याख्यान दिया, और वो हदीसे सही मुस्लिम में से अहले मज़लिस को

पैंतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : "नानौता" जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

@vaidicbooks

दिनांक : १८ मार्च सन् १९८० ई॰

विषय : ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व

शास्त्रार्थकर्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"

शास्त्रार्थकर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी अब्दुल मजीद साहब

अन्य उपस्थित विद्वान व रईस व्यक्ति : श्री पण्डित देवदत्त जी भजनोपदेशक एवं श्री लाला रईस लक्ष्मीनारायण जी, श्री साहू जम्बूप्रसाद जी एवं शास्त्रार्थ के अन्तिम दिन आगरा से श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर जी भी आ गये थे।

है। जब उनकी उसमें भी कोई पेश न गई तो उन्होंने एक और चाल चली जो ये है कि वाक़या १५ अक्तूबर सन् १६०४ ई॰ को ६ बजे शाम के करीब रूक्का बाजी शुरू कर दी, और हर चन्द चाहा कि टाल मटोल हो, मगर क्योंकि हम प्रबन्धकों को ये ख्याल था कि लोग दूर–दूर से आवेंगे और निराश होकर लौट जावेंगे तो उनको व्यर्थ में तकलीफ पहुंचेगी, आखिरकार यह बात तय हुई कि शरायत (शर्तें) लिखित रूप में पेश हों। चूनाचे मौलवी साहब की तरफ से मौलवी इमामुल्लद्दीन साहब और स्वामी योगेन्द्र पाल साहब की तरफ से श्री पण्डित दुर्गादत्त सक्रेटरी आर्य समाज–मजीठा वास्ते तय करने शरायत मुकर्रर हुए, तब सबसे बड़ी शर्त ये थी कि फ़रीकेन सवालों का जवाब भी देंगे और लगे हुए इलजामों पर ऐतराज भी करेंगे। इस बात के तय करने के वास्ते मौलवी इमामुल्लद्दीन साहब, मौलवी सनाउल्ला साहब के पास गये मगर उस रोज करीब ११ बजे तक उनकी ओर से कोई जवाब न मिला। और दूसरे रोज जब बहस आरम्भ हुई तो स्वामी जी ने ऐतराज किया कि जब तक मौलवी साहब शर्तो पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे, तब तक बहस शुरू नहीं होगी। क़रीबन डेढ़ घन्टा तक मौलवी साहब टाल–मटोल करते रहे। हालांकि ये दस्तख्त शर्तो पर बहस आरम्भ करने के पहले ही कर देने चाहिये थे, आखिर मजबूरन दस्तखत करने पड़े तब बहस शुरू हुई तो मौलवी साहब ने इलजामी एतराजों से मना कर दिया, कि जब तक मेरा सवाल समाप्त न हो ले तब तक इलज़ामी सवालों का जबाब न दिया जावेगा। मौलवी साहब का यह कहना शास्त्रार्थ की शर्तो के विरुद्ध था, मगर आखिरकार जब दोनों पक्षों में झगड़ा इस कदर बढ़ गया कि दो घन्टे समय बर्बाद हो गया, तो लाचार होकर मुझे दोनों साहिबानों को ये कहना पड़ा कि शर्तो के अनुसार मुबाहिसा फ़रीकेन को इलजामी ऐतराज करने का हक़ है। जिससे मौलवी साहब पहल करते थे, चूनांचे बहुत कहने–सुनने के बाद मौलवी साहब ने मान लिया कि इलजामी ऐतराजों को सुनुंगा, बहस फिर शुरू हुई, आखिरकार– सवाल–जवाब में बात शुरू हुई, मौलवी साहब ने सवाल किया कि बुत परस्ती (मूर्ति पूजन) वेदों में जायज है। स्वामी साहब ने इसका यह जवाब दिया कि वेदों में बुतपरस्ती जायज नहीं है। बल्कि कुरान में लिखा है कि–**"हव्वा, आदम से पैदा हुई और इसलिए वह आदम की औलाद है"**। इस पर मौलवी साहब ने कहा कि कुरान शरीफ में यह कहां लिखा है ? बस मुबाहिसा इस बात पर समाप्त हुआ कि **"मौलवी साहब मूर्ति पूजा के पक्ष में वेद मन्त्र पेश करें"**। और स्वामी जी **"हव्वा आदम से पैदा हुई और उसकी औलाद है"** इस वाक्य के पक्ष में कोई कुरान की आयत पेश करें। चुनाचे इस बात को तमाम लोगों के सामने पुकार–पुकार कर कहा गया, कि जो अपना सबूत दे वह सच्चा है, और जो सबूत न दें वह झूठा समझा जावेगा।

स्वामी जी ने कुरान **"सूरत निशा"** की पहली आयत अपने सबूत में लिख कर पेश कर दी। अब मौलवी साहब को दो–तीन बार उठकर सबके सामने पुकार–पुकार कर कहा गया कि आप भी कोई वेद मन्त्र पेश करें जिसमें मूर्ति पूजा का बयान हो। मौलवी साहब ने कहा कि–**"मैं नहीं लिख सकता"** और **" ना हि सबूत दे सकता हूं"** बस ! जब मौलवी साहब अपना कोई सबूत न दे सके तो सब लोगों को पुकार–पुकार कर कह दिया गया कि बस ! बहस अब ख़तम हो गई है, मौलवी साहब सबूत नहीं दे सकते, और ज्यादा बैठना बेफायदा है, इतना कहने पर कुछ लोग तो चले गये और ये बहस मेरे सामने इसी बात पर ख़तम हो गई। उसके बाद स्वामी जी साहब का व्याख्यान हुआ जो वहां बैठे सभी श्रौताओं ने सुना जिसमें स्वामी जी साहब ने बहुत–सी हदीसें आदि पेश की ! बक़लम खुद !!

"कृपाल सिंह"(प्रधान–मुबाहिसा)
मजीठा (अमृतसर)

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलाना अब्दुल मज़ीद साहब –

उपस्थित साहेबान एव पण्डित जी महाराज। मैं १७ ज़ुबाने जानता हूं, आर्या वाले मेरा क्या मुकाबला करेंगे? आर्य समाजी तो तीन खुदा मानते हैं, ईसुर, जीउ तथा परकरती। (ईश्वर, जीव और प्रकृति) अब बतायें कि दुनियां का खालिक़ व मालिक कौन है ? और माद्दा साकिन है या मुतहर्रिक ? अगर मुतहर्रिक (क्रियाशील) है तो हादिस (नाशवान्) है, अनित्य है, नाशवान है, और साकिन है तो दुनिया बन नहीं सकती, फिर कदीम (अनादि) कहां रहा ? इसलिए रूह (आत्मा) माद्दा (प्रकृति) खुदा ने पैदा किये हैं और वही सबका खालिक है, ख़ालिक वही होता है जो किसी शय(वस्तु) को अदम (अभाव) से वजूद (भाव) में लावे।

पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

सज्जनों ! मौलाना साहब १७ भाषाएं जानते हैं, यह आप लोगों ने अपने कानों से सुना, बहुत खुशी की बात है। मगर मुझे बेहद अफ़सोस है कि उन सब भाषाओं की जननी देववाणी (संस्कृत) का एक वाक्य भी नहीं जानते, अर्थात् मामूली सा ज्ञान भी नहीं है। और शास्त्रार्थ करने आ गए हम लोगों से जिनके सभी धर्म ग्रन्थ संस्कृत में हैं।

जनाब ! मौलाना साहब !! कुछ चीजों की एक सिफ़त मिलने से एक नहीं हो जाती, उनके साम्य में वैषम्य भी देखा जाता है, अस्तित्वमान तो ईश्वर, जीव, प्रकृति, इस समय भी है, फिर आपके मतानुसार वह अस्तित्व जीव और प्रकृति में नित्य नहीं है। ईश्वर में नित्य है, यही भेद है तो हमारे सिद्धान्त में ईश्वर, जीव, प्रकृति, तीन पदार्थो का अस्तित्व नित्य होते हुए भी दो पराधीन है, जीव और प्रकृति अपनी अज्ञानता के कारण ! परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः इन दोनों का अधिपति है, वही सृष्टि का निर्माता है इसी लिए वह ख़ालिक कहलाता है, आप क्योंकि अदम (अभाव) से वजूद में आना मानते हैं इसलिए ख़ालिक उसे कहते हैं कि जो अदम से वजूद (भाव) में लावे।

हम कहते हैं यह ईश्वरीय ज्ञान के विरुद्ध है कि मिथ्या ज्ञान रक्खे। अभाव ! है, तथा भाव ! भाव है, कारण–बिना कार्य नहीं, इस रचना का उपादान कारण ईश्वर तो हो नहीं सकता, क्योंकि यह संसार यदि ईश्वर से बना है तो सब चेतन ही और पवित्र ही होना चाहिये था। उपादान कारण के गुण, कार्य के अन्दर अवश्य आते हैं। और यदि अभाव से यह भाव रूप संसार ईश्वर ने रचा है तो ईश्वर के ज़हन (दिमाग) में वजूद आया तो खुदा का ज़हन गलत रहा, और खुदा के ज़हन में यह परिवर्तन क्यों हुआ ? ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादि होते हुए भी और–और गुणों में भेद रखते हैं। मौलाना साहब सुनिये ! प्रकृति है–सत् ! जीव है–सच्चित् !! और ईश्वर है– सच्चिदानन्द !!! इसलिए तीनों एक नहीं।

चपरासी व जज दोनों मनुष्य होते हुए भी दोनों की योग्यता अलग–अलग है। इसी तरह प्रकृति न चल है न अचल, अचेतन होने से अचल है, परन्तु ईश्वर उसे गति देता है इसलिए चल है कोई भी पदार्थ अनित्य तब होता है जबकि वह संयुक्त हो, मुरक्किब हो। मुफ़रद (असंयुक्त) पदार्थ अनित्य नहीं होते प्रकृति परमाणु रूप है, अतः नित्य है, यह सब पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बने हैं, अतः अलग–अलग हो जायेंगे, इसलिए अनित्य है, इल्लत (कारण) नित्य है। मालूल (कार्य) अनित्य है।

मौलाना अब्दुल मज़ीद साहब –

पण्डित जी मेरी दलीलों को आप समझे ही नहीं, अगर रूह (जीवात्मा) और माद्दा (प्रकृति) क़दीम

शास्त्रार्थ से पहले

नानौता कस्बा, जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में दिल्ली-सहारनपुर (बस मार्ग) पर बिल्कुल सड़क पर स्थित है, जहां पर अधिक संख्या में मुसलमान लोग निवास करते हैं, यहां के धनी-मानी रईस लाला लक्ष्मी नारायण जी ने आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा से, वैदिक धर्म प्रचारार्थ कुछ उपदेशक, व भजनोपदेशक बुलाये तो विद्यालय की ओर से श्री पण्डित देवदत्त जी भजनोपदेशक एवं उपदेशक के रूप में मुझे भेजा गया।

भजनोपदेशक जी को तो एक दिन प्रचार कराने के बाद बिदा कर दिया गया परन्तु मुझे वहां के एक स्थानीय मौलवी अब्दुल मजीद साहब ने मुबाहिसे का चैलेन्ज दे दिया अतः रूकना पड़ा, शास्त्रार्थ का स्थान यहां के प्रमुख रईस साहू जम्बूप्रसाद जी की हवेली पर निश्चित हुआ। सैकड़ों हिन्दू-मुसलमान मुबाहिसा सुनने के लिए आ बैठे, मौलवी साहब एक लम्बा सा चौगा पहन व पगड़ी बांध पूरी सज धज के साथ साभिमान आकर क़ुर्सी पर विराजे और बोलना प्रारम्भ कर दिया। तभी मैंने मौलाना साहब से कहा कि मुबाहिसे के कुछ उसूल होते हैं। ऐसा नहीं मौलाना साहब कि आप आये और बस शुरू हो गये। यहां पर इतनी सारी जनता के साथ-साथ कुछ विशिष्ट व्यक्ति तथा विद्वान व्यक्ति भी मौजूद हैं। अच्छा होगा कि जिस विषय पर आप बहस करना चाहते हैं उस विषय को तथा उसके नियम, कायदे कानून भी निश्चित कर लिये जावें। इस पर वहां उपस्थित लोगों ने मेरी बात को समर्थन दिया, तभी श्री साहू जम्बूप्रसाद जी तथा श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी ने मुझे ही कहा कि-पण्डित जी आप ही नियम बताइये, हम मौलाना अब्दुल मजीद साहब से पूछे लेते हैं अगर इनको उन पर कोई एतराज़ नही होगा तो उनके मुताबिक ही शास्त्रार्थ किजिये। तब मैंने निम्न नियम पढ़ कर सुनाये,-

१ - शास्त्रार्थ मौखिक तथा हिन्दी तथा उर्दू भाषा में होगा।

२ - शास्त्रार्थ का विषय **"ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व"** होगा।

३ - प्रत्येक पक्ष को अपने कथन में विपक्ष के मान्य मूल ग्रन्थों के प्रमाण देने होगें।

४ - प्रत्येक पक्ष वाले शास्त्रार्थकर्त्ता को अपने कथन को समझाने के लिए तर्क एवं दलीलें देने का पूर्ण अधिकार होगा। जिससे कही गई बात सबकी समझ में आ जावे।

बस! इन्हीं नियमों की स्वीकृति मौलाना साहब से लेकर मुबाहिसा आरम्भ कर दिया गया परन्तु मौलाना साहब को ज्यादा वाक्फीयत नही थी, तो भी इस छोटे से मुबाहिसे का सभी लोगों पर बेहद असर पड़ा तथा चारों तरफ आर्य समाज व वैदिकधर्म की वाह! वाह!! हुई, वैदिक धर्म के प्रचार में शास्त्रार्थ विशेष सहायक सिद्ध हुए। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी शास्त्रार्थों के द्वारा ही वैदिक धर्म का पुनर्स्थापन किया जो ज्यादा प्रभावशाली रहा। इस छोटे से शास्त्रार्थ में भी बड़ा आनन्द आया तथा वहां पर स्थानीय लोगों पर इसकी एक विशेष अमिट छाप पड़ी।

वैदिक धर्म का सेवक -

"बिहारी लाल शास्त्री"

छत्तीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "इलाहाबाद" (उत्तर प्रदेश)
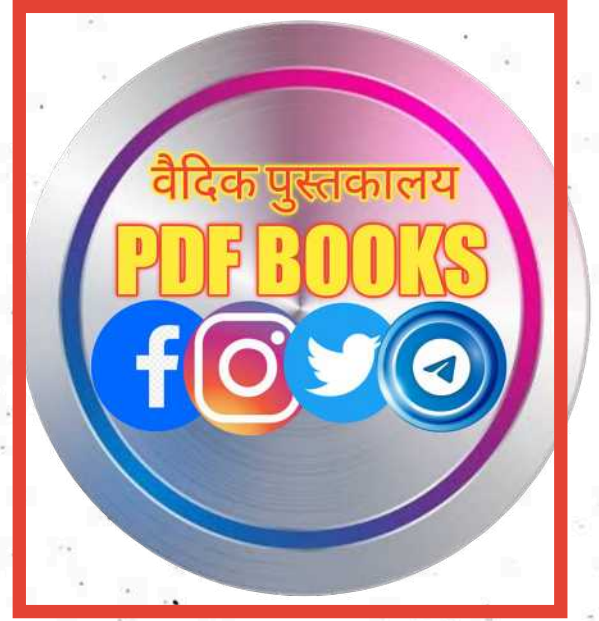
दिनांक : ८ अक्टूबर सन् १६२२

विषय : क्या "नियोग प्रथा" मनुष्य मात्र के लिए हितकर है ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री: पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"

शास्त्रार्थकर्त्ता ईसाईयों की ओर से : श्री पादरी विलक्टन् जी महोदय

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी "शास्त्रार्थ महारथी"

(अनादि) है तो खुदा का उन पर कब्जा हो ही नहीं सकता। वे खुदा का हुकम भी नहीं मानेंगे। फिर दुनिया ही नहीं बन सकती, और तीन चीजें क़दीम मानने से तौहिदे अल्लाह नहीं रहती। हम तो यह मानते है कि फ़कत अल्लाह ही अल्लाह है जो अपनी क़ुदरत से रूह व माद्दे को बनाता है। और फ़ना (ख़तम) भी कर देता है। फ़कत वही क़दीम (अनादि) है।

पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

मैं मौलवी साहब की बात या दलीलों को नहीं समझता, जबकि मैं उर्दू अच्छी तरह समझता व जानता हूं, बल्कि मैं ये समझता हूं कि मौलवी साहब जो संस्कृत भाषा का जानना तो दरकिनार हिन्दी भी अच्छी तरह नही जानते, वह मेरी बातों को नहीं समझे अल्लाह (ईश्वर) अपने गुणों में वाहिद (अद्वितीय) है। पर और चीजों के होने से उसकी तौहीद को क्या खतरा ? प्रकृति और जीव पर उसका अधिकार हो नहीं गया बल्कि वह अधिकार तो सदा से है। अलपज्ञ जीव उस सर्वज्ञ (परमात्मा) के सहारे है। अज्ञ (प्रकृति) उसके हाथ का खिलौना है। आपका अल्लाह बेमुल्क का नवाब है। बे मुल्क का मालिक। पास कौड़ी नहीं है, पर साहूकार है। आपका अल्लाह खाली हाथ है। हमारा ईश्वर असंख्य जीवों तथा प्रकृति का स्वामी है और सदा से स्वामी है। और सदा तक रहेगा, यह सम्बन्ध स्वामी–स्वामित्व तथा सेवक, सेव्य का नित्य है।

मौलाना अब्दुल मज़ीद साहब –

तो आपका खुदा (परमेश्वर) एक कुम्हार व बढ़ई की तरह है, जिसका काम यही है कि मिट्टी से घड़ा बना दिया और लकड़ी से चौखट–किवाड़ आदि बना दिये, ... जनता में हँसी...........।

पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

तो मौलाना ! इसमें बुराई ही क्या है ? कुम्हार और बढ़ई छोटे कारीगर हैं, और वह ईश्वर महान् कारीगर है। परन्तु तुम्हारे अल्लाह मियां तो एक मदारी से ज्यादा नहीं है। मदारी खाली हाथ रुपये बनाता है, पेड़ लगाता है। अल्लाह मियां यह सृष्टि का शोब्दा तैयार करते हैं फिर तो अद्वैतवादियों और बौद्धों की बात ही सच रहती है कि यह संसार वस्तुतः कुछ नहीं केवल स्वप्न ही स्वप्न है कोरी बाजीगरी भर ही है।

नोट –

बस यहीं पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया, क्योंकि मौलाना साहब का रोजा था, इसलिए वे ज्यादा बोल नहीं सकते थे, इस कारण दूसरे समय का शास्त्रार्थ नहीं हुआ फिर मौलवी साहब ने जगह की अड़चन लगाई और शास्त्रार्थ टालने का यत्न किया गया। इसके बाद श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर, आगरा से आ गये, क्योंकि भजनोपदेशक महाशय ने यहां की शास्त्रार्थ वाली स्थिति को वहां जाकर बताया था, उसे सुनते ही डाक्टर साहब ने अपने आने का प्रोगाम बना लिया था। उनके आने पर, जब उनके आगमन की सूचना मौलवी साहब ने सुनी तो वे घर छोड़कर ही कहीं चले गये।

जब हम कई मुसलमानों को साथ लेकर उन्हें बुलाने उनके घर पहुंचे तो उनके वालिद साहब (पिताजी) ने कहा कि–**"क्या मेरे लड़के ने ही मुबाहिसे करने का ठेका लिया हुआ है"** ? इस पर मुसलमानों ने कहा कि–**"चैलेञ्ज भी तो तुम्हारे लड़के ने ही दिया था"**। और हम लोग वापिस आ गये फिर शास्त्रार्थ न होकर समाज का प्रचार बड़ी धूमधाम से हुआ तथा आर्य समाज की छाप इस छोटे से शास्त्रार्थ के कारण सभी व्यक्तियों के हृदयों पर बहुत अच्छी पड़ी।

वैदिक धर्म का सेवक –

" बिहारीलाल शास्त्री"

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

औरत का अपने पति को छोड़कर दूसरे मर्द के पास...........जाना और मर्द का अपनी स्त्री को त्याग कर दूसरी स्त्री को रखना तो आपके यहां होता है, स्त्री ने पति को तलाक दी और औरत दूसरे के पास चली गई। इसी तरह पति ने अपनी पहली स्त्री को तलाक दिया और दूसरी स्त्री को ले आया, उससे औलाद पैदा की, बस अन्तर केवल इतना है कि–नियोग होता है, केवल कुछ समय के लिए और आपके यहां दूसरी–तीसरी–चौथी व बहुत सी औरतों को एक मर्द रख सकता है और इसी प्रकार बहुत से मर्दों को एक औरत अपना सकती है ऐसा तलाक स्वयं मानने वाले व्यक्ति, नियोग जैसी पवित्र प्रथा को बुरा बताते हैं ? घोर आश्चर्य है !

पादरी साहब ! रोजाना शराब पीना ठीक है या एक दो बार !! वह भी रोग होने पर पीना। जनाब ! ज़रा गौर फ़रमायें, तलाक है मनमानी शराब का पीना, और नियोग है एक–दो बार वह भी रोग पर (औषधि रूप में) शराब पीना, इसलिए इसको आपद् धर्म भी कहते हैं, औलाद के लिए नियोग करना और अपने पति के लिए दूसरे से औलाद पैदा करना।

भाइयो ! दूसरे से पैदा होकर दूसरे का होना तो बाइबिल को भी मन्जूर है, देखिये–"**बाईबिल उत्पत्ति अध्याय ३८ यहूदा याकूब (इस्त्रायल का पुत्र) का चरित्र –**

नोट –

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री जी रात के धीमें प्रकाश में पढ़ नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने शास्त्रार्थ के प्रधान (पण्डित रामचन्द्र देहलवी) जी से पुस्तक का अध्याय खोलकर दिया, और जनता के सम्मुख पढ़ देने की प्रार्थना की। जिसको अंग्रेजी की बाइबिल से प्रधान जी ने पढ़कर जनता को सुना दिया, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

.............और यहूदा ने तामार नाम की एक स्त्री से अपने जेठे (बेटे) **"एर"** का विवाह कर दिया, पर यहूदा का वह जेठा पुत्र एर जो यहोवा के खेमे में दुष्ट था, इसलिए यहोवा ने उसको मार डाला तब यहूदा ने **"औनान"** अपने मंझले पुत्र से कहा कि तू अपनी भोजाई (भाभी) के पास जा, और उसके साथ देवर का धर्म (नियोग) करके अपने भाई के लिए सन्तान पैदा कर। **"औनान"** तो जानता था कि यह सन्तान मेरा नही कहलायेगा इसलिए जब वह अपनी भाभी के पास गया तो उसने भोग करते समय भूमि पर ही लिंग रखकर वीर्य का नाश कर दिया, न कि उसको अपने भाई के लिए सन्तानोत्पत्ति के लिए योनि के अन्दर स्खलित करता। यह उसका कुकृत्य यहोवा को बहुत बुरा लगा, सो उसने .... ईसाइयों द्वारा शोर मचाना ....आप लोग ध्यान पूर्वक व शान्ती से सुनिये ! मैं अपनी तरफ से नहीं बल्कि बाइबिल का तर्जुमा जो है उसे पढ़ कर सुना रहा हूं, हां तो सज्जनो ! उसने उसको भी मार डाला तब यहूदा ने इस डर के मारे कि कहीं ऐसा न हो कि अपने भाईयों की तरह **"सेला"** भी मरे, अतः उसने अपनी बहु **"तामार"** से कहा कि जब तक मेरा पुत्र सेला समर्थ न हो अर्थात् सन्तान पैदा करने के क़ाबिल न हो तो तब तक तुम अपने पिता के घर में जाकर बैठी रहो। इसलिए **"तामार"** अपने पिता के घर जाकर बैठी रही, बहुत दिनों के बीतने पर यहूदा की स्त्री जो **"सू"** की बेटी थी, वह मर गई। फिर यहूदा शोक से छूटकर अपने मित्र हीरा **"अदुल्लाम वासी"** समेत **"तिम्ना"** नगर को अपनी भेड़–बकरियों का रोयां कतराने के लिए गया, और तामार को यह समाचार मिल गया कि , तेरा ससुर तिम्ना को अपनी भेड़–बकरियों का रोयां कतराने को जा रहा है, तब उसने यह सोच कर कि सेला समर्थ तो हो गया पर मैं उसकी स्त्री नहीं हो पाई, उसने अपना विधवापन का पहरावा उतारा, और बुर्का डालकर अपने को ढाप लिया, और ऐनम नगर के फ़ाटक के पास

भूमिका

आर्य समाज चौक (इलाहाबाद) के उत्सव पर प्रति वर्ष शास्त्रार्थ हुआ करता था, और प्रायः आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी ही शास्त्रार्थ किया करते थे, इस बार देहलवी जी के विद्यमान होते हुए भी शास्त्रार्थ मुझे करना पड़ा, ईसाई मत की ओर से श्री विलक्टन् महोदय जी निश्चित हुए।

"बिहारीलाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पादरी विलक्टन् साहब जी –

सत्यार्थप्रकाश में नियोग करने का कानून है, औलाद न होने पर बेवा (विधवा) और ख़ाविन्द वाली बीबी भी नियोग कर सकती है, मर्द भी अपनी औरत के अलावा और औरतों से नियोग कर सकता है। यह नियोग प्रथा खुले तौर पर **"ज़िनाकारी"** (व्यभिचार) है। जो मज़हब ऐसी व्यभिचारी प्रथा को मानता हो वह ईश्वरीय मज़हब नहीं हो सकता। ग़ैर मर्द से अपने ख़ाविन्द के लिए औलाद पैदा कराना कैसे जायज हो सकता है ? और सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि–**"अगर न रहा जाये तो किसी से नियोग करके उसके लिए औलाद पैदा कर दे"**, अफ़सोस ! साहिबान अफ़सोस !! मैं पूछना चाहता हूँ कि बतलाइये यह खुले आम ज़िनाकारी की तालीम (व्यभिचार की शिक्षा) हैं या नहीं ?

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

पादरी साहब ! आपको पता होना चाहिये कि **"ज़िनाकरी होती है बिना किसी नियत के, औरत और मर्द अगर अपनी कामवासना के वशीभूत होकर मिलें"**, परन्तु क़ायदे–कानून के साथ मिलना और ऊंचे कार्यो को पूर्ण करने के लिए मिलना, जिनाकारी (व्यभिचार) नही कहलाता। रही नियोग की बात ? वह भी विवाह की तरह कानून में बंधा हुआ होता है। देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास चार में–उत्तर देते हुए–**"और नियोग में विवाह के समान नियम है"** पादरी साहब ! संसार में कुकर्म और व्यभिचार को रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है। और वह है **"नियोग"**।

औलाद की इच्छा होना स्वाभाविक है, और ख़ानदान चलाने के लिए औलाद पैदा की जाती है। यही सत्यार्थप्रकाश कहता है, और जब संतान का सर्वथा क्षय (अभाव) हो तब नियोग होवे। ईसाईयों में तो विधवा स्त्री और तलाक लेकर सुहागन स्त्री भी और पुरुष भी पुनः विवाह करते हैं, तो यह तरीका विषय भोगों को बढ़ावा देता है, मगर नियोग में नियम करना पड़ता है, नियोग केवल सन्तान प्राप्ति के लिए है, विषय भोगों के लिए नहीं, अर्थात कामवासना की तृप्ति के लिए नियोग नहीं है। देखो सत्यार्थप्रकाश **"सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें तो पतित हो जायें"**। देखा ! नियोग में कितना बड़ा इन्द्रिय निग्रह है पादरी साहब ! नियोग करना तलवार की धार पर चलना है इसकी तुलना विलासिता से अर्थात् व्यभिचार से करना गुड़–गोबर को बराबर बताना है।

श्री पादरी विलक्टन् साहब जी –

नियोग में बेहयाई है, ख़ाविन्द के होते हुए औरत दूसरे मर्द के पास जाती है और मर्द भी गैर बीबियों से मिलते हैं, और पण्डित जी महाराज ! नियोग के द्वारा पैदा की गई औलाद तो वैसे भी जायज़ नहीं हो सकती, क्योंकि सन्तान पैदा किसी और से होती है और कहलाती किसी और की है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

पादरी जी ! ये आप क्या कह गये जनाब !! पुराना अहदनामा तो नये अहदनामें की जड़ है। जब जड़ को ही काट डालोगे तो शाखाओं की सुरक्षा किस प्रकार करोगे ? आप यीसू का वचन भी तो देखिये, यीसू जी क्या फ़रमाते हैं ?

'मत समझो कि मैं व्यवस्था को लोप करने आया हूं, बल्कि व्यवस्था का एक–एक हरफ़ पूरा होगा"।

(यीसू वचन)

यीसू पुराने अहदनामें को मानता था, उसका विरोध तो यहूदी पुजारियों के ढोंग भरे व्यवहार से था, पुराने अहदनामे से नहीं, इसीलिए वह पुराना अहदनामा नये अहदनामें के साथ जुड़ा रहता है। और पुराने अहदनामें सहित पूरी बाईबिल ही **"होली बाईबिल"** यानी पवित्र पुस्तक मानी जाती है।

बाइबिल के यहूदा और लूत, आपके मानवीय पुरखा थे। सुनिये पादरी जी ! लूत तो था पैग़ाम्बर इब्राहीम का भतीजा और यहूदा था पैग़ाम्बर याकूब का पुत्र, इनकी सब विधियां आपके सिर पर रखने योग्य हैं। अपनी स्त्री को ग़ैर मर्द के पास जाने देना बुरा है, बेहयाई है। परन्तु पादरी साहब यह बात आपके ही यहां ज्यादा है। आपके यहां तलाक के बाद अपनी औरत दूसरे की हो जाती है या नहीं? आपके यहां तलाक के ज़रिये रोजाना मर्द, औरत बदल सकता है। और औरत मर्द को त्याग कर नित नया ताज़ा पति ढूंढ सकती है। (जनता में हंसी...............),

नियोग में इतनी छूट नहीं है। वहां केवल सन्तान के लिए ही स्त्री–पुरुष मिल सकते हैं, फिर कभी नहीं, इस लिए कामी पुरुष अजितेन्द्रिय (शहबत परस्त) औरत–मर्दों के लिए नियोग का विधान नहीं। व्यभिचार वह होता है जो अवैधानिक सम्बन्ध भोग के लिए हो, और जिसका विधान है सामाजिक अनुमति, जो कर्म हैं वे व्यभिचार नहीं, यदि किसी विशेष हित के लिए हो तो।

देखो नियोग की मर्यादायें –

जैसे बिना विवाहितों का सम्भोग करना व्यभिचार होता है वा कहलाता है इसी प्रकार बिना नियुक्तों का व्यभिचार कहलाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि–जैसे नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहलाता तो, वैसे ही नियमपूर्वक नियोग होने से वह भी व्यभिचार नहीं कहलावेगा।

जैसे दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ शास्त्रोक्त विधि पूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार व पाप लज्जा नहीं होती वैसे ही वेद शास्त्रोक्त **"नियोग"** में व्यभिचार लज्जा न मानना चाहिये।

नोट –

इस प्रकार यह छोटा सा शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।
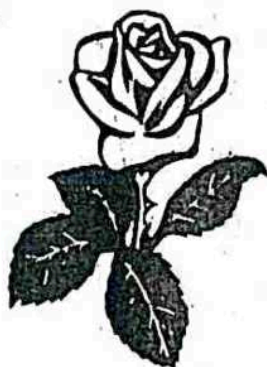
जो तिम्ना के मार्ग में पड़ता था जा बैठी, उसको देखकर यहूदा ने उसे वेश्या समझा, क्योंकि वह अपना मुंह ढांपे हुए थी, सो उसने उसे अपनी बहु न जानकर मार्ग में उसकी तरफ़ मुड़ कर कहा– **"मुझे अपने पास आने दे"** उसने कहा– मैं तुझको अपने पास आने दूं तो तू मुझे क्या देगा ? उसने कहा मैं अपनी इन बकरियों में से एक बच्चा तेरे पास भेज दूंगा, तब उसने कहा–भला उसके भेजने तक क्या तू हमारे पास बंधक रख जायेगा ? उसने पूछा मैं कौन सा बंधक तेरे पास रख जाऊं ? उसने कहा अपनी वह छाप और डोरी और अपने पास की छड़ी। तब यहूदा ने तामार को वे वस्तुएं दी, और उसके पास गया, सो वह उससे (अपने श्वसुर) से गर्भवती हुई।

(बाइबिल-उत्पत्ति अध्याय ३८)

कहिये पादरी साहब ! यह नियोग है या नहीं ? अपने भाई के लिए औलाद पैदा करने के लिए भाभी के पास जाना, और औनान् ने औलाद के लिए भोग न करके वासना के लिए भोग किया, जिसके कारण ईश्वर ने उसे मार डाला, फिर तामार को भी तो देखिए कि वह सन्तान के लिए कितनी व्याकुल है कि ससुर से भोग करती है, और वह भी धोखा देकर। पादरी साहब। यदि उचित नियोग होता तो ! ससुर व बहू का यह सम्बन्ध हर्गिज नहीं होता। और लूत की लड़कियों ने तो सन्तान के लिए अपने पिता से ही भोग कर डाला, देखिये बाईबल में लिखा है –

"लूत की लड़की अपनी बहन से कहती है–सो आ हम अपने पिता को दाखमधु (अंगूरी शराब) पिलाकर उसके साथ सोवें और इसी रीति से अपने पिता के द्वारा वंश उत्पन्न करें"।

(बाईबिल उत्पत्ति अध्याय १६, आयत ३२)

कमाल है भाइयो ! देखा आपने कितनी प्रबल इच्छा है वंश चलाने की !! लूत की बेटियों में !!! यदि विधि पूर्वक नियोग न होगा तो–यहूदा जैसे बेहूदे काम होगें, और लूत जैसी अधम रीति फैलेगी। बाइबिल में नियोग पर इतना जोर दिया है कि इतना वैदिक स्मृतियों में भी नहीं है। और देखिये बाइबिल में कहा है – "तो उसके भाई की स्त्री पुरनियों के सामने उसके पास जाकर उसके पांव से जूती उतारे, और उसके मुंह पर थूक दे, और कहे कि–जो पुरुष अपने भाई के वंश को चलाना न चाहे उससे यों ही व्यवहार किया जावेगा"।

(व्यवस्था विवरण अध्याय २५)

देखा भाइयों ! सुना आपने !! पवित्र ग्रन्थ बाईबिल क्या कहता है ? (जनता में हंसी...........) वो कहता है कि जो नियोग को मना करेगा वो जूता खायेगा, ये है बाइबिल का उपदेश। पादरी साहब। आप बाईबिल को मानने वाले होकर नियोग को किस मुंह से बुरा कहते हैं ?

श्री पादरी विलक्टन् साहब जी –

पण्डित जीं महाराज ! ये सब बातें जो आपने बयान की, पुराने अहदनामें की हैं, हम इन्हें नहीं मानते, यहूदा और लूत से हमें कोई वास्ता नहीं, अपनी औरत को दूसरे (गैर) आदमी के पास भेजना बेहयाई है, औलाद के लिए बेवा औरत दूसरी शादी कर ले, मगर नियोग जैसा ख़राब काम उसे कदापि नहीं करना चाहिये।

नोट –

पादरी साहब ने इसी विषय पर ऊट–पटांग की बातों में व्यर्थ समय पूरा करना चाहा, परन्तु फिर भी अपने बोलने का वक़्त पूरा न कर सके एवं बीच में ही बैठ गये।

शास्त्रार्थ से पहले

एक पौराणिक फक्कड़ पण्डित गुरुदत्त जी थे, जो आर्य समाज के विरुद्ध बहुत ही असभ्यता पूर्ण व्याख्यान दिया करते थे, बल्कि यूं कहिये कि महर्षि दयानन्द व आर्य समाज को गाली देना ही जिनका मुख्य काम था।

वो एक बार चूनियां, जिला लाहौर में आये, और अपने उसी पुराने ढर्रे पर आर्य समाज को बुरा–भला कहते हुए प्रचार करने लगे। वहां पर आर्य समाज के प्रधान श्री लाला बरकतराम जी वकील व मन्त्री श्री महाशय कुन्दन लाल जी बहुत ही लगनशील व उत्साही अधिकारी थे। उन्होंने पंडित गुरुदत्त से वार्तालाप किया, परन्तु पंडित जी ने किसी भी तरह उनके पञ्जें जमने नहीं दिये। मैं उन दिनों दर्शनानन्द उपदेशक विद्यालय का आचार्य था, जो लाहौर में ही सन् १६२० ई॰ में खोला गया था। मेरा पता तो वहां आसपास के सारे इलाके में सबको मालूम ही था। पंडित गुरुदत्त ने अपने रात्रि के व्याख्यान में चैलेन्ज दे दिया कि– **"है कोई आर्य समाज में माई का लाल जो हमारे एक भी प्रश्न का ज़वाब दे दे तो हम उसे ५००) रुपये ईनाम में देंगे"**। ये बात आर्य समाज के अधिकारियों को बहुत चुभी और वे परेशान हो उठे। उन लोगों ने रात्रि में ही अपनी सभा की, और लाहौर से मुझे बुलाकर शास्त्रार्थ कराने का निश्चय कर लिया। और आपस में उन लोगों में वार्तालाप के बीच प्रधान जी ने कहा–कि अगर गुरुदत्त को बराबर की चोट देना है, और इसकी इन गालियों का हमेशा के लिए मुंह बन्द करना है तो ठाकुर साहब को ही लाहौर से बुलाना उपयुक्त होगा, जिसने अनेकों पौराणिक पण्डितों के दांत खट्टे कर दिये। वही इसका इलाज कर सकते हैं। (उन्होंने मेरे शास्त्रार्थ सुने हुए थे) सब लोगों ने प्रधान जी के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और तय यह हुआ कि सुबह होते ही मन्त्री जी व अन्य दो–तीन व्यक्ति ठाकुर साहब को लाहौर उपदेशक विद्यालय से बुला लावें। वे लोग अगले दिन मेरे पास विद्यालय में सुबह ही दस बजे के लगभग पहुंच गये।

मैं महाशय कुन्दन लाल जी को जानता व पहचानता था, मैंने कहा–महाशय जी आज सुबह ही सुबह कैसे आना हुआ? महाशय जी ने कहा–ठाकुर साहब ! किसी तरह हमारी लाज बचा लीजिये, चूनियां में एक पण्डित आया हुआ है। जिसने नाक में दम कर दिया है, जो–जो गालियां वो आर्यसमाज वा ऋषि दयानन्द को देता है, हमने तो आज तक सुनी नहीं। जिसके कारण हमारा समाज बदनाम हो रहा है। सभी लोग कहते हैं कि अगर तुम्हारे मत में सच्चाई है तो क्यों नहीं शास्त्रार्थ करते ? मैंने महाशय जी से पूछा कि कौन पण्डित है? उन्होंने कहा कि कोई गुरुदत्त है।

मैंने कहा वही एकाक्षी होगा फक्कड़ गुरुदत्त ! महाशय जी एकदम उछल कर बोले हां ! हां !! ठाकुर साहब आपने ठीक पहचाना वही है। ठाकुर साहब वह बहुत ही धूर्त्त है। मैंने कहा–कोई बात नहीं महाशय जी आप चिंता न करें, उसका इलाज हो जावेगा। आप लोग नास्ता पानी कर लें फिर मैं चलता हूं। तब महाशय जी ने कहा– ठाकुर साहब ! रात से भूख व नींद उड़ गई है। जब से उसने भरी सभा में चैलेन्ज किया है। कि " **है कोई आर्य समाज में माई का लाल जो हमारे एक भी प्रश्न का उत्तर दे दें तो हम उसे पांच सौ रुपये ईनाम में देंगे।**" मैंने व्यंग्य करते हुए कहा कि–अच्छा तो इसका मतलब है महाशय जी आप विद्यालय के लिए पांच सौ रुपये कि आमदनी कर लाये हैं। सब लोग आपस में हंसने लगे...............उन लोगों ने इतने नाश्ता पानी किया तो मैंने चूनियां जाने की तैयारी की, एवं कुछ आवश्यक पुस्तकें भी साथ ले ली। और हम लोगों ने चूनियां के लिए प्रस्थान कर दिया।

सैंतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : **"चूनियां"** (जिला—लाहौर) वर्तमान, पाकिस्तान

दिनांक : मार्च सन् १९२० ई॰

विषय : क्या सत्यार्थप्रकाश वेद विरूद्ध है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान—महात्मा अमरस्वामी सरस्वती)

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित गुरुदत्त जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री लाला बुलाकीराम जी (एडवोकेट)

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री महाशय कुन्दनलाल जी

आर्यसमाज के प्रधान : श्री लाला बरकत राम जी वकील

शास्त्रार्थ आरम्भ

चार बज कर बीस मिनट पर बहुत से सनातनधर्मियों ने अपने पंडित गुरुदत्त को आगे–आगे किये हुए घण्टे घड़ियाल बजाते हुए एक ग्रुप के रुप में आर्यसमाज मन्दिर में प्रवेश किया। आर्य समाज का प्रांगण श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। हम लोग अपनी किताबें जमाये अपने मंच पर पहले से ही विराजमान थे। वे लोग भी अपने मंच पर आकर बैठ गये और कुछ पौराणिक लोग वहीं अपने मंच के इर्द–गिर्द जमकर बैठ गये। समाज के प्रांगण में पहले से ही दो मंच तैयार किये हुए थे। एवं शास्त्रार्थ में जैसी जनता के बैठने की व शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के बैठने की व्यवस्था होनी चाहिये थी वैसी पहले से ही विद्यमान थी। कुछ सनातनधर्मी लोग बाद में अपने पण्डित को पहनाने के लिए मालायें आदि भी ले आये थे। ठीक चार बजकर तीस मिनट पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

श्री पौराणिक पण्डित गुरुदत्त जी –

उपस्थित सज्जनों ! हमें यहां पर आये कई दिन व्यतीत हो गये, आज बड़ी ही खुशी की बात है कि–आर्य समाज ने हमारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शास्त्रार्थ का आयोजन किया, हमारा कहना है कि– **"सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है,"** हमारे प्रश्नों के अनुसार जो कोई भी व्यक्ति सत्यार्थप्रकाश को वेदानुकूल सिद्ध कर दे तो हमसे पांच सौ रुपये इनाम में ले ले। हमारे प्रश्न हैं कि –

१. सत्यार्थप्रकाश में सिक्खों के ग्रन्थ साहब के नाम से लिखा है–**"वेद पढ़त ब्रह्मा मरे"** यह गुरु ग्रन्थ साहब में कहीं भी नहीं लिखा है, यह वाक्य सत्यार्थप्रकाश में झूठ लिखा है, इसे सिद्ध करो ?

२. सत्यार्थप्रकाश में मनुस्मृति के नाम से एक श्लोक का आधा भाग दिया है, देखिये........**विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूप पादयेत्"** यह मनुस्मृति में कहीं भी नहीं है स्वामी दयानन्द ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए यह श्लोक अपनी तरफ से बना कर मनुस्मृति के नाम से लिख दिया। और इससे यह सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है कि ....**"सन्यासियों को धन दिया जावे"** जबकि संन्यासियों को धन देना हमारे धर्म में पाप माना गया है।

३. **"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापर्तेयत् सहजं पुरस्तात्"** यह मंत्र चारों वेदों में कही भी नहीं है, आर्य समाजी लोग वेदों का नाम लेकर ठगी करते हैं। मैंने इन लोगों की यह चोरी पकड़ी है आर्यसमाज में कोई ऐसा पण्डित नहीं है जो इस मंत्र को वेद में दिखा सके।

सज्जनों ! ये महाशय तो ठाकुर हैं और ठाकुर का वेदों और शास्त्रों से क्या सम्बन्ध है ? मेरे ये तीन प्रश्न हैं जिनका कोई भी आर्यसमाजी उत्तर नहीं दे सकता है। इन मेरे तीन प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता ये मेरा दावा है, ये मेरे प्रश्न वज्र के समान हैं, इनके उत्तर दो और पांच सौ रुपये इनाम में लो ! इन प्रश्नों से सिद्ध है कि **"सत्यार्थप्रकाश वेद विरुद्ध"** है।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सज्जनों ! अभी आप लोगों के सम्मुख पण्डित जी महाराज ने पांच सौ रुपया देने की घोषणा की है। इसलिए मेरी पण्डित जी महाराज से ये प्रार्थना है कि पहले वे पांच सौ रुपया निकाल कर यहां जमा करें फिर उत्तर सुनें। यदि पण्डित जी रुपया जमा नहीं करेंगे तो इस बात का क्या सबूत है कि **"सत्यार्थ प्रकाश वेदानुकूल सिद्ध"** होने पर आप पांच सौ रुपया दे ही देंगे ?

जिला लाहौर में चूनियां एक तहसील थी जहां पर लाहौर से–मुलतान–सक्खर रोड़ी–करांची–
बिलोचिस्तान जाने वाली मुख्य रेलवे लाईन पर **"छांगा-मांगा"** स्टेशन पर उत्तर कर तांगे से चूनियां
जाता था। चूनियां के बारे में एक बहुत ही मशहूर कहावत प्रसिद्ध थी कि – **"चार चीजें तोहफ़ाये चूं
ढाये वंगा गाजरां ते मूलियां"** हम लोग चार बजे से पहले–पहले चूनियां पहुंच गये। हमारे पहुंचते ही
समाजियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

सब लोगों ने गुरुदत्त की बातों को अलग–अलग ढंग से आकर मुझे बयान किया। पहले से ही दो
बाद का समय नियत किया गया था, जो चार से छः बजे तक था। मैंने तुरन्त शास्त्रार्थ स्थल जो आर्य स
के प्रांगण में पहले से ही तैयार था पहुँच कर सनातनधर्मियों को शास्त्रार्थ करने के लिए निमंत्रण भिजव
मुझे समाज के प्रधान श्री बरकत लाल जी वकील ने कहा कि ठाकुर साहब ! पहले थोड़ा कुछ खा लीजि
चलकर आये हो, दम तो ले लो ! मैंने कहा – वकील साहब ! मेरा कुछ पैसा एक पण्डित के पास है प
जरा उसे ले लूं बाद में विश्राम भी करेंगे और खायेंगे भी ! सभी लोग आपस में बहुत ही हंसे.........

ठीक साढ़े चार बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, बल्कि सज्जनों ! यूं कहिये शास्त्रार्थ क्या हुआ ?
बड़ी ही दिलचस्प मुठभेड़ हुई। जिसका परिणाम यह हुआ कि सनातन धर्मियों की झूठी कलई तो खुली
खुली बल्कि जीवनपर्यन्त उस पण्डित गुरुदत्त ने आर्यसमाज को उस प्रकार से गालियां देना बन्द कर दि
और बाद में तो यहां तक हो गया कि यकायक एक–दो जगह उससे सामना हुआ तो उसने साफ शब्दों
कह दिया कि –**"मैं इनसे शास्त्रार्थ नहीं करूंगा"**। आप भी इस छोटे से वाद (शास्त्रार्थ) को पढ़िये औ
प्रसन्नता करिये।

वैदिक धर्म का–

"अमर स्वामी सरस्वती"
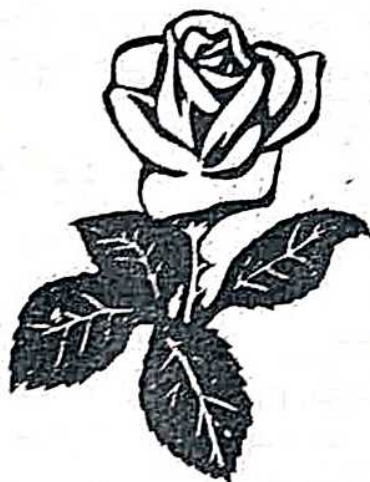
विरुद्ध कहना हठ है, दूराग्रह है, अन्याय है, अनर्थ है, और अज्ञान का प्रमाण है।

सज्जनों ! पण्डित जी ने तीन प्रश्न किये जिनमें से एक प्रश्न का उत्तर आपने सुन लिया। अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनिये।

पण्डित जी आप सदा के लिए ऐसे प्रश्न और शास्त्रार्थ करना छोड़ दीजिए। यह तो निश्चय सा ही है कि आप न कभी स्वयं मेरे सामने आयेंगे और ना ही ये सनातन धर्मी भाई कभी आपको मेरे सन्मुख लायेंगे। आपका कथन है कि –"**विविधानि च रत्नानि........**"यह श्लोक मनुस्मृति के नाम से बनाकर स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया है। जबकि मनुस्मृति में यह श्लोक कहीं भी नहीं है। मैं कहता हूं कि– यह प्रश्न आपने किसी से सुन कर यहां कर दिया है, मनुस्मृति आपने पढ़ना तो दूर की बात देखी तक नहीं है। देखिये थोड़े से पाठ भेद से, "**अर्थ भेद से नहीं**" मनुस्मृति अध्याय ग्यारह का छटा श्लोक –

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेपु प्रति पादयेत्।
वेद वित्सु विविक्तेपु प्रेत्य स्वर्ग स मश्नुते।।

(मनुस्मृति)

इस श्लोक में कहा है कि वेदज्ञ ब्राह्मण और संन्यासी को यथा शक्ति धन देने वाला मर कर स्वर्ग (सुख) भोगता है। इस श्लोक में '**वेद विद् विविक्त**" कहा है, "**विचर प्रथक् भावे**" धातु से "**विविक्त**" शब्द बनता है, ज़िसका अर्थ है–स्त्री पुत्र आदि को जिसने त्याग दिया है ऐसा पुत्रैषणा त्याग देने वाला संन्यासी ही होता है। उसको धन देने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है।

कुल्लुक भट्ट ने इसके अर्थ में लिखा है–"**पुत्र कलत्रादिषु अवशक्तेपु**" अर्थात् स्त्री और पुत्रों में जिसकी आशक्ति नहीं है जो ग्रह त्यागी व परिवार त्यागी है, उसको धन देना चाहिये। आपके संन्यासियों क्या बल्कि "**धन्यासियों**" ही कहिये जो "**निर्वाणी अखाडे**" वाले और "**निरञ्जनी अखाडे**" वाले महन्तों और नामधारी जगत् गुरु कहलाने वाले शंकराचार्यो, मण्डलेश्वरों, व महामण्डलेश्वरों, के पास तो गृहस्थियों से लिया हुआ लाखों–करोड़ों रुपया है। उनके पास हाथी हैं, मोटरें हैं। ऐश्वरीय के वो साधन व भण्डार हैं कि जो किसी राजा से कम नहीं। कहिये इनको धन देने वाले पापी हैं ये या लेने वाले त्यागी–तपस्वी लोग पापी हैं ?

श्री पौराणिक पण्डित गुरूदत्त जी –

जरा ये ग्रन्थ मुझे दिखलाइये !

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

बिल्कुल बड़े शौक से लीजिये, और हो सके तो पण्डित जी आप ही अपनी जुबान से पढ़कर सुना भी दीजिए (जनता में हंसी..........)

नोट –

इस बात को सुनकर पण्डित गुरुदत्त जी घबरा गये, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो। सारा पौराणिक समुदाय उन पर आशा जमाये उनकी ओर देख रहा था, कि पण्डित जी क्या कहते हैं ? परन्तु गुरुदत्त जी के मुख से कोई बात नहीं निकली, वे बार–बार कुल्लुक भट्ट की टीका को देखते व अपने हाथों में उलटते पलटते ही रहे तो बीच में ही ठाकुर साहब बोले – "**पण्डित जी मैटर पुस्तक के अन्दर होता है बाहर नहीं, आप बार-बार इसको बाहर से देख रहे हैं**" श्रोताओं में जबर्दस्त हंसी व तालियों की गड़गड़ाहट ऽऽऽ........

नोट --

पण्डित गुरुदत्त जी के पास उस समय पांच सौ रुपये नहीं निकले एवं वहां उपस्थित कोई पौराणिक व्यक्ति अपने पांच सौ रुपये खटाई में डालने को तैयार न हुआ, हर एक पौराणिक डरता था कि अगर **"सत्यार्थ प्रकाश वेदानुकूल सिद्ध हो गया"** तो पांच सौ रुपये चले जावेंगे। काफी देर तक पण्डित जी इधर उधर काना फूसी करते रहे। और फिर बड़े जोश के साथ बोले।

श्री पौराणिक पण्डित गुरुदत्त जी –

मैं लिखकर देता हूं कि अगर मैं पांच सौ रुपये न दे सकूंगा तो एक वर्ष तक आपका सेवक बन कर रहूंगा।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

तत्काल ऊंची आवाज में ·········· मुझे पण्डित जी महाराज पर इस बात का भी भरोसा नहीं है कि ये अपने वचन को भी पूरा करेंगे। यहाँ पर लगभग एक दर्जन वकील बैठे हैं, चलो उनमें से इसी बात की किसी से भी ज़मानत दिलवा दीजिये। वैसे मुझे **"अंग-भंग"** सेवक स्वीकार नहीं है। (जनता में बड़ी भारी हंसी व तालियों की गडगड़ाहट············सज्जनों ! सुनों !! ध्यान पूर्वक सुनों !!! पण्डित जी महाराज ने इनाम की व्यर्थ ही डींग मार दी परन्तु यहां बहुत से वकील लोग बैठे हुए हैं क्या कोई वकील श्री पण्डित गुरुदत्त जी की जमानत देने को तैयार है ? मैं यहां बैठे हुए माननीय वकीलों से प्रश्न करता हूं। (कोई भी वकील हां करने को तैयार नहीं हुआ) तब ठाकुर साहब बोले ······· मुझे दु.ख है और बेहद अफ़सोस भी है कि पण्डित जी पर किसी को भी विश्वास नहीं है" जनता में हंसी SSSSS················

भाईयो ! क्या मैं यह समझ लूं कि श्री पण्डित जी ने केवल अपना झूठा रौब जमाने के लिए ही ये घोषणायें की हैं ? फिर हंसी················

श्री पौराणिक पण्डित गुरुदत्त जी –

यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो ऐसा ही समझ लीजिये (श्रौताओं में से बैठे बहुत से लोगों ने कहा ....हाँ ! हाँ !! यही ठीक है !)।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

धर्मानुरागी सज्जनों ! **"खोदा पहाड़ और निकला चूहा, वह भी मरा हुआ"** श्री पण्डित गुरुदत्त जी ने यह दावा किया था कि–**'सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है"** इसको सिद्ध करने के लिए आपने सिक्खों के ग्रंथ साहिब सम्बन्धी प्रश्न क्या इससे सत्यार्थप्रकाश वेद विरुद्ध सिद्ध हो गया ? वाह ! वाह !! पण्डित जी !!! **"मारे घुटना, फूटे आंख"** पहिले तो मैं यह पूछता हूं कि– क्या सिक्खों ने आपको अपना वकील बनाया हैं ? यदि नहीं तो फिर आप इसको पूछने वाले कौन हैं ? **"मान न मान, मैं तेरा मेहमान".........."मुद्दयी सुस्त-गवाह चुस्त"** मैं पूछता हूं कि–क्या ग्रन्थ साहिब आपका वेद है ? यदि यह सिद्ध हो जाये कि यह वाक्य या भाव ग्रन्थ साहिब का नहीं है, जो सत्यार्थप्रकाश में गुरु ग्रन्थ साहब के नाम से दिया गया है तो इससे सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध कैसे सिद्ध हो गया ?

सुनिये ! महाराज जी !! आप तो न ग्रंथ साहिब को समझते हैं न सत्यार्थ प्रकाश को ! ग्रंथ साहब में यह पाठ है – **"वेद पढे पढ़ ब्रह्मे जनम गंवाया"** इसका भाव स्वामी जी ने लिख दिया, तो क्या प्रलय हो गई ?

एक बात मेरी लिख लीजिये– जिस बात को आप वेद विरुद्ध कहें उसके लिए वेद का मंत्र बोलिये–कि उस मंत्र के विरुद्ध है। जब तक आप उस बात के विरुद्ध वेद का मंत्र न दे सकें उसको वेद

"और मुझे मालाओं से लाद दिया, मेरे ऊपर नोटों की वर्षा की" उधर पौराणिक समुदाय में मुर्दनी छा गई, सभी पौराणिक लोग चुपचाप आर्य समाज मन्दिर से निकल कर बाहर जाने लगे, तो समाज मन्दिर के दरवाजे पर पहुंच कर बाहर निकलने से पहले एक पौराणिक ने गुरुदत्त के गले में माला पहना दी। इस दृश्य को महाशय कुन्दनलाल जी ने उनको करते देख लिया, तो उन्होंने शेर की तरह झपट कर गुरुदत्त जी के गले से वो माला तोड़ कर फेंक दी तथा पौराणिकों को ऊंची आवाज में गर्ज कर कहा – **"तुम्हें शर्म नहीं आती, हारे हुए के गले में माला पहनाते हो ?"** पौराणिक मण्डल अपने घण्टे घड़ियाल ताक पर रखकर चुप चाप भाग गये।

पण्डित गुरुदत्त के साथ केवल दो–चार व्यक्ति जो पौराणिक समुदाय के शेष बचे थे, साथ जा रहे थे जैसे उनका कोई सगा मर गया हो, उसे फूंक कर जा रहे हों। सारे नगर में आर्य समाज की विजय की धूम मच गई। मेरा बड़ा भारी स्वागत व सम्मान आर्य पुरुषों द्वारा किया गया।

पुराने आर्यसमाजी अधिकारियों की लगन का एक नमूना –

श्री महाशय कुंन्दनलाल जी जो आर्यसमाज चूनियाँ के मन्त्री थे उनके पास एक बच्चों के खेलने की तड़बड़ गाड़ी की भांति उससे बड़ी गाड़ी थी उसमें एक छोटा सा नक्कारा रक्खा रहता था। गाड़ी को खींचने से उस पर बांस की चट्टीयां चट – चट करके पड़ने लगती थी, जिनके पड़ने से वह नक्कारा ऊंची आवाज में तड़–तड़–तड़–तड़ बजने लगता था। सारे नगर में उस गाड़ी को खींचते हुए और हाथ में घण्टी बजाते हुए व्याख्यानों की घोषणा श्री महाशय जी स्वयं ही करते थे। जब किसी पौराणिक, ईसाई, मुसलमान, या अहमदी का लैकचर आपत्तिजनक होता, और उसका उत्तर देने के लिए कोई बाहर से आने वाले आर्य समाजी उपदेशक न होते तो महाशय जी स्वयं ही उसका खण्डन अपने व्याख्यान में किया करते थे। और स्वयं ही उसकी घोषणा अपनी तडबड़ गाड़ी के घन्टी बजाते हुए इस प्रकार करते थे कि –

"आज आर्य समाज मन्दिर में रात्रि के.......बजे......... (अमुक)..... पण्डित, पादरी, या मौलवी की गलत बयानियों का दन्दा शिकव जवाब दिया जायेगा, आप लोग भारी संख्या में आइये और सुनिये"।

महाशय जी का व्यक्तित्व बहुत ही अद्‌भुत था, वह बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। वे तहसील में अर्ज़ी नवीसी का काम करते थे, पर दिन रात आर्य समाज के प्रचार की उनको धुन रहती थी, सारे नगर चूनियाँ में बच्चा–बच्चा इनको जानता था, इस प्रकार से वह आर्य समाजी नहीं बल्कि **"आर्य समाज"** ही माने जाते थे। चूनियां में एक सरकारी हाई स्कूल था, उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों को महाशय जी आर्य समाज मंदिर में बुलवा लेते थे, उनके द्वारा सन्ध्या और हवन कराते थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों की उनको शिक्षा देते थे। उनसे भजन व कहानियां कहलवाते थे, इस प्रकार महाशय जी के असंख्य शिष्य पक्के सिद्धान्तवादी व कट्टर आर्य समाजी बने। पच्चीस–तीस विद्यार्थियों की सेना उनके पास सदा तैयार रहती थी। ये थी पुराने व्यक्तियों की लगन ! जिसके कारण समाज का प्रचार दिन दुनी–रात चौगुनी उन्नति करता था। मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि –**"भगवान आर्यो में पहली सी लगन लगा दे"** जिससे फिर वही एक बार वैदिक धर्म की दुन्दुभि बज उठे। मैं कभी–कभी सोचता हूं कि वो व्यक्ति भी क्या व्यक्ति थे ? जिनको उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते, आर्य समाज के ही प्रचार की धुन सवार रहती थी।

नोट –

मेरा इस कथन को लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि अब भी समाज का हर मन्त्री महाशय जी की तरह से तडबड़ गाड़ी व घन्टी खरीदे और मुनादी करे। आजकल विज्ञान का युग है, वो साधन उस समय

श्री पौराणिक पण्डित गुरुदत्त जी –

घबराये हुए से .... ठाकुर साहब ! इसमें तो **"पुत्र कलत्रादिषु शक्तेषु"** लिखा है।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

क्या पण्डित जी ! अब एक आंख से भी कम दीखने लगा है ? किसी और को बुलवा कर पढ़वा लो।

नोट –

वहां के एक शास्त्री जी आगे आये जो एक हाई स्कूल में अध्यापक थे। और पुस्तक को पण्डित जी के हाथ से लेकर पढ़ने लगे, जो पाठ मैं कहता था, वही उन शास्त्री जी ने बयान किया, जो अर्थ मैं कहता था वही उन्होंने पढ़ कर सुनाया, जिसको सुनकर वहां पर उपस्थित आर्य भाईयों के हर्ष की सीमा न रही और चारों ओर से जयकारों के साथ करतल ध्वनि होने लगी, जिसको कोशिश करने के बावजूद भी बहुत देर के बाद रोका जा सका।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सज्जनों ! शान्तिपूर्वक बैठो !! मेरे ऊपर पण्डित जी का एक प्रश्न और उधार है, मुझे उधार रखने की आदत नहीं है। मैंने कितने करारे उत्तर दिये वो आप लोगों ने सुन लिये, उनसे भी करारे अब सुनिये, मैं झूठे को उसके घर तक पहुंचा के छोड़ता हूं, बीच में नहीं।

पण्डित जी ने पांच सौ रूपये की झूठी घोषणा की थी। जिसकी पोल आप सब लोगों के सामने खुल गई। अब मेरी घोषणा व प्रतिज्ञा सुनिये – **"तुरन्त दान महाकल्याण"** यह लीजिये नकद पांच रुपये और स्वामी दयानन्द जी के किसी भी ग्रन्थ में यह लिखा हुआ दिखलाइये कि–**"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्** ...." यह मन्त्र वेद का है।

दिखाइये पण्डित जी महाराज ! और पांच रूपये नकद लीजिये। पांच रूपये से अधिक आप न देने के योग्य है न लेने के योग्य हैं। जनता में फिर हंसी ऽऽऽ ....।

एक मजे की बात यह है कि आप सत्यार्थप्रकाश को **"वेद विरुद्ध"** सिद्ध करने को आये थे, पर आपको यह भी पता नहीं है कि सत्यार्थप्रकाश में यह मन्त्र कहीं है भी या नहीं। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि सत्यार्थप्रकाश वेद विरुद्ध सिद्ध नही हुआ तो भी यह बताइये कि यह मन्त्र वेद का न होते हुये भी वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ? यदि वेद विरुद्ध है तो आप सारे सनातन धर्मी कहलाने वाले पण्डित लोग इसी मन्त्र से ही यज्ञोपवीत क्यों पहनते हैं ?

पण्डित जी ! न सत्यार्थप्रकाश वेद विरुद्ध है न यह मन्त्र ! बल्कि वेद विरुद्ध हैं केवल आप ! **"विभेति अल्प श्रुतात् वेदः मामपि प्रहरष्यति"** अर्थात् आप जैसे थोड़ा ज्ञान रखने वाले मनुष्य से वेद भी डरता है। कि कहीं यह मुझ पर ही न प्रहार कर बैठे ! श्रोताओं में अपार हर्ष........हां ! एक बात और सुनिये ! पण्डित जी महाराज ने मेरे ठाकुर होने पर आपत्ति की। भाइयों ! अगर मैं ठाकुर हूं तो क्या ठाकुर वेद व शास्त्रों के ज्ञान से शून्य होते हैं ? और क्या मूर्ख होते हैं ? पण्डित जी व इनके बाप–दादे पूर्वज लोग ठाकुरों की पूजा कर–करके उनका पुजापा ले–लेकर सैकड़ों वर्षो से पेट भरते आ रहे हैं, ठाकुरों के तो चरण धो–धो कर ये लोग पीते हैं। पण्डित जी महाराज ! मैं ठाकुर हूं तो आपका पूज्य हूं, आपका इष्ट देव हूं। ....श्रोताओं में चारों ओर हंसी का वातावरण व तालियों की गड़गड़ाहट व वैदिक नारों से आकाश गूंज उठा........ बोलो वैदिक धर्म की जय ! महर्षि दयानन्द की– जय ! सत्यार्थ प्रकाश – अमर रहे, वेद की ज्योति– जलती रहे, ठाकुर अमर सिंह शास्त्रार्थ केशरी–जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !!, जिन्दाबाद !!!
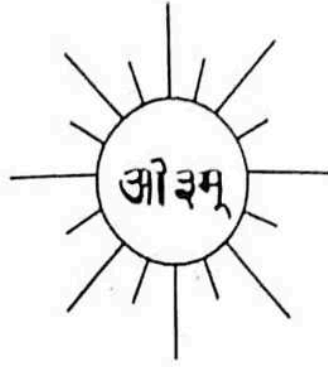
पुरी के शंकराचार्य
श्री निरंजन देव जी तीर्थ
व
आर्य समाज के तीन दिग्गज़ विद्वानों
के बीच
क्रमशः तीन शास्त्रार्थ

नोट –

यहां पर क्रमशः से तीनों शास्त्रार्थ उद्‌धृत किये जाते हैं, जबकि ये तीनों शास्त्रार्थ अलग–अलग समय व अलग–अलग विद्वानों के साथ अलग–अलग विषयों पर सम्पन्न हुए थे।

पढ़िये और लाभ उठाइये !

" लाजपत राय अग्रवाल "

के थे, जब ये आधुनिक साधन आसानी से उपलब्ध नहीं होते थे। बल्कि अब जो साधन उपलब्ध हैं उन्हीं के द्वारा महाशय जी की तरह से पूर्ण लगन के साथ प्रचार करें और स्वाध्याय करें ! मैंने स्वाध्याय की बात कही तो मुझे एक बात याद आ गई–

"जब हमारे लाजपत राय जी पुस्तक विक्रय का कार्य घूम-घूम कर बड़े ही उत्साह व मेहनत से सारे देश में करते थे, तो मेरे सामने ही एक समाज के मन्त्री ने उनको कहा कि लाजपत राय जी आपके पास आर्योद्देश्यरत्नमाला अगर हो तो एक प्रति दे देना तथा बिल समाज के नाम बनाकर जो भी उचित कमीशन हो ज्यादा से ज्यादा काटकर देना पैसा मुझसे ले लेना, लाजपत राय जी कुछ जवाब न देकर हंसने लगे, मैंने भी माथे पर हाथ मारा ! हे मेरे भगवान ! समाज का कार्य कैसे चलेगा ! ! ! उस समय उस पुस्तक की कीमत दस पैसा थी, मन्त्री जी की बातों से साफ पता चलता था कि उन्होंने इस पुस्तक का नाम कहीं सुन लिया होगा, पढ़ना तो दूर ! देखा तक नहीं होगा। उन्होंने सोचा होगा कोई बड़ा ग्रन्थ होगा जिसका मूल्य पचास-सौ रूपया होगा। मुझे वह समाज अच्छी तरह याद है पर मैं उसका नाम यहां लिखना नहीं चाहता"

अब आप ही सोचिये, जिस समाज के अधिकारियों का ये स्वाध्याय होगा तो वे समाज को कैसे चला पायेंगे ? इसलिए स्वाध्याय करो, बिना किसी पद की लालसा के निस्वार्थ भाव से समाज का कार्य करो तभी समाज का प्रचार व प्रसार सम्भव है, आप लोगों के कारनामें देख देखकर ही आर्य समाज पुकार–पुकार कर कह रहा है –

हो चुकी, आपस की बस तक़रार रहने दीजिये,
आये दिन की जूतियों पैज़ार रहने दीजिये।
क्यों पडे हो हाथ धोकर जान के पीछे मेरी,
मुझको ज़िन्दा ऐ मेरी सरकार रहने दीजिये।।१।।

हो चुकी हिकमत तुम्हारी बस करो रहने भी दो,
अयः मसीहा बस मुझे बीमार रहने दीजिये।
अपने घर में तो हजारों तीर तुम बरसा चुके,
दुश्मनों के लिए भी तो दो - चार रहने दीजिये।।२।।

आपकी हालत पे दुश्मन हंस रहे हैं देख लो,
कुछ तो नीचा ही सरे अग़यार रहने दीजिये।
वह'अमर'पद पा गया जिसने दिया मुझको फ़रोग़,
इसलिए किस्मत मेरी बेदार ही रहने दीजिये।।३।।

वैदिक धर्म का –
"अमर स्वामी सरस्वती"
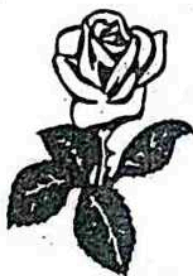
शास्त्रार्थ से पहले

"कचौरा", जिला अलीगढ़ में पौराणिकों ने यज्ञ कराया था। उसमें श्री स्वामी करपात्री जी महाराज अपने दल-बल के साथ पधारे थे। इस अवसर पर पौराणिकों ने स्थानीय आर्य समाजियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। अतः आर्य भाई "ऊंझानी" (जिला बदायूं) से मुझे बुला कर ले गये।

पौराणिकों के पण्डाल में तो शास्त्रार्थ इसलिए नहीं हुआ कि वहां आर्य पण्डित को कुर्सी पर नहीं बैठने दिया गया। कहा गया कि श्री करपात्री जी के सामने कोई कुर्सी पर नहीं बैठ सकता। अतः जनता के जोर डालने पर पौराणिक मण्डल शास्त्रार्थ करने पर विवश हुआ, और आर्य समाज के सभा मण्डप में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। श्री करपात्री जी के साथी, व्याकरणाचार्य श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी शास्त्रार्थ करने के लिए पौराणिक पक्ष की ओर से तथा आर्य समाज की ओर से (मैं) लेखक नियुक्त हुए। श्री चन्द्रशेखर जी ही इस समय पुरी के शंकराचार्य निरञ्जनदेव जी तीर्थ हैं।

"बिहारी लाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पौराणिक पण्डित चन्द्रशेखर जी व्याकरणाचार्य –

भाइयो ! सुनो !! आर्याभिविनय पुस्तक स्वामी दयानन्द की बनाई हुई है जिसमें दयानन्द ने लिखा है कि– **"मेरे सोम रसों को हे ईश्वर सर्वात्मा से पान करो"** क्या निराकार सोम रस पान करता है ? यह ईश्वर को भोग लगाना नहीं है तो और क्या है ? हम श्री ठाकुर जी को भोग लगाते हैं तो ये आर्य आक्षेप करते हैं, और आप निराकार को सोमरस पिला रहे हो तो कुछ नहीं ? **"निराकार"** सोमरस कैसे पी रहा है ? हमारे भगवान तो साकार हैं इसलिए हमारा भोग लगाना तो उचित ही हुआ न ? परन्तु तुम आर्यों का कमाल है, कि एक तरफ़ उसे निराकार मानों, दूसरी तरफ़ उसे सोमरस पिलाओ। ये कैसे सम्भव हो सकता है ?

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री –

महाराज ! वास्तव में तो निराकार ही खाता पीता है, साकार नहीं ! ! देखिये कैसे ? मैं समझता हूं। जब जिस समय शरीर से यह निराकार जीवात्मा निकल जाता है, तब यह साकार शरीर कुछ भी नहीं खाता-पीता, अगर किसी ने कहीं मुर्दे को खाते-पीते देखा हो तो बताओं ? (जनता में हंसी.......) निराकार ईश्वर सर्वत्रव्यापक है। वह सोमरस में भी व्यापक है। इसी कारण यहां सर्वात्मा शब्द का प्रयोग हुआ है। सर्व व्यापक ईश्वर को हमारे अर्पित सोमरस का ज्ञान है। सर्वज्ञत्व से वह पान करता है, यह ज्ञान रूपी पान एक आलंकारिक वाक्य है, देखिये वेदान्त दर्शन में ईश्वर को **"अत्ता"** अर्थात् खाने वाला कहा है। देखिये– **"अत्ताचराचर ग्रहणात्"** । क्योंकि वह ईश्वर सर्वव्यापक होने से सबका **"अत्ता"** अर्थात् खाने वाला है। आपके मान्य ग्रंथ वेदान्त दर्शन का ही ये वचन मैंने बोला है।

श्री पौराणिक पण्डित चन्द्रशेखर जी व्याकरणाचार्य –

ईश्वर साकार ही भोग ग्रहण करता है। निराकार को भोजन की आवश्यकता नहीं। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है –**"सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्"** यह चन्द्रलोक में रहने वाले पितरों का तर्पण नहीं हैं तो और क्या है ? आर्य समाजियों के गुरु ग्रंथ में पितरों का तर्पण मानते हैं, परन्तु आर्य समाजी पितृ श्राद्ध का खण्डन

अड़तीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "कचौरा", जिला अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : सन् १६२३ ई०

विषय : क्या परमेश्वर निराकार है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : व्याकरणाचार्य श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी,
(वर्तमान श्री शंकराचार्य निरञ्जनदेव जी तीर्थ)

सहायक : श्री शंकराचार्य करपात्री जी महाराज

...त्तालीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "अमृतसर" (पंजाब)

दिनांक : १६ व १७ नवम्बर सन् १९६४ ई०

विषय : १ — क्या वेदों में विज्ञान है ?

२ — क्या ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री स्वामी निरन्जन देव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य)

मुख्य संचालक : श्री स्वामी हरिहरानन्द (करपात्री) जी महाराज

नोट —

यह सामग्री श्री पण्डित भवानीलाल जी भारतीय द्वारा सम्पादित "आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी" नामक पुस्तक से ली गई है।

सम्पादक

करते हैं, यह अपने ग्रंथों का तथा अपने गुरु का विरोध है।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री –

पण्डित जी ! निराकार भगवान् सर्वव्यापक है ! साकार सर्वव्यापक नहीं है, साकार सर्वव्यापक हो ही नहीं सकता। जिसे खाने पीने की आवश्यकता हो वह भगवान हो ही नहीं सकता। भगवान सब आवश्यकताओं और इच्छाओं से मुक्त है। पूर्ण काम है। वह अपनी सर्वज्ञता से हमारे द्वारा तैयार किये गये सोमरस, शुद्ध प्रेम भावों को जानता है, स्वीकार करता है। यहां सोमरस कोई भौतिक पदार्थ नहीं, किन्तु इस मंत्र में उस सोम रस का संकेत है जिसे वेद ने कहा है– **"सोमं यं ब्राह्मणा विदुर्नतरयापुनाति कश्चन"** अर्थात् वह सोमरस जिसे विद्वान ब्राह्मण जानते हैं। उसको कोई नहीं खाता, अर्थात् वह है, शुद्ध ब्रह्मज्ञान, आध्यात्मिकता, भगवान का प्रेम उसका रस तो योगी ही ले सकता है। उसी प्रेम भाव को यहां भक्त अपने इष्ट देव के अर्पण कर रहा है। और सोम, सदपितरों के तर्पण से पहले यह जानना चाहिये कि पितर हैं क्या ? देखिये श्री उव्वट और आचार्य महीधर जी के यजुर्वेद भाष्य में लिखा है– **"ऋतवो वै पितरः"** ये छै ऋतुयें पितर हैं। इन्हीं को वेदों में कहा है– **"नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो रसाय"** आदि।

ये ऋतुएं चन्द्रमा से सम्बद्ध हैं। अतः सोमसद् कही गई हैं। ऋतु–ऋतु पर यज्ञ करके इन पितरों को तृप्त करो तो कोई रोग नहीं फैलेगा, प्रकृति में विकार नहीं होगा। यदि सब मरने वाले चन्द्रलोक में जाकर पितर बन जाते हैं, तो पुनर्जन्म किसका होता है ? और चन्द्रलोक में जन्म लेने वालों की तृप्ति का प्रबन्ध हम क्यों करें ? प्रजापति भगवान सबका प्रबन्ध तत् कर्मानुसार करते ही है। पण्डित जी महाराज ! आपको पता होना चाहिये कि कर्मो का फल संस्कारों द्वारा ही मिलता है। संस्कार–सूक्ष्म शरीर पर स्वकृत कर्म से पड़ते हैं। परकृत कर्म से नहीं। मृतक श्राद्ध मान लेने से स्वकृत कर्मफल हानि और परकृत कर्म फलाप्ति से दो दोष[1] आते हैं, और कर्म सिद्धांत को दूषित कर देते हैं, क्या **"तमाशा"** है कि अपनों की तो सुध–बुध है, नहीं, दौड़ते हैं चन्द्रलोक तक थाल लिये पितरों को ! देश के सहस्रों बालक भूख से बेचैन होकर ईसाई बनते हैं। आप चन्द्रलोक की प्रजा का पालन करने चले हैं।

नोट –

इन बातों पर जनता में जबरदस्त अट्टहास (हँसी) हुआ जिससे पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ के बीच में ही बिगड़ खड़े हुए, कि हमारी बातों को तमाशा कह दिया, उनसे बहुतेरा अनुनय विनय किया गया कि **"तमाशा"** शब्द, अपशब्द वा गाली नहीं है। ये उर्दू का शब्द है। जो क्रीड़ा व खेल के अर्थो में आता है पर वे न माने, क्योंकि वे तो पीछा छुड़ाने का कोई न कोई बहाना ढूंढ रहे थे, वह बहाना उनको मिल ही गया, और वह क्रोध में भरे हुए अपनी पुस्तक भी मेज पर ही छोड़ कर चल दिये।

इस शास्त्रार्थ के बाद वे फिर कभी यहां नहीं पधारें, और आर्य समाज की चहुंमुखी उन्नति हो उठी, बाद में यहां पर आर्य समाज मन्दिर बना पाठशाला खुली, बड़े– बड़े विशाल उत्सव होते रहे। ये केवल उसी शास्त्रार्थ का प्रभाव था ! **(शास्त्रार्थ ! हमारे वैदिक धर्म प्रचार में सबसे अधिक सहायक थे)।**

"बिहारी लाल शास्त्री काव्यतीर्थ"

टिप्पणी –(१) मृतक श्राद्ध में न्यायानुसार दो दोष–एक **"कृतहानि"** दूसरा–**"अकृताभ्यागम"** है। जो पुत्र अपने परिश्रम से कमाये धन से श्राद्ध करेगा, उसको श्राद्ध का फल कुछ भी नहीं मिलेगा–अतः यह – **"कृतहानि,"** दोष हुआ। और मरे हुए पिता आदि को– बिना कुछ कर्म किये श्राद्ध का भोजन मिलेगा तो यह **"अकृताभ्यागम"** दोष हुआ।

वैदिक धर्म का -
"अमर स्वामी सरस्वती"
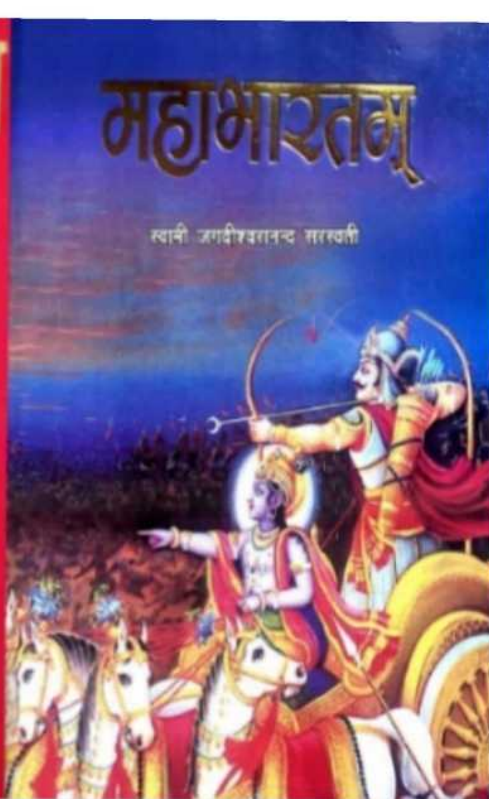
वैदिक पुस्तकालय
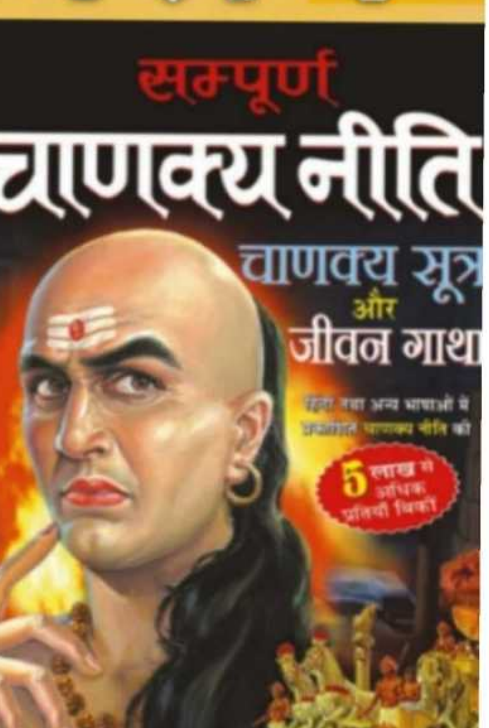
शास्त्रार्थ से पहले

अमृतसर में दिनांक ११ नवम्बर से १६ नवम्बर सन् १९६४ ई० तक अखिल भारतीय सर्व वेद शाखा सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष गोवर्धन पीठ के अधीश्वर जगद्गुरु नामधारी स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य) थे। स्वामी हरिहरानन्द (करपात्री) इसके मुख्य संचालक थे, पण्डित युधिष्ठिर जी को इस सम्मेलन में विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। अतः श्री पण्डित मीमांसक जी दिनांक १५ नवम्बर को अमृतसर पधार गये। दिनांक १६ नवम्बर को जब मीमांसक जी विचार स्थल पर पहुंचे तो पौराणिक विद्वानों ने पूर्व से ही कोई योजना बनाई हुई थी। तो उस योजनानुसार उनमें से एक पौराणिक विद्वान् खड़ा होकर–संस्कृत भाषा में **"वेद में विज्ञान"** की सत्ता को देखकर अस्वीकार करते हुए कहने लगा–

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पौराणिक पण्डित निरञ्जन देव जी तीर्थ –

स्वामी दयानन्द ने आधुनिक विज्ञान को देखकर तदनुसार वेद से विज्ञान को सिद्ध करने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ, **"आयं गौः पृश्निरक्रमीत्"** इस मन्त्र से पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूमना स्वामी जी ने सिद्ध किया है। जब कि वेद का सिद्धांत है कि सूर्य घूमता है।

श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक –

वेद में विज्ञान है, इतना ही नहीं बल्कि वेद ही ज्ञान का मूल स्त्रोत है। अतः स्वामी दयानन्द ने वेदार्थ करते समय जिस पृथ्वी भ्रमण का प्रतिपादन किया है, वह भारतीय विज्ञान है। आर्य भट्ट अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में पृथ्वी भ्रमण का विस्तार से प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने बलपूर्वक वेद का वैज्ञानिक अर्थ करने का समर्थन किया।

श्री पौराणिक पण्डित निरञ्जन देव जी तीर्थ –

वेद का मन्त्रार्थ तीन प्रकार का नहीं हो सकता। आप **"अग्निमीडे पुरोहितं"** इस ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का तीन प्रकार का अर्थ सिद्ध करके दिखावें।

नोट –

इस समय तक शास्त्रार्थ का प्रथम दिवस का समय समाप्त हो गया था।

वैदिक पुस्तकालय

शास्त्रार्थ से पहले

मुझे बहुत समय पूर्व सारे देश से जगह–जगह से सूचना आती थी कि, जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य जी को आर्यसमाज की निन्दा किये बिना भोजन ही नहीं पचता है। वे स्थान–स्थान पर आर्यसमाज को शास्त्रार्थ का चैलेंज्ज देते फिरते हैं। और कहते हैं कि–"**है कोई माई का लाल जो हमारे सामने शास्त्रार्थ को आवे ?**" मैंने बार–बार उनकी इन घोषणाओं को सुनकर यह समझ लिया था कि–ये महानुभाव "**निरंजन देव तीर्थ**" कोई गम्भीर विद्वान् और विचारशील व्यक्ति नहीं हैं।

श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज गम्भीर और बहुत सज्जन थे, पर उनको एक संकीर्ण हृदय वाले व्यक्ति स्वामी करपात्री जी का संग दोष लग गया था, मुझको शास्त्रार्थ करते हुए सत्तर वर्ष व्यतीत हो गए।

श्री स्वामी निरंजनदेव तीर्थ ने मौखिक रूप से बरेली, बीकानेर, बयाना, कैथल आदि स्थानों में अपने भाषणों में वही डींग मारी कि – "**आर्य समाजियों में है कोई माई का लाल तो हमसे शास्त्रार्थ करे**"। मुझको जब तक स्थान–स्थान से आर्य जन शास्त्रार्थ कराने के लिए दौड़े हुए बुलाने के लिए आते तो मैं तैयार होकर जब तक वहां पहुंचता तो उससे पहले ही शंकराचार्य जी बैनतेय गरुड़ होकर उड़ जाते थे। इसलिए मैंने इस स्थिति को देखकर खुली विज्ञप्ति "**शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार**" प्रकाशित की– जिसमें लिखा था कि–"**जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य और जगत्गुरु कहलाने वाले श्री स्वामी निरंजनदेव तीर्थ यत्र–तत्र आर्य समाज को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज देते फिरते हैं, मैं उनकी चुनौती स्वीकार करता हूं**"। वह मेरे साथ आठ दिनों तक निरन्तर आठ विषयों पर दिल्ली या दिल्ली के निकट कहीं भी शास्त्रार्थ कर लें, और लगभग दो माह आगे की तिथियां निश्चय कर लें, जिससे शास्त्रार्थ की सूचना यत्र–तत्र सभी स्थानों को भेजी जा सके आदि–आदि।

दूसरे मैंने यह भी लिखा कि–आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज का प्रान्त केरल तथा उनका जन्मस्थान भी घोर वेदविरोधी ईसाई मत से आक्रान्त हैं, उसकी तो आपको कोई चिन्ता है नहीं, केवल आर्य समाज को ही कोसना आपने अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया है।

इस पत्र के उत्तर में लखनऊ से एक तार आया जो ३० दिसम्बर सन् १९७६ ई॰ को सायंकाल मुझको प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था कि– "**३१ दिसम्बर की दोपहर तक शास्त्रार्थ के लिए लखनऊ पहुंचो नहीं तो आपकी हार घोषित कर दी जायेगी**"। तार देने वाले का नाम लिखा था "**जगद्गुरु**" मैंने उसका उत्तर "**पुरी**" के पते पर दिया कि –"**तार देते ही हार घोषित हो गई**" शास्त्रार्थ का यह क्या निराला ढंग है ? शास्त्रार्थ के लिए सुरक्षित स्थान निश्चित किया जाता है, शांति व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायित्वों का निश्चय होता है। शास्त्रार्थ का विषय व उनके कायदे–कानून तय किए जाते हैं। इन सबको निश्चय किए बिना अचानक तार देकर इस प्रकार की बात कहना, जो अपने आप में ही यह प्रकट करती है कि शास्त्रार्थ करने का शंकराचार्य जी में कितना दम है ? इसके उत्तर में एक लम्बा पत्र श्री मान जी का लिखा हुआ आया–जिसका लेख इतना सुन्दर है कि हमने यादगार के लिए फोटो करवा कर रख लिया है। "**स्वयंमपि लिखति स्वयमपि न वाचयति**" अर्थात् अपने लिखे को खुद ही न पढ़ सकना, जिसमें लिखा था कि – "**हम शास्त्रार्थ करने दिल्ली क्यों आवें, आप ही पुरी में क्यों न पधारें**" ?

चालीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "दिल्ली" (पुरानी सब्जी मण्डी)

दिनांक	:	१८ दिसम्बर सन् १९८० ई.
विषय	:	क्या अवतारवाद वेदानुकूल है ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (जो पूर्व श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी के नाम से विख्यात थे)
सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य)
शास्त्रार्थ के आयोजनकर्त्ता	:	ब्रह्मचारी राजसिंह जी आर्य (प्रधान) "केन्द्रीय आर्य युवक परिषद" दिल्ली
शास्त्रार्थ में अन्य उपस्थित विद्वान्	:	श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री, खतौली श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री, अलीगढ़ श्री स्वामी यज्ञानन्द जी सरस्वती, गाजियाबाद। श्री पण्डित प्रेमपाल जी शास्त्री, दिल्ली।

नोट—

श्री शंकराचार्य जी ने अपनी सहायतार्थ, श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री को उनके निवास स्थान– कमलानगर, दिल्ली में कार भेज कर बुलवाया था, परन्तु जब तक श्री प्रेमाचार्य जी शास्त्रार्थस्थल तक पहुँचे, तब तक शंकराचार्य जी की बोलती स्वयं ही बन्द हो चुकी थी।

"लाजपत राय अग्रवाल"

चाहते। दोनों आर्य महानुभाव वापिस निराश लौट आये, १८ दिसम्बर की रात्रि को प्रचार करने के बाद सभी विद्वान अपनी–अपनी जगह पर विश्रामार्थ लेट गये। लगभग साढ़े दस बजे रात्रि को पता चला कि उन्होंने वही अपनी पुरानी डींग फिर हांकी है। उस समय ब्रह्मचारी राजसिंह आदि उनके साथी पौराणिकों की उस सभा में मौजूद थे, उन्होंने वहीं खड़े होकर घोषणा कर दी कि..........**"आप शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहें हम अभी अपने विद्वानों को बुलाते हैं।"** इस पर जगत्‌गुरु नामधारी ने कहा कि ठीक है – हम पन्द्रह मिनट या आधा घण्टा प्रतीक्षा करेंगे, यदि कोई आ गया तो रात्री के तीन बजे तक शास्त्रार्थ करते रहेंगे। ब्रह्मचारी राज सिंह जी को तो पौराणिकों ने पुलिस की हिरासत में रखवा दिया, परन्तु उनके साथी दौड़े हुए हमारे पास आ गये।

हम तुरन्त अपनी मनों पुस्तकें साथ ले सभी विद्वान्.............पौराणिकों के पास जा धमके। हम पौराणिकों के पण्डाल में पहुंचे ही थे कि, जगतगुरु नामधारी ये घोषणा कर रहे थे कि, आर्यसमाजियों के पास कोई शास्त्रार्थ करने वाला नहीं है। इसलिए सभा विसर्जित की जाती है तभी मैंने गर्ज कर कहा.............हम लोग आ गये हैं, कोई न जावे, जगत् गुरु जी के कथनानुसार शास्त्रार्थ रात्रि के तीन बजे तक चलेगा। और वहां कोई दूसरा मंच न देख हम लोग जगत्‌गुरु के मंच पर ही जा धमके। जगत्‌गुरु ऊंचे आसन पर विराजमान थे, हम लोग मंच पर ही नीचे बैठ गये। मैंने निरञ्जनदेव जी से पूछा–कि शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे ? उन्होंने स्वीकृति देते हुए पूछा कि कितना–कितना समय बोलना है ? मैंने कहा उभय पक्ष से दस–दस मिनट बोला जाया करेगा।

घण्टी द्वारा समय विभाजन हेतु निर्देश के लिए पौराणिकों ने अपना ही व्यक्ति बैठा दिया। तत्पश्चात् क्या हुआ ? इस शास्त्रार्थ में पढ़िये !

वैदिक धर्म का–

"अमर स्वामी सरस्वती"
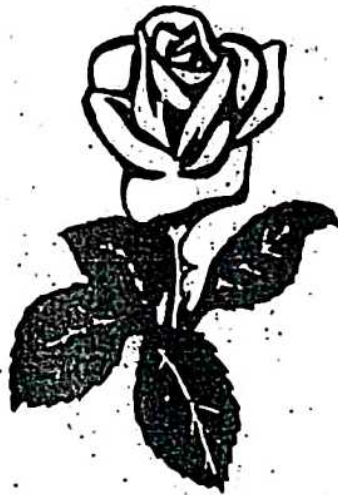
मैंने इसके उत्तर में लिखा कि – "शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज तो आप, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि प्रान्तों में करते है और शास्त्रार्थ करने के लिए वहां समुद्र में बुलाते हो, ये कौन सा तुक है ? इसके उत्तर में एक पत्र और "सुलेखयुक्त" आया उसका भी फोटो हमारे पास है। जिसमें लिखा है कि –"कोई भद्र पुरुष आर्य समाज के मंच पर नहीं आयेगा।" मैं पूछता हूं, इन शंकराचार्य जी के मत, में पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, पण्डित कालूराम शास्त्री, पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पण्डित अखिलानन्द कविरत्न, पण्डित माधवाचार्य जी आदि सब विद्वान् क्या "अभद्र" थे ? जिन्होंने सैकड़ों शास्त्रार्थ आर्यसमाज के मंच पर ही किये। अब क्या केवल एक निरञ्जन देव जी ही "भद्र पुरुष" शेष रह गये हैं ?

कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् विज्ञापनों द्वारा पता चला कि दिल्ली में निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज १५ से २२ दिसम्बर सन् १९८० ई. तक पौराणिकों के एक यज्ञ में आ रहे हैं। हमारे कर्मठ कार्यकर्त्ता ब्रह्मचारी, श्री राजसिंह जी आर्य (प्रधान, आर्य युवक परिषद दिल्ली) मेरे पास आए, और इसी समय पर शास्त्रार्थ के आयोजन करने हेतु मुझसे स्वीकृति ले गये। श्री ब्रह्मचारी राजसिंह जी ने नवम्बर मास में ही सारे दिल्ली शहर में बड़े–बड़े विज्ञापन शास्त्रार्थ करने हेतु लगवा दिए। एवं श्री करपात्री जी को व निरञ्जनदेव जी को भी सूचना दे दी। उन शंकराचार्यों का तो कोई उत्तर आया नहीं। पत्रों व विज्ञापनों में जवाब के लिए १० दिसम्बर का समय नियत्त किया गया था, कोई जवाब न आने पर पुनः एक विज्ञापन उनकी करारी हार का लगवा दिया गया और अपनी दिल्ली स्थित सब्जीमण्डी आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव भी उसी समय पर रख लिया गया, उत्सव में श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री, अलीगढ़ से तथा श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री को खतौली से आमन्त्रित कर लिया गया, एवं अन्य भी अनेकों उपदेशक–भजनोपदेशक बुलवा लिए गये।

ब्रह्मचारी राजसिंह जी के इन विज्ञापनों को देखकर **"सनातन धर्म शास्त्रार्थ मण्डल दिल्ली"** की ओर से एक विज्ञापन निकाला गया कि– **"हम शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं"** परन्तु इस विज्ञापन पर पण्डित प्रेमाचार्य शास्त्री का नाम था। शंकराचार्य जी का कहीं पर भी नामों निशान नहीं था। जिससे साफ़ पता लग गया कि श्री शंकराचार्य जी की हार हो गई। वे शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते।

इस विज्ञापन के उत्तर में मैंने सूचना भिजवाई कि– **"इस समय तो हम एक जगत् गुरु नामधारी के साथ ही शास्त्रार्थ करने आये हैं, यदि जगत्गुरु नामधारी किसी प्रकार भी शास्त्रार्थ न कर सकें तो, श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी को जगत्गुरु घोषित कर दें, एवं पुरी की गद्दी उन्हें सौंप दें, तब फिर हम उनसे ही शास्त्रार्थ कर लेंगे।"** इसका कोई उत्तर हमारे पास नहीं आया, और १७ दिसम्बर को स्वामी निरञ्जनदेव जी उस यज्ञ में आ गये और उसी दिन रात्रि के व्याख्यान में अपनी वही पुरानी डींग मार दी......**"है कोई माई का लाल जो हमारे साथ शास्त्रार्थ करे, हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, परन्तु आर्य समाज के मंच पर हम नहीं जायेंगे।"** अगले दिन १८ दिसम्बर को प्रातः काल ही श्री ब्रह्मचारी राजसिंह जी व श्री प्रेमलाल जी शास्त्री उन जगत्गुरु जी के पास पहुंच गये। और उनको एक पत्र दिया, जिसमें लिखा गया था कि– **"यदि आप अपनी रात्रि की घोषणा पर दृढ़ हैं तथा शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं और आर्य समाज के पण्डाल में आने को तैयार नहीं है तो शास्त्रार्थ के लिए स्थान व समय बतला दीजिए।"** दोनों आर्य पण्डित लगभग दो घण्टे तक जमें रहे, कि हमारा पत्र लेकर उसकी प्राप्ति के हस्ताक्षर कर दीजिए। उत्तर बाद में भेज देना। परन्तु उन जगत्गुरु नामधारी ने न तो वह पत्र लिया, और न ही शास्त्रार्थ विषयक कोई बात की, बल्कि झल्ला कर कहा–**"मैं तुम्हारे बाप का नौकर नहीं हूं।"** जिससे साफ़ जाहिर हो गया कि वो शास्त्रार्थ करना नहीं

कारण विष्णु के जन्म हुए।" मैंने तीसरा कारण अवतार लेने का "कर्म फल" बताया था, सो वह भी सुनिये–

३. भगवान विष्णु को "कर्मफल" के कारण जन्म धारण करना पड़ा –

"ब्रह्मायेन कुलाल वन्नियमितो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे........." आदि विस्तृत पाठ आपके **"गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड आचार काण्ड"** में मौजूद है। जिसमें कहा है कि–ब्रह्मा, विष्णु व शिव को केवल **"कर्म"** के कारण सब कुछ करना पड़ा, अतः साफ पता चलता है कि विष्णु जी के जन्म के ये तीन कारण आपके पुराणों में बतलाए गए हैं, पृथ्वी का भार उतारना या धर्मोद्धार इनके जन्मों का कारण नहीं है। टर्न टन टन SSS...........

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ –

"सपर्यगाच्छुक्रमकायम्.........." के अन्दर **"अकायम्"** का अर्थ यदि शरीर लिया जाएगा तो **"अव्रणम्"** और **"अस्नाविरम्"** यह दो पद व्यर्थ हो जायेंगे। वेद में कहा हैं कि, वह शरीर धारण कर लेता है। तब चलता है, और शरीर रहित होता है तो नहीं चलता है। **"तदेजति तन्नैजति..........."** इस मन्त्र का स्वामी दयानन्द जी ने भी यही अर्थ किया है। कि वह चलता है, और वह नहीं चलता है। दोनों विपरीत गुण उसमें हैं।

भगवान अवतार धारण करते हैं, यह वेद में स्पष्ट कहा है देखिए– **"प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा विजायते"**। इस मन्त्र में कहा है कि प्रजापति परमात्मा गर्भ में विचरण करता है, जन्म लेता हैं, और बहुत प्रकार से जन्म लेता है। स्वयम्भुव राजा और शतरूपा रानी की कथा इस प्रकार नहीं, जिस प्रकार इन्होंने बताई है। उसमें यह नहीं है कि– उन्होंने कहा हो कि आप हमारे पुत्र बनो। बल्कि, वहां यह कहा है कि, हमको आप जैसा पुत्र प्राप्त हो, भगवान ने कहा, मेरे जैसा तो मैं हूं ही, इसलिए भगवान ने स्वयं जन्म लिया।

वृन्दा की कथा से तो यह सिद्ध होता है कि–पतिव्रता की बात भगवान को भी माननी पड़ती है, पतिव्रता भगवान से भी बड़ी होती है, वृन्दा पतिव्रता थी, उसका पति जालन्धर दुराचारी था। जब तक वृन्दा का पतिव्रत धर्म भङ्ग न हो तब तक उसका पति मर नहीं सकता था, इसलिए भगवान ने उसका पतिव्रत धर्म भंग किया। (जगत् गुरु जी ने अपना बोलने का समय पूरा किए बिना ही अपना व्याख्यान बन्द कर दिया)

श्री अमर स्वामी जी महाराज –

"अकायम्" का अर्थ शरीर रहित ही है; इस अर्थ से **"अव्रणम्"** और **"अस्नाविरम्"** यह दो पद क्यों व्यर्थ हो जायेंगे ? कैसे व्यर्थ हो जायेंगे ? यह आचार्य जी ने नहीं बतलाया, केवल कहने मात्र से इनको व्यर्थ नहीं माना जा सकता और मेरा दावा है कि दोनों शब्द कदापि व्यर्थ नहीं होते, बल्कि यह शब्द शरीर रहित होने के पोषक हैं। मन्त्र कहता है कि............. वह शरीर रहित ही है, क्योंकि – उसमे छिद्र, जख़्म आदि नहीं होता है। वह नस–नाड़ी के बन्धन से रहित है। इसलिए वह शरीर रहित है।

"तदेजति तन्नैजति............." का अर्थ स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कहीं पर भी यह नहीं किया कि, वह चलता भी है, और नहीं भी चलता है ! आचार्य जी को पता होना चाहिए कि दो विरोधी गुण एक गुणी में नहीं होते। **तदेजति**" में **"अन्तर्हित" "णित"** है, जिससे अर्थ हुआ कि वह चलाता है, चलता नहीं है। वैशेषिक दर्शन में कहा है कि— **"उत्पेक्षण मवक्षेपण माकुंचन प्रसारणं गमन मिति कर्माणि"** अर्थात् ऊपर जाना, नीचे आना, सिकुड़ना, फैलना और इधर–उधर घूमना ये पांच प्रकार के कर्म है।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे........" इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा गर्भ में विचरण करता है, गर्भस्थ बालक विचरण करेगा तो गर्भिणी मर जायेगी। बच नहीं सकती है। परमेश्वर का गर्भ में आना– जाना बन ही नहीं सकता, क्योंकि आवे–जावे तो वह ! जो वहां पहले विद्यमान न हो, वह तो पहले ही सर्वत्र विद्यमान

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री अमर स्वामी जी महाराज –

श्री आचार्य जी ! आप ईश्वर का जन्म मानते हैं, परन्तु वेदों से सिद्ध है कि– ईश्वर अजन्मा है, निराकार है, और सदा निराकार ही रहता है। देखिये यजुर्वेद के अध्याय ४०, मन्त्र ८, में कहा गया है कि–**"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम्"** अर्थात् वह परमेश्वर सर्वव्यापक तथा "अकायम्" बिना काया अर्थात् शरीर रहित है। और देखिये यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में ही मन्त्र ४ में कहा है– **अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनदैवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।** अर्थात् वह परमेश्वर कांपता और चलता नहीं है। इसी जगह पर अगले मन्त्र ५ में कहा है कि– **"तदेजति तन्नैजतितद्दूरे तद्वन्तिके............"** अर्थात् वह परमेश्वर संसार को चलाता है, स्वयं नहीं चलता है, वह निकट भी है, वह दुर भी है, सब जगत के भीतर और बाहर है। यही बात गीता में भी कही गई है, देखिये....... **"वहिरन्तश्च भूतानां अचरंचर मेव च।......** "अर्थात् वह परमेश्वर सबके भीतर व बाहर है, उसको जन्म लेने और अवतार धारण करके यहां आने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने अब तक कभी जन्म नहीं लिया है। आप ईश्वर के अवतार का कारण धर्मोद्धार करना और भूमि का भार उतारना मानते हैं, पर जिनको आप ईश्वर का अवतार कहते हैं उनके जन्म के **"कारण"** तो–आपके पुराणों में तीन बताये गये हैं। १. **वरदान**, २. **शाप**, ३. **कर्मफल भोग**, इन तीनों के प्रमाण देता हूं, सुनिये– और इनका खण्डन करके ईश्वर का जन्म सिद्ध करिये–

१. भगवान विष्णु को अपना "वरदान" पूरा करने के लिए अवतार लेना पड़ा –

स्वायम्भु राजा और शतरूपा रानी ने विष्णु भगवान से यह वर मांगा कि आप हमारे पुत्र बनें, विष्णु भगवान ने तीन जन्म तक उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया, इसी से राम का अवतार हुआ, इसी से कृष्ण का अवतार हुआ तथा एक और होगा जिसका नाम कल्कि अवतार होगा। ये जन्म सब **"वरदान"** पूरा करने के लिए हुए। ऐसा **"पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २६६ श्लोक १ से १२ "** तक में वर्णन है। जिससे पता चलता है कि ये अवतार भूमि का भार उतारने व धर्मोद्धार के लिए नहीं हुए बल्कि अपना **"वरदान"** पूरा करने के लिए हुए।

२. भगवान विष्णु का "शाप" दिये जाने पर अवतार लेनां पड़ा –

वृन्दा से विष्णु जी ने व्यभिचार किया, और उसके पति (जालन्धर) का रूप बनाकर वृन्दा को धोखा दिया, भेद खुलने पर वृन्दा ने विष्णु को **"शाप"** दिया कि जैसे तुमने मेरे साथ छल किया है, इसी प्रकार तेरी पत्नी के साथ भी कोई छल करेगा, इस शाप से ही विष्णु को राम बनना पड़ा, और शाप से ही सीता का अपहरण हुआ। यह वर्णन भी **"पदम् पुराण के उत्तर खण्ड अध्याय १०५"** में वर्णित है।

अब दूसरा **"शाप"** सुनिये जो आपके ही मान्य ग्रन्थ **"शिव पुराण श्री रुद्र संहिता"** में वर्णित है कि, एक बार नारद ने किसी स्वयंवर में जाने और कन्या को प्राप्त करने के लिए विष्णु से अपना चेहरा सुन्दर बना देने को कहा। विष्णु ने सुन्दर न बनाकर नारद जी का मुख बन्दर का सा बना दिया। और विष्णु जी स्वयं सुन्दर बनकर उस स्वयंवर में जा विराजे, और कन्या को विवाह कर ले आये। पश्चात् नारद ने अपना मुख देखा जो बन्दर का सा था, तो क्रुद्ध होकर विष्णु को शाप दे दिया, उस शाप से राम के रूप में विष्णु को जन्म लेना पड़ा, और शाप के वश सीता का अपहरण हुआ। इस प्रकार भृगु के शाप की कथा का वर्णन है, जिसके

श्री अमर स्वामी जी महाराज --

धन्य हो आचार्य जी ! आपने "अकायम्" का अर्थ "तीनों प्रकार के शरीरों रहित" किया। परमात्मा आपको हजार वर्ष की आयु प्रदान करे। आर्यो द्वारा······ बोलो वैदिक धर्म की जय·········(पौराणिक दल में मुर्दनी का छा जाना·······) एवं अमर स्वामी जी महाराज द्वारा नारे बाजी को बन्द कराना।

हां ! तो आचार्य जी अब शेष बात सुनिये !! "अजायमान" में "अ" नकारार्थ रूप में है। इसलिए इसका अर्थ है, जन्म नहीं लेता। "विजायते" में "वि" उपसर्ग विशेष अर्थ में है। "**उपसर्गेण धात्वार्थो बलादन्यः प्रतीयते** ··········" अर्थात् उपसर्ग से धातु का अर्थ बलात् दूसरा हो जाता है। सभी विद्वानों को दूसरा अर्थ प्रतीत होता है, अर्थ यह है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता है। और बिना जन्म लिए बिना शरीर धारण किए अपने गुणों और अपनी अद्भुत रचनाओं से बहुत प्रकार से सदा ही विद्यमान रहता है। मन्त्र के अगले भाग में कहा है कि–"**तस्य यो परिपश्यन्तिधीराः**" उसके स्वरूप को बुद्धिमान लोग देखते हैं, और आचार्य जी कहते हैं कि–"**अनेक शरीर धारण करता है और जन्म लेता है**" अगर वह शरीरधारी हो जाता है तो उसको बुद्धिमान ही क्यों देखते हैं ? मूर्ख भी देखेंगे ! गधे, घोड़े, बैल कुत्ते, बिल्ली आदि सब ही देखेंगे ? परन्तु उपनिषद में भी कहा है कि उसे बुद्धिमान ही देखते हैं, यथा– "**दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः**"। अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म देखने वाले मनुष्यों की सूक्ष्म बुद्धि से वह परमेश्वर देखा जाता है, विद्वान और बुद्धिमान लोग उसके गुणों और उसकी कृतियों को देखते तथा उसकी बुद्धि से अनुभव करते हैं। वह कभी जन्म नहीं लेता मैंने अवतारों के तीन कारण पुराणों से बताए, "**१. वरदान, २. शाप, ३. कर्मफल**" पर मुझे अफ़सोस है, आचार्य जी ने इन तीनों को छुआ तक भी नहीं। मैंनें श्री राम जी का वचन जो सीता हरण के बाद श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि –"**ना मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्येद्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्**······" सुनाया था, कि रामचन्द्र जी कहते हैं कि–मैंने निश्चय ही पूर्व जन्म में पापकर्म किए थे, उन पापों का फल यह है कि मैं निरन्तर एक दुःख से दूसरे दुःख में फंसता जाता हूं। अर्थात् श्री रामचन्द्र जी महाराज कभी झूठ नहीं बोलते थे, साफ ज़ाहिर है कि ये सब कुछ उनके "**कर्मफल**" के कारण हुआ। महाकवि तुलसीदास जी ने भी इन भावों को इस प्रकार वर्णन किया है कि –

को केहिकर सुख दुःखकर दाता।
निज निज कर्म भोग सब भ्राता ।।

इससे साफ पता चलता है कि – श्री रामजी के "**कर्मफलों**" के ही ये भोग थे। अब मैं इस पर कुछ प्रमाण देता हूं –

उपनिषदों में कहा है–

"अपाणि पांदो जवनो ग्रहीता पशत्य चक्षुः स श्रणोत्य कर्णः ·········।"

एवं

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्ध वच्चयत् ············।"

और भी बहुत से प्रमाण मेरे पास मौंजूद हैं जिनमें साफ शब्दों में कहा गया है कि — वह परमेश्वर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित हैं। वह सर्वत्र विद्यमान है, सर्वज्ञ है, निराकार है। उसे जन्म लेने की कोई जरूरत नहीं है। (मेरे) सारे प्रश्न ज्यों के त्यों रखे हुए हैं, एक का जवाब आचार्य जी नहीं दे रहे हैं। अपने वाक्यों की पुष्टी अपने भक्त जनों से करवा रहे हैं, मैंने भी सारी आयु भर बड़े–बड़े दिग्गज पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किए, पर आचार्य जी का निराला ही ढंग बोलने का देखा, कि हर बात का अन्तिम वाक्य

है। देखिए वेद में कहा है कि–"**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**............" अर्थात् वह परमेश्वर सबके भीतर है और सबके बाहर है। वह सर्वत्र विराजमान है। गीता में भी कहा है कि –"**बहिरन्तश्च भूतानां अचरं चर मेव च**..............." अर्थात् वह परमेश्वर सबके अन्दर भी है और बाहर भी है। आपने जो मन्त्र अवतारवाद के पक्ष में प्रस्तुत किया है–"**प्रजापतिश्च गर्भे**..........." इसमें तो अवतारवाद की गन्ध भी नहीं है, उसमें "**जायमान**" नहीं "**अजायमानः**" कहा है। उसका अर्थ है, जन्म न लेता हुआ महीधर जी ने भी "**अजायमानः**" पद मान कर उसका अर्थ "**अनुपद्यमानः**" उत्पन्न न होता हुआ ही किया है। योग दर्शन में देखिए ईश्वर का लक्षण ! पतञ्जलि ऋषि लिखते हैं कि–"**क्लेश कर्म विपाकाशै परामृष्ठः पुरुषः विशेष ईश्वरः**" अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मफल, वासना रहित विशेष पुरुष ईश्वर है। अब कहिए आप ! आचार्य जी !! आपने विष्णु पर परस्त्रीगमन (व्यभिचार) का दोष लगा दिया। जालन्धर को अन्य किसी प्रकार से मारते, उसे निकम्मा कर देते। स्वयं पतिव्रता का धर्म नष्ट क्यों किया ? यह पाप क्यों किया ? जबकि ईश्वर तो "**अपाप**" अर्थात् पाप रहित है।

नारद और भृगु के शाप तथा कर्मफल से "**विष्णुर्येनदशावतार गहनेक्षिप्तो महासंकटे**" विष्णु कर्मफल भोगने के लिए दश अवतार ग्रहण करके महासंकट में पड़े, इसको तो अपने छुआ तक नहीं– और टर्न टन टन टन...............

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ –

जालन्धर बहुत व्यभिचारी था, उसको मारना आवश्यक था, बहुत स्त्रियों से व्यभिचार करने वाले को मारने के लिए भगवान ने एक स्त्री का पतिव्रत धर्म भंग किया तो ठीक किया, उस पापी दुरात्मा को वैसे मारा ही नहीं जा सकता था, पतिव्रत के धर्म और उसकी शक्ति को भगवान ने माना। अर्थात् भगवान को भी उसके सामने............(भक्त जनों द्वारा वाक्य पूरा करना)......... झुकना पड़ा।

हमारे धर्म में पतिव्रतधर्म और पतिव्रता की बड़ी महिमा और शक्ति मानी जाती है। यजुर्वेद के मन्त्र "**प्रजापतिश्चरति गर्भे**..........." वाले मन्त्र में "**विजायते**" पद आया है। जो स्पष्ट कहता है कि भगवान बहुत योनियों में अवतार लेते हैं। अर्थात् भगवान के बहुत प्रकार के अवतार होते हैं। "**विजायते**" ! "**विजायते**" !! "**विजायते**" !!! (इसी "**विजायते**" पद को आचार्य द्वारा अपने हाथों को भाँति–भाँति से नचा–नचा कर आँखों को मटका–मटका कर एवं मुह से भाँति–भाँति के हाव–भाव बना–बना कर व्यक्त करते हुए बोलना) जनता में हंसी..........

नोट –

इस प्रकार का नाटक कोई विद्वान् या गम्भीर विचारक अथवा, साधु कर ही नहीं कर सकता, जैसे जगत्गुरु ने किया, जिसमें उन्होंने कथावाचकों, व पौराणिक प्रपञ्चियों, बहुरूपियों को भी मात कर दिया। जिससे साफ उनके व्यक्तित्व व उनकी बचकानी विद्वता का पता चल गया कि जगत्गुरु कहलाने वाले कितने पानी में हैं ?

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ –

मैं पूछता हूं एक ही धातु के दो अर्थ कैसे हो जायेंगे ? एक जगह जन्म न लेना, और एक जगह अपने गुणों और कार्यो से प्रकट होना, यह दो अर्थ कैसे हो जायेंगे ? उसका यही अर्थ है कि– भगवान जन्म लेते हैं। और बहुत योनियों में जन्म लेते हैं, "**अकायम्**" का अर्थ यह है कि......ईश्वर के स्थूल, सूक्ष्म, और कारण तीनों शरीर नहीं होते हैं। वह तीनों शरीरों से रहित है। (समय समाप्ति से पहले ही वक्तव्य समाप्त किया गया)।

वैदिक धर्म की– जय।
अमर स्वामी जी महाराज की –जय।
अमर स्वामी जी महाराज–जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !!

नारे लगाते हुए आर्य जनों ने शास्त्रार्थ स्थल से आर्यसमाज स्थल तक सारी गलियां जय–जय कार से आर्ययुवकों ने गुंजा दी और जगत्गुरु जी की हार की सर्वत्र घोषणा करते हुए स्वः स्थान पर आकर पूज्य पाद अमर स्वामी जी महाराज को फूलों से लाद दिया व स्वामी जी महाराज पर नोटों की वर्षा की।

इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज की महती विजय हुई, बहुत ही अच्छा प्रभाव आर्यसमाज का रहा यह एक "ऐतिहासिक" शास्त्रार्थ है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री का आगमन –

शास्त्रार्थ की समाप्ति पर जब सभा विसर्जित हो रही थी तब कार में श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री जो **"स्वर्गीय श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री के सुपुत्र हैं"**, को उतरते हुए देखा गया तब पता चला कि नामधारी जगत् गुरु ने अपनी दुर्गति बचाने के लिए उनको बुलवाया था, परन्तु समय की बात है, कि जगत् गुरु की दुर्गति उनके पहुंचने से पहले ही हो चुकी थी।

"सम्पादक"

नोट –

इस शास्त्रार्थ में पुराणों के जो–जो प्रकरण आए हैं उनके बारे में विस्तृत प्रमाण आगे परिशिष्ठ भाग में पढ़िये। संक्षेप मे यहां भी निर्देश मात्र आ गये हैं। **"जगत् गुरु शंकराचार्य कहलाने वाले"** स्वामी निरंज्जनदेव जी तीर्थ मेरे द्वारा दिये गये प्रमाणों का खण्डन करने की हिम्मत रखते हों ? तो उन्हें मेरा खुला चैलेन्ज है, वो कभी भी निम्न विषयों पर शास्त्रार्थ करें, मैं हर समय तैयार हूँ। १. अवतारवाद २. मूर्तिपूजा ३. मृतक श्राद्ध ४. वर्ण व्यवस्था ५. नियोग और विधवा विवाह ६. द्वताद्वैत ७. भागवत् आदि पुराणों की वैदिकता आदि–आदि जिस भी विषय पर (जिसमें हमारे व उनके) मत भेद हैं जब चाहे तब शास्त्रार्थ कर लें। परन्तु मुझे पता है कि –**"जान बची और लाखों पाये"** वाली बात बिचारो के गले पड़ गई थी जो मुश्किल से ही उनकी जान छूटी, मैं यह भी जानता हूं कि – वो इस जन्म में तो क्या जन्म जन्मान्तरों में भी मेरे अकाट्य प्रमाणों व ठोस दलीलों का कोई जवाब कदापि न दे सकेंगे।

वैदिक धर्म का –
"अमर स्वामी सरस्वती"

(इस शास्त्रार्थ का परिशिष्ठ - भाग)

अगर जगत्गुरु नामधारी शंकराचार्य द्वारा शास्त्रार्थ में विघ्न न होता ?–

सज्जनों ! अगर ये गड़बड़ पौराणिकों की ओर से न होती, और शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक ढंग से चलता तो जो–जो प्रसंग शास्त्रार्थ के मध्य में आए थे मैं उनको पूर्ण विस्तार से कहता, जिससे पौराणिकों की कलाई अच्छी प्रकार खुलती, अब मैं उन प्रसंगों पर प्रमाण सहित यहां लिख रहा हूं। आप पढ़िये, और जानकारी हासिल करिये।

१. "वरदान" पूरा करने के लिए विष्णु का अवतार लेना –

स्वायम्भुवो मनुः पूर्व द्वादशार्ण महामनुम जगाम गोतमीतीरे , नैमिषे विमले शुभे।।१।। तेन वर्ष

अपने भक्तजनों से ही कहलवाते हैं। क्या इससे आचार्य जी को शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त हो जाएगी? (जनता में हंसी.........) तथा मैं.......टर्न.......टन.......टन....... अच्छा फिर सही...............

श्री स्वामी निरंजनदेव जी तीर्थ –

आप "निग्रह स्थान" में आ गए हैं, इसलिए शास्त्रार्थ समाप्त हो जाना चाहिए।

श्री अमर स्वामी जी महाराज –

ऊंचे स्वर से .... किस "निग्रह स्थान" में आ गया हूं?

श्री स्वामी निरंजनदेव जी तीर्थ –

गर्ज कर .... बड़े आवेश में .... निग्रह स्थान में आ गए! कौन सा क्या? "अजायमानः" में "अ" नकारार्थ में नहीं है, वहां "अट्" का आगम हो गया, यदि "अ" उपसर्ग सिद्ध हो जायेगा तो मैं अपनी गद्दी छोड़ दूंगा।

श्री अमर स्वामी जी महाराज –

मैंने नहीं कहा कि – "अ" उपसर्ग हैं पर नकारार्थ में अवश्य है। और आप **"निग्रह स्थान"** के लक्षण जानते ही नहीं तभी यह कह रहे हो, न्याय दर्शन में ....(बीच में)

श्री स्वामी निरंजनदेव जी तीर्थ –

आप बोलते जाते हैं, आपको पता होना चाहिए मैं इस सभा का अध्यक्ष भी हूं, इसलिए घोषणा करता हूं "शास्त्रार्थ समाप्त"।

श्री अमर स्वामी जी महाराज –

उच्च स्वर में .... आचार्य जी! साफ क्यों नहीं कहते कि अब आपके पास मशाला समाप्त हो गया.........(स्वामी निरंञ्न देव जी का अपने भक्तों को उठने का संकेत करना) सभी भक्त जन..... हू! हू!! हू!!! करते हुए उछलने लगे। और सभा विसर्जित हो गई।

नोट –

इसी बीच पौराणिक दल के कई एक गुण्डे मंच पर आए और श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री जी को व श्री पण्डित प्रेमपाल जी शास्त्री को पकड़ कर मंच के पीछे घसीटने लगे, व हाथा–पाई करने लगे। इसी बीच –

श्री अमर स्वामी जी महाराज का जबर्दस्त गर्जन –

उच्च स्वर के साथ......... यह इन पौराणिकों का अन्तिम अस्त्र है, यही इन लोगों ने काशी में ऋषि दयानन्द के साथ किया था, ये लोग जहां हारते हैं वहां इसी प्रकार की हुल्लड़बाजी व हाथा–पाई करते हैं। मैं इससे साफ़ शब्दों में ऐलान करता हूं कि जगत् गुरु में दम हो तो शास्त्रार्थ करे। पर उनके पास सामग्री समाप्त है जो इनकी हार का जबर्दस्त सबूत है। आप लोग बिल्कुल न घबरायें।

पुलिस का आगमन –

उसी समय पुलिस स्टेज के पास आ गई, और झगड़ा नहीं होने दिया। आर्यसमाजी युवकों ने वैदिक जयघोषों से आकाश गुंजा दिया।

हार गये जी हार गये! जगत् गुरुजी हार गये!!

बन कर तुम्हारी पत्नी को हरण करेंगे।।२६।। और तुम भी अपनी पत्नी के वियोग में दुःखी होकर वन में बन्दरों की सहायता लेने वाले बनकर दुःखी होओगे।।३०।।आगे देखिये –

अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना। तथा तव वधूं माया तपस्वी कोऽपि नेष्यति।।५५।।

(पदम पुराण उत्तर खण्ड़ अध्याय ६ श्लोक ५५)

भावार्थ –

जैसे तुझ छलयुक्त तपस्वी ने मुझको अज्ञान में डाला है, ऐसे ही तुम्हारी पत्नी को कोई कपटी तपस्वी हरण करके ले जायेगा। **"इसी शाप के कारण राम का जन्म और सीता का हरण हुआ"।**

(क) नारद के "शाप" के कारण विष्णु का अवतार लेना –

नारद ने विष्णु से निवेदन किया कि–आपका भक्त राजा शीलनिधि है, उसकी कन्या सुन्दरी, श्रीमती नाम वाली स्वयंवर करना चाहती है। सो आप मेरा रूप इतना सुन्दर बना दीजिये कि मैं उस स्वयंवर में जाऊं और वह मेरा ही वरण करे। और मैं उसे विवाह कर ले आऊं। **"विष्णु ने नारद का रूप बन्दर का सा बना दिया"** और अपना रूप सुन्दर बना कर उस स्वयंवर में स्वयं जा विराजे। परिणाम स्वरूप उस राज–कन्या ने विष्णु को ही वरण कर लिया, और विष्णु जी स्वयं उसे अपनी पत्नी बनाकर ले आये और नारद जी देखते ही रह गये, पश्चात नारद जी ने दर्पण में अपना मुख देखा तो वह बन्दर का सा था, जिसे देखकर क्रोध से आग–बबूला हो गए और विष्णु को आकर शापयुक्त ये वचन कहे –

हे हरे त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः। परोत्साहं न सहसे, मायावी मलिनाशयः।।६।। मोहिनी रूपमादाय, कापट्यं कृतवान पुरा। असुरेभ्योऽपापास्त्वं वारुणीममृतंनहि।।७।। शशाप क्रोधनिर्विष्णो ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन्।।१४।। स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो, मामकार्षीविमोहकः। अन्वकार्षी स्वरूपेण, येन कापट्य कार्य कृत।।१५।। तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं, भवत दुःख भुग्धरे। यन्मुखं कृतवान्मेत्वं, ते भवन्तु सहायिनः।।१६।। त्वं स्त्री वियोगजं दुःखं, लाभस्य पर दुःखदः। मनुष्य गतिकः प्रायो, भवाज्ञान विमोहितः।।१७।।

(शिवपुराण श्री रुद्र संहिता २, अध्याय ४, छापा श्री वैंक्टेश्वर प्रैस बम्बई)

भावार्थ –

नारद ने कहा, हे! हरि **"विष्णु"** तुम महाकुटिल, कपटी, संसार को मोहने वाले हो, माया वाले और मलिन चित्त वाले हो किसी, के उत्साह को तुम सहन नहीं करते हो।।६।। पहिले तुमने मोहनी रूप धारण कर कपट किया असुरों को तुमने मदिरा पिलायी, अमृत नहीं दिया। नारद ने अति दुःखी व क्रोधित होकर ब्रह्मतेज को दिखाते हुए विष्णु को **"शाप"** दे दिया।।१४।। हे विष्णु! आपने स्त्री के निमित्त मुझको व्याकुल और मोहित किया है। और जिस (मनुष्य) रूप से मेरे साथ कपट का व्यवहार किया है।।१५।। हे हरि! तुम उसी रूप से मनुष्य होकर दुःख भोगो, और जैसा मेरा (बन्दर का सा) मुख तुमने बना दिया वैसे ही मुख वाले तुम्हारी सहायता करेंगे।।१६।। हे दूसरों को दुःख देने वाले विष्णु! तुम स्त्री वियोग के दुःख को प्राप्त करो और मनुष्य की गति को पाकर अज्ञान से मोहित होओ।।१७।। नारद के इस "शाप" से विष्णु को राम बनना पड़ा और इससे ही सीता का हरण हुआ तथा राम ने उसके वियोग का दुःख भोगा अंर्थात् राम का जन्म नारद के "शाप" से हुआ, किसी के धर्मोद्धार के लिए नहीं।

(ख) भृगु के "शाप" के कारण विष्णु का अवतार लेना –

भृगु ऋषि की पत्नी का सिर विष्णु जी ने इन्द्र के कहने पर काट दिया। इस पर भृगु ऋषि ने विष्णु को **"शाप"** दिया देखिये –

सहस्त्रेण, पूजितः कमलापतिः। मत्तोवरं वृणीष्वेति, प्राहतं भगवान्हरिः।। ततः प्रोवाच हर्षेण, मनुः स्वायम्भुवो हरिः ।।२।।, मनुरूवाच –पुत्रत्वं भजदेवेश, त्रीणि जन्मानि चाच्युत। त्वां पुत्र लालसत्त्वेन, भजामि पुरुषोत्तमम्।।३।। विष्णुरुवाच–भविष्यति नृपश्रेष्ठ, यत्तेमनसि काँक्षितम्। ममैवा च महाप्रीतिरत्तव –पुत्रत्वहेतवे ।।५।। रूद्र उवाच–एवं दत्वा वरं तस्मै, तत्रैवान्तर्दधे हरिः। अस्याभूत् प्रथमं जन्म, मनोःस्वायम्भुवस्य च ।।८।। रघूणामन्वये पूर्व राजा दशरथो ह्यभूत। द्वितीयो वासुदेवोऽभूद्वृष्णो नामन्वये विभुः ।।६।। कलेर्दिव्य सहस्त्राब्दे, प्रमाणस्यान्त्यपादके। सम्भल ग्राम के मुख्ये ब्राह्मणः सं जनिष्यति।।१०।। कौशिल्या समभूत्पत्नी राज्ञो दशरथस्य हि। यदोर्वशस्य सेवार्थ, देवकी नाम विश्रुता।।११।। हरिगुप्तस्यविप्रस्य, भार्यादेव प्रभा पुनः। एव मातृत्वमापन्ना, त्रीणि जन्मानि शार्ङ्गिणः।।१२।।

(पदम पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २६६, आनन्दाश्रम प्रैस पूना)

भावार्थ –

नैमिषारण्य मैं गौतमी नदी के किनारे स्वायम्भुव मनु ने "विष्णु" का जप किया।।१।। उससे सहस्त्र वर्ष में पूजित हुए विष्णु ने प्रसन्न होकर मनु से कहा कि–मुझसे वर माँगो, तब हर्षित होकर मनु ने विष्णु से यह वर माँगा ।।२।। हे देवेश अच्युत ! आप तीन जन्म तक मेरे पुत्र बनो। विष्णु जी ने कहा, हे राजन् जो तुम चाहते हो वही होगा, आपका पुत्र बनने में मेरी बहुत प्रीति है।। ५–८।। ऐसा कह कर विष्णु जी अर्न्तधान हो गए स्वायम्भुव मनु का प्रथम जन्म– राजा दशरथ और दूसरा वासुदेव का हुआ ।। ८–६।। तीसरा जन्म सम्भल ग्राम में एक ब्राह्मण रूप में होगा "शतरूपा रानी" दशरथ की पत्नी कौशल्या का और यदुवंश में "देवकी" रूप में हुआ। तीसरे जन्म में –हरिगुप्त ब्राह्मण की पत्नी "देवप्रभा" होगी।

इस प्रकार विष्णु की तीन जन्म में तीन मातायें हुई। और विष्णु के राम तथा कृष्ण के रूप में दो जन्म हो चुके, जो केवल अपना "वरदान" पूरा करने के लिए ही हुए, न कि भूमि का भार उतारने या धर्मोद्धार के लिए !

२ – वृन्दा के "शाप" के कारण विष्णु का अवतार लेना –

विष्णु जालन्धरं गत्वा, तद्दैत्य पुट भेदनम्। पतिव्रतस्य भङ्गाय, वृन्दा याश्चकरोन्मतिम्।।१।। वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीतिमानसः।।२५।। रेमे तदैवन् मध्यस्थो तद्युक्ता वहुवासरम्।। २६।। कदाचित् सुरतस्यान्ते, दृष्ट्वा विष्णुं तमेवहि। निर्भर्त्स्य क्रोध संयुक्ता, वृन्दा वचनमब्रवीत्।। २७।। धिक् तवेदं हरेशीलं, परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसित्वं मया सम्यङ् माया प्रच्छन्न तापसः।।२८।। त्वया मायया द्वा रथौ, स्वकीयौ दर्शितौमम्। तावेत राक्षसौ भूत्वा, भार्या तव विनेष्यतः।।२६।। त्वं चापि भार्या दुःखार्तो, वने कपि सहायवान्।।३०।।

(पदम पुराण उत्तर खण्ड ६, अध्याय १०५,श्लोक १ व २५ से ३०)

भावार्थ –

विष्णु ने वृन्दा के पति "जालन्धर" का रूप बना कर वृन्दा के पतिव्रत धर्म को भंग करने का विचार किया।।१।। विष्णु ने वृन्दा का आलिंगन कर उसके मुख को चूमा।।२५।। वृन्दा भी उसके साथ बहुत दिनों तक रमण करती रही।।२६।। एक बार सम्भोग के अन्त में उस विष्णु को ही जो उसके पति के रूप में था वृन्दा ने पहचान लिया, तब क्रोधयुक्त होकर विष्णु की निन्दा करती हुई बोली।।२७।। हे ? परदारा से गमन करने वाले तुम्हारे इस शील हरण वाले स्वभाव को धिक्कार है, मैं तुमको अच्छे प्रकार जान गई, तुम छली, कपटी, और मायावी, (झूठे) तपस्वी हो ।।२८।। तुमने जो मुझको दो रूप माया से दिखाये ये ही दोनों राक्षस

किल लोक मध्ये, कथं भवेदात्म परो यदिस्यात्।।६०।। तस्मान्नाहं स्वतन्त्रोऽस्मि......।।६१।।

(देवी भागवत पुराण स्कन्द, अध्याय ७, श्लोक ५६ से ६०)

भावार्थ –

विष्णु कहते हैं—मैं उसकी इच्छा से पुरुष होकर महासागर में विचरण किया करता हूं और युग–युग में कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, अवतार लेता हूं।।५६।। पशु योनी में जन्म लेने की कोई भी इच्छा करता है ? परन्तु मुझे वामन वाराह आदि योनियों में जन्म लेना पड़ता है।।५७।। लक्ष्मी के साथ विहार करना छोड़ कर कोन मतस्य (मछली) आदि की हीन योनि में शरीर धारण करेगा ? और कौन स्वतन्त्र होकर चाहेगा कि– शय्या छोड़कर गरुड़ पर बैठकर महासमर करे ? ।।५८।। हे अज ! प्राचीन काल में आपके सामने ही धनुष की प्रत्यञ्चा के टूटने से मेरा मस्तक जाता रहा अर्थात कट गया था। तब बड़े त्वष्टा (शिल्पी) ने घोड़े का मस्तक लेकर हमारे धड़ पर जोड़ दिया था।।५६।। तबसे हमारा नाम "हयग्रीव" पड़ गया, और हे लोक सृष्टा ! यह सब घटना आपके प्रत्यक्ष में हुई थी। यह निश्चित है कि, यदि मैं अपने वश में होता तो यह विडम्बना क्यों होती ?।।६०।। इससे मैं स्वतन्त्र नही हूं।।६१।। इसी प्रकार **"देवी भागवत् पुराण के स्कन्ध ४ के अध्याय १८"** में विस्तार से विष्णु के दुःख और परतन्त्रता का वर्णन हैं। जो सभी **"पाप कर्मों का फल"** भोगने के कारण विष्णु जी को प्राप्त हुए।

(ख) "पापकर्मो का फल" भोगने के लिए राम का अवतार लेना –

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्। शोकेन शोकोहि परम्पराया मामेति, भिन्दन् हृदयं मनश्च।।३।। पूर्वमया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्य संस्कृत कृतानि। तत्रायमद्यापततो विपाको दुःखेत दुःखं यदहं विशामि।।४।।

(वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग ६३ श्लोक ३ व ४)

श्री रामजी कहते हैं कि—मैं मानता हूं कि मेरे समान "पाप कर्म" करने वाला दूसरा मनुष्य इस भूमि पर नहीं है। शोक से शोक परम्परा से हृदय तथा मन को भेदन करता हुआ मुझको प्राप्त होता है। निश्चय ही मैंने पूर्व जन्म में बहुत पाप बार–बार किए हैं। उन्हीं का फल मुझको यह है कि दुःख पर दुःख प्राप्त हो रहा है। अर्थात् मैं किन्हीं पिछले **"पापकर्मों का फल"** इस जन्म में भोग रहा हूँ।

अब "कृष्णावतार" के बारे में देखिये

(१) कृष्णावतार का पहला कारण –

त्रेता युगे रामरूपी, विष्णुः संप्राप्य जानकीम्। नो तृप्तः स्त्री विलासानां, वित्तस्य च सुखस्य च।।६२।। रेतः सं प्रषणश्चापि, प्रोषितस्य स्त्रिया मपि। तस्मात् कलियुगे भूयो, गृहीत्वा जन्म केशवः।।६३।। वासुदेवस्य देवक्यां, मथुरायां महाबलः। बालस्तु गोप कन्या भिंवने क्रीडां चकारसः।।६४।। दक्ष लक्षाणि पुत्राणां, गोपालानां ससर्जह। ततस्तु यौवनाक्रान्तो, रूक्मिणि प्रददर्शहः।।६५।। विवाहयित्वा पुत्रांश्च प्रद्युम्नाद्यांश्च निर्ममे। तथापि नरकं दैत्यं प्राग्ज्योतिष पतिं बलात्।।६६। हत्वा स्त्रीणां सहस्त्राणि, शोड़शैव जहारसः। तासां रतिफलं भुक्तवा, पुत्राणां नवतिं तथा।।६७।। सहस्त्राणि ससजीशु, मतस्ये चांड महाद्भुतम् स्त्रीणां तथापि नो तृप्तो, दिव्यानां तु रतेयर्दा।। ६८।। तदा राधास्त्रियं काचिन्, निशि धैर्या दधर्षयत्। तथापि परनारीणां, लम्पटो नित्य मेवहि।।६६।।

(शिवपुराण धर्म संहिता अध्याय ६)

अवतारा मृत्यु लोके, संतुमच्छाप संभवाः। प्रायोगर्भभवं दुःखं भुक्ष्वं पापज्जनार्दन।।८।।
(देवीभागवत पुराण स्कन्ध ४०, अध्याय १२, श्लोक ८)

भावार्थ –

भृगु ने कहा– हे विष्णु ! मेरे "शाप" से मृत्यु लोक में तुम्हारे अवतार हों, हे विष्णु ! तुम (अपने इस) पाप से गर्भ में होने वाले दुःखों को भोगो। आगे देखिये इसी शाप के कारण विष्णु की क्या दुर्गति हुई ?–

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कर्मठः खलु शूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यच्छल कृद्धरायां तान् सेवतां जननी मृत्यु भयंज किं स्यात्।।१८।।
(देवीभागवत पुराण स्कन्ध ५ अध्याय १६, श्लोक १८)

भावार्थ –

कुपित भृगु के द्वारा दिये गए "शाप" से विष्णु मछली बना, अवतार धारण करके कच्छप बना, शूकर बना, पश्चात् नृसिंह बना और भूमि पर छल करने वाला, बलि राजा को ठगने वाला, वामन अवतार हुआ। कहते हैं कि–हे जननी उनको सेवन–पूजन करने वालों को मृत्यु का भय क्यों न होगा ? अर्थात् अवश्य होगा।

(ग) भृगु द्वारा दिये गये "शाप" के कारण विष्णु की गति ?

भृगु पत्नी शिरच्छेदात् भगवान्हरिरच्युतः।।३४।। ब्रह्मा शापात्पशोर्योनौ, संजातो मकरादिषु। विष्णुश्च वामनो भूत्वा, यचनार्थ वर्लेग्रहे।।३५।। अतः किं परम् दुःखं, प्रप्नोति दुष्कृती नरः। रामोऽपि वनवासेषु, सीता विरहजं बहुः।।३६।। दुखं च प्राप्तवान् घोरं भृगुशापेन भारत।।३७।।
(देवीभागवत् पुराण स्कन्ध ६, अध्याय ७, श्लोक ३४ से ३७)

भावार्थ –

भृगु ऋषि की पत्नी का सिर काट देने के कारण भगवान विष्णु भृगु ब्राह्मण के "शाप" से पशु योनियों मे जन्में।। और वामन बनकर राजा बली के घर मे भिक्षा मांगने के लिए गये, पाप कर्म करने वाला मनुष्य इससे अधिक और क्या दुःख भोग सकता है ? रामजी भी बनवास में सीता के वियोग से उत्पन्न हुए घोर दुःखों को "भृगु" शाप से प्राप्त हुए।

३ – "पापकर्मो का फल" भोगने के कारण विष्णु के अवतार –

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो, ब्रह्मण्ड भाण्ड़ोदरे, विष्णुर्येन दशावतार गहने, क्षिप्तो महासंकटे।
रूद्रोयेन कपालपाणि पुटकेभिक्षाय्नंकारितः, सूर्योभ्राम्यतिनिंत्यमेव, गगनेतस्मै नमः कर्मणे।।१५।।
(गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड आचार काण्ड, अध्याय ११३, श्लोक १५)

भावार्थ –

ये सब विष्णु जी का मछली आदि की योनियों में जनम लेना "पापकर्मो का फल" भोगने के कारण हुआ न कि धर्मोद्धार के लिए ! आगे खुद विष्णु जी का अत्यन्त दुख भरा कथन देखिये –

(क) विष्णु द्वारा अत्यन्त दुःख भरा वर्णन –

यदिच्छा पुरुषो भूत्वा, विचरामि महार्णवे। कच्छपः कोल सिंहश्च, वामनश्च युगे-युगे।।५६।। न कस्यापि प्रियों लोके, तिर्यक्योनि संभवः। नाभवं स्वेछयावाम्, वाराहादिषु योनिषु।।५७।। विहाय लक्ष्यासह सं विहारं, को याति मत्स्या दिषु हीन योनिषु। शय्यां च भुक्त्वा गरुडासनस्थ, करोति युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः।।५८।। पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं, गतं धंनुर्ज्यास्खत्वचापि। त्वयातदा वाजिशिरो गृहीत्वा, संयोजिनं शिल्पिवरेण भूयः ।।५६।। ध्याननोऽहं परिकीर्तितश्च,प्रत्यक्ष मे तत्तव लोक कर्त्तः। विडंवनैयं

कालनेमि समद्भूतं इत्युवाक्तर्दधे हरि।।६५।।

(विष्णु पुराण अंश ५ अध्याय १, श्लोक ६०,६१,६४,६५,)

भावार्थ –

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विष्णु ने अपने सिर में से दो वाल उखाड़े एक सफेद और दूसरा काला।।६०।। देवों को भगवान विष्णु ने कहा कि–यह मेरे दोनों बाल भूमि पर अवतार लेकर क्लेश की हानि करेंगे।।६१।। वासुदेव की पत्नी देवकी देवता के समान जो है उसका आठवां गर्भ यह मेरा "काला" वाल होगा।।६४।।

यही प्रकरण महाभारत में देखिये –

स चापि केशौ हरिरूर्द्धर शुक्ल मेकमपरं चापि कृष्णाम्।।३२।। तौ केशौ निविपेतां यदूजां कुले स्त्रियौ देवकी रोहिणी च।। हयो रेको वलदेवो वभूव, योऽसौ श्वेतस्य देवस्य केशः कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्वभूल केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः।।३३।।

(महाभारत आदि पर्व अध्याय १६७, श्लोक ३२ व ३३)

भावार्थ –

नारायण ने अपने माथे से दो बाल तोड़े, इनमें एक बाल सफेद और एक बाल काला था।।३२।। यह दो बाल यदुकुल की देवकी और रोहिणी नाम वाली स्त्रियों के गर्भ में आए, विष्णु का जो सफेद बाल था उसमे बलदेव उत्पन्न हुए और काले बाल से श्री कृष्ण जी उत्पन्न हुए।।३३।।

(३) श्री कृष्ण पार्वती के अवतार थे –

यदि त्वं मे प्रसन्नासि, तदा पुरुत्त्वमवाप्नुहि। कुत्रचित् पृथिवी पृष्ठे, यास्येऽहंस्त्री स्वरूपताम्।।१६।। भविष्येऽहंत्वत् प्रियार्थ, निश्चितं धरणीतले पुरुपेण महादेव,वसुदेव गृहे प्रभो।।१८।। कृष्णोऽहं मत् प्रियार्थ स्त्री भवत्वेहि त्रिलोचन।।१६।। पुंरूपेणाजगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णानां त्वयि। वृषभानोः सुताराधा, स्वरूपाहं स्वयं शिवे।।२०।। तव प्राण समा भूत्वा, विहारिष्येत्वयासह।।२१।।

(महाभागवत महापुराण अध्याय ४६)

भावार्थ –

शिवजी ने पार्वती से कहा कि–यदि तुम मुझसें प्रसन्न हो तो ! तुम पुरुष बनो और मैं पृथ्वी पर कहीं स्त्री बनूं।।१६।। पार्वती जी ने कहा–हे महादेव जी ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए निश्चय ही पृथ्वी पर वासुदेव के घर में उत्पन्न होऊंगी।।१८।। मैं कृष्ण का रूप लूंगी आप मेरी प्रसन्नता के लिए, हे तीन नेत्र वाले कहीं स्त्री का जन्म लीजिये।।१६।। शिवजी ने कहा–हे जगत्जननि तुम्हारे कृष्ण बन जाने पर मैं वृषभानु की पुत्री "राधा" के रूप में जन्मूंगा।।२०।। तुम्हारे प्राणों के समान प्यारा मैं शंकर तुम्हारे साथ विहार करूंगा।।२१।। उसके बाद शिवजी वृषभान के घर में जन्म लेकर राधा बन गये और वही राधा कुछ दिनों बाद कृष्ण को प्राप्त हो गयी।

अब रामावतार के सम्बन्ध में देखिये

राम का अवतार और उसका कारण –

पुरा कौलिक मार्गस्य, निन्दा वै विष्णुना कृता। तत् पातक वशाज्जातो, मत्तोदशरथात्मजाः।।२२६।। यत्तेन निन्दिता शक्तिः, तत् सीता रक्षसाहृता । दुःखश्च समनु प्राप्तं, वियोगश्चानु कालिकः।।२२८।।

(मेरुतन्त्रप्रकाश, १७ पृष्ठ ३८४, वैंक्टेश्वर प्रैस बम्बई)

भावार्थ –

पुराने समय में विष्णु ने कौलिक मार्ग (वाम मार्ग) की निन्दा की थी, उस पाप के वश दशरथ का

नोट –

इस प्रसंग में आगे–पीछे बहुत अश्लील बातें लिखी हैं, अधिक अश्लील होने के कारण न मैं उनको लि सकता हूं और न बोल सकता हूं। सनातन धर्म की सभ्यता में वह चाहे जितने भी पवित्र माने जाते हों पर हम आ को तो उनके बोलने और लिखने में भी लज्जा आती है। अब आप संक्षेप से साररूप में इन श्लोकों का अर्थ पढ़िये

त्रैता युग के अन्दर राम के रूप में विष्णु सीता को प्राप्त करके स्त्री विलासों से तृप्त न हो सक इसलिए **"स्त्री भोग से तृप्त होने के लिए"** कलियुग में वसुदेव की पत्नी देवकी से जन्म लेकर **"कृष्ण"** बने बाल्यकाल में ही गोप कन्याओं से क्रीड़ा करते रहे। दश लाख पुत्र **"गोपाल"** उत्पन्न किए। फिर युवावस्थ में रूक्मिणी को देखा और उससे विवाह करके प्रद्युम्न आदि को उत्पन्न किया। (तब भी कामवासना से तृप्ति न हुई तो)– प्राग्ज्योतिषपुर के राजा जरकासुर को मार कर सोलह हजार स्त्रियों को हर कर ले आये उनसे भो करके नब्बे हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। जैसे मछली से असंख्य अण्डे होते हैं। (इतने पर भी तृप्त न हुए तो रात्री में धैर्यच्युत होकर राधिका नाम वाली स्त्री से सम्भोग किया इस प्रकार नित्य ही स्त्री लम्पट बनकर रहे।

(२) कृष्णावतार का दूसरा कारण –

पुरा महर्षयः सर्वे दण्ड कारण्य वासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।। १६६।।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः शमुद्भूतास्तु गोकुले। हरिं संप्राप्य कामेन, ततोमुक्ताः भवार्णवात्।। १६७।।

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय २७२, श्लोक १६६–१६७, आनन्दाश्रम प्रैस पूना)

भावार्थ –

पुराने समय में सारे दण्डकारण्यवासी ऋषि राम से मैथुन (अप्राकृतिक व्यभिचार) करने के इच्छुक हुए, तत्पश्चात् वह सब स्त्री बन कर गोकुल में जन्में, तब कृष्ण को प्राप्त करके राम के द्वारा किये गये उस पाप कर्म से छूटकर भवसागर से पार हुए।

नोट –

भाईयों ! ये तो बात मैंने बहुत ही संक्षेप में कही अवतार के कारणों की ! अब मैं बताता हूं कि कृष्ण जी किसके अवतार थे ? जबकि उनको पूर्णावतार कहा गया है, क्या वे पूर्ण अवतार थे ? एक झांकी इस पर भी मारिये–

श्री कृष्ण जी पूर्णावतार थे देखिये–

"एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।।"

(श्रीमद्भागवत् पुराण स्कन्ध १, अध्याय ३)

भावार्थ –

और सब अवतार **"अंशावतार"** थे केवल श्री कृष्ण जी ही स्वयं भगवान् अर्थात् **"पूर्णावतार"** थे।

कृष्ण के पूर्णावतार के विषय में पुराणों का कथन

(१) "अवतीर्णो भगवानंशेन जंगदीश्वरः।।२७।।

(श्रीमदभागवत् पुराण स्कन्ध १०, अध्याय ३३)

भावार्थ – भगवान के अंश से कृष्ण का अवतार हुआ। आगे देखियें –

(२) एवं संस्तूय मानस्तु भगवान् परमेश्वरः। उज्जहार आत्मनः केशौ, सितकृष्णौ महामुने।।६०।। उवाचसुरान् सर्वागतौ वसुधातले। अवतीर्य भुवौभारक्लेश हानिं करिष्यतः।।६१।। वासुदेवस्य या पत्नी, देवकी देवतोपमा। तस्यामष्ठमोगर्भो मतकेथो भविता सुराः।।६४।। अवतीर्यं च तत्रायकंसं धार्तायतः भुविः।

हैं, जो महर्षि व्यास जी का बनाया सभी पौराणिक लोग मानते हैं, इसका यह अर्थ हुआ कि–महर्षि व्यास जी भी जानते थे कि–**"राम अज्ञानी थे, और न वह सर्वज्ञ थे और न सर्वशक्तिमान"** ! अर्थात् उनके मत में भी वह परमेश्वर नहीं थे।

राम (अवतार) के बारे में चाणक्य का कथन –

न भूतपूर्व न श्रुतं त दृष्टं कथंचिदपि हेम मृगस्य जन्म।।
तथांपि तृष्णापि रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।।१५।।

असम्भवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभ मृगाय।
प्रायः स्मापन्नविपत्तिकाले, धीयोऽपि पुंसांमलिना भवन्ति।।१६।।

(चाणक्य नीति)

भावार्थ –

न कभी पहले हुआ, न कभी सुना, न कभी देखा कि सोने का मृग होता है, तो भी रघुनन्दन राम की उसके लिए तृष्णा हुई इससे सिद्ध हुआ कि–विनाश काल में उनकी बुद्धि उल्टी हो गई थी।।१५।। सोने के मृग का जन्म असम्भव है, तो भी राम जी उसके लोभ में पड़ गये, पता लगा कि विपत्ति काल में मनुष्य की बुद्धि मलिन हो जाती है। अर्थात् आचार्य चाणक्य जी भी उनको परमेश्वर न मानकर एक साधारण मनुष्य ही मान रहे हैं।

नोट –

ये हुई कथाएं अवतारों की, जिनसे साफ पता चलता है कि राम आदि सबको क्लेश हुए इनमें राग और द्वेष भी दिखाई देता है। ये कर्म फल भी भोगते थे, इसलिए ये सब ईश्वर नहीं थे। बल्कि सनातनधर्म के अनुसार तो यह भी सिद्ध होना कठिन है कि–ब्रह्मा, विष्णु, शिव, और दुर्गा इन चारों में से परमेश्वर कौन है ? क्योंकि पुराणों में कहीं ब्रह्मा जी को सबसे बड़ा बताया है, कहीं शिव जी को तो कहीं विष्णु जी ही सबसे बड़े कहे गए हैं, कही शक्ति को ही इन सब पर शासन करने वाली बताई गई है। इतना ही नहीं, कहीं ब्रह्मा की निन्दा लिखी है, कहीं शिव की और कहीं विष्णु की ! अतः क्या सनातनधर्मी बता सकते हैं कि इनमें से उनका ईश्वर कौन है ? ईश्वर के जो लक्षण योग दर्शन में दर्शाये गये हैं, उन पर इन भगवानों में से क्या कोई कसौटी पर पूरा उतरता है ? कस कर देखो ?

योग दर्शन में परमेश्वर के लक्षण –

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुप विशेष ईश्वरः।। २६।।

(योग दर्शन पाद–१, सूत्र २६)

भावार्थ –

अविद्या (विपरीत ज्ञान) **अस्मिता** (अहंकार) राग द्वेप और अभिनिवेष (मृत्यु का भय) ये पांच क्लेश जिनसे सुख और दुख प्राप्त हो वह शुभाशुभ कर्म विपाक कर्म फल आशय (कर्मो की वासना) इनसे सर्वथा रहित पुरुष विशेष **"परमेश्वर"** है।

नोट –

क्या इन लक्षणों पर सनातनधर्मियों का कोई परमेश्वर का अवतार घट सकता है ? कदापि नहीं अतः साफ पता चलता है कि वह परमेश्वर नही थे। परमेश्वर का अवतार कभी होता ही नहीं है। मैं इन बातों को पूर्ण विस्तार से लिखूं तो यह एक विशाल ग्रन्थ बन जायेगा, इसलिए एक–दो बातें जो इस शास्त्रार्थ के मध्य विशेष कर आई थी, उन पर संक्षेप में लिखकर समाप्त करूंगा।

पुत्र (राम जन्मा) जिसकी शक्ति (देवी) की विष्णु ने निन्दा की थी वह सीता बनी सो राक्षस (रावण) के द्वारा हरी गई।

राम (अवतार) के अनेक अज्ञानों का वर्णन –

सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र, प्रभुशक्तिः कुतोगताः ? यद्धेममृग विज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल।।३६।।
योऽपृच्छत् पादयान् मूढः क्वगता जनकात्मजा। भक्षिता वा हृता केन,रुदन्नुच्चतरं ततः।।४१।।
(देवी भागवत पुराण स्कन्ध ४ अध्याय २०)

आगे देखिये–

"यथा हेम मृगं रामो, न बुबोध पुरोगतम् । जानक्या हरणं चैव, जटायुर्मरणं तथा ।।१०।।
अभिषेक दिने रामो, वनवासं न वेद च तथा। न ज्ञानवान् रामो स्वशोकान्मरणं पितुः ।।११।।
अज्ञ वद् विचचारासौ, पश्यमानो वने वने। जानकीं न विवेदाथ, रावणेन हृतां बलात् ।।१२।।
प्रेपयामास सर्वासु, दिक्षु तान् कपि कुंजरान्। संग्रामं कृतवान घोर दुःखं प्राय रणांजिरे ।।१४।।
अदूष्यत्वं च जानक्या, नविवेद जनार्दनः। दिव्यं च कारयामास, ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम् ।।१७।।
लोकाप वादाच्च परं , ततस्तत्याज तां प्रियाम्। अदूष्यां दूषितां मत्वा, सीतां दशरथात्मजः ।।१८।।
न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन, रामेण, च कुशीलवौ। मुनिना कथितौ तो तु, तस्य पुत्रौ महाबलौ।।१६।।
पातालगमनंचैव, जानक्याज्ञातवान् न च राघवः कोपसंयुक्तो।
भ्रातरंहन्तु मुद्युतः कालस्यागमनं चैव, न विवेद खरान्तकः ।।२०।।
(देवीभागवत पुराण स्कन्ध ४ अध्याय २५)

भावार्थ –

विष्णु के अवतार (माने जाने वाले राम की) सर्वज्ञता कहां (हवा खाने) चली गई ? उनकी ईश्वरीय शक्ति कहां (चरने चली) गई ? जब वे इतना भी न समझ सके कि सोने का हिरण भी कहीं होता है ? ।।३६।। वह मूढ़ वृक्षों से पूछता फिरा कि–जनकात्मजा सीता कहां गई ? किसी ने खा लिया या हर ली गई ? ऐसा कह कर ऊंचे स्वर से रोते रहे।।४१।। अपने सामने आगे–आगे जाते हुए सोने के मृग को भी राम ने नहीं पहचाना सीता के हरण और जटायु के मरण का भी राम को ज्ञान न हुआ।।१०।। वह यह भी नहीं जानते थे कि राज्याभिषेक के दिन मुझको वनवास मिलेगा। और वह यह भी नहीं जानते थे कि मेरे शोक के कारण मेरे पिता की मृत्यु हो जायेगी।।११।। वह अज्ञानियों की तरह सीता को वन–वन खोजता फिरा यह भी न जान सका कि सीता को रावण बलात् हरण करके ले गया है।। १२।। बानरों को अपना सहायक बनाया, इन्द्र के पुत्र बाली को अन्याय से मारा, सागर पर पुल बांध कर समुद्र के पार गये।।१३।। सीता को ढूंढ़ने के लिए प्रधान–प्रधान बानरों को सब दिशाओं में भेजा, रावण से लड़ाई छेड़ दी, युद्ध में बड़े–बड़े क्लेश सहे।।१४।। दोष रहित सीता की निर्दोषता को नहीं जान सके और प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कराके उसकी शुद्धता की परीक्षा ली।।१७।। फिर उसी दशरथ पुत्र ने लोकापवाद (बदनामी) के भय से सीता को कलंकनी मानकर वन में छोड़ दिया।।१८।। वे ही राम अपने दोनों पुत्रों लव और कुश को नहीं पहचान सके, महर्षि बाल्मीकि के कहने पर पता लगा कि–यह दोनों उन्हीं के वीर पुत्र हैं।।१६।। सीता जी पाताल में चली जायेंगी, यह भी वह राम नहीं जानते थे, वह रघुनाथ जी क्रोध में भरकर भाई को मारने के लिए उद्यत हो गये थे।।२०।। मृत्यु के आगमन को भी वह खर को मारने वाले राम ने नहीं जाना।।

नोट –

इस प्रकार बहुत से "अज्ञान" राम के देवीभागवत पुराण में गिनाये गये हैं, बाल्मीकिय रामायण के पुराणों से हम भी राम जी के अज्ञान बता सकते थे, हमने ऐसा न करके "देवी भागवत पुराण" से वह दिखाये

श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी का मंत भगवान शंकराचार्य जी के मत के विरुद्ध है

भगवान शंकराचार्य जी के मतानुयायी होकर ईश्वरावतार कैसे मानते हैं ? भगवान शंकराचार्य जी तो ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन) में लिखते हैं कि–"करण वच्चेन भोगादिम्य:"। (वेदान्त दर्शन २–२–४०) इस वेदान्त के सूत्र के भाष्य में लिखते हैं कि–"स शरीरत्वे रिसति संसारविद् भोगादि प्रसंगात् ईश्वररस्यात् नीश्वरत्वं प्रसज्येत्।" अर्थात् ईश्वर के शरीरधारी होने पर अन्य संसारी जीवों की तरह भोगादि का प्रसंग होने से ईश्वर का ईश्वरत्व समाप्त होकर अनीश्वरत्व हो जायेगा। शरीर धारण कर लेगा तो ईश्वर–"ईश्वर" रहेगा ही नहीं। आप तो ईश्वर का अवतार सिद्ध करते हुए ईश्वर को ही खो वैठेंगे। **"चौवे जी गए छब्वे वनने, पर दुबे भी न रहे"।**

कहिये ! आप आद्य शंकराचार्य जी के मतानुयायी है या नहीं ? यदि आप यह घोषणा कर दें कि–मैं आद्य शंकराचार्य जी के मत को नहीं मानता हूं तो इस गद्दी से उतार दिए जायेंगे। और यदि अवतारवाद को नहीं मानोगे तो सनातनधर्मी लोग आपकी पाद पूजा नहीं करेंगे। इसलिए आप दुरंगी चाल चलते हैं।

मुसीवत में पड़ा है सीने वाला सीमे दामां का।
जो यह टांका तो वह उधड़ा, जो वह टांका तो यह उधड़ा।।

तथा – **दुरंगी छोड़ के इक रंग होजा। सरासर मौम हो या संग हो जा।।**

खोदा पहाड़ निकला चूहा ! वह भी मरा हुआ –

भाइयो ! मैं पूर्व पत्रांचारों व व्यवहार से इतना तो अवश्य समझ गया था कि ये स्वामी निरञ्जन देव जी कोई विशेष विद्वान् व्यक्ति नहीं हैं तो भी मैंने सोचा था कि आख़िर शंकराचार्य की पदवी वैसे ही थोड़े मिल गई, परन्तु अब शास्त्रार्थ करने पर पता चला–

बहुत शोर सुनते थे, पहलू में दिल का।
जो चीरा तो एक क़तरा खूं न निकला ।।

मैंने सोचा था कि नियम से दो–चार दिन शास्त्रार्थ चलेगा, कुछ कहने का कुछ सुनने का मौका मिलेगा, परन्तु वहां तो **"खोदा पहाड़ निकला चूहा वह भी मरा हुआ"** दो–चार दिन की बात तो दर किनार–दो–चार मिनट का भी मसाला नामधारी जगतगुरु के पास नहीं था। जिससे उनकी विद्वता का पता चल गया, मुझे वहां शास्त्रार्थ मण्डप में तो इतना कहने का अवसर न मिला था, इसलिए इन प्रश्नों पर मैंने थोड़ा विस्तार से यहां लिख दिया है। अगर इन बातों को पूर्ण विस्तार से लिखूं तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाएगा। इसलिए इसी संक्षेपरूप में लिखी गई सामग्री से ही लाभ उठाईये।

समस्त पौराणिक जगत को मेरा चैलेंज्ज व घोषणा —

जगत गुरु शंकराचार्य कहलाने वाले श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी तीर्थ मेरे द्वारा दिये गये प्रमाणों का खण्डन करने का उत्साह रखते हों तो अवश्य कुछ पुस्तकाकार में लिखें, मैं उसकी भी धज्जियां उड़ाऊंगा। **"श्री स्वामी जी को अगर अब भी शास्त्रार्थ करने का साहस हो तो मेरे साथ अवश्य पत्र व्यवहार करें"।** अवतारवाद, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, वर्ण व्यवस्था, पत्यन्तर विधान, नियोग और विधवा विवाह, द्वैताद्वैत, भागवद् आदि पुराणों की प्रमाणिकता। इन विषयों पर **"मैं शास्त्रार्थ करने को हर समय तैयार हूं"।।**

वैदिक धर्म का –

"अमरस्वामी सरस्वती"

इस शास्त्रार्थ में "अकायम" और "अ" उपसर्ग पर विवाद

१. देखिए आचार्य "उव्वट" क्या कहते हैं ? –

अकायं न विद्यते काय शरीरं यस्य संत द्योक्तः ।।
अव्रणं काम रहित त्वादेवास्नाविरंस्नायुरहितमकायत्वादेव ।।

अर्थात् – "अकायम्" नहीं है काया (शरीर) जिसका ! ऐसा कहा गया है "अव्रणम्" फोड़ा रहित होने से। "अस्नाविरम्" नस नाड़ी रहित "अकायम" होने से ही।।

२. देखिये आचार्य "महीधर" क्या कहते हैं ? –

अकायं न कायः शरीरं यस्य तत्। अकायत्वादेवाव्रणमक्षतम् अस्नाविरं न विद्यन्ते स्नावाः शिरा यत्र तदस्नाविरं स्नायु रहितम् अकायत्वादेव शुद्धमनुण्हतं सत्वरजस्तमोभिः।।

अर्थात् – "अकायम" नहीं है शरीर जिसका। "अकायम्" होने से ही "अव्रण"– अक्षत फोड़ा अर्थात् छिद्र रहित। "अस्नाविंर" नहीं है स्नायु (नस–नाड़ी) जहां वह अस्नाविरं स्नायु (नस–नाड़ी) रहित अकायम् होने से ही शुद्ध सत्, रज, तम से रहित। इन दोनों भाष्यों में "अव्रणम्" और "अस्नाविरम्" दोनों शब्द व्यर्थ नहीं सर्वथा सार्थक वताये हैं। स्पष्ट सिद्ध है कि– जगतगुरु जी ने पढ़ा कुछ नहीं है। और फिर पढ़ें भी क्यों ?

पढ़ना लिखना ब्राह्मण का काम।
भज - भज साधो सीता राम ।।

"अ" उपसर्ग नहीं है –

मैंने यह कहा कि–"अजायमानः" में "अ" नकारार्थ में है, इसमें क्या झूठ है ? उदाहरणार्थ– १. सत्य–असत्य, २. ज्ञान–अज्ञान, ३. ज्ञानी–अज्ञानी, ४. विद्या–अविद्या, ५. विद्वान्–अविद्वान्, ६. नीति–अनीति, ७. रस–अरस, ८. विनाशी अविनाशी ९. न्याय–अन्याय, १०. प्राकृतिक–अप्राकृतिक, ११. जायमान–अजायमान, इत्यादि बहुत शब्दों के साथ जुड़कर "अ" नहीं का अर्थ देता है। इसी भाव से आचार्य महीधर जी ने भी "अजायमान" पद मानकर इसका अर्थ "अनुत्पद्यमान" उत्पन्न न होने वाला किया है। मैंने "अ" को उपसर्ग नहीं कहा, पर यदि "दुर्जनतोष" न्याय से यह मेरी भूल मान ली भी जावे तो क्या इससे "ईश्वरावतार" सिद्ध हो गया ? अतः मेरा दावा है कि एक "जगत्गुरु" तो क्या सैकड़ों जगत्गुरु भी ईश्वरावतार का होना सिद्ध नहीं कर सकते हैं।

श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ को निग्रह स्थान की पहचान –

श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी तीर्थ ने इस शास्त्रार्थ में मुझे कहा कि–"आप निग्रह स्थान में आ गये हैं" इसलिए शास्त्रार्थ समाप्त हो जाना चाहिए। मैंने पूछा कि– मैं किस निग्रह स्थान में आ गया हूं ? स्वामी जी निग्रह स्थान का नाम नहीं बता सके। और गुस्से में भरकर ऊंचे स्वर से बोले–"निग्रह स्थान में आ गये, कौन क्या ?" पता लगा कि– निग्रह स्थान का केवल उन्होंने नाम ही सुना है, वह यह नहीं जानते कि निग्रह स्थान कितने और कौन–कौन से हैं ? उनके लक्षण क्या हैं ? जानते तो किसी एक का नाम लेते।

न्याय दर्शन में निग्रहस्थान है और जो व्यक्ति निग्रहस्थान में न हो और उसको निग्रहस्थान में कोई व्यक्ति बतावे, तो वह स्वयं निग्रहस्थान में आ जाता है। इस प्रकार स्वयं स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ निग्रह स्थान में आ गये, मैं किसी निग्रहस्थान में नही आया था।

इकतालीसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "अजमेर" (राजस्थान)

विषय : क्या ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है ?
दिनांक : ३० जून सन् १६१२ ई॰
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती
(पूर्व श्री पण्डित कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी)
जैनियों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री जैन पण्डित गोपालदास जी वरैया
आर्यसमाज की ओर से सभापति : श्री बाबू मिट्ठनलाल जी वकील
जैनियों की ओर से सभापति : श्री सेठ ताराचन्द जी दिग़म्बरी
उपस्थित मुख्य व्यक्ति : श्री पण्डित दुर्गादत्त जी शास्त्री,
श्री पण्डित शम्भूदयाल जी आदि।

नोट –

यह शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ है। जिसे पटियाला निवासी श्री श्यामलाल जी ने उर्दू में छपा हुआ भिजवाया, इसका हिन्दी अनुवाद श्री पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ने किया, जहां तहां उर्दू के कठिन शब्दों का हिन्दी अर्थ भी कोष्ठक में दिया गया है। मूल प्रति बहुत ही ख़रत्ता हालत में होने के कारण स्वामी जी को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा, हम पूज्य स्वामी जी महाराज के तो कृतज्ञ हैं ही जिन्होंने इस वृद्धावस्था में यह महान परिश्रम कर इस लुप्त सामग्री को जीवित किया, साथ–साथ श्री श्यामलाल जी के भी आभारी हैं जिनके माध्यम से इसकी मूल प्रति प्राप्त हुई।

निवेदक –

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

पदार्थों का उद्देश्य लक्षणों से निश्चित किया जाता है, सृष्टि के बनने में ईश्वर कर्त्तव्य क्या है ? परमाणु में क्रिया और सूर्य–चन्द्रमा आदि की सूरतें रहने से वह उन रूपों में परिवर्तित हो गए, एक स्थान से दूसरे स्थानों में जाने का नाम क्रिया है, जब परमेश्वर से कोई स्थान खाली नहीं है तब इसमें क्रिया कैसे हो सकती है ? जिसमें स्वयं क्रिया न हो वह दूसरे को क्रिया कैसे दे सकता है ? यदि यह माना जावे कि–परमेश्वर ने सृष्टि बनाने की इच्छा की, और परमाणुओं को सूर्य–चन्द्रमा के रूप में बन जाने की आज्ञा दी, और वह आज्ञा पाते ही इन रूपों में बदल गए, तो ईश्वर जीव में कुछ अन्तर नहीं रहेगा। परमाणुओं में भी हरकत (चेतनता) आ जाती है। यदि परमात्मा ने एक–एक परमाणु को पकड़–पकड़ कर जोड़ा तो परमात्मा साकार हुआ, और साकार होगा तो एकदेशी होगा, और उसकी सर्वव्यापकता जाती रहेगी।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

क्रियावान (मुतहर्रिक) ही क्रिया दे, यह कोई नियम नहीं है। चकमक पत्थर स्वयं नहीं हिलता है, पर लोहे को हिला देता है। इससे सिद्ध हुआ कि, क्रिया से क्रिया उत्पन्न नहीं होती है। किन्तु शक्ति से क्रिया उत्पन्न होती है। इच्छा अप्राप्त वस्तु की ही हुआ करती है, कोई वस्तु परमात्मा को अप्राप्त नहीं है। इसलिए परमात्मा में इच्छा नहीं बन सकती। क्रिया अर्थात् हरकत दो तरह की होती है, एक इच्छा के अनुसार अर्थात् इरादे के साथ (बिल इरादा) क्रिया। दूसरी नियम पूर्वक (क़ायदा में हरकत इन्तजामी) (बाक़ायदा हरकत) तथा (बिल इरादा हरकत)। इच्छा पूर्वक क्रिया – यह जीव की होती है, और नियम पूर्वक क्रिया (क़ायदा में) परमात्मा की होती है। ईश्वर में हरकत (क्रिया) स्वाभाविक मानी जाती है। **"स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च"** सृष्टि यानी दुनिया में हर एक हरकत (क्रिया) गैर कायदा या नियम पूर्वक हो रही है ? सूर्य–चन्द्रमा आदि सबमें हरकत बाक़ायदा (नियम पूर्वक) है। वृक्ष आदि के एक–एक पत्ते के अन्दर नियम पूर्वक हरकत (क्रिया) हो रही है। जो अपने नियामक यानि क़ायदा बांधने वाले की ओर संकेत (इशारा) करती है। सृष्टि और जगत दोनों शब्द भी अपने बनाने वाले का निशाना बतलाते हैं। अर्थात् इसकी तरफ़ इशारा करते हैं। अतः पता चला कि सृष्टि वह है जो बनाई गई हो, और जगत् वह है जो चले। न कोई चीज अपने आप चल सकती है और न अपने आप बन सकती है। यह साफ जाहिर हो गया। अनासरों, जर्रात या परमाणुओं में हरकत (क्रिया) नहीं है, इसलिए इस सृष्टि (जगत) का कोई बनाने या चलाने वाला अवश्य होना चाहिए। अगर ज़र्रात (परमाणुओं) में स्वाभाविक–ज़ाती हरकत–क्रिया होती तो इनका मेल नहीं हो सकता था क्योंकि जाती–स्वाभाविक क्रिया (हरकत) वाली वस्तुओं में भेद यानी तफ़ावत हमेशा बना रहता है। जो परमाणु जिस परमाणु से जितनी दूर पर जा रहा था, वह उतनी ही दूर पर रहा आता है। परमाणुओं में कार्य का रूप भी नहीं है, हर एक कार्य में यानी (मालूल) में तीन चीजें होती हैं। एक **"आकृति"** यानी शक्ल दूसरे **"व्यक्तित्व"** यानी जसामत तीसरी **"जाति"** या किस्म मिट्टी में ईंट की शक्ल (आकृति) नहीं है, और न ही ईंट में मकान की आकृति है। तब शक्ल कहां से आई ? हर कोई कहेगा कि ईंट की शक्ल कुम्हार, और मकान की शक्ल इन्जीनियर के ज्ञान से आई। इससे साबित हुआ कि आकृति (शक्ल) कर्ता (फ़ाईल) के ज्ञान से आती है, नेस्ती से हस्ती नहीं हुआ करती (अभाव से भाव अथवा शून्य से उत्पत्ति को कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता), उपादान कारण (इल्लते माद्दी) से जसामत यानी व्यक्तित्व आता है। प्रकृति नित्य है, जगत आकार वाला है, जन्म यानी (पैदा

शुदा) है। साकार पैदा शुदा यानी जन्य होता है। जैसे घड़ा साकार है, जन्य (पैदा शुदा) है। परमाणु इस जगत के आकार वाले नहीं हैं। तब परमाणुओं में यह आकृति कहां से आई ? परमात्मा ने हुक्म दिया और परमाणुओं–यानी ज़र्रात ने सुना यह आर्यसमाज का दावा नहीं है, परमात्मा एक–एक पदार्थ को लेकर जोड़ता है, यह ठीक नहीं है। यह दोष महदूद (एक देशी) और (जवाल पज़ीर) नाशवान पदार्थों में होता है, परमात्मा सर्वव्यापक है, जगत उसके अन्दर है। अन्दरूनी पदार्थ में हरकत देने के लिए हाथ–पांव आदि इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं इसलिए कहा गया था–

"अपाणि पादो जवनो ग्रहीता, पशत्य चक्षुः सः श्रणोत्यकर्णः।"

अर्थात् परमेश्वर के हाथ–पैर नहीं, पर वह चलाता और पकड़ता है, आंख के बिना देखता और कान न होते हुए भी सुनता है। आदि–आदि। अर्थात् वह सब शक्तियां रखता है, शरीर के जख्मों (घावों) को भरने के लिए जो खून (रुधिर) आता है, उसको कौन हाथ से खींचकर लाता है ? कौन सा हाथ रक्त खींच कर लाता है ?

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

चकमक पत्थर में (कशिश) आकर्षण नित्य है, परमाणु नित्य है, ईश्वर भी नित्य है, इसलिए ईश्वर प्रदत्त क्रिया भी नित्य ही रहनी चाहिए। सृष्टि नित्य रहनी चाहिए, सृष्टि और प्रलय दो विरुद्ध बातें हैं। एक क्रिया से संयोग और वियोग दो विरोधी गुण किस तरह हो सकते हैं ? द्रव्य–गुणवान् है संयोग वियोग में गुण होने चाहिए। न्यायशास्त्र का सिद्धान्त है कि, किसी द्रव्य की उत्पत्ति और विनाश नहीं होते हैं तब सृष्टि का विनाश होकर प्रलय कैसे हो सकती है ? कार्य दोष–युक्त होता है। कोई–कोई कार्य (फाइल) कर्ता से होता है। कोई बिना फाईल (कर्त्ता) के। जौ, चना आदि खेत में बोने से होते हैं, पर घास–फूस जड़ी–बूटी आदि बिना कर्त्ता के स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। और यह कहना भी ठीक नहीं कि सृष्टि में कार्य–नियम पूर्वक ही होते हैं, किसी मनुष्य को इन्द्रिय या इन्द्रियों से रहित देखते हैं और किसी को इन्द्रियों या इन्द्रिय वाला, कोई धनवान कोई निर्धन। कार्य–कारण तीन तरह के होते हैं। देखिये– (१) **क्षेत्र व्यतिरेक,** (२) **कालव्यतिरेक,** (३)**अन्वयव्यतिरेक।**

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

परमात्मा का स्वभाव मैंने सृष्टि के आधार पर वेद के अनुकूल क्रिया–बतलाया। ईश्वर की शक्ति से ही हुई क्रिया–नित्य अर्थात् सदा रहने वाली है। संयोग (मिलाप) और वियोग (पृथकत्व) दो विरुद्ध क्रियायें नहीं हैं बल्कि क्रिया के दो फल हैं। क्रिया के दो परिणाम होते हैं, मेल–मिलाप अर्थात् (संयोग) या पृथकत्व अर्थात् (वियोग)। एक गेंद पूर्व की ओर से फेंकी गई, और दीवार से टकराकर लौट आई। इसी तरह जीवों के कर्मों से व्यवधान (पृथकता) से संयोग और वियोग अर्थात् सृष्टि और प्रलय होते हैं।

संयोग और वियोग गुण हैं, लेकिन गुण चार प्रकार के होते हैं, १. स्वाभाविक २. नैमित्तिक ३. उत्पादक ४. पाकज। कर्त्ता की क्रिया से पैदा होने वाला गुण–पाकज होता है। न कोई वस्तु उत्पन्न होती है ? न किसी वस्तु का विनाश होता है। कारण से कार्य रूप में आने का नाम उत्पत्ति है। और कार्य का अपने कारण में मिल जाने या (लय) हो जाने का नाम विनाश है। घास, जड़ी–बूंटी आदि स्वयं उत्पन्न नहीं होती, बल्कि जिस तरह घड़ी के फिनर में चाबी देने से जैसे बाकी पूर्जे चल पड़ते हैं, इसी तरह इस पृथ्वी रूपी घड़ी के सूर्य रूपी फिनर में ईश्वर की शक्ति प्रदत्त क्रिया से अर्थात् ईश्वर की शक्ति के द्वारा दी गई क्रिया से मेघ अर्थात बादल बनता है, वर्षा होती है, घास आदि पैदा होती है। **"ईश्वर में दो गुण हैं"**– ईश्वर दयालु–यानी (रहीम) है और न्यायकारी यानी (मुंसिफ) भी है। इसलिए क्रिया के दो परिणाम हैं। सृष्टि दो तरह की हैं, एक न्याय

यानी अदल और इन्साफ की सृष्टि यानी दुनिया, दूसरी–दया, यानी (रहम) की सृष्टि या उत्पति। दया की सृष्टि में –सूर्य, अग्नि, वायु, जल आदि हैं, जो ईश्वर–दया करके जीवों को उनके कल्याण के लिए देता है। और आंख, कान, धन, माल आदि –न्याय की सृष्टि अर्थात् इन्साफ की सृष्टि है, जो ईश्वर........न्याय करके जिस जीव के जैसे कर्म यानी अफ़आल हैं उस जीव को उसी तरह कमोवेश (न्यूनाधिक) कर देता है। परमात्मा में व्यतिरेक (इम्तियाज या तफ़रीक़) नहीं, परमात्मा के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह फलां देश में है, फलां मुकाम में नहीं, फलां वक्त में था, फलां वक्त में नहीं था। न यह कि फलां चीज के होने से परमात्मा होता है, और उसके नष्ट हो जाने से वह नष्ट हो जाता है

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

गेंद के लौटने की हरकत (क्रिया) फेंकने वाले की नहीं, बल्कि वह हरकत (क्रिया) दीवार से पैदा हुई। और टक्कर लगना उसका हेतु कारण या एक वाइस हुआ। जब परमाणु नियमित मिलने से गतिशील यानी (मुतहर्रिक) होते हैं वह खुद गतिमान (मुतहर्रिक) नहीं। जब ईश्वर अनादि है तो उसकी स्वाभाविक क्रिया यानी जाती फ़ेल से हरकत मिलने के कारण सृष्टि हमेशा रहनी चाहिए, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि–सृष्टि कभी उत्पन्न हुई। उत्पन्न विभाव यानी गैर ख़ासा (अस्वाभाविक) कहा जायेगा, स्वभाव यानी ज़ाती खासा नहीं। इसलिए अनादि हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

श्री पण्डित जी ने अभी कहा था कि क्रियावान यानी (मुतहर्रिक) ही (हरक़त) क्रिया दे सकता है, अब यह कहना कि गेंद के लौटने की हरकत दीवार से पैदा हुई–यह तो वदतोव्याघात यानी अपने वचन को खुद रद्द करना अर्थात् काटना है, जब गैरमुतहर्रिक (क्रिया रहित) चीज़ से हरकत (क्रिया) नहीं आ सकती तो दीवार से हरकत (क्रिया) क्यों कर आई ? ईश्वर नित्य है, उसकी क्रिया यानी हरकत भी नित्य है, संयोग और वियोग–दो क्रियायें नहीं है। मैं पहले ही बतला चुका हूं कि–एक यानी हरकत के संयोग और वियोग दो फल हैं, अर्थात् परिणाम है। एक ही पावर, इन्जन से निकली हुई हरकत (क्रिया) जुदी–जुदी (पृथक–पृथक) मशीनों में जाकर (पृथक–पृथक) काम करती हैं, कहीं काटती है, कहीं जोड़ती है। इस ही तरह दैविक क्रिया यानी ईश्वर प्रदत्त क्रिया एक है, मगर जीवों के कर्मों के सम्बन्धों से होने वाली सृष्टि और प्रलय के कारण भिन्न–भिन्न परिणामों अर्थात् (फलों) वाली जान पड़ती है। जिन परमाणुओं का मेल होगा, उनके लिए यह आवश्यक है कि इनकी पृथकता (वियोग) भी हो, इसलिए सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि होती चली आई है। हम यह नहीं कहते कि सृष्टि कभी (पहले–पहल) उत्पन्न हुई, सृष्टि सदा से ऐसे ही चली आई और ऐसे ही चलती जायेगी। सृष्टि सावयव (मुरक्कब चीजों का मज़मुआ) अर्थात् पदार्थों का समूह है। सावयव पदार्थों की छः अवस्थायें यानी हालतें साफ़ स्पष्ट दिखाई देती हैं। देखिये –**"जायते वर्धते विपरिणम्यते"** अर्थात् हर एक मुरक्कब चीज़ (सावयव वस्तु) पहले पैदा होती है यानी कारण से कार्य रूप में आती है। अर्थात् (इल्लत से मालूल) में आती है। फिर बढ़ती है, फिर उसकी हालत में तब्दीली (परिवर्तन) आती है। अर्थात् उसकी अवस्था में परिवर्तन आता है। परिवर्तन होगा तीसरा विकार, यह तीसरी अवस्था है। जब सृष्टि परिवर्तनशील (क़ाबिले मुतबद्दल) है तो पहली दो अवस्थायें भी वैसी ही अनिवार्य हैं। यह पैदाइश से रहित नहीं हो सकती। क्या वादी कोई ऐसी मिसाल या ऐसा उदाहरण दे सकता है कि–कोई पदार्थ, कोई वस्तु परिवर्तनशील तो हो पर उसकी पैदाइश न होती हो ?

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

मैं विषयान्तर यानी दूसरे मज़मून में नहीं जाना चाहता, स्वामी जी की तरह ! ये स्वामी जी की चालाकी है जो मुझे भी विषयान्तर में घसीट रहे हैं। मैं एक–एक विषय का निर्णय करूंगा, मेरा सवाल यह है कि–ईश्वर का स्वभाव नित्य है। और स्वभाव में अन्तर (फ़र्क) हो नहीं सकता इसलिए सृष्टि सदा बनी रहनी चाहिए। अग्नि का स्वभाव जलाना है, वह हमेशा बना रहता है, इसमें विच्छेद कभी नहीं होता।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

पण्डित जी ! मैं मज़मून (विषय) से बाहर नहीं जाता हूं। हाँ ! आप अपना ख्याल अवश्य रखिये, आपने सृष्टि के उत्पन्न होने के विषय में कहा था, इस प्रश्न का मैंने दलील से उत्तर दिया, दलील देना, दृष्टान्त देना और मानना **"विषयान्तर"** में जाना नही है। मज़मून (विषय) से बाहर जाना इसको नहीं कहा जाता, सृष्टि पहले–पहल बनी यह आर्य समाज का सिद्धान्त नहीं है, आर्य समाज सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है, यह आर्य समाज का सिद्धान्त है, जो सत्य एवं अटल है। सूर्य के बिना रात और दिन नहीं होते इसी तरह सृष्टि और प्रलय का हेतु परमेश्वर है। सृष्टि और प्रलय, यह स्वभाव में विच्छेद नहीं बल्कि हरकत के दो फल हैं। जो जीवों के कर्मों के मेल से होते हैं। सूर्य की एक हरकत (क्रिया) गर्मी देना है, पर जिसका स्वभाव गर्म है उससे उसको दुःख होता है, और जिसका स्वभाव ठण्डा है, उसको सुख अनुभव होता है।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

जब ईश्वर का स्वभाव क्रिया यानी हरकत देना है तो क्रिया हमेशा बनी रहनी चाहिए। ईश्वर प्रदत्त क्रिया को यानी ईश्वर से दी गई हरकत को जीव रोक नहीं सकता, यदि रोक सके तो जीव–ईश्वर से भी बलवान हो गया।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

इन्सान चीज़ों की हरकत को बदलता है, रोकता नहीं, सूर्य की किरण हर रोज़ निकलती है, कोई उनको रोक नहीं सकता, पानी के तेज बहाव को मनुष्य पत्थर आदि लगा कर बदल देता है क्या कोई कह सकता है कि किसी ने पानी के बहाव को रोक दिया ? बदलना भी तो हरकत (क्रिया) है। जीव ईश्वर की प्रजा है, न कि प्रति पक्षी (शरीक या मुखालिफ) पाप–पुण्य नेकी–बदी करती हुई प्रजा, राजा की शत्रु यानी दुश्मन नहीं होती। प्रलय में भी एक क्षर भर के लिए भी क्रिया बन्द नहीं होती है।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

प्रलय में क्रिया यानी (हरकत) नहीं रहती, सृष्टि में भी दीवार आदि को स्थिर देखते हैं। क्रिया यानी हरकत अगर स्वाभाविक होती है तो कहां चली जाती है ?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

सत्य के लिए दृष्टान्त होता है, जीव का स्वाभाविक ज्ञान नित्य है, यानी हमेशा रहने वाला है, सुषुप्ति अवस्था में ज्ञान कहां चला जाता है ? न सुषुप्ति में क्रिया ही नष्ट होती है। पता चलता है कि सुषुप्ति में भीतरी क्रिया (अन्दरूनी हरकत) रहती है, (जागने की हालत में बाहरी क्रिया रहती है)। परमाणु प्रलय में टूटते हैं, परन्तु दीवार आदि में परमाणु प्रत्यक्ष में टूटते रहते हैं। स्वभाव–रूपान्तर यानी दूसरे रूप में होना है, यह रूपान्तर हरकत (क्रिया) के बिना नहीं हो सकता सब पदार्थों में क्रिया (तब्दीली) होती रहती है। बनना और बिगड़ना दोनों स्वभाव नहीं है, जीवात्मा दिन (जाग्रति) में संज्ञान यानी ज्ञान के साथ या इल्म वाला होता

है। रात को (सुषुप्ति में) ज्ञान या इल्म रहित। मगर यह स्वभाव में भेद या फ़र्क कहलाता है। जैसे रोशनी शीशे के रंगों के मुआफ़िक (अनुसार) तब्दील होती दिखायी देती है। वह रोशनी बदलती नहीं है।

नोट –

यहां पर कुछ पाठ कट गया है, छपी पुस्तक उर्दू में अत्यन्त जीर्ण–शीर्ण हालत में थी। जिसको काफी प्रयास करने के बाद भी नहीं पढ़ा जा सका हमें इस बात का खेद है।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

जीव का ज्ञान अशुद्ध और................ **मूल कापी से मैटर गायब**......... हो गया। स्वभाव नहीं रहा मगर ईश्वर का विभाव नहीं............**मूल कापी से मैटर गायब**........... या विरोध भाव नहीं होता। प्रलय और सृष्टि में हरकत एक सी रहती है, क्रिया यानी हरकत मुबद्दल नहीं, यानी तब्दील होने वाली या परिवर्तनशील नहीं, क्योंकि स्वभाव यानी ज़ातीखासा (गुण) है। अगर हरकत हमेशा नहीं रहती तो वह हरकत ईश्वर की दी हुई नहीं हो सकती।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती–

पण्डित जी जरा बतलाईये–(१) जीव में अशुद्धि कैसे आई ? (२) क्रिया में फ़ेल कैसे आये ? (३) परिणाम यानी तब्दीली या नतीजा आदि कैसे ? अग्नि में गर्मी और पानी में सर्दी स्वाभाविक है। कार्य यानी मालूल अनित्य या ज़वालपज़ीर अर्थात् नाशवान् होता है। क्रिया यानी हरकत अनित्य नहीं होती है। घड़ी में हरकत या घड़ी का चलना कर्त्ता प्रदत्त या फ़ाइल से दिया हुआ स्वभाव या फ़ेल है। परिवर्तन (परिणामन्) यानी तब्दील होना आप सबका बतलाते हैं, मगर तब्दीली तीसरा विकार है। क़ाबिल तब्दील या परिणामन् (परिवर्तनशील) चीजों के (जायते) (वर्धते) पैदा होना और बढ़ना–दो कारण होते हैं, यानी दो इल्लत हैं, जब क़ाबिल तब्दीली मानोगे तो पैदा होना और बढ़ना भी मानना पड़ेगा। पैदाइश के बग़ैर तब्दीली नहीं। क्रिया अर्थात् (फ़ेल) की शक्ति नहीं बदलती बल्कि कार्य यानी मालूल बदलता है। आप एक मिसाल तो दीजिये जिसमें तब्दीली अर्थात (परिणामन्) हुआ हो। मगर इस चीज का पैदा होना साबित न हो।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

स्वभाव अर्थात् ख़ासा नित्य या हमेशा रहने वाला है। जब क्रिया अर्थात् हरकत ईश्वर का स्वभाव है, तो सृष्टि काल में जो सूर्य आदि नजर आते हैं, वे प्रलय के वक्त क्यों नहीं रहते ? आप बार–बार विषयान्तर (दूसरे मज़मून) में आ जाते हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

क्रिया के फल अर्थात् नतायज संयोग और वियोग या मिलाप और अलहदगी दोनों हैं, संयोग सृष्टि अर्थात् पैदायशी दुनिया और वियोग, प्रलय या क़यामत है। स्वाभाविक क्रिया अर्थात् ज़ातीहरकत बाक़ायदा होती है। व भाषिक क्रिया अर्थात् ग़ैर ख़ासा जो ज़ाति न हो बल्कि आरज़ी हो, ऐसी हरकत या हस्ब–इरादा या इच्छा पूर्वक होती है। सूर्य आदि दया की सृष्टि है, और चक्षु या आंख, कान आदि न्याय इन्साफ़ की सृष्टि है। और हां ! दृष्टान्त या मिसाल मांगना मज़मून (विषय) से बाहर (विषयान्तर में) जाना नहीं है।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

प्रलय के परमाणु अर्थात् ज़र्रात मिलाये जावेंगे तो स्थिति अर्थात् क़ायमी साबित हो गई, अगर कुल परमाणुओं में क्रिया आ गई तो फिर वे मिलने नहीं चाहिये, चकमक–पत्थर, लोहे को खींचता ही है, हटाता नहीं। अगर कोई जबर्दस्ती हटा दे तो वह इसका कार्य या काम शुमार होगा या कहा जायेगा। संयोग और

वियोग एक हरकत से नहीं होते, व्यवधान अर्थात् कमी आने पर वियोग होता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

वाह ! वाह !! मिसाल भी दी तो क्या दी ? चकमक पत्थर की ! पण्डित जी महाराज मिसाल गी अर्थात् हरकत की नहीं मांगी गई, बल्कि मिसाल इस बात की मांगी गई है कि कोई चीज ऐसी नहीं जो तब्दी तो होती हो, पर पैदा न होती हो। ऐसी मिसाल दीजिये। चकमक पत्थर इसकी मिसाल नहीं। तब्दीली नि अर्थात् हमेशा रहने वाले पदार्थो में होती ही नहीं। पानी की हरकत को पत्थर रोकता नही इसलिए पत्थ जोरदार नहीं हो सकता कोई चीज पैदाशुदा (उत्पन्न होने वाली) न हो और काबिले तब्दीली (परिवर्तनशील हो इसकी अगर कोई मिसाल हो तो दीजिये।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

मैं बहरा होने के बाअस (कारण) सुन नहीं सका (दूसरे ने बताया) सब चीजें नित्य हैं। कोई क पैदा नही हुआ, किसी चीज की पैदाईश या नाश, न्यायशास्त्र के खिलाफ़ है। वस्तुओं (चीजों) का अवस्थान्त होता है अर्थात दूसरी हालत में हो जाना। परमेश्वर में भी विकार है, कभी सृष्टि को बनाता है कभी दुनिय को बिगाड़ता है, प्रश्न मेरा यह है, अगर परमेश्वर ने स्वभाव से क्रिया अर्थात् हरकत दी तो भी क्रिया अर्था हरकत दी हुई चीजों में संयोग या मिलाप नही होना चाहिये, वह तो एक ही तरफ़ दौड़ते चले जाने चाहिये

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

ईश्वर सर्वव्यापक है, सब पदार्थ उसके अन्दर है, अन्दर के पदार्थो में दिशा–भेद नहीं, एक तरप से हरकत नहीं दी जा सकती, रूपान्तर प्रतिपत्ति परिणाम है। शक्ल में तब्दीली होने को परिणाम कहते हैं और अवयवान्तर प्रतिपत्ति विकार है।अर्थात् परमाणुओं में कमोवेशी होना विकार कहलाता है। प्रकृति अवस्था है, द्रव्य नहीं ईश्वर में रूप नहीं, इसलिए रूपान्तर नहीं।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

एक स्वभाव के दो विरोधी गुण नहीं हो सकते, ईश्वर अखण्ड है, जिसके टुकड़े नही हो सकते, एक क्रिया की दोनों तरफ़ से हरकत नहीं, क्या दोनों हाथों से परमात्मा हरकत देता है ?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

अन्दर की हरकत के लिए यह नियम नहीं है, ज़ख्म अर्थात् घाव भरने के लिए किसी इन्द्रिय या हवास की जरूरत नहीं है, पेट में मल्ल (गन्दगी) अर्थात विष्ठा है, मगर बदबू नही मालूम होती। परमात्मा विभु है, अन्दर–बाहर सब जगह मौजूद है। इसमें दिशा का भेद नहीं हो सकता, यह ख़राबी–परिछिन्न (ज़बाल–पज़ीर) में हो सकती है, ईश्वर को आपने परिणामी बताया था, तो परिणामी की शक्ति तो बदली गई। और अखण्ड की शक्ति नहीं बदलती, तब्दीली आ गई तो खण्ड–खण्ड हो गया। अखण्ड वो होता है जिसके टुकड़े न हो सकें, जो टुकड़े–टुकड़े हो गया ? वह अखण्ड कैसे रहा ? अखण्ड को अगर परिणामी कहो तो आप ईश्वर के स्वरूप को ही नहीं समझे। स्वरूप को समझे बिना उसके गुणों का ख़याल किस तरह हो सकता है ? जब ईश्वर को अखण्ड बतलाते हो तो कोई जन्म या पैदाशुदा चीज़ ऐसी बतलाइये जिसमें कोई परिवर्तन न होता हो, या जिसमें परिवर्तन होता हो परन्तु वह पैदाशुदा न हो। ऐसी मिसाल मांगी थी, आप नहीं दे सके।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

स्वभाव एक जैसा होता है, हरकत भी एक जैसी होनी चाहिए, अन्दर की हरकतों में भी दो

विरोधी दिशाओं में हरकतें नहीं हो सकती। अखण्ड और परिणामी में भेद नहीं है। अखण्ड उसे कहते हैं जिसके टुकड़े न हों रूपान्तर या दूसरी शक्ल में परिणाम होता है, जिसे खण्ड या टुकड़े नहीं कहा जा सकता, जीव भी कभी घोड़ा होता है, कभी चिऊंटी (चींटी) होता है, चींटी से घोड़ा होना जीव का रूपान्तर होना या तब्दीली शक्ल होना साबित करता है खण्ड–खण्ड या टुकड़े होना नहीं। मेरा सवाल फिर वही रहा है कि दो विरोधी दिशाओं में एक क्रिया नहीं हो सकती।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

अन्दरूनी हरकत चक्करदार होती है, इसमें दिशा–भेद नहीं है। दृष्टान्त से अपने वचन को सिद्ध कीजिए। घोड़ा हाथी–चींटी आदि की दलील कमज़ोर दलील है। घोड़ा आदि जिस्म (शरीर) बनता है, न कि जीवात्मा ! एक आदमी जो महल में बैठा हुआ है, उसे अगर जेलखाने में बिठला दिया जावे तो उसकी अवस्था अर्थात् हालत में फ़र्क हो, जायेगा, न कि उसके जीव में। शरीर और जीव एक नहीं, शरीर मकान है, जीव (मकीन) अर्थात् मकान में रहने वाला, मकान बदलता है, उसमें रहने वाला नहीं बदलता, एक मनुष्य जो बड़े भारी कमरे में बैठा हुआ है, अगर उसको एक छोटी–सी कोठरी में बैठा दिया जावे, तो क्या जीव की शक्ल बदलेगी ? कभी नहीं। हाथी, घोड़ा, शरीर में परिवर्तन अर्थात् तबदीली है, किसी चीज की शकल आकाश और वायु के निकल जाने से बदलती है। गेंद को दबाया उसके अन्दर से आसमान और वायु निकल गया, अर्थात् कुछ कम होने से खण्डन होता है, जीव में से कुछ भी भाग (हिस्सा) कम नहीं होता, इसलिए इसका खण्डन नहीं होता, इसी वास्ते जीव परिणामी नहीं, अपरिवर्तन शील हैं सूक्ष्म अर्थात् लतीफ़ में कशीफ़ अर्थात् स्थूल के गुण नहीं आ सकते, लोहे में अग्नि आती है, अग्नि में लोहा नहीं आता, आग में पानी की सर्दी नहीं आ सकती, मगर पानी में अग्नि की गर्मी आती है। इसलिये सूक्ष्म पदार्थ में स्थूल के गुण नहीं आ सकते, जीव और परमात्मा सूक्ष्म है। चेतन सबसे सूक्ष्म अर्थात् लतीफ़ है, इसलिए उनमें रूप या शक्ल नहीं, जब रूप नहीं तो रूपान्तर कैसा ?

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

एक रूप से दूसरे रूप अर्थात् दूसरी शक्ल में होना परिणाम है। रूप का अर्थ वर्ण नहीं बल्कि स्वरूप है, और जीव जब क्रोधी हुआ तब उसका रूप बदल गया, जब क्षमावान हुआ तब दूसरा रूप हो गया, यह शरीर का रूप बदलना नहीं कहा जा सकता, जीवात्मा का रूप बदलना है। और ऐसा न माना जावे तो मुर्दे शरीर का रूप क्यों नहीं बदलता ? इस वास्ते अखण्ड जीव में भी परिणाम होता है। आकाश सर्वव्यापी है, निकल कहां गया ? आकाश जहां का तहां मौजूद है। एक चीज दूसरी चीज नहीं हो सकती। प्रकृति के परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता, घट (घड़ा) आदि में न कोई दूसरी चीज़ आती है और न जाती है। हमारे मत में तो जीव ही परमेश्वर हो जाता है। और परमेश्वर ही जीव हो जाता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

रेल में बैठे हुए हम रोज़मर्रा (नित्य) कहा करते हैं कि अजमेर आ गया, लाहौर आ गया, आगरा आ गया, मगर क्या दर हकीक़त (वास्तव) में यह शहर आते हैं ? नहीं ! कभी नहीं !! यह कौल (कथन) औपचारिक प्रयोग है, आकाश का निकल जाना भी औपचारिक प्रयोग है, अर्थात् (ताल्लुकात) सम्बन्ध से वह बात कहना जो दूसरे के अमल (व्यवहार) से ताल्लुक (सम्बन्ध) रखती हो। जब जीव ईश्वर होकर सिद्ध शिला पर हमेशा के लिए लटका रहा तो ईश्वर, जीव कैसे हो सकता है ? जीव ईश्वर हो जाता है, यह ख्याल (विचार) कमजोर है, ईश्वर कहते हैं ऐश्वर्य वाले को, और सब शक्तियां रखने वाले को, पर जैनियों का जीव

तो वीतराग होता है, जिसके पास कुछ न हो, उसे वीतराग कहते हैं। जिसके पास कुछ हो ही नहीं उसे ईश्वर कैसे कह सकते हैं ? फ़कीर को ईश्वर बतलाना अक़लमन्दी (बुद्धिमता) नहीं है। परमात्मावाचक जितने शब्द हैं उनके अर्थो से वीतराग का मेल कभी नहीं हो सकता। विष्णु शब्द का अर्थ है कि जो सब में व्यापक हो, एकदेशी अर्थात् (महदूद) न हो मगर जैनियों का जीव हालत नजात (मुक्तावस्था) में शरीर से निकलकर उर्ध्वगमन (ऊपर को जाता हुआ) सिद्ध शिला से जाकर लग जाता है, जिससे उसका एक देशी होना स्पष्ट सिद्ध है जब एक देशी अर्थात महदूद हुआ तो विष्णु कैसे ? इसी तरह महेश और ब्रह्मा आदि शब्दों का अर्थ करने से वीतराग के लक्षण नहीं मिलते। अगर वीतराग जीव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, परमात्मावाच्य ईश्वर बन जाता है तो लफ़ज़ी तर्जुमा (शाब्दिक अर्थ) करके लक्षण अर्थात् तारीफ़ बताओ, सिर्फ कहने से काम नहीं चलता।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

"जीव चेतन लक्षणत्वम् गुण समुदायो द्रव्यम्" कारमाण ।
वर्गणार्ये पुद्गल स्पर्श रस रूप लक्षणत्वम् ।।

अर्थात् – द्रव्य अर्थात् जौहर (मज़मुआसिफ़ात) अर्थात् गुणों का समूह होता है। चेतन सिफ़ात (गुण) वाला जीव है, स्पर्श स्वादरूप (शकल) लक्षणों वाला पुदगल है, **"कारमाण दुर्गुणाय"** सारी दुनिया में फैली हुई है, राग और द्वेष आदि से जब कारमाण दुर्गुणाय खीचती हैं तब कर्म होता है, और साबिका (पूर्व) किये कर्मो से राग–द्वेष आदि का अनादि से सम्बन्ध है।

नोट –

सभापति अर्थात् मीर मजलिस ने पण्डित जी को रोक दिया, तथा निर्देश किया कि पण्डित जी महाराज आप मज़मून (विषय) से बाहर न जाइये। तब वादी अर्थात् मौहतरिज ने सवाल किया कि क्या ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है ? इतना कह कर बैठ गए। ....यहां मूल कापी से मैटर गायब है ....

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

जगत वह है जो चले और सृष्टि उसे कहते हैं जो बनाई गई हो, कार्य क्रिया अर्थात् हरकत से होता है, हरकत क्रिया बिना फ़ाइल (कर्त्ता) के होती नहीं इसलिए सृष्टि का कर्त्ता अर्थात् फ़ाईल खुद ब खुद साबित है। फ़ाइल (कर्त्ता) दो किस्म (भांति) के होते हैं, एक स्वाभाविक तथा दूसरा नैमेत्तिक, नियम पूर्वक, बतौर कायदा, हर एक चीज संयोगयुक्त है, इसलिए संयोग का देने वाला या करने वाला कर्त्ता अर्थात् फ़ाइल होगा। हर एक फूल–पत्ते आदि चीजों में जो बनावट या सिनअत है वह शाने या बाक़ायदा फ़ेल करने वाले फ़ाइल का इजहार कर रही है। ग्रहण आदि बाक़ायदा अर्थात् नियम से लगते हैं। फ़ेल का फ़ाइल (कार्य का कर्त्ता) बग़ैर चेतना या दर्श्व रखने वाले के हो नहीं सकता इसलिए साबित है कि सृष्टि का कर्त्ता चेतन ईश्वर है।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

फ़ेल बिना फ़ाइल के नहीं होता यह सवाल ठीक नहीं, अर्थात् (कार्य बिना कारण के नहीं होता) यह सवाल ठीक नहीं, घास–फूंस आदि खुदरो (स्वयं पैदा होने वाले) हैं। इन्हें कोई नहीं बोता, हरकत (क्रिया) स्वभाव से है तो प्रलय में क्रिया (हरकत) क्यों नहीं होती ? कितने ही फ़ैल (कार्य) फ़ाइल (कर्त्ता) से पैदा होते हैं, कितने ही बिना फ़ाईल के, देखिये स्वामी जी महाराज ! जौ, चना आदि कर्त्ता से पैदा होते हैं, घास फूंस बिना कर्त्ता के।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

पण्डित जी ने सृष्टि का कर्त्ता मान लिया, घांस–फूंस आदि सूर्य के आकर्षण अर्थात् (कशिश) और पानी के

कारण से होते हैं। यह मैं पहले ही कह चुका हूं। बिना फ़ाइल (कर्त्ता) के सृष्टि का उदाहरण दीजिए। घड़ी बिना चलाये नहीं चलती। ईश्वर के सब काम क़ायदे के अन्दर हैं, अन्दर की हरकत (क्रिया) में दिशा भेद (तफ़रीक सिम्त) नहीं होता। लेकिन वह हरकत चक्र में होती है। ग्रहण आदि नियमपूर्वक कर्त्ता का इज़हार कर रहे हैं, इसका आपने जवाब नहीं दिया।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

मैंने सृष्टि का कर्त्ता कबूल (स्वीकार) नहीं किया, मैनें यह कहा था कि कार्य दो तरह से होते हैं:एक फ़ाइल के जरिये दूसरे बिना फ़ाइल के। बिना चेतन के भी फ़ाइल यानी कर्त्ता हो सकता है, जैसे सूर्य !

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

एक शय (वस्तु) की दो मुख़तलिफ़ हरकात यानी (विरोधी क्रियायें) हो सकती हैं, एक जीव, जिसके स्वभाव में गर्मी अधिक है, उसको सूर्य से कष्ट होता है, और जिसके स्वभाव में गर्मी कम है, सर्दी अधिक है उसको सूर्य से सुख होता है, इसमें सूर्य.........यहां मूल कापी से मैटर गायब है : ....सूर्य की क्रिया में भेद नहीं हैं। फल में भेद है। मैने बताया था कि भीतरी क्रियाओं में दिशा भेद नहीं होता। ....यहां मूल कापी से मैटर गायब हैं............मिलने के स्वभाव वाले पदार्थ जब एक दूसरे के सामने आते हैं तो एक दूसरे से मिल जाते है। आग का स्वभाव संयोग (मिलाना) वियोग (अलग करना) हुआ, आग की हरकत स्वाभाविक है। ईश्वर बाहर से हरकत नहीं देता, वह आग की तरह अन्दर से हरकत देता है। क्योंकि वह परमाणु अर्थात् जर्रा–जर्रा में व्याप्त अर्थात् मौजूद है। हरकत संयोग–वियोग में रहती हैं। हरकत जाती नहीं। हमेशा बनी रहती है। हरकत (क्रिया) के दो फल साफ ज़ाहिर (स्पष्ट प्रकट) हैं। सूर्य की एक क्रिया के दो फल सुख और दुःख दोनों हैं।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

सुख–दुःख देना सूर्य का स्वभाव नहीं है, इसका स्वभाव गर्मी देना है, अग्नि के परमाणु सबमें मौजूद हैं; इसलिए वह खण्ड पदार्थ हैं। खण्ड पदार्थ का उदाहरण–अखण्ड परमात्मा में नहीं घट सकता। साइंस (विज्ञान) भी ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानती, साइंस–चीजों के स्वभाव से सृष्टि मानती है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

सुख और दुःख अपने स्वभावानुसार पाये जाते हैं, सांइस भी हर एक चीज का सबब (कारण) मानती है, जिससे सृष्टि का हेतु–अर्थात् सबब–परमात्मा साबित होता है। अग्नि की दलील–कमजोर नहीं, मिसाल धर्म में दी जाती है, अग्नि परमाणुओं जर्रो में मौजूद है, वह चारों ओर से हरकत (क्रिया) देती है, ईश्वर भी सारे विश्व में मौजूद है, देगची में गर्मी, एक देशी नहीं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में परमात्मा भी एकदेशी नहीं, इसलिए अग्नि का उदाहरण, विषम अर्थात् कमजोर नहीं। आप धान और चावल का उदाहरण (दृष्टान्त) जो कि भिन्न–भिन्न समय अर्थात् (मुख्तलिफ औक़ात) में पैदा होते हैं, अनादि के साथ कैसे दे दिया करते हैं ? चावलों को जो क्रिया (हरकत) मिलती है वह भी अन्दर की क्रिया (हरकत) है। और सृष्टि की हरकत (क्रिया) भी परमात्मा अन्दर से देते हैं।

जैन पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया –

स्वामी जी महाराज ! दृष्टान्त सब देशों में नहीं मिलता (घटता)। ईश्वर एक है, इस अग्नि में दो मुख्तलिफ़ (भिन्न–भिन्न) हरकात (क्रियाऐं) हैं। ईश्वर एक पदार्थ है, अग्नि के परमाणु (मुख्तलिफ़) भिन्न–भिन्न होते हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, विषय धर्म (गुण कर्म) मिलाने के लिए धान का दृष्टान्त दिया गया था। ....यहां मूल कापी अधिक जीर्ण होने के कारण मैटर नहीं पढ़ा गया है..................।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती –

अग्नि एक है दो नहीं, जहां इख्तिलाफ़ न हो वहां दृष्टान्त घटता है, हमेशा पंडित जी इस बात को अपने ज़हन (दिमाग) में रक्खो। ईश्वर विभू है इसलिए वैशम्य (कमी–वेशी) या इख्तिलाफ़ नहीं, हरकत देने की ईश्वर और अग्नि दोनों में बराबरी है, हरकत क्रिया या तो अग्नि से आयेगी या ईश्वर से। इसलिए अग्नि शब्द ब्रह्म के नाम में भी आता है, अग्नि और ईश्वर के धर्म विषम अर्थात् मुख्तलिफ़ (भिन्न–भिन्न) हैं, ये किसी शास्त्र से साबित कीजिए।

शास्त्रार्थ के अन्त में –

स्वामी जी महाराज के बोलने के बाद ५ मिनट रह गये, तो यहीं पर श्री बाबू मिट्ठनलाल जी ने शास्त्रार्थ बन्द करने का आदेश देकर तभी सरकार (अंग्रेज़ी सरकार) का धन्यवाद किया, जिसके राज्य में शान्तिपूर्वक यह शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ।

शास्त्रार्थ का नतीजा (परिणाम) –

शास्त्रार्थ के अन्त में सभा के बीच में ही वहां उपस्थित श्री पण्डित दुर्गादत्त जी शास्त्री, और श्री पण्डित शम्भुदयाल जी ने जैन धर्म छोड़ने की घोषणा कर दी, एवं अगले दिन बाक़ायदा उनको वैदिक धर्म की दिक्षा दी गई। और उन्होंने जैन धर्म का सदा के लिए परित्याग कर दिया। इन व्यक्तियों ने जब सभा में ऐसी घोषणा की तो जैन समुदाय को मानो सांप सूंघ गया हो, सारे जैन समुदाय में उदासीनता की लहर फैली हुई थी। एवं सभी जैन समाज बैठा हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इनका कोई अपना सगा मर गया हो और उसका बैठकर सभी **"चौथा"** मना रहे हों।

नोट –

श्री स्वामी जी नें शास्त्रार्थ जारी रखने के लिए जैन पण्डितों से बार–बार आग्रह (तकाज़ा) किया मगर उन्होंने यह कह दिया कि आप सन्यासी हैं हम गृहस्थी हैं हमें पेट की भी फिक्र है। शास्त्रार्थ होता हुआ जब न देखा तो स्वामी जी एक दिन ठहरकर पंजाब चले गये लेकिन जिस कारण हमारे जैनी भाई खिसिया रहे थे उन्होनें मैदान खाली देखकर फिर शास्त्रार्थ का चेलेंज दिया। इत्तफ़ाक से सिकन्दराबाद गुरुकुल के अध्यापक **"श्री पण्डित यज्ञदत्त जी शास्त्री"** यहां आ गये और उन्होंने बेखौफ़ होकर हौंसले से जैन सभा में जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और रात के डेढ़ बजे तक वह संस्कृत में शास्त्रार्थ* करते रहे और प्रातः काल तक शास्त्रार्थ करने की तैयारी दिखायी। मगर कर्म द्रव्य है या गुण ? द्रव्य है तो उसका गुण क्या है ? सुख और दुख एक विरोधी गुण एक द्रव्य में हो नहीं सकते–यदि गुण हैं तो किस द्रव्य का ? इस प्रश्न पर जब जैन पण्डित कोई उत्तर न दे सके तब मीर मजलिस (सभापति) जी ने शास्त्रार्थ बन्द कर दिया। इससे जैनी लोग और भी खिसिया गये और फिर लेखबद्ध शास्त्रार्थ के लिए नोटिसबाजी आरम्भ हुई श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज पंजाब जाते–जाते दिल्ली से ही लौटा लिये गये शास्त्रार्थ सुनने के लिए भीड़ बहुत इकट्ठी हो गई थी शास्त्रार्थ में शान्ति रखने का उत्तरदायित्व जैनी लोग किसी प्रकार भी लेने को तैयार नहीं हुए इसलिए शास्त्रार्थ नहीं हुआ।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"

---

* श्री पण्डित यज्ञदत्त जी के साथ संस्कृत में किये गये शास्त्रार्थ का विवरण प्रयास करने पर भी प्राप्त नहीं हो सका।
"सम्पादक"

बयालीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "मक्खनपुर", जिला मैनपुरी (उत्तर प्रदेश)

वैदिक पुस्तकालय

दिनांक : २१ मार्च सन् १६१२ ई॰ (अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक)
विषय : इस्लामी सिद्धान्तों की सच्चाई ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्यमुसाफिर
शास्त्रार्थकर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलवी अबुलफ़रह साहिब, पानीपती
सहायक : श्री मौलाना अब्दुल मज़ीद साहिब
मीर मज़लिस अर्थात् शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता, रिटायर्ड–तहसीलदार डाईरैक्टर,–ग्लास मैन्युफैक्चरिंग — फैक्टरी लिमिटेड, मक्खनपुर (उत्तर प्रदेश)

तमहीद् अर्थात् (भूमिका)

मुवज्जिज़ नाज़रीन। इन चन्द वर्कों को मैं आपके पेशे नज़र करना चाहता हूं। इसके लिये मैं कि लम्बी–चौड़ी भूमिका लिखने की आवश्यकता नहीं समझता, मैं चाहता हूं कि आपको एक मिनट भी इ दिलचस्प लैक्चरों की इन्तज़ार न करा के असल विषय आरम्भ कर देता। लेकिन मुझे सन्देह है कि हम बहुत से भाई मेरी इस भूमिका को लिखना आवश्यक समझेंगे। और शायद उन्हें इन लैक्चरों को ठीक समझ न आवे, इसलिए मैं मजबूर हूं। कि मैं आपको बतलाऊं कि **"मक्खनपुर"** जिला मैनपुरी में ए छोटा–सा कस्बा है। यहां पर सिर्फ़ चन्द घराने आर्य पुरुषों के हैं, जिसमें चौधरी रामफल साहब ज़िक्रे काबि हैं। इस साल सामाजिक पुरुषों ने हमेशा की तरह अपना उत्सव निश्चित करके जोर–शोर से तैयारि आरम्भ की। हमारे मेहरबान–मुसलमान भाईयों ने भी उत्सव की सूचना पाते ही इन्हीं तारीखों में अपन उत्सव भी रख दिया। और लगे मुकाबले के लैक्चर होने। नौबत यहां तक आई कि मुबाहिसा (शास्त्रार्थ तक बात पहुंच गई। और सारे इलाके में शास्त्रार्थ की ख़बर बिजली की तरह फैल गई। लोग बहुत संख्य में आने आरम्भ हो गये। यहां तक कि हमारे अक़लमन्द मुसलमान भाईयों ने मनादी तक भी करा दी कि–आज मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) आर्य समाज से होगा। हालांकि उस समय तक शास्त्रार्थ का कोई पूर्ण निश्चय नहीं हुआ था, न ही नियम आदि तय हुए थे। उन्होंने पहले ही मुनादी करवा दी। शास्त्रार्थ की चर्चा हुई तो आगरे से श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर साहिब जी को शास्त्रार्थ के लिए बुलवाया। डाक्टर साहब ने मौके पर पहुँचकर अपने विपक्षी मुसलमान भाइयों को ललकारा और मुकाबले में शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दे दिया।

डाक्टर साहिब की शक्ल देखकर अंजुमन इस्लामियों में एक सन्नाटा–सा छा गया, तरह–तरह के बहाने मुसलमान भाई बनाने लगे। लेकिन हिन्दू ! मुसलमानों का शास्त्रार्थ के लिए बेहद शौक देखकर एक लम्बी–चौड़ी वार्तालाप के बाद जिसका लिखना यहां पर व्यर्थ है। डाक्टर साहब ने आखिर अपने मुसलमान भाईयों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर ही लिया।

दो सम्मानित सरकारी अधिकारियों के सामने, बहुत बात–चीत के बाद शास्त्रार्थ हेतु नियम आदि निश्चय किये गये, जिनके आधार पर शास्त्रार्थ करना तय हुआ। जिनमें से कुछ मुख्य नियम नीचे दिये जाते हैं जो इस प्रकार थे।

१. शास्त्रार्थ दिन में दो बजे से पांच बजे तक, और शाम को सात बजे से नौ बजे रात्रि तक होगा।

२ पहले आर्य समाज इस्लाम पर ऐतराज करेगा, फिर दूसरे वक्त इस्लाम–आर्य समाज के सिद्धान्तों पर ऐतराज करेगा।

३. आर्य समाज के दस नियम हैं। जिनकी कापी दी जावेगी।

४. शास्त्रार्थ के बीच में कोई भी शास्त्रार्थकर्ता एक दूसरे को अपनी ओर से सभ्यता के विरुद्ध, या कोई अपशब्द नहीं बोल सकेगा। अगर गवाही के लिए किसी पुस्तक को पढ़ना पड़े, और पुस्तक में ही ऐसी इबारत (पाठ) मौजूद हो तो उसके पढ़ने पर कोई ऐतराज न होगा।

५. इस्लाम, केवल–कुरान, हदीस मुस्लिम, (प्रामाणिक) को प्रमाण रूप में स्वीकार करेगा। और आर्य समाज चारों वेद, छः शास्त्र, उपनिषद प्रमाण रूप में मानेगा।

६. शास्त्रार्थ के प्रधान को अधिकार होगा कि–शास्त्रार्थकर्त्ता में से कोई भी अगर एक दूसरे को भड़कायेगा तो शास्त्रार्थ बन्द कर दे।

नोट –

शेष कुछ नियम– समय व प्रबन्ध के सम्बन्ध में थे। जिनको यहां लिखना व्यर्थ है।

मक्खनपुर के सम्मानित रईस जिनके सम्बन्ध दोनों पक्षों से एक जैसे ही थे। अर्थात् (निष्पक्ष) थे। काफ़ी विचार विमर्श के बाद श्री बाबू रामसरूप साहिब गुप्ता डाईरैक्टर ग्लास मैन्युफैक्चरिंग फैक्टरी (लिमिटेड) मक्खनपुर, निश्चित हुए। जिनको दोनों पक्षों ने ही मिलकर चुना था। आर्य समाज की तरफ़ से श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी साहब और अहले इस्लाम की तरफ़ से श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब पानीपती **"शास्त्रार्थकर्त्ता"** के रूप में निश्चित हुए। और अन्त में इन शर्तों पर शास्त्रार्थ होना इक्कीस मार्च को तय हुआ। जिसके विवरण का पता मुबाहिसा करने वालों की तक़रीरों से अच्छी तरह लगेगा।

निवेदक–

" तारादत्त-एडवोकेट "

शास्त्रार्थ से पहले

शास्त्रार्थ का इन्तजाम एक बड़े खुले अहाते में किया गया। जो शामियानों से ढ़का हुआ था, पन्द्रह–पन्द्रह क़दमों की दूरी पर दोनों पक्षों अर्थात् इस्लाम व आर्यसमाज के प्लेटफार्म बड़ी खूबी से तैयार किये गये थे। दोनों प्लेटफ़ार्मो के बीच एक तरफ़ बड़ी मेज रखी गई, जिसके आगे कुर्सियों पर जनाब प्रधान जी, तहसीलदार साहिब, कोतवाल साहिब, आदि बैठे हुए थे।

हर एक प्लेट फ़ार्म पर शास्त्रार्थकर्त्ता की कुर्सी बीच में नियत की गई एवं उसके दोनों तरफ चार–चार, पांच–पांच कुर्सियां और रक्खी गई, जिन पर शास्त्रार्थकर्त्ता के अलावा अन्य सम्मानित व्यक्ति व अधिकारीगण एवं अन्य उपदेशक विराजमान थे। आर्य समाज के प्लेट फ़ार्म पर डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी के अलावा अन्य एक स्वामी जी साहब व अन्य उपदेशक तथा श्री पण्डित शान्ति स्वरूप जी भी मौजूद थे। और इस्लामी प्लेटफ़ार्म पर, मौलाना मौलवी अबुलफ़रह साहब तथा अब्दुल हमीद अफ़ज़ल, मुनाज़िर (पानीपती) के अलावा अंजुमन हिदायत लमुसलमीन देहली के चार–पाँच आलिम फ़ाज़िल मौलवी साहिबान् तशरीफ फ़रमा थे। हाज़रीन (श्रोताओं) की तादाद चार–पांच हजार से कम न होगी। और तमाम मैदान खचाखच लोगों से भरा हुआ था। मकानात की छतों पर स्त्रियों का जबर्दस्त हज्जूम जमा हुआ था। पहले साहब प्रैजीडैण्ट जलसा ने खड़े होकर बुलन्द आवाज में शास्त्रार्थ के नियम सुनाए। और थोड़ी सी प्रार्थना की कि–शास्त्रार्थ के नियमों का पालन करें। और डाक्टर साहिब से जिन्होंने पहले ऐतराज करने थे, उनको लैक्चर शुरू करने अर्थात् शास्त्रार्थ आरम्भ करने के लिये अर्ज़ अर्थात् प्रार्थना की। और यथा स्थान पर बैठ गये।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर –

श्रीमान् प्रधान जी ! एवं सम्मानित अन्य अधिकारीगण !! व उपस्थित सज्जनों !!! आपने शास्त्रार्थ की शर्तों को सुनकर ये नोट कर लिया होगा कि किस तरह मेरे प्यारे दोस्त मौलवी साहब ने इस मौके पर कुरान को बहस में लाने के लिए गुरेज़ (किनारा) किया। मैं चाहता था कि आज इस शास्त्रार्थ के मैदान में इस्लाम की जड़ बुनियाद व कुरान शरीफ़ को कसौटी पर कसा जाता। लेकिन अफ़सोस है कि मेरा ख़ास दोस्त मेरी नियत और कुरान की कमजोरी को पहले ही महसूस कर गया। इसीलिए कुरान को मेरे ऐतराजात् से बचाने के लिए आपने इसका कलामे इलाही मानने को इस्लाम का उसूल करार न देना, और अपनी समझ में मेरे सामने इस्लाम के वो पांच नियम बराये ऐतराज़ात् पेश कर दिये, जिनकी निस्वत् मौलवी साहब को ख्याल होगा कि मैं इन पर शायद ही कोई ऐतराज कर सकूं। लेकिन मैं अपने दोस्त को बतला देना चाहता हूं। कि ये समझने में भी उसने सख्त ग़लती खाई है। क्योंकि जो पांच उसूल आपने इस्लाम के शास्त्रार्थ की शर्तों में ऐतराजात के लिए पेश किए हैं। मुझे उन पर भी ऐसे जर्बदस्त ऐतराज हैं कि जिनका जवाब देना मेरे दोस्त के लिए बहुत ही मुस्किल होगा। और मैं अपने सम्मनित श्रोताओं को पहले लैक्चर में ख़सूसियत (विशेषता) के साथ ये नोट कराये देता हूं। या यूं कहो कि मैं पहले शुरूआत इसी से करता हूं। जो ऐतराज़ मैं आज इस्लाम के उन उसूलों पर करूंगा, आप यकीन और विश्वास रखिये कि मौलाना साहब उनका जवाब ताक़यामत अर्थात् प्रलयकाल तक भी नहीं दे सकेंगे। ग़ौर से सुनिये–मौलवी साहब ने उन पांच उसूलों में से सबसे पहले उसूल **" लाइलाहिइल्लिलाह, मौहम्मदरसूलल्लिाह"** बताया है। जिसका अर्थ है कि–नहीं है सिवाय कोई अल्लाह के, और मोहम्मद उसका रसूल है। जो इस्लाम का पहला सिद्धान्त है। मगर क्या ही मजे की बात है ? कि इस्लाम के इस सिद्धांत पर जो सबसे पहला मेरा ऐतराज है। उसे एक मुसलमान शायर ने ही एक शेर के अन्दर किस खूबी के साथ अदा (प्रकट) किया है, देखिये –

रसूलो क़ासिदो पैग़ामों व नामा हाजिते नेस्त।
कि दरम्यान मन वा तु हमीमन् तु बस एम।।

श्री मौलवी साहब बीच में ही बैठे -बैठे बोले –

डाक्टर साहब जी से गुज़ारिश है कि इस शेर को फिर से पढ़ दें।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

व्याख्यान के बीच में बोलना शास्त्रार्थ की सभ्यता के विरुद्ध है, (श्रोताओं को इशारा करते हुये) हां ! तो मैं कह रहा था कि मेरा पहला ऐतराज इस शेर के अन्दर ही बन्द है। इसका मतलब ये है कि शायर परवरदीगार को मुख़ातिब करके कहता है कि,–**"क्योंकि मेरे और तेरे बीच में, मैं और तू ही हैं, इसलिए मुझ तक ख़बर पहुँचाने के लिये तुझे किसी रसूल (पैगाम्बर) क़ासिद (पत्रवाहक) पैग़ाम (सन्देश) या नामा (पत्र) भेजने की ज़रूरत नहीं है"**। दूसरे शब्दों में इस पहले उसूल पर मेरा सबसे पहला ऐतराज ये है कि इस कलमा के आख़िरी हिस्सा में जो यह बतलाया गया है कि–**"और मौहम्मद उसका रसूल या पैगाम्बर है"**। इस पर मैं कहता हूं कि ये बिल्कुल गलत है। क्योंकि किसी खास जगह से पैगाम भेजना, भिजवाना स्थूल वस्तु का काम है। जब वो परमेश्वर सबके हृदयों में अन्दर व बाहर विराजमान है तो उसे मुजस्सिम (शरीरधारी) से पैगाम भेजने या पैगाम्बर की जरूरत नहीं। दूसरा ऐतराज मुझे उस कलमे पर है जिसमें

मौहम्मद साहब को ही पैग़ाम्बर माना गया है। मैं पूछता हूं कि अगर अल्ला तआला का काम बिल्कुल ही बिना पैग़ाम्बर के नही चल सकता था, तो क्या पैग़ाम के लिये उनको हज़रत मौहम्मद ही मिले ? ऐसी उनमें क्या विशेषता थी जिसके कारण खुदा ने मौहम्मद साहब को ही पैग़ाम्बर चुना। जबकि मौहम्मद साहब बिल्कुल ही उम्मी (अनपढ़) थे। और उस जमाने में जबकि बड़े बड़े आलिम (विद्वान) मौजूद थे। तो फिर खुदा ने क्यों नहीं किसी विद्वान को इस कार्य के लिए मुकर्रर अर्थात् नियत किया ? तीसरा ऐतराज यह है कि कलमा में खुदा के नाम के साथ ही साथ मौहम्मद साहब का नाम भी शामिल करना **"शिर्क"** की शिक्षा है। चौथा ऐतराज यह है कि—आप इस बात का सबूत दीजिये कि—**"क्या मौहम्मद साहब खुदा की ही तरफ से भेजे गये थे ?"** पांचवा ऐतराज यह है कि, अगर वाक़ई मौहम्मद साहब के बिना भेजे खुदा का काम नहीं चल सकता था, अर्थात दुनियां को मार्ग दर्शन करने के लिए खुदा का काम नहीं चल सकता था, तो क्यों न खुदा ने उनको सृष्टि के आरम्भ में ही पैदा किया ? ताकि वो लोग जो हज़रत साहब के पैदा होने से पहले मर चुके थे, आपकी ज़ात (व्यक्तित्व) से फ़ायदा उठा सकते। इनके अतिरिक्त मुझे इस उसूल पर और भी बहुत से ऐतराज हैं, परन्तु मुझे यकीन नहीं है कि मौलाना साहब इन्ही पांच सवालों के भी माकूल जवाब दे सकेंगे। इसलिए बकाया सवालात् में अपने पास सुरक्षित रखता हूं।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

साहिबान् ! डाक्टर साहब ने कहा है, कि – कुरान को बहस में हमने इसलिये नहीं रक्खा, कि हम डरते थे। वाह ! जनाब !! ये आपने क्या कहा ? वल्लाह ! अब मैं इस शास्त्रार्थ से पहले कुराने मजीद, फुरकान हमीद के इलहामी होने पर बहस करूंगा। और चाहे छः महीने तक बहस जारी रहे, मैं हर्गिज़ नहीं हटूंगा। बल्कि कुराने मजीद को इलहामी साबित कर दिखाऊंगा, अभी पुलिस व थाना का इन्तजाम कर दीजिये, और महीना–दो महीना, साल–दो साल जब तक ये बहस खत्म न हो जावे मैं न खुद हटूंगा और न आपको हटने दूंगा। और खुदा की कसम अगर मैं कुरान को इलहामी साबित न कर दिखाऊं तो मेरी जुबान कटवा डाली जाये। बस मेरी और आपकी बहस पहले इसी बात पर हो जाये कि–**"इलहामी पुस्तक कौन सी है? वेद है या कुरान ?"** एक अरब सतानवें करोड़ वर्ष से पहले वेदों का दुनियां में कहीं नामों निशान नहीं था। और वेदों को आर्यसमाज से पहले कोई जानता भी नहीं था, मगर कुरान का मज़हब बराबर दुनियां में चला आ रहा है। बस ! अब पहले वेद और कुरान ही की बहस शुरू कर दीजिये, और डाक्टर साहब कहते हैं कि हमारे सवालात् का कोई जवाब ही न दे सकेगा ! अजी साहब !! आपके ऐतराज ही क्या है ? अगर आप अरबी अच्छी तरह जानते तो ये ऐतराज ही न करते। (मौलवी साहब ने दो–तीन आयतें पढ़ते हुए कहा) वाह! वाह !! कुरान मजीद फर्माता हैं कि सिवाय खुदा के और कोई नहीं। और आप कहते हैं कि शिर्क ! शिर्क !! माज्जुल्ला ! इस्लाम में **"शिर्क"** आप अरबी की लुग़त (कोश) को अभी नहीं समझे। अन्यथा यह ऐतराज ही पैदा न होता। बराये मेहरबानी आप रसूल के मायने ही बता दीजिये। और रसूल व पैग़ाम्बर में भेद बतलाओ ? भेद कितने प्रकार के होते हैं ? रसूल–पैग़ाम्बर के सच्चे–झूठे जैसे भी बताओ कुछ तो मायने बताओ कि उसमें क्या निस्वत् (फ़र्क) है ?

नोट –

यह कहकर मौलवी साहब अपने निश्चित्त समय को पूरा किये बिना उससे पहले ही बैठ गये, और डाक्टर साहब जवाब देने के लिए खड़े हुए तो प्रेजीडैण्ट साहब ने मौलवी साहब से कहा कि –**"नहीं मैं इस वक्त उन्हीं विषयों पर बहस करने की स्वीकृति दे सकता हूं। जो शास्त्रार्थ की शर्तों व नियमों में तय हुए हैं। अगर आप निश्चय किये गए विषयों पर नहीं बोलना चाहते तो मैं आपका बकाया समय श्री डाक्टर साहब जी को दिये देता हूं"।**

ये फैसला सुनकर मौलवी साहब खड़े हो गये, और फिर तक़रीर (लैक्चर) शुरू कर दिया। इसी जद्दो–जहद (झगड़े) में पांच मिनट व्यर्थ बीत गये।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

"शिर्क" के मायने बतलाओ ? शिर्क कितनी किस्म का होता है ? कौन सा शिर्क, इल्म है ? और कौन सा इबादत ? अगर आप इन बातों के मायने समझ जायेंगे तो जनाब ! आपको कोई ऐतराज ही न रहेगा।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

कासिद के आते-आते ,इक खत और लिख रखूं।
मैं खूब जानता हूं वो जो कुछ लिखेंगे जवाब में ।।

क्यों साहेबान् ! मेरी भविष्यवाणी कितनी सच्ची निकली !! मैंने ऐतराजात् पेश करने से पहले ही कह दिया था कि मेरे सवालात का जवाब देना मौलवी साहब की ताक़त व लियाकत से बिल्कुल बाहर है। मैं पहले ही जानता था कि मौलवी साहब मेरे सवाल का क्या जवाब देंगे ? और आपने देख लिया कि मेरे प्यारे दोस्त ने मेरे ऐतराजात् को छुआ तक नहीं। बल्कि मेरी बातों का जवाब दिया तो ये कि उल्टे मुझ पर ही सवाल जड़ दिये। अब मैं हैरान हूं कि मौलवी साहब के साथ इस्लाम के सिद्धान्तों पर बहस करूं या आपको यहां बैठकर अरबी (व्याकरण) पढ़ाऊं ? मेरा ख्याल था कि मेरे मुकाबले में कोई पढ़ा–लिखा (आलिम) मौलवी खड़ा किया जावेगा। जो अरबी व इस्लामी सिद्धान्तों की जानकारी रखता होगा। जो मेरे पेचीदा सवालात का जवाब देने की कोशिश करेगा। मुझे बेहद अफसोस है कि– **"खुद गलतबूद आंचे मन् पन्दास्तम्"** अर्थात्– जो स्वयं गलत रास्ते पर है वह मुझे क्या रास्ता बतलायेगा ? साहेबान् ! आपको याद होगा कि मैंने पांच सवाल किये थे। आपने देख लिया ना ! मौलवी साहब ने मेरे कौन–कौन से सवालों का जवाब दिया !! मौलवी साहब बार–बार मेरे लिए कहते हैं कि मैं अरबी नहीं जानता। लेकिन माशाअल्ला ! आप बड़ी अरबी जानते हैं। देखिये– **"लाइलाहिइल्लिाह मुहम्मद रसूलल्लिाह"** इसके मायने आप करते हैं, कि **"नहीं सिवाय खुदा के कोई माबूद"** मैं पूछता हूं कि क्या मौलवी साहब बता सकते हैं कि माबूद का अर्थ किस शब्द में आता है ? साहिबान् ! इसके मायने है **"तहकीक नहीं है सिवाय खुदा के कोई"** अब मौलवी साहब बतावें कि ये बेरबत् जुमला (बेमुहावरा वाक्य) कैसे ठीक है ? कौन नहीं जानता कि सिवाय खुदा के हम छः–छः फुट के हट्टे–कट्टे इन्सान मौजूद हैं। अंजी ये मेज है, कुर्सी है, जमीन है, इसी प्रकार सैंकड़ों चीजें मौजूद हैं। और फिर इस पर आपका यह कलमा कहे कि कोई है ही नहीं। वाह! वाह !! क्या बढ़िया कलमा है !!! इसके अलावा मैं फिर कहता हूं कि अगर खुदा को अपने बन्दों को मार्गदर्शन की जरूरत थी तो किसी क़ाबिल आदमी को अपना पैगाम्बर या रसूल क्यों न बनाया ? दुनिया जानती है कि जो जिस बात के काबिल होता है, उसको उसी प्रकार का दर्जा दिया जाता है। अगर कोई व्यक्ति डाक्टरी का काम जानता है तो सरकार उसी को डाक्टर बनाएगी, न कि किसी घसखोदे को !

आपने यह कभी नहीं देखा होगा कि हमारी सरकार ने किसी डाक्टर की कुर्सी पर किसी पटवारी को बिठा दिया हो। या वकालत के लिए किसी हलवाई को बिना डाक्टरी की परीक्षा लिए कोई डिग्री (प्रमाणपत्र) दे दिया हो। जब हम ये मामूली सा नियम सांसारिक कारोबार में देख रहे हैं तो ये हो नहीं सकता कि खुदाई दरबार में बिना किसी योग्यता के वैसे ही कोई विशेष दर्जा दे दिया जाता हो। मेरे मुकाबले में खड़े माननीय श्री मौलवी साहब का फ़र्ज है कि वे बतावें कि आं हज़रत में ऐसी कौन सी खूबियां अर्थात् विशेषताएं थी, जिसके लिए आपको ये ओहदा (पैग़ैम्बरी का दर्ज़ा) दिया गया। और दूसरे अगर आपको उन्हें

ही पैगाम्बर के रूप में पैदा करना था, तो दुनियां के शुरू में ही उन्हें क्यों नहीं पैदा किया ? क्योंकि ऐसा न करने से खुदा के इन्साफ़ पर धब्बा आता है। आपके सिद्धान्तों के अनुसार, मौहम्मद साहब से पहले के आये हुए सभी आदमी (पैगाम्बर) गुमराह हो गए। और वे सब दोजख़ में ही जायेंगे। आपने कई दफ़ा कहा कि रसूल के मायने बतलाये जायें, लीजिये मौलवी साहब। आप भी क्या याद रखोगे, हम आपको रसूल के मायने ही बतलाये देते हैं। रसूल के मायने **"भेजा हुआ"** के लिए जाते हैं।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

भाईयो ! मेरे मुख़ालिफ़ श्री डाक्टर साहब हर बार चिल्ला–चिल्ला कर यही कहते हैं कि मौलवी साहब जवाब नहीं दे सकेंगे ! मौलवी साहब जवाब नहीं दे सकते !! जिससे आपका यह मतलब है कि लोग ये समझें कि बस ! मौलवी साहब जवाब नहीं दे सके। लेकिन मैं कहता हूं कि दावा कमज़ोर इन्सान किया करता है। इस्लाम की सदाक़त (सच्चाई) के सामने आज दुनियां सर को झुकाये हुए है। बर्रे आज़म युरोप के बड़े–बड़े फ़िलासफ़र, बड़े–बड़े आलिम, मुद्दतों सर पटकते रहे, लेकिन कुछ जवाब न दे सके, आप तो चीज ही क्या है जनाब ? मैं कहता हूं कि सारी दुनियां के आलिम भी जमा होकर इस्लाम पर ऐतराज़ात करें तो वे इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। आपने रसूल के अर्थ किये हैं **" भेजा हुआ "** लेकिन आप इलम नहीं रखते। नोट कर लें, क्योंकि जिसके मायने **"गश्तन्-गुफ्तन्"** के वजन पर भेजना होते हैं। रसूल उस पाक ज़ात को कहते हैं जो ख़ुदा की तरफ से भेजा जावे और किताब उसके हाथ में हो।

आप बड़े जोरों से ऐतराज़ करते हैं कि जनाबे आंहज़रत मौहम्मदसाहब को ही क्यों रसूल बनाया ? मैं कहता हूं। भला ये भी कोई सवाल है ? क्या आप बता सकते हैं कि आदित्य, अंगिरा, वायु आदि ऋषियों पर ही मुक्कदस वेद नाज़िल करने की क्या ज़रूरत थी ? अगर खुदा ताला युरोप में से किसी को ले लेता और उसको अपना पैगाम्बर बना लेता तो आप यही कहते कि क्यों साहब इसी को क्यों बनाया ? अगर और किसी को लेता तब भी यही सवाल आता। अगर आपका चुना हुआ ही, खुदा रसूल बना देता तो भी एक फरीक मुख़ालिफ़ रहता, और यही सवाल करता। इस पर दूसरे आपका ऐतराज है कि खुदा ने मौहम्मद साहब को दुनियां के शुरू मे पैदा क्यों नहीं किया ? अजी जनाब ! आपको कुछ पता भी है ? हमारे यहां एक लाख चौरासी हजार नबी आये और चले गए। अन्त में मौहम्मद साहब का नम्बर जब आया तो खुदा ने उनको रसूल बनाया, जो पैगम्बर जिस जमाने में व जिस कौम में आया, उसकी नज़ात (मुक्ति) हो गई। अभी लार्डकर्जन थे फिर जनाब मिण्टो साहब आये, अब जनाबे हार्डिंग साहब हैं, लेकिन हां ! अब नबव्वत (नबी बनाने) का सिलसिला खत्म हो चुका है, अब किसी मुल्क या देश में कोई नबी नही आयेगा। अब किसी कौम में कोई नबी आया हो तो बतायें, अगर किसी ने नबी होने का झूठा दावा किया होगा तो उसे सारी दुनियां तो एक तरफ बल्कि दस बीस व्यक्तियों ने भी उसे नबी न माना होगा। आप कहते हैं कि मौहम्मद साहब शुरू दुनियां में क्यों नहीं आये ? मैं कहता हूं कि दयानन्द शुरू दुनियां में क्यों न आये ? **"उम्मी"** के मायने आप नही जानते, इसके ये मायने हैं कि जो किसी मकतब (मदरसे) में पढ़ा हुआ न हो, वर्ना आँ हज़रत को खुदा ने मां के पेट से पैगम्बर बनाया और उनके सीने में कुरान को भरा।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त ज़ी आर्य मुसाफ़िर –

साहिबान् ! आपने सुन लिया कि मौलवी साहब ने इस दफ़ा क्या गौहरअफ़सानी (मोती बिखेरना) की है, खुशी की बात है कि इस बार मौलवी साहब ने मेरे एक सवाल का जवाब देने की कोशिश की। ये दूसरी बात है कि वो इसका जवाब देने में नाकामयाब रहे।

आपने फ़रमाया कि दावा करने वाला कमजोर होता है। लेकिन मालूम होता है कि मौलवी साहब की यादगार मजबूत नहीं है। क्योंकि आप साहिबान् ने सुना होगा कि आपने अपनी पहली ही तकरीर में ज़ोर–शोर से दावा किया था कि मैं कुरान को इलहामी साबित करूंगा। ना करूं तो मुझे फांसी पर लटका दिया जावे। ये किया जावे–वो किया जावे। क्यों मौलवी साहब ! क्या दावा कमजोर किया करता है? अगर ऐसा ही हैं तब तो आप खुद ही अपनी बात को कमजोर साबित कर रहे हैं। (जनता में हंसी.......)

रही दुनियां भर को चैलेञ्ज करने की बात ! सो ज़नाबेमन !! पूरब के फिलासफरों को तो आप क्या जवाब देंगे ? जबकि मुझ जैसे नाचीज ही ने चन्द मिनट मे आपका काफ़िया तंग कर दिया। अर्थात् (बोलती बन्द कर दी) साहिबान् ! आपने देखा कि मौलवी साहब ने मेरे किए हुए रसूल के मायने को गलत बताया, और उसके मायने **"मसदरी"** के बताये। लेकिन मजे की बात यह है कि मायने आपने भी फिजूल किये। यानी **" भेजा जावे "** और मौलवी साहब आप तो अरबी की वाक्फियत में बड़ी डींग मार रहे थे। ज़रा ये तो बताइये, कि **"किताब उसके हाथ में हो"** ये कौन से कोश में लिखा है ? अजी हमने तो आज तक किसी को किताब हाथ में लाते हुए नहीं देखा, बल्कि जैसे हम पैदा होते हैं वैसे ही बेचारे नबी आते और चले जाते हैं। ज़रा बतलाईये तो सही कि ये मायने आपने लिये कहाँ से ? हम भी इस लुग़त (कोश) को देख लें। हो सकता है वह कोश हमारे देखने में न आया हो। दूसरी बात यह है कि –

जादू वो जो सर चढ़ कर बोले।
क्या ही मज़ा जो ग़ैर पर्दा खोले ।।

क्यों ? अय हाज़रीन जलसा ! आप साहिबान् को याद होगा कि अपनी पहली तकरीर (व्याख्यान) में मैंने क्या अर्ज किया था ? कि जो ऐतराजात् मैं इस समय पेश करूंगा, उनका मौलवी साहब अकेले तो क्या, दुनिया भर के मौलवी भी मिलकर क़यामत तक भी माकूल जवाब न दे सकेंगे। आपने देख लिया कि मौलवी साहब भी साफ़ शब्दों में मान रहे हैं कि मेरा सवाल ऐसा जबर्दस्त सवाल है कि जिसका कोई जवाब नहीं। और वह सवाल हमेशा कायम रहेगा। मौलवी साहब ! मैंने भी तो आरम्भ में आपसे यही कहा था कि मेरा सवाल आपसे हल न होगा, और हमेशा कायम रहेगा। लेकिन मैं आपको बतला दूं कि मेरे सवाल का जवाब जब तक आप मुसलमान बने हुए हैं तब तक नहीं दे सकते। इस्लाम को तिलाञ्जलि दे दीजिए, मेरे सवाल का ज़वाब कर्मथ्योरी (कर्म विज्ञान) से हल हो जायेगा। हम उनके अच्छे कर्म का नतीजा मानते हैं, लेकिन आप बतलायें कि आंहज़रत को किस परिणाम में रसूल की पदवी मिली ?

मैं फिर कहता हूं । और बड़े जोर से कहता हूं कि आप क्या बल्कि दुनियां भर के मुसलमान मिल कर भी इसका जवाब न दे सकेंगे। और आप तो खुद ही मान चुके हैं कि इसका कोई हल (समाधान) नहीं। जनावेमन् इसका हल सिर्फ़ वेदमुक्कद्दस से ही हो सकता है। आपने कहा है कि एक लाख चौरासी हजार नबी आये। मैं कहता हूं कि लाख की बात तो छोड़िये केवल दस–बीस हजार नबियों के नाम ही गिना दीजिये तो मैं आपको मर्द जानूं। आपका ये कहना कि स्वामी दयानन्द शुरू दुनियां में क्यों न हुये ! यह ग़लत ऐतराज है। स्वामी जी को हम मुलहिम (जिस पर इलहाम हुआ हो) नहीं मानते । फिर आप इस सवाल को ये मिसाल देकर हल करना चाहते हैं, कि हिन्दुस्तान के लिये बादशाह जिसे पसन्द करता है उसे वायसराय बनाकर भेज देता है। जैसे कि लार्डकर्जन, मिन्टों व हार्डिग आदि एक के बाद दूसरे आये। मगर मुझें मालूम होता हैं कि मौलवी साहब का दिमाग मेरे ऐतराजात् की वजह से बिल्कुल चक्कर खाने लगा है। वर्ना वो ये मिसाल अपनी सफाई (पक्ष) में पेश न करते क्योंकि दरअसल ये मिसाल तो मेरे ऐतराजात् के पक्ष में है। क्योंकि देश

के बादशाह को जब हिन्द में नया वायसराय भेजने की जरूरत पड़ती है तो अपनी सलतनत में से सबसे काबिल व्यक्ति को चुन करके ये पद्वी देता है। और हर हालत में उस चुने हुये व्यक्ति के पिछले किये गये कार्यों पर ख़ास गौर करके उसे नियत किया जाता है। ना कि आपके अल्लामियां की तरह अन्धाधुन्ध बिना किसी योग्यता व बिना किसी की गई सेवाओं के किसी को यूं ही पकड़ कर वायसराय की हैसियत में भेज दिया जाता है। रहा आपका ये फ़रमाना कि मौहम्मद साहब के बाद अगर किसी ने नबव्वत (पैगैम्बरी) का दावा किया भी तो उसको दस–बीस व्यक्तियों ने भी न माना। अर्थात् ये बात विषयान्तर की है। बहस के अन्दर ही नहीं। लेकिन मैं मौलवी साहब की तमाम जानकारियों में और विस्तार पूर्वक बढ़ाकर बता देना चाहता हूं कि आप दूर क्यों जाते हैं ? अपने घर ही में ऐसे आदमियों की तलाश शुरू कीजिये, और सबसे पहले आपको **"मिर्जा कादयानी"** मिलेगा, जिसके आज लाखों आप ही के भाई चेले (अनुयायी) हैं। और उसे मसीह मानते हैं। मगर, ख़ैर ! इन बातों से क्या लेना–देना। आप अगर दे सकते हैं तो मेरे सवालों का जवाब दीजिये।

मौलवी अबुलफ़रह साहब –

वाह जनाब ! क्या खूब ! ! बड़े ऐतराज़ात लिये फिरते हो। इधर–उधर के ऐतराज़ लेकर और ईसाइयों की किताबों से पढ़–पढ़ाकर आप बड़े अकड़ते हैं। कि मौलवी साहब मेरे सवालों का जवाब ही न दे सकेंगे। क़यामत तक न दे सकेंगे। अजी वाह ! आपके सवाल ही ऐसे क्या है ? अगर मैंने एक भी सवाल कर दिया तो आपको यहां से समाज का ताम–तोपड़ा उठाकर भागना पड़ेगा, आप तो अभी बच्चे हैं, मैने हिन्दुस्तान भर में बड़े–बड़े मुनाज़िरे (शास्त्रार्थ) किये हैं। पण्डित लेखराम से मैंने मुनाज़िरा किया, स्वामी दर्शनानन्द से मैंने मुनाज़िरा किया, जब वो पण्डित कृपाराम थे। जब आपके ऐसे बड़े–बड़े शास्त्रार्थ महारथी भी मेरे सामने पांव न जमा सके तो ज़नाब आप तो चीज ही क्या हैं ? मालूम होता है कि डाक्टर साहब की समझ में भी कुछ फ़र्क है। क्योंकि मैंने कहा था कि रसूल वो होते हैं जिनके ऊपर किताब नाज़िल होती है। मगर आप कहते हैं कि किताब नाज़िल हाथ में लेकर कोई नहीं आता। वाह डाक्टर साहब ! मैंने तो आपको बड़ा क़ाबिल आदमी सुना था। मगर अब मुझे आगरा पहुंच कर पूछताछ करनी पड़ेगी कि आप कितने **"मरीज"** रोज मारते हैं। और ज़लसे मे उपस्थित व्यक्ति सब इस बात को खूब जानते हैं कि मैंने आपके सवाल का जवाब दे दिया है मगर आप बार–बार इसी सवाल को दोहराये जाते हैं। भला ये भी कोई बुद्धिमता का सवाल है ?

मैं आपसे पूछता हूं कि बतलाइये, अग्नि, वायु, आदित्य पर क्यों वेद नाज़िल हुये ? उनमें क्या ख़सूसीयत (विशेषता) थी। उनके अलावा और किसी पर वेद क्यों नही नाज़िल हुये ? अंगिरा, आदित्य वगैरा आपके ऋषि कौन सी यूनिवर्सिटी में पढ़े थे ? और एक ही वक्त में चार ऋषियों की क्या जरूरत थी ? ये भी आपका कोई सवाल है ? कि मौहम्मद साहब को ही खुदा ने क्यों रसूल निश्चित किया, और किसी को क्यों नहीं किया। (मुसलमानों में चारों तरफ आमीन.............आमीन...........) और खुदानखास्ता किसी और को रसूल कर देता तो भी आप यही कहते कि उसको क्यों किया, अन्य किसी को क्यों नहीं किया ? अर्थात् ये सवाल तो कभी भी खत्म नहीं हो सकता। और खुदावन्दताला किसी और को रूसल बना देता, आपका यह सवाल बदस्तूर क़ायम रहता। लेकिन आपकी कोई शेखी नहीं है, क्योंकि ये सवाल तो बड़ा पुराना है, और सवाल करने वाले जानकारी न होने की वजह से हमेशा से इस सवाल को करते चले आए हैं।

कुरैश (मुहम्मद साहब की जाति) के लोगों ने भी यही सवाल किया था। मगर आपका इसमें क्या कसूर ! अगर आप पब्लिक को धोखा न दें तो आपकी रोटी–रोजी न चल सके। और आप भूखे मर जायें। और जो आप ईसाईयों की वजह से टुकड़ा खा रहें हैं, वो फौरन छिन जाए। और इस्लाम पर आप क्या

ऐतराज करेंगे ? इस्लाम की बड़ी–बड़ी बादशाहतें इस वक़्त भी कायम है, तुम्हारा क्या है ? इस्लाम आज सारी दुनियां में फैला हुआ है। तुर्किस्तान, चीन, तातार, रंगून अर्थात् हर मुल्क में इस्लाम का दबदबा कायम है। मगर तुम सिर्फ़ यही भारत में मर रहे हो। हमारी सलतनतें हैं, हमारी बादशाहतें हैं, बताओ अगर इस्लाम खुदा की तरफ़ से न होता और सच्चा मज़हब न होता तो किस तरह दुनियां भर के करोड़ों आदमी उसके सामने सर झुका देते ? (जनता में हंसी.................) आप इस्लाम में **"शर्क"** बतलाते हैं, (बहुत सी आयतें पढ़ते हुए) मौलवी साहब ने कहा कि–इस्लाम ही **"शर्क"** का बड़ा दुश्मन है। और मुसलमान अध्यात्म के सबसे बड़े मानने वाले हैं, मुसलमानों का बच्चा–बच्चा सरकार का वफ़ादार है। क्योंकि मुसलमान सिवा खुदा के किसी बादशाह तक के आगे भी नहीं झुकते। मुझसे आप एक लाख नबियों के नाम पूछते हैं ? भला एक लाख नबियों के नाम कैसे कलमबन्द (लिखे हुए) हो सकते हैं। और ये आप झूठ कहते हैं कि कुरान ने एक लाख नबियों के होने का दावा किया है। ये भी सरासर आपका झूठ है कि मिर्जा क़ादयानी ने नबव्वत (नबी होने का) का दावा किया। आप बार–बार हमारे रसूल पर हमला करते हैं। मैं पूछता हूं कि हमारे रसूल ने क्या तुम्हारी बकरियां खदेड़ी (भगाई) थी जो तुम उन्हें बार–बार **"उम्मी"** (अनपढ़) कहते हो !

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

आप लगे हो मुह चढ़ाने, देते देते गालियां साहब।
जुबां बिगड़ी तो बिगड़ी थी, खबर लीजे ज़हन बिगड़ा ।।

उपस्थित सज्जनों ! अब एक घण्टा हो चुका है। जबकि मैंने अपने दोस्त मौलवी अबुलफ़रह साहब के सामने पांच ऐतराजात् इस्लाम के सिद्धान्तों पर पेश किए थे। उनमें से सिर्फ़ एक सवाल को मौलवी साहब ने हल करने की कोशिश की। और बाकी तमाम वक़्त इधर–उधर की उलम–गुलम बातें कहने व खाली हवाई फ़ायरें करने में तथा मुझ पर नाजायज़ व तहजीब के खिलाफ़ हमले करने में बर्बाद किया। जिनके जवाब में मैं फ़ाजिल मौलवी साहब को सिर्फ़ इतना ही बता देना काफ़ी समझता हूं कि मौलवी साहब इस्लाम की इन बातों से मेरे ऐतराजों से पीछा नहीं छुड़वा सकते। और अगर इन भड़काने वाली बातों से व गालियों से आपका ये मतलब हो कि मैं भी जवाब में ऐसी ही बातें सुनाऊं और यों झगड़ा होकर मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) से जान बचे, सो मुझसे ये उम्मीद करना भी व्यर्थ है। क्योंकि मुझे आर्य समाज ने कुछ मसलों पर मुबाहिसा करने के लिए अपना वकील बनाकर खड़ा किया है। ना कि किसी की गाली–गलौच वा ज़ाति हमलों का जवाब देने के लिए ! और ये देखकर मेरा अफ़सोस और भी बढ़ जाता है कि मेरे ऐतराजात् ने मौलवी साहब को ऐसे चक्कर में डाला है, कि आपको मुझ पर कोई माकूल ज़ाति हमला भी तो करने की ताकत नही हैं।

मैं हैरान हूं कि इन हजारों उपस्थित व्यक्तियों के दिलों पर, मौलवी साहब की जुबान से ये सुनकर क्या असर पड़ा होगा। कि– **"डाक्टर साहब की आर्य समाज से रोटियां बन्द हो गयीं तो ये भूखे मरने लगेंगे आदि-आदि"** जबकि उपस्थित लोगों में से ज्यादातर लोग ये अच्छी तरह जानते हैं कि मैं किसी धार्मिक कार्यो के लिए आर्यसमाज से कोई पैसा नहीं लेता*। ईश्वर की कृपा से मेरे हाथ में वो हुनर है, कि मैं अपनी कमाई से दस और आदमियों की परवरिश कर सकता हूँ।

---

* वर्तमान उपदेशकों को डाक्टर साहब की इस बात से शिक्षा लेनी चाहिये, जो आज समाजों में जगह–जगह उपदेश देकर वहां समाज के मन्त्री व प्रधानों से पैसे के लेन–देन (दक्षिणा) पर झगड़ा करते फिरते हैं।

" लाजपत राय अग्रवाल "

खैर ! मैं इन बातों का कोई प्रचार नहीं करना चाहता, और मौलवी साहब से भी प्रार्थना करता हूं कि वो मेरा.........अपना व पब्लिक का कीमती समय इन व्यर्थ की झूठी बातों में न बर्बाद करें। अब रहा मज़मून बहस के विषय में ! सो इतनी देर की बहस के बाद यहां बैठे लोगों ने समझ लिया होगा कि दरअसल मेरे ऐतराज़ात् के मुतल्लिक मौलवी साहब कोई जवाब नहीं दे सकते। इतनी देर में सिर मारकर बेचारों ने पाँच में से सिर्फ एक सवाल को हाथ लगाया, मगर आखिरकार वो भी जवाब देने में कामयाब न हुए। और साफ़ शब्दों में कह दिया कि ये सवाल तो हल ही नहीं हो सकता। बल्कि हर सूरत में बदस्तूर क़ायम रहता है। मौलवी साहब ! यही तो मैं कहता था कि जब तक मुसलमान रहते हुए इन ऐतराजात् को हल करना चाहेंगे, तब तक आपसे ये हर्गिज़–हर्गिज़ हल नही होंगे। मगर इसका ये मतलब नहीं कि इस सवाल का कोई हल नहीं। आप वैदिक धर्म की शरण में आ जायें, वेद मुक्कद्दस के सामने सर झुकाइए और इस सवाल का समाधान पाइये। क्योंकि इस सवाल का हल सिर्फ़ मसलये तनासुख व कर्मथ्योरी (कर्म विज्ञान व आवागमन) के बिना माने हो ही नही सकता। और जो लोग इन दोनों मसलों के मानने वाले हैं उनके लिए ये कोई मुश्किल सवाल ही नहीं है। मिसाल के तौर पर जो ऐतराज मैंने आप पर किया था, जब आप इसका जवाब न दे सके तो आपने चार ऋषियों के बारे में वही सवाल मुझ पर डाल कर मेरा ऐतराज़ मुझसे ही हल कराया। लेकिन क्योंकि मेरे लिए ये कोई मुश्किल सवाल न था इसलिए मैंने फौरन कह दिया कि चार ऋषियों को इलहाम की अनुभूति उनके पिछले कर्मो की वजह से मिली। मगर आप तो पिछले जन्म के कर्मो को मानते ही नहीं और ना आवागमन को मानते हैं। बस ! आप मेरे इस ऐतराज का कोई जवाब न दे सके। और न क़यामत तक दे सकेंगे, कि – **"अल्ला ने मौहम्मद साहब ही को रसूल क्यों कायम किया ?"** लेकिन जब बार–बार तकाजा करने पर भी आप अपनी योग्यता के अनुसार मेरे पहले सवाल का कोई जवाब नहीं दे सकते तो मैं अब यही ठीक समझता हूं कि इन ऐतराजात् को हमेशा के लिए आपके सिर पर रख करके आपके दूसरे चार उसूलों पर अपने ऐतराज़ात् पेशकरूं। इस ख्याल से कि शायद आपके पेशक़रदा दूसरे उसूल इस्लाम, यानी हज्ज करने पर मुझे ये ऐतराज़ हैं कि –

१. पहले तो हज्ज में काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करना तथा संगेअसवद को बोसा देना (चूमना)। क्या बुतपरस्ती नहीं है ?
२. हज्ज करने से किस प्रकार पिछले गुनाह किस तरह नाश होकर किस तरह मुक्ति मिल सकती है ?
३. तीसरा ऐतराज यह है कि खुदा ने आपके कहने के अनुसार नज़ात (मुक्ति) देने वाले इस खाना क़ाबा को मक्का में ही क्यों बनाया ? दुनियां के किसी और हिस्से में क्यों नही बनाया ?
४. खुदा ने ईसाइयों व यहूदियों के बेतउल्ल मुक्कद्दस में ऐसी कौन सी कमी देखी थी जो उसकी पूर्ति में मक्का में नया घर बनाना पड़ा ?
५. अगर इस मकान के दर्शन करने से मुक्ति मिल सकती है, तो खुदा ने इसे दुनियां के आरम्भ में ही क्यों नहीं बनाया ? इसके बनने से पहले के जो लोग आकर मर चुके हैं, वे भी माफ़ी मांग कर जन्नत (स्वर्ग) में दाख़िल हो जाते ?
६. नमाज के विषय में आप मेरे एक ही सवाल का जवाब दे दीजिए कि जिस तरह नमाज में आप बार–बार उठक–बैठक (Exercise) करते हैं, ऐसी हालत में परमात्मा के ध्यान में मन कैसे लग सकता है ?
७. रोज़े पर भी मैं फ़िलहाल केवल एक ही सवाल करूंगा कि एक माह तक रात भर खाने और दिन भर भूखा रहने से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है ? सो मुझे इन तीन उसूलों पर और भी बहुत

से ऐतराज़ात् है। लेकिन क्योंकि मुझे उम्मीद नहीं कि आपसे इनमें से किसी एक सवाल का भी माकूल जवाब मिले। इसलिए मैं आपसे इस समय केवल इन्ही सवालों पर पूछता हूं।

श्री मौलवी अबुलफरह साहब –

डॉक्टर साहब ने अपने जो पुराने एतराजों को छोड़कर नये ऐतराज पेश किये हैं, ये आपकी चालाकी है। मगर जब तक पहले सवालों का फैसला न हो जावेगा, मैं आपको आगे हर्गिज़–हर्गिज़ नहीं चलने दूंगा। और जो एतराज अब किए गए हैं। दरअसल इन सवालों के जवाब में हजारों किताबें लिखी पड़ी हैं। अगर डाक्टर साहब उन्हें देख लेते तो फिर एतराज़ न करते। और खुदा की कसम मैं सच कहता हूं कि मैं इनमें से एक–एक सवाल, पर साल–साल भर तक बहस करूंगा। और हज्ज का फ़िलसफ़ा एक हफ़्ता तक बयान करूंगा। डाक्टर साहब को पहले ये मालूम होना चाहिए कि बुत किसे कहते हैं । बुत उसे कहते हैं जिसके आंख, नाक, कान वगैरा हों, और उससे कोई ख्वाहिश करे। मगर क्योंकि संगेअसवद् के कोई आंख, कान, नाक नहीं थी इसलिए वो बुत नहीं कहा जा सकता, और क्योंकि कोई भी मुसलमान उसे मुक्ति पाने के लिए नहीं चूमता, और न ही तवाफ़ेकाबा से कोई ख्वाहिश रखता है। इसलिए ये बुतपरस्ती नहीं है। हज्ज एक तरह से दुनियां भर के मुसलमानों की एक कान्फ्रेंस (सभा) है। और आपस में मेल–जोल का अच्छा बेहतरीन तरीका है। ग़र्ज इससे सिर्फ़ यही है कि दुनियां के अलग–अलग हिस्सों के मुसलमान साल भर में एक मर्तबा आपस में यहां आकर मिलें। और अपना विचार विमर्श करें। काबा का तवाफ (परिक्रमा) करने का यह एक मकसद हैं कि जिस मकान के लाखों आदमी परिक्रमा करें उससे दुनियां की दूसरी कौम के लोग उनसे डरें। कि जिस मकान के इर्द–गिर्द हर साल लाखों आदमी फिरता है उसकी तरफ़ निगाह उठाकर देखना भी मुश्किल है। और यही वजह हैं कि रसूलिल्लाह के जमाने से लेकर आज तक हजारों इन्क़लाब होने के बावजूद भी काबा मुसलमानों के ही कब्जे में है। और संगेअसवद को जो बोसा देते हैं अर्थात् चूमते हैं वो इसलिए चूमते हैं कि हमारे इस्लाम के पैगम्बर ने उसको हाथ लगाया था। और क्योंकि हमारे प्यारे नबी के हाथ से ये पत्थर छुआ हुआ है इसलिए यादगार व मौहब्बत की वजह से मुसलमान उसको चूमते हैं। लेकिन बोसा देने से कहां से ये मतलब निकला कि उसकी परस्तिस (पूजा) करते हैं ? आप अपने लड़के को बोसा देते हैं, अपनी बीबी को बोसा देते हैं। तो क्या आप लड़के व बीबी की पूजा करते हैं ? फिर आप पूछते हैं कि मुसलमान वहां जाकर क्या करते हैं ? अजी ! करते क्या हैं, जानवरों को मारते हैं। ताकि उन्हें हथियार चलाने की आदत बनी रहे और वक्त आने पर दुश्मन को तलवार से मौत के घाट उतार सकें। ये दरअसल मुसलमानों को वहां ज़िहाद* (लड़ाई) के लिए तैयार किया जाता है। ताकि वो अल्ला की राह पर वक्त आने पर खूब लड़ सकें। इसलिए हज्ज करना जरूरी करार दिया गया है। कुछ दूर से दोनों हाथ कन्धों पर रख कर जो चलते हैं, इससे मनसा ये है कि लोग देख लें कि मुसलमानों के हाथ टुटे हुए नहीं हैं। काबा के हज्ज से हम मुक्ति का होना नहीं मानते। रहा आपका ये सवाल कि ये स्थान मक्का में ही क्यों बना, और किसी मुल्क में क्यों नहीं बना ? ये बच्चों वाला सवाल है। क्योंकि काबा मक्का में न होकर फ़ारस में होता तो तब भी आपका यही सवाल रहता कि फ़ारस में क्यों बना ? अगर चीन में होता तो भी ये सवाल होता कि चीन में क्यों बना ? अर्थात् काबा दुनिया में कहीं भी कायम होता तो यही सवाल उस पर आपका लागू होता जो

---

* "ज़िहाद"– दीन के लिए काफ़िरों से लड़ना अर्थात् धर्मयुद्ध करना "ज़िहाद" कहलाता है। यह ज़िहाद मुसलमानों के लिए फ़र्ज किया गया है। इसमें धन–जन की हानि से भले ही यह बुरा लगता हो, लेकिन वह मुसलमानों के लिए हितकर है। तुम्हारे लिए क्या हित है और क्या अहित है ? यह सिर्फ अल्लाह ही जानता है ।

"लाजपतराय अग्रवाल"

कभी समाप्त होने वाला नहीं है। जैसे सरकार जिसे चाहती है उसे वहीं पर कायम कर देती है। और कोई उसे ये नहीं कह सकता कि उसे क्यों वहां कायम किया, इसी तरह का ये भी मामला है। और काबा दुनिया के आरम्भ से है। और आपको पता होना चाहिए कि शुरूदुनियां की आबादी मक्का से ही शुरू हुई थी।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

मौलवी साहब ने भी ये समझकर कि कुछ भी जवाब न देने से मनघड़न्त दलीलें देकर मुसलमानों को खुश करना बेहतर है। मेरे एक सवाल का जवाब देते हुए खूब मनघड़न्त बातें बयान की हैं। लेकिन बेचारे मौलवी साहब जी को क्या मालूम था कि मैं एक ही हदीस पढ़कर इनकी इस सारी की कराई मेहनत पर पानी फेर दूंगा। ....हदीस सही मुस्लिम से एक हदीस पढ़ते हुए डाक्टर साहब ने मौलवी साहब को मुखातिब करते हुए कहा......... मौलवी साहब ! देखा ये हदीस क्या बयान कर रही है ? और आप क्या कह रहे हैं ? ये हदीस तो साफ शब्दों में बयान कर रही है कि–**"हज्ज करने से पिछले सारे गुनाह माफ होकर इन्सान ज़न्नत में बैरंग अर्थात् बिना किसी रोक-टोक के पहुंच जाता है"** और आप कहते है कि हज्ज करना एक कान्फ्रेंस करना है। अब आप ही बतलाईये कि मैं आपकी बात मानूं या आपके इस्लामी पैगाम्बर की ? बस ! आपका कथन गलत हुआ और मेरा सवाल बराबर कायम रहा। आगे चलकर जो कई एक दलीलें मौलवी साहब ने बनाई हैं, उन्हें सुनकर मुझे सख्त अफ़सोस होता है। जैसे आपने बतलाया है कि मुसलमान वहां जाकर लड़ाई में तैयार होने के लिए जानवरों को मारते हैं, वैसे तो आजकल बहुत से मुसलमान लड़ाई–झगड़ा व फ़िसाद को अच्छा नहीं समझते। लेकिन अगर लड़ाई–झगड़ों के बिना इस्लाम का काम चलना ही मुश्किल है और उसके लिए हर वक्त तैयार रहने की प्रेक्टिस जानवरों के मारने पर ही आधारित है तो मैं पूछता हूं कि क्या हिन्दुस्तान के बूचड़खानों में यह प्रैक्टिस (अभ्यास) नहीं हो सकता ? जो मुसलमान इस काम के लिए इतनी दूर जाते हैं। फिर आपने कहा कि संगेअसवद् को इस वास्ते बोसा देते हैं कि वो हमारे नबी के हाथ से स्पर्श किया गया है। क्यों मौलवी साहब ! क्या आप उन दूसरी तमाम चीजों को भी बोसा देते हैं जो जिन्दगी भर हजरत के हाथों से वक्त–बेवक्त छुई जाती रही हों।.........जनता में हंसी...... और औरत व बच्चों को बोसा देने की बात भी आपने संगेअसवद के बराबर ही कही। मैं पूछता हूं कि क्या कोई शख्स अपनी औरत व बच्चों को इस नियत से भी बोसा देता है कि इसके तमाम पिछले गुनाह माफ होकर वो जन्नत का हकदार बन जाये ? अगर नहीं तो आपकी मिसाल, दलील सहित गलत साबित होती है। अब रहा मेरा असल सवाल कि काबा, मक्का ही में क्यों बना ? सो इसके विषय में मुझें कुछ ज्यादा कहने की जरूरत नहीं महसूस होती। क्योंकि मौलवी साहब खुद मान चुके हैं कि मेरे इस सवाल का कोई हल ही नहीं। और ये सवाल हर सूरत में कायम रहेगा।

मौलवी साहब ! मैं भी तो यही कहता हूं कि मेरा सवाल आपसे क़यामत तक भी हल नहीं हो सकता। और जब तक आप एक मुस्लिम शास्त्रार्थकर्त्ता की हैसियत से मेरे सामने खड़े हैं, आपके लिए यह सवाल बिल्कुल हल होने के बाहर है। क्यों साहेबान् ! आपने जलसा में देख लिया, कि मेरे जो आज वाले प्रश्नों के जवाब मौलवी साहब देने में कैसी मजबूरी जाहिर कर रहे हैं ? और अपनी जुबान से यह मान रहे हैं कि मेरा यह सवाल भी मेरे पहले सवाल की तरह हल नहीं हो सकता। आपको याद होगा मैंने शुरू में ही दावा किया था कि मौलवी साहब मेरे एक भी सवाल का जवाब नहीं दे सकेंगे। और मैं खुश हूं कि मौलवी साहब ने अपनी जुबान से मेरे इस दावे पर सदाकत (सच्चाई) की मोहर लगा दी है। क्योंकि अब तक मेरे दस–पन्द्रह सवालों में से आपने सिर्फ़ दो सवालों को हल करने की नाकाम कोशिश की है, और आपने अपने कानों से दोनों दफा मौलवी साहब को साफ शब्दों में यह मानते हुए सुन लिया है कि इन दोनों सवालों का कोई हल

नहीं हो सकता। और यह कि दोनों सवाल हर सूरत में ज्यों के त्यों बने रहेंगे। चाहे कोई उनका कितना भी जवाब दे। लेकिन इससे आप यह न समझें कि मौलवी साहब खुदा न ख़ासता किसी अयोग्यता की वजह से इन सवालों का जवाब नहीं दे सकते बल्कि मौलवी साहब खुद एक विद्वान व क़ाबिल व्यक्ति हैं। लेकिन बेचारे मजबूर हैं क्योंकि इस्लाम की कमजोरियों व कमजोर सिद्धान्तों को सही (मजबूत) साबित नहीं कर सकते जिसमें इन बेचारे मौलवी साहब का कोई कसूर नहीं है।

श्री मौलवी अबुलफरह साहब –

देखिए डॉक्टर साहब ने फिर वही बात दोहराई कि मेरे सवालों का जवाब नहीं देते। मैं एक–एक इस्लामी उसूल पर महीनों और सालों बहस कर सकता हूँ, दो–चार दिन डाक्टर साहब बहस करें तो हक़ीक़त मालूम हो। इस्लाम के सिद्धान्त कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं। आज यूरोप के बड़े–बड़े दर्शनिक इनको मान रहे हैं। और दुनियां भर पर इस्लाम का दबदबा है। आप बच्चे बनते हैं, यू नहीं कहते कि न मालूम आपने कितने बच्चे जन्माये होंगे। आपने जो कहा है कि हज्ज़ में कन्धे क्यों हिलाते हैं ? कंकरियाँ क्यों फेंकते हैं ? कंकरियाँ फेंकने की वजह ये है कि पहले अरब में पत्थरों से भी लड़ाई हुआ करती थी, सो पैगेम्बर–खुदा ने मुसलमानों को हुक्म दिया कि तुम भी पत्थर मारो। बस ये कंकरियां फेंकना, पत्थरों वाली लड़ाई के लिए तैयार होना है। ....जनता में हंसी.............. कन्धे हिलाने से ये मतलब है कि पहले अरब के काफ़िर जब हजरत साहब के पास आते थे तो वे अपनी आस्तीनों में मूर्ति छुपा–छुपाकर ले आया करते थे। इस पर हजरत ने कन्धे हिलाकर खाना काबा में दाखिल होने का हुक्म दिया, ताकि किसी की बगलों या आस्तीनों में बुत (मूर्तियां) छुपी हुई हों तो वह नीचे गिर पड़ें। और काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) से जो आपने बताया की गुनाह माफ़ होते हैं। सो यह बिल्कुल गलत है। और संगेअसवद को बोसा देने के विषय में, मैं पहले ही कह चुका हूं कि महज इसलिए बोसा दिया जाता है कि हज़रत मोहम्मद साहब के हाथ इस पत्थर से स्पर्श हुए थे। इसलिए हम मुसलमान लोग इसे मुतबर्रिक (पवित्र) मानते हैं।

और ये एक आम बात है कि अपने बुजुर्गो के समय की चीज़ या निशानी को दुनियां में सब लोग अज़ीज समझते हैं। और हम मुसलमान इसे इज्ज़त के काबिल समझ कर मुंह इसलिए लगाते हैं कि हज़रत ने इसे हाथ लगाया था। और ये बात भी गलत है कि हज्ज से गुनाह माफ होते हैं। कोई चीज किसी का बोझ हलका नहीं कर सकती, न काबा किसी के गुनाह माफ करा सकता है, और न कोई और माफ़ करा सकता है।

गुनाहों की सजा हर एक को जरूर मिलेगी। और इससे कोई नहीं बच सकता, और ये तो एक मामूली बात है कि हर अच्छे उत्सव में जाने से इन्सान गुनाहों (बुराईयों) से बच सकता है। क्योंकि जितनी देर वह सत्संगति में रहेगा वह बुराई नहीं कर सकेगा, और शिवालय में हर एक मूर्ति के आंख–कान–नाक होते हैं, और बुत (मूर्ति) उसी को कहते हैं कि जिसके चेहरा हो। बस इसलिए संगेअसवद बुत नहीं हो सकता।... ....मौलवी साहब समय पूरा किए बिना ही बैठ गये...............

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

सम्मानित उपस्थित सज्जनों ! इससे पहले कि मैं मौलवी साहब जी की किसी बात का जवाब दूं, मैं चाहता हूं कि सबसे पहले मौलवी साहब और आपके तमाम साथी मुसलमानों को हृदय से बधाई दूं, क्योंकि हम तो आज तक यही सुनते आये थे, कि इस प्रकार के बहस–मुबाहिसों से कुछ नतीजा ही नहीं निकला करता, लेकिन शुक्र है कि इस चन्द घन्टों के शास्त्रार्थ से और कुछ नहीं तो, कम से कम एक तो बहुत ही अच्छा परिणाम निकला है। वो यह कि इतनी देर की बहस के बाद मेरे प्यारे दोस्त मौलवी साहब ने बड़े

विशाल हृदय के साथ एक बड़े जबर्दस्त वैदिक सिद्धान्त के सामने सिर झुका लिया है। और वो वैदिक सिद्धान्त ये हैं कि गुनाहों को कोई व्यक्ति या चीज माफ़ नहीं करवा सकती हालांकि इस्लाम का कौमी सिद्धान्त है कि तौबा पैगाम्बरों की शिफ़ाअत (गुण) वा हज्ज वगैरा से पिछले गुनाह बख्शे जा सकते हैं। मैं कहता हूं कि क्या इस्लाम के एक इतने बड़े सिद्धान्त से सर फेर कर मौलवी साहब का वैदिक सिद्धान्त ग्रहण करना, सचमुच मौलवी साहब की इख़्लाखी ताकत का यह एक बहुत बड़ा सबूत है।

क्या एक भरी सभा में और वह भी एक मुसलमानी मंच पर खड़े होकर मौलवी साहब का इस आजादी व निर्भयता के साथ इस्लाम के एक बुनियादी सिद्धान्त से इन्कार करके वैदिक सिद्धान्त की शरण में आना कुछ कम हिम्मत का काम नहीं है। ....श्रोताओं में तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गूंज उठा........। बस ! मैं इस इख़्लाकी जुर्रुत व हक़पसन्दी पर मौलवी साहब को खासकर और बाकी सब मुसलमानों को आमतौर से सहृदयता से मुबारिकवाद देता हुआ उम्मीद करता हूं कि अगर मुसलमानों ने इसी तरह तहकीक़े हक़ (सच्चाई) के लिए आर्य समाज के साथ कुछ रोज और बहस–मुबाहिसे जारी रक्खे तो वह दिन दूर नहीं हैं जब हमारे बिछुड़े हुए भाई नये सिरे से वेदों की शान के सामने सिर झुका कर हमारे गले लगने के लिए तैयार होंगे। अब रहा मसला निश्चित विषय की बहस का ! मुझे आपकी सेवा में इतना ही कहना है कि ये पहला वक़्त शास्त्रार्थ की शर्तों के अनुसार आर्य समाज को इस्लाम पर ऐतराज करने के लिए दिया गया था, इसलिए मैंने वकील की हैसियत से आर्य समाज की ओर से इस्लाम पर पन्द्रह ऐतराज़ किए, जो आपने सुन लिए हैं, मेरे इन पन्द्रह ऐतराजात् में से तीन घण्टों में सिर्फ़ दो ऐतराजों के जवाब देने की कोशिश की, लेकिन आख़िर अपनी जुबान से ही इकरार कर लिया अर्थात् मान लिया कि इन ऐतराजात् का कोई जवाब ही नहीं हो सकता। और ये ऐतराजात् हर सूरत में ज्यों के त्यों क़ायम रहेंगे।

ये सब कुछ आपने अपने क़ानों से सुना और आंखो से देखा। अब मैं इन्साफ़ आप ही पर छोड़ता हूं कि आप ही बतलाइए कि आर्य समाज की इस्लाम पर इससे बढ़कर खुली जीत और क्या हो सकती है ? और इस्लाम की कमज़ोरी का इससे बढ़कर और क्या सबूत हो सकता है, कि उसका वकील खुद मेरे सवालों को लाहल (जिसका कोई हल नहीं) मानता है। और अपनी मुसन्नद वा मुस्सल्लमा हदीस मुस्लिम के हुकम पर अपनी बेतुकी दलील को मान्यता देता है। अब रही मौलवी साहब की हज्ज के विषय में दिलचस्प दलीलें। सो दरअसल मेरा इरादा इनको बहस में लाने का न था, क्योंकि ये सब ताबीले (सफाइयां) मनघडन्त हैं। और किसी एक ताबील (सफ़ाई) के लिए भी मौलवी साहब ने कोई हदीस या आयत या कुरान की कोई आयत पेश नही की। हालांकि मैंने अब तक कोई बात बिना प्रमाण या हवाले के नहीं कही। बस ! दरअसल मौलवी साहब की मनघडन्त ताबीलों (सफ़ाइयों) पर बहस करने की कोई जरूरत न थी। लेकिन यह मैंनें ख्याल करके इन झूठी ताबीलों (सफ़ाईयों) की भी कलई खोलनी ठीक समझी क्योंकि मेरे असल सवालों का तो मौलवी साहब क़यामत तक भी जवाब नहीं दे सकेंगे। चलो यही सही, पब्लिक का समय तो व्यर्थ न जावेगा, कुछ तो पब्लिक को जानकारी मिलेगी, और मैं खुश हूं कि इन ताबीलों पर बहस करने से भी हमें बड़ा फायदा हासिल हुआ है। यानी पहले तो मौलवी साहब ने इस्लाम के एक बड़े सिद्धान्त को इन हजारों मुसलमानों की उपस्थिति में साफ़ जवाब दे दिया है, दूसरा मसला ज़िहाद (लड़ाई) को जिससे आज आमतौर पर मुसलमान जी चुराते हैं, जरूरी मान लिया। अब ये मेरी इस मुबाहिसे में आखिरी तक़रीर है। इसके बाद मौलवी साहब तकरीर क़रेंगे। और फिर इसके जवाब का मुझे मौका न मिलेगा।

इसलिए मैं इसका जवाब भी अभी दिये देता हूं। क्योंकि मैं पहले ही से ज़ान गया हूं कि मौलवी साहब मेरी इस तक़रीर का क्या जवाब देंगे ?

क़ासिद के आते-आते, इक़ खत और लिख रक्खूं।
मैं खूब जानता हूं, वो जो कुछ लिखेंगे जवाब् में ।।

गौर से सुनिये ! और नोट कर लीजिये कि मौलवी साहब अब अपनी आख़िरी तक़रीर (व्याख्यान) में मेरे किसी ऐतराज का जवाब तो देंगे नहीं। क्योंकि जब आप तीन घण्टे में एक भी सवाल का जवाब न दे सके तो अब पन्द्रह मिनट मे क्या तीर मारेंगे ? हां ! अपनी इस तक़रीर में मौलवी साहब बजाय किसी ऐतराज़ का माकूलियत से जवाब देने के ब्लकि दो-चार इधर-उधर की ही कहेंगें। दस-पांच झूठी ताबीलें (सफाईयां) घड़ेगें, दस-बीस मुझे गालियां देंगे। और वक्त पूरा करके बैठ जायेंगे।

और इन बातों के जवाब देने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता, और आपकी हक़पसन्दी व मुन्सिफ़ मिज़ाजी पर इन तीन घण्टों की बहस का फैंसला आप लोगों पर छोड़कर बैठ जाता हूं । अब आप मौलवी साहब के तीर देखिये वो, कैसे-कैसे चलते हैं !

श्री मौलवी अबुलफरह साहब –

जनाब ! आप जायेंगे कहां ? मैं तो आपका आगरा तक पीछा न छोडूंगा, और वहां जाकर भी आपकी खबर लूंगा। मैं आप पर मुकदमा चलाऊंगा, आप मुझे जानते नहीं, मेरा नाम अबुलफ़रह है। आप मुझे नहीं जानते, और मैं आपको खूब जानता हूं। आपकी योग्यता ही क्या है ? जो आप इस्लाम पर ऐतराज़ कर सकें, जबकि आज तमाम दुनियां इस्लाम का लोहा मान रही है। और पूरब से लेकर पश्चिम तक सारी जमीन पर इस्लाम फैला हुआ है, आपने डींग मारी कि मेरे एक भी सवाल का जवाब नहीं दिया गया, यही कह कर चले जाना कि मेरे सवालों का जवाब नहीं मिला ! जवाब नहीं मिला !! इससे क्या होता है ? आपके ऐसे सवाल ही कौन से थे जिनका जवाब दिया जाता ?

पब्लिक ने डॉक्टर साहब को खूब देख लिया है, कि आपकी असलियत क्या है ? दो-चार किताबें पढ़कर आप भी आलिम (विद्वान) बन बैठे हैं। ईसाइयों की किताबें पढ़कर इस्लाम पर ऐतराज करने चल दिये।

अजी जनाब ! आपने इस्लाम को अभी तक समझा ही नहीं, अगर किसी आलिम (विद्वान्) से समझ लेते तो आपको ऐतराज ही कोई न रहता और माशाअल्ला ! आप कहते हैं की मैंने पैग़ाम्बर की अज़मत (महत्ता) से इन्कार कर दिया। तौबा ! तौबा !! मेरी तौबा !!! इतना बड़ा झूठ !!! अगर आप ये समझ लेते कि गुनाह कितने किस्म का है तो मुझ पर दोष न लगाते कि मैंने गुनाहों की माफ़ी से इन्कार किया है। जनाब गुनाह शग़ीरा (छोटा) व क़बीरा (बड़ा) दो तरह के होते हैं, जिसमें से शग़ीरा गुनाह माफ हो सकते हैं। क़बीरा नहीं। और ज़िहाद (लड़ाई) के बारे में आपने महज गलत और पब्लिक को धोखा देने के लिए कहा है, कि ज़िहाद (लड़ाई) हमारे यहां इजाज़त हैं। मैं आपको एक हजार रुपया इनाम देता हूं अगर आप कुरानशरीफ़ से एक आयत भी ज़िहाद की दिखला दें। .... बीच में ही डॉक्टर साहब ने कहा ....

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

इस मौके पर डॉक्टर साहब ने बैठे ही बैठे कहा कि...........आप कुछ भी न दें, मगर मुझे सिर्फ़ इजाज़त दें, मै अभी-अभी आपको एक क्या दस-पांच आयतें कुरान के अन्दर से दिखला सकता हूं।

श्री मौलवी अबुलफरह साहब –

मौलवी साहब ने गर्ज कर कहा ....खामोश ! आपको मेरे वक्त में बोलने का कोई हक़ नहीं है। आपको याद होना चाहिए कि मैंने शास्त्रार्थ के शुरू में ही आपको वह शैर दोबारा पढ़कर सुनाने के लिए कहा था, मगर आपने मुझे वह शैर सुनाना तो दूर बल्कि बोलने पर भी मना कर दिया था, तथा एक जबर्दस्त

नसीहत भी दी थी कि–"**ऐसा करना सभ्यता के विरुद्ध है**" क्या अब आप वह अपनी कही गयी बात भूल गये ? जलसे में उपस्थित लोगों ! आपको महज धोखा दिया जा रहा है कि कुरान में जिहाद (धार्मिक लड़ाई) की तालीम मौजूद है। "**कुरान में ज़िहाद व फ़िसाद की कोई तालीम मौज़ूद नहीं है***"। बल्कि मुसलमान तो सरकार की एक वफ़ादार प्रजा हैं। और सरकार के लिए मुसलमानों का बच्चा–बच्चा अपनी जान तक देने के लिए तैयार है। इस्लाम तमाम दुनियां में अपनी सच्चाई की वजह से फैला है न कि ज़िहाद व फ़िसाद की ! मेरे इन्हीं लफ़्जों के साथ यह मुबाहिसा समाप्त होता है।

नोट -

* यहां पर मौलवी साहब का ये कहना कि – "कुरान में जिहाद व फिसाद की कोई तालीम मौजूद नहीं है," मौलवी साहब का यह कहना कहाँ तक सच है ? मैं कुरान की चन्द आयतें अर्थ सहित यहां पेश कर रहा हूँ। आप स्वयं ही पढ़ कर गौर फरमायें और देखें कि कुरान तमाम दुनियां को कितना "उम्दा" शान्ति का उपदेश दे रहा है ?

१ (जो लोग तुमसे लड़ते हैं) ....उनको जहाँ पाओं कत्ल करो, और जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला है (यानि मक्का से) तुम भी उनको (वहाँ से), निकालो और फित्नः (फसाद का कायम रहना) खून बहाने से भी बढ़कर (बुरा) हैं। और जब तक काफिर मस्जिदे हराम (अदब वाली मस्जिद) के पास तुमसे न लड़ें तुम भी उस जगह उनसे न लड़ो, लेकिन अगर वह लोग तुम से लड़ें, तो (तुम भी) उनको कत्ल करो। (ऐसे) काफिरों का यही बदला है।

(पारा-२, रकु-२, (अलबकरा) आयत १६१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद-पृष्ठ संख्या १५७ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६७)

२. फिर अगर वह बाज़ आ (मान) जायें तो बेशक अल्लाह बहुत क्षमा करने वाला बेहद मेहरबान है।

(पारा-२, रकु-२, (अलबकरा) आयत १६२, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद-पृष्ठ संख्या १५७ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६७)

३. और यहां तक उनसे लड़ो कि फ़सांद (की जड़) बाकी न रहे और (सब जगह) एक अल्लाह ही का दीन हो जाये, फिर अगर (फ़साद) छोड़ दें, (तो) जालिमों के सिवाय किसी पर जियादती (ज़ायज) नहीं।

(पारा-२, रकु-२, (अलबकरा) आयत १६३, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद-पृष्ठ संख्या १५८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६७)

४. यकीनन जिन लोगों ने हमारी आयतों (को मानने) से इन्कार किया हम उनको जल्दी ही (दोज़ख की) अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें (जलकर) पक जायेंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का रसास्वादन कर लें। निःसन्देह अल्लाह प्रभुत्वशाली, (तथा) तत्वदर्शी है।

(पारा-५ रकु-४, (अन-निसा) आयत ५६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद-पृष्ठ संख्या २३१ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १५६)

५. वे चाहते हैं कि जिस तरह से वे काफ़िर हुए हैं उसी तरह से तुम भी काफ़िर हो जाओ, फिर तुम एक जैसे हो जाओ तो उनमें से किसी को (अपना) साथी न बनाना जब तक कि वे अल्लाह की राह में हिज़रत न करें और यदि वे इससे फिर (मुकर) जावें तो उन्हें जहाँ कहीं (वहीं) पकड़ो और उनका वध (कत्ल) करो उनमें से किसी को (अपना) साथी और सहायक मत बनाना।

(पारा-५, रकु-४, (अन-निसा) आयत ८६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद-पृष्ठ संख्या २३७ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १६७)

६. अगर तुमसे किनारा खींचे न रहें और न सुलह करें ओर न हाथ रोकें, तो उनको पकड़ो और जहाँ पाओ उनको कतल करो और यही (वे) लोग हैं जिन पर हमने तुमको खुला अधिकार दे रक्खा है।

(पारा-५, रकु-४, (अन-निसा) आयत ९१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २३७ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १६७)

७. .... निःसन्देह काफ़िर (ग़ैर मुस्लिम) तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।

(पारा-५, रकु-४, (अन-निसा) आयत १०१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २३६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १७१)

८. और जो लोग अपने को ईसाई कहते हैं, हमने (इसी तरह) उनसे (भी) वचन लिया था, तो वह भी जो कुछ उनको शिक्षा दी गई थी उसका एक (बड़ा) हिस्सा भूल गये। फिर हमने उनमें दुश्मनी और ईर्ष्या (की आग) क़यामत के दिन तक के लिए लगा दी, और अल्लाह जल्द ही उनको बतला देगा जो कुछ वह करते रहे।

(पारा-६, रकु-५, (अलमाइदा) आयत १४, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २६० तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १९५)

९. जो लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर (रसूल) से लड़ते हैं और फ़साद फैलाने की ग़रज से मुल्क में दौड़े फिरते हैं, (यहाँ मुल्क का अभिप्राय उस देश से हैं जहाँ की सारी प्रबन्ध व्यवस्था इस्लामी हुकूमत पर आधारित है) उनकी सजा तो यही है कि (उन्हें) मार डाले जाएँ या उनको सूली दी जाए या उनके हाथ पाँव खिलाफ जानिब से काट दिये जायें (यानि सीधा हाथ काटा जाये तो बायाँ पैर काटा जावे या बायाँ हाथ तो तब सीधा पैर) या उनको देश निकाला दिया जाये। यह तो दुनियां में उनकी दुर्दशा हुई। (परन्तु) आखिरत में (उनके लिए) बड़ी–बड़ी सज़ा (तैयार) है।

(पारा-६, रकु-५, (अलमाइदा) आयत ३३, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २६३ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या १९६)

१०. हे ईमान लाने वालों (मुसलमानों) तुम यहूदियों और ईसाइयों को मित्र न बनाओ। ये आपस में एक दूसरे के मित्र हैं और जो कोई तुममें से उनको मित्र बनायेगा वह उन्हीं में से होगा ....।

(पारा-६, रकु-५, (अलमाइदा) आयत ५१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २६७ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या २०५)

११ हे ईमान लाने वालों! काफ़िरों को अपना मित्र मत बनाओ। अल्लाह से डरते रहो, यदि तुम "ईमान" वाले हो।

(पारा-६, रकु-५, (अलमाइदा) आयत ५७, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या २६८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या २०७)

१२. (ऐ पैग़म्बर!) .... काफ़िरों से कह दो कि अगर (वे) कुफ्र (करने) से बाज़ आ जायें तो उनके पिछले (गुनाह) माफ़ कर दिये जायेगें, और अगर फिर वही (हरकत) करेगें तो अगले (गुनहगार) लोगों की (सजा की) रीति पड़ चुकी है। (जैसा उनके साथ हुआ है वैसा ही इनके साथ भी होगा)।

(पारा-१०, रकु-८, (अल-अनफाल) आयत ३८,, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद-पृष्ठ संख्या ३५४ तथा किताबघर - लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३०६)

१३. और काफ़िरों (गैर मुस्लिमों) से लड़ते रहो, यहां तक कि (मुशरिकीन अरब का) फ़साद (यानी शिर्क) बाकी न रहे और सब (जगह) अल्लाह ही का दीन हो जाये। पस ! अगर वह बाज़ आवें तो जो कुछ यह लोग करेंगे अल्लाह उसको देखने वाला है।

(पारा-१०, रकु-८, (अल-अनफाल) आयत ३६,, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३५४ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३०६)

१४. हे नबी ! ईमानवालों (मुसलमानों) को लड़ाई पर (के लिए) उभारो, यदि तुममें २० जमे रहने वाले होंगे तो वे २०० पर प्रभुत्व प्राप्त करेंगे। और यदि तुममें १०० हों तो वे १००० काफ़िरों पर भारी रहेंगे। क्योंकि वह ऐसे लोग हैं जो समझ बूझ नहीं रखते।

(पारा-१०, रकु-८, (अल-अनफाल) आयत ६५,, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३५८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३१५)

१५. तो जो कुछ गनीमत (लूट) का माल तुमने हासिल किया है उसे हलाल व पाक समझ कर खाओ और (आगे के लिए) अल्लाह से डरते रहो ....।

(पारा-१०, रकु-८, (अल-अनफाल) आयत ६६,, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३५६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३१७)

१६. फिर जब हराम के महीने (मियाद वाले अदब के चार महीने) बीत जायें तो मुश्रिकों को जहां कहीं पाओ कतल करो और उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो। और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो फिर यदि वे तौबा कर लें और नमाज कायम करें और जकात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो। निःसन्देह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ५, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३६८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३१६)

१७. ऐ ईमान वालों ! इन लोगों (काफ़िरों) से लड़ो, यहां तक कि अल्लाह तुम्हारे ही हाथों इनको सजा दे, और इनको जलील (बेइज्जत) करे, और इन पर तुमको जीत दे, ओर कितने ही ईमान वालों के दिलों को ठण्डा करे।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत १४, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३६६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३२१)

१८. हे ईमान लाने वालों ! (मुसलमानों) अपने बापों और भाईयों को अपना मित्र मत बनाओ यदि वह ईमान की अपेक्षा कुफ्र को पसन्द करें और तुममें से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा तो ऐसे ही लोग जालिम (अनाचारी) होगें।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत २३, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३७० तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३२३)

१६. हे ईमान लाने वालों ! मुश्रिक (मूर्तिपूजक) तो नापाक हैं। तो इस वर्ष के पश्चात् ये "मस्जिदे हराम" (काबा) के पास न फटकनें पायें।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत २८, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३७१ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३३५)

२०. ऐसे किताब वाले (धर्मग्रन्थ से युक्त) जो न अल्लाह पर ईमान लाते हैं और न आखिरत के दिन पर, और न अल्लाह और उसके पैगम्बर की हराम की हुई चीज़ों को हराम समझते हैं, और न सच्चे दीन (मुस्लिम धर्म) को मानते हैं, उनसे लड़ो, (तब तक) यहां तक कि अपने हाथों से ज़ज़िया (टैक्स) भी दें और ज़लील (बेइज्जत) भी होवें।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत २६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३७२ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३२५)

२१. अल्लाह "काफ़िर" लोगों को मार्ग नहीं दिखाता ....।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ३७, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३७४ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३२७)

२२. हल्के और बोझिल (हथियार कम या जियादः, जिस हालत में भी हो पैगम्बर के बुलाने पर) निकल खड़े हुआ करो, और अपनी जान व माल से अल्लाह की राह में ज़िहाद (धर्म युद्ध) करो। अगर तुम समझ वाले हो तो यह तुम्हारे हक में बेहतर है।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ४१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३७५ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३२६)

२३. अल्लाह ने इन मुनाफिक (धर्म मुस्लिम) पुरूषों और मुनाफिक स्त्रियों और काफ़िरों से जहन्नम (नर्क) की आग का वादा किया है जिसमें वे सदा रहेंगे। यही उन्हें बस है। अल्लाह ने उन्हें लानत की और उनके लिए (यही) स्थायी यातना है।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ६८, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३७६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३३५)

२४. उन लोगों की तरह जो तुमसे पहले थे, वे तुमसे शक्ति में बढ़कर थे, और ज्यादा माल और औलाद वाले थे फिर उन्होंने अपने हिस्से के मजे लूट लिये और तुमने भी अपने हिस्से के मजे उसी तरह लूटे जिस तरह तुमसे पहले के लोगों ने लूटा था। और उसी प्रकार बहसों में पड़े जिस प्रकार बहसों में वे पड़े थे, ये वे लोग हैं जिनका किया धरा दुनियां और आखिरत में अकारथ गया। और यही घाटा उठाने वाले हैं।

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ६६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ३८० तथा कितायघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३३५)

२५. हे नबी ! काफ़िरों और मुनाफिकों के साथ ज़िहाद (धर्मयुद्ध) करो और उन पर सख्ती करो और उनका ठिकाना ज़हन्नुम (नर्क) है और वह क्या ही बुरा ठिकाना है .... ?

(पारा-१०, रकु-६, (अत-तौबा) आयत ७३, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ सं. ३८० तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३३७)

२६. ऐ ईमान वालों ! अपने आस पास के काफ़िरों से लड़े जाओ और चाहिए (कि तुम्हारा रवैया पहले की अपेक्षा अब जियादः सख्त हो) कि वह तुमसे (अपनी बाबत) सख्ती महसूस करें।

(पारा-११, रकु-६, (अत-तौबा) आयत १२३, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३६१ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३४६)

२७. निःसन्देह अल्लाह ने ईमान वालों (मुसलमानों) से उनके प्राणों और उनके मालों को इसके बदले में खरीद लिया है कि उनके लिए जन्नत (स्वर्ग) है। वे अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं तो मारते भी हैं और मारे भी जाते हैं।

(पारा-११, रकु-६, (अत-तौबा) आयत १११, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ३८८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ३४७)

२८. (काफ़िरों ! उस रोज़)................. तुम, और जिन चीजों को अल्लाह के अलावा पूजते हो, यह सब दोज़ख (नरक) की आग का ईधन बनेंगे, और तुम सबको उसमें दाखिल होना होगा।

(पारा-१७, रकु-२१, (अल-अम्बिया) आयत ६८, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ५८५ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ५५१)

२६. यह दो (फ़रीक) हैं एक दूसरे के आपस में विरूद्ध, अपने परवरदिगार (के बारे) में झगड़ते हैं (एक फ़रीक अल्लाह को मानता है और एक नहीं मानता) तो जो लोग (अल्लाह को) नहीं मानते (वह काफ़िर हैं) उनके लिये आग के कपड़े ब्योंते गए हैं (यानी आग उनके बदन से ऐसे लिपटेगी जैसे कपड़ा)। उनके सिरों पर खोलता हुआ पानी डाला जायेगा।।१६।। जिससे जो कुछ उनके पेट में है और (उनकी) खालें गल जायेंगी।।२०।। और उनके (मारनें के) लिये लोहे के गुर्ज होंगे।।२१।। वह (इस दोज़ख के दुःख और) इस घुटन से जब निकलना चाहेंगे तो उसी में फिर ढकेल दिये जावेंगे। और (उनसे कहा जायेगा कि बस हमेशा के लिए) जलने की सज़ा का अज़ाब चखते रहो।।२२।।

(पारा-१७, रकु-२२, (अल-हज्ज) आयत १६ से २२, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ५६२ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ५५८ तथा ५५६)

३०. और जो इन्कार करते और हमारी आयतों को झुठलाते रहे तो यही है जिनको जिल्लत की सजा होगी।

(पारा-१७, रकु-२२, (अल-हज्ज) आयत ५७, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ५६८ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ५६५)

३१. यह इसलिये है कि अल्लाह ही सत्य है और (ये काफ़िर) अल्लाह के सिवाय जिनको (दूसरों को) पुकारते (पूजते) हैं वह सब असत्य हैं और (यह इसलिए कि) अल्लाह ही सर्वोपरि और महान है।

(पारा-१७, रकु-२२, (अल-हज्ज) आयत ६२, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ५६६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ५६६)

३२. आग उनके (काफ़िरों के) मुहों को झुलसाती होगी और उसमें उनके चेहरे बिगड़ गये होंगे।।१०४।। (वे पुकारेंगे कि) ऐ हमारे परवरदिगार ! हमको इस (आग) से निकाल और अगर हम फिर ऐसा करें

तो बेशक गुनहगार होंगे।।१०७।। (और तब अल्लाह) फरमायेगा–इसी (आग) में जिल्लत के साथ पड़े रहो और मुझसे बात न करो।।१०८।।

(पारा-१८, रकु-२३, (आल-मोमिनून) आयत १०४, १०७ व १०८, मक्तबा अलहरानात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ६१३ तथा किताबघर - लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरानशरीफ की पृष्ठ संख्या ५६१)

३३. और उससे बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जिसे उसके रब की आयतों के द्वारा चेताया जाये और फिर वह उनसे मुंह फेर ले। निश्चय ही हमें ऐसे अपराधियों से बदला लेना है।

(पारा-२१, रकु-३२, (अस-सज़दा) आयत २२, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ७३६ तथा किताबघर-लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६६७)

३४. और जिस दिन अल्लाह उन (काफ़िरों) को और (उनके पूजितों अर्थात देवी–देवताओं को), जिनको यह अल्लाह के सिवाय पूजते हैं, जमा करेगा, फिर (इनके देवी देवताओं से) पूछेगा कि आया तुमने मेरे इन बन्दों को गुमराह किया था या यह (आपसे) आप गुमराह हो गये थे ?।।१७।। इनके (देवी देवता) कहेंगे कि तेरी जात पाक है, हमको यह बात किसी तरह शोभा नहीं देती थी कि (हम) तेरे सिवाय (अपने) दूसरे काम संभालने वाले बनाते (फिर भला इनसे हम कैसे कहते कि अल्लाह के सिवाय हमारी भी पूजा करो ?) बल्कि तूने इनको और इनके बाप दादा को (दुनियां में बसर करने को) आराम चैन दी, यहां तक कि वह (तेरी) याद को भुला बैठे और यह लोग (खुद ही इस शिर्क (मूर्ति पूजा) के जिम्मेदार हैं) तबाह होने वाले थे।।१८।। (काफ़िरों अर्थात् गैर मुस्लिमों से कहा जायेगा) सो तुम्हारे इन पूज़ितों ने तुमको सारी बातों में झूठा साबित कर दिया। बस, अब तुम न तो (हमारी सजा को) टाल सकते हो और न, (किसी से) मदद ले सकते हो। और जो तुममें से (शरीक अल्लाह बनाकर) जुल्म करेगा हम उसको बड़े अज़ाब का मज़ा चखायेंगे।।१६।।

(पारा-१६, रकु-२५, (अल-फुरकान) आयत १७ से १६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ६३८ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६०१)

३५. फिटकारे हुए (गैर मुस्लिम) जहां कहीं पाए जाएंगे, पकड़े जाएंगे और बुरी तरह कतल किए जायेंगे।

(पारा-२२, रकु-३३, (अल-अहज़ाब) आयत ६१, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ७५६ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ७०५)

३६. तो जो लोग इन्कार करने वाले हैं हम (भी) उनको सख्त अजाब का मज़ा चखायेंगे और उनके कामों का जो वह करते थे बुरा बदला देंगे।।२७।। यह अल्लाह के दुश्मनों का बदला है यानी जहन्नुम की आग; उनके लिये इसी में हमेशा (रहने) का घर है। यह बदला इस वजह से है कि वह हमारी आयतों (के मानने) से इन्कार करते थे।।२८।।

(पारा-२४, रकु-४१, (हा. मीम. अस सज़दा) आयत २७-२८, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मजीद पृष्ठ संख्या ८६५ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ७६१ तथा ७६३)

३७. बेशक सेहुंड (थूहड़) का पेड़!।।४३।। (यह) पापी का खाना होगा।।४४।। जैसे पिघला तांबा (खौलता है उसी तरह) पेटों में खौलेगा।।४५।। जैसे खौलता पानी!।।४६।। (हम फरिश्तों को आज्ञा देगें कि)

इसको पकड़ो और घसीटते हुए दोज़ख (नर्क) के बीचो बीच ले जाओ।। ४७।। फिर इसके सिर पर खौलता हुआ पानी का अज़ाब डालो।। ४८।। (अब) मजा चख तू (ही तो दुनिया का) बड़ा इज्जत वाला सरदार है (न ?) ।। ४६।।

(पारा-२५, रकु-४४, (अद-दुखान) आयत ४३ से ४६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ६०७ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ८२१)

३८. ऐ पैगम्बर ! काफ़िरों और **"मुनाफिको"** के साथ **"जिहाद"** करो, और उनपर सख्ती करो, और उनका ठिकाना जहन्नुम है, और बुरी जगह है जहां पहुंचे।

(पारा-२८, रकु-६६, (अत-तहरीम) आयत ६, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या १०५५ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ६२६)

३६. अल्लाह ने तुमसे बहुत–सी गनीमतों (लूट के माल) का वादा किया है जो तुम्हारे हाथ आयेंगी।

(पारा-२६, रकु-४८, (अल फतह) आयत २०, मक्तबा अलहसनात नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कुरान मज़ीद पृष्ठ संख्या ६४३ तथा किताबघर-लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित कुरान शरीफ की पृष्ठ संख्या ८४६)

नोट –

अतः उपरोक्त कुरान की आयतों से साफ पता चलता है कि इनमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, कपट, लड़ाई, झगड़ा, ज़िहाद, फिसाद, लूटमार और हत्या करने के स्पष्ट आदेश मिलते हैं जिनके कारण तमाम दुनियां में हर जगह मुस्लिमों व ग़ैर मुस्लिमों के बीच दंगे व फ़िसाद हुआ करते हैं।

विदुषामनुचर :–

"लाजपत राय अग्रवाल"
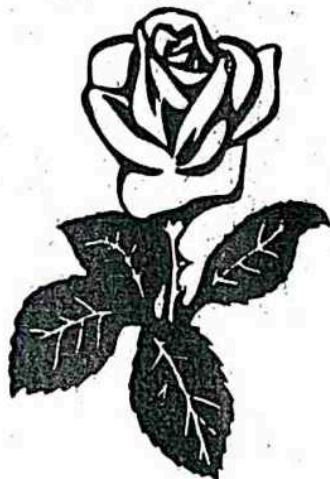
तैंतालिसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "मक्खनपुर", जिला–मैनपुरी (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : २१ मार्च सन् १६१२ ई॰ (रात्रि ७ से ६ बजे)
विषय : क्या आर्यसमाज के नियम वेदानुकूल हैं ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्यमुसाफिर
शास्त्रार्थकर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलवी अबुलफ़रह साहिब, पानीपती
सहायक : श्री मौलाना अब्दुल मजीद साहिब
मीर मज़लिस अर्थात् शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री बाबु रामस्वरूप साहब गुप्ता
रिटायर्ड – तहसीलदार, तथा
डाईरैक्टर – ग्लास मैन्युफैक्चरिंग फैक्टरी लिमिटेड
मक्खनपुर (उत्तर–प्रदेश)

शास्त्रार्थ से पहले

भाईयों ! दोपहर दो बजे से सायं पांच बजे तक किये गये शास्त्रार्थ के परिणामस्वरूप वहां मौजूद सारे मुस्लिम समुदाय में एक आत्मग्लानी व अजीबो गरीब सा माहौल था, हर मुसलमान के चेहरे पर इस्लाम की दुर्बलता की झलक साफ नज़र आ रही थी, तभी उन सभी मुसलमान भाईयों ने श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब की सेवा में अपनी अर्ज़ पेश की, कि अगर आप मुनासिब समझें तो हम लोग आगे रात्रि में होने वाले मुबाहिसे को कल पर टाल दें, और इस बीच अमृतसर से **"मशहूर मनाज़िर, श्री मौलाना सनाउल्ला साहब"** को या देवबन्द मदरसे से किसी अच्छे आलिम फ़ाज़िल को आपकी मदद के लिए बुला लायें जिससे इस्लाम की नैय्या को डूबने से बचाया जा सके। बस ! फिर क्या था ? इतना सुनते ही मौलवी अबुलफ़रह साहब आग बबूला हो उठे, और उन्होंने अपने मुसलमान भाईयों के इस प्रस्ताव को अपनी तौहीन समझा। तथा उनसे कहने लगे कि आप लोग अब रात की मज़लिस में देखना मैं किस क़दर इस डॉक्टर के छक्के छुड़ाता हूँ ? आप लोगों को अभी पता नहीं है, मैंने कृपाराम शर्मा (स्वामी दर्शनानन्द) जैसे दिग्गज़ों को पछाड़ा हुआ है ये डॉक्टर तो है किस खेत की मूली ! आप लोग अब रात को देखना मैं इस डॉक्टर को किस तरह चुटकियों में उड़ाता हूँ। ये ज़ाहिल हमारे क़लामेपाक की तौहीन करता है। हमारे पैग़ाम्बर पर इल्ज़ाम लगाता है, हमारे खुदा की ज़ात में धब्बा बतलाता है। मैं इसे इतनी आसानी से छोड़ने वाला नहीं हूँ। आप लोग तशरीफ़ ले जाइये, मैं अकेला ही काफ़ी हूँ। भाईयों ! अब तो हमें इनके ऊपर एतराज़ात् करने हैं, और इन्हे उनके जवाब देने है।, आप लोग देखना मैं अपनी सुलेमानी तलवार से इस डॉक्टर के बच्चे को किस क़दर हलाल करता हूँ ? वहां मौजूद सभी मुसलमान भाई मौलवी साहब की ये बातें सुनकर आपस में काना–फूँसी करते हुए चले गए। इतने में छः बज चुके थे। तथा सात बजे अगली मिटिंग का समय तय था, अत ! मौलवी साहब ने नमाज़ आदि पढ़ कर आनन–फ़ानन में चलने की तैयारी की तथा ठीक सात बजे अपने लश्करे–तौयबा को साथ लिए शास्त्रार्थ के मैदान में आ पधारे। यह सभी बातें जब मैने जाकर श्री डॉक्टर साहब जी को बतलाई। तो उन्होंने केवल यही कहा कि – **"रामजीलाल सत्य की हमेशा जीत होती है"** इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। जो होगा देखा जायेगा।

बस ! सही सात बजे अगला शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, जिसमें भीड़ का तो कोई ठिकाना ही नहीं था, क्योंकि दोपहर वाले मुबाहिसे की चर्चा सारे नगर में तथा दूर दराज़ के इलाकों में बिजली की तरह फैल चुकी थी। हर सख़्श के मन में यही इच्छा थी कि – देखों आगे क्या होता है ? कौन जीतता है ? आदि–आदि।। अब आप खुद ही आगे नतीज़ा पढ़ लीजिये, जो अगली मिटिंग अर्थात् सात से नौ बजे रात्री में हुआ।

निवेदक –

"रामजीलाल"

(सदस्य– आर्यसमाज)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता (शास्त्रार्थ के प्रधान) –

भाईयों ! यह दूसरे वक्त का शास्त्रार्थ अब आरम्भ होता है, जिसमें अहले इस्लाम की ओर से आर्य समाज के नियमों पर एतराज़ात पेश होने हैं, जैसा कि पहले ही निश्चित किया जा चुका है। हालांकि श्रोताओं की संख्या दोपहर से अब कई गुना ज्यादा बढ़ गई है, जिसके कारण हो सकता है आप लोगों को बैठने में कुछ दिक्कत पेश आवे, परन्तु इसका इन्तज़ाम अभी तुरन्त होना मुश्किल है, अतः आप लोगों से इस दिक्कत की माफ़ी मांगते हुए मैं ये दरख़्वास्त करूंगा कि सभी हिन्दु व मुसलमान भाई पूरी शान्ति के साथ पूरे अमन–व–चैन के साथ मुबाहिसे की बातों को सुनें, ऐसा सुन्दर मौका बार–बार नहीं आता, मैं आशा करता हूँ कि आप सभी भाई मेरी बात को त्वज्जो देंगे। तथा आर्य समाज की ओर से मुनाज़रकर्त्ता श्री डॉक्टर साहब जी व मुसलमानों की ओर से मुनाज़रकर्त्ता श्री मौलवी साहब जी से भी मेरी हाथ जोड़कर विनती है कि कोई भी पक्ष एक दूसरे के प्रति बुरे लफ़्ज इस्तेमाल न करें, जो भी बात हो वह तहज़ीब के दायरे में ही होनी चाहिए, इन्हीं शब्दों के साथ मैं नियमानुसार श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब जी से ही सबसे पहले दरख़्वास्त करूंगा कि वे अपने ऐतराज़ात पेश करें।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

इससे पहले कि मुनाज़रा शुरू हो, मैं यह पहले ही कहे देता हूं कि इस वक़्त कोई मुनाज़िर पहले (दोपहर वाले) मुनाजरा के सम्बन्ध में कोई बात न कहे, और..................बीच में ही.....................।

श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता (शास्त्रार्थ के प्रधान) –

आपको इस किस्म की तक़रीर करने और नये नियम व शर्ते निश्चय करने का कोई हक़ नहीं है। इसलिए मेहरबानी के साथ मुबाहिसा आरम्भ करिये। यह सब बातें जो कहनी थी वह हम मुबाहिसा शुरु करने से पहले ही कह चुके हैं।

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर –

इससे पहले कि शास्त्रार्थ आरम्भ हो मुझे पांच मिनट कुरान से ज़िहाद वाली आयतें* दिखाने के लिए दिये जायें। क्योंकि......................बीच में ....।

श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता (शास्त्रार्थ के प्रधान)–

बराये मेहरबानी आप अपनी जगह पर तशरीफ़ रखिये। यह कीमती वक़्त इन व्यर्थ की बातों में न खोइये, मैं कोई इजाज़त किसी भी बात के लिए इस वक़्त किसी भी पक्ष वाले शास्त्रार्थकर्त्ता को नहीं दूंगा। बस ! मौलवी साहब से मेरी इल्तजा है कि वो अपने ऐतराज़ात पेश करें।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

सामईन जलसा ! इससे पहले कि मैं पहले आर्य समाज के नियम पढ़ना शुरू करूं, उससे पहले ये ज़रूरी मालूम होता हैं कि मैं आपको यह बतला दूं, क्योंकि मज़हब किसी इन्सान का बनाया हुआ नहीं है। बल्कि खुदा की तरफ़ से है, इसलिए मज़हब के उसूल भी खुदा के बनाये हुए होना जरूरी है। ना कि इन्सान के ! बस ! आर्य समाज को चाहिये कि अपने दसों नियम, वेद के मन्त्रों के अनुकूल साबित कर दे।

---

* ये ज़िहाद वाली आयतें हम पूर्व शास्त्रार्थ की टिप्पणी में पहले ही विस्तारपूर्वक दे चुके हैं।

निवेदक –
"लाजपत राय अग्रवाल"

दूसरे जब हम आर्यसमाज के उसूलों पर ऐतराज करते हैं तो हमें जवाब दिया जाता है कि, क्योंकि तुम संस्कृत नहीं पढ़े हो, इसलिए तुम नहीं समझ सकते। अतः अब आर्यसमाज का फर्ज है कि इन सब उसूलों को उर्दू में तर्जुमा करके हमें दे। और आर्य समाज के नियमों में जिस कदर भी गैर उर्दू लफ्ज हैं। जैसे सर्वशक्तिमान आदि–आदि, इन सबका एक–एक करके सलीस (सरल) उर्दू में हमें तर्जुमा करके दे दें, तब मैं इन उसूलों पर ऐतराज़ करूंगा। और साइन्स के हवालों व दलीलों से तथा हर तरह से उन्हें गलत साबित करूंगा। और अगर मैं इनको सत्यार्थप्रकाश के ख़िलाफ़ लिखे हुए दिखला दूं, तो आप ये न कह सकेंगे कि हम सत्यार्थप्रकाश को नहीं मानते। उसूलों में यह भी होना चाहिए, कि ख़ुदा से मिलने के क़ायदे हों। और यह भी दिखलायें कि आपके उसूलों में मुक्ति पाने के क़ायदे–कानून कहां हैं ? बस आप सबसे पहले मुझे अपने हर एक उसूल व हर उसूल के संस्कृत शब्द का सलीस (सरल) उर्दू में तर्जुमा कर दें। तब मैं ऐतराज शुरू करूंगा। और इसी बात के लिए मैं अपना बाक़ी समय भी आपको ही देता हूं, क्योंकि आप मुझे कुल अलफ़ाज के तर्जुमे की लिस्ट बना कर दे दीजिये। ....यह कह कर मौलवी साहब अपना बोलने का समय समाप्त किए बिना ही अपने यथा स्थान पर बैठ गये..............।

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर –

न खंजर उठेगा न शमशीर उनसे।
भाईयों, ये बाजू मेरे आज़माये हुये हैं।।

मुवज्ज़िज सामईन् जलसा ! देख लिया आपने, मौलवी साहब का मुबाहिसा ! मैं तो पहले ही जानता था ,कि ना तो आप मेरे ऐतराज़ात ही का जवाब दे सकेंगे, और ना ही आप आर्यसमाज पर कोई माकूल ऐतराज़ ही पेश कर सकेंगे। जो उत्तर आपने मेरे प्रश्नों के दिये वो तो आप सुन ही चुके होंगे। अब जो प्रश्न आपने आर्यसमाज के नियमों पर किए हैं, वो भी मुलाहज़ा फ़रमा लीजिए। मौलवी साहब कहते हैं कि मुझे पहले आर्यसमाज के दसों नियम देवनागरी भाषा से उर्दू में तर्जुमा करके दो, फिर उन नियमों में जिस क़दर भाषा के शब्द हैं, उन सबका सलीस (सरल) उर्दू में तर्जुमा करके दो। तब कहीं जाकर आप आर्यसमाज के नियमों पर प्रश्न कर सकेंगे। भाईयों ! मैं पूछ्ता हूं– ये शास्त्रार्थ का मैदान है, या कोई मकतब या मदरसा ? कि पहले मैं मौलवी साहब को बैठा कर भाषा पढ़ाऊँ और आर्यसमाज के नियमों में जिस कदर भी भाषा के शब्द आये हैं उन सबका आपको अनुवाद करके समझाऊँ। ....जनता में बेहद हंसी......, तब कहीं जाकर फिर मौलवी साहब मुझ पर प्रश्न करेगें। मौलवी साहब ! ये कोई पाठशाला या ट्रैनिंग स्कूल नहीं है कि मैं आपको पढ़ाऊं ? मैं तो यहां आर्यसमाज की तरफ से शास्त्रार्थ करने आया हुआ हूँ। और मुझे उम्मीद थी कि यहां की अंजुमन इस्लामिया कम से कम मेरे मुकाबले पर किसी ऐसे शख्स को लाकर खड़ा करेगी जो आर्यसमाज के उसूलों को भली भाँती समझकर उन पर ऐतराज कर सके। मैं मौलवी साहब से दरयाफ्त करता हूं कि अगर मुसलमानों की तरह आर्यसमाज भी आपके मुकाबले में ऐसे व्यक्ति को खड़ा कर देता जो आपसे इस्लाम के उसूलों व लफ्जों का हिन्दी या संस्कृत भाषा में अनुवाद करके देने की प्रार्थना करता , तो क्या पहले तीन घण्टा जो मुबाहिसा हुआ, ये मुमकिन था ?

बस ! मुझे यहां के मुसलमानों पर अफ़सोस है कि उन्होंने ऐसा व्यक्ति मुक़ाबले में पेश न किया। जो आर्यसमाज के सिद्धान्त तो दरकिनार, कम से कम भाषा तो जानता होता। भला जो शख्स मामूली भाषा तक न जानता हो, वो आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर क्या ख़ाक बहस करेगा ? और मेरे ख्याल में मुसलमानों के लिए यह बड़ी शर्म की बात है। इसलिए मुसलमान लोग पहले इन मौलवी साहब को किसी गुरुकुल में पढ़ने

के लिए भेजें। ताकि ये कुछ पढ़ कर आयें, तब इन्हें शास्त्रार्थ के लिए खड़ा करें। शास्त्रार्थ करना बच्चों का खेल नही है। ऐरा–गैरा, नत्थू खैरा जो चाहे शास्त्रार्थ कर ले। या मैं ये समझूं कि शास्त्रार्थ से जान (पीछा) छुड़ाने के लिए मौलवी साहब ने ये बहाना अख्तियार किया है। ....शास्त्रार्थ स्थल मे बैठे हुए मुसलमान भाईयों में आपस में काना–फूंसी करना .... कि उनका मुनाजिर इस्लामी प्लेटफार्म पर खड़ा होकर शास्त्रार्थ के बीच में फ़रीक़ मुखालिफ़ (विपक्ष) से इस किस्म की प्रार्थना करे। रही मौलवी साहब की ये बात ! कि आर्यसमाज के उसूलों में कि खुदा से मिलने व मुक्ति का क़ायदा कहां बतलाया गया है ? ये सवाल करके मौलवी साहब ने आर्य भाषा से अपनी अज्ञानता की दलील पर सदाक़त (सच्चाई) की मोहर लगा दी है। क्योंकि अगर मौलवी साहब आर्यसमाज के नियम पढ़ लेते तो उन्हें मालूम हो जाता कि आर्यसमाज का दूसरा नियम साफ़ शब्दों में बता रहा है कि जो परमात्मा ऐसे–ऐसे गुणों वाला है उसकी उपासना करनी चाहिए। मौलवी साहब यहां तो सिर्फ़ परमात्मा की उपासना ही मुक्ति का तरीक़ा है। हमारे यहां ऐसा नहीं है कि गुनाहगार भी मौहम्मद साहब की सिफ़ारिश से नज़ात (मुक्ति) पा जायें। मैं हैरान हूं साहेबान !! आपको भी याद होगा कि मौलवी साहब ने पहले दोपहर के वक़्त मुनाज़रे के बीच में कहा था कि **"अजी आप क्या चीज है ? मेरे सामने तो पण्डित लेखराम व पण्डित कृपाराम शर्मा (स्वामी दर्शनानन्द जी) जैसे शास्त्रार्थ महारथी भी न टिक सके,"** ये इस बात का सबूत है, कि मौलवी साहब भाषा तक तो जानते नहीं, और शास्त्रार्थ किए इतने बड़े–बड़े शास्त्रार्थ महारथियों से ! क्या आप लोगों को यकीन आता है कि मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना तो दर–क़िनार उनके दर्शन भी किए हों ?.................जनता में हंसी................ मौलवी साहब ! यहां सिफ़ाअत का मसला नहीं हैं कि गुनाहगार भी मौहम्मद साहब की.................. बीच में ही मौलवी साहब बड़े गुस्से में भड़ककर उठे और बोलने लगे ....।

श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब –

बस खामोश ! बार–बार मौहम्मद साहब ! मौहम्मद साहब !! की रट लगाये हुए हो, अगर फिर हमारे सलालैहूवलैहिअसलम आँ हज़रत का नाम अपनी जुबान पर लिया तो मैं गर्दन पकड़ कर ज़मीन पर दे मारूंगा। तुम्हारी जुबान खींच लूंगा !! आप अपने को समझते क्या हैं ? मैं दोपहर से बहुत बर्दाशत किये जा रहा हूँ, आखिर बर्दास्त की भी कोई हद होती है ? .... मौलवी साहब गुस्से में लाल पीले होकर नीचे बैठ गये .... ।

नोट –

मौलवी साहब की ये गुस्से भरी नाज़ायज हरकत देखकर आर्यसमाज कैम्प में शख्त गुस्से का वातावरण बन गया, देहाती हिन्दू जो हजारों की संख्या में इस शास्त्रार्थ में बैठे हुए थे मौलवी साहब की इस ज़लीली हरक़त पर भड़क उठे। और बस ! वह समय करीब ही था कि चारों तरफ़ से लट्ठ चलने लगते। चारों तरफ शोर मच गया था कि – मारो...........मारो आज मौलवी को ज़िन्दा ही .... में गाड़ दो !! मग़र शास्त्रार्थ के योग्य प्रधान ने फ़ौरन जनाब तहसीलदार साहब व दरोग़ा साहब के परामर्श से खड़े होकर बड़ी ऊंची आवाज में ऐलान करके कहा–

श्री बाबू रामस्वरूप जी गुप्ता–(शास्त्रार्थ के प्रधान)–

साहेबान ! क्योंकि मौलवी साहब की तरफ़ से शास्त्रार्थ के नियमों का ऐसा उल्लंघन हुआ है कि जिसकी हमें स्वप्न में भी उम्मीद नहीं थी, और अब सख्त झगड़े का अनुमान है, इसलिए मैं यहीं पर शास्त्रार्थ बर्खास्त करने की घोषणा करता हूँ।

नोट –

इस ऐलान के होते ही एक अन्य मौलवी साहब उठे और अपने मौलवी अबुलफ़रह साहब की इस नाजायज हरकत पर इज़हारे अफ़सोस करके प्रेजीडैण्ट साहब से प्रार्थना करने लगे कि **"आप इनकी हरकत को माफ कर दीजिए"**। और अब आप मुझे इजाज़त दीजिए कि बजाये उनके मैं मुबाहिसा शुरू करूं। लेकिन क्योंकि पब्लिक बिगड़ खड़ी हुई थी। और सख्त शोरो – शर होने के अलावा फ़साद का बड़ा भारी अन्देशा पैदा हो गया था, लिहाज़ा प्रेजीडैण्ट साहब ने सरकारी सुरक्षा अधिकारियों से परामर्श करके शास्त्रार्थ के लिए नया प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया और उन दूसरे मौलवी साहब से कहा कि–**"मियाँ अब यहां से किसी तरह अपनी जान बचा कर भाग सकते हो तो भाग जाओ, तुम्हे अब मुबाहिसा करने की सूझी है ?"** जबकि यहाँ चारों तरफ आग लगी हुई है और अधिकारियों की समझदारी व अक़्लमन्दी की बदौलत हजारों व्यक्तियों का मज़मा, देखते ही देखते बिना किसी लड़ाई व झगड़े के तितर–बितर हो गया तथा मौलवी अबुलफ़रह साहब को दारोगा साहब ने अपनी गिरफ्त में ले लिया जिससे उनकी ज़ान बच गयी। और श्री सभा प्रधान जी ने आर्यसमाज की प्रार्थना पर अपना फैंसला अंग्रेजी जुबान में लिख कर दे दिया, जिसका तर्जुमा (हिन्दी अनुवाद) नीचे दिया जाता है।

शास्त्रार्थ मक्खनपुर के विषय में फैसला-मीरमज़लिस

मैं इस मुबाहिसा का जो मक्खनपुर में आज तारीख २१ मार्च को आरम्भ हुआ, जिसमें अहले इस्लाम की ओर से मीरमजलिस (सभाप्रधान) मुझे चुना गया। मैंने दोनों पक्षों की तक़रीरें सुनी, पहले वक़्त (दोपहर २ से ५ बजे तक) में श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त साहब ने निहायत अच्छे तरीके से इस्लाम के उसूलों पर ऐतराज़ात किए, जिनका जवाब, मौलवी साहब बतौर अपनी क़ाबलियत के देते रहे। दूसरे वक़्त में मौलवी अबुलफ़रह साहब पानीपती को प्रश्न करने का अवसर दिया गया, और आपने अपनी पहली तकरीर पेश की, जिसका जवाब डाक्टर साहब देने को खड़े हुए, और निहायत माकूलियत से अभी जवाब दे ही रहे थे कि अचानक डॉक्टर साहब की तकरीर के बीच में ही मौलवी साहब पूरे आग बबूला होकर भनभनाये हुए उठे और ख़ामखां में श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त साहब जी को कहने लगे कि – **" मैं इस डॉक्टर के बच्चे को गर्दन से पकड़ कर जमीन पर गिरा दूंगा"** वैगेरा ! वगैरा !! बहुत बुरे–बुरे अलफ़ाज कह डाले। जो एक आलिम को कभी भी नहीं कहने चाहियें।

मैं समझता हूं कि मौलवी साहब ने डाक्टर साहब के मुदल्लिल (दलील व ठोस प्रमाणों सहित) प्रश्नों की ताब (सहन न करते हुए) न लाकर मुबाहिसा से गुरेंज (किनारा) करने की वजह से ऐसा किया। जो कि सरासर शास्त्रार्थ के नियमों के ख़िलाफ़ था। इसलिए मैंने तहसीलदार साहब व दरोगा साहब की सलाह से शास्त्रार्थ बन्द करा दिया। आखिर में एक दूसरे मौलवी साहब ने मुझसे अपने मौलवी अबुलफ़रह साहब की इस काली करतूत पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए प्रार्थना की, कि इजाज़त मुनाज़रा मुझको दी जावे। लेकिन क्योंकि ये कानून के विरुद्ध था तथा वहां का माहौल भी इसके लिए इज़ाज़त नहीं दे रहा था तथा दोनों पक्षों में झगड़ा होने का जबर्दस्त डर था, इसलिए ये प्रार्थना पत्र स्वीकार न करते हुए शास्त्रार्थ बर्ख़ास्त कर दिया।

दिनांक – २१ मार्च, सन् १९१२ ई०

दस्तख़त –

"रामस्वरूप गुप्ता" मैनेजिंग डाईरैक्टर

ग्लास मैन्युफैक्चरिंग फैक्टरी लिमिटेड – मक्खनपुर

जिला – मैनपुरी (उत्तर प्रदेश)

चवालीसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "पतरेड़ी" जिला अम्बाला (हरियाणा)

दिनांक : १५ मार्च सन् १९३७ ई० (अपरान्ह २ से ५ बजे तक)

विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (अमर स्वामी सरस्वती)

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री पण्डित विशम्बरदत्त जी आर्योपदेशक, एवं श्री ठाकुर गजेसिंह जी (प्रधान) आर्यसमाज "पतरेड़ी".

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री ठाकुर नसीबसिंह जी जैलदार, तथा श्री ठाकुर तुमनसिंह जी (प्रधान) सनातन–धर्मसभा "पतरेड़ी"।

नोट –

उस समय आर्य समाज के प्रधान श्री ठाकुर गजेसिंह जी थे, अब श्री डॉक्टर रामलाल जी प्रधान तथा मन्त्री श्री कुंवर जगमाल सिंह जी चौहान हैं एवं सनातनधर्म सभा के अधिकारी भी शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्ता ही थे।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

इसी मास मार्च, अम्बाला छावनी में आर्यसमाज और जैनमत के बीच शास्त्रार्थ पहले हो चुका था, जिसका विषय था–**"क्या ईश्वर सृष्टि कर्त्ता है ?"** यह शास्त्रार्थ लगातार तीन दिन तक चला था, प्रथम दिवस में आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी थे। और दूसरे व तीसरे दिवस श्री ठाकुर पण्डित अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी, शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियत्त किए गए थे। विपक्ष अर्थात् जैनमत की ओर से प्रथम व द्वितीय दिन शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में श्री राजेन्द्र कुमार जी शास्त्री थे, व तीसरे दिन श्री स्वामी कर्मानन्द जी नियत किये गये थे। इन शास्त्रार्थों में आर्य समाज की भारी विजय हुई थी, जिसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा था।

इसके पश्चात् **"पतरेडी"** में पुनः शास्त्रार्थ होना निश्चित किया गया। जिसका समाचार पाकर अम्बाला से **"दो बसें भरकर जैनी लोग पतरेडी के शास्त्रार्थ में आये थे और सनातनधर्मियों की ओर बैठे थे।"** उनके अतिरिक्त लगभग दो सौ ब्राह्मण इधर–उधर दूर–दराज से पधारे जो सनातनधर्म की ओर से ही आये थे, वे सभी ब्राह्मण सनातनधर्मियों की ओर ही बैठे थे।

जिला अम्बाला, नारायणगढ़, शहजादपुर तथा जिला करनाल से भी आर्यगण इस शास्त्रार्थ में बड़ी भारी संख्या में उपस्थित हुए थे, अतः इस प्रकार इस शास्त्रार्थ में अत्याधिक भीड़ हुई। १५ तारीख को दिन के दो बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जिसमें सनातनधर्म की ओर से श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री एवं आर्य समाज की ओर से श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थकेशरी, शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में निश्चय किये गये थे।

आर्यसमाज का सेवक –

"ठाकुर गजेसिंह"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणःशन्नो भवत्वर्यमा।

शन्नः इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरूक्रमः॥

सभा में उपस्थित सत्याभिलाषी, सज्जन पुरुषों ! आज हमको यह विचार करना है कि–**"मृतकों का श्राद्ध करना वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ?"** हमारा पक्ष यह है कि– **"मृतकों का श्राद्ध करना वेदानुकूल नहीं है"** तथा तर्क से भी मृतकों का श्राद्ध करना बिल्कुल भी सिद्ध नहीं हो सकता। मैं श्री पण्डित माधवाचार्य जी पर यह भार नहीं डालता हूं कि वह चारों वेदों में एक मन्त्र भी ऐसा दिखायें कि जिसमें **"मृतक श्राद्ध"** या **"श्राद्ध"** शब्द हो ! मैं यदि यह मांग करूंगा तो पण्डित जी कहीं दिखला नही सकेंगे, और शास्त्रार्थ इसी स्तर पर समाप्त हो जाएगा और कुछ आनन्द भी नही आयेगा। आप सज्जनों का मनोरंजन भी कुछ न होगा। मेरी विजय हो जायेगी पर आप सज्जनों को सोचने–विचारने को कुछ सामग्री नहीं मिलेगी, इसलिए मैं आप लोगों के विचारने के निमित्त कुछ ठोस सामग्री उपस्थित करता हूं। देखो–यजुर्वेद में कहा है कि–

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा, यत्रानश्चक्रा जरसं तनूनाम।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति, मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।। २२।।

(यजुर्वेद अध्याय२५)

हे परमेश्वर ! हम लोग–सौ वर्ष की आयु, प्राप्त करें और बुढ़ापे तक जीवित रहें। हमारे पुत्र
जब "पितर" हो जावें। अर्थात् पुत्रों–पौत्रों वाले हो जावें, तब तक हमारी आयु को हे प्रभो ! कम न कीजिए।
आचार्य महीधर और उव्वट ने भी यह ही अर्थ किया है कि–"**अस्मत् पुत्रा पितरो: भवन्ति**" अर्थात् "अस्म
पौत्रा भवन्तित्यर्थः"–हमारे पुत्र, पितर हो जावें अर्थात् हमारे पौत्र हो जावें तब तक हमारी आयु नष्ट न हो।
यहां पितर का अर्थ–सन्तान वाले जीवित मनुष्य हैं, मरे हुए नहीं। कोई माता–पिता नहीं चाहते कि–हमारे
सामने हमारे पुत्र मर जावें। माता–पिता कामना करते हैं कि–हमारे पुत्र हमारे सामने "**पितर**" हो जावें, पु
पुत्रों वाले हो जावें। अर्थात् हमारे पोत्र हो जावें। "**पितर**" शब्द कहीं भी वेद में "**मृतक**" के अर्थ में प्रयुक्त
नही हुआ है। मैंने यह एक अकाट्य प्रमाण दे दिया। अब पण्डित जी से पूछता हूं कि आप वेद का कोई मंत्र
बताइये जिसमें यह बतलाया गया हो कि –

१. क्या मरे हुए माता–पिता के नाम पर ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन–मरे हुए माता–पिता को प्राप्त हो जाता हैं ?

२. यदि मरे हुओं को प्राप्त हो जाता है तो बताइये कि–मरे हुए लोग स्वयं यहां भोजनादि को ग्रहण करने के लिए आते हैं या वहां ही भोजन उनके पास पहुंचता है ?

३. गीता में कहा है– **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरो पराणि।**
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संगाति नवानो देही।।

(भगवदगीता)

अर्थात् जैसे–मनुष्य पुराने कपड़े त्याग कर नये वस्त्र ग्रहण कर लेता है। वैसे ही यह जीव बूढ़े दुर्बल शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेता है। गीता में ही और भी कहा है कि–"जातस्य **हि ध्रुवों मृत्युः ध्रुर्वम् जन्म मृतस्य च**" अर्थात् जो जन्मता है उसकी मृत्यु भी अवश्य ही होती है और जो मर गया है, उसका जन्म भी अवश्य होता है। इस पर मेरा प्रश्न यह है कि–जीव ने इस शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लिया तो श्राद्ध का भोजन लेने के लिए वह नए शरीर को छोड़कर आयेगा या नये शरीर सहित आयेगा ? इस पर मैं और भी कई प्रश्न करूंगा पर इस बारी मैं केवल एक ही प्रश्न करता हूं, इसका उत्तर दें !

४. श्राद्ध करने वाले पुत्रादि तथा श्राद्ध की खीर आदि खाने वाले ब्राह्मण को भी यह पता नहीं है कि–"**जिसका श्राद्ध हो रहा है उसने किस योनि में जन्म लिया है ?**" यदि मरने वाला– बैल या घोड़ा आदि की किसी पशुयोनि में गया तो इस खीर आदि से उसका क्या बनेगा ? उसके लिए तो घास–भुस (चारा) आदि चाहिये। बस ! इस समय केवल इन चार प्रश्नों के उत्तर दीजिए और ध्यान रखिए ! मैं हर बारी में नये–नये प्रश्न करता जाऊंगा, आप बुरी तरह फंस गये हैं, यह शास्त्रार्थ आपको बहुत ही महंगा पड़ेगा।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

सज्जनों ! श्री ठाकुर जी ने कहा–वेदों में "**मृतक श्राद्ध**" तो क्या बल्कि "**श्राद्ध**" शब्द भी नहीं है। उनको पता नहीं कि–वेदों में "**यज्ञोपवीत**" और "**शिखा**" भी नहीं है। वेदों में मृतकों के नाम पर ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है, श्री पण्डित सातवलेकर जी वेदों के महान् विद्वान् हैं, और वह आर्यसमाजी हैं, उन्होंने मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने वाले डेढ़ हजार मन्त्र वेदों से निकाल कर छपवाये हैं। यह पुस्तक जो मेरे हाथ में मौजूद हैं। किसी आर्यसमाजी विद्वान् ने आज तक इस पुस्तक का खण्डन करने व लिखने का साहस नहीं

किया। सभी आर्यसमाजी विद्वानों ने मान लिया है कि– इसका कोई उत्तर या खण्डन नहीं हो सकता। ठाकुर साहेब तो ठहरे ठाकुर साहब! इन्होंने तो यह पुस्तक देखी भी नहीं है। यदि इसको एक बार भी देखा होता तो मृतकश्राद्ध पर कभी शंका न उठाते। ठाकुर साहब कहते हैं कि जब यह पता ही नहीं है कि–जीव शरीर छोड़ने के बाद किस योनि में गया है तो उसके लिए वैसा खाना कैसे दिया जायेगा ? घोड़ा आदि बन गया हो तो उसको खीर क्या करेगी ? उसको तो घास चाहिए आदि–आदि। ठाकुर साहिब जी को पता नहीं कि–मनीआर्डर करने वाले लोग यहां नोट जमा करें तो वहां आवश्यकतानुसार रुपये दिये जा सकते हैं। और यहां सिक्के दिये जायें तो पाने वाले को आवश्यकतानुसार नोट दिये जा सकते हैं।

सज्जनों ! हमारा मृतकश्राद्ध का सिद्धान्त ऐसा है कि जिसको सारा संसार मानता है, ईसाई, मुसलमान और सिक्ख भी मानते हैं। ठाकुर जी ! पितर का अर्थ तो **"मृतक माता-पिता"** ही है। भाइयों ! ठाकुर साहब जी की तलवार भी हमारी खीर पर ही चली। न.जाने हमारी खीर को देखकर इनके पेट में दर्द क्यों होता है ? ....जनता में हंसी.................... ।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

भाइयो ! आपने श्री पण्डित जी का भाषण सुन लिया ? मैंने एक वेद मन्त्र पढ़ा था जिसमें पिता कहता है या **"पितर"** माता–पिता कहते हैं कि हमारे पुत्र हमारे सामने **''पितर''** हो जावें। उनके पितर होने से पहले हम न मरें। सज्जनों ! आपने देख लिया। पण्डित जी ने इस मन्त्र को छुआ तक नहीं। पण्डित जी को वेदों से क्या लेना–देना है ? इनको तो **"गरुड़ पुराण"** चाहिए। पण्डित जी कहते हैं कि पितर का अर्थ तो मरे हुए ही है। क्यों सज्जनों ! आप लोगों में ऐसे माता–पिता कोई हैं जो यह प्रार्थना करते हों कि–हमारे मरने से पहले हमारे पुत्र मर जायें। चारों तरफ से आवाजें आयी.........कोई नहीं ! कोई नहीं !! .... दूसरे पण्डित जी कहते हैं कि जैसे मनीआर्डर करने वाले के नोट पाने वाले के लिए सिक्के भी बन जाते हैं अर्थात् आवश्यकतानुसार बदल जाते हैं। ऐसे ही घोड़े के पास जाकर खीर–पूरी आदि से बदलकर घास भी हो सकती है। .... जनता में हंसी .... । लो सज्जनों ! पण्डित जी का उत्तर बड़ा मजेदार है। यहां खिलाई गई खीर वहां घास भी बन सकती है, इसका अर्थ यह भी हुआ कि नहीं ? कि यहां खिलाई हुई घास आवश्यकतानुसार वहां खीर भी बन सकती है ? यह बहुत बढ़िया बात रही ! तब तो श्राद्ध में पण्डितों को बढ़िया घास खिलानी चाहिये। यदि कोई मर कर घोड़ा बना होगा तो घास–घास ही रही आयेगी और यदि कोई मनुष्य बना होगा तो उस घास से खीर भी बन जायेगी। .... इस पर अपार अट्टहास हुआ एवं लोगों की हंसी को रोक पाना कठिन हो गया..........ठाकुर साहब ने कहा– सज्जनों ! देखा मेरे उन प्रश्नों का क्या हुआ ? जिनमें मैंने पूछा था कि–भोजन पितरों के पास पहुंचता है या पितर लोग भोजन करने यहां स्वयं आते हैं ? पण्डित जी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, मैंने पूछा था कि–यदि पितर भोजन लेने को श्राद्ध करने वाले के घर पर आते हैं तो जो शरीर उनको मिला है, उसको छोड़कर आते हैं या उसे साथ लेकर आते हैं ? दोनों प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं, मेरे दोनों प्रश्नों को श्री पण्डित जी खीर की तरह पी गए। ....जनता में भारी हंसी.........मेरा एक प्रश्न और सुन लीजिए, यदि पितर श्राद्धकर्त्ता के घर पर आते हैं तो खीर आदि पहले ब्राह्मण खाते हैं या पहले पितर खाते हैं ? यदि पहले ब्राह्मण खाते हैं तो पितरों को उनका झूठा खाना पड़ता है ? यदि पितर पहले खाते हैं तो ब्राह्मणों को पितरों का झूठा खाना पड़ता होगा ? या दोनों साथ ही खाते हैं तो भी झूठा ही हुआ। इसका पण्डित जी के पास क्या उत्तर है ? कृपया जवाब दें ! सज्जनों ! जिस पुस्तक को हाथ में लेकर पण्डित जी बार–बार कहते हैं कि उसमें डेढ़ हजार मन्त्र मृतकश्राद्ध को सिद्ध करने वाले हैं। और महाराज कहते हैं कि ठाकुर साहब ने यह पुस्तक कभी देखी ही नहीं। और आज तक कोई भी आर्यसमाजी इसका उत्तर या खण्डन नहीं लिख सका।

मेरी सुनिये ! मैं पण्डित जी को खुला चैलेञ्ज करता हूं कि जिस पुस्तक में डेढ़ हजार मन्त्र, मृत श्राद्ध को सिद्ध करने वाले हैं उसमें से केवल डेढ़ ही मन्त्र पढ़ दीजिए। फिर देखिये मैं उसमें लिखे हुए अ की कैसी धज्जियां उड़ाता हूं। चलो एक ही मंत्र पढ़ दो ! इस पुस्तक को मैंने खूब पढ़ा है। इसके लेख **"पण्डित सातवलेकर"** जी नहीं है। बल्कि **"पण्डित तड़ितकान्त विद्यालंकार"** हैं इसका नाम "यम औ **पितर"** है। इसमें लिखे हुए अर्थो का खण्डन मेरे मित्र और सहपाठी **"श्री पंडित प्रियरत्न जी आर्य"** सविस्तार लिखा है। उसका नाम है **"यम पितृ परिचय"** वह आपने नहीं देखी। इसमें से एक–दो मन्त्र पढ़ि और देखिये कि–उसमें किए गए अर्थो की कैसी बखिया उधेड़ता हूं। ....जनता में हंसी..........।। पण्डि जी कहते हैं कि आपकी तलवार हमारी खीर पर ही चली। भाइयों ! कोई भी उत्तर मेरे प्रश्नों के न हुए औ न कभी होंगे। पर इनकी खीर और तलवार वाला प्रश्न सुनकर मुझको बड़ी दया आई। भाइयो ! पण्डि जी की खीर बिल्कुल बन्द मत करना। इनको खूब खीर खिलाया करो परन्तु यह समझकर खिलाया करें कि हम एक जीते–जागते मनुष्य को खीर खिला रहें हैं किसी मुर्दे को नहीं...........जनता में हंसी क वातावरण...........और पंडित जी ! आप मुर्दो के नाम पर खीर क्यों खाते हैं ? आपको अपने आप पर क्यों विश्वास और भरोसा नहीं है ? अपने नाम पर खीर खाइये और खूब खाइये ! आपको खीर मिलेगी और खूब मिलेगी !! हम तो लोगों को कहते हैं कि हमारे लिए खीर मत बनवाना फिर भी हमको नित्य खीर खाने को मिलती है, और खूब मिलती है। पण्डित जी कहते हैं कि–वेदों में यज्ञोपवीत और शिखा शब्द नहीं है। वास्तविकता यह है कि पण्डित जी वेदों को पढ़ते ही नहीं, वेदों को पढ़ते हैं हम लोग। क्योंकि पण्डित जी के शब्दों में, मैं ठाकुर हूं। पण्डित जी और इनके पूर्वज सैकड़ों वर्षो से ठाकुरों की पूजा करते और उनका चरणामृत पीते आये हैं .... जनता में अपार हंसी............. यज्ञोपवीत और शिखा पर पृथक शास्त्रार्थ रखिये। मैं वेदों में दोनों दिखलाऊंगा। पण्डित जी का यह पैंतरा बहुत बढ़िया रहा ! कि अगर मृतकश्राद्ध सिद्ध न कर सके तो इधर–उधर भागने लगे ! मेरे सारे प्रश्न वैसे के वैसे ही पड़े हुए हैं जिन्हें पण्डित जी छूने का नाम ही नहीं लेते, पण्डित जी महाराज ! टर्न टर्न टन टन टन ऽऽऽऽ ....

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

............अपने भक्तों से काना–फूंसी करके कहने लगे कि चुपचाप सौ रुपया मुझको दे दो, शास्त्रार्थ में उपस्थित लगभग दो सौ ब्राह्मणों ने एकत्र कर सौ रुपये पण्डित जी को दे दिये, एक सौ रुपये हाथ में लेकर पण्डित जी बोले.............. लीजिए ठाकुर साहब ! यह वाक्य जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है–**"सानुगाय इन्द्राय नमः"** चारो वेदों में कहीं से भी निकालकर दिखा दीजिए ! और ये नकद एक सौ रुपये इनाम में लीजिए बस ! इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा। सौ रुपये भी आपको मिल जायेंगे और जीत भी आपकी हो जाएगी।.............गर्ज कर............लीजिए रुपये और निकालिये वेदों में यह वाक्य कहां है ? इसके लिए मैं अपना बाकी समय भी आपको ही देता हूं। ....सभा में सन्नाटा.............।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

पांच सौ रुपये के नोट हाथ में लिए हुए ....ऊंची आवाज में ....सभा में आये हुए सज्जनों ! आज जुआ खेलना पड़ेगा। आज मेरा पाला शास्त्रार्थ कर्त्ता पण्डित से नहीं बल्कि जुआरी से पड़ गया है। धर्मराज युधिष्ठिर को भी दुर्योधन और शकुनि के सम्मुख जुआ खेलना पड़ा था। पर सज्जन पुरुषों ! मैं दावे से कहता हूं कि युधिष्ठिर जी महाराज तो जुए में हार गए थे, परन्तु आप देखिए मैं हरगिज़ नहीं हारूंगा और पण्डित जी को चारों खाने चित्त मारूंगा। ....सभा में जबर्दस्त सन्नाटे का वातावरण............लीजिए पण्डित जी ! मैं पांच सौ रुपये देता हूं आप सत्यार्थप्रकाश में ये दो बातें लिखी हुई दिखला दीजिए।

१. यह वाक्य **"पितृ यज्ञ"** में हैं जिसको आप **"मृतक श्राद्ध"** कहते हैं।

२. आपने जो वाक्य बोला **"सानुगाय इन्द्राय नमः"** के साथ क्या सत्यार्थप्रकाश में वेद मन्त्र का पता लिखा हुआ है ?

यदि ये दोनों बातें आप दिखला दें तो अभी पांच सौ रुपया ले लें। यदि यह वाक्य न तो पितृयज्ञ में है और न इस वाक्य को वेद का मन्त्र ही कहा है तो सौ रुपया दिखाकर लोगों की आंखों में धूल क्यों झोंकना चाहते हो ? क्या आपने समझा है कि यहां सब अनपढ़ और मूर्ख बैठे हैं ?

सज्जनों ! मुझको पता है कि अम्बाला से यहाँ एक सौ से भी अधिक जो जैनी सज्जन आये हुए हैं उनमें वकील भी हैं। कृपा करके दो जैन सज्जन वकील मेरे पास आ जायें और सत्यार्थप्रकाश देखें। मैं **"सानुगाय इन्द्राय नमः"** यह वाक्य सत्यार्थप्रकाश में से उनको दिखलाता हूं। वह अच्छी तरह देखकर बतलावें कि ये वाक्य **"पितृयज्ञ"** में है या **"बलिवैश्वदेव यज्ञ"** में है ? और क्या इसके साथ यह लिखा हुआ है कि यह अमुक वेद का मन्त्र है। दो सज्जन जैन वकील जो ठाकुर साहब जी के पास आये और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश का वह स्थल देखा तो दोनों वकीलों ने उसे पढ़कर घोषणा की कि–**"यह पंचयज्ञों का प्रकरण है, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, और पितृयज्ञ समाप्त करके चौथा "बलिवैश्वदेवयज्ञ" है यह वाक्य उसी में है "पितृयज्ञ" में नहीं है। एवं इस वाक्य पर कहीं भी यह नहीं लिखा है कि "यह वेद का मन्त्र है"। इसलिए वेद से यह वाक्य दिखाने के लिए श्री माननीय पण्डित ठाकुर साहब जी को कहना अनुचित है।**

अद्‌भुत दृश्य –

इतना सुनते ही चारों ओर से .... बोलो वैदिक धर्म की जय.......... कई हजार श्रोताओं की भीड़ में .... **"श्री ठाकुर तुमनसिंह जी प्रधान सनातनधर्म सभा"** ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर जोर से कहा कि– **"हमारे सनातनी पण्डित से कुछ नहीं बना, ठाकुर साहब ने उनको हरा दिया"** इतना सुनते ही श्री पण्डित विशम्बरदत्त जी ने श्री ठाकुर तुमनसिंह जी को अपने मंच पर बुला लिया और कहा कि–प्रधान जी आप यहां खड़े होकर कहिए आपको क्या कहना है ? इस पर सनातनधर्म के प्रधान जी ने वही घोषणा पुनः कर दी कि–**"हमारे सनातनी पण्डित से कुछ नहीं बना श्री ठाकुर जी ने उनको हरा दिया"**.......... चारों ओर से करतल ध्वनि के साथ आकाश गूंज उठा.........बोलो वैदिक धर्म की जय ! ठाकुर साहब की जय !! आदि–आदि। दूर–दूर से सैकड़ों ब्राह्मण आये हुए थे वह सब इस प्रकार मुंह लटकाये हुए चुपचाप चले गए जैसे किसी अपने बहुत प्यारे की अन्त्येष्टि करके वापिस लौटते हैं।

आर्य पुरुषों ने तुरन्त बढ़िया घोड़ी मंगवाई, बैंडबाजा मंगवाया, गांव की गली–गली में ठाकुर साहब को घोड़ी पर चढ़ाकर बैण्डबाजे के साथ शोभायात्रा निकाली गई। हजारों पुरुष बार–बार ठाकुर जी की जय ! ठाकुर जी की जय !! के नारे लगाते हुए शोभायात्रा के साथ चल रहे थे, जिसे सुनकर गांव की स्त्रियां घरों में से निकल–निकल कर गली के खरंजों पर मत्था टेकती देखी गयीं। उन्होने समझा था कि उन्हीं ठाकुरों की सवारी निकल रही है जिनको हम मत्था टेकती हैं एवं जिनकी पूजा प्राचीन काल से हमारे ब्राह्मण लोग करते–कराते आये हैं और जिनका चरणामृत हम लोग पीते हैं।

विशेष –

दूसरे दिन – १६ मार्च को मूर्त्ति पूजा पर शास्त्रार्थ होना था वह सनातनधर्मियों ने नही किया। आर्य समाज का प्रचार दो दिन (१६ व १७ मार्च) को बड़ी धूमधाम के साथ होता रहा। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज को भारी विजय और सनातनधर्मियों को घोर पराजय प्राप्त हुई। जो प्रत्यक्ष रूप में दिखाई दे रही थी।

पैंतालीसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "हरिद्वार" (गुरुमण्डलाश्रम) उत्तर प्रदेश

दिनांक : १२ जून सन् १६१६ ई॰ दिन शुक्रवार,

समय : सुबह ८ बजे से ११ बजे तक

विषय : क्या मृतकों का श्राद्ध करना वेदानुकूल है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति (श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के कनिष्टपुत्र व गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम स्नातक)

सहायक : श्री पण्डित पूर्णानन्द जी "शास्त्रार्थ कला प्रवीण" महोपदेशक आर्यप्रतिनिधिसभा पंजाब, (लाहौर)

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी (आचार्य–ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम–हरिद्वार)

शास्त्रार्थसमिति के मन्त्री : श्री पण्डित विश्वनाथ जी त्रिपाठी "मुख्याधिष्ठाता–गुरुकुल मण्डलाश्रम"

शास्त्रार्थ के सभापति : श्री लाला बलदेव सिंह जी (देहरादून–निवासी)

अन्य उपस्थित विद्वान : श्री महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती), पण्डित शालिगराम जी, पण्डित दुर्गादत्तजी पंत, प्रोफेसर महेशचरण जी व अन्य अध्यापकगण एवं गुरुकुल–कांगड़ी के विद्यार्थीगण।

शास्त्रार्थ से पहले

सज्जनों ! यह शास्त्रार्थ बारह जून सन् उन्नीस सौ सोलह में गुरूमण्डलाश्रम (हरिद्वार) में हुआ था, और उस ही वर्ष यह गुरुकुल कांगड़ी प्रैस हरिद्वार से श्री महात्मा मुंशीराम जी ने प्रकाशित भी करा दिया था। अब सन् १६८६ ई॰ में जून से आगे ७१ वां* वर्ष इस शास्त्रार्थ को हुए चलेगा। इस शास्त्रार्थ ने उस समय में पौराणिक समुदाय के अन्दर एक अजीब सी खलबली मचा कर रख दी थी। इस शास्त्रार्थ में पौराणिकों की ओर से भी कई अच्छे–अच्छे उदभट पण्डित विराजमान थे, परन्तु इनकी ओर से जो पत्र व्यवहार और वार्तालाप हुआ वह सत्य से तो दूर है ही–पंर सभ्यता तथा शिष्टाचार से भी पृथक् ही है। प्रस्तुत प्रकाशित शास्त्रार्थ के साथ इक्कीस पृष्ठ उसी पत्राचार से भरे हुए हैं, मैंने उनको इस शास्त्रार्थ के साथ इस ग्रन्थ में नहीं दिलवाया, उसके देने से पाठकों का समय तथा धन व्यर्थ ही जाता। सभ्यता और शिष्टाचार का एक छोटा सा नमूना यह है कि–श्री महात्मा मुंशीराम जी अपने अनुपम तप, त्याग और गुरुकुल संचालन में घोर परिश्रम के कारण सारे देश में महात्मा मुंशीराम जी ही कहे और माने जाते थे। और इस शास्त्रार्थ के एक वर्ष व्यतीत होते ही वह सन् १६१७ ई॰ में सन्यास लेकर **"महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द"** बन गये थे। उनको पौराणिक पण्डितों ने अपने पत्रों और वाक् व्यवहार में एक बार भी **"महात्मा जी"** नहीं कहा, अपितु, **"लाला मुंशीराम"** जी ही लिखा तथा बोला। यह उनके हृदय की संकीर्णता का एक छोटा सा उदाहरण मौजूद है।

इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की ओर से पुराने दिग्गज़ शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यप्रतिनिधिसभा, पंजाब (लाहौर) के महोपदेशक श्री पण्डित पूर्णानन्दजी भी विद्यमान थे। परन्तु श्री महात्मा मुंशीराम जी चाहते थे कि, गुरुकुल के प्रथम स्नातक श्री पण्डित इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ही शास्त्रार्थ करें। हो सकता है कि, महात्मा जी अपने सुपुत्र का शास्त्रार्थ कौशल देखना चाहते हों ! यह भी अस्वाभाविक नहीं है। गुरुकुल के प्रथम स्नातक का कौशल देखना और दिखाना आवश्यक ही था। इसलिए प्रसिद्ध शास्त्रार्थकर्त्ता श्री पण्डित पूर्णानन्द जी के उपस्थित होते भी श्री हुए पण्डित इन्द्र जी से ही शास्त्रार्थ कराया गया। श्री पण्डित पूर्णानन्द जी का शास्त्रार्थ कौशल कमाल का था, वे अपने प्रतिद्वन्दी को चुटकियों में ही उड़ा देते थे। इस शास्त्रार्थ में भी उनका कौशल उनकी वाग्मियता और चतुराई छुपी हुई नहीं रह सकी। शास्त्रार्थ से पहले शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों का निश्चय करने में श्री पण्डित गिरधरशर्मा जी चतुर्वेदी के सम्मुख उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व स्पष्ट दिखलाई देता है। श्री पण्डित पूर्णानन्द जी ने श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। बल्कि शास्त्रार्थ के अंन्त में उनको दो मिनट किसी तरह मिल गये, उसी से आपको उनकी अदभुत विद्वता का परिचय मिल जावेगा। उनके नाम से ही उस समय का पौराणिक सम्प्रदाय काँपता था।

इस शास्त्रार्थ से कुछ ही काल पहिले गुरुकुल कांगड़ी में श्री पण्डित गिरधरशर्मा जी चतुर्वेदी और श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के मध्य एक शास्त्रार्थ **"वर्ण व्यवस्था"** पर भी हो चुका था। जिसमें **"महात्मा गांधी"** जी भी मौजूद थे। वह भी प्रकाशित हुआ था। परन्तु मेरे प्यारे पुत्र लाजपत राय के विशेष परिश्रम करने पर भी वह हमको अभी तक नहीं मिल सका है। इसका हमको दुख है। उसके मिल

* अब इस शास्त्रार्थ को सम्पन्न हुए चौरासीवाँ वर्ष चल रहा है, इस शास्त्रार्थ की विशेषता व महत्व दोनों ही संक्षेप में पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपने द्वारा दी गई उपरोक्त भूमिका में दर्शा दिया है, विस्तृत जानकारी शास्त्रार्थ का पूर्ण अध्ययन करने पर स्वतः ही प्राप्त हो जायेगी।

विदुषामनुचरः–

"लाजपतराय अग्रवाल"

जाने पर मैं अपनी टिप्पणियों सहित उसको भी प्रकाशित कराऊंगा वह भी बड़े ही काम की चीज होगी। परन्तु यह शास्त्रार्थ भी बहुत ही चर्चित शास्त्रार्थ रहा है, इसको व अन्य इसी प्रकार की प्राचीन अलभ्य शास्त्रार्थ सामग्री के प्राप्त करने में मेरे प्यारे पुत्र लाजपत राय जी ने जहां धन व समय व्यय किया वहां उसके साथ–साथ घोर परिश्रम भी किया है जो मेरी जानकारी से छुपा हुआ नहीं है। जिसकी प्रशंसा न करना एक बहुत ही बड़ी कृतघ्नता होगी। सच पूछिए तो मेरा यह स्वप्न जिसे मैं चिरकाल से देखता आ रहा था कि– **"किसी तरह प्राचीन शास्त्रार्थो का संग्रह प्रकाशित हो"**, इस बच्चे ने मेरा स्वप्न साकार कर दिया। और अपने घोर परिश्रम से आर्य जगत की दबी हुई इस अमूल्य सम्पति को प्रकाश में लाने हेतु इनका स्तुत्य प्रयास है। सारा आर्य जगत इनके इस स्तूत्य प्रयास को भुला न सकेगा। अब आप लोग भी इस प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री को पढ़िये और सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करिये।

वैदिक धर्म का–

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित गिरधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

शरिदन्दुसुन्दररूचिश्चेतासि सा मे गिरां देवी।
अपहृत्य तमः संततमर्थानखिलान् प्रकाशयतु ।।

माननीय सज्जनों ! व्यर्थ के विवाद में बहुत सा समय निकल गया, जो युक्तियुक्त बात है वह सब कोई समझ गया है। किन्तु यदि ये आर्यसंज्जन अतिथि के तौर पर दबाव डालना चाहते हैं तो और बात है!

नोट –

श्री पण्डित पूर्णानन्द जी ने बीच में ही गर्ज कर कहा—यह कहना हमारा अपमान करना होगा, ये शब्द वापिस लीजिये, हम किसी पर कोई जोर दबाव डालकर नहीं बल्कि जो युक्तिसंगत बात है वह आपको माननी ही पड़ेगी! ....श्री चतुर्वेदी जी सहम गए............... | और बातों को वापिस ले लिया..............| पश्चात पंण्डित पूर्णानन्द जी द्वारा शास्त्रार्थ के आरम्भ करने का आदेश दिया गया।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

सज्जनों ! हमारे धर्म के प्राण यज्ञ हैं, उनमें भी महायज्ञ पांच हैं, शास्त्रों में हिन्दु मात्र के लिए पञ्च यज्ञों का अनुष्ठान आवश्यक बताया गया है। उन पांच यज्ञों में से पितृयज्ञ भी एक है। इस पितृयज्ञ के सम्बन्ध में किसी की भी विप्रतिपत्ति नहीं इसे आर्यसमाजी भी मानते हैं। यहां केवल मात्र यही विप्रतिपत्ति है कि वे पितृगण जिनके लिए यज्ञ करना है वो मृत हैं वा जीवित ?

यह विषय प्रत्यक्ष गोचर नहीं अतः इस विषय में शास्त्र की ही शरण लेनी चाहिए शास्त्र ही हमें बतलायेगा कि वे पितृगण मृत हैं या जीवित ? शास्त्रों में संहिताएं तो सबको मान्य हैं, हम स्मृति व पुराणादि को भी मानते हैं, किन्तु आर्यसमाजी इस अंश में हमसे विप्रतिपन्न हैं। किन्तु **"वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"** वेद तो सभी को प्रमाणरूपेण मान्य हैं। पूर्व मीमांसा के **"विरोधेत्वनपेक्ष्यंस्यात् असति हमनुमानम्"** सूत्र के अनुसार संहिता और स्मृति में यदि किसी को विरोध दिखाई दे तो वहां संहिता ही प्रमाणभूत है। **"उपोद्बलकतया ब्राह्मणादि"** के भी प्रमाण लिए जा सकते हैं, अब मैं मृतक पितरों का श्राद्ध करने में आपके सामने प्रमाण रखता हूं देखिए–

सं गच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्त्तेन परमेव्योमन।
हित्वाया वद्यं पुनररस्त मेहि संगच्छभ्व तन्वा सुवर्चाः।। ८।।

(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १४ का मन्त्र ८)

अर्थात् मरते हुएं मनुष्य का पुत्र उसे सम्बोधन करता हुआ कहता है, कि–हे पिताजी ! आप इष्टापूर्त्त साधन के द्वारा यमराज्य में स्थित पितरों के साथ मिलें, और फिर इस लोक में जन्म लेकर भी पितरों से मिलें। यम राज्य में स्थित पितृगण जीवित नहीं हो सकते। अतः यहां पर "**पितृ**" शब्द जीवित के लिए प्रयुक्त नहीं। और प्रमाण लीजिये–अथर्ववेद अठाहरवें काण्ड के दूसरे अनुवाक् का अडतालिसवां मन्त्र देखिये–

उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते।।

अर्थात् इस मन्त्र में अधम, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार के द्यौस्थान बताये गये हैं जहां कि पितृगण निवास कर सकते हैं ! अतः यह स्पष्ट है कि यहां पितृ शब्द से मृत पितर ही लिए जाते हैं न कि जीवित पितर ! और लीजिए–अथर्ववेद का अठाहरवां काण्ड, अनुवाक ४, मन्त्र ५७–

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।
तेभ्यो घृतस्यकुल्यै तु मधु धारा व्युन्दती ।।

अर्थात् जो जीवित हैं और मृत हैं "**ये जाता**" और जो गर्भ में स्थित हैं और "**ये च याज्ञियाः**" इन सब पितरों को हमारी घृत की कुल्या पहुंचे। इस मन्त्र में स्पष्ट "**ये च मृता**" पड़ा हुआ है। और देखिए–अथर्ववेद काण्ड १८, अध्याय ४, मन्त्र ७८ –

स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषदभ्यः स्वधा ।
पितृभ्यः अन्तरिक्षसद्भ्यः स्वधा पितृभ्यः द्युषद्भ्यः।।

अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक के अन्तर्वर्ती पितृगणों के लिए स्वधा हो। क्या अन्तरिक्ष में रहने वाले पितृगण जीवित हो सकते हैं ? यदि अब भी सन्तोष न हो तो और प्रमाण लीजिये–अथर्ववेद काण्ड १८, द्वितीय अनुवाक् का ३८ वां मन्त्र–

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वास्तानग्न आवह पितृन् हविषे अत्तवे।।

अर्थात् हे अग्ने ! जो पितर गाड़े गए हैं, नदी में बहाए गए हैं, या जला दिये गये हैं, उन्हें हवि का उपभोग करने के लिए बुलावें। इस मन्त्र में स्पष्ट ही "**गाड़े गये**" आदि मृतपितरों का निर्देश किया गया है। और भी देखिए–अथर्ववेद काण्ड १८, अनुवाक् ५, मन्त्र ५४ –

पूषात्वेतश्च्यावयतु प्रविद्वान नष्ट पशुर्भुवनस्य गोपाः।
सत्वेतेभ्यः परिददत् पितृभ्योग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः।।

अर्थात् इस मन्त्र में साफ–साफ मरते हुए मनुष्य के प्रति कहा गया है कि–पूषा अग्निं तुम्हें पितरों के पास ले जावे। मरते हुए आदमी मृतपितरों के पास ही जा सकते हैं। न कि जीवित पितरों के पास ! अतः सिद्ध है कि "**पितृ**" शब्द "**मृतपितरों**" के लिए ही आया है। "**ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवसत्वधया मादयन्ते**" इत्यादि मन्त्र में भी "**मृतपितरों**" का ही वर्णन है।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

प्रिय बन्धुगण ! विचार यह करना है कि–पण्डित जी ने अपने पक्ष की पुष्टि में जो प्रमाण दिए हैं, वे उनके पक्ष के साधक भी हैं वा नहीं ? पण्डित जी ने जितने भी मन्त्र दिखलाए उनसे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि मृतपितरों के लिए कोई श्राद्ध होता है। आपने जो कुछ कहा उससे केवल मात्र यही सिद्ध करना चाहा कि वेदों में **"पितृ"** शब्द **"मृतों"** के लिए भी आता है। किन्तु यह बिल्कुल सिद्ध नहीं होता कि–"**मृत पितरों का श्राद्ध करना चाहिये"**। और जिस प्रकार **"मृतक श्राद्ध"** शब्द वेदों में कहीं भी नहीं मिलता उसी प्रकार **"पिण्ड पितृयज्ञ"** यह शब्द भी वेदों में कहीं नहीं मिलता, यह शब्द केवल सूत्रग्रन्थों से लिया गया है, जब तक आप इस शब्द को वेदों में न दिखला दें तब तक इसका कोई मूल्य नहीं है। अच्छा अब मैं आपसे तीन प्रश्न पूछता हूं, कृपया आप उनका स्पष्ट–स्पष्ट उत्तर दीजिए–

१. "पिण्ड पितृयज्ञ" शब्द वेद में कहां है ?

२. "मृतक श्राद्ध" शब्द वेद में कहां है ?

३. श्राद्ध में ब्राह्मणों को दिया गया भोजन मृतपितरों को कैसे मिल सकता है ?

सज्जनगण ! अब मैं आपके सम्मुख पण्डित जी के कहे प्रमाणों को सत्य की कसौटी पर तोलता हूं और आप लोगों को यह दिखलाता हूं कि उनमें कितना सार है ? आपका प्रथम मन्त्र–**"संगच्छस्व पितृभिः ....''** इत्यादि था इस मन्त्र में मृत पितरों का वर्णन कहां है ? इसका अर्थ तो स्पष्ट है कि–हे पितृः आप यज्ञादि कर्मो द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करने वाले बनकर सच्चे पितरों अर्थात् पालकों की श्रेणी में मिलें। यहां **"यम"** का अर्थ **"ईश्वर"** है। तीसरे पद में पण्डित जी ने अद्भुत अर्थ कौशल दिखाया है आप वहां **"अस्तिमेहि"** का अर्थ करते हैं **"जन्म लेकर"** ! यह अद्भुत अर्थ कहां से हुआ ? वहां पर तो **"अस्त"** होने का अभिप्राय है–**"मरना या डूबना"**– न कि उत्पन्न होना। आपके अगले मन्त्र–**"उदन्वती द्यौरवमा......"** और **"स्वधा पितृभ्यः.........."** इत्यादि दोनों मन्त्रों में **"पितृ"** शब्द से **"ऋतु"** लिया जाता है। वहां **"मृत पितरों"** का कोई वर्णन ही नहीं है। एवं **"पूषात्वेतश्च्यावयतु ....''**इत्यादि मन्त्र में आपने यह तात्पर्य कहां से निकाला कि **"पितृभ्यः"** का अर्थ **"मृत पितरों के लिए"** है ? इसमें तो मृत होने की छाया भी नहीं है। विचित्रता यही है कि–जहां **"पितृ"** शब्द का प्रयोग है वहां पण्डित जी झट से **"मृत पितर"** अर्थ कर देते हैं, ... श्रोताओं में हंसी ....किन्तु प्रमाण कोई नहीं देते। सज्जनों ! मैंने आपको अच्छी तरह से दिखा दिया है कि– पण्डित जी ने जो–जो प्रमाण दिए उनमें क्या कुछ सार है ? और वे प्रमाण उनके पक्ष को सिद्ध भी करते हैं वा नहीं ? अब मैं अपने पक्ष की पुष्टी में – कि वेद के सूक्तों में **"पितृ"** शब्द से **"जीवित पितरों"** का ग्रहण है, इसके लिए मैं आपको प्रमाण दिखलाता हूं, देखिए–यजुर्वेद के १९ वें अध्याय का ५८ वां मन्त्र क्या कहता है ?

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।

देखिये इस मन्त्र में कहा गया है कि–**अग्निष्वात्त्"** अर्थात् **"औपासनाग्नि"** से पवित्र हुए पितर श्रेष्ठयान वाले मार्गों से आवें तथा इस यज्ञ में मन्त्र द्वारा प्रसन्न हों तथा हमारे हित की बातें कहें और हमारी रक्षा करें। यहां पितरों के बोलने का स्पष्ट कथन है ! कहिये पण्डित जी महाराज !! क्या कभी मरे हुए पितर भी बोलते हुए सुने गए हैं ?...........जनता में हंसी ...., सज्जनों मैं जानना चाहता हूँ कि जब यहां बोलना लिखा है–तब भला मृतपितरों का ग्रहण कैसे हो सकता है ? देखिए यजुर्वेद अध्याय १९ का ६३ वां मन्त्र क्या कहता है ?—

आसीनासो अरूणीना मुपस्थे,रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्वः, प्रयच्छत इहोर्ज दधात्।।

अर्थात् ऊन वाले लाल आसनों पर विराज कर हे पितरों ! आप दानी पुरुष के लिए सम्पत्ति के देने वाले हो। सन्तान के लिए ऐश्वर्य का भाग दो तथा इस यज्ञादि में बल धारण कराओ। क्या कभी मृतपितरों का भी आसनों पर बैठना हो सकता है ? अतः साफ पता चलता है कि–**"वेद में ये सब संकेत जीवित पितरों के लिए ही है न कि मृत के लिए !"** और भी देखिए–यजुर्वेद अध्याय १६ का ६८ वां मन्त्र– और हां ! **"अरूणीनाम्"** इसका अर्थ आपके ज्वालाप्रसादजी ने भी **"ऊन के लाल आसन"** ही माना है।......... बीच में ही.......... **पण्डित गिरधरशर्मा जी ने कहा**–इसका प्रतीक बोलिए ?..........इस पर पण्डित इन्द्र जी ने कहा... ....यदि पण्डित जी महाराज ! आप पहिले ही ध्यान पूर्वक सुनें तो शायद आपको यह परिश्रम कभी न करना पड़े और मेरा समय भी खराब न हो। हां तो मैं यजुर्वेद का मन्त्र कह रहा था सुनिये वह क्या कहता है ?

इद्म्पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये उपरासईयुः।
ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नून सुवृजनासु विक्षु।।

इसमें पितरों के विषय में दो विशेषण विचारणीय हैं। जो पार्थिव (रज) लोक में स्थित् है। और **"जो उत्तम बलयुक्त प्रजाओं में वर्तमान हो"** पार्थिवलोक में रहना और उत्तम बल वाली प्रजाओं में रहना भी क्या मृत पितरों के लिए सम्भव है ? यहां जीवित पितर ही अभिप्रेत हैं। यदि अन्य प्रमाण भी लेना चाहो तो और भी लीजिए और देखिए–अथर्ववेद काण्ड १८, अध्याय १, मन्त्र ५२ –

आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभिगृणन्तुविश्वे।
माहिंसिष्ट पितरः केनाचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम।।

हे पितरो ! तुम सब वाम (बायें) घुटना नंवा (झुका) कर, दक्षिण में बैठकर इस यज्ञ का अभिनन्दन करो ! क्या मरे हुए पितर भी एक घुटने को झुका कर दूसरी जांघ पर बैठ सकते हैं ? ये सब चिन्ह केवल जीवित पितरों की ओर ही इंगित करते हैं।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

मित्रवर ! आपने मुझ पर पहिला ऐतराज यह किया है कि –मेरे कथन से केवल मात्र यही सिद्ध होता है कि–**"पितर मृत भी होते हैं, किन्तु यह सिद्ध नही होता कि मृत पितरों के लिए श्राद्ध भी होता है।"** अच्छा ! श्राद्ध तो दोनों के मत में माने जाते हैं। आपके स्वामी दयानन्द ने भी लिखा है कि पितृयज्ञ दो प्रकार का होता है। एक **"तर्पण"** और दूसरा **"श्राद्ध"**। तो जैसे हमारे यहां आप दोष देते हैं वैसे ही आपको भी श्राद्ध की वैदिकता सिद्ध करनी होगी। श्राद्ध विधान में मन्त्र भी हैं, किन्तु भेद यह है कि–आप उन मन्त्रों का अर्थ जीवित पितरों पर लगाते हैं और हम मृत पितरों पर लगाते हैं। दूसरा आपने प्रश्न किया था कि **"क्या श्राद्ध शब्द वेदों में हैं"** ? यदि हम शब्द पर ही झगड़ा करते रहेंगे तो यह नितान्त निरर्थक होगा और समय़ापन करना ही होगा। आपने अगला प्रश्न किया था कि –**"क्या ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन मृत पितरों को मिल सकता है ?"** यह प्रश्न तो किसी नास्तिक के मुख पर शोभा देता ! जिस प्रकार इस लोक में किये हुए पुण्य–दानादि का फल परलोक में प्राप्त होता है उसी प्रकार पुत्र से किये हुए संस्कार का फल भी अदृष्ट द्वारा वा किसी ईश्वरीय नियम द्वारा पितरों को मिल जाता है, इसीलिए कहा भी है कि–**"शास्त्र दर्शितंफलमनुष्ठानकर्तरीत्युत्सर्गइति"** और पुत्र से किये संस्कार का फल पितरों को मिलता है, यह अपवाद है। अब यह बात रही कि पितृ शब्द मृतकों का वाचक है या नहीं ? परन्तु आप कहते हैं कि– पितृ शब्द के

कई अर्थ हैं। भला यह तो बताइये कि– आप इस प्रकार कहां–कहां और क्या–क्या अर्थ करेंगे ? अतः यदि पितृ शब्द के कई अर्थ मानेंगे तो अव्यवस्था होगी, इससे अच्छा है कि निश्चित अर्थ माना जाये। आपने शंका की, कि यदि श्राद्ध मे पितरों का आह्वान किया जाता है तो बताइये यह किस तरह सम्भव है कि वे गौडे (घुटने) टेक कर आसन पर बैठ सकें। इसके लिए देखिये–शतपथब्राह्मण काण्ड २, अध्याय४, कण्डिका २ में क्या वर्णन करता है ?

"अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्यो पासीदं।
स्तान · ब्रवीन् मासि - मासि वोऽशनथ्रस्वधा" ।।

अर्थात् इससे यह स्पष्ट सिद्ध हुआ है कि–मृत पितर घुटने टेक कर बैठ सकते हैं और मास–मास के बाद उन्हें अन्न मिलना चाहिये। आपने **"संगच्छस्व पितृभिः ...."** इसका अर्थ यह है कि– पुत्र अपने मरते हुए पिता को सम्बोधन करता है। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या कभी पुत्र भी पिता को उपदेश किया करता है ? आपने इस मन्त्र को यम का अर्थ परमात्मा किया, सो ऐसा सम्भव है कि यम का अर्थ परमात्मा भी हो। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सब जगह यही अर्थ होगा। आपने **"ये अग्निदग्धाः, ये अनऽग्निदग्धाः........"** मन्त्र का अर्थ भोज्य पदार्थो पर लगाया है। मैं पूछता हूं कि क्या कभी पका हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में जा सकता है ? और यह मन्त्र पितृसूक्त का है अतः इस मन्त्र का अर्थ पितृपरक करना आवश्यक है। और इस मन्त्र में आगे चल कर आया है कि–हे अग्ने ! तुम उन पके हुए पदार्थो को जानते हो। यह क्या बात हुई ? भई पके हुए पदार्थों को तो हम भी जानते हैं, अतः अग्नि को यह कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हमें पितर दीखते नहीं–**"तिरोसिषै पितरो मनुष्येभ्यः ...."** अतः उनका बैठना हमें चाहे न दीखे किन्तु वे बैठ सकते हैं।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

मैंने पण्डित जी से प्रश्न किया था कि–**"श्राद्ध शब्द वेद में कहां है"** ? पण्डित जी ने कहा कि –जैसे यह ऐतराज हम पर है वैसे ही आप पर भी लागू होता है। जैसे इस शब्द की वैदिकता हमको सिद्ध करनी आवश्यक है वैसे ही आपको भी इसे दिखलाना चाहिये। खैर ! कुछ भी हो पण्डित जी ने श्राद्ध शब्द वेदो में न दिखलाकर अपना दोष तो स्वीकार कर ही लिया और मुझ पर भी वही दोष दिया है। गौतम के न्याय अनुसार आप यहां **"मतानुज्ञा निग्रह स्थान"** में जकड़े गये। पण्डित जी ने अपने पक्ष की पुष्टि में **"ये च जीवा ये च मृता ये जाता........."** इत्यादि मन्त्र सामने रक्खा, परन्तु यह तलवार तो पलट कर फिर उन्हीं पर उल्टी पड़ी। मैं पूछता हूं कि **"जीवा"** और **"जाता"** इन दोनों में भेद हैं वा नहीं ? यदि आप **"जाता"** शब्द से बालक का ग्रहण करें, तो क्या बालक भी **"पितर"** होते हैं ? बोलो पण्डित जी ! अब क्यों मौन साध कर बैठे हो ? ....जनता में हंसी .... । आगे आपने कहा जैसे हमारे दान पुण्यादि का फल हमें परलोक में मिलता है वैसे ही पुत्र के किये संस्कार का फल भी पितरों को मिल सकता है। क्या खूब ! पण्डित जी आपको भी मान गये !! क्या पण्डित जी आपको पता है कि इस प्रकार आपके कथन में **"कृतहान्यकृताभ्यागम"** दोष आवेगा। भला यह कैसे सम्भव है कि दान करे कोई और फल पावे कोई और ! अर्थात् खाऊं तो मैं और पेट भरे किसी दूसरे का !! संस्कार तो किया पुत्र ने ! किन्तु फल मिले पितरों को ? वाह ! यह आपका कैसा न्याय है ? दर्शनों का सिद्धान्त यह है कि–जो कर्म करे वही फल भोगे। ....श्रोताओ में हंसी .... आपने तो संहितामात्र को दोनों पक्षों के लिए मान्य कहा था, परन्तु आप तो ब्राह्मणग्रन्थों के भी प्रमाण दे रहे हैं। ....पौराणिक मण्डल में शोरगुल............सभापति द्वारा शान्ति स्थापित करना ....पण्डित जी कहते हैं कि, भाइयों ! यदि आप पितृ शब्द के अनेकार्थ मानेंगे तो किस–किस जगह क्या–क्या अर्थ हो

यह व्यवस्था कौन करेगा ? अतः एक ही निश्चित अर्थ होना चाहिये। मेरा पण्डित जी से निवेदन है कि, यह दोष आप मुझ पर न लगावें। किन्तु सायणाचार्य, शतपथ के कर्त्ता ऋषियों तथा महीधर आदि पर आप इस दोष को थौंपे, क्योंकि वे ही कहते हैं कि–**"पितृ शब्द के अनेक अर्थ हैं"**, मनु भगवान ने कहा है कि –

जनकश्चोपनेता च पश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ।।

शतपथ ब्राह्मण में वसन्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं का नाम भी पितर रूप में आया है। और आपके मान्य आचार्य सायणाचार्य ने **"अरुरूचत्रुशरः"** इत्यादि मन्त्र में **"पितृ"** शब्द का अर्थ **"रश्मि"** किया है। एवं आचार्य महीधर ने भी यजुर्वेद के अध्याय २ के बत्तीसवें पृष्ठ में **"पितृ"** शब्द का अर्थ **"ऋतु"** माना है। सो आप अव्यवस्था का दोष अपने आचार्यों पर थौंपे। निरुक्तकार यास्काचार्य ने **"गो"** शब्द के अनेक अर्थ किये हैं, सो आप ही बताइये कि–कहां–कहां पर, क्या–क्या अर्थ होगा ? इसलिए आपको भी मानना पड़ेगा कि प्रकरणानुसार इन अनेक अर्थों की व्यवस्था होगी। यही व्यवस्था पितृ शब्द के अनेक अर्थों के साथ भी रखनी पड़ेगी। यदि आप यह मानने को तैयार न हों तो आपके मत में यास्काचार्य का निरूक्त भी अव्यवस्था के दोषग्रस्त होने से अनादरणीय होने के कारण गंगा में प्रवाहित कर दिया जाना चाहिये। .... पौराणिक मण्डल में शोरगुल ....शान्ति..........शान्ति........, सज्जनों शांतिपूर्वक सुनो ! आगे पण्डित जी फरमाते हैं कि–पितरों को हर माह भोजन देना चाहिये। यह विधान है, और यदि यहां जीवित पितरों का ग्रहण हो तो क्या वे जीवित पितर एक मास तक भूखें रहेंगे ? परन्तु पण्डित जी ! मैं आपसे पूछता हूं क्या उन जीवित पितरों के अपने–अपने घर नहीं हैं ? जब अपने–अपने घर मौजूद हैं तो वे एक मास तक भूखे क्यों कर रहेंगे ? हां आदर के लिए उन जीवित पितरों–विद्वान जनों को मास–मास के बाद अपने घर में बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अच्छा मैं अब पण्डित जी से ही पूछता हूं कि आपके मृत पितर जिनका कोई घर–बार भी नहीं, एक मास तक भूखे क्यों न रहेंगे ? अतः यह मानना पड़ेगा कि–**"यहां "पितृ" शब्द से जीवित पितर ही लिए जाते हैं न कि मृत पितर"** ! और देखिये – **संगच्छस्व पितृभिः"** इस मन्त्र के अर्थ पर आशंका करते हुए पण्डित जी पूछते हैं कि–क्या पुत्र भी पिता को उपदेश देता है ? मैं पण्डित जी से फिर पूछता हूं कि जो व्यक्ति जिस किसी के प्रति जो कुछ भी कहे क्या वह उपदेश ही होता है ? देखिये यह वेद का मन्त्र **"विश्वानि देव सवितः ...."** इस मन्त्र में क्या मनुष्य ईश्वर को उपदेश दे रहा है अथवा प्रार्थना कर रहा है ? क्या कभी यह सम्भव है कि अल्पज्ञ मनुष्य सर्वज्ञ ईश्वर को उपदेश दे ? अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि–यहां मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है एवं **"संगच्छस्व पितृभिः........"** इस मन्त्र में पुत्र पिता से प्रार्थना करता है कि हे पिता ! आप सच्चे पालक बनिये और यज्ञादि से परमात्मा के गुणों को प्राप्त कीजिये। मैं पण्डित जी से हां या ना में पूछता हूं कि–**"संगच्छस्व पितृभि संयमेनेष्टा पूर्तेन.........."** इस मन्त्र में **"यम"** शब्द का अर्थ **"ईश्वर"** है वा नहीं ? यदि पण्डित जी इसका अर्थ ईश्वर ही मानते हैं तो मैं प्रमाण से सिद्ध करने को तैयार हूं कि यहां **"यम"** का अर्थ **"ईश्वर"** ही है, और अन्य कुछ नहीं। बस केवल पण्डित जी एक बार हां या ना में इसका साफ–साफ जवाब दे दें यदि आप **"ये अग्नि दग्धा ये अनग्निदग्धा...."** इस मन्त्र का अर्थ भोज्य पदार्थपरक मानने को तैयार नहीं और मृत पितरों पर ही यदि इसका अर्थ करते हैं तो मैं आपसे एक आशंका करता हूं कि आप बतावें आपके मृत पितर स्थूल शरीर हैं, वा आत्मा रूप ? चूंकि वे दीखते तो हैं नहीं, अतः यह नहीं माना जा सकता कि वे स्थूल शरीर होंगे और यदि वे आत्मारूप हैं तो क्या आत्मा का दग्ध होना सम्भव है ? आप कहते हैं–**"ये अग्निदग्धा......."** पर दूसरी तरफ भगवान् कृष्ण जी पुकार–पुकार कर कह रहे हैं –**"नैनं दहति पावकः,.........."**,अतः यह हो नहीं सकता कि इस मन्त्र का अर्थ मृत पितरों पर लगाया जाये, किन्तु भोज्य पदार्थपरक ही इसका अर्थ मानना होगा **"ये अग्निदग्धा ये**

अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते" जो पदार्थ अग्नि में पकाये जाते हैं, और जो पदार्थ अग्नि में नहीं किन्तु सूर्य की धूप से ही पकते हैं, यहां "दिवः" से निरूक्तकार के अनुसार "सूर्य" भी अर्थ हो सकता है। अच्छा अन्त मे मैं पण्डित जी के सामने एक अन्य मन्त्र भी रख जाता हूं। पण्डित जी बतावें आप इस मन्त्र का अर्थ मृतपितरों पर किस प्रकार लगा सकते है ? देखिये अथर्व वेद काण्ड, १८, अनुवाक २, मन्त्र २९, क्या कहता है ? ––

संविशन्त्विह पितरः स्वानः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्तु आयुः।
तेभ्य सकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूची।।

इस मन्त्र में बिल्कुल साफ–साफ कहा है कि हे पितरो ! आप आवें और विराजें, मैं पण्डित जी से फिर पूछता हूं कि क्या जीवित पितर– विद्वज्जन बैठ सकते हैं अथवा मृत पितर ?।।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

मित्रवर ! आपने कहा कि मैं **"मतानुज्ञा"** निग्रह स्थान में जकड़ा गया। पर कहिये तो किस प्रकार? हां यदि मैं आपके पक्ष को मान लेता तो मैं निग्रहीत होता, मेरा कहने का अभिप्रायः तो यह था कि जो ऐतराज आप मुझ पर लगाते हैं वह आप पर भी उसी प्रकार लागू होते हैं। जैसे मुझे उस दोष का परिहार करना होगा तैसे ही आपको भी करना होगा। **"ये च जीवा ये च मृता ये जाता........"** इस मन्त्र के अर्थ में आपने जो शंका उठाई थी कि क्या **"जाता"** बालक भी पितर होते हैं ? वह निर्मूल ही है, क्योंकि **"जाता"** का मतलब है जो जन्मान्तर ग्रहण कर चुके हैं। और **"जीवा"** जो गर्भ दशापन्न हैं। आगे आप कहते हैं कि यदि पुत्र के द्वारा किये गये संस्कारों का फल पितरों को मिलेगा तो **"कृत हान्य कृताभ्यागम"** दोष उपस्थित होगा। ठीक है जिसका कर्म से कोई सम्बन्ध नही उसको फल चाहे न मिले। किन्तु जिसको उद्देश्य करके कर्म किया जायेगा उसको फल मिलने में तो बाधा नही। सेना फतह करती है, किन्तु उसका फल तो राजा को ही मिलता है। अर्थात् जीत का सेहरा तो राजा के ही सिर पर बांधा जाता है। मित्रवर ! आप पूछते हैं कि–**"वेद"** का प्रमाण न देकर **"ब्राह्मणग्रन्थ"** का प्रमाण क्यों देते हैं ? सौ मैंने पहले भी कहा था कि–**"उपयोद्वलकतया"** सहायता के लिए ब्राह्मणग्रन्थ का प्रमाण देने में क्या हानि है ? आप कहते हैं कि जिस प्रकार **"गो"** शब्द से निरूक्तकार ने अनेक अर्थ बताये हैं उसी प्रकार **"पितृ"** शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। परन्तु यहां मेरा वक्तव्य यह है कि–गौण अर्थो का आश्रयण तभी किया जाता है जबकि मुख्यार्थ से सिद्धि न हो, जिस प्रकार लक्षणादि में मुख्य अर्थ से काम न चलने पर गौण अर्थ का आश्रयण आवश्यक है। परन्तु जब **"पितृ"** शब्द के मुख्यार्थ से सिद्धि होती है तो गौण अर्थ की अपेक्षा क्यों कर हो सकती है ? अन्यथा, यूं तो मैं यदि **"पावक"** का अर्थ पानी कर दूं तो क्या सब जगह यही अर्थ लिया जायेगा ? कभी नहीं।

मित्रवर ! आप जानते हैं कि भारत में शुरू से ही **"सम्मिलित फैमिली प्रथा"** चली आई है तो यदि श्राद्ध जीवित पितरों का ही माना जायेगा तो क्या उस घर का पिता एक मास तक भूखा बैठा रहेगा ? और फिर **"मासि-मासि"** के अनुसार एक मास में केवल एक बार ही भोजन पायेगा ? हमारे यहां तो "मृत पितरों का अहोरात्र ही एक मास का होता है, अतः वे भूखे नही रह सकते। प्रिय सज्जन ! ठीक है कि– **"विश्वानि देव सवितः........"** में स्वल्पज्ञ मनुष्य, सर्वज्ञ परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है। न कि उसे उपदेश दे रहा है। किन्तु मैं पूछता हूं कि क्या–**"संगच्छस्व पितृभिः........"** इस मन्त्र में भी पुत्र पिता की प्रार्थना कर रहा है ? प्रार्थना अपने लिए होती है न कि पराये के लिए ! तो क्या पुत्र–पिता के लिए प्रार्थना कर रहा है ? कभी नहीं। रही बात गीता के इस श्लोक की, कि–**"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि........"** यह तो जीव के लिए है आपने तो इसको सूक्ष्म शरीर के लिए कह डाला।........पौराणिक मण्डल में ....वाह ! वाह !! वाह....... धन

हो ! धन्य हो !! .... शिव ! शिव ! .... चारों तरफ हर्ष का वातावरण ....।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

..........ऊँची आवाज़ में गर्जकर बोले ....पण्डित जी ! आपको याद होगा गत वर्ष "**वर्ण व्यवस्था**" पर हो रहे शास्त्रार्थ में गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर हजारों की जनता उपस्थित थी, उनमें से किसी ने भी "**वाह ! वाह !**" नाम को भी नहीं कहा था। किन्तु जिस प्रकार आप "**वाह ! वाह !**" की डुगडुगी पीट रहे हैं उसी प्रकार यदि गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर भी "**वाह ! वाह !!**"की बुलन्दी दी जाती तो आपका कुछ भी कथन सुनाई न पड़ता। अब मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि अगर कोरी "**वाह ! वाह !!**" करने से ही आपका पक्ष सिद्ध होता हो तो मैं भी अपने पक्ष में प्रमाण देने के स्थान पर "**वाह ! वाह !!**" ही कहलवाऊं ?

नोट –

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जी ने ये बात बड़े ही आत्म विश्वास तथा कुछ ऐसे विचित्र ढंग से कही कि तमाम सभा में एक दम सन्नाटा छा गया। एवं दो मिनट बाद पौराणिक मण्डल में से चुप्पी तोड़ते हुए कहा गया,........ठीक है ! ठीक है !!.......अब कोई न बोले ! कहीं से भी अब कोई न बोले !! ...... सभी शान्ति पूर्वक सुनें........ आप पण्डित जी शास्त्रार्थ आरम्भ करिये, अब कोई नहीं बोलेगा।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

पण्डित जी फ़रमाते हैं कि यदि हमारा "**मृतक श्राद्ध**" शब्द वेदों में नहीं मिलता तो आपका "**श्राद्ध**" शब्द भी तो वेदों में नहीं है। अस्तु कुछ भी हो पण्डित जी ने अपना दोष तो मान ही लिया। अपना दोष माने बिना आप मुझ पर दोष कैसे दे सकते हैं ? अब यदि पण्डित जी "**मतानुज्ञा**" निग्रह स्थान की बेड़ियों में नही कसे गये तो और क्या है? "**ये च जीवा ये च मृताः**........" आदि मन्त्र का अर्थ करते हुए पण्डित जी ने "**जीवा**" का अर्थ "**गर्भ स्थित पितर**" का किया है। भला इसमें कोई वैदिक आधार भी है ? हां ? मनमानी ही चलाना हो तो अलग बात है। पण्डित जी के अनुसार जिसको उद्देश्य करके कर्म किया जाता है उसका फल उसे अवश्य मिल जाता है। एवं पुत्रादि द्वारा किये गये श्राद्ध का फल पितरों को मिलने में कोई बाधा नहीं होती। अच्छा, यह मान लिया। परन्तु पण्डित जी महाराज ? यह तो बताईये कि पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को खिलाये गये भोजन का तृप्तिरूप फल तो मिलना है पितरों को ? तब ब्राह्मण देवता का पेट क्योंकर भर जाता है ? पिता के संस्कार जो पुत्र में आते हैं उनमें पुत्र के ही कर्म कारण हैं, और पिता को अपने संस्कार करने का फल पृथक ही होता है। आगे पण्डित जी का फिर वही आग्रह है कि यदि पितृ शब्द के अनेक अर्थ माने जायेंगे तो बड़ी अव्यवस्था होगी किन्तु इस अव्यवस्था दोष की निवृत्ति के लिए पहिले आप मनु भगवान् और सायणाचार्य तथा महीधर का द्वार खटखटा आईये। हां ? यदि आप उधर से आंखे ही मूंद कर निकल जावें, और मेरे ही दरवाजे पर आवें तो इसमें मेरा दोष नही है। और देखिये ? पण्डित जी ने अब नया ही रास्ता पकड़ा है–लौट–पौटकर उन्हीं बातों पर जमा जमाया रंग फिर से चढ़ाकर सामने लाना शुरू किया है। आप कहते हैं कि –"**भारतवर्ष में शुरू से ही सम्मिलित कुटुम्ब वाली प्रथा रही है।**" जब आप जीवितों का ही श्राद्ध मानते हैं तो क्या "**मासि-मासि**" के अनुसार उन–उन घरों के पिता लोग एक–एक मास फाके ही उड़ाया करेंगे ? पर ? पण्डित जी मैं तो पहले ही आपको मनु भगवान का श्लोक याद करा आया हूं, उसको भी तो देखिये– "**जनकश्चोपनेता च**........" इत्यादि। क्या सम्मिलित कुटुम्ब पृथा के अनुसार राजा, गुरु आदि सब एक ही घर में भोजन करते थे ? यह लोग अपने–अपने घर में तो भोजन पाते ही रहेंगे किन्तु इन पितरों की पूजार्थ आप को भी एक–एक मास के बाद अपने घर पर ही भोजनार्थ बुलाना चाहिये। क्योंकि यदि विद्वज्जन आदि पितृगण प्रसन्न रहेगे तो समाज का भी कल्याण होता है। "**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि....**"का प्रमाण मैंने

सूक्ष्म शरीर के लिए नहीं कहा था बल्कि आत्मा के लिए कहा था, कदाचित् आपके सुनने में भूल हो गई हो। आगे जब भी कभी ऐसा अवसर आवे तो पहले कान साफ करा लिया करें । बात मैंने कही थी उसको इन श्रोताओं ने भी सुना है, आप अकेले तो सुनने वाले थे नहीं। यह बात तो आप अपने ही किसी पक्ष के व्यक्ति से पूछ लीजिये। और हां ? प्रथम तो प्रधान जी से ही पूछिये।.......ठीक है ! ठीक है !!........पण्डित जी के सुनने में भूल हो गई.......। श्रोताओं में हंसी......."**पण्डित गिरिधर शर्मा जी**–जोश में ......आपको हमारे "वाह ? वाह ?" पर ही आपत्ति थी ? .... अब जो लोग हंस रहे हैं इस हंसी पर नही है ?.......पण्डित **इन्द्र जी**–महाराज ? दोनों ही पक्षों के श्रोता स्वयं हंस रहे हैं, क्योंकि आपने बात ही ऐसी की है, आप प्रथम अपने पक्ष के व्यक्तियों को हंसने से रोकें। आपका भी कमाल है पण्डित जी स्वयं का घर देखते नहीं दूसरा को उपदेश करने चले हो। सभा में जबर्दस्त हंसी का वातावरण........प्रधान जी द्वारा.......मुश्किल से शान्ति स्थापित करना.........ठीक है अब मैं पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जी से प्रार्थना करता हूं कि वे समय नष्ट न जाने दें आगे शास्त्रार्थ आरम्भ करें !

सभ्यगण ! इस हंसने–रोने के चक्कर में मेरे पांच मिनट चले गये, भाईयों ! सुनो, आजकल हम आश्चर्य से देख रहे हैं कि पौराणिकों ने अपने पैंतरे बदल लिए हैं। पहिले शास्त्रार्थो में, बड़ी युक्तियों से सिद्ध किया जाता था कि–"**ब्राह्मणों को खिलाया गया भोजन पितरों को पहुंच जाता है**" किन्तु जान पड़ता है कि इस बात की निर्मूलता आपको भी स्वयं अनुभव होने लग गई है, इसलिए इस प्रश्न को सामने लाने तक का यत्न नहीं किया जाता, बल्कि जहां तक हो सके टाला जाता है। पण्डित जी कहते हैं कि मृत पितरों का अहोरात्र एक–एक मास का होता है इसमें आपने कोई भी वैदिक प्रमाण नहीं दिखलाया। एवं आपने पहिले दिए हुए मन्त्रों का कोई उत्तर नहीं दिया। अब मैं आपके सामने दो अन्य मन्त्र भी रखता हूं। इन पर भी अपना बुद्धि बल प्रकाशित कीजिए, देखिए, यजुर्वेद अध्याय १९, मन्त्र ५७ , में कहा गया

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्यसु निधिषु प्रियेषु।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्यधिब्रुवन्तुतेऽन्त्वस्मान् ।।

इस मन्त्र में साफ–साफ "**अधिब्रुवन्तु**" शब्द पढ़ा है जिसका अर्थ यह है कि वे पितर बोलें ! मैं पूछता हूं पण्डित जी महाराज ? क्या मृत पितर बोला भी करते हैं ? क्या आप लोगों ने कभी बोलते सुना हां ! यदि पण्डित जी ने कभी सुना हो तो पता नहीं। ....श्रोताओं में हंसी............अच्छा और देखिए–उसी अध्याय का सैतालिसवां मन्त्र –

उदीरता मवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृकाऋतास्ते नोऽवन्तु पितरोः हवेषु ।।

इस मन्त्र में स्पष्ट ही पितरों के लिए "**असुं य ईयुः**" शब्द पड़े हैं। जिनका तात्पर्य यह है कि प्राणधारी जीवित पितर के लिए ही यह शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। पण्डित जी से मेरा आग्रह है कि अपनी इस बात पर दृढ़ रहें कि "**ब्राह्मण के शरीर में आकर पितर भोजन करते हैं।**" अच्छा अब मैं पण्डित जी के सामने कुछ प्रश्न रखता हूं, पण्डित जी कृपया इनका उत्तर दें –

१. भला जो पितर माँ के गर्भ में स्थित हैं वे ब्राह्मण के पेट में क्यों कर आ सकते हैं ? जिस समय वे आते होंगे उस समय क्या माँ के गर्भ में बच्चा नहीं रहता ?
२. जो पितरगण मुक्त हो चुके, वे मोक्ष से लौटकर किस प्रकार ब्राह्मणों के पेट में आ सकते हैं ?
३. कल्पना कीजिए कि कोई पितर पशु यौनि में गए है, तो ऐसी अवस्था में ब्राह्मण के मन की

खिलाने से उस पशुयोनिस्थ पितर की तृप्ति होगी या घास आदि पशु के रूचिकारक पदार्थ खिलाने से ? साथ ही यह भी बताईये कि यह व्यवस्था कौन करेगा कि अमुक–अमुक के पितर अमुक–अमुक योनि में गए हैं ? ताकि तदनुसार ही भोजन ब्राह्मण देवता के पेट में डाला जाये ?

४. ब्राह्मणों को खिलाया गया भोजन पितरों तक पहुंच जाता है इसकी क्या गारन्टी है ? इसमें वेद का क्या प्रमाण है ? वह प्रस्तुत कीजिये।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

आपने **"मतानुज्ञाग्रह"** निग्रह स्थान मुझ पर किस प्रकार लगाया है ? मेरा तो कथन है कि आप भी श्राद्ध को ठीक मानते हैं, और मैं भी ठीक मानता हूं। जिस प्रकार मुझे अनेक पक्ष की पुष्टी करनी होगी, वैसे ही आपको भी करनी होगी। मित्रवर ! आपने यह कैसे कह दिया कि–पितरों के उद्देश्य से खिलाए गये भोजन द्वारा या तो पितरों की ही तृप्ति होगी, और या ब्राह्मणों की ही तृप्ति होगी ? मैं कहता हूँ दोनों की ही तृप्ति होगी। क्या एक ही क्रिया से दो कार्य नहीं हो सकते ? अग्नि जलाने से मकान भी काला हुआ और चावल भी पक गए। सेना की विजय से सैनिकों को तमगे मिल गए, राजा की जीत हो गई और शत्रु का पराजय भी हो गया। इसी प्रकार उसी भोजन से ब्राह्मण की भी तृप्ति हो गयी और पितर भी तृप्त हो गए। ऐसी–ऐसी शंकाओं से वृथा समय यापन ही होता है। प्रिय सज्जन ! जब पितृ शब्द के मुख्य अर्थ से ही काम चल जाता है तो अन्नदाता, भयत्राता, आदि गौण अर्थो के आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ? मित्रवर ! **"पौराणिक पैंतरे बदल रहें हैं"** यह कैसा कटाक्ष है ? हमारे सिद्धान्त तो लाखों बरस बीते सदा से एक ही चले आये हैं। यह तो आपकी समाज का ही हाल है कि तीस साल में ही अलग–अलग पार्टियें खड़ी हो गई हैं। आगे आप पूछते हैं कि मृत पितरों का अहोरात्र एक–एक मास का होता है। उसमें वेद का क्या प्रमाण है ? वाह ! वाह !! क्या अजीब बात कही !!! क्या हर बात वेद में से ही निकलेगी ? क्या पानी से लोटा भरने का विधान भी वेद ही बतलायेगा ? शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं किन्तु –

शक्तिग्रहं व्याकरणोकपमानकोशाप्तवाक्याद्व्यवहाराश्च।
वाक्यस्य शेषाद्वि नृतेर्वदन्ति सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा।।

अर्थात् **"ये च मृता ये च जीवा............"** इस मन्त्र से जो **"घृत कुल्या"** है वह जीवित पितरों के लिए कैसे हो सकती है ? आप बताइए कि–**"ये निखाताः............"** इत्यादि मन्त्र का क्या अर्थ है ? यदि आप इसका अर्थ भोज्य पदार्थो पर लगाते हैं तो यह कैसे उत्पन्न होगा कि –हे अग्ने ! तुम उन पदार्थो को लाओ। यदि आप मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते तो **"मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते"** इसके अनुसार द्युलोक में आप किसको अन्न देंगे ? **"ये अग्निदग्धाः ...."** आदि विशेषण स्थूल शरीर के ही दग्ध होने से उपचरित हुए हैं । वे मृत पितर जिनका स्थूल शरीर दग्ध हो चुका है। जिस प्रकार आत्मा के न चल सकने पर भी **"मैं चलता हूं"** यह व्यवहार होता है। जिस प्रकार मेरा जमा किया हुआ धन वसीयत वाले को मिलेगा वैसे ही हमारे कर्मो का फल पितरों को मिलता है। आपने कई प्रश्न किए थे ? किन्तु वे सब विषयास्पृष्ट हैं **"मरे हुए पितरों का जन्म कब होता है ?"** इसका विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है।।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

पण्डित जी ने **"मतानुज्ञा"** निग्रह स्थान से पीछा छुड़ाने के लिए एक नई तरकीब निकाली है। आपने कदाचित यह समझा होगा कि इतना कह देने मात्र से कि– **"आप भी श्राद्ध को ठीक मानते हैं और में भी ठीक मानता हूं"** मैं बचकर निकल जाऊंगा। पर हम तो वेद में श्राद्ध शब्द का आना ही नही मानते और पितृयज्ञ

का विधान जीवितों के लिए मानते हैं न कि मृतों के लिए ! इस बात को हम वेद के प्रमाणों से सिद्ध भी कर रहे हैं। सो यह विचार न कीजिए कि आप निग्रह स्थान से बच निकले। वह तो आपको दबोचे हुए बैठा ही है। सज्जनों ! पण्डित जी ने फ़रमाया है कि जिस तरह सेना के विजयी होने से सैनिकों को तमगे भी मिल जाते हैं और राजा की भी जीत हो जाती है। अर्थात् दो उद्देश्य पूरे हो जाते हैं, तैसे (उसी प्रकार) ही ब्राह्मण के पेट की और पितरों की, दोनों की ही तृप्ति हो सकती है। मैं पूछता हूं, क्यों पण्डित जी ! क्या तमगे लेना ही सेना के विजयी होने का उद्देश्य होता है ? **"ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति"** के अनुसार तमगे भी मिल जाते हैं। किन्तु तमगे देना उद्देश्य नहीं होता। इस सकल संहारी महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार उस उद्देश्य से नहीं कूद पड़ी की अमुक–अमुक व्यक्तियों को तमगे ही देने थे। दूसरे आपने कहा कि अग्नि से चावल भी पक गए, और मकान भी काला हो गया, धन्य हो ! पण्डित जी महाराज !! फिर आप श्रोताओं पर दोष रखेंगे कि हंसते हैं, आप बातें ही ऐसी कहते हैं कि कोई हंसे बिना रह ही नहीं सकता, क्या दुनियां में कोई व्यक्ति मकान काला करने के उद्देश्य से ही आग जलाता है या चावल-पकाता है ? नहीं महाराज जी ? अग्नि जलाने से केवल चावल पकाना ही उद्देश्य होता है। मकान काला करना नहीं,............उपस्थित सभी श्रोताओं में जबर्दस्त हंसी............"अब पण्डित जी ! आप ही इन सभी श्रोताओं को हंसने से रोकिये, मैंने तो इन्हें हसने को कहा नहीं मैंने तो केवल आपकी बात का जवाब दिया है, भला पण्डित जी आप यह तो बतलाइए कि–"**श्राद्ध**" की यह परम्परा कब से चली है ? देखिये महाभारत के अनुशासन पर्व में........बीच में.......

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

यह आपकी लास्ट टर्न है अतः आप नया दोषोद्घाटन नहीं कर सकते।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

अच्छा ! अच्छा !! रहने दीजिये, चलों पूर्व किए गए प्रश्नों का हीं उत्तर दो, अभी तो उन्हीं का भार बहुत है। मैं तो भूल ही गया था कि पण्डित जी में इतना भार सहने की शक्ति नहीं है।............जनता में फिर हंसी............तो आगे पण्डित जी............,

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

........झल्लाते हुए.........आप फिर टोंट कसते हैं, क्या गुरुकुल में यही पढ़ाया जाता है ? आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते तो साफ मना क्यों नहीं करते ?

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

सज्जनों ! मैंने ऐसी तो कोई गलत बात कहीं नहीं हैं जिस पर पण्डित जी इतना गुस्सा दिखला रहे हैं। वास्तविकता तो ये है कि गुस्सा तो इन्हें आ अपने ऊपर रहा है परन्तु उसे उतार मुझ पर रहे हैं,...... जनता में फिर हंसी........भाइयो ! आगे पण्डित जी कहते हैं कि पितृ शब्द के मुख्य अर्थ से ही काम चल जाने से, मनु और सायणाचार्यादि के लाक्षणिक अर्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर पहले आप मनु आदि के किए हुए अर्थो की लाक्षणिकता तो सिद्ध कीजिए ? आप चाहें तो यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र ४६ में साफ–साफ देख सकते हैं कि वेद में जीवित पितरों का ही वर्णन है तथा मन्त्र भी नोट कर लीजिए–

स्वादुषः सदः पितरो वयोधाः कृच्छेश्रितः शक्तीवंतोगभीराः।
चित्रसेनाइपुबला अग्रघ्रः सतो वीरा दुखो व्रात्तसहाः ।।

इसमें आयु धारण करने वाले विचित्र सेनाओं वाले बाण प्रहारी पितर कहे हैं ? मैं पूछता हूं ! क्यों पण्डित जी ? क्या मरे हुए पितर भी धनुष बाण लेकर अन्तरिक्षलोक में एक दूसरे को मारते हैं ? अब मैं एक

मन्त्र और पेश करता हूं जिसके अर्थ समझ लेने पर कोई भूल कर भी पितृ शब्द से मृत पितरों का ग्रहण न करेगा। देखिए अथर्ववेद १८–४–८७,–**"य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्मां स्तेनु वयं तेषां श्रष्ठा भूयास्म।।"** इस मन्त्र में जीव तथा पितृ शब्द विशेष्य–विशेषण हैं। यहां स्पष्ट ही जीवित पितर कहे गए हैं। कहिये इस पर पण्डित जी आप क्या कहते हैं ? इस मन्त्र से कोई भी सन्देह नहीं रहता कि जीवित पितरों का ही आवाहन किया जाता है। **"ये निखाता............"** इत्यादि मन्त्र का अर्थ करते हुए पण्डित जी फ़रमाते हैं कि वे पितर जो गाड़े गए हैं। भला पण्डित जी महाराज ! यह तो बताइए कि क्या हमारे प्राचीनकाल में कोई ऐसा भी समय था जबकि हमारे यहां मुर्दा गाडने की प्रथा जारी थी ? क्या आप मुर्दा गाडने में कोई वैदिक विधान दिखाने को तैयार हैं ? वेद तो सुना रहा है **"भस्मान्तं शरीरं............"** और आप वेदों में मुर्दो का गाडना दिखाते हैं **"ये निखाता............"** इत्यादि मन्त्र का आपके द्वारा किया गया अर्थ कभी भी वेद सम्मत नहीं हो सकता, अतः उक्त मन्त्र को **"भोज्य पदार्थ परक"** ही लगाना पड़ेगा अन्यथा आपके कथनानुसार **"मृत पितृ परक"** लगाने से वेदों को दूर से ही तिलाञ्जली देनी पड़ती है। सज्जनों ! आपको याद होगा पण्डित जी ने प्रमाण देते हुए बड़े जोर से कहा था कि–**"अहोरात्र"** के शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं, परन्तु पण्डित जी ! यह तो **"मम् मुखे जिह्वा नारित"** वाली बात हुई ना ? ....श्रोताओं में हंसी ....एक तरफ तो आप कहते हैं कि शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं है। किन्तु दूसरी तरफ़ **"पितृ"** शब्द के निर्णय के लिए आपने वेदों के कितने ही प्रमाण दिए हैं, क्या उनमें यहां परस्पर विरोध नहीं है ? महाभारत के अनुशासन पर्व में, युधिष्ठर ने भीष्म पितामह से प्रश्न किया है कि–**"श्राद्ध की प्रथा कब से आरम्भ हुई ?"** इसके उत्तर में भीष्म पितामह ने कहा कि–**"निमि नाम के राजा के समय से यह प्रथा जारी हुई है"** तो क्या **"निमि"** से पूर्व बिचारे मृत पितरों की दुर्गति ही हुआ करती थी ? अतः मानना पड़ेगा कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही होता था। क्यों पण्डित जी ! मैंने पूछा था कि–**"श्राद्ध"** और **"पिण्ड पितृ यज्ञ"** शब्द वेदों में से दिखाइए, किन्तु पंडित जी ने अब तक इसके लिए कोई उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन, मृत पितरों तक कैसे पहुंच जाता है ? इसका भी आपने कोई उचित उत्तर नहीं दिया। मैंने जिस मन्त्र द्वारा यह स्पष्ट रूप से साफ–साफ बताया था कि–**"जीवित पितरों का ही श्राद्ध होता है"** उस मन्त्र के विषय में पण्डित जी बिल्कुल चुप्पी साध गए हैं, मैनें दिखाया था कि वेद में पितरों का उठना, बैठना तथा बोलना लिखा है। इस प्रश्न के ऊपर से श्री पण्डित जी बिल्कुल साफ कदम उठा कर निकल गए । सज्जनों ! उधर सभापति जी का निर्देश हो रहा है कि समय समाप्त हो गया है। इसीलिए..........बीच में ही–टर्न टन टन ....,

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

सज्जनों ! यह लास्ट टर्न होने पर भी नये–नये दोषोद्भाषण किए गए हैं अतः मैं सभापति जी से प्रार्थना करता हूं कि एक–एक टर्न और मिलना चाहिए।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति –

अच्छा ! एक–एक टर्न यदि आप दोनों लोग चाहें तो हो सकती है।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

बड़े शौक से ! हम तैयार हैं, जब तक पण्डित जी की पूर्ण तसल्ली न हो जाये हम हटने वाले नहीं हैं। ....श्रोताओं में नया उत्साह, उमंग व चारों तरफ़ हर्ष का वातावरण........... ।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

(१) मित्रवर ! **"मृत पितरों"** को घृत की कुल्या मिलने के विषय में आपने कोई उत्तर नहीं दिया। (२) **"पूषा त्वेत श्चयावयंतु............"** इसका भी आपने उत्तर नहीं दिया, आपकी यह आदत है कि अन्तिम टर्न में ही आप दूसरों के दोष निकाला करते हैं। (३) जिस प्रकार **"युद्ध"** का आवान्तर उद्देश्य सिपाहियों को तमगा देना भी होता है इसी प्रकार श्राद्ध का आवान्तर उद्देश्य ब्राह्मणों की तृप्ति होना भी हो सकता है। (४) "ये **निखाता............**"इत्यादि मन्त्र का आपके कथनानुसार यह अर्थ होगा कि–हे अग्ने ? हवि खाने के लिए तुम उन निखात पदार्थो का आवाहन करो। **"निखाताः"** है प्रथमान्त और **"हविषे"** है चतुर्थ्यन्त, भला यह तो बताइए कि आप इनका समन्वय किस प्रकार करेंगे ? (५) प्रिय सज्जन् ! महाभारत में जो **"निमि"** से श्राद्ध प्रथा का आरम्भ बताया गया है, वह सतयुग से ही प्रारम्भ हुई थी, और **"निमि"** ने वेद से देखकर **"श्राद्ध प्रथा चलाई थी"**। (६) शब्दार्थ निर्णय के लिए वेद से तब आश्रय लेना पड़ता है जब कि व्यवहार में विप्रतिपत्ति हो। मनु भगवान ने जो **"पितृ"** शब्द के अन्य अर्थ किए हैं वे लाक्षणिक हैं। मुख्य अर्थ तो लोक में प्रसिद्ध ही है कि **"पितृ"** शब्द से जनक ही लिया जाता है। (७) आपने **"य इह पितरो जीवाः..........."** यह मन्त्र दिया था कि इसमें तो स्पष्ट–स्पष्ट जीवित पितरों का विधान है, परन्तु मित्रवर ? **"मृत पितर"** कहने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि–**"जो पितर नितान्त नेस्तोनाबूद हो गए हैं,"** किन्तु वे अपनी योनि में तो जीवित ही हैं। (८) आगे ही चलकर मन्त्र में आया है कि–**"इहवयंस्म"** अर्थात् हम यहां हैं और तुम अन्यत्र हो अतः इससे मृत पितरों का ही निर्देश है। (९) **"स्वधापितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः ?"** इस मन्त्र में साफ–साफ लिखा है कि अन्तरिक्ष में रहने वाले पितरों को अन्न मिले, भला यह तो कहिए कि–अन्तरिक्ष में रहने वाले मृत पितर हो सकते हैं या जीवित पितर ? कदाचित् आपके जीवित पितरों को पर (पंख) लग गए होंगे जिनसे वे अन्तरिक्ष में भी उड़ान भरा करते हैं।........जनता में हंसी........। (१०) **"श्राद्ध"** शब्द वेद में नहीं है, तो क्या हुआ ? पर उसका अर्थ तो वेद में मिलता है, वो तो कहीं नहीं भाग गया, अतः श्राद्ध शब्द के विषय में झगडा करने की क्या ज़रूरत है ? चाहे वो वेद में हो या न हो ?

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

सज्जनों ! लोक में प्रसिद्ध है कि–**"हारा हुआ जुआरी फिर दाव पर दाव लगाता है"** पर बेचारे का पासा ही सीधा न पड़े तो वो कहां तक प्रयास करे ? ....गर्ज कर............याद रखना वह कितने भी दांव लगाए हमेशा हारेगा। ....पौराणिक मण्डल में खलबली............सभापति द्वारा बड़ी मुश्किल से शान्ति स्थापित् करना............अच्छा सुनो ? हमारा आधा प्रश्न तो हल हो गया, पण्डित जी ने मान लिया कि–**"श्राद्ध"** शब्द तो वेद में कहीं नहीं पाया जाता, अच्छा अब............पौराणिक समुदाय में पुनः शोरगुल ....अन्याय............अन्याय।

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

यह मैंने कब कहा कि **"श्राद्ध"** शब्द वेद में नहीं है ? मेरा तो कहना है कि इस पर झगड़ा करने की जरूरत ही क्या है ?

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

आश्चर्य ! महा आश्चर्य !! इतना सफेद झूठ !!! चलो मैं साक्षी दिलवाने के बजाय अब फिर कहता हूँ कि–**"यदि आपने यह नहीं कहा तो अब भी बता दीजिए कि–श्राद्ध शब्द वेद में है या नहीं ?"** मैं अपने समय में से ही एक मिनट इसके उत्तर के लिए आपको देता हूं आप इसका उत्तर साफ–साफ दें। सब झगड़ा तय हो जाएगा।

नोट –

"वक्ता" महाशय का एक मिनट तक मौन रहना और पण्डित गिरिधर शर्मा जी के उत्तर की प्रतीक्षा करना ?.........कोई उत्तर न मिलने पर........पण्डित गिरिधर शर्मा जी का चेहरा पीला पड़ गया.........।

"लो सज्जनों ! आपने देख लिया कि पंडित जी को मैंने अपना एक मिनट भी दिया, किन्तु फिर भी पंडित जी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया कि वेद में **"श्राद्ध"** शब्द मिलता है वा नहीं ? परन्तु पण्डित जी का चेहरा साफ बतला रहा है। जुबां न खुले तो क्या ? कि **वेद में "श्राद्ध" शब्द नहीं है** अब मैं पौराणिक श्रोताओं से भी पूछता हूं कि वो तालियों की गड़गड़ाहट अब कहां गायब हो गई ? वेद में कहीं **"श्राद्ध"** शब्द हो तो अपने पण्डित जी से इसका जवाब दिलवायें ?

नोट –

पौराणिक मण्डल से एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा –**"उपनिषद में श्राद्ध शब्द आता है"**।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

वेद में तो कहीं नहीं आता है ना ?.........पौराणिक मण्डल से.......नही ....नही......... कहीं नही आता.......भाइयों बस ! बस !! ....मुझे यही सुनना था। पण्डित जी ने कहा, कि–**"यह मेरी आदत है कि जब मेरी लास्ट टर्न आती है तो मैं नये-नये दोष दिखाया करता हूं।"** मैं भी पण्डित जी की एक आदत आपको बतलाता हूं कि–**"जब लास्ट टर्न दूसरे की हो तो पण्डित जी अपने पक्ष की निर्बलता देख कर घबरा जाया करते हैं"**। जैसे आपने शंका उठाई कि –आप प्रथमान्त और चतुर्थ्यन्त का समन्वय किस प्रकार करेंगे ? मैं पूछता हूं कि–**"हविषे अत्तवे"** दोनों चतुर्थ्यन्त हैं तो आप **"हवि के खाने के लिए"** ऐसा चतुर्थी का षष्ठ्यर्थ किस प्रकार करेंगे ?.......पौराणिक मण्डल में.........शी.........शी.........शी........." जिस प्रकार वहां **"हविषे"** की जगह षष्ठी का अर्थ करना पड़ता है उसी प्रकार यहां पर व्यत्यय से **"पितॄन्"** का अर्थ **"पितॄणां"** होगा और मन्त्र का यह अर्थ होगा कि–**"हे अग्ने ! तू उन निखातादि भोज्य पदार्थो को पितरों के "हवि" खाने के लिए ला।"** इसके बाद आपने कहा कि–महाभारत में आया है कि यह **"मृत पितरों"** का श्राद्ध सत्युग से चला आ रहा है। परन्तु वहां ऐसा बिल्कुल भी नहीं आया, वहां तो आया हैं कि–

अकृतं मुनिभिः पूर्वकिं मयदे मनुष्ठितम् कथं न शापेन न मांद हेयु ब्राह्मिणिना इति।

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ६१ श्लोक १७)

अर्थात् मैंने यह **"मृत पितृ श्राद्ध"** किये गये मुनियों द्वारा दिखाये गये मार्ग के विरुद्ध कर्म किया है, अतः अब मुझे ब्राह्मण लोग अपने शाप से कहीं दग्ध तो न कर देंगे ? इसलिए **"मृत पितृ श्राद्ध"** सर्मथापि शास्त्र विरुद्ध है। और........बीच में.........

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

अच्छा आप थोड़ा और आगे तो पढ़ें !

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

मेरे पास इतना समय नहीं है। ....पौराणिक मण्डल में.........शोरगुल.........गुल गपाड़ा......... तालियें.........हो हुल्लड़........." यह आपकी सभ्यता और शिष्टता है ?.........

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

महाशय जी ! कृप्या आप अगले श्लोक भी पढ़ देवें, आपको उतना समय और मिल जायेगा।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति –

हाँ ! आप अगले श्लोक भी पढ़ देवें, आपको उतना समय और मिल जायेगा।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

ठीक है ! परन्तु सभापति जी आपको पता नहीं हैं इन पण्डित जी की ये आदत है कि–"अंगुली पकड़ कर पौंचा पकड़ना" अब पढ़ने को कहते हैं फिर अर्थ के लिए कहेंगे। खैर ! मैं पण्डित जी की तसल्ली के लिए तथा आपके आदेश पर पढ़ दूंगा, अच्छा पण्डित जी आप पुस्तक से वह स्थल निकालिए, इतनें मैं अपना वह बकाया स्थल पूरा करता हूं।

भाइयों ! देखिये पण्डित जी ने फर्माया था कि–**"अहोरात्र"** शब्द पर जब विप्रत्तिपत्ति ही नहीं तो वेद में से प्रमाण देने की जरूरत ही क्या ? क्या खूब ! भाई वाह !! सुना आपने !! मैं इतनी देर से स्पष्टतया विप्रतिपत्ति उठा रहा हूं। किन्तु पण्डित जी कहते हैं कि किसी की विप्रतिपत्ति ही नहीं। क्या पण्डित जी सुनी को भी अनसुनी करियेगा ? पण्डित जी ने कहा कि–**"मृत पितर"** से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि जो नितान्त नेस्तोनाबूद हो गए हैं, किन्तु जो अपनी योनि में तो जीवित ही है। तो भला पण्डित जी आप यही अर्थ करेंगे कि–**"जो मेरे जीते हैं"** ? यदि यही अर्थ करना है तो दोनों शब्दों की क्या आवश्यकता है ? कि–**"ये च जीवा ये च मृता"**। और **"य इह पितरो जीवः"** इसका अर्थ आपके मतानुसार सर्वथापि संगत नहीं हो सकता। अच्छा महाभारत में से वह स्थान निकल आया है, मैं उसे आपके सामने पढ़ देता हूं सभापति जी देख लें कि मेरा कितना समय अवशिष्ठ है, वह समय मैं बाद में ले लूंगा।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति –

आपका एक मिनट अवशिष्ठ है, वह आपको बाद में मिल जायेगा।

नोट –

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति द्वारा अगले श्लोकों को पढ़ना..........बीच में ...."

श्री पण्डित गिरिधरशर्मा जी चतुर्वेदी –

उनके अर्थ भी सब कर दीजिये, ताकि पूर्ण बात श्रोता लोग समझ सकें !

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

देख लिया भाइयों ! आपने देख लिया, मैंने पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी थी......जनता में हंसी..... पण्डित जी आप मुझे बार–बार टोकते हैं ताकि जो बात मैं कहना चाहता हूं वह पूरी न कर सकूं, ये लीजिये ग्रन्थ आप स्वयं ही अर्थ पढ़कर सुना दीजिये।........पण्डित गिरिधर जी द्वारा अर्थ का पढ़ा जाना .... पौराणिक समुदाय में ....वाह ! वाह !!........व शोरो गुल........ !! ....पश्चात् श्री पण्डित इन्द्र जी का अपना वक्तव्य पूरा कराना........

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति –

"सज्जनों ! पण्डित जी ने आपके सामने वे श्लोक व अर्थ पढ़ दिया, किन्तु उनमें कहीं भी **"मृत पितरों"** का वर्णन नही आया। अच्छा अब मैं अपना एक मिनट लेता हूं। मैंने पण्डित जी से पूछा था कि वेद मन्त्रों में तो पितरों के लिए आता है **"अधिब्रुवन्तु"** तो इसके अनुसार अब पण्डित जी बतलायें कि क्या **"मृत पितर"** कभी बोल भी सकते हैं ? परन्तु पण्डित जी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि ये लोग शोरगुल्ल करके सच को दबाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु जो वैदिक पक्ष है वह आज स्थित हो गया। ....पौराणिक मण्डल में से........बोलो सनातन धर्म की जय की ध्वनि........व तालियों की गड़गड़ाहट........ ।।

श्री पण्डित पूर्णानन्द जी शास्त्रार्थ केसरी–

पौराणिकों से भी दुगुने आवेश वाली ऊंची आवाज में........बोलो वैदिक धर्म की........जय,........ महर्षि दयानन्द की........जय........श्री पण्डित विश्वनाथ जी त्रिपाठी जो इस शास्त्रार्थ समिति के मन्त्री भी हैं कृपया मेरी बात का उत्तर दें – भला यह आप लोगों का कैसा शिष्ठ व्यवहार है ? यदि आप हमारे यहां आते और हम आपकी पगड़ी उतारते तो तुम्हें कैसी शर्म आती ?

नोट –

इसके अनन्तर शनै–शनै तमाम शास्त्रार्थ स्थली खाली हो गई, परन्तु श्री पण्डित दुर्गादत्त पन्त जी ने जो पौराणिक समुदाय की ओर **"चुप चाप बैठे हुए थे"** अन्त में उठते हुए बड़े ही आवेश में आकर श्री पण्डित पूर्णानन्द जी को संकेत करते हुए कहा कि ....

श्री पण्डित दुर्गादत्त जी पन्त –

मैं चैलेञ्ज देता हूं यदि आप **"गुरुकुल और यज्ञोपवीत"** शब्द वेद में से निकाल कर दिखला दें तो मैं आपका लोहा मान जाऊँगा।

श्री पण्डित पूर्णानन्द जी शास्त्रार्थ केशरी –

चलो मुझे आपका चैलेन्ज स्वीकार है, **"चलिए गंङ्गा के किनारे पर मैं बीस साल तक शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं"** तब मैं आपको दिखलाऊंगा कि वेद में इसका मूल कहां–कहां पर पाया जाता है ?

श्री लाला बलदेवसिंह जी का अन्तिम भाषण –

आओ अन्त में सब मिलकर एक साथ परमपिता परमात्मा से प्रार्थना कर लें.........प्रार्थना करते हुए.........."हे परम् पिताजी ! वक्ताओं के मुख पवित्र हो जावें, तथा सुनने वालों के कान पवित्र हो जावें, तथा सारे आकाश में पवित्रता फैल जावे और परम पिता अनुचित भावों को दूर करें। अच्छा ! सब मिलकर तीन बार बोलें ....**"परम पिताजी सब आपके भक्त बन जावें।'**............तीन बार इस वाक्य को सबके द्वारा दोहराया गया ....।

नोट–

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, एवं कितना अच्छा, **"मृतक श्राद्ध"** का नीर–क्षीर विवेक इसमें हुआ ? वह आप पाठक लोग स्वयं निर्णय करें। जिन लोगों ने स्वयं अपनी आंखों से देखा व कानों से सुना वे लोग तो धन्य थे।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"
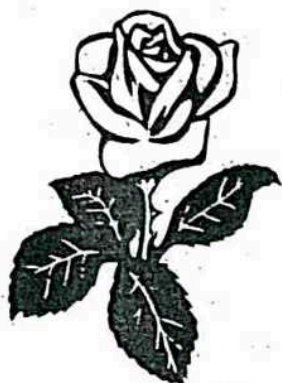
छयालीसवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "जेजों" जिला–होशियारपुर (पंजाब)

दिनांक : १५ अप्रैल सन् १९१७ ई०
विषय : क्या ईश्वर जगत्कर्ता है ?
सभापति : श्रीमान महाशय देवीचन्द जी (हैड मास्टर, डी० ए० वी० हाई स्कूल होशियारपुर)
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : कवितार्किक श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री, दर्शनाचार्य (प्रोफेसर डी०ए०वी० कालेज़ लाहौर).
जैनियों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बनारसीदास जी जैन
शास्त्रार्थ के आयोजनकर्त्ता : महाशय लक्ष्मणदास जी (मन्त्री आर्यसमाज–जेजों)

नोट —

यह शास्त्रार्थ दिनांक २३ मई सन् १९१७ ई० को प्रथम बार **"श्री महाशय लक्ष्मणदास जी,"** द्वारा जो आर्यसमाज जेजों के **"मन्त्री"** तथा इस शास्त्रार्थ के **"आयोजनकर्त्ता"** थे उनके द्वारा ही प्रकाशित कराया गया था जिसकी मूल छपी हुई पुस्तिका पूज्य महात्मा अमरस्वामी जी महाराज के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, चौरासी वर्ष के बाद यह शास्त्रार्थ अब पुनः प्रकाशित किया गया है।

निवेदक —
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

भाईयों ! प्रस्तुत विषय **"ईश्वर जगत्कर्त्ता है"** यह वेद का अटल सिद्धान्त सर्वोपरि विराजमान है, परन्तु कई एक सम्प्रदायी लोग उक्त सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, जैसा कि जैन मतानुयायी ईश्वर को जगत्कर्त्ता नहीं मानते, वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना आर्यो का मुख्य धर्म जानकर हमने तारीख १५–४–१६१७ ई॰ को अपने आर्यसमाज (जेजों) के उत्सव में उक्त विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए भारतवर्ष के समस्त जैनियों को समाचार पत्र आदि द्वारा चैलेञ्ज दिया था कि–**"हम आपको शास्त्रार्थ का अवसर देते हैं"**। यहां के कई जैन भाईयों ने इस बात को स्वीकार कर बड़े समारोह के साथ अपने जैनी विद्वान श्री पण्डित बनारसीदास जी को बुलवाया, एवं हमारी ओर से कवितार्किक पण्डित नृसिंहदेव जी शास्त्री, दर्शनाचार्य, प्रोफेसर डी॰ ए॰ वी॰ कालेज, लाहौर भी ठीक नियत्त समय पर पधारते ही प्लेटफ़ार्म पर शास्त्रार्थ करने के लिए आकर खड़े हो गए। और उन्होंने शास्त्रार्थ सम्बन्धी कई एक नियमों का सविस्तार वर्णन किया, जो दोनों पक्षों के लिए योग्य थे, जिनको श्री पण्डित बनारसीदास जी ने सब जनता के समक्ष स्वीकार किया वह नियम यह हैं –

१. शास्त्रार्थ का विषय ईश्वर जगत्कर्त्ता है वा नहीं ? अस्ति (है) पक्ष आर्यो का एवं नास्ति (नहीं है) पक्ष जैनियों का।
२. शास्त्रार्थ संस्कृत वा देशी (हिन्दी) भाषा में होगा।
३. प्रथम बार दोनों वक्ता–दस–दस मिनट बोलेंगे पश्चात् पांच–पांच मिनट।
४. प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्दप्रमाण यह चारों प्रमाण विषय निश्चय के लिए यथा रुचि स्वीकृत हुए।
५. जो वक्ता शास्त्रार्थ प्रारम्भ करेगा वही समाप्त करेगा, दूसरे का अधिकार नहीं।
६. शास्त्रार्थ में दोनों पण्डित एक दूसरे से शास्त्रार्थ सम्बन्धी कुछ लेख अपनी रुचि अनुसार लिखवा सकते हैं।
७. शरीर सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए दोनों पण्डितों को शास्त्रार्थ के मध्य समान अधिकार हैं।

उक्त नियमों में दूसरे नियम के अन्तर्गत श्री पण्डित बनारसीदास जी ने हिन्दी में ही शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति दी (श्री पण्डित बनारसीदास जैन संस्कृतज्ञ नहीं थे) एवं अन्य सभी नियम स्वीकृत होने के अनन्तर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। शास्त्रार्थ का नियत समय दो घंटे निश्चित किये गये थे, परन्तु श्री दर्शनाचार्य जी की प्रबल युक्तियों से घबराकर श्री पण्डित बनारसीदास जी पूरे समय को न निबाह सके इसलिए डेढ़ घण्टे के लगभग शास्त्रार्थ करके श्रोताओं की रुचि अनुसार समाप्त किया गया, दोनों पक्ष वालों की सम्मति से इस शास्त्रार्थ के सभापति श्रीमान महाशय देवीचन्द जी, हैडमास्टर, डी ए.वी॰ हाई स्कूल, होशियारपुर नियत किये गए, जिन्होंने अपने कर्त्तव्य का निष्पक्ष रूप से पालन किया।

शास्त्रार्थ का विषय बहुत सूक्ष्म तथा दर्शनों की परिभाषा कठिन होने पर भी श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री जी बहुत सरल रीति से वर्णन करते थे, जिसंको साधारण लोग भी भले प्रकार समझने में दत्तचित्त बने रहे, सो वैसे ही हमने क्रम से इसे छपवाकर सबके लिए प्रसिद्ध किया है, कृपया एकाग्रचित्त होकर निष्पक्ष भावना से पढ़ कर लाभ उठायें।

तारीख २३–५–१६१७ई॰

निवेदक –
"लक्ष्मण दास"
(मन्त्री, आर्यसमाज–जेजों)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

आर्य समाज के सिद्धान्त में जीव, ईश्वर, प्रकृति, तीन पदार्थ अनादि हैं, अब विचारणीय विषय यह है कि ईश्वर निमित्त कारण तथा दयालु है वा नहीं, यदि निमित्त कारण दयालु ईश्वर होता तो कदापि कोई जीव पाप न करता, सर्वशक्तिमान ईश्वर पापों से उस जीव को अपनी शक्ति द्वारा हटा देता, कोई जीव पाप न करता, आर्यों का ईश्वर दयालु है !

सज्जनों सुनो ! ध्यान से सुनो !! मैंने क्या कहा कि आर्यों का ईश्वर दयालु है परन्तु इनके यजुर्वेद में अध्याय १३ मन्त्र ४८ में वही दयालु ईश्वर मारने की आज्ञा देता है। इस प्रकार जीवों को पाप से न हटाने के कारण सर्वशक्तिमत्तारूप–गुण तथा हत्या करने की आज्ञा देने से दयालुपना नष्ट हो जाने पर ईश्वर ही नष्ट हो गया। अर्थात् सिद्ध न हो सका क्योंकि गुण के नाश से गुणी का नाश हो जाता है। दूसरी बात यह है कि इन्द्रिय सन्निकर्ष–सम्बन्ध न होने से ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं, प्रत्यक्ष का अभाव होने पर अनुमान का कथन ही असम्भव है सादृश्य न होने से उपमान तथा अद्यापि ईश्वर की सिद्धि न होने के कारण वेद रूप शब्द प्रमाण भी ईश्वर साधक नहीं हो सकता। किञ्च **"क्षित्यं कुरादिकं कर्तृजन्यं"** इत्यादि आर्यों का ईश्वर साधक अनुमान भागासिद्ध हेत्वाभास है, जिस अनुमान–हेतु का एक भाग सिद्ध तथा दूसरा असिद्ध हो उसको **"भागासिद्ध"** हेत्वाभास कहते हैं **"ऋगवेद भाष्य भूमिका"** में परमाणु आदि को अनित्य माना गया है, पर ईश्वर जन्य नहीं अतएव उनमें कार्यपना होने पर कर्तृजन्यरूप कर्त्ता से पैदा होना साध्य न होने के कारण उक्त हेतु अनैकान्तिक–व्यभिचारी भी ठहरता है, और दूसरी बात यह है कि अशरीरीकर्त्ता में कोई प्रमाण नहीं पाया जाता, जो–जो घटादि कार्य हैं वह सब बुद्धि वाले शरीरी कर्त्ता से जन्य हैं, इस प्रकार दृष्टान्त की सफलता वास्ते ईश्वर का शरीर मानना होगा, पर उसका शरीर किसी अन्य कर्त्ता से जन्य मानोगे तो अनवस्था दोष की **"आपत्ति"** होगी। शरीरी ईश्वर के मानने से वह जीव के समान अल्पज्ञ अल्पशक्ति वाला होने से ईश्वर ही न रहेगा, और कार्यत्व हेतु स्वरूपा सिद्ध है, क्योंकि घटपटादि से विलक्षण अवयसंयोग वाले पृथिव्यादि किसी कर्त्ता से जन्य प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं, और वनस्य तरुतृणादि में **"कार्यत्व"** होने पर भी **"कर्तृजन्यत्व"** साध्य न होने से उक्त हेतु व्यभिचारी हैं, यदि सर्वज्ञ कर्त्ता से जन्य रूप साध्य मानोगे तो दृष्टान्त में साध्यवैकल्प दोष होता अर्थात् ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं पाया जाता जो सर्वज्ञ कर्ता से जन्य हो, और पृथिव्यादि कर्त्ता से जन्य नहीं क्योंकि इनका कोई बनाने वाला शरीरी नहीं, इस अनुमान से **"कार्यत्व"** सत्प्रतिपक्ष भी है, कर्त्ता की प्रत्यक्षउपलब्धि न होने से तथा अगमादि प्रमाण न पाये जाने से **"कार्यत्व हेतु बाधित हेत्वाभास भी है"**। अतएव अनुमान द्वारा ईश्वर कर्त्ता की सिद्धि आशामोदक के समान समझनी चाहिए। सबसे प्रबल दोष जगत्कर्तृवादी के मन में यह है कि – **"अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्य-कारणभावः"** अर्थात्–कार्य कारण भाव का निश्चय अन्वयव्यतिरेक द्वारा होता है, यह सर्वतन्त्र सिद्ध नियम है, सो ईश्वर तथा सृष्टिरूप कार्य में परस्पर नहीं पाया जाता अर्थात् जिस प्रकार–**"कुलालसत्त्वेघटसत्वम्"** कुलाल के होने से घट होता है एवं –**"कुलालाभावेघटाभावः"** कुलाल के न होने से घट नहीं होता यह अन्वयव्यतिरेक कुलाल तथा घट के परंस्पर कार्य कारण भाव का गमक है वैसे–**"ईश्वर-सत्त्वेमगत्सत्त्वं"** ईश्वर के होने से जगत बन सकता है यह अन्वय होने पर भी **"ईश्वराभावेजगदभावः"** ईश्वर के न होने पर जगत नहीं हो सकता या व्यतिरेक नहीं बन सकता क्योंकि ईश्वरकर्तृवादी के मत में सर्वव्यापक ईश्वर का किसी देश में अभाव नहीं और बिना अभाव के व्यतिरेक प्रमाण की सिद्धि कैसे ? इसके सिद्ध न होने से स्पष्ट है कि जगत्

रूप कार्य कर्त्ता से जन्य नहीं, या यों कहो कि ईश्वर तथा जगत का परस्पर कार्य कारण भाव नहीं।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

पण्डित जी आप शास्त्रार्थ के नियमानुसार पहले यह लिख कर दें कि–**"गुण के नाश हो जाने पर गुणी का नाश हो जाता है"** तब शास्त्रार्थ आगे चलेगा।

नोट –

इस बात को सुनकर जैन पण्डित जी के होश उड़ गये, श्रोताओं में चारों ओर सन्नाटा छा गया। परन्तु शास्त्रार्थ के नियमानुसार पण्डित जी को लिखकर देना पड़ा।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन —

लाइये, कागज व कलम मैं अभी लिखकर देता हूं। और (तुरन्त लिखकर दे दिया) कि –**"गुण के नाश हो जाने से गुणी का नाश हो जाता है"**।

हस्ताक्षर–

(बनारसीदास जैन)

(तारीख १५–४–१७)

इस उपरोक्त वाक्य को लिखवाकर आर्य पण्डित जी ने अपने पास रख लिया एवं उत्तर देने लगे –

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

अब शास्त्रार्थ में आनन्द आयेगा, अब सुनो ! पण्डित जी महाराज !! ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं, इस प्रतिज्ञा को छोड़कर ईश्वर दयालु नहीं यह आपने दूसरी प्रतिज्ञा की है, इसलिए **"प्रथमेग्रासेभक्षिकापातः"** का न्याय आप पर घटने से **"प्रतिज्ञाहानि"** रूप निग्रहस्थान में प्राप्त हो गये हो, क्योंकि–**"गुण का नाश हो जाने से गुणी का नाश हो जाता है"** इस कथन से आपने जैन फिलासफी पर महाकलंक लगाया है प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा स्याद्वादमञ्जरी आदि जैन न्याय के प्रसिद्ध ग्रन्थों द्रव्यार्थिकनव तथा पर्यायार्थिकनय के स्वरूप को विचार करते हुए गुण के नाश से गुणी का नाश नहीं माना यदि जैन मत में गुणी का नाश माना जाएगा तो **"उत्पादव्ययध्रौष्यंसत्"** उत्पत्ति विनाश तथा स्थिति सहित को **"द्रव्य"** कहते हैं इस द्रव्य–गुणों के लक्षण से विरोध होगा। अभिप्राय यह है कि जैन सिद्धान्त में सहभावी तथा क्रमभावी भेद द्वारा द्रव्य की दो अवस्था मानकर सहभावी अवस्था को गुण और क्रमभावी अवस्था को पर्याय कथन किया है, अर्थात् नये पर्याय हालत की उत्पत्ति पुराने पर्याय का नाश होने पर जिसमें असल जाति गुण सदा विद्यमान रहे उसे **"द्रव्य"** कहतें हैं जैसा कि एक सुवर्ण की अंगूठी बदलकर कान की बाली बना ली जाए तो बाली का उत्पन्न होना उत्पत्ति अंगूठी का न रहना नाश और पीत कठोरता आदि सोने के गुण का विद्यमान रहना **"ध्रौव्य"** ही द्रव्य कहाता है, इस लक्षण के अनुसार प्रथम तो आपके सिद्धान्त में गुण का कभी नाश ही नहीं होता फिर आप गुण का नाश जैन सिद्धान्त विरुद्ध कहते हैं जिससे आप **"अपसिद्धान्त"** निग्रह स्थान से निगृहीत हो गये, यदि गुण शब्द से आपका तात्पर्य बदलने वाले पर्यायों से है तो भी आपकी इष्ट सिद्धि नहीं, पर्यायों के बदलने पर भी पर्यायी आपके मत में बना रहता है फिर गुण नाश से गुणी का नाश कैसे ? धन्य हो पण्डित जी जैन आगम से भी विरुद्ध कथन करने पर आप निर्भय रहते हैं, हमारे सिद्धान्त में तो पृथिवी परमाणुओं में रूप की पराप्रत्ति बदलना होने पर परमाणुओं का नाश न होने से गुण का नाश गुणी के नाश का प्रयोजक नहीं, गुणी के नाश से भले ही गुण का नाश हो जाये पर गुणनाश से गुणीनाश का नियम नहीं, शास्त्र को विचार कर पूर्व पक्ष

की रीति का अवलम्ब करो; यजुर्वेद अध्याय १३, मन्त्र ४८, में मारने की आज्ञा नहीं। आपने बड़े ही व्यंग्य के साथ इस वाक्य को बार–बार दोहराया था, पर मजे की बात तो ये रही कि आपने मन्त्र का थोड़ा सा अंश भी नहीं बोला। बोलते भी कैसे ? कभी वेदों को स्पर्श ही नहीं किया। लीजिए पण्डित जी महाराज मैं मन्त्र बोलता हूं आप भी सुन लीजिये –"**इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुम्**" यह वही यजुर्वेद के तेरहवें अध्याय का अड़तालिसवां मन्त्र है, लीजिये मैं इसका अर्थ भी बोलता हूं ताकि सभी श्रोताओं में पण्डित जी के झूठ का पता चल जावे, इस मन्त्र का अर्थ है कि– "**इस एक खुर वाले पशु को न मारो**" अब कहिए महाराज वेद में मारने का विधान है या पशुरक्षा का विधान है ? और जो कहा है कि सर्वशक्तिमान जीवों को दयालु होने पर भी पाप से क्यों नहीं रोकता ? उसका उत्तर यों है कि सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने विधि निषेधात्मक कर्मो का वेद द्वारा उपदेश देकर पुण्य पाप को भले प्रकार सूचना कर दी है, इस पर भी जो जीव कामादिवश होकर अपनी स्वतन्त्रता से पाप में प्रवृत्त होते हैं, इससे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में कोई धब्बा नहीं लग सकता, वस्तु के स्वभाव को मलीयामेट कर देने से ही सर्वशक्तिपना सिद्ध नहीं होता, भला मैं आपसे पूछता हूं कि आपका ईश्वर भी तो सर्वशक्तिमान् है फिर अपने आपको मार कर नरक में क्यों नहीं चला जाता ? और दयालु भी है फिर किसी नारकी के स्थान पर दयाभाव से आप ही दुःख को भोग कर उसे नरक से क्यों नहीं निकाल देता ? बतलाइये ऐसा आक्षेप होने पर आपके पास क्या समाधान है ? अन्ततः आपको सर्वशक्तिमान का यही अर्थ करना पड़ेगा कि वह स्वभाव के अनुकूल ही करता है विपरीत नहीं, यहां भी यही मार्ग अवलम्ब करें, इससे सिद्ध हो गया कि दयालु का होना किसी के पापानुष्ठान या पापपरित्याग में साधक नहीं हो सकता, हां उपदेश द्वारा पाप से हटाना दयालु का स्वभाव है, सो वैदिक ईश्वर में सिद्ध संङ्गत है असङ्गत नहीं।

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों के न होने से ईश्वर की असिद्धि कही है उसका उत्तर यह है कि रूपादि का अभाव होने के कारण ईश्वर लौकिक प्रत्यक्ष का विषय नहीं यह बात हमको इष्ट है ऐसे ही ईश्वर के समान कोई दूसरा ईश्वर नहीं इसलिए सादृश्य के अभाव द्वारा उपमान प्रमाण भी ईश्वर का साधक न हो, इसमें हमारी कोइ क्षति नहीं, परन्तु अनुमान तथा शब्द प्रमाण से उसकी सिद्धि में कोई बाधा नहीं देखिये- "**क्षित्यंकुरादिकंकर्त्तृजन्यं कार्यत्वात्घटवत**" अर्थात् जो कार्य है वह अवश्य किसी उपादान कारण के स्वभावादि ज्ञाता बुद्धिमान् चेतनकर्त्ता से जन्य है, यह नियम है, इस नियम के अनुसार जिस प्रकार घट पट आदि कार्य होने से तत्तत् कुलाल कुविन्द–तन्तुवाय आदि चेतन कर्त्ता से जन्य हैं वैसे ही कार्यत्व धर्म वाले पृथिव्यादिक भी किसी बुद्धिमान चेतनकर्त्ता से जन्य हैं अल्पज्ञ अल्पशक्ति शरीरधारी जीवों की उनके उत्पन्न करने में शक्ति नहीं तथा जड़ पदार्थ स्वतः ही किसी प्रकार के आकारादि को धारण करने में असमर्थ हैं, जैसा कि जैनियों के घर में दाल भात आदि अपने आप सिद्ध नहीं हो जाते, और पृथिव्यादिकों में "**कार्यत्व**" कार्यपना आपको भी इष्ट है इससे सिद्ध है कि जो उनका कर्त्ता है वही ईश्वर है इस प्रकार विचार करने से "**सामान्यतोदृष्ट**" तथा "**परिशेष**" अनुमान ईश्वर के साधक स्पष्ट हैं और "**सम्बाहुभ्यांधमतिसम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन देव एकः विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गौप्ता**" इत्यादि आगम प्रमाण–वेदादि रूप शब्द भी ईश्वर सिद्धि में प्रमाण जानना चाहिए, अनुमान सिद्ध ईश्वर में आगम की पुष्टि भी अन्योन्याश्रयदोष से रहित सिद्ध हो गई। जो श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" में परमाणुओं की उत्पत्ति मानने का दोष देकर "**कार्यत्व**" हेतु को भागासिद्ध कथन किया सो ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य को न समझकर दोष दिया गया है, वस्तुतः नहीं, वहां तात्पर्य है कि सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व परमाणु आदि व्यवहार का अभाव था इससे प्रलयावस्था के स्वरूप को जतलाया गया है परमाणुओं की उत्पत्ति नहीं। आपने तो ग्रन्थ का नाम ही बदल दिया, "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" को "**ऋग्वेद भाष्यभूमिका**" बना दिया, लगता है पण्डित जी सुनी सुनाई

बातों को आकर कहने लगे, मेरा पण्डित जी से अनुरोध है कि ग्रन्थ न पढ़ें तो कोई बात नहीं कम से कम ग्रन्थों के नाम तो ठीक से अवश्य याद कर ही लें। आगे की बात जो पंडित जी ने कही है कि – जो कर्त्ता के साथ शरीर का नियम बतलाया है कि कुलालादि की न्यायी ईश्वर भी शरीरी होगा अशरीरीकर्त्ता कहीं उपलब्ध नहीं होता, सृष्टिकर्त्तत्व के लोभ से ईश्वर को शरीरी मानोगे तो ईश्वर अशुद्धि आदि अनेक दोषों का आकार हो जाएगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि कर्त्तृजन्यत्व–कर्त्ता से जन्य होना इस साध्य की व्याप्ति **"कार्यत्व"** हेतु के सिर पर है सो कार्य चाहे शरीरी कर्त्ता से जन्य हो अथवा अशरीरी कर्त्ता से जन्य हो, उक्त व्याप्ति में शरीर रूप विशेषण अवच्छेदक नियामक नहीं हो सकता इसका विशेष विचार मेरे बनाए **"स्याद्वादध्वांतमार्तण्ड"** नामक संस्कृत ग्रन्थ में तथा पण्डित गोपालदास जी वरैया कृत ट्रेक्ट नं० १२ की समीक्षा में किया गया है यहां विस्तार के भय से नहीं दर्शाया, अर्थात् यदि जैन लोग दृष्टान्त में होने वाले सब धर्मों की सिद्धि साध्य में मानेंगे तो फिर अनुमान मात्र का ही उच्छेद हो जाएगा, जैसा कि इन्द्रियों के अनुमान में कुठार दृष्टान्त दिया जाता है, परन्तु जिस प्रकार कुठार से लकड़ी का छिलका वा मनुष्य की त्वचा उतारी जाती है वैसे ही इन्द्रियों द्वारा किसी की त्वचा नहीं उतारी जाती केवल ज्ञान क्रिया का साधकतम होने से त्वगादि इन्द्रियों की अनुमान से सिद्धि हो जाती है वैसे ही प्रकृत जगत्कार्य की सिद्धि में शरीर विशेषण निरर्थक ठहरता है, इस प्रकार शरीर का अङ्गीकार न करने से ईश्वर शरीरी पक्ष में होने वाले सब दोषों का उद्धार हो गया, और जैन पण्डित जी के उक्त कथन में उत्कर्ष सम जाति का प्रयोग होने से पराजय समझना चाहिये। जो आपने कार्यत्व हेतु को **"स्वरूपासिद्ध"** कहा सो ठीक नहीं क्योंकि पृथिव्यादिकों में कार्यपना स्वरूप से सिद्ध है और आप उनको जन्य ही मानते हैं केवल कर्त्ता के अंश में आपका विवाद है, और उक्त हेतु का व्यभिचार भी नहीं हो सकता, हेतु का व्यभिचार वहां होता है जहां हेतु साध्य के अभाव वाले अधिकरण स्थान में पाया जाये, सो **"कार्यत्व"** हेतु आत्मादि अजन्य नित्य पदार्थों में नहीं किन्तु यावत् उत्पत्ति वाले पदार्थों में ही रहता है, इस हेतु को **"सत्प्रतिपक्ष"** दोष वाला कहना आपका भ्रम इसलिए है कि शरीर विशेषण देने का कोई फल सिद्ध नहीं होता अर्थात् –**"पृथिव्यादिकंकर्त्र जन्यशरीराजन्यत्वात्"** विवाद का विषय पृथिव्यादि पदार्थ किसी कर्त्ता से जन्य पैदा नहीं किए गए क्योंकि वह शरीरी कर्त्ता से अजन्य है; आपके इस अनुमान में **"प्रागभावाप्रतियोगित्व"** उपाधि है जो–जो पदार्थ प्रागभाव उत्पत्ति से प्रथम अभाव का प्रतियोगी नहीं होता वहीं कर्त्ता से अजन्य होता है जैसा कि उभयवाद सम्मत आत्मादि किसी कर्त्ता से जन्य नहीं क्योंकि उनका प्रागभाव उत्पत्ति से पूर्व अभाव नहीं पाया जाता, परन्तु पृथिव्यादिक सावयव होने से कार्य हैं और उनका कार्यपना ही उनके प्रागभाव को सिद्ध करता हैं इस प्रकार आपका प्रत्यनुमान सोपाधिक होने से दूषित ठहरता है फिर हमारा अनुमान ज्यों का त्यों प्रबल बना रहा।

और जो आपने अन्त में सबसे प्रबल दोष दिया है कि अन्वयव्यतिरेक से कार्य कारण भाव का निश्चय होता है, परन्तु ईश्वर का जगत् रूप कार्य के साथ व्यतिरेक न पाए जाने के कारण ईश्वर जगत् के प्रति कैसे कारण हो सकता है सो कथन केवल आपके साहस को बोधन करता है क्योंकि–

पूर्वभावो हि हेतुत्वं मीयते येन केनचित्।
व्यापकस्यापि नित्यस्य धर्मिधीरन्यथा नहि।।

(न्याय कुसमाञ्जली)

अब आप इसका अर्थ भी सुनिये–सर्वत्र कार्य कारण भाव का निश्चय करने में अन्वयव्यतिरेक ही नहीं माना जा सकता है। किन्तु कार्य की उत्पत्ति क्षण से पूर्व अवश्य होना कारणपने को सिद्ध करता है, उसका निश्चय किसी स्थल पर अन्वयव्यतिरेक से होता है अथवा किसी स्थल में केवल धर्मी–साध्य वाले

को सिद्ध करने हारे प्रमाणमात्र से कार्यकारणभाव का निश्चय हो जाता है, जैसा कि बुद्धि आदि कार्यों के प्रति उनके समवायिकारण आत्मादि का कार्यकारण भाव केवल अनुमान प्रमाण से ही निश्चित हो जाता है क्योंकि आत्मादि किसी स्थल में वन्ह्यादि की न्याई प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं। सार यह निकला कि व्यापक पदार्थ का व्यतिरेक न होने पर भी बलवत् प्रमाण से उसकी कारणतासिद्धि में कोई बाधा नहीं, जैसा कि जैन मत में जो द्रव्य जीव पुद्गलादि पांचों द्रव्यों को अवकाश देवे उसे **"आकाशद्रव्य"** कहते हैं आकाशअमूर्तिक सर्वव्यापी तथा अनन्त प्रदेशी है इस व्यापी आकाश का जीवादि द्रव्यों के प्रति अवकाश प्रदान रूप क्रिया में कार्य कारण भाव जैन सम्मत है परन्तु यहां व्यतिरेक को उक्त कार्यकारणभाव के प्रति निश्चायक नहीं मान सकते यदि कोई आकाश रहित प्रदेश होवे तब **"नस्यात् नस्यात्"** कह कर व्यतिरेक का आकार लापन कर सकें पर ऐसा न होने से स्पष्ट सिद्ध है कि उक्त नियम सर्वदेशी नहीं।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

ईश्वर जगतकर्त्ता गुणवाला है वा गुण रहित है? आपने निग्रहस्थान के बिना ही प्रतिज्ञा हानि रूप निग्रहस्थान को कथन किया है इसलिए आप ही निरनुयोज्यानुयोगरूप निग्रहस्थान से निगृहीत हो गए, अस्तु आगे हम निग्रहस्थान की चर्चा नहीं किया करेंगे हमने तो सत्यासत्य का निर्णय कराया है जय पराजय का नहीं, द्रव्यार्थिकनय से गुण का नाश नहीं होगा, आपने मेरे किसी हेत्वाभास का खण्डन नहीं किया और जिन चार प्रमाणों से मैंने ईश्वर का खण्डन किया उसका उत्तर आपसे नहीं दिया गया आपको यह ध्यान रहे कि कुण्डल का स्वरूप नष्ट होने पर भी सुवर्ण रहे पर कुण्डल तो नहीं रहता इस प्रकार जब पाप करने पर जीवों को पाप से नहीं हटाता तो दयालुपना नष्ट हो गया फिर ईश्वर ही न रहा।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

मैं कब जगत्कर्त्ता ईश्वर को गुणों से रहित मानता हूं? वह अपने सर्वशक्तिमत्ता आदि धर्मो से विशिष्ट है इसलिए आपका यह विकल्प **"कर्णस्पर्शे कटिचालनन्याय मनुहरति"** कर्ण स्पर्श करने के समय कमर को हाथ लगाने के समान है, जो आपने **"निरनुयोज्यानुयोग"** निग्रहस्थान से मुझे निगृहीत कहा है, यह तो आप पर ही घटता है क्योंकि आप तो प्रतिज्ञात विषय को छोड़कर ईश्वर दयालु नहीं हैं यह सिद्ध करने लग गए सो पूर्व प्रतिज्ञा का परित्याग हो गया इस प्रकार अयुक्त समय पर निग्रहस्थान के कथन करने से आप स्वयं उक्त निग्रहस्थान के पात्र हैं, यदि आप आगे निग्रहस्थान से डर कर कथन न करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो मुझे उसके प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं भी निग्रहस्थान का नाम न लूंगा, यह शास्त्रार्थ सत्यासत्य का निर्णय या जय पराजय की आकांक्षा से है यह आपका मन ही जानता होगा हम इसमें कुछ विशेष कहना उचित नहीं समझते। हमने आपके सब हेत्वाभासों का उद्धार कर दिया मेरे कथन का पुन अनुसंधान करो जिन चार प्रमाणों से आपने ईश्वर का खण्डन किया उसका उत्तर दे चुका हूं कि समान्यतोदृष्ट अनुमान तथा शब्द प्रमाण से ईश्वर सिद्धि में कोई बाधा नहीं, और **"कर्तृजन्यत्व"** साध्य के साथ "कार्यत्व" हेतु के व्यभिचार का सर्वथा परिहार कर दिया गया कि कोई कार्यकर्त्ता के बिना नहीं हो सकता। धन्य हो पंडित जी! कभी तो आप गुण का नाश मानते हैं, और कभी कहते हैं कि गुण का नाश नहीं होता क्या यह कथन आपका **"वदंतोव्यांघात"** नहीं? सुवर्ण का कुण्डलत्व न रहे पर सुवर्ण ज्यों का त्यों रहता है वह कथन तो मेरी बात का पोषण करता है, मैं भी यही कहता हूं कि कुण्डलत्व गुण, धर्म नष्ट होने से भी सुवर्ण बना रहने से गुण धर्म का नाश धर्मी के नाश का नियम से प्रयोजक साधक नहीं, पंडित जी इस बात का उत्तर दें कि आपके जिन वीतरागों का राग गुण नष्ट हो गया, क्या वीतराग भी स्वरूप से नष्ट हो गए, यदि नष्ट हो गए तो किसने आपको आगम का उपदेश किया, यदि नष्ट नहीं हुए तो सिद्ध हुआ कि गुण का नाश गुणी

के नाश में प्रयोजक नहीं, जीवों का पाप में प्रवृत होना ईश्वर की दयालुता का बाधक नहीं जीव अपनी स्वतन्त्रता से पाप में प्रवृत्त होते हैं, ईश्वर का उपदेश कर देना धर्म है वस्तु स्वभाव को अन्यथा कर देने से ही ईश्वरता हो ऐसा नहीं, जैसा कि आपके अभिमत ईश्वर का दृष्टान्त बाधकरूप से दिया गया था अब आपकी कोई बात ऐसी नहीं रही जिसका उत्तर शेष रह गया हो।

श्री पण्डितबनारसी दास जैन –

यदि परमात्मा दयालु सर्वज्ञ है तो जीवों को पापों से क्यों नहीं बचाता ? आपकी ओर से इसका उत्तर नहीं दिया गया, हमारे मत में राग जीव का स्वाभाविक गुण नहीं, ज्ञान होने पर उसका नाश हो जाता हैं इसलिए वीतराग पुरुषों के नाश का दोष नहीं आ सकता, यदि परमेश्वर जगत्कर्त्ता है तो अन्य कुलालादि शरीरधारी कर्त्ताओं की न्याई उसका प्रत्यक्ष होना चाहिए, शरीरधारी को प्रत्यक्ष मानोगे तो उसका शरीर किसी अन्य ईश्वर में उत्पन्न किया, पुनः उसकी उत्पत्ति किसी अन्य से होगी इस प्रकार आपके मत में अनवस्था बनी रहेगी। जगत्कर्त्ता होने में कोई आगम प्रमाण कहना चाहिए, पृथिव्यादि तो स्वतः परस्पर कार्यकारण हैं, उनको किसी कर्त्ता की अपेक्षा नहीं, देखिए श्री स्वामी दयानन्द जी ने परमाणु आकाश उत्पत्ति वाला माना है देखो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का सृष्टि विषय।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

परमात्मा का दयालु तथा सर्वज्ञ होना जीवों के पापादि में साधक बाधक नहीं, इसके विषय में युक्ति कह चुका हूं जैसा कि आपका सर्वज्ञ दयालु ईश्वर भी किसी को पाप कर्म से निवृत्त नहीं करता इत्यादि, यदि राग जीव का स्वाभाविक गुण नहीं तो फिर राग के नष्ट होने पर उनको **"वीतराग"** क्यों मानते हो ? स्वभाव से तो जीव प्रथम ही वीतराग हैं, किसी निमित्त विशेष से राग मानो तो कहें कि वह कौन निमित्त है? जिससे स्वतः वीतराग जीव भी रागयुक्त हो गया, उभय प्रकार से रागगुण के नष्ट होने पर जीव गुणी का नाश नहीं होता यही मानते हो फिर आपका गुण नाश से गुणी नाश का पक्ष निर्युक्तिक ठहरता है पंडित जी मेरे इस प्रश्न का भी साथ ही उत्तर देना होगा राग तथा ज्ञान का क्या भेद मानते हैं ? जहां जिस काल में पर्याय रहता है वहां गुण रहता है या नहीं ? राग, ज्ञान एक अधिकरण में रहते हैं या भिन्न–भिन्न अधिकरण में पाए जाते हैं ? और जो आपने कहा कि कुलालादि की न्याई परमेश्वर का प्रत्यक्ष होना चाहिए इससे यदि आपका तात्पर्य हो कि कुलाल शरीर की न्याई ईश्वर शरीर का प्रत्यक्ष होना चाहिए सो मेरे मत में ईश्वर का शरीर ही नहीं फिर प्रश्न कैसे ? यदि चेतनात्मा के प्रत्यक्ष का अभिप्राय हो तो मैं कह चुका हूं कि ईश्वर चाक्षुषादि प्रत्यक्ष का विषय नहीं ऐसा मानने से उसकी असिद्धि नहीं हो सकती, आप ही कहें कि आपके चेतन आत्मा का किसी को चाक्षुष आदि प्रत्यक्ष होता है ? और उसके न होने पर क्या आपकी सत्ता को न मानना चाहिए ? आप भी तो अपने चेतनस्वरूप का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं कर सकते आप स्मरण करें मैं अपने पक्ष की पुष्टि में शब्द का प्रमाण भी दे चुका हूं और अन्योन्याश्रयदोष का परिहार भी कर दिया, तथा अनुमान के हेतु दोषों का निवारण कर दिया गया, आपने आज तक कोई शब्द प्रमाण ईश्वर के खण्डन में नहीं कहा, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का उत्तर दिया गया उस पर पुनः विचार करें।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

आकाश परमाणु के विषय में आज तक कोई उत्तर नही मिला , जिस प्रकार कुण्डलपने का नाश होने पर भी स्वर्ण ज्यों का त्यों बना रहता है वह नष्ट नहीं होता वैसे ही वीतरागों का रागगुण नष्ट होने पर भी **"वीतराग"** पुरुषों का (गुणी का) नाश नहीं हो सकता इसलिए वीतरागों के नाश का दोष कथन करना आपका साहसमात्र है, सर्वज्ञ पापों से नहीं बचाता, इस दोष का परिहार आपसे नहीं हो सकता।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

आप जितनी बार उठते हैं अपनी रटी रटाई अबारत को पढ़ कर बैठ जाते हैं, जो मैं पूछता हूं अ उसका न तो उत्तर ही देते हैं और ना ही मेरे दिए समाधान का खण्डन करते हैं, भूमिका के विषय में क दिया कि वह केवल प्रलयावस्था के स्वरूप का वर्णन किया है परमाणु आदि की उत्पत्ति में तात्पर्य नहीं, पहि जी आप अपनी उक्ति के विरुद्ध कथन करने लग जाते हैं प्रथम आपने कहा था कि राग जीव का स्वाभावि गुण नहीं अब सुवर्ण कुण्डल के दृष्टान्त से रागगुण नष्ट होने पर भी वीतराग का नाश नहीं होता ऐसा कथ करते हैं सो मेरे वाली बात स्वीकार कर ली कि "**गुण के नाश होने पर गुणी का नाश नहीं होता**" मेरे पिछ विकल्पों का उत्तर नहीं दिया, मैं फिर पूछता हूं कि कुण्डल, सुवर्ण का गुण है वा नहीं ? गुण और धर्म में आ कितना भेद मानते हैं ? आप कुण्डलत्व तथा सुवर्णत्व दोनों में से गुण या गुणी किसको मानते हैं ? ईश्व का सर्वज्ञ होना जीवों के पाप करने न करने में साधक बाधक नहीं जैसा कि आपके अर्हन्–तीर्थङ्कर भगवा आप मानते हैं, ऐसा कई बार उत्तर दिया गया, आप इस पिष्टपेषण से कब तक काम चलायेंगे ?

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

ईश्वर को गुण रहित कर्त्ता नहीं मान सकते पर उसके दयालुता आदि गुण सिद्ध नहीं होते अतए जगत्कर्त्ता ईश्वर नहीं, अशरीरी ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है राग जीव का पर्याय है गुण नहीं।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

हम ईश्वर को स्वगुण विशिष्ट ही मानते हैं, दयालुतादि गुणों की असिद्धि का परिहार करने से ईश्व के जगत्कर्तृत्व में कोई बाधा नहीं, लोक में आचरणानुसार न्यायशील पुरुष को कोई भी निर्दय कथन नही करता, आप पुनः ईश्वर के शरीर के विषय में कथन करते हैं सो शरीर साध्य कर्मो के लिए शरीरी की आवश्यकता हो, पर सर्वशक्तिमान अपने स्वाभाविक सामर्थ्य के बिना शरीर के ही जगत् को रच सकता है, जिस वस्तु में चाक्षुषादि प्रत्यक्ष की योग्यता न हो उसमें प्रत्यक्ष का बोध नहीं हुआ करता है, न्याय प्रक्रिया को भले प्रकार पढ़ें, यों तो इस समय आपके ईश्वर में भी प्रत्यक्ष का बोध मान लेना चाहिये, यहां आपके पास क्या परिहार है ? पर्याय–पर्यायी में किस सम्बन्ध से रहता है ? स्वरूप सम्बन्ध से वा किसी अन्य सम्बन्ध से ? प्रथम पक्ष में राग पर्याय के नाश से उसके पर्यायी जीव का नाश हो जायेगा फिर मुक्ति किसकी मानोगे ?

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

परमेश्वर अशरीरी कर्त्ता है वा शरीरी ? प्रथम पक्ष इसलिए ठीक नहीं कि बिना शरीर के कोई कर्त्ता उपलब्ध नहीं होता शरीर सहित मानने में ईश्वर की व्यापकता नष्ट हो जायेगी। ....शेष पूर्ववत् कथन को दोहरा कर समय पूरा किया गया........ ।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

मैं इन बातों का उत्तर कई बार दे चुका हूं पर और भी सुनें ....जनता में हंसी........ आपके कहने का अभिप्राय यही निकलता है कि किसी कार्य की सिद्धि में चेतन मात्र की प्रवृति शरीर के बिना नहीं हो सकती पर यह एकान्त नियम नहीं, देखो आपका जीवात्मा शरीर से बाह्य पाकादि कार्यो को सिद्ध करने के लिए शरीर द्वारा ही प्रवृत होता है परन्तु शरीर के सञ्चालनादि कार्य को करने के वास्ते उसको किसी अन्य शरीर की अपेक्षा नहीं पर आपके उक्त कहे नियमानुसार जीव को किसी अन्य शरीर की अपेक्षा होनी चाहिए, यदि ऐसा मानोगे तो अनवस्थादि कई दोष आयेंगें, जहां अल्पशक्ति जीव के व्यवहार में ऐसा नियम पाया जाता है तो फिर सर्वशक्ति परमात्मा के विषय में क्या कहना अर्थात् उसको सृष्ट्यादि के रचने में

शरीर की अपेक्षा नहीं यह बात ईश्वर की ईश्वरता में भूषण है दूषण नहीं इस प्रकार उसकी व्यापकता भी बनी रहती है। पंडित जी से मेरी प्रार्थना है कि कोई नई शंका करें या मेरे कहे पर ऐतराज करें, व्यर्थ में समय बर्बाद न करें।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

हम अपने तीर्थङ्कर अर्हन् भगवान् को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते इसलिए उसके दयालुतादि गुण बने रहते हैं। आप अपने भगवान के बारे में पहले बतायें, शेष प्रश्न आगे करूंगा।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

आपके तीर्थङ्कर भगवान् एकदेशीय होने से सृष्टिकर्त्ता हो ही नहीं सकते यह बात ठीक है परन्तु आपके सिद्धान्त में दयालु तथा सर्वज्ञ तो हैं जब ऐसा है तो पापादि से रोकने या न रोकने में समानता रही, और यह बात न्याय सिद्ध है कि हल शकटी आदि कोई भी जड़पदार्थ चेतनप्रायोजक के बिना कार्य करते नहीं देखे जाते, पृथिव्यादि के लिए भी किसी चेतन प्रयोजक की अपेक्षा वैसी ही क्यों न मानी जाय ? अन्यथा आप कोई स्वपक्ष सिद्धिं के लिए दृष्टान्त देवें।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

मैं दो प्रकार के कर्त्ता मानता हूं एक चेतन दूसरे अचेतन, घट पटादि पदार्थ चेतन कर्त्ता के कार्य हैं तथा पृथिव्यादिक अचेतन के कार्य हैं, फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता ?

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

पृथिव्यादि अचेतन के कार्य हैं, यह अभी साध्य है सिद्ध नहीं, जैसे घट पटादि कार्यो में चेतन सापेक्षता मैंने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दी, ऐसे ही आप भी अपने पक्ष की सिद्धि के लिए कोई दृष्टान्त बतलाएं जिससे मान लिया जाये कि अचेतन भी कार्य बनाया करता है।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

देखो बाँसो की रगड़ से आग पैदा हो जाती है सो जड़ बांस ही अग्नि रूप कार्य के कर्त्ता हैं।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

जड़ बांसों से अंग्नि अपने आप उत्पन्न होती है वा किसी अन्य की शक्ति से होती है ? यह अभी साध्य है, जो दृष्टान्त आप देते हैं वह सब ही पक्ष साध्य कोटि में बने रहते हैं सो आज तक साध्य को कभी किसी दार्शनिक ने दृष्टान्त स्वीकार नहीं किया कोई ऐसा दृष्टान्त बतलायें जो साध्य के अन्तर्गत न हो।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन –

पृथिवी से बुखारात उठ कर बारिश हो जाती है, वायु अनेक प्रकार के पदार्थो को उत्पन्न करती है तथा, तृणादिकों को कहीं से कहीं ले जाती है, इस दृष्टान्त से सिद्ध है कि जड़ भी कार्य को उत्पन्न करते हैं।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

यह कथन भी पूर्व की न्याई साध्य है, जैसे हल, शकट, शकटी, घट, पट, हलवा, पूरी , आदि अनेक पदार्थ किसी चेतन अधिष्ठाता के बिना सिद्ध नहीं होते वैसे ही पृथिवी, वायु आदि कार्य पदार्थ अपनी सिद्धि तथा व्यवहार के लिए चेतन सापेक्ष हैं निरपेक्ष नहीं, वायु आदि अपने आप चलते हैं यह बात आप मेरे मुकाबले में कब सिद्ध कर चुके हैं ? अभी साध्य है, साध्य की सिद्धि के लिए दृष्टान्त दिया जाता है साध्य स्वसिद्धि में दृष्टान्तरूप नहीं हो सकता।

श्री पण्डित वनारसीदास जैन –

यदि जगत्कर्त्ता ईश्वर सर्वज्ञ होता तो पाप से अवश्य निवारण करता, ...इत्यादि पूर्व की न्याई रटाई अवारत पढ़ कर बैठ गए.........।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

पण्डित जी सच बात तो यह है कि अब आपके पास मसाला ही समाप्त हो गया है। मैं आपके इस आक्षेप का कई बार उत्तर दे चुका हूं कि जिस प्रकार आपका दयालु सर्वज्ञ ईश्वर पापों से नहीं हटाता इत्यादि, मैंने पीछे इसी शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में कई प्रश्न किए थे, परन्तु आपने उनका उत्तर कोई नहीं दिया, आप कितना ही हेर फेर करें "**घट्टकुप्यांप्रभातम्**" दृष्टान्त की न्याई चेतन कर्त्ता माने बिना आपका छुटकारा नहीं होगा।

श्री पण्डित वनारसीदास जैन –

आपने हमारे ईश्वर को दयालु सर्वज्ञ मानकर दोष का परिहार किया है इसलिए आप "**मतानुग्रह**" नामक निग्रहस्थान में आ गए हो, राजन्यायी पुरुष का दृष्टान्त ईश्वर की सर्वज्ञता में बाधक रहेगा, यदि ईश्वर होता तो अवश्य उसका प्रत्यक्ष होता।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

धन्य हो पण्डित जी ! आप पीछे प्रतिज्ञा कर आए हैं कि मैं निग्रहस्थान का नाम नहीं लूंगा, क्योंकि सत्यासत्य का निर्णय करना है अब आपने फिर निग्रहस्थान की कथा प्रारम्भ कर दी। आप क्षण-क्षण में अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं "**मतानुग्रह**" नामक निग्रहस्थान वहां होता है जहां अपने पक्ष में दोष का परिहार न करके दूसरे की मानी हुई बात को कहा जाये, सो मैं स्वपक्ष में दोष का परिहार कर चुका हूं इसलिए आप अनिग्रहस्थान में निग्रहस्थान के कथन करने से "**निरनुयोज्यानुयोग**" तथा प्रतिज्ञा के परित्याग से "**प्रतिज्ञा हानि**" रूप निग्रहस्थान के पात्र हैं, न्याई पुरुष का दृष्टान्त अपने अंश में चरितार्थ है, अयुक्त नहीं, दृष्टान्त तथा दृष्टान्त की सब धर्मो में समता मानने से दृष्टान्त कथा का ही उच्छेद हो जायेगा, और जिसका प्रत्यक्ष न हो वह पदार्थ हो ही नहीं, क्या यह नियम हो सकता है ? आप भी चेतन कर्त्ता हैं पर किसी इन्द्रिय से नहीं दीखते हो, क्या आपकी सत्ता को न मानना चाहिए ? क्योंकि आपके जिस शरीर का प्रत्यक्ष होता है सो आत्मा नहीं।

श्री पण्डित वनारसीदास जैन –

........आवेश में आकर......... मेरे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, किसी हेत्वाभास का खण्डन नहीं किया ईश्वर शरीरीकर्ता है वा अशरीरी ? इत्यादि ....पुनः पूर्ववत् बातों को दोहराया..........।

श्री पण्डित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य –

मैं पहले ही जानता था आप अन्त में यही कहेंगे, परन्तु आपके कहने से क्या होता है ? सुनने वाले लोग स्वयं निश्चय कर लेंगे मैंने आपके शरीरी अशरीरी आदि सब आक्षेपों का समाधान कर दिया, और अनेक दृष्टान्तों से स्पष्ट किया कि चेतन के बिना कोई कार्य नहीं बन सकता, आज तक आपने संसारभर में कोई दृष्टान्त नहीं दिया कि अचेतन भी बुद्धि पूर्वक किसी का कर्त्ता होता है जिन बांस अग्नि आदि को कहते रहे वह सब साध्य कोटि में है, पर्यायी में किस सम्बन्ध से पर्याय रहता है ? राग गुण तथा ज्ञान का क्या भेद है ? जहां जिस काल में पर्याय रहता है वहां गुण रहता है वा नहीं ? इत्यादि मेरे अनेक प्रश्नों का आपने किञ्चिन्मात्र भी उत्तर नहीं दिया इस प्रकार पूर्वोत्तर विचार से "**ईश्वर जगत्कर्त्ता है**" यह विषय निर्विवाद सिद्ध हो गया न्यायशील तथा बुद्धिमान श्रोता लोग स्वयं निश्चय कर लेंगे।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सैंतालीसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "गीदडवाहा मण्डी" जिला–फिरोजपुर (पंजाब)

@vaidicbooks

दिनांक : दोपहर बाद २ बजे से ५ बजे तक, सन् १९२० ई०

विषय : क्या भागवत् आदि पुराण वेदानुकूल हैं ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान अमर स्वामी सरस्वती)

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न

सहायक : श्री पण्डित यदुकुल भूषण जी शास्त्री तथा श्री पण्डित लक्ष्मीदत्त जी (कौल निवासी)

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

आर्यसमाज के प्रधान : श्री सेठ कन्हैयालाल जी

अन्य उपस्थित पौराणिक उपदेशक मण्डल : श्री स्वामी दयानन्द जी बी०ए०, व श्री स्वामी राम जी आदि।

अन्य उपस्थित आर्यसमाज के उपदेशक : श्री पण्डित विद्यानन्द जी (ठाकुर अमरसिंह आर्यपथिक के साथी)

शास्त्रार्थ से पहले

मैं प्रचारार्थ भटिण्डा आया हुआ था, मेरा भटिण्डा में आना सुनकर "गीदड़बाहा मण्डी" आर्यसमाज के प्रधान श्री सेठ कन्हैयालाल जी भटिण्डा में मेरे पास आए और उन्होंने मुझको बतलाया कि–सनातनधर्म सभा गीदड़बाहा का उत्सव होने वाला है। सनातनधर्म सभा ने आर्यसमाज को चेलेंज दिया है कि–आर्य समाज हमारे साथ किसी विषय पर भी शास्त्रार्थ करले। हमने शास्त्रार्थ का चेलेंज स्वीकार कर लिया है कई स्थानों को पण्डितों के लिए पत्र लिखे हैं पर अभी तक किसी की स्वीकृति नहीं आई है, सो आ जायेगी, उससे पहले आप गीदड़बाहा, चलें पौराणिकों के साथ जो पत्र व्यवहार चल रहा है उसमें सहयोग दीजिए और व्याख्यान भी दीजिए। मैं उनके अनुरोध पर उनके साथ गीदड़बाहा मण्डी चला गया और सनातनधर्म सभा के साथ पत्र व्यवहार करता रहा। मैंने पत्रव्यवहार द्वारा यह निश्चय कर लिया कि –

१. शास्त्रार्थ का विषय होगा–क्या पुराण वेदानुकूल हैं ?

२. शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और हिन्दी भाषा में होगा।

३. शास्त्रार्थ का प्रधान सनातनधर्म की ओर से ही कोई व्यक्ति होगा।

४. प्रधान समय बतलायेगा, वक्ताओं को विषयान्तर में जाने और असभ्यतायुक्त, कटु, अश्लील तथा व्यक्तिगत आक्षेप वाले वाक्य बोलने से दोनों पक्ष के पण्डितों को रोकेगा।

लाहौर से पण्डित रामगोपाल जी शास्त्री तथा पण्डित भगवददत्त जी को बुलाया जा रहा था और गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार को भी कोई शास्त्रार्थकर्त्ता भेजने के लिए लिखा गया था। मुझको शास्त्रार्थ करने के लिए नहीं केवल पत्रव्यवहार के लिए ही रोका गया था, मैं तो अपने घर जाने वाला था। श्री पण्डित रामगोपाल जी शास्त्री तथा पण्डित भगवददत्त जी दोनों ने आने से इन्कार कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी से दो ब्रह्मचारी आये जो केवल धनुर्विद्या के कौतुक दिखाते थे। श्री सेठ कन्हैयालाल जी बहुत घबराये और कहने लगे अब क्या हो और कैसे हमारी लाज रहे ?

मैंने कहा–अब मैं शास्त्रार्थ करुं, यही हो सकता है। प्रधान जी ने कहा कि–करिये ! पर न जाने आपका शास्त्रार्थ कैसा होगा? मेरी आयु उस समय कोई पच्चीस वर्ष की थी, अनुमानतः उन्होंने मेरी आयु को देखकर ही ये बातें कही थी। परन्तु मैं सन् १६१६ ई० में ''**पिण्डीघेप**'' जिला अटक (कैम्बलपुर) सीमा प्रान्त जो अब पाकिस्तान में है "**मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है या वेद विरूद्ध ?**" विषय पर पौराणिक पण्डित "**श्री गीताराम जी शास्त्री**" से शास्त्रार्थ करके "**शास्त्रार्थ केसरी**" की उपाधि प्राप्त कर चुका था जो मेरे जीवन का प्रथम शास्त्रार्थ था, एवं "**चूनियां**" जिला लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में भी पौराणिक पण्डित "**श्री गुरूदत्त**" जी से शास्त्रार्थ करके अभूतपूर्व विजय प्राप्त कर चुका था, अनेको शास्त्रार्थ करने के बाद भी मैंने प्रधान जी को कहा–मुझको पूर्ण विश्वास है कि हम सत्य पर हैं, मैं सत्य की विजय के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगा। प्रधान जी ने खुशी से नहीं बल्कि कुछ लाचारी वाली स्थिति में ही, मरे मन से कहा–ठीक है तो फिर आप ही करिये।

शास्त्रार्थ पुराणों पर था, पर पुराण एक भी मेरे पास नहीं था। तो भी शास्त्रार्थ किया। और कैसा हुआ ? यह आप स्वयं पढ़कर देखेंगे और विचारेगे–प्रश्न अद्भुत ही है। सनातनधर्म सभा के उत्सव में जो-जो विद्वान आये थे, उनके नाम इस प्रकार थे– (१) श्री स्वामी दयानन्द जी बी० ए०, (२) श्री स्वामीराम जी,

(३) श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री (अमरोधा, जिला कानपुर निवासी), ४. श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न (अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर निवासी), (५) श्री पण्डित यदुकुलभूषण जी शास्त्री (मुलतान वर्तमान पाकिस्तान निवासी), (६) श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द जी शास्त्री, ग्राम कौल, (जिला करनाल–हरियाणा, निवासी), मौजूद थे। जिनमें से श्री स्वामी दयानन्द जी बी०ए० और श्री स्वामी राम जी शास्त्रार्थ होने के विरुद्ध थे। परन्तु शास्त्रार्थ अनिवार्य था, और पौराणिक दल इसलिए भी शास्त्रार्थ करना चाहता था कि–आर्य समाज के पास कोई शास्त्रार्थकर्त्ता दिखाई नहीं देता था और उनके अपने पास दिग्गज शास्त्रार्थमहारथी एक नहीं बल्कि चार–चार दिखाई दे रहे थे।

शास्त्रार्थ सनातनधर्म सभा के पण्डाल में हुआ जो दोपहर दो बजे से पांच बजे तक होना निश्चय हुआ था। जिसमें श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री, **''शास्त्रार्थ के अध्यक्ष''** नियत हुए और पौराणिकों की ओर से **''शास्त्रार्थ कर्त्ता''** श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न निश्चित हुए। एंव श्री पण्डित यदुकुलभूषण जी शास्त्री, व श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द शास्त्री, जो श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न के साथ सहायक रुप में नियत्त किये गये।

और आर्य समाज की ओर से केवल मैं (अमरसिंह आर्य पथिक) ही रह गया। पाठकों को विदित होना चाहिए कि उस समय पौराणिकों में सबसे अधिक वाक्चतुर श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री माने जाते थे। और वह स्वयं पुराणों को वेदानुकूल सिद्ध करने के पचड़े में पड़ना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने नये सनातनधर्मी पंडित अखिलानन्द जी को इस दल–दल में फंसाया।

जब यह घोषणा हुई कि – शास्त्रार्थ के प्रधान श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री होंगे। तो सब कुछ जानते हुए भी मैंने पूछा कि – श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री दोनों पक्षों की ओर से प्रधान होंगे या केवल सनातन धर्म की ओर से? उत्तर मिला कि – श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री दोनों पक्षों की ओर से प्रधान नियुक्त रहेंगे।

यह सुनकर मैंने कहा– श्री पंडित कालूराम जी को सनातनधर्म के मंच पर नहीं बल्कि दोनों मंचों के बीच में बैठना चाहिये। यदि वह वहीं बैठेंगे तो हम उनको केवल सनातनधर्म का ही प्रधान मानेंगे और अपना प्रधान दूसरा बनायेंगे। इस बात पर पंडित कालूराम जी ने बहुत ननुनच की, परन्तु मैं अपनी बात पर अड़ा रहा, परिणामस्वरुप श्री पण्डित कालूराम जी को दोनों मंचों के बीच आकर बैठना पड़ा।

उस समय मेरी आयु बहुत थोड़ी थी, परन्तु मेरे इस कार्य को देखकर मैं सभी श्रोताओं पर छा गया, और शास्त्रार्थ की समाप्ति पर तो कहना ही क्या ? आप लोग पढ़िये ! और प्रसनन्ता प्राप्त करिये !!

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"
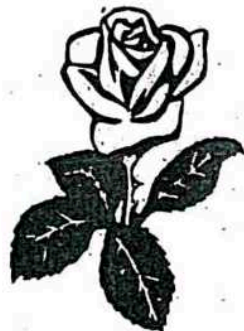
शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी द्वारा प्रथम प्रश्न पत्र –

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा, शन्न इन्द्रो ब्रहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः। ओं नमो ब्रह्मा नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु , अवतु माम् , अवतु वक्तारम्।। ओं शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !!!

सज्जन पुरुषो ! आर्य सामाजिक तथा सनातनधर्मी कहलाने वाले लोग दोनों अपने–आपको वेद का मानने वाला मानते तथा कहते हैं। परन्तु भागवत् आदि पुराणों के कारण ही हम दो भागों में बंट रहे हैं और एक दूसरे के विरोधी बने हुए हैं।

यदि पुराणों को बीच में से निकाल दिया जाये तो ....हम दोनों दो न रह कर बल्कि एक हो सकते हैं, इसलिए आज यह विचार कर रहे हैं कि–**''पुराण वेदानुकूल हैं या वेद विरुद्ध?''** यदि आज– पुराण, वेद विरुद्ध सिद्ध हो जायें तो सनातनधर्मी कहलाने वाले लोग भी पुराणों को आज तिलाञ्जली दे दें और आर्यसमाज में सम्मिलित हो जावें।

पुराणों में मूर्ति पूजा करने वालों को – ''**विडम्बी**'' अर्थात् धोखा देने वाला या धोखा खाने वाला ''**मूढ़**'' अर्थात् मूर्ख, जड़बुद्धि, तथा बैलों का चारा ढोने वाला गधा आदि उपाधियां दी हैं यथा–

१. यः तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु सः एव "गोखरः"।।

२. यो मां सर्वेषु भुतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्। हित्वार्चा भजते "मौढ्यात भस्मन्येव जुहोतिसः"।।

३. अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा वास्थितः सदा तमवज्ञाय मां मर्त्यः ''कुरुतेऽर्चा विडम्बनम्।।

४. मृच्छिला धातुदार्वादिमूर्तावीश्वर बुद्धयः। क्लिश्यन्ति तपसा ''मूढ़ाः'' परां शान्ति न यान्तिते।।

(श्रीमद्‌भागवद पुराण)

मूर्तिपूजा करने वालों के लिए पुराणों तथा पौराणिकों के ग्रन्थों में ये निन्दायुक्त उपाधियां दी गई हैं, चारों वेदों में से आप मूर्तिपूजकों के लिए ऐसी ही उपाधियां दिखा देंगे तो उस विषय में तो पुराण वेदानुकूल सिद्ध हो जायेंगे और यदि आपके मन्तव्यानुसार वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है तो पुराण प्रत्यक्ष रुप में वेद विरुद्ध हुए। अतः उनको आपके द्वारा तिलाञ्जलि दे दी जानी चाहिए।

सत्यधर्मानुरागी सज्जनों ! शास्त्रार्थ चाहे तीन घंटा होवे वा तीन दिन– तीन महीने या तीन साल तक होता रहे। आज इस प्रश्न के साथ ही मेरी यह भविष्यवाणी है कि सारे सनातनधर्मी कहलाने वाले पण्डित मिलकर भी मेरे इस प्रश्न का उत्तर कदापि न दे सकेंगे और आज इस सारे पौराणिक मंडल को घोर पराजय का मुँह ही देखना पड़ेगा। इत्यलम्।।

हस्ताक्षर –

''अमर सिंह आर्य पथिक''

नोट –

पौराणिक पक्ष की ओर से श्री पण्डित अखिलानन्द जी द्वारा निम्न पत्र लिखा गया जो आधा संस्कृत में तथा आधा हिन्दी में था, देखिये –

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

श्री हरिः

मूसलोलूखल उपानहां पूजा-दयानन्देन संस्कार विधौ अंगीकृता कुतो न विचार्यते। सारे वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है, यथा–

१. मुखाय ते पशुपते ....२. त्र्यम्बकं यज्ञामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् ....३. यस्य भूमिः प्रमा-अन्तरिक्षमुतो वरम्। ....४. सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ....।

इस प्रकार वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है, तुम मूर्ति पूजा की निन्दा करते हो। इसलिए वेद निन्दक हो। **''नास्तिको वेद निन्दकः''** नास्तिक हो।।

हस्ताक्षर –

''अखिलानन्द''

श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सत्यासत्य की खोज करने वाले सज्जनों! आज के शास्त्रार्थ का विषय यह नहीं है कि–**"मूर्तिपूजा वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ?"** न आज का यह विषय है कि–**"स्वामी दयानन्द जी ने संस्कार विधि या सत्यार्थ प्रकाश में मूर्त्तिपूजा अंगीकार की है या नहीं ?"** सत्यार्थ प्रकाश में मूर्तिपूजा का प्रबल खण्डन है, मूर्तिपूजा की हानियां भी लिखी हैं, स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का यत्न करना यह सिद्ध करता है कि–**''डूबते हुवे इधर-उधर हाथ मार रहे हैं''**।

मेरा प्रश्न है कि–**"विडम्बी"**अर्थात् मूढ़ तथा बैलों का चारा ढ़ोने वाला गधा आदि मूर्तिपूजा करने वालों को पुराणों में बताया है, यदि ऐसा वेदों में नहीं है तो पुराण वेदों के विरुद्ध क्यों नहीं हैं ?

सज्जनों! आप लोग देख रहे हैं कि पंडित जी की क्या गति हो रही है? ये दुर्गति है या सद्गति ? इसे आप सोचें।

हस्ताक्षर–

''अमरसिंह आर्य पथिक''

नोट –

श्री पंडित अखिलानन्द जी बिना लिखे ही बोलने लगे।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

मदत्तानां मन्त्र प्रतीकानां अद्यापि न दोयते प्रत्युत्तर मिति खेदः केवल गल गर्दन मन्त्रणोतु न सिद्धयति कार्यम्।।

इन वाक्यों को तीन–चार बार दोहराते हुए.......... दयानन्द ने संस्कार विधि में पटेले और उस्तरे की पूजा और उस्तरे को नमस्ते भी लिखी है। वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है, आर्यसमाजी मूर्तिपूजा की निन्दा करके **"वेद निन्दक"** अर्थात् नास्तिक बन रहे हैं।

श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सत्याभिलाषी सज्जनों! आपने देखा कि – पंडित अखिलानन्द जी –**"किं कर्त्तव्य विमूढ़"** हो गये हैं। पंडित अखिलानन्द जी आर्य समाज में थे, उसमें से निकाले हुए सनातनधर्म में आये, और **''सिर मुंडाते ही ओले पड़ गये''** ....हंसी............मैंने आरम्भ में ही भविष्यवाणी की थी कि मेरे प्रश्न का उत्तर कदपि न दिया जा सकेगा।

सज्जनों ! यह छुरी और खरबूजे का खेल है। छुरी खरबूजे पर गिरेगी तो खरबूजा कटेगा, और खरबूजा छुरी पर गिरेगा तो भी खरबूजा ही कटेगा। ....जनता में हंसी ....।

पण्डित जी महाराज बेचारे बहुत बुरी तरह फंस गये हैं। वेदों मे मूर्ति पूजा का विधान बताने से पुराण वेद विरुद्ध सिद्ध होते हैं। और यदि वेदों में मूर्ति पूजा और मूर्ति पूजकों की निन्दा दिखाते हैं तो मूर्ति पूजा-जो इनके पेट पालन का परम साधन है वह छोड़नी पड़ती है। मैंने इनको ऐसे गोरखधन्धे में फंसाया है कि-अब बेचारों से कुछ करते नही बनता है। ''**इधर है कुआं, तो उधर है खाई**'' जायें तो कहां जायें ?

सज्जनों ! पुराणों में और भी देखिये-मैं अब विस्तार से अपने द्वारा दिये गये प्रमाणों का अर्थ भी बताता हूं। क्योंकि लिखने में इतना विस्तार नहीं हो सकता, अब पंडित जी ने स्वयं ही इस नियम को तोड़ दिया है।

मेरा पहला प्रमाण था ''**यस्यात्म बुद्धि कुणपेत्रिधातु के** ....'' जो श्रीमद्भागवत् पुराण स्कन्ध १० अध्याय ८४ का तेरहवां श्लोक है। जिसमें कहा है कि —

''जो मनुष्य वात, पित कफ, युक्त शरीर को आत्मा मानता तथा पुत्रों और स्त्री आदि में आशक्ति रखता है तथा मिट्टी आदि की बनी मूर्तियों को पूज्य जानता और जल के स्थानों को तीर्थ मानता है वह विद्वान पुरुषों में बैलों का चारा (घास आदि) ढोने वाला गधा है। अर्थात् विद्वान लोग उसको बैलों का चारा ढोने वाले गधे के समान ही मानते हैं।"

मेरा दूसरा प्रमाण था- "**यो मां सर्वेषु भूतेषु** ....'' भागवत् पुराण स्कन्ध ३ अध्याय २६ का इक्कीसवां श्लोक है। इसमें कहा है कि –

''सकल प्राणियों में आत्मस्वरूप से रहने वाले मुझ ईश्वर का अपमान करके जो मूर्खता से केवल मूर्ति मात्र की ही पूजा करता है वही मूढ़ मानो केवल ''भस्म में हवन '' करता है। अर्थात् जैसे भस्म (राख) में हवन करना निष्फल है वैसे ही मूर्ति मात्र की पूजा या सेवा करना निष्फल है।"

मेरा तीसरा प्रमाण था- "**अहं सर्वेसु भूतेषु** ...." जो उपरोक्त भागवत् पुराण, स्कन्ध, ३ अध्याय २६ का बाईसवां श्लोक है। जिसमें कहा गया है कि –

''मैं सकल भूतों का आत्मा होने के कारण, प्राणी मात्र में निरन्तर रहता हूं। तिस मेरा तिरस्कार करके अर्थात् सकल प्राणियों में मुझको न देखकर जो मरण को प्राप्त करने वाले देह आदि में आत्म दृष्टि रखकर केवल मूर्त्ति मात्र में ही मेरी पूजा करता है वह पूजा का अनुकरण मात्र (ढोंग) करता है। अर्थात् वह ''विडम्बी'' ढोंगी है।

मेरा चौथा प्रमाण था- इन पौराणिकों के मान्य ग्रन्थ-"**महानिर्वाणतन्त्र**" का था, यथा ''**मृच्छिला धातु दार्वादि** ...." जिसमें कहा गया है कि –

जो लोग धातु, लकड़ी, मिट्टी आदि की बनी मूर्तियों में ईश्वर बुद्धि रखते हैं, "वे मूढ़ लोग जो मूर्ति पूजक हैं उसी क्लेश में तपते रहते हैं जो कभी भी परम शांति को प्राप्त नहीं हो सकते"।

भाइयों ! इस प्रकार पता चलता है कि पुराणों में मूर्ति पूजकों के लिए ''**मूढ़-गधा-विडम्बी**'' और न जाने किन-किन उपाधियों से उनको अलंकृत किया गया है। परन्तु चारों वेदों में से आप मूर्ति पूजकों के लिए ऐसी ही उपाधियां दिखा देंगे तो इस विषय में तो पुराण वेदानुकूल सिद्ध हो जायेंगे और यदि आपके

मन्तव्यानुसार वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है। तो पुराण प्रत्यक्ष रूप में वेद विरुद्ध हुए अतः मैं पुनः कहता हूं कि– "**पुराणों को आपके द्वारा तिलाञ्जली दे दी जानी चाहिये**" । जो मैंने संक्षेप में अपने पहले पत्र में भी उद्धृत की थी और कहा था कि ....घण्टी ....टर्न टन टन..............।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

भाइयों ! आर्यसमाजी नास्तिक हैं। नास्तिकों का तो मुंह देखना भी पाप है। ....इस बात को सुनते ही सारी सभा में अशान्ति की लहर दौड़ गई और चारों तरफ .... हो .... हुल्लड़ मच गया............।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री "शास्त्रार्थ के प्रधान"–

.............बड़ी ऊंची आवाज में............. भाइयों ! मुझको यह दिखाई देता है कि अब लड़ाई–झगड़ा अपना उग्ररूप धारण कर लेगा, इसलिए मैं अब इस झगड़े का भार अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं हूं, अतः प्रधान की हैसियत से मैं अब शास्त्रार्थ समाप्त करता हूं। आप लोग मेरा कहना मानें और अपने–अपने घरों को जावें। सभा समाप्त।

नोट –

सभा समाप्त हो गई। देखते ही देखते सनातन धर्म सभा का पण्डाल सर्वथा खाली हो गया। श्री सेठ कन्हैयालाल जी आदि समस्त आर्यसमाजियों ने श्री ठाकुर साहब को कन्धे पर उठा लिया। और खुशी के मारे नाचने व गाने लगे। चारों तरफ वैदिक नारों से आकाश गूंज उठा। सनातनधर्मियों में शोक छा गया। सभी सनातन धर्मी लोग पण्डित अखिलानन्द जी की निन्दा कर रहे थे। कि हमारे पंडित जी से तो न जाने क्यों कुछ भी न बोला गया। और सभी सनातनधर्मी अपने पंडित की कमजोरी को महसूस कर–करके शर्मिन्दा हो रहे थे। आर्य समाज के प्रधान श्री सेठ कन्हैयालाल जी ने कहा–"**ठाकुर साहब ! मुझे इतनी उम्मीद नहीं थी कि आप इस क़दर शास्त्रार्थकला में प्रवीण हैं ?**" नाम तो आपका जरूर सुन रखा था, परन्तु आपकी आयु को देखकर मैं हिचक रहा था। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, सारे श्रोताओं ? पर आर्यसमाज का बड़ा ही अच्छा असर पड़ा।
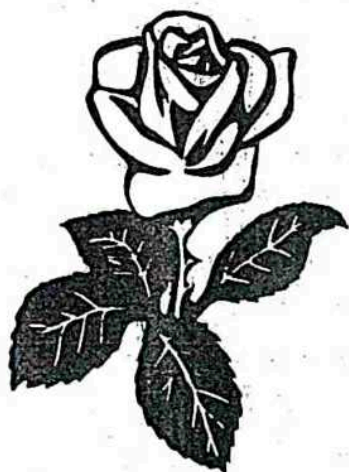
अड़तालीसवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "चाँदपुर" जिला–बिजनौर (उत्तर प्रदेश)

@vaidicbooks

दिनांक : सन् १९२१ ई०
विषय : ईसाई मत की तालीम ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित बिहारीलाल शास्त्री "काव्यतीर्थ"
शास्त्रार्थकर्त्ता ईसाइयों की ओर से : श्री पादरी ज्वाला सिंह जी

शास्त्रार्थ से पहले

ईसाई पादरी मनुष्य गणना के समय गणना करने वालों को, मेहतरों (भंगियों) की गणना अपने कागजों पर करके दे आते थे, और वह गणक उन्हीं फार्मों के अनुसार लिख लेते थे। और पादरी लोग सभी मेहतरों को ईसाई लिख देते थे। जनगणना के समय मैंने इधर ध्यान दिया और ईसाइयों के दिये हुये फार्म इक्ट्ठे करके सरकार और जनता के सामने रक्खे, इनमें हिन्दू मेहतरों को भी ईसाई भरा हुआ था, जिले भर में मैंने आन्दोलन खड़ा कर दिया, तब पादरियों ने चांदपुर में मेहतरों की पंचायत इकट्ठी की, और उनको समझाने और बहकाने के लिये बड़े–बड़े पादरियों को बुलवाया, इनमें श्री पादरी ज्वालासिंह जी भी थे, श्री पादरी ज्वालासिंह जी अरबी इल्में मन्तक के बड़े मन्जे हुए विद्वान थे, मन्तकी परिभाषा का प्रयोग तो, वो ऐसा करते थे कि, विरोधी चक्कर में आ जाये, सभी बातें दलीलों के साथ करते थे, परन्तु बाइबिल के ऊपर होने वाले आक्षेपों को बचाने में उनकी कला मात खाती थी। पादरियों ने तहसीली स्कूल के सामने अपना अखाड़ा जमाया, और हिन्दुओं व आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी !

आर्यसमाज ने चुनौती को स्वीकार कर शास्त्रार्थ निश्चित्त कर दिया, जिसमें आर्यसमाज की ओर से मैं (बिहारी लाल शांस्त्री) तथा ईसाइयों की तरफ़ से श्री पादरी ज्वालासिंह जी शास्त्रार्थकर्त्ता नियुक्त हुए, सभा में कई हजार व्यक्ति शास्त्रार्थ का नाम सुनकर आए थे। जिनमें अधिकतर मुसलमान लोग थे। जो बड़े आलिम व अरबी के अच्छे–अच्छे जानकार थे। जिनके सामने शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

"बिहारीलाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पादरी ज्वालासिंह जी –

मेहरबान् सज्ज़नों ! यीसू ईश्वर का अवतार था। उसने रोगियों को अच्छा किया, मुर्दे जिन्दा किये, कोढ़ियों को ठीक किया। इसलिए हमें उस यीशू पर ईमान लाना चाहिये।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

पादरी साहब ! यदि इन चमत्कारों के कारण ही ईसामसीह ईश्वर थे, और ईश्वर के इकलौते बेटे थे, तो जिस जिसमें यह चमत्कार दिखाने की शक्ति होगी वह ईश्वर और ईश्वर का पुत्र कहलायेगा, क्योंकि आपका पक्ष है कि–यीसू ईश्वर था, और उसमें हेतु आप देते हैं, **''क्योंकि उसने चमत्कार दिखलाये''** पादरी साहब ! ज़रा गौर फ़रमायें, आपका यह हेतु कहीं और भी जा रहा है। केवल यीसू तक ही सीमित नहीं रहता, जैसे–जिला बिजनौर में ही गुग्गाज़ाहिरपीर, दीवान हुए हैं, वे सांपों के काटे हुये मनुष्यों को बचा लेते थे। आज भी उनके नाम पर दूध न देने वाली भैसें दूध देने लगती हैं। बांझ औरतों के सन्तानें हो जाती हैं। और लोगों के बिगड़े हुए काम बन जाते हैं। अगर उलूहियत मसीह (मसीह के ईश्वरत्व) में यही दलील है, तब तो बहुत ही घटिया किस्म की एवं रद्दी दलील है। जो हेतु पक्ष में भी व्याप्त हो और अन्यत्र भी व्याप्त हो वह अतिव्याप्ति दोष से युक्त होता है। तर्क शास्त्र के अनुसार यह दलील ग़लत है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी –

पंडित जी ! ये आप क्या भाषा बोल रहे हैं ? कहां की भाषा बोल रहे हैं ? ये बंगला है या मराठी है, कुछ समझ में नहीं आता। उर्दू जुबान में बोलिए ये जाहिर पीर का हाल कहां लिखा है ? वो कौन लोग हैं जो इस ज़ाहिर–पीर पर ईमान लाते है ? आपकी तो कुछ बात ही समझ मे नहीं आई। हमने सोचा था कोई आलिम सामने खड़ा होगा, परन्तु आप ये न जाने क्या कह रहे हैं ? ....श्रोताओं में हंसी होने के कारण पादरी साहब का खिसियाया सा होना........... भाईयो ! हमारे मसीह का हाल तो चार इन्जीलों में है। मसीह को इन्जील, खुदावन्द और खुदा का बेटा ठहराती है, यह दलीलें तवातुर (कठिन) हैं, आप इनको समझ भी नहीं सकते।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

पादरी साहब ! आपको पता होना चाहिये मैं भारत की राष्ट्रभाषा जिसे हिन्दी कहते हैं, वह बोल रहा हूं, हिन्द की भाषा हिन्दी, यह १८ करोड़ जनता की भाषा है, बंगला और मराठी की तो आपको पहचान ही नहीं हैं। दुर्भाग्य है कि इस प्रान्त में करोड़ों व्यक्ति जिस भाषा को बोलते हैं उससे आप नावाकिफ (अनभिज्ञ) हैं। ज़ाहिर पीर के बारे में आप पूछते हैं कि उसका हाल कहां लिखा है ? सो श्रीमान जी ज़ाहिर पीर का स्वांग जिला मुरादाबाद के स्थान कांठ में छपा है, जो इतना बड़ा है कि अगर चारों इन्जीलों के ऊपर चढ़ बैठे तो इनका दम निकाल दे, आप पूछते हैं कि ज़ाहिर पीर पर विश्वास ही कौन करता है ? तो जानेमन यहीं इसका प्रमाण लीजिए, हजारों हिन्दू और मुसलमान इसकी ज़ियारत करते हैं, उसकी मनौति मनाते हैं, एक–एक लाख तक मनुष्य दारानगरगंज नामक स्थान में उसकी छड़ियों के मेले में जाते हैं। ईसा मसीह की चर्चा कहीं भी रोमन इतिहास में नहीं है। केवल इन्जीले ही इस कथा को कहती हैं, और इन्जीलें भी बदलती रहती हैं, परन्तु ज़ाहिर पीर का जिक्र तो फ़ारसी इतिहास में भी है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी –

ये कहानियां झूठी हैं, पब्लिक औहामपरस्त (भ्रम की पूजक) है। ये सब बातें जहालत की हैं, खुदावन्द ईसा मसीह पर एतक़ाद (ईमान) लाना ठीक है, मनुष्यों की सबसे ज्यादा तादाद ईसा पर ईमान लाने वालों की है। यूरोप व अमरीका में बड़े–बड़े लोग यीसू को मानते हैं, आपके ज़ाहिरपीर को, ज़ाहिल लोग मानते हैं जिनकी संख्या बहुत थोड़ी सी है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

सुनिये पादरी साहब ! हमें तो न ज़ाहिरपीर से कोई मतलब और न आपके ईसा मसीह से ! हमारे दृष्टिकोण से तो दोनों ही अंधविश्वास हैं, जिसके सिर पर सींग है और पीछे पूंछ है। वे सभी पशु हैं। और जिनके पर (पंख) हैं वे सभी पक्षी हैं। करामात चाहे यीसू मसीह की हो या ज़ाहिरपीर की हो ? जो मौज़ज़े (चमत्कार) दिखलाये वही सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं, और बुद्धि के विपरीत हैं, वे सभी झूठे हैं। हमने तो तुलना के लिए ज़ाहिरपीर को पेश किया था। चमत्कारों को प्रमाण मानकर जो मत चलना चाहता है उसकी अब विज्ञान के युग में खैर नहीं है। यूरोप और अमेरिका के विज्ञानवेत्ता और दार्शनिकजन ईसायत पर विश्वास नहीं रखते, केवल सेठ–साहूकार और राजनैतिक लोग ही ईसायत का पट्टा लगाये रहते हैं अथवा वे पादरी लोग जिनका कि ये पेशा है। वैज्ञानिकों से तो पोप और पादरियों का घोर संघर्ष हमेशा से चलता आ रहा है। रेखागणित का प्रचार करने वाली स्त्री हाईपशिया को पादरियों ने जीवित जला कर मार डाला, और जो व्यक्ति गैलेलियो–भूमि को अण्डाकार व घूमती हुई बताता था, उसे मिमेंन ने घोर–घोर यातनायें दी। आज यूरोप व अमेरिका में विज्ञान का बोल–बाला है। विद्वद् जगत् में ईसायत की कोई पूछ नहीं है। और

यहां भारत में भी आपका मिशन वे पढ़े लिखे, सीधे–साधे, गरीब और गर्ज़मन्द लोगों को जाकर बहकाता है। पढ़े–लिखे और उन्नत वर्ग में ईसायत की छदाम की भी कीमत नहीं लगती, बुद्धिवाद की आंच में ईसायत की कलई उड़ जाती है। आपने ईसायत को बुद्धिवाद की आग पर रखकर ईसायत की बड़ी हानि कर दी।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी –

आपका धर्म गुनाहों से आदमी को नहीं बचा सकता। बुद्धि की बातें ठोकरें खिलाती हैं। साइन्स आदमी को ईमान से हटाता है। सच्चा दीन मसीह का है। वह गरीबों के लिए है। थके मांदों को मसीह बुलाता है, पढ़े–लिखे व बड़े–बड़े लोग गुनाहों में फंसे रहते हैं। गुनाहों से छुटकारा फ़कत मसीह ही दिलाता है। जो उसके नाम पर बाप्तिस्मा (ईसाई धर्म की दीक्षा) लेगा वह गुनाहों से छूट जायेगा, मसीह दुनियां को गुनाहों से बचाने के लिये ही क्रूस पर चढ़ा था।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

साहब ! ये सब बातें आपकी अपने विश्वास की हैं इन दावों के लिये कोई सबूत या दलील आपके पास नहीं है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी –

इस दावे के लिए दलीलें तबातुर (कठिन) हैं, जिसे आप समझ नही सकते।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री –

आपके मज़हब की बातें, बेपढ़े, महतर, चमार आदि समझ लेते हैं, मगर कमाल है पादरी साहब, मैं नहीं समझ सकता ! ....जनता में हंसी .... आपकी तबातुर दलीलें यही तो हैं कि लोग मिलकर जिस घटना का वर्णन करें वह ठीक ही होती है। अगर बहुत से लोगों ने गुट बना लिया हो तो झूठ–सच की परीक्षा कैसे करोगे ? पादरी साहब ! इन्जील तो मुद्दयी है, उसे गवाह चाहिये, तब दावा ठीक उतरेगा। मसीह के क्रूस पर चढ़ाये जाने का कहीं भी रोमन इतिहास में जिक्र नहीं है। ये सब नाटक पीटर पौलूस ने रचाया या बाद के पादरियों ने बनाया।

अगर मसीह खुदा का इकलौता बेटा था, तो खुदा ने उस समय जब वह क्रूस पर चढ़ाया जा रहा था, तब कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाया ? प्रह्लाद के भगवान तो प्रह्लाद को बचाने तत्काल पहुंचते हैं। आसमानी बाप मसीह के "**एली-एली लामा सबक्तनी**" पुकारने पर भी चुपचाप बैठे रहते हैं ? असल में मसीह को क्रूस पर चढ़ाने की कहानी मसीह को बदनाम करती है। और यह घटना ही सरासर झूठ है। देखो जरूसलम का पड़ौसी और कुल छः सौ वर्ष बाद का पैदा हुआ मज़हब इस्लाम क्या कहता है ? –

व कौलेहिम् इन्ना कत्लुल् मसीहा ईसब्ना मर्यमा।
रसूलिल्लाहे वमा क़त्लू हो ? बमा सलब् हो।

(सुरते निसा)

नोट –

इस आयत के बोलने पर वहां उपस्थित सभी मुसलमानों ने "**अल्ला हो अकबर..........**" के नारों से आकाश गुंजा दिया। भाइयो सुनो ! जब पादरी साहब के मसीह क्रूस पर नहीं चढ़ाये गए तो आपके अक़ीदे (विश्वास) के मुताबिक़ इन्सान का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित्त) नहीं हुआ और न गुनाहों से छुटकारा मिला तो फिर बाप्तिस्मा लेना और ईसाई बनना बेकार है।

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, एवं इस शास्त्रार्थ का यहं नतीजा हुआ कि उसके बाद बाल्मीकि भाई जनगणना के समय ईसाई नहीं लिखे गये।

"बिहारी लाल शास्त्री"

उन्नचासवा शास्त्रार्थ —

स्थान : "श्रीनगर" राजदरबार (कश्मीर)

दिनांक	:	१२ सितम्बर सन् १९०६ ई०
विषय	:	क्या मुक्ति अवस्था में जीव जड़वत् होता है ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से	:	श्री पण्डित गणपति शर्मा जी,
ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पादरी जानसन साहब,
मध्यस्थ	:	श्री महाराजा प्रताप सिंह जी (कश्मीर)

शास्त्रार्थ से पहले

जम्मू कश्मीर का राज्य महाराजा गुलाबसिंह जी द्वारा स्थापित हुआ। महाराजा गुलाबसिंह बड़े वीर योद्धा थे। श्री महाराजा गुलाबसिंह के पीछे उन्हीं के सुपुत्र महाराजा रणवीरसिंह जी जम्मू कश्मीर की गद्दी पर बैठे। महाराजा रणवीरसिंह जी बुद्धिमान तथा बहुत उन्नत विचारों वाले थे।

उनके बनाये कानून आज तक भी जम्मू कश्मीर में प्रचलित हैं महाराजा रणवीरसिंह जी चाहते थे कि राज्य भर में जितने भी मुसलमान हैं उनके पूर्वज हिन्दू ही थे वह सब फिर से हिन्दू हो जाये और उनको फिर से अपने वंश वालों में मिला लिया जाये। इसके लिए उन्होंने देश भर के विद्वानों द्वारा सर्व प्रकार के पापों के प्रायश्चित से इकट्ठे कराये थे वह अच्छा ग्रन्थ ''**रणवीरकारित प्रायश्चित**'' के नाम से विद्यमान है।

महाराजा रणवीर सिंह जी ने ऋषि दयानन्द जी को जम्मू कश्मीर में बुलाने का विचार व्यक्त किया था, पर मूर्ख और धूर्त पौराणिकों ने यह बेल मढ़े न चढ़ने दी।

महाराजा रणवीर सिंह जी के पीछे उनके सुपुत्र श्री प्रतापसिंह जी महाराजा बने। महाराजा प्रतापसिंह जी बड़े धार्मिक थे और बड़े उदार थे। उनकी सरकार के अच्छे–अच्छे पदों पर आर्यसमाजी भी पदासीन थे। रायसाहिब मक्खनलाल जी महकमा नहर के चीफ–इन्जीनियर थे, श्री वंशीधर जी नन्दा किसी और विभाग में बड़े इन्जीनियर थे।

श्री लाला दयालचन्दजी, श्री भगवानदास जी, लाला अनन्तराम जी, लाला ईश्वरदास जी, लाला नृसिंहदास जी आदि बहुत से आर्यसमाजी सज्जन अच्छे–अच्छे पदों पर विद्यमान थे जम्मू कश्मीर राज्य में बहुत से आर्यसमाज मन्दिर भी मौजूद थे।

एक ईसाई पादरी का कश्मीर में आगमन –

पादरी "**जानसन**" युरोपियन (गोरा) संस्कृत पढ़ा हुआ था वह संस्कृत बोलता भी था अपने आपको दर्शनों का विद्वान् समझता था और दर्शनों पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्थान–स्थान पर पौराणिक पण्डितों को ललकारता था। पौराणिक पण्डित उससे घबराते थे।

प्रसिद्ध पण्डित "**नीलकण्ठ शास्त्री**" ईसाइयों से शास्त्रार्थ में हारकर ईसाई हो गया था, "**पण्डिता रमाबाई**" ईसाइयों से शास्त्रार्थ में हारकर ईसाई हो गई थी।

पादरी जानसन ने श्रीनगर कश्मीर में आकर पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा–वह कहता था कि हिन्दुओं के छैओं दर्शन आपस में एक दूसरे के घोर विरोधी हैं और दर्शनों से सिद्ध होता है कि – "**मुक्ति में जीव-जड़ के समान निष्क्रिय निश्चेष्ट और ज्ञान रहित होता है**" आदि। कश्मीरी पण्डितों का समूह उस पादरी से ऐसे डरता था जैसे शेर से हिरणों का समूह डरता और घबराता है।

श्री महाराजा प्रतापसिंह जी की अध्यक्षता में कश्मीर के पण्डितों के साथ पादरी ''**जानसन**'' का शास्त्रार्थ हुआ भी था उसमें पौराणिक पण्डित हार गये थे।

पादरी "**जानसन**" महाराजा साहिब पर जोर डाल रहा था कि–आप मुझको विजयपत्र लिख दीजिए। महाराजा साहब बहुत चिन्ता और परेशानी में थे कि क्या करें ?

महाराजा साहिब ने श्री लाला दयालचन्द जी और लाला अनन्तराम जी आदि आर्य जनों को बुलाकर कहा कि–भाई सज्जनों ! आर्यसमाज के किसी अच्छे विद्वान को शीघ्र से शीघ्र बुलाओ। महाराजा

साहिब–आर्य समाजी नेताओं और विद्वानों में से श्री महात्मा मुंशीराम जी तथा महात्मा हंसराज जी, व श्री पण्डित आर्यमुनि जी तथा पण्डित राजाराम जी शास्त्री के नाम जानते थे तब महात्मा मुंशीराम जी को लाला मुंशीराम जी और महात्मा हंसराज जी को मास्टर हंसराज जी कहते थे। आग्रहपूर्वक कहा कि उनको अतिशीघ्र बुलाओ।

देवयोग से अचानक शास्त्रार्थ महारथी हमारे दिग्गज विद्वान् "**श्री पण्डित गणपति शर्मा**" जी आर्यसमाज हजूरी बाग[1] में पहुंच गये। श्री लाला दयालचन्द जी, व श्री हरवंशलाल जी तथा डाक्टर कुलभूषण जी आदि ने श्री महाराज को सूचना दी कि हमारे पास देवयोग से महाविद्वान् पण्डित गणपति शर्मा जी आ गये हैं महाराज जी ने गाड़ी भेजकर पण्डित जी को बुला लिया और पादरी साहब को सूचना दे दी कि–"**शास्त्रार्थ के लिए आ जाओ**" पण्डित जी ने श्री महाराज को आशीर्वाद स्वरूप एक गीता की पुस्तक और कुछ पुष्प भेंट में दिये

पादरी जानसन ने यह कह कर की मेरा चैलेंज तो कश्मीरी पण्डितों से हैं इनसे नहीं, क्योंकि पादरी जानसन श्री पण्डित गणपति शर्मा जी को थोड़ा बहुत जानता था, इस पर भी राजा साहब ने कहा कि–

श्री महाराजा प्रताप सिंह जी –

पादरी साहब ! शास्त्रार्थ का निमित्त कश्मीरी पण्डित या पण्डित गणपति शर्मा जी नहीं हैं। अपितु उद्देश्य तो सत्य–असत्य के निर्णय से है, आप अपनी बात को सत्य साबित करो, इधर से कोई भी पण्डित हो, वह अपनी बात रक्खेगा, तब शास्त्रार्थ में जो भी निर्णय होगा, वह सबके सम्मुख स्वतः ही आ जावेगा। आप इसमें घबराये हुए क्यों हैं ?

तब पादरी जानसन विवश होकर शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत हुआ। हालांकि यह शास्त्रार्थ बहुत छोटा है। तो भी अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा एक एतिहासिक चर्चा होने के कारण इसका एक विशेष स्थान है। शास्त्रार्थ में क्या कुछ हुआ ? आगे स्वयं पढ़िये और जानकारी प्राप्त कीजिये।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"

---
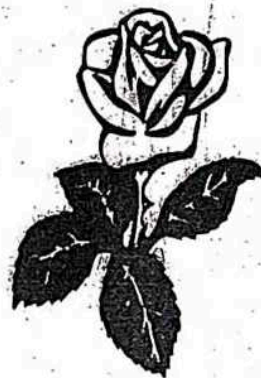
१. मैं स्वयं आर्यसमाज हजूरीबाग (श्रीनगर) कश्मीर में बीसीयों बार गया तथा वहां पर एक–एक माह तक ठहरा, वहां का भवन, स्कूल व समाज की गतिविधियां अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली थी। "**श्री पण्डित नेत्रपाल जी शास्त्री**" उस समाज में एक कर्मठ एवं त्यागी तपस्वी, विद्वान मौजूद थे, जिनके विशेष प्रयास से ही सारे जम्मू–कश्मीर में समाज की गतिविधियां संचारित होती थी।

निवेदक –

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

कश्मीर महाराज ने **"पादरी जानसन"** को कहा कि हमारे पण्डित जी आ गये हैं आप शास्त्रार्थ आरम्भ करिये। हजारों श्रौता विस्मययुक्त थे कि क्या होता है ? पण्डित गणपति शर्मा जी ने महाराज जी से कहा कि पादरी साहब को कहिये कि वे प्रश्न करें। हम उत्तर देने के लिए तैयार हैं।

पादरी जानसन ने पण्डित गणपति शर्मा जी की विद्वता सुनी हुई थी, तो भी पूर्ण रूप से परिचित न था। उस पर भी पादरी साहब ने महाराजा साहब से कहा कि मेरा चैलेंज कश्मीरस्थ पण्डितों के लिए है। प्रवास में आये इन पण्डित जी से नहीं है। परन्तु महाराजा साहब ने उसकी बात को नहीं माना, तथा शास्त्रार्थ करने के लिए एक ऐसी दलील पेश की कि श्री पादरी साहब को पण्डित गणपति शर्मा जी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए विवश होना ही पड़ा।

पादरी जानसन साहब –

पण्डित जी ! आप कहां के रहने वाले हैं ?

पण्डित गणपति शर्मा जी –

पण्डितों का कोई घर नहीं होता, यह सारी पृथ्वी मेरा घर है। शास्त्रार्थ करने से आपका प्रयोजन है, आप शास्त्रार्थ कीजिये।

पादरी जानसन साहब –

आप हमसे निश्चित्त किये गये विषय पर शास्त्रार्थ करने आये हैं।

पण्डित गणपति शर्मा जी –

यह तो सर्वविदित है ही, चलो पहले आप यही बतलायें कि **"शास्त्रार्थ"** शब्द के क्या अर्थ हैं ? क्या शास्त्र से मतलब आपका छः शास्त्रों से है ? और क्या आपको यह ज्ञात है कि, अर्थ शब्द–अनेकार्थ का वाचक है। अर्थ अर्थात् धन, अर्थ अर्थात् प्रयोजन, अर्थ अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म और वैशेषिक दर्शन के अनुसार शास्त्र भी केवल छः ही नहीं हैं, धर्म शास्त्र हैं, अर्थ शास्त्र हैं, नीति शास्त्र हैं, आप जरा समझाइये कि आप किस शास्त्र का अर्थ करने आये हैं ? जब आप **"शास्त्रार्थ"** शब्द का अर्थ समझायेंगे तब हम उत्तर देंगे।

पादरी जानसन साहब –

......................गड़बड़ाये व घबराये हुए से बोले...................... हम इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

पण्डित गणपति शर्मा जी –

क्या इसी बलबूते पर शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दे रहे थे ?

नोट –

और पण्डित जी ने धाराप्रवाह संस्कृत बोलना आरम्भ कर दिया। सरस्वती पण्डित जी की जिह्वा पर विराजमान थी। आपने वेद शास्त्रों के प्रमाणों की झड़ी लगा दी, आपने अपने अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों की पादरी जानसन पर ऐसी छाप मारी कि जानसन की बोलती बन्द हो गई। इसके बाद पादरी जानसन संस्कृत छोड़ हिन्दी में ही बोलने लगा।

पण्डित जी ने पादरी साहव को बार–बार ललकार कर कहा कि वे अपने निश्चयानुसार छः शास्त्रों में से एक भी ऐसा प्रमाण दे दें जिससे यह सिद्ध हो जावे कि –**"मुक्ति अवस्था में जीव जड़वत् होता है"**

पचासवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "कर्णपुरदत्त" जिला–फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)

दिनांक	:	४ जून सन् १६४६ ई०
विषय	:	परमेश्वर साकार है या निराकार ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से	:	श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री, "वेद तीर्थ"
शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्म की ओर से	:	श्री स्वामी रामदेव जी
आर्यसमाज के मन्त्री	:	श्री ठाकुर उदयपाल सिंह जी
आर्यसमाज के प्रधान	:	श्री भोला सिंह जी
सनातनधर्म संघ के मन्त्री	:	श्री पण्डित गुलकन्दी अवस्थी जी

नोट —

यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री ठाकुर उदयपाल सिंह जी" कर्णपुरदत्त निवासी द्वारा प्राप्त हुई, हम उनके हृदय से आभारी हैं।

"सम्पादक"

लेकिन पादरी साहब बोलने में ही असमर्थ रहे। और पण्डित जी के साथ शास्त्रार्थ करने को मना कर दिया। जानसन आया तो था बड़े घमण्ड के साथ! परन्तु पण्डित जी के पहले प्रश्न पर ही उसका सिर नीचा हुआ।

(महाराज कश्मीर) सम्मानीय महाराजा प्रतापसिंह जी ने कहा –

"भाईयों ! जानसन उत्तर नहीं देता वह हार गया है। जाये अपने घर। हमारे पण्डित गणपति शर्मा जी विजयी हो गये।" तत्पश्चात सभा उठ गई, सर्वत्र पण्डित गणपति शर्मा जी की जय–जयकार होने लगी। महाराज ने भारी सम्मान के साथ पण्डित जी को विदा किया। इसके पीछे जम्मू राज्य में बहुत शीघ्र दस वर्ष में सौ गुणी अधिक संख्या आर्यों की हो गई थी। इतने अल्प समय में इतने अधिक आर्यसमाजी किसी भी राज्य में नहीं बढ़े थे।

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज –

महाराजा श्री प्रतापसिंह जी के कोई पुत्र नहीं था, महाराजा प्रतापसिंह जी के सहोदर भाई श्री राजा अमरसिंह जी थे उनके सुपुत्र श्री हरिसिंह जी महाराज, प्रतापसिंह जी के पीछे सिंहासनारुढ़ हुए और जम्मू कश्मीर के महाराजा बने।

महाराजा हरिसिंह जी हृदय से चाहते थे कि – जम्मू कश्मीर के वह सब मुसलमान जिनके पूर्वज हिन्दू थे वह फिर हिन्दू बन जावें महाराजा साहब ने बहुत यत्न किया। मुझ (अमरसिंह[२]) को भी कश्मीर में बुलवाया और उनके आदेशानुसार मैं कश्मीर राज्य के सारे राजपूतों में उनकी इच्छानुसार घूमा, पर –

मरीजे जुर्रत पर लानत खुदा की।
मर्ज़ वढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।।

राज्य के हिन्दुओं ने साथ नहीं दिया और जवाहरलाल नेहरू ने महाराजा सर्र हरिसिंह जी को राज्यच्युत कर दिया अर्थात् राज्य से बाहर निकाल दिया।

श्री महाराज की बम्बई में मृत्यु हुई लगभग तीन करोड़ रुपये की सम्पत्ति लाला मेहरचन्द जी महाजन जो सुप्रीमकोर्ट के चीफ जज थे। उनके द्वारा डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी को दे दी गई जिससे "नागवनी"[१] (जम्मू) में हरिसिंह एग्रीकल्चर नामक स्कूल चल रहा है।

---
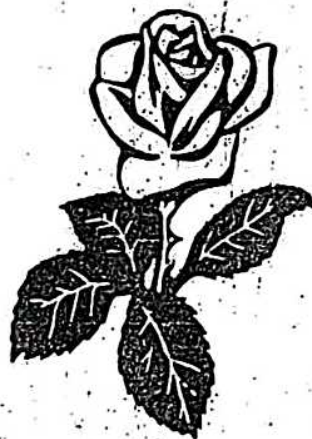
[१] मैं नागवनी स्थित् इस स्कूल में गया हूँ, यहां की प्रबन्ध व्यवस्था बहुत ही अच्छी है, विद्यार्थियों में अनुशासन एवं पढ़ाई की दृष्टि से तो यह स्कूल दूर–दूर तक सारे इलाके भर में प्रसिद्ध है।

[२] महात्मा अमर स्वामी जी महाराज का सन्यास लेने से पूर्व का नाम "श्री ठाकुर अमर सिंह" जी था।

"लाजपतराय अग्रवाल"

"मिथ्या" है, ...जनता में फिर हंसी ....। स्वप्न में मनुष्य वही देखता है जो उसने जगत् में देखा या सुना हुआ होता है। केवल इतना भेद है कि स्वप्न में कोई श्रृंखला नहीं होती हैं वैसे स्वप्न भी मिथ्या नहीं होता है। रेलगाड़ी भी मिथ्या नहीं, हाथी भी मिथ्या नहीं। भाईयों ! मैं कहता हूँ कि अगर ये सब स्वप्न मे नहीं हैं तो जगत् में तो मौजूद हैं कि नहीं ?

सीप में चांदी का भ्रम होता है तो न सीप मिथ्या है न चांदी मिथ्या है। ठीक है सीप में चांदी नहीं है पर क्या संसार में कहीं भी नहीं है–अन्यत्र तो है ही। रस्सी में सांप का भ्रम उसको ही होता है जिसने सांप को देखा हुआ है रस्सी में और सांप में कुछ समता है इस कारण उसका भ्रम हुआ, रस्सी में ऊंट का भ्रम क्यों नहीं हुआ ? जो वस्तु है उसका भ्रम उसके सदृश वस्तु में ही होता है, वस्तु दोनों सत्य हैं सीपी भी सत्य है, चांदी भी सत्य है, रस्सी भी सत्य है, सांप भी सत्य है। मिथ्या अगर कुछ है तो वह केवल आपका विचार है। जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं इसमें इतनी बातें आवश्यक हैं –

(१) प्रतिबिम्ब साकार का साकार में दिखाई देता है निराकार का कोई प्रतिबिम्ब होता ही नहीं।

(२) यह भी आवश्यक है कि जिस वस्तु का प्रतिबिम्ब है वह और जिसमें प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वह ये दोनों एक दूसरे से कुछ दूर होने चाहिए।

ईश्वर निराकार है अतः उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है। ईश्वर और जगत् दोनों एक दूसरे से दूर नहीं हैं इस कारण भी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है। आपने तो प्रमाण कोई दिया नहीं, अब मेरे प्रमाण सुनिए। वेद में कहा है कि–ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं, देखिये –

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जातेः।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद वत्यनश्नन्न्योऽभिचाक शीति।।

एक वृक्ष है, प्रकृति या प्रकृति से बना संसार रूपी जगत् ! उस पर दो पक्षी बैठे हैं, एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा ! इनमें से एक इस जगत् रूपी वृक्ष के फल खाता हैं दूसरा कुछ नहीं खाता वह केवल निरीक्षण करता हैं। वेद नित्य है, वेद का प्रत्येक मंत्र नित्य हैं, मंत्र सदा से हैं, सदा रहेंगे अतः ये तीनों पदार्थ भी सदा रहने वाले अर्थात् नित्य हैं।

स्वामी जी ने गीता भी पढ़ी है या नहीं ? गीता में श्री कृष्ण जी का वचन है कि–**"प्रकृति पुरुषं चैव विद्वनादी"**। प्रकृति और पुरुष अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं। गीता में तीनों पृथक् पृथक हैं, ऐसा कहा गया है, देखो गीता –

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरः उच्यते।।

दो तो यह हैं–एक "क्षर" दूसरा "अक्षर" अर्थात् क्षर, जगत् और अक्षर जीव है।

उत्तमः पुरुषत्वन्यः परमात्म्मयेतिऽयुदाहरत्।
त्रयलोक माविष्य विभर्यत्यय ईश्वरः।।

एक इनसे उत्तम परमात्मा है जो तीनों लोकों में प्रविष्ट है और पालन करता है वह ईश्वर है। जीव भी नित्य है अविनाशी है, आगे देखिये– **"न जायते म्रियते वा कदाचन् ....** अर्थात् यह जीव न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी मरता है, आगे और देखिये– **"न हन्यते हन्यमाने शरीरे.........."** अर्थात् यह

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री स्वामी रामदेव जी –

आर्य समाज के सिद्धान्त, वेदों और शास्त्रों के विरुद्ध हैं और बुद्धि के भी विरुद्ध हैं जैसे-आ समाज मानता है कि–ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि हैं और नित्य हैं। यह मन्तव्य स्वामी दयानन्द जी का बनाया हुआ है वेदों और शास्त्रों से इन तीनों को नित्य और पृथक्–पृथक सिद्ध नहीं किया जा सकता है देखिये –

श्लोकार्धेन प्रविक्षामि, यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या, जीवो ब्रह्मै वनापरः।।

मैं आधे श्लोक में वह बात कहता हूं जो बात करोड़ों ग्रंथों द्वारा कही गई है। वह यह है कि–"**ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है, जीव-ब्रह्म ही है पृथक् दूसरा नहीं है**"। यह ही सत्य सिद्धान्त है आर्यसमाज के तीन–ईश्वर जीव और प्रकृति को पृथक्–पृथक् मानना असत्य है। जगत् स्वप्न की तरह मिथ्या है। चारपाई पर सोया हुआ मनुष्य स्वप्न देखता है, स्वप्न में रेल दिखाई देती है, कभी स्वप्न देखने वाला मनुष्य अपने आपको तथा कभी रेलगाड़ी में बैठा हुआ देखता है, कभी हाथी पर चढ़ा हुआ देखता है पर सब झूठा है मिथ्या है, न वहां रेलगाड़ी है और न वहां हाथी है।

सीप को देखकर मनुष्य को उसमें चांदी दिखाई देती है अर्थात् सीप में चांदी का भ्रम देखने वाले को होता है। कभी रस्सी को मनुष्य सांप समझकर डर जाता है जब उसको यह पता लग जाता है कि यह सांप नहीं है बल्कि रस्सी है तब उसका डर हट जाता है। इस ही प्रकार जगत् का भ्रम है जब यह निश्चय हो जाये कि–"**जगत् है ही नहीं, मैं ब्रह्म ही ब्रह्म हूं, तो निर्भयता आ जाये**"। जीव स्वयं कुछ नहीं है जैसे सूर्य एक है और सौ बर्तनों में पानी डालकर रख दिया जाये तो बर्तनों में सूर्य का पृथक्–पृथक् प्रतिबिम्ब दिखाई देता है इस ही प्रकार एक ब्रह्म के असंख्य प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं परन्तु वह वास्तव में है एक ही।

एक–ईश्वर के साकार होने को आर्यसमाजी लोग नहीं मानते हैं, कुछ पढ़ते लिखते तो हैं नहीं, पढ़ते तो पता लगता कि जब ईश्वर अवतार रुप में आता है तो साकार हो जाता है।

श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री –

शास्त्रार्थ का बड़ा शोर मचा रक्खा था, मैं काशी की शास्त्री परीक्षा पास हूँ और कलकत्ते की वेदतीर्थ परीक्षा पास हूं। वेद शास्त्र दर्शन उपनिषद सब कुछ पढ़ता हूं, सनातनधर्म की ओर से स्वामी जी आये हैं, आपने देख लिया, सुन लिया–स्वामी जी ने न वेद का कोई प्रमाण बोला न किसी शास्त्र का! ये स्वामी जी "**महाराज**" हैं, इनको वेद शास्त्र आदि पढ़ने से क्या प्रयोजन ? भाईयों ! "**महाराज**" जी जो ठहरे ! किसी ने ठीक ही कहा है –

पढ़ना लिखना ब्राह्मण का काम।
भज भज साधो सीता राम।।

इनके विचार में जगत् मिथ्या है, वेद शास्त्र जगत् में हैं वह भी मिथ्या हैं, इनके कम से कम चार जगत्गुरु कहलाते हैं, मिथ्या जगत् के गुरु भी मिथ्या हैं, गुरुगदियां जिनका करोड़ों रुपया बैंकों में जमा है वह भी मिथ्या है, ये स्वयं भी मिथ्या हैं, इनका सनातनधर्म भी मिथ्या है ....जनता में भारी हंसी.................."**ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या**" यह न वेद मंत्र है न किसी शास्त्र का वचन हैं। अतः यह भी

इक्यावनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "ज्वालापुर" (महाविद्यालय) हरिद्वार (उत्तराञ्चल)

दिनांक : ८ अप्रैल सन् १६१२ ई० (सुबह १० बजे)
विषय : वृक्षों में "अभिमानी जीव" है या नहीं ?
(स्थावर में जीव विषयक निर्णय)
वृक्षों में जीव मानने वाले (वादी) शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित गणपति शर्मा जी "तार्किक शिरोमणि"
वृक्षों में जीव न मानने वाले (प्रतिवादी) शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दर्शनानन्द जी (जो पहले श्री पण्डित कृपाराम जी शर्मा ज़गरानवी के नाम से प्रसिद्ध थे)
शास्त्रार्थ के अध्यक्ष : श्री पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा (सम्पादक—भारतोदय)
शास्त्रार्थ के लेखक : श्री पण्डित रलाराम जी,

नोट —

१ इस शास्त्रार्थ की मूल कापी "श्री पण्डित नारायणमुनि जी" महाविद्यालय ज्वालापुर द्वारा प्राप्त हुई हैं, हम उनके हृदय से आभारी हैं।

२. यह शास्त्रार्थ श्री पण्डित गणपतिशर्मा जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

जीव शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता है। और देखो आगे गीता में ही कहा गया है कि–"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि ...." न इस जीव को हथियार काटते हैं, न अग्नि जलाता है, न पानी गलाता है, न वायु सुखाता है। अर्थात् ईश्वर निराकार ही है और वह कभी शरीर धारण नहीं करता है, देखिये- यजुर्वेद अध्याय ४०, मंत्र ८ में उसको "अकायम्" अर्थात् बिना शरीर वाला बताया गया है।

यजुर्वेद में ही उसको "अजायमान्" (अनुत्पद्यमान्) अर्थात् जन्म न लेने वाला कहा गया है। और देखिये यजुर्वेद में ही– "तदन्तरस्यसर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ...." अर्थात् वह परमात्मा सबके भीतर और सबके बाहर विराजमान है। इसलिए उसको–सर्वव्यापक कहा गया है, यही गीता में भी है देखो- "बहिरन्तश्च भूतानाम्.............." वह परमात्मा सबके भीतर और सबके बाहर व्याप्त होने के कारण उसे सर्वव्यापक बताया गया है। सर्वव्यापक वह ही हो सकता है जो निराकार हो, साकार कभी भी सर्वव्यापक नहीं हो सकता। देखिये श्वेताश्वेतर उपनिषद में भी कहा गया है –

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रं पुरुषं महान्तम्।।१०।।

(श्वेताश्वेतर उपनिषद चतुर्थ अध्याय)

अर्थात् उसके पैर नहीं, उसके हाथ नहीं, पर वह परमात्मा बिना हाथ व पैर के ही सब काम करता है, बिना आंखों के देखता है और बिना कानों के सुनता है, आदि। तुलसीदास जी ने भी कहा है –

बिन पग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिन कर्म करै विधि नाना।।

आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
गृह घ्राण बिनु वास अशेखा।।

कहिये स्वामी जी महाराज! वेद और शास्त्र तो आपने नहीं पढ़ें परन्तु तुलसीकृत रामायण भी कभी पढ़ी है कि नहीं? .... बीच में ही ....,

नोट –

बस! शास्त्री जी इतना बोल ही रहे थे कि स्वामी रामदेव जी आदि सब उठकर भागे, तथा गर्जना करते हुए व शोर मचाते हुए यह कहते हुए कि–"हमारा अपमान होता है"। जो उनकी हार का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

"सत्यमेव जयते नानृतम्............"
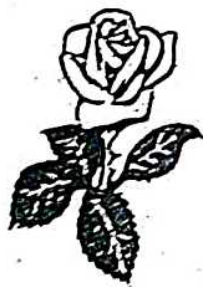
शास्त्रार्थ से पहले

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी का यह अन्तिम और अभूतपूर्व शास्त्रार्थ, जिन महाशयों ने स्वयं सुना था वे तो अब तक उस समय को याद कर करके सिर धुन रहे हैं, और यह सोच कर कि अब ऐसा अवसर फिर इस जन्म में नहीं मिलेगा, अपने को धन्य समझ रहे हैं कि सौभाग्य से ही यह सुयोग हमें प्राप्त हो गया था। आर्यसमाज के दो अप्रतिम तार्किक, निरुपमवक्ता, अद्वितीयशास्त्रार्थकर्ता, अलौकिकप्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्वविद्वान तथा प्रतिवादिभयंकर वाग्भटट् उपदेशक प्रवरों के संवादसंगर देखने और श्रवणसुधावर्षी वाग्विवास सुनने का अलभ्य लाभ मिल गया।

आहा ! सचमुच ही वह कैसा विचित्र समय और पवित्र अवसर था, महाविद्यालय की सुरम्य भूमि के समीप विशाल बाग में कुदरती शामियाने के नीचे हजारों मनुष्यों का समाज जुटा है, एक ओर पीतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी समूह, पंक्ति बांधें शान्तभाव से, पर उत्कर्ण हुआ, अपने आसन पर आसीन है, दूसरी ओर गैरिक रागरञ्जित वेशविभूषित पर विराग सम्पन्न अनेक सम्प्रदायों के साधु महात्माजन जिन जीवन्मुक्तायमानों को विवादसंगर विद्वक्षा और शास्त्रार्थशुश्रुषा खींच लाई है, आसन मारे विराजमान हैं। शेष श्रोतृ मण्डल फर्श पर परा बांधे डटा हुआ है, कोई नोट लेने के लिए चाकू निकाले पैन्सिल घड़ रहा है। कोई काग़ज के दस्ते संभाल रहा है, कोई अपने पाकिटबुक के पन्ने उलट रहा है, कोई किसी से काग़ज पेन्सिल मांग रहा है, कोई बार–बार घड़ी निकालकर देख रहा है, कोई वक्त पूछ रहा है, शास्त्रार्थ शुरु होने में अभी कुछ देर है, पर श्रोता अभी से उतावले तथा बेसब्रे हो रहे हैं, उन्हें एक–एक मिनट भारी हो रहा है, बैठे–बैठे गर्दन उठा उठा कर देख रहे हैं कि पण्डित जी और स्वामी जी आते तो नहीं। निदान जिस घड़ी का इन्तजार था वह आई और सुनने वालों की दिली कशिश इन्तज़ार के बढ़े हुए तार में खींचकर वाग्भट्ट वीरों की जुगल जोड़ी को सभा मण्डप में ले आई। ठीक निर्दिष्ट समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, और जिस प्रकार हुआ, वह आगे देखिये। परन्तु प्रिय पाठक ! इन शब्दों में वह अलौकिक–आनन्द कहां ? जो उस समय वक्ताओं के धारा प्रवाह मधुर भाषणों से टपक रहा था, यह समझिये कि सुधारस–निष्पन्दी, भाषणनद, बड़े प्रबल वेग से बह रहा था, जिसमें गोते खाते हुए, श्रोतृजन भी साथ–साथ बहे जा रहे थे, कई महाशय जो उस समृद्ध नद को कागज पैन्सल के छोटे–छोटे पत्रों में भरना चाहते थे, देखते रह गये ! क्योंकि **"दरया को कूजे में बन्द करना"** हर एक का काम नहीं है।

हमारे मित्र पण्डित रलाराम जी की लेखनपटुता और आशुग्राहिता प्रशंसनीय है कि उन्हेंने उस प्रबल प्रवाह में से इन रले हुए मोतियों को रोल कर इकट्ठा कर लिया, और उनसे यह सुन्दर काण्ड बना कर प्रस्तुत कर दिया, जो प्रिय पाठकों के कमनीय–काण्ड में समर्पित है। इस शास्त्रार्थ–मोक्तिकमाला निर्माण का सारा श्रेय **"पण्डित रलाराम"** जी को ही है। इसके लिए पाठकों को उनका ही कृतज्ञ होना चाहिए। **"भारतोदय"** अपने प्रिय पण्डित जी की इस अन्तिम यादगार को सुरक्षित दशा में सर्व साधारण के सम्मुख रख कर, बड़ा ही हर्ष अनुभव कर रहा है।

शास्त्रार्थ की पाण्डुलिपि (नोटों) के आधार पर, पण्डित जी के सामने ही प्रस्तुत हो चुकी थी। जब अन्तिम बार वह पंजाब जा रहे थे, तब निवेदन किया कि महाराज ! इसे सुनकर तसदीक़ कर दीजिए, कुछ भाग सुना, और कहा कि अबकी बार आकर सब सुनेंगे, पर अफसोस ! ऐसे गये कि अब तक न लौटे।।

विचार था कि वादी–प्रतिवादी, दोनों महोदयों को एक बार सुना कर तब इस "अपूर्व शास्त्रार्थ"

को प्रकाशित किया जाये, किन्तु दुःख है कि दुर्दैव ने यह इरादा पूरा न होने दिया, ईश्वर की कृपा है कि– "**प्रतिवादी**" अभी मौजूद हैं, पर हाय "**वादी**" को कहां से लायें ? अब तो यह कहने का मौका भी नहीं रहा कि –

"लोग कुछ पूछने को आये हैं। अहले मय्यत ज़नाज़ा ठहरायें"।।

ओह ! संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है ? कुछ ठिकाना है, यारो ! कल ही की तो बात है कि हम तुम सब इस अपूर्व शास्त्रार्थ–नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद प्रतिवाद की ज़बरदस्त लहरें, कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठा कर फेंक रहीं थी, किसी एक तट पर जमकर बैठना थोड़ी देर के लिए भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते अपूर्व आनन्द पाते थे। और यही चाहते थे कि इसी प्रकार हर्ष–पयोधि में हिलोरें लेते रहें ! आहा ! वह दृश्य, अब तक आंखों में घूम रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध गम्भीर ध्वनि कानों में गूंज रही है, वह दिव्य दृश्य हृदय पर अब तक अंकित है, जिसे स्मृति की आंखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं "**ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था**"।। प्रत्यक्ष, परोक्ष और वर्तमान, अतीत हो गया, साक्षात् अनुभव का विषय स्मृति मात्र रह गया, जिसे आंखों से देख और कानों से सुन रहे थे वह सिर्फ़ सोचने और याद करने के लायक रह गया। आह ! ऐसा समय क्या कभी इस जन्म में फिर देखने को मिलेगा ? उस शान्त पावन मूर्ति के फिर भी दर्शन हो सकेंगे ? इन कानों से वे विचित्र बातें फिर सुन सकेंगे ? किसी ने सच ही कहा है कि –"**मनुष्य अपने चित्त पट पर नाना भाव और अनेक "विचार रुपी रंगों" से मनोरथ चित्र बना कर तैयार करता है, और विधि एक नादान बच्चे की तरह हाथ फेर कर उसे मेट देता है**"। किसी ने ठीक ही कहा है कि–"**मेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के मन और............**" आगामी वर्ष के लिए जिन–जिन महोदयों के साथ जिस–जिस विषय पर शास्त्रार्थ और संवाद करने का प्रोग्राम पण्डित जी बना रहे थे, वह यों ही बना का बना ही रह गया। सुनने वालों के दिल की दिल ही में रह गई, अफ़सोस !

यह आरज़ू थी, तुझे गुल के रुबरू करते।
हम और बुलबुल बे ताब गुफ्तगु करते।।

होने को अब भी सब कुछ होगा, उत्सव होगा, व्याख्यान होंगे और शास्त्रार्थ भी होगा, सभा जुटेगी, श्रोता आयेंगे, कहने वाले कहेंगे, सुनने वाले सुनेंगे, वक्ता की वाणी से निकले हुए शब्द श्रोताओं के इस कान से उसमें होकर निकल जायेंगे, "**पल्लाझाड़**" कथा सुनकर उठ खड़े होंगे ! परन्तु –

कहने सुनने की गर्मे बाज़ारी है, मुश्किल है मगर असर पराये दिल में।
ऐसा सुनिये कि कहने वाला उभरे, ऐसी कहिये कि बैठ जाए दिल में ।।

दिल में बैठने वाली बात कहने वाला, मिलना मुश्किल है। अनेक शास्त्रार्थ देखे, और बहुतेरी वक्तृतायें सुनी, पर ऐसा प्रतिभाशाली आह्वान् और मधुरभाषी, शास्त्रीय विषयों का सुवक्ता, विचित्र व्याख्याता हमारे देखने में तो आया नही, और आगे आशा भी नहीं है। उनके सम्बन्ध में महाकवि "**शंकर**" की निम्न पंक्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं –

मानो न अलोक भूमिकम्प ही से कांपता है, विद्युतादि - वेगों से पहाड़ हिलता नहीं,।
भानु का प्रकाश भव्य कारण विकास का है, तारों की चमक पाय "पद्म" खिलता नहीं ।।१।।
"शंकर" रबीली कड़ी रेती रेत डालती है, क्षुद्र छुरी छेनियों से हीरा छिलता नहीं।
हाय "गणपति" की अनूठी वक्तृता के बिना, अन्य उपदेश सुने, स्वाद मिलता नहीं।। २।।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

ओ३म् तत्सद् ब्रह्मणे नमः

अब आज इस बात पर विचार होगा कि वृक्षों में **"अभिमानी जीव"** है या नहीं ? मेरा मत यह है कि वृक्षों में अभिमानी जीव है। सबसे पहले मैं इस विषय में वेद का प्रमाण देता हूं क्योंकि हम लोग आस्तिक हैं, और आस्तिकों के लिए **"वेद"** सबसे बढ़कर प्रमाण है। अतः वेद का प्रमाण पेश करता हूं। "अथर्ववेद" के प्रथम कांड के अनुवाक ६, सूक्त ३२, मन्त्र १ में देखौं –

"इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति न तत्पृथिव्यां नो दिवि" येन प्राणन्ति वीरुधः।

इस मन्त्र में **"येन प्राणन्ति वीरुधः"** का अर्थ है कि –**"जिससे (वीरुधः) लताएँ-बेलें जीव को धारण करती हैं"** इससे यह पाया जाता है कि– **"वृक्षों में जीव है"** क्योंकि लताएं वृक्ष–जात्यन्तर्गत हैं। देखिये वेद का दूसरा प्रमाण –

"जीवला न धारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्.........."

(अथर्ववेद–काण्ड ८, अनुवाक ४, मन्त्र ६)

यहां **"जीवन्तीमोषधीमहम्"** –अर्थात् **"जीती हुई औषधि को"** इस प्रकार लिखा है, औषधि का **"जीना"** बिना जीव के नहीं हो सकता–अब इन दो वेद मन्त्रों के प्रमाण के पश्चात् **"छान्दोग्योपनिषत्"** का प्रमाण पेश करता हूं – **"अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य यो मूले म्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्ये भ्याहन्याज्जीवन्, स्रवेद्यो ग्रे म्याहन्याज्जीवन्, स्त्रवेत्सएष" "जीवेना" त्मनानुप्रभूतः पेपीयमान मोदमानास्तिष्ठति।। १।। अस्य यदेका शाखां "जीवो" जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति, सर्व जहाति सर्वः शुष्यति।। २।। एवमेव खलु सोम्य ! विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते इति** .... इत्यादि।।

इसका अर्थ–हे सोम्य ! इस बड़े भारी वृक्ष को यदि मूल से काटें तो जीता हुआ स्रवण करता है (रस–दूध आदि के टपकने से तात्पर्य है), यदि मध्य भाग को काटा जाये तो जीता हुआ स्रवण (टपकता है) करता है। यदि अग्रभाग (टहनी आदि) में काटा जाये तो जीता हुआ स्रवण करता है। इस रस आदि के टपकने से यह प्रतीत होता है कि यह वृक्ष जीवात्मा से **(अनुप्रभूतः)** व्याप्त या अधिष्ठित हुआ **(पेपीयमानः)** जल को तथा पृथिवी के रसों को अत्यर्थ (बहुत) पीता हुआ और लहलहाता रहता है और जब **"जीव"** इस (वृक्ष) की एक शाखा को छोड़ता है तब वह सूख जाती है। जब दूसरी को छोड़ता है तो वह भी सूख जाती है, जब तीसरी को छोड़ता है तो तीसरी सूख जाती है, यदि सारे पेड़ को छोड़ जाता है तो सारा पेड़ सूख जाता है। हे सोम्य ! इस प्रकार (जैसे कि, पेड़ जीव से युक्त होकर रस आदि को भूमि में से जड़ों द्वारा पी–पी कर हरा भरा रहता है और जीव के अलग हो जाने से सूख जाता है) यह (हमारा) शरीर, जीव से रहित हुआ निश्चय पूर्वक मर जाता है, पर जीव नहीं मरता...........इत्यादि।। इससे यह आया कि –**"वृक्षों में जीव है"**। यह तीन श्रुति के प्रमाण हुए, अब स्मृति का प्रमाण देता हूं देखो ! **"मनुस्मृति"** अध्याय एक, श्लोक ४१, से ५० तक–

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजंगमम्।। ४१।।

एवमेतैरिति-एवमित्युक्तप्रकारेण एतैर्मरीच्यादिभिरिदं सर्वं स्थावरजंगम् सृष्टम्। यथाकर्म यस्य जन्तोर्यादृशं कर्म तदनुरूपम् इत्यादि ....।।

भावार्थ–इस प्रकार मरीचि आदि ने सब "स्थावर" (वृक्ष लता) आदि "जंगम" (पशुपक्षी) आदि संसार बनाया, यह नहीं कि यों ही अंट–संट बनाया, किन्तु (यथाकर्म) जिस जन्तु (जीव) का जैसा कर्म था उसी कर्म के अनुसार उसको तत्तद्‌योनि में पैदा किया........... इत्यादि। इससे यही सिद्ध होता है कि जन्तु अपने कर्मों के अनुसार जंगम और स्थावर रूप सभी योनियों मे जन्म लेता है, रहता है, तथा मरता है।

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्।
तत्तथा वोऽभिधास्यामि कर्मयोगं च जन्मनि।। ४२।।

इस श्लोक में यह प्रतिज्ञा करके कि **"प्राणी किस-किस योनि में किस-किस कर्म के अनुसार कैसा-कैसा जन्म लेते हैं ? वह आगे कहता हूं"** मनु महाराज कहते हैं –

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदत्तः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः।। ४३।।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्चकच्छपाः।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च।। ४४।।

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्।। ४५।।

ऊपर लिखे इन–इन तीनों श्लोकों में **"जरायुज्ज"**, अण्डज और स्वेदजों की उत्पत्ति बता कर आगे –

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्ड प्ररोहिणः।
औषध्यः फलपाकान्ता बहु पुष्प फलोपगाः।। ४६।।

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पत्यः स्मृताः।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः।। ४७।।

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च।। ४८।।

इन तीनों श्लोकों में नाना प्रकार के वृक्षों, बेलों तथा वनस्पतियों की उत्पति का वर्णन किया है अर्थात् इन योनियों में भी गुण कर्मानुसार जीव जन्म लेता है, तदनन्तर, यह शंका उत्पन्न होने पर कि **"यदि जीव इनमें जन्म लेता है तो चेतनता की प्रतीति हमें क्यों नहीं होती"** ? मनु महाराज उत्तर देते हैं –

तमसा बहुरुपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।। ४६।।

इसका अर्थ श्रीमत्कुल्लूक भट्ट करते हैं कि – **"ये वृक्ष लता आदि तमोगुण से व्याप्त और सुखदुःख से युक्त होकर अन्तःसंज्ञ"** अर्थात् अन्तरश्चेतन्य होते हैं और यह तमोगुण उनके अधर्मकर्मों (धर्म विरुद्ध कर्मों) से उत्पन्न होता है और नाना दुःखरूपफलों का देने वाला होता है यद्यपि सब शरीर धारी अन्तश्चैतन्य ही होते हैं अर्थात् शरीर के अन्दर ही ज्ञान का अनुभव करते हैं तो भी वृक्ष आदि को हमारे समान बाहर की ओर व्यापार आदि काम न करने से "अन्त संज्ञ" कहा जाता है। यद्यपि **"वृक्षाभिमानी जीव"** भी

"**सत्**", "**रजः**" और "**तम**" इन तीनों गुणों से युक्त होता है तथापि तमोगुण की अधिकता के कारण तमोगुण से व्याप्त माना जाता है, इसीलिए सुख और दुःख दोनों को ही अनुभव करता है क्योंकि मेघों से बरसे हुए जल के स्पर्श से (वृक्षों को) सुख भी अवश्य होता है (ऐसा सभी को प्रतीत होता है)। इसी प्रकार –

एतदन्तारस्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः।
घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि।। ५०।।

अर्थ–ब्रह्मा से लेकर स्थावर (वृक्ष आदि) पर्यन्त यह सब जीव की उत्पत्ति के स्थान हैं इत्यादि इस प्रकरण से यह बात सुस्पष्ट है कि मनु महाराज़ भी "**वृक्षों में जीव**" का होना मानते हैं, तथा यह, श्रुति के अनुकूल होने से मान्य हैं। इस प्रकार दो "**श्रुति**" के, एक "**छान्दोग्योपनिषद**" का प्रमाण, तथा यह "**मनुस्मृति**" का प्रकरण, इस बात को सिद्ध करते हैं कि– "**वृक्षों में जीव है**"।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

जो दो मन्त्र "**अथर्ववेद**" के प्रमाण रूप में पेश किए गये हैं उनका अर्थ ठीक नहीं–जो अर्थ पण्डित जी ने किया है वह पण्डित भीमसैन का किया हुआ है अतः स्वीकार नहीं हो सकता। मैं श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का अर्थ सुनाता हूं–दो प्रकार की हरकत "**गति**" होती है–"**हरकते-इरादी**" और "**हरकते-इन्तजामी**" अर्थात् "**विशेषगति**" और "**सामान्यगति**"। इसलिए "**येन प्राणन्तिवीरुध**" में जिस परमात्मा की शक्ति से "**लताएं प्राण धारण करती हैं**" ऐसा अर्थ है। संसार के सूर्य, चांद आदि सब पदार्थ परमात्मा की "**सामान्यगति**" (हरक़ते–इन्तज़ामी) से हरकत करते हैं न कि उनमें कोई अभिमानी जीव है जिस (जीव) की "**हरकते-इरादी**" से कि वे घूमते हों तथा लताएं प्राण धारण करती हों। जैसे एक मनुष्य के शरीर में जो गति (हरक़त) पाई जाती है यह "**हरक़ते इरादी**" कहलाती है, क्योंकि पुरुष उसे अपने इरादे (इच्छा) से करता है। मनुष्य के शरीर में जो खूंन की हरकत है वह "**हरकते-इन्तजामी**" है, क्योंकि परमात्मा के प्रबन्ध से लहू की गति होती है, या जो मनुष्य की बनाई घड़ी में हरकत है वह "**हरकते-इन्तजामी**" है–इसी प्रकार लताओं में "**प्राण धारण**"– रूप–गति (हरक़त) परमात्मा की "**हरकते-इन्तजामी**" (सामान्यगति) से अभिप्रैत है। इसी प्रकार "**जीवन्ती-मोषधीम्**" इस मन्त्र में भी सामान्य जीवन से तात्पर्य है। अतएव वेदविरुद्ध स्मृति भी अप्रमाण है। "**वृक्षों में जीव**" के होने के विरुद्ध, मैं भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का प्रमाण देता हूं, देखो तीसरी बार की छपी–"**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" – पुरुषसूक्त, मन्त्र ४, पृष्ठ १२२ –

त्रिपादूर्ध्व उदेत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विश्वं व्यक्रामत् "साशनानशने" अभिः।।

इस मन्त्र के "**साशनानशने**" पद का अर्थ लिखते हैं कि–(**ततोविश्व०**) **ततस्तत्सामथ्यत्** सर्वमिदं "**विश्वमुत्पद्यते**" **किञ्च तत् ? (साशनानशने०) यदेकमशनेन, भोजनकरणेन सह वर्त्तमानं** जंगम **जीवचेतनादिसहितं जगत् द्वितीयमनशनमविद् यमानमशनं भोजनं यस्मिंस्तत् पृथिव्यादिकं च यज्जड़म् जीवसम्बन्ध रहितम् ज़गदवर्त्तते, तदुभ्यम् तस्मादित्यादि**"

अर्थात् उस परमात्मा के सामर्थ्य से यह सब संसार उत्पन्न होता है। कौन–कौन सा ?– एक वह जो भोजन करता है, जिसे "**जंगम**" जीव चेतना आदि से युक्त जगत् कहते हैं, और दूसरा वह जो भोजन नहीं करता, जैसे "**पृथिव्यादि**" जड़ जो कि जीव के सम्बन्ध से रहित जगत् है, यह दोनों प्रकार का जगत् पुरुष (परमात्मा) के सामर्थ्य कारण से उत्पन्न होता है। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज इस "**अनशन**" शब्द के भाष्य में "**जीव-सम्बन्धरहितम् पृथिव्यादिकं जड़म्**" लिखते हैं अर्थात् जीव के सम्बन्ध से जो रहित हो वह "**जड़**" कहलाता हैं और वह पृथिव्यादिक है, सो "**पृथिव्यादि**" पद में "**आदि**"

पद से पृथिवी के कार्य "**वृक्ष**" आदि भी पृथिवी के अन्तर्गत होने से जीव से रहित हैं क्योंकि पृथिवी जीव से रहित है अतएव जड़ है। तथा "**वेद**" में भी "**जीव**" का अभाव "**वृक्षों**" में पाया जाता है। देखो–

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँ रधराँ अवातिरन्मरुत्वान्तं सख्याय हवामहे।। ५।।

(ऋग्वेद, मण्डल १, अष्टक १, अध्याय ७, वर्ग १२)

इस मन्त्र में "**जगतः प्राणतः**" ऐसा लिखा है, अर्थात् जो परमात्मा प्राण धारण करने वाले समस्त जगत का या "**विश्वस्य जगतः**" गतिशील संसार का पति है। "**जगत्**" को प्राण धारण करने वाला "**विशेषण**" देना यह सिद्ध करता है कि जो गतिमान् नहीं है, वह प्राण धारण भी नहीं करता, या जो प्राण धारण करता है वह गतिमान् है। सो "**वृक्ष**" गतिमान् नहीं हैं, अतएव वृक्ष "**प्राणी**" भी नहीं है,* और "**सजीव**" भी नहीं है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

"**येन प्राणन्ति वीरुध**" में सामान्यगति (हरकते–इन्तज़ामी) का कोई ज़िकर तक नहीं, स्वामी जी को कोई कारण बताना चाहिए कि मुख्यार्थ अर्थात् विशेष–"**प्राणन्**" को छोड़ कर क्यों "**गौण प्राणन्**" का आश्रयन् किया जाये ? इसी प्रकार "**औषधि**" के लिए भी जो "**जीवन्तीम्**" विशेषण आया है, वहां भी सामान्यगति (हरकते–इन्तज़ामी) का प्रकरण नहीं है। वह अर्थ पण्डित भीमसेन जी का पेटेन्ट नहीं है। जब तक उस अर्थ में कोई दोष न दिखाया जाये, वह मान्य है। तथा जो "**साशनानशने**" पद के भाष्य में से "**पृथिव्यादि**" पद के अन्तर्वर्त्ती "**आदि**" पद से "**वृक्ष लता**" आदि का ग्रहण आप करते हैं, वह ठीक नहीं हैं, वहां "**आदि**" पद से "**जल तथा वायु**" आदि का ग्रहण होता है, यदि ग्रहण न कर आप "**वृक्ष**" आदि अर्थ लेने लगेंगे तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में पूर्वापर विरोध हो जायेगा, क्योंकि वह "**वृक्षों में जीव को मानते हैं**"। देखो सत्यार्थ प्रकाश, नवीं बार का छपा हुआ, पृष्ठ २३५, –

प्रश्न– ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को "**वृक्षादि**" कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं, । इत्यादि।

यहां स्पष्टतया "**वृक्ष आदि**" का जन्म स्वीकार करते हैं, इससे यह पाया जाता है कि परमात्मा जीवों को, उनके कर्मानुसार वृक्ष आदि योनियों में भी जन्म देता है अतः यहां (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में) "**आदि**" पद से "**वृक्ष**" आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए–अन्यथा श्री स्वामी जी के लेख में पूर्वापर विरोध होगा। तथा जिस प्रकार आप बिना किसी कारण या प्रकरण के, मेरे प्रमाण रूपेणोपन्यस्त वेदमन्त्रों में प्रधान अर्थ को छोड़कर, और (सामान्य प्राणन्) हरकते इन्तज़ामी का अवलम्बन कर, "**गौण**" अर्थ को स्वीकार करते हैं, इसी प्रकार मैं भी, आपके प्रमाणरूप "**साशनानशने**" पद की व्याख्या में "**पृथिव्यादि**" पद से लिए गये "**वृक्षादि**" पदार्थों की जड़ता को यदि "**गौण**" कहकर टाल दूँ तो आप क्या कहेंगे ? अन्यथा बताइये कि क्यों नहीं "**वृक्ष**" आदि की गौण जड़ता मानी जाये ? क्योंकि "**जड़**" शब्द का प्रयोग "**चेतन**" और "**अचेतन**" दोनों के लिए पाया जाता है। देखो ! श्री भर्तृहरि जी क्या कहते हैं ? "**जाड्यं धियो हरति.......**" कि सत्संग "**बुद्धि**" की जड़ता को हरता है– "**बुद्धि**" की जड़ता कैसी ? श्री गौतम महाराज कहते हैं कि –"**बुद्धिरुपलब्धिज्ञ नमित्यनर्थान्तरम्**" – बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये एक ही पदार्थ के नाम हैं। फिर श्री भर्तृहरि जी "**बुद्धि की जड़ता**" कैसे कहते हैं ? "**ज्ञान की जड़ता**" ! "**प्रकाश का अंधेरा**" !! यह परस्पर विरुद्ध धर्म क्यों

नोट – * देखिये यहाँ कहा है कि–"**वृक्ष प्राणी भी नहीं है**"।

कर सम्बन्धी हो गये ? इससे यही पाया जाता है, कि – "जड़" शब्द का प्रयोग चेतन और अचेतन दोनों के लिए आता है, अतः श्री भर्तृहरि जी के वाक्य में **"बुद्धि की जड़ता"** से अभिप्राय **"मात्र"** कुण्ठता से है। और यहां आपके मतानुसार **"पृथिव्यादि"** पद के **"आदि"** पद से गृहीत जो **"वृक्ष"** आदि पदार्थ हैं, उनकी जड़ता का अभिप्राय जीवाभाव नहीं किन्तु बाह्यज्ञानाभाव है, क्योंकि वृक्ष वे **"अन्तः संज्ञ"** होते हैं, यदि ऐसा प्रकरण आदि की अपेक्षा न कर, किया जाये तो क्या वह आपको अभीष्ट होगा ? यदि नहीं तो, फिर मेरे पक्ष में, **"सामान्य"** अर्थात् गौण अर्थ हो और आपके पक्ष में **"प्रधान"**। यह कहां का न्याय है ? इस **"अर्द्धजरतीय"** न्याय का अवलम्बन क्यों किया जाये ?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

"Soul"– आत्मा और "Life", प्राण में भेद है। मनुष्य में Soul आत्मा और Life प्राण दोनों हैं। **"वृक्षों में केवल Life "प्राण*" है Soul "आत्मा" नहीं"**। अब **"येन प्राणन्ति वीरुधः"** में साक्षात् Life **"प्राण"** का निरुपण है तो जिस परमात्मा की शक्ति से लताएं प्राण धारण करती हैं अर्थात् जिसकी **"हरकते इन्तजामी"** से लताएं (बेलें) **"प्राण अर्थात् श्वास लेती हैं"** यह अर्थ हुआ, न कि कोई जीवात्मा अपनी **"हरकते इरादी"** से सांस ले रहा है, क्योंकि किसी जीवात्मा का यहां प्रकरण नहीं, परमात्मा का तो प्रकरण है क्योंकि –

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः।।

इसका अर्थ यों है कि हे लोगो ! उस **"महाब्रह्म"** को जानो, जिसके विषय में मैं तुमसे कहता हूँ .... इस प्रकार महाब्रह्म का प्रकरण उठाकर कहा है कि–**येन**..........जिस परमेश्वर की **"हरकते इन्तजामी"** से लताएँ प्राण धारण करती हैं। अतः इस प्रकार हमने प्रकरण के अनुकूल ही गौण अर्थ किया है। इसी प्रकार दूसरे मन्त्र **"जीवन्तीमोषधीम्"** में भी **"जीवन्तीम्"** शब्द आया है जो कि **"जीव-प्राणने"** धातु से बना है, **"जीव"** धातु का अर्थ **"प्राण"** अर्थात् श्वास लेना है अतः **"जीवन्तीम्"** पद का अर्थ हुआ **"जीती हुई (औषधी) को"** अर्थात् **"प्राण धारण करती हुई को"**, सो यहाँ भी **"प्राणन्"** मात्र का प्रकरण है, न कि किसी जीवात्मा का। और औषधी का प्राण धारण करना **"हरकते-इन्तजामी"** से है न कि किसी जीवात्मा की **"हरकते-इरादी"** से। तथा **"सत्यार्थ प्रकाश"** में से जो वृक्षादि शब्द को लेकर, आप वृक्षों में जीव का होना (श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मत के अनुसार है) ऐसा सिद्ध करते हैं वह ठीक नहीं, क्योंकि **"वृक्षादि"** शब्द **"क्रम विरुद्ध"** होने से प्रक्षिप्त है। **"प्रक्षिप्त"** पद की पहचान यह है कि जिस शब्द के निकाल डालने से अर्थ में कोई क्षति या भेद (फरक) न आये और रहने से किसी प्रकार का दोष होता हो, वह **"प्रक्षिप्त"** है। यहाँ **"वृक्षादि"** पद के निकाल देने से कोई फरक अर्थ (मायनों) में नहीं आता प्रत्युत क्रम ठीक हो जाता है और रहने से **"क्रमविरोध"** रुप दोष रहता है। तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के **"साशनानशने"** पद के भाष्य से विरोध हो जाता है–अतः **"वृक्षादि"** शब्द यहाँ प्रक्षिप्त है। **"क्रमविरोध"** दिखाता हूँ, देखो सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३५–

प्रश्न– ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि, कृमि कीट पतंगादि जन्म दिए हैं।

नोट –

* पूर्व पंक्तियों में कहा है कि – "वृक्ष प्राणी भी नहीं हैं, और अब कहा है कि– "वृक्षों में प्राण है आत्मा नहीं"। इससे श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के वाक्यों में परस्पर विरोध अर्थात् "वदतोव्याघात् दोष" आता है। "अमर स्वामी सरस्वती"

यहाँ जंगम सृष्टि की जन्म सम्बन्धिनी विलक्षणता के उपन्यास से, ईश्वर में अन्याय आदि दोषों की आशंका करते–करते **"हरिण–गाय"** आदि पशु, के पश्चात् **"कृमि, कीट, पतंग"** आदि कहना चाहिये था क्योंकि पहले और अन्त में जंगमसृष्टि का प्रकरण है बीच में **"वृक्षादि"** पद असम्बद्ध है क्योंकि वृक्षादि स्थावर है जंगमों में एक दम कूद कर स्थावर का आना क्रम को तोड़ देता है अतः प्रक्षिप्त है। एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के **"साशनानशने"** पद के भाष्य से विरोध हो जाता है क्योंकि वहाँ **"पृथिव्यादिकं जीवसम्बन्धरहितं जड़म्"** अर्थात् पृथिवी वृक्ष आदि को जीव के सम्बन्ध से रहित **"जड़"** लिखा है। यदि **"सत्यार्थप्रकाश"** में **"वृक्षादि"** पद प्रक्षिप्त न माना जाये तो वृक्षादि के जन्म का प्रतिपादक ग्रन्थ होने से जड़ प्रतिपादक ग्रन्थ से विरोध हो जायेगा और यह समान कर्तक ग्रन्थों में नहीं होना चाहिए परन्तु **"वृक्षादि"** पद के निकाल डालने से क्रमविरोध और पूर्वापरविरोध दोनों दोषों की निवृत्ति हो जाती है। इसलिए यह **"वृक्षादि"** शब्द प्रक्षिप्त है। अतएव च श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में **"पूर्वापरविरोध"** रूप दोष के परिहार के लिए **"वृक्षादि"** पद को निकाल डालना चाहिए, न कि **"साशनानशने"** पद के भाष्य में लिए गए **"पृथिव्यादि"** पद के **"आदि"** पद से वृक्षादि अर्थ न लेना चाहिए। अर्थात् **"वृक्षादि"** अर्थ अवश्य लेना चाहिए। इसी प्रकार **"वेदान्तदर्शन"** (शारीरिक–भाष्य) में भी वृक्षादि में मुख्य ओर गोण जीवात्मा के होने के विषय में सिद्धांत किया है कि वृक्षों में **"मुख्य"** जीव नहीं है किन्तु **"गोण"** अर्थात् **"अनुशायी"** (?) जीव हैं। गूलर के फलों में जो कीड़े रहते हैं वे **"अनुशायी"** (?) जीव हैं अर्थात् वृक्षादि के अभिमानी जीव न होकर जो केवल बसेरा मात्र लेते हैं वे **"अनुशायी"** (?) जीव कहलाते हैं जैसे मनुष्य के शरीर में अहंभाव वाला जीवात्मा तो **"अभिमानी"** जीव है और इस शरीर में यूका (जूं) आदि **"अनुशायी"** (?) जीव है। देखो–

"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्।........................."

(वेदान्तसूत्र, अध्याय ३, पाद १ सूक्त् २४,)

इस सूत्र का शारीरिकभाष्य (उत्तर–पक्ष) **"ब्रीह् यादिषु संर्सगमात्रमनुशायिनः" (?) "प्रतिपद्यन्ते"** बर्थात् ब्रीहि (धान) आदि में –**"अनुशायी"** (?) जीव सम्बन्धमात्र रखते हैं –

इस वेदान्त सूत्र तथा भाष्य के प्रमाण से भी यही पाया जाता है कि वृक्षों में **"अभिमानी"** जीव नहीं है। श्री कणाद महर्षि जी भी वृक्षों में जीवात्मा को नहीं मानते। देखो। वैशेषिकदर्शन –

"तत्पुनः पृथिव्यादि कार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्"।।१।।

(अध्याय ४, द्वितीय मान्हिकम्)

अर्थात् पृथिवी आदि कार्य द्रव्य भी **"शरीर" "इन्द्रिय"** और **"विषय"** इन भेदों से तीन प्रकार का है। इस सूत्र पर **"प्रशस्तपाद-भाष्य"**, में व्याख्या देखो –

"त्रिविधञ्चास्याः कार्य शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्...........तत्र शरीरं द्विविधं, योनिजमयोनिजम्... ......इन्द्रियं गन्ध व्यञ्जक विषयस्तु द्रव्यणुकादिप्रक्रमेणारब्धस्त्रिविधो मृत्पाषाण-स्थावर-लक्षणः तत्र भूप्रदेशाः प्राकारेष्टि कादयो मृद्विकाराः, पाषाणा उपलमणिवज्रादयः, स्थावरास्तृण-गुल्मौषधि, तरु लता- वितान- वनस्पतय इति।"

इस भाष्य में शरीर, इन्द्रिय और विषय को पृथक्–पृथक् माना है, परन्तु यह तीनों पृथ्वी के कार्य हैं, और पृथिवी **"जड़"** है। अतः ये भी जड़ हैं, **"भोगायतनम् शरीरम्"** भोग का आश्रय, **"शरीर"** कहलाता है भोग के साधन **"इन्द्रिय"** हैं **"विषय भोग्य"** अर्थात् भोग में आने वाली वस्तु को कहते हैं। यहां पृथ्वी के विकार रूप जो विषय हैं, श्री प्रशस्तपादाचार्य, श्री कणाद महर्षि के दर्शन के भाष्य में बताते हैं कि वे (विषय)

तृण (घास) आदि हैं। अब इन विषयों को, जो कि भोग्य हैं। यदि **"शरीर"** मान लिया जाये तो ! क्योंकि जब वृक्षों में **"अभिमानी"** जीवात्मा माना जायेगा तो यह वृक्ष आदि उस (जीवात्मा) के शरीर होंगे, यह वैशेषिक दर्शन से विरोध होगा, क्योंकि **"शरीर"** और **"विषय"** में भेद है (विषय) अर्थात् भोग्य पदार्थ भोग का आश्रय (शरीर) नहीं हो सकते, अतः भोक्ता (जीवात्मा) के भोग्य (विषय) वृक्ष आदि हैं, वे जड़ हैं अतएव जीव से रहित हैं, क्योंकि **"चेतन शरीर"** भोग्य (विषय) नहीं हो सकता (यद्यपि) शरीर भौतिक है तथापि चेतनाधिष्ठित होने के कारण गौणवृत्या **"चेतन"** के समान लोक में माना जाता है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

सत्यार्थप्रकाश के **"वृक्षादि"** पद को क्रमविरुद्ध नहीं कह सकते क्योंकि यहाँ क्रमशः किसी विषय का निरुपण नहीं है। **"क्रम"** की आवश्यकता तो वहाँ होती है जहाँ वक्ता किसी प्रतिपाद्य विषय में क्रम की विवक्षा रखता हो। यदि बिना विवक्षा के ही क्रम का अड़ंगा लगाया जायेगा तो वेद में भी **"क्रमविरोध"** हो जायेगा पुरुष सूक्त में देखो–**"तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः"** इस मन्त्र में पशुओं की उत्पत्ति **"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋच"** इस मन्त्र में वेदों की उत्पत्ति **"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्"** इसमें ब्राह्मण आदि वर्णो की उत्पत्ति तदनन्तर **"चन्द्रमा मनसो जात"** मे चाँद, सूर्य, वायु, प्राण और अग्नि आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। यदि इस सूक्त पर **"क्रमविरोध"** का कुठार उठाया जायेगा तो **"सूक्त"** रूपी तरू का पत्ता–पत्ता छिन्न भिन्न हो जाएगा–**"पशु, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण चांद, सूर्य, वायु, प्राण ओर अग्नि"** क्या इसी लिखे गये क्रम से उत्पन्न हुए थे ? क्या इस सृष्टिक्रम को कोई बुद्धिमान मान लेगा ? क्या यह बात बुद्धि में आ सकती हैं कि पशु पहले उत्पन्न हुए हों और वेद पीछे (मनुष्यों से पहिले) ? क्या वे वेद पशुओं के आशय (मन) में प्रकाशित हुए थे ? क्या चाँद, सूर्य, आग, पानी, हवा, आदि के उत्पन्न होने से पहले ही पशु और ब्राह्मणादि उत्पन्न हो गये और जीते रहे ? इस बात को कोई विज्ञानवेत्ता मान लेगा ? ऐसे **"विरुद्ध क्रम"** से आक्रान्त वेद को भी क्या आप प्रक्षिप्त मानेंगे ? यदि आप यहाँ **"क्रम-विरोध"** के कारण वेद मन्त्रों को प्रक्षिप्त मानने के लिए तैयार नहीं हैं, तो फिर **"सत्यार्थप्रकाश"** बेचारे ने ही क्या अपराध किया है ? ....जनता में हंसी .... हम क्यों यहाँ वृक्षादि, पद को प्रक्षिप्त मान लें ? प्रक्षिप्त अंश वही माना जाएगा जहाँ क्रम की विवक्षा सिद्ध होगी, जब यहाँ (सत्यार्थप्रकाश में) किसी क्रम के प्रतिपादन में अभिप्राय ही नही है तो फिर आप क्योंकि **"क्रमविरोध"** सिद्ध कर सकते हैं ? यहाँ तो केवल योनिवैलक्षण्य के उपन्यसन से, परमात्मा में अन्यायात्मकदूषण के (पूर्वपक्ष द्वारा) उदभावन में अभिप्राय है जिसमें कि पूर्वपक्षी की ओर से श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने, वृक्षादि भी **"जीवात्मा का शरीर (भोगाश्रय) होने के कारण रख दिए,"** बस ! इस शंका ग्रन्थ का इतना ही अभिप्राय है, अतएवं प्रक्षिप्त भी नहीं है **"हेत्वसिद्धेरित्यर्थः............."** क्योंकि आपका **"विरुद्धक्रम"** रुप हेतु ही सिद्ध नहीं हो सकता। जिसका कि अवलम्बन कर, आप विरोध (ऋृग्वेदादिभाष्यभूमिका से) दिखाना चाहतें हैं।

दूसरे यह है कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से विरोध तो तब होगा न ? कि जब पहले आप **"साशनानशने"** पद के भाष्य के पृथिव्यादिपद के **"आदि"** पद से वृक्ष आदि का ग्रहण युक्तियुक्त है –ऐसा सिद्ध कर लेंगे। वही तो आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते, एक अस्वाभाविक और दीर्घकल्पना के पश्चात् आप **"क्रमविरोध"** आदि की दुर्घट घाटियों को तय करके यह निश्चय निकालते हैं कि **"वृक्षादि"** पद प्रक्षिप्त है। यह तो **"वंशाल्लट्वाकर्पणोदाहरण मनुहरणमेतच्छ्रमताम्........."** खोदा पहाड़ और निकाला चूहा और वह भी अधमुआ ! अतः **"वृक्षादि"** पद को प्रक्षिप्त कह कर **"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"** में के **"साशनानशने"** पद के भाष्य में से **"पृथिव्यादि"** पद के **"आदि"** पद से वृक्षों का ग्रहण करके, एवं उनकी जड़ता सिद्ध करके,

सत्यार्थप्रकाश के इस प्रकरण से हमारे दिये गये "पूर्वापरविरोध" का परिहार आप नहीं कर सकते। सो महाराज ! भूमिका में "वृक्ष" आदि का ग्रहण न कर जल – वायु आदि का ग्रहण करना चाहिए अन्यथा आपके पक्ष में मेरी ओर से दिए गए "पूर्वापरविरोध" का परिहार नहीं हो सकेगा इसलिए यही मानना चाहिए कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज, वृक्षों में अवश्य "अभिमानी" जीव को मानते हैं। "साइंस" (Science) के अनुसार ही यदि आप Soul (आत्मा) और Life (प्राण) को मानते हैं तो पशुओं में भी आपको Life (प्राण) ही मानना चाहिए क्योंकि साइंटिस्ट लोग पशुओं में Soul (आत्मा) को नहीं मानते। अतएव पशुओं के मारने में हिंसा भी नहीं माननी चाहिए। परन्तु ऐसा मानने के लिए आप कभी भी तैयार नहीं हैं। यदि आप वृक्षों में साइंस के अनुसार तो "प्राण" मानें और पशुओं में (साईंस के विरुद्ध) आत्मा मानें तो यह **"अर्धजरतीय न्यायाचरण"** आपको शोभा नहीं देगा अतः वृक्षों में Life प्राण मात्र मानकर और उसका परमात्मा की **"हरकते इन्तज़ामी"** से चलना मानकर आप वृक्षों मे जीव का अभाव सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि **"प्राण"** बिना **"जीव"** के हो ही नहीं सकता। परमात्मा की हरकते इन्तजामी तो सभी जगह मानी ही जाती है, मनुष्य के शरीर में भी तो परमात्मा की ही हरकते इन्तज़ामी से **"प्राण"** चलते हैं। यदि जीवात्मा के ही आधीन प्राण हों तो मरते समय वह प्राणों को कभी भी न निकलने दे। अतः **"येन प्राणन्ति विरुद्धः जीवन्ती मोषधीम्"** इन मन्त्रों में लताओं आदि का प्राण धारण करना, विना जीव के उत्पन्न ही नहीं हो सकता अतः वृक्षों में जीव का अपलाप कर, केवल हरकते इन्तजामी से काम नहीं चल सकता। क्योंकि प्राण विना जीव के कभी रह ही नहीं सकता **"आत्मा"** का नाम ही जीव इसीलिए है कि वह प्राण धारण करता है देखो ! श्री महर्षि **"पाणिनि"** जी महाराज **"जीव-प्राणने"** लिखते हैं कि जीव धातु प्राणन (श्वास लेना रूप) अर्थ में है। और वृक्षों में प्राण आदि का होना पहले कही गई श्रुति और स्मृति द्वारा सिद्ध है–आपकी **"साइंस"** भी इनमें Life (प्राण) को मानती है। यदि इन्हें **"नाइट्रोजन"** न मिले तो ये सूख जायें। अतः प्राण की सत्ता, जीव की सत्ता की साधिका है। **"वेदान्त सूत्र"** में **"मुख्य"** और **"गौण"** जीव पर कोई विचार नहीं है। वहाँ तो **"पञ्चाग्निविद्या"** के प्रकरण पर विचार है। तथा, आपने जो मेरी पेश की हुई श्रुति पर, **"गौण-प्राणन"** मान कर आक्षेप किया था और उसमें जो हेतु दिया था उन सबका निराकरण मैं कर चुका हूँ। अतः **"श्रुति"** तथा **"छान्दोग्योपनिषत्"** और **"मनुस्मृति"** के प्रमाण से यह मानना चाहिए कि **"वृक्षों में जीव है"**। अन्यथा आपको बताना चाहिए कि, जिस प्रकार विना कारण के, मन्त्रों में **"सामान्य गति"** का आश्रयण आप करते हैं ऐसे ही आपके **"साशनानशने"** पद के भाष्य में **"पृथिव्यादि"** पद में **"आदि"** पद से गृहीत वृक्षादि में **"गौण जड़ता" "वहिः संज्ञत्वाभावात्मिका........"** क्यों न मानी जाये ? यह कहाँ का न्याय है कि मेरे पक्ष के हेतु को तो **"गौणता"** की उपाधि से उड़ा दिया जाये और आपका सोपाधिक हेतु उसी गौणता से बचा रहे।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

छान्दोग्योपनिषत् के **"अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य........"** इत्यादि मन्त्र के प्रमाण से, जो वृक्षों मे जीव का होना सिद्ध किया गया है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि यहां **"वृक्ष"** शब्द का अर्थ **"शरीर"** है, **"पेड़"** नहीं। **"द्वा सुपर्णा........"** इत्यादि मन्त्र में **"वृक्ष"** शब्द का अर्थ **"शरीर"** सही किया गया है, **"वृक्ष"** शब्द **"ओवृश्च छेदने"** धातु से बना है अर्थात् **"अविद्या कार्यत्वात्तत्वज्ञानादिना छेदनयोग्यं शरीरमिति........"** यहाँ **"वृक्ष"** नाम शरीर का है क्योंकि तत्वज्ञान आदि से छेदन किया जा सकता है। दूसरा हेतु यह है कि इस श्रुति में **"म्रियते"** पद आया है, वृक्ष के लिए **"म्रियते"** अर्थात् मरना पद कहीं नहीं आता। प्रत्युत शरीर के लिए ही **"म्रियते"** पद का प्रयोग होता है, **"जीवात्मा"** के लिए भी **"म्रियते"** पद नहीं आ सकता क्योंकि जीव **"नित्य"** है। इसलिए **"अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य........"** इस श्रुति से, **"वृक्ष"** शब्द शरीरपर्याय होने

से, वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता। सत्यार्थप्रकाश में भी **"वृक्षादि"** पद प्रक्षिप्त है क्योंकि यहाँ **"वृक्षादि"** पद के होने से लेख का क्रम टूट जाता है, क्योंकि **"ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, "किन्हीं को" "वृक्षादि"** – इतने पाठ के पश्चात् पहली लेख प्रणाली के अनुसार, "कृमि, कीट, पतंगादि"–इस लेख के पूर्व **"किन्हीं"** को ऐसा पाठ अवश्य आना चाहिए था परन्तु ऐसा पाठ है नहीं, और विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि **"वृक्षादि"** शब्द के पूर्व जो "**किन्हीं को**" – पद आया है वह **"कृमिकीटपतंगादि"** पद से पहले था और जब **"वृक्षादि"** पद के मिला देने से वह **"किन्हीं को"** पद उससे दूर जा पड़ा! अतः लेखशैली, तथा पूर्वोक्त (आर्थिक) क्रमविरोध तथा भूमिका के **"साशनानशने"** पद के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण यह **"वृक्षादि"** पद प्रक्षिप्त है। क्योंकि यहाँ पृथक् अनमेल सा होने से खटकता है, अतः **"सत्यार्थप्रकाश"** के इस लेख से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं किया जा सकता और न ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के **"साशनानशने"** पद के भाष्यान्तर्गत **"पृथिव्यादि"** पद के **"आदि"** पद से लिए गए **"वृक्षआदि"** का अर्थ के कारण, पूर्वापरविरोध हो सकता है। एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, में जो आप वृक्षआदि की **"गोण"** ज़ड़ता की कल्पना करते हैं कि जड़ता से अभिप्राय **"वाह्य ज्ञानाभावं"** क्यों न लिया जाये? वह भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ **"जीवसम्बन्धरहितम् जड़म्.....** ...." यह जड़ का लक्षण कर दिया गया है, **"लक्षण"** में गौणकल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षण में औपचारिक (गौण) पद नहीं रखे जाया करते औपचारिक पद तो सामन्य बोल चाल आदि में ही हुआ करते हैं जैसे कहा जाए कि–**"ज्वालापुर"** आ गया, यहाँ **"ज्वालापुर-नगर"** जड़ वस्तु है उसमें **"आना"** रूप क्रिया नहीं हो सकती। अतः उसका गौण–अर्थ यह लिया जाता है कि **"हम ज्वालापुर में आ गये"** अतः वृक्षों की जड़ता से कोई गोण अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि यहाँ लक्षण कर दिया गया है कि हमारा (स्वामी दयानन्द जी का) अभिप्राय **"जीवाभाव"** से है तो यह बात अर्थात् सिद्ध हुई कि **"जीवाभाव"** से अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ /– की कल्पना वहां नहीं कर सकते, अब यह बात स्पष्ट हो गई कि पृथिव्यादि जीव से रहित हैं और इसे आप भी मानते हैं अन्यथा पृथिव्यादि में भी आपको जीव मानना पडेगा जो कि आपके मतानुरूप नहीं है। अतः भूमिका से विरोध न आने पाये इसलिए सत्यार्थप्रकाश में से **"वृक्षादि"** पद को निकाल डालना चाहिए। तथा **"प्रशस्तपादभाष्य"** में शरीर, इन्द्रिय और विषय के पृथक् पृथक् माने जाने से, **"विषय"** जो वृक्ष आदि हैं वे **"शरीर"** नहीं हो सकते। भोग का आश्रय ही **"भोग्य"** नहीं हो सकता। वृक्ष आदि को यदि जीव से युक्त माना जाएगा तो वृक्ष आदि, स्वाभिमानी जीव के शरीर होंगे, ऐसी दशा में **"वृक्ष"** भोग का आश्रय **"शरीर"** हुआ–वह **"भोग्य"** क्यों कर हो सकता है? जैसे कि मनुष्य का **"शरीर"**–**"विषय"** नहीं हो सकता, फिर चाहे वह (शरीर) पार्थिव ही क्यों न हो जैसे कि **"विषय"** पार्थिव हैं। परन्तु श्री कणाद के भाष्यकार श्री प्रशस्तपादाचार्य वृक्षों को भोग्य (विषय) कह रहे हैं, **"विषय"** भोक्ता के भोगने के लिए होते हैं, यदि वृक्षों में तदभिमानी जीव मानकर, उनको शरीर माना जाएगा, तो वह जीव उसी शरीर को **"भोग्य"** कर जाये–इस प्रकार की कल्पना सर्वथा असमंजस है अतः यही निश्चय है कि **"वृक्ष"** विषय हैं अतएव जड़ हैं अर्थात् जीव–सम्बन्ध से रहित हैं। वेदान्त में **"पंचाग्निविद्या"** का प्रकरण नहीं है, वहाँ तो यह कहा गया है कि **"व्रीहिआदि में"** अनुशायी (?) **"जीव"** संसर्गमात्र को प्राप्त होते हैं। और **"छान्दोग्योपनिषद्"** के **"अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य....................."** इत्यादि भाग पर भाष्य में श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं कि–**"बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, कणादमते तु स्थावरा जड़ाः (?)"** अर्थात् बुद्धानुयायियों के मत में स्थावर (वृक्षादि) चेतन हैं और कणाद के मत में स्थावर जड़ है, इससे यह बात स्पष्ट है कि शंकराचार्य, आस्तिक कणाद के मत को स्वानुकूल होने से स्वीकार करते हैं। और बौद्ध मत का खण्डन करते हैं। क्योंकि वे (बौद्ध लोग) नास्तिक थे, अतः वेदान्त सूत्र भाष्य तथा छन्दोग्योपनिषद भाष्य में श्री शंकराचार्य जी भी वृक्षों में जीव के अभाव को मानते हैं।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी —

यद्यपि यह बात सत्य है कि—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं "वृक्षं" परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।
समाने "वृक्षे" पुरुषों निमग्नो नीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्य - मीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

इत्यादि मन्त्रों में **"रूपकालंकार"** होने के कारण "वृक्ष" शब्द का अर्थ **"देह"** ले लिया जाये, क्योंकि यहाँ "जीवात्मा" तथा **"परमात्मा"** के तत्व का निरुपण उनको दो पक्षियों के समान मानकर किया गया है। जैसे पक्षी वृक्ष पर बैठते हैं और उनके (पिप्पल) फल को खाते हैं ऐसे ही जीव और परमात्मा रूपी पक्षियों के लिए **"उच्छेदनसामान्य"** से। अर्थात् जैसे छेदन से, नष्ट हो जाने के कारण पेड़ का नाम "वृक्ष" है वैसे ही **"देह"** भी तत्वज्ञान से नष्ट (छिन्न) हो जाता है, अत छेदनरूप—समानधर्म्मवान् होने के कारण **"देह"** के लिए यहाँ **"वृक्ष"** शब्द का प्रयोग हुआ है। **"देह"** वृक्ष रूप है। और इसीलिए **"पिप्पल"** शब्द, भोग्य के समान होने के कारण कर्मो के शुभाशुभ फलों के अर्थ में माना जाता है परन्तु— **"अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य...... ...."** इस श्रुति में कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि, क्यों यहाँ भी "वृक्ष" शब्द का अर्थ **"शरीर"** लिया जाये ? यह कोई दलील नहीं कि एक स्थान में कारण विशेष से एक शब्द, अमुक अर्थ मे आ गया अतः सर्वत्र उसी अर्थ में उसे माना जाये ऐसा मानने से सर्वत्र अव्यवस्था तथा अनाश्वास हो जाएगा। और प्रत्येक स्थान में, आप स्वरस अर्थ को छोड़कर **"गौण"** कल्पना करते हैं, कहीं **"प्रक्षेप"** का अडंगा लगा देते हैं, क्यों नहीं स्वरस अर्थ को स्वीकार कर सीधी कल्पना का अवलम्बन करते ? जब "वृक्ष" शब्द का मुख्य प्रयोग "पेड़" के लिए सर्वलोक में किया जाता है तो बिना कारण, क्यों गोण कल्पना तक दोड़ने का परिश्रम उठाया जाये ? एक क्षणभर के लिए यदि "वृक्ष" शब्द का अर्थ यहाँ बिना किसी कारण के आपके अनुरोध मात्र से, **"शरीर"** ही मान लिया जाए तो आप ही फिर बताइये कि — **"अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य मूले भ्याहन्यात्, मध्येऽभ्याहन्यात्, अग्रेऽभ्याहन्यात् पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति एकांशाखां जहात, द्विवतीयाँ तृतीयां.... ....सा:......... शुष्यति सर्व शुष्यति।** इत्यादि में शेष "वृक्ष" पेड़ सम्बन्धी अंगों का क्या हाल होगा ? इन बेचारों की क्या गति होगी ? इनके वृक्ष। **"शरीर"** का अर्थ मानकर मूल (जड़), मध्य, अगला भाग शाखा (टहनी), एक शाखा, दूसरी शाखा, तीसरी शाखा सब शाखाएं, उन शाखाओं का सूखना, सारे **"वृक्ष का सूखना"** आदि शब्दों के झटपट स्फुरण होने वाले स्वरस अर्थ को छोड़ कर कहाँ तक गोण—कल्पना के लिए अर्ध्य—शिरः कपाल को परिश्रान्त करेंगे। और आप यह जो कहते हैं कि—"वृक्ष" के लिये म्रियते (मरना) शब्द का प्रयोग नहीं होता और शरीर के लिए **"म्रियते"** प्रयोग होता है अतः "वृक्ष" शब्द का अर्थ शरीर, लेना चाहिए—यह भी आपका कहना ठीक नहीं है— यहाँ **"म्रियते"** पद शरीर के लिए आया ही है — पर, ऐसा नहीं, जिस प्रकार कि आप जोड़ तोड़ कर रहे हैं—उपनिषद् के सब प्रकरण को देखिए — **"भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति, तथा सोम्येति होवाच"** श्री आरुणि उद्दालक जी महाराज स्वपुत्र **"श्वेतकेतु"** को नाना प्रकार के दृष्टान्तों से **"आत्म ज्ञान"** के लिए उपदेश कर रहे हैं, श्वेतकेतु नहीं समझता और बार—बार कहता है कि भगवान मुझको फिर बतावें कि— आत्मा कैसे नित्य है और शरीर कैसे अनित्य है ? पिता कहते हैं कि— "सोम्य" ! यहाँ दृष्टांत देखकर समझाते हैं कि—**"अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य........."** इत्यादि आरम्भ करके **"सर्व जहाति सर्वः शुष्यति........"** जहां तक वृक्ष का दृष्टांत देकर दार्ष्टान्त वाक्य से उपसंहार करते हैं कि —**"एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच, जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो "म्रियते" इति"** इसी

प्रकार। जैसे कि वृक्ष की दशा वर्णन की गई। हे सोम्य! जीव से वियुक्त होकर यह शरीर मर जाता है, "जीव नहीं मरता" परन्तु आप दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्त वाक्य को, सब एकमय (?) करके यह समझ रहे हैं कि यह "मरना" भी ऊपर आए "वृक्ष", जिसका अर्थ आप "शरीर" मान बैठे हैं। के लिए ही प्रयुक्त हुआ है–हालांकि "म्रियते" पद दृष्टान्त में कहे गये वृक्ष के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ, यदि ऐसा होता तो "जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते" न होता किन्तु "जीवापेतो वाव किलायं म्रियते" ऐसा पाठ होता, जैसे कि ऊपर "सर्वःशुष्यति" में हुआ है क्योंकि वृक्ष शब्द पुल्लिग है। उसके विशेषण भी पुर्ल्लिग में ही होने चाहिए थे। और कदाचित आप नहीं मानते और सर्वथा पाठ की अवहेलना तथा पूर्वाचार्यों की व्याख्या का निरादर कर स्वतन्त्र जोड़ तोड़ किए बिना नहीं सन्तुष्ट होते तो हम यह सिद्ध करते हैं कि वृक्षों के लिए भी "मरना" शब्द का प्रयोग होता है, देखिए जैसे लोक में बोलते हैं कि– "फ़सल मारी गई" या "खेती मारी गई"। तथा रघुवंश में देखिए–

> अथवा मृदु वस्तु हिंसितुँ मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
> हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।।
>
> (रघुवंश, १–८–४५)

इसकी टीका में "मल्लिनाथ" लिखते हैं कि – "अत्रार्थे हिमसेकेन तुषारनिष्यन्देन विपत्तिर्मृत्युर्यस्याः सा तथा नलिनी पद्मिनी में पूर्व प्रथमम् निदर्शनमुदाहरणं मता"– अतः संस्कृत भाषा में भी वृक्षों के लिए "मृत्यु" शब्द का प्रयोग आता है। अतः चूँकि, वृक्षों के लिए "म्रियते" पद का प्रयोग हो नहीं सकता इसलिए यहां "वृक्ष" शब्द का अर्थ पेड़ भी नहीं हो सकता, ऐसा आप नहीं कह सकते तथा जो आप श्री कणाद तथा श्री प्रशस्तपादाचार्य के सिद्धांत का उपन्यास कर श्रुति, स्मृति तथा श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेखों में मुख्यार्थ को छोड़ कर, गौण कल्पना तथा प्रक्षेप आदि प्रपञ्च रचते हैं वह ठीक नहीं है। क्योंकि श्रुति तथा श्रुत्यनुसारी स्मृति–वचनों से विरुद्ध होने के कारण, "कणादस्मृति" हेय (त्याज्य) है। यदि आप स्मृति के बल से। "वेशेषिकदर्शन" स्मृति ही है। कणादमत की स्थापना करेंगे तो हम भी मानवमत को स्मृतरुप से प्रत्यवस्थापित करेंगे। "स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात्", इस वेदान्तसूत्र का यही भाव है। इन दोनों में से एक को अवश्य मानना होगा और दूसरे को अवश्य छोड़ना होगा, दोनों विरुद्ध ज्ञान को समर्पित होने से अंगीकार्य्य नहीं हो सकती। अतः श्रुति के अनुकूल होने के कारण मनु का पक्ष ग्राह्य है और श्रुतिविपरीत कणादमत अनुपादेय है। सो महाराज! वेदविरुद्ध कणादमत के बल पर, आप हम पर आक्षेप नहीं कर सकते। तथा छान्दोग्योपनिषद्– शांकरभाष्य में से –"बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, कणादमते तु स्थादमते तु स्थावरा जड़ाः (?)। यह विचित्र पाठ सुनाकर मनमानी कतरब्योंत कर रहे हैं, देखिये! यहां का ठीक पाठ और उसका अर्थ–

"वृक्षस्य रसश्रवणशोषणादिलिङ्गाज्जीववत्वं दृष्टान्तश्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति, बौद्धकाणा -दमतमचेतनाः स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति"। इस शांकरभाष्य पर श्री आनन्दगिरीकृतटीका भी देखिये–

यत्तु वैशेषिकवेनाशिकाभ्यां स्थावराणां निर्जीवत्वेनाचेतनत्वमुक्तं, तदेतन्निरस्तमित्याह-वृक्षस्येति। "आदि"- शब्दो बुद्धिमोदादिसंग्रहार्थः "स एव वृक्षां जीवेनाऽत्मनाऽनप्रभूत" इति दृष्टान्तश्रुतिः।। २।।

इसका अर्थ भी सुनिये–रस के टपकने और सूखने आदि हेतुओं से वृक्षों का जीववान् होना और दृष्टान्तश्रुति से, स्थावर, चेतना वाले हैं (यह बात सिद्ध हुई,) (इतिहेतोरित्यर्थः) इसलिए, बौद्धों और काणादों का मत, कि स्थावर अचेतन (जड़) है, यह बात "असार" (सारहीन–झुठ) है अथपित्या दिखा दी गई। आनन्दगिरिकृतटीका का अर्थ भी देखिये– वैशेषिक अर्थात् बौद्ध आदि नास्तिक लोग, जो यह कहते हैं कि–

"जीव से रहित होने के कारण स्थावर अचेतन है"—यह बात खंडित हो गई अतः भाष्यकार कहते हैं **"वृक्षस्य"** इत्यादि, (मूल में)। भाष्य के **"शोषणादि"** पद में जो **"आदि"** पद है उससे बुद्धि और मोद (प्रसन्नता) आदि समझना। **"स एव वृक्षों जीवेनात्मनानप्रभूतः"**—यह **"दृष्टान्तश्रुति"** है। इस प्रकार शांकर भाष्य का यह ठीक पाठ तथा अर्थ, हमने खोल दिया है —आप जो पाठ सुनाते हैं वह, "पाठ" न जाने, कहां का है ? इसी प्रकार आप सब स्थानों में प्रमाणाभास तथा युक्त्याभास से, न जाने, क्यों प्रेम रखते हैं ? वेदान्तदर्शन के अध्याय ३ के प्रथमपाद में **"पञ्चाग्निविद्या"** सम्बन्धी नानाविचार हैं—उसमें से यह छटा अधिकरण है जिसे आप मनचाहा नोच खसोट रहे हैं— प्रथम तो **"अनुशयी"** शब्द है **"अनुशायीं"** नही। जिसका अर्थ है अनुशय वाले। "अनुशय" कर्म को कहते हैं। इसी पाद में **"कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च............"** इस सूत्र में यह निश्चय कर चुके हैं कि — जो लोग **"चन्द्रलोक"** में जाते है, क्या वे अपने सब कर्मों के फलों को भोग कर **"भूलोक"** पर उतरते हैं या कुछ कर्म (शेष) साथ लेकर उतरते हैं ? इस प्रकार आशंका करके वहां यह निर्णय किया है कि— **"कृतात्यये"** अर्थात् उन कर्मो के। जिनके कारण कि **"चन्द्रलोक"** में जाते हैं। फल की समाप्ति पर **"अनुशयवान्"** अर्थात् और कर्मो से युक्त। **"चन्द्रलोकप्राप्ति निमित्तककर्मेतर-कर्मवन्त इतिभावः"**। ही उतरते हैं—इत्यादि। फिर इस छटे अधिकरण में यह विचार है कि वही **"अनुशयी"**। अनुशायी(?) नहीं। जीव जो कि चन्द्रलोक से अवरोहण कर रहे हैं क्या **"तइह ब्रीहियवा औषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते"** इस श्रुति का यह अभिप्राय है कि वे जीव, ब्रीहि (धान) औषधि आदि की जाति **"जन्म"** को प्राप्त हो जाते हैं या इन (वनस्पति आदि) से सम्बन्ध मात्र रखते हैं ? इस प्रकार सन्देह करके, पूर्वप्रक्षी की ओर से यह कह कर कि— **"धान आदि की योनि को प्राप्त होते हैं ऐसा मानना चाहिए"** ऐसा निश्चय करते हैं कि—**"अभ्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"**। अन्य जीवों से अधिष्ठित ब्रीहि आदिकों में अनुशयी। अर्थात् **"अनुशय"** (कर्म) वाले जीवों का सम्बन्धमात्र होता है। परन्तु आप इस भाष्य के विपरीत **"अनुशयी"** को **"अनुशायी"** बनाकर, उसका मनमाना अर्थ बताते हैं। जो किसी शास्त्रकार ने नहीं माना और देखिये, सूत्र में **"अन्याधिष्ठितेषु"** पद साफ़ साफ़ बता रहा है कि **"ब्रीहिआदि"** अन्य जीवों से अधिष्ठित होते हैं अर्थात् अन्य जीव, ब्रीहिआदि के अधिष्ठाता (अभिमानी जीव) होते हैं जैसे हम अपने—अपने शरीर के अधिष्ठाता हैं। अतः आप यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं कर सकते कि श्री शंकराचार्य या श्री व्यास जी महाराज वृक्षों में "जीव" नहीं मानते थे, प्रत्युत यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि ये दोनों ही अत्यनुकूल होने से वृक्षों में अधिष्ठित (अभिमानी) जीव को मानते हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज —

श्री कणाद महर्षि के मत से हमने श्रुति का गौण अर्थ किया, आप उसका खण्डन **"रघुवंश"** के प्रमाण से करते हैं—कणाद के सामने कालिदास को क्यों प्रमाण माना जाये ? साहित्य के जानने वाले **"आत्म विद्या"** को क्या जानें ? तथा लोक भी प्रमाण नहीं माना जा सकता—लोक में तो **"फसल मारी गई"** ऐसे स्थानों में गौण (उपचार से) प्रयोग होता है अतः लोक में **"मरना"** शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए आता है इसलिए श्रुति में भी ठीक है, यह ठीक नहीं। छान्दोग्योपनिषद् में यदि यह मान भी लिया जाये कि शंकराचार्य ने वृक्षों में जीव का होना लिखा है तो—**"अन्यधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"** के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण अप्रमाण है क्योंकि शंकराचार्य अशुद्धि (गलती) या विरोध कर सकते थे, वे ऋषि नहीं थे। **"सत्यार्थ प्रकाश"** के ११ वें पृष्ठ में **"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"** का अर्थ करते हुए श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज लिखते हैं कि —**"जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर, जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं"**— इत्यादि प्रमाण से यह बात स्पष्ट है कि श्री स्वामी दयानन्द जी

महाराज स्थावरों को जड़ मानते थे। तथा "सत्यार्थप्रकाश" के २२१ वें पृष्ठ में "कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है-जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं" इत्यादि प्रकरण में भी जड़ बीज से उत्पन्न वृक्षों को जड़ ही मानते हैं ? क्योंकि यहां जड़ पृथिवी और जड़ जल के निमित्त से, जड़ बीज का वृक्षाकार होना लिखते हैं। अतः इन दो प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि वृक्षों में जीव नहीं है, इन कारणों से भी सत्यार्थप्रकाश के २३५ वें पृष्ठ में से "वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त है ऐसा प्रतीत होता है। पहले कही गई युक्तियों और इन दो प्रमाणों के विरूद्ध होने के कारण "वृक्षादि" पद को निकाल डालना चाहिए। वेदान्तदर्शनभाष्य में पूर्व पक्ष प्रमाण नहीं माना जा सकता आप पूर्वपक्ष पढ़ते हैं जबकि उत्तरपक्ष प्रमाण है। १७६ स्थानों में मिलेगा कि-"वृक्षों में जीव नहीं है"।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

श्री शंकराचार्य के लेख में पूर्वापर विरोध नहीं हो सकता, जिस मनमाने पाठ के बल पर आप विरोध दिखा रहे हैं–वैसा पाठ ही कहीं नहीं है, ऐसा विरोध केवल **"बन्ध्यापुत्र"** से **"राम"** के विरोध के समान है। वेदान्तदर्शन के अवरोहण प्रकरण की स्पष्ट व्याख्या करने पर भी यदि आप नहीं मानते तो इसका क्या किया जाये ? और न इसका आप कुछ खण्डन करते हैं। आप कहते हैं कि–**"कालिदास तथा मल्लिनाथ का लेख प्रमाण नहीं हो सकता वे आत्मविद्या को क्या जाने ?"**– हम आपसे कहते हैं कि आप श्री शंकराचार्य का प्रमाण देते हैं वे भी प्रमाण नहीं होने चाहिए क्योंकि आर्यसामाजिक उन्हें भी तो ऋषि नहीं मानते ! यदि आप शंकराचार्य के लेख को प्रमाणरूप से पेश करेंगे तो कोई वजह नहीं कि मल्लिनाथ जैसे षड्दर्शन के तत्ववेत्ता को प्रमाण न माना जाये, देखिये वे अपनी **"विद्यापारदृश्वता"** के विषय में कैसा अच्छा लिखते हैं–

"वाणी काणभुजीमजीगणद्वाशासीच्च वैयासिका, मन्तरतन्त्रमरंस्त, पमनगगवीगम्पेपु चाजागरीत्। वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फरां, लोके भूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सोजन्यजन्यं यशः। मल्लिनाथ कविः सोयमित्यादि ....।"

अर्थ – जो (मल्लिनाथ) कणाद की वाणी (वैशेषिकदर्शन) को जान चुका है और जो व्यास की वाणी (वेदान्तदर्शन) की शिक्षा पा चुका है। **"तन्त्र"** शास्त्र। (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि विद्या के प्रतिपादक शास्त्र) में जो रमण कर चुका है। जो श्री पतञ्जलि के महाभाष्य में जागरूक (खबरदार) है अर्थात् जिसको **"महाभाष्यान्त"** व्याकरण स्मरण है। जो गौतम के बनायें न्यायशास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्व को जानता है। विद्वानों के, **"सौजन्य"** से उत्पन्न यश का जो उपज्ञाता (ईजादकुनिन्दा) थ्यूरिएस्ट है। वह कवि (शायर) **"मल्लिनाथ"** इत्यादि, अब आप ही बताईये कि इस प्रकार एक गुणगणसमन्वित महाविद्वान की बात को यों टाल देना कि– **"ऋषि नहीं"–"यह नहीं"–"वह नहीं"** ठीक नहीं ! हम और आप लोगों की अपेक्षा वह महापण्डित था। **"सत्यर्थप्रकाश पृष्ठ २११"**– में बीज को जड़ कहा है–न कि वृक्ष को अभिमानी जीव से शून्य ! मनुष्य, पशु आदि के शरीर भी तो **"जड़-रजोवीर्य्य"** से ही बनते हैं ! अतः मनुष्य भी जड़ हैं, ऐसा नहीं कह सकते, एवं जड़ बीज से उत्पन्न वृक्ष चेतनात्मा से अधिष्ठित नहीं हैं, यह नहीं कह सकते। सत्यार्थ प्रकाश–पृष्ठ ११ में स्थावर से जड़ पृथिवी जल आदि लिए गये हैं न कि वृक्ष आदि। क्योंकि **"स्थावर"** पद का अर्थ स्थिर रहने वाला है। अतःएव स्थिर रहने वाले पृथिवी आदि पंचमहाभूत तथा वृक्ष आदि हैं। इसी कारण से कि यहां स्थावर शब्द से वृक्ष आदि का ग्रहण भी लोग न कर लें, अतः **"जड़"** विशेषण दिया है वरना पृथिवी आदि जड़ होते ही हैं यह लिखने की क्या आवश्यता थी ?

नोट –

इतने विचार के पश्चात दो बार श्री स्वामी ज़ी तथा एक बार श्री पण्डित जी ही बोले। परन्तु कोई

नई बात न होने के कारण उन भाषणों के नोट यहां नहीं लिए गए। पहली ही बातों को दुहराया गया था। इस प्रकार एक घंटे के पश्चात् ११ बजे सभा बन्द हुई।

मध्यान्होतर (दोपहर बाद) तीन बज कर १० मिनट पर पुनः वाद–विवाद प्रारम्भ हुआ। श्री पण्डित गणपति शर्मा जी ने प्रातः काल के अपने सब प्रमाणों की संगति ठीक की, सभा को भूतपूर्व विवाद का वृतान्त संक्षेप से सुनाया। और **"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"**–सूत्र के **"शारीरिक"** भाष्य का व्याख्यान सुना कर स्वपक्ष का इस प्रकार उपसंहार किया कि श्री शंकराचार्य जी महाराज वृक्षों में अभिमानी जीव (सुखदुःख का भोक्ता) मानते थे। तदनन्तर श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने अपने भाषण को प्रारम्भ किया।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

पण्डित जी ने अथर्ववेद के जो दो मंत्र प्रमाणरूप से वर्णन किए उनका उत्तर सामान्य तथा विशेष–प्राणन की व्याख्या से दे चुका हूँ। अर्थात् मैं यह बता चुका हूँ कि वहाँ ओषधी आदि के जीवन से तात्पर्य सामान्य जीवन से है। जैसे चाँद सूर्य आदि पदार्थ परमात्मा की **"हरकते-इंतजामी"** से ही गति (हरकत) करते हैं , ऐसे ही परमात्मा की सामान्य–नियामिकाशक्ति से वृक्ष आदि प्राण धारण करते हैं, किसी **"अभिमानी"** जीव की विशेष शक्ति से नहीं। और कि यह सामान्यगति का आश्रयण प्रकरण के अनुकूल है प्रतिकूल नहीं। तथा जिस जिस योनि में जीव की स्थिति मानी जाये, वहाँ इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए कि वह **"कर्मयोनि"** है या **"भोगयोनि"** ? **"उभययोनि"**–विचार ये यह बात स्पष्ट हो सकती है कि इस योनि में जीव है या नहीं ? क्योंकि जीव अपने शुभाशुभकर्मो के फलों को भोगने तथा नये कर्मो को करने के लिए ही शरीरादिसाधनात्मक योनियों को प्राप्त होता है। यदि मान लें कि जीव अपने बुरे कर्मो के कारण स्थावर (वृक्ष) भाव को प्राप्त होता है तो स्थावरों को **"कर्मयोनि"** या **"भोगयोनि"** में नहीं मान सकते। **"कर्मयोनि"** इसलिए नहीं कह सकते कि मनुष्ययोनि के अतिरिक्त और कोई कर्मयोनि संसार भर में नहीं है यह सर्वसम्मत बात है। यद्यपि मनुष्ययोनि में भी भोग होता है, तथापि मनुष्ययोनि कर्मप्रधान होने से **"कर्मयोनि"** ही मानी जाती है। भोग तो केवल (कर्म के साधनरूप) शरीर की रक्षा के लिए हैं। यद्यपि **"कुर्वन्ते कर्म भोगाय कर्म कर्तुञ्च भुञ्जते"** कर्म भोग के लिए करते हैं यह लोकोक्ति है, तथापि यह मनुष्यशरीर भोग की खातिर नहीं मिला है, बल्कि यह शरीर कर्म करने के लिए ही मिला है। भोग आनुषङ्गिक है– **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छुंसमाः"** इत्यादि श्रुति तथा **"कर्मयोग"** और **"ज्ञानयोग"** की प्रतिपादिका गीता का यही तात्पर्य है। अतः मनुष्ययोनि से भिन्न वृक्षआदिकयोनियों* को **"कर्मयोनि"** में नहीं मान सकते। तथा कर्म के साधन कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों के न होने से भी वृक्ष को कर्मयोनि में नहीं मान सकते। भोगयोनि वाले भी वृक्षआदिक नहीं हो सकते। क्योंकि भोग का साधन कोई इन्द्रिय वृक्षों के पास नही है। तथा हर दो (कर्म तथा भोग रूप) योनियों में होने वाले अवरथाकृत–लक्षण वृक्षों में नहीं घट सकते, क्योंकि हर एक योनि में जीव की (जागरित, स्वप्न तथा सुषप्ति रूप) तीन अवस्थाएँ होती हैं ? यदि वृक्षों में जीव मान लिया जाए तो बताना चाहिए कि जागरितआदि तीनों अवस्थाएं क्यों कर, इनमें घट सकती हैं ? **"इन्द्रियरर्थोपलब्धिर्जागरणम्"** जिस अवस्था में इन्द्रियों द्वारा पदार्थो का अनुभव होता है उस अवस्था को **"जागरण"** कहते हैं–सो वृक्षों मे इन्द्रियों के न होने से जागरणभाव सुतरां सिद्ध है जब **"जागरित"** अवस्था ही नहीं तो **"स्वप्न"** अवस्था भी नहीं हो सकती – **"जागरितसंस्कारजः प्रत्यथः स विषयः स्वप्नः"** जागरित अवस्था के संस्कारों से जन्य जो विषयों के सहित प्रतीति (ज्ञान) होती है, उसे **"स्वप्न"** कहते हैं। जब **"जागरित"** ही नहीं तो बेचारे पेड़, स्वप्न क्या देखेंगे ? एवं **"सुषुप्ति"** दशा भी वृक्षों में नहीं कह सकते क्योंकि **"सुषुप्ति"** जागरित

* "अभ्युपगमवाद" से कहा जाता है।

आदि की अपेक्षा से होती है। जहाँ जागरित आदि अवस्थाएं नहीं होती वहीं "सुषुप्ति" भी नहीं हो सकती। यदि कहो कि वृक्षादि "समाधि" अवस्था में हैं तो "समाधि"—"वीतराग" आदि सिद्ध पुरुषों में ही होती है, पशु, वृक्षादि में नहीं होती। अतः वृक्षों में जीवों की कोई वात पाई ही नहीं जाती, और न कोई ऐसा प्रमाण है कि जीव अपने किसी प्रकार के कर्मों को भोगने के लिए वृक्षों मे जन्म लेता है। "मनुस्मृति" अकेली प्रमाण नहीं हो सकती। श्रुत्यनुसारिणी ही स्मृति मान्य हुआ करती है। कोई ऐसी श्रुति बतानी चाहिए जिसमें यह कहा गया हो कि जीव कर्मों के फलों को भोगने के लिए वृक्षों में जन्म लेता है। तथा "वैशेषिकदर्शन" में स्थावरों को "भोग्य" अर्थात "विषय" माना है। विषय—भोग्य, "साधन" अर्थात् "शरीर" नहीं हो सकते। वेदान्त दर्शन में "अन्याधिष्ठितेषु" सूत्र का अभिप्राय अधिष्ठातृरूप अभिमानी जीव से नहीं है, किन्तु जैसे बाग का स्वामी "अधिष्ठाता" कहलाता है, वृक्षादि के अधिष्ठाता स्वामी और लोग होते हैं और उनके वे (वृक्षादि) भोग्य होते हैं, ऐसे ही अन्य लोगों से अधिष्ठित (मकबूजा) ब्रीहि आदि में जीवों का सम्बन्धमात्र होता हैं, अर्थात् वृक्षों में या वृक्षों पर अनुशायी (?) (बसेरा लेने वाले पक्षी, कीट आदि) ही होते हैं—"अभिमानी जीव" नहीं अतः वृक्षों में जीव का होना वेदान्तदर्शन से सिद्ध नहीं हो सकता, और यदि वृक्षों में जीव हो भी, तो उस दशा में वृक्ष "चेतन" होने और चेतन (मनुष्यादि) के चेतन (धानआदि) भोग्य होंगे किन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि चेतन का भोग्य चेतन ही से संसार में दृष्टिगोचर नहीं होता तथा उन (धान आदि) के खाने में हिंसा भी होगी।

"द्वा सुपर्णा......." इत्यादि श्रुति में रूपक है, चेतन जो जीव और परमात्मा हैं उनकी समता चेतन पक्षियों से है, जड़प्रकृति की समता "वृक्ष" भी जड़ हैं अन्यथा कुछ भी समता होने से "रूपक" ही ठीक न हो सकेगा। क्योंकि प्रकृति की और किसी धर्मद्वारा वृक्ष के साथ समता नहीं हो सकती। और स्वामी तुलसीराम जी (मेरठनिवासी) ने भी यही अर्थ किया है, अतः इस श्रुति से भी यह स्पष्ट हुआ कि वृक्ष "जड़" हैं। अतएव श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थ—प्रकाश के पृष्ठ १६४ पर "कुर्वन्नेवेह कर्माणि"—इत्यादि मन्त्र के अर्थ में, "अप्राणियों" के उदाहरण में वृक्षों को लिखा है तथाहि— **"देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं-जैसे पिपीलिका आदि का सदा प्रयत्न करते, पृथ्वी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि बढ़ते घटते रहते हैं-"** इत्यादि —

अतः श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज वृक्षों को "अप्राणी" मानते थे। शेष सत्यार्थप्रकाश का जो प्रकरण आप अपनी ओर से पेश करते हैं उसमें "मिलावट" है, आपने विचार नहीं किया क्योंकि हम क्रम आदि का टूटना तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रमाण से विरोध, इत्यादि कारण स्पष्ट कह चुके हैं। अतः आपके प्रमाण रूप से दिए गये सत्यार्थ प्रकाश के प्रकरण में "वृक्षादि" पद मिलाया गया है, और यही प्रकरण जहाँ "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में आया है वहाँ भी मिलावट है। देखो—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ २०५, में (संम्वत् १६३४ विक्रमी की छपी हुई)—लाजरस कम्पनी, बनारस का प्रेस में लिखा है—

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।। ४७।।

(यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ४७)

इस मन्त्र के भाष्य मे लिखते हैं—(द्वे सृती०) अस्मिन् संसारे पापपुण्यफलोपभोगाय द्वौ मार्गौ स्तः। एकः। पितृणं ज्ञानिनां देवानां विदुषां च द्वितीय (मर्त्यानाम्) विद्या विज्ञानरहितानां मनुष्याणाम् ।। इत्यादि,

इस भाष्य के हिन्दी अनुवाद में पण्डित भीमसेन जी ने **"दूसरा नीचमति से पशु पक्षी, कीट, पतंग वृक्ष आदि का होना"**—इत्यादि सब मिला दिया है ! जिसका मूलभाष्य में नामोनिशान भी नहीं है। और "सत्यार्थ प्रकाश" तथा यहाँ, दोनों स्थानों में पण्डित भीमसेन जी लिखने वाले हैं, संस्कृत श्री स्वामी जी की है। अतः आर्यभाषा में उभयत्र पण्डित भीमसेन जी द्वारा की गई मिलावट है। अतएव अमान्य है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

"अथर्ववेद" के दोनों मन्त्रों के विषय में स्वामी जी ने कोई नया उत्तर नहीं दिया, वही पुराना उत्तर है। मन्त्र में सामान्य प्रमाण का कोई प्रकरण नहीं है, क्योंकि इस विषय में भाष्यआदि का कोई प्रमाण नहीं दिया गया तथा अन्यान्य हेतु, जो इन मन्त्रों के अर्थों के खण्डन में वाद–प्रवाह में आये उन सबका परिहार कर चुका हूँ। स्वामी जी को बताना चाहिए कि क्यों मुख्य अर्थ का परित्याग कर गौणअर्थ का आलम्बन किया जाये ? तथा जहाँ–जहाँ आप "योनि" मानते हैं वहाँ–वहाँ जागरण आदि दशाओं की सत्ता आवश्यक मानते हैं–यह विचार आपका ठीक नहीं है क्योंकि जागरण अवस्था उस दशा का नाम है जिस दशा में कि जीव को इन्द्रियों द्वारा पदार्थो का अनुभव होता है–सो हम आपसे पूछते हैं कि जन्म से अन्धा, बहरा या मूक (गूंगा) पुरुष अपनी आंखं या कान या वाणी से किसी दशा में कोई भी अनुभव या कर्म नहीं करता, अर्थात् उस बहरे या अन्धे मनुष्य के लिए कर्ण या नेत्रकृतजागरण अवस्था कभी भी नहीं होती। एवं स्वप्न और सुषुप्ति भी तत्तदिन्द्रियविषयक नही होती, क्योंकि बहरा या अन्धा मनुष्य स्वपन में कभी भी श्रवण या दर्शन रूप व्यापार नहीं करता, यह अनुभव है। अतः जब पुरुषों के एक या दो इन्द्रियों के विषय में जागृत आदि अवस्थाओं का अभाव स्पष्ट है तो वृक्षों में भी यदि सब इन्द्रियों के न होने से, समस्त इन्द्रियविषयक जागरण आदि का अभाव हो गया तो क्या आपत्ति है ? जब एक योनि में, एक या दो इन्द्रिय विषयक जागरण आदि अवस्थाओं के न होने पर भी, आपको, वहाँ जीव की सत्ता से इन्कार नहीं, तो यदि किसी योनि में समस्त इन्द्रियों के न होने से, सकल इन्द्रिय विषयक जागरण आदि का अभाव हो जाये तो वहाँ भी आपको जीव की सत्ता से मुन्किर नहीं होना चाहिए ? उस अभाव से आप क्यों कर वृक्षों में जीवाभाव सिद्ध कर सकते हैं ? यदि एक स्थान में आप जागरण आदि के अभाव को जीवाभाव का हेतु (व्यतिरेकी) मानेंगे तो आपको अन्यत्र (मनुष्य आदि योनि में) भी (कतिपय–इन्द्रियाभावहेतुक) जागरण आदि के अभाव से, उतने अंश में जीवाभाव अवश्य मानना पड़ेगा, ऐसी दशा में "जीव" विकल हो जाएगा ? अतएव "अनित्य" भी आपको मानना पड़ेगा। यदि आप यह कहें कि–**"जीव के सुखदुख भोगने के साधन इन्द्रिय ही तो हैं जहाँ जीव के साथ ये इन्द्रिय ही नहीं है वहाँ सुखदुख का भोग नहीं हो सकता, जहाँ सुखदुख का भोग ही नहीं हो सकता, वहाँ जन्म लेकर जीव करेगा क्या"** ? सो इसके उत्तर में निवेदन है कि–आपका यह विचार ठीक नहीं, आप यह समझे बैठे हैं कि–**"जीवात्मा इन्द्रियों के बिना सुख दुःख नहीं भोग सकता"** किन्तु यह ख्याल ठीक नहीं है क्योंकि जीवात्मा स्वप्न दशा में इन्द्रिय आदि से किसी प्रकार की सामग्री के अभाव में भी उसी प्रकार सुख दुःख का अनुभव करता है, जिस प्रकार कि जागृत काल में इन्द्रिय आदि सब सामग्री की उपस्थिति में। जागरण काल में होने वाली स्वप्नविषयिका स्मृति, इस बात की साक्षिका है एवं सुषुप्ति, काल में समस्त इन्द्रियों का अभाव होता है, उस दशा में महापातकी से लेकर महापुण्यात्मा तक, महामूढ़ से लेकर महाक्षौत्रिय तक, महादरिद्र से चक्रवर्ती सम्राट तक, बच्चे से बूढ़े तक, कीट पतंगआदि से तत्ववेत्ता महर्षि तक,सब एकाकार वृत्ति में, एक सी दशा में हो जाते हैं और उस दशा के विषय में सबका यह (स्मृति रुप) अनुभव है कि –**"सुखमहमस्वाप्सं न कि चिदवेदिषा मिति"** मैं सुखपूर्वक सोया और मुझे कुछ सुध नहीं रही, सो महाराज ? सुषुप्ति काल में सकल इन्द्रियों के अभाव में भी जैसे जीवात्मा सुख आदि को अनुभव क्रर लेता है इसी प्रकार तमाम इन्द्रियों के न होने पर वृक्ष भी सुख दुःख आदि को अनुभव कर सकते हैं। अतएव श्री मनु महाराज वृक्षों को अन्तः संज्ञ, कहते हैं, अतः यह कहना कि इन्द्रिय आदि के न होने से तथा जागृत आदि के न होने से **"वृक्षों में जीव नहीं है,"** यह बात नितान्त असार है।

और सुनिए, आप यह कहते हैं कि–**"जागृत स्वप्न तथा सुषुप्ति रुप जीव की ये तीन अवस्थायें होती हैं"** पर आपका यह कहना भी ठीक नहीं है इन अवस्थाओं के अतिरिक्त, जीव की **"मूर्च्छा"** नामिका

दशा भी देखी जाती है मूर्च्छा को जागरित दशा में नहीं मान सकते क्योंकि जागरण काल के समान मूर्च्छावस्था में इन्द्रियों से विषयों का कोई अनुभव नहीं होता मूर्च्छित मनुष्य जब होश में आता हैं तो कहता है मैं इतने समय तक अन्धकार में अर्थात् बिल्कुल अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ था मुझे कुछ सुध बुध न थी तथा जागरण काल में मनुष्य अपने शरीर को थामे रहता है किन्तु मूर्च्छित महाशय का देह भूमि पर धम से गिर पड़ता है अतः जागरण दशा में ही मनुष्य की मूर्छावस्था को मानना ठीक नहीं है एवं स्वप्न में भी "मूर्च्छा" दशा को नहीं मान सकते क्योंकि सुषुप्त तथा मूर्च्छित मनुष्य में बहुत भेदं है **"कारण भेद,"**–सुषुप्ति अवस्था थकान से पैदा होती है, मूर्च्छा प्रबल आघात या विषादि से उत्पन्न होती हैं। **"फलभेद"**,– **"सोने से थकान दूर होती है"** शरीर प्रकृतिस्थ हो जाता है। मूर्च्छा शरीर पात के लिए है – यद्यपि मूर्च्छा से अवश्य ही मृत्यु नहीं हो जाती तथापि बिना मूर्च्छा के मृत्यु नहीं होती मृत्युकाल में मूर्च्छा अवश्य आ जाती है अर्थात् मूर्च्छा मृत्यु का द्वार है। **"स्वांस भेद"**–सोया हुआ पुरुष लगातार एक से स्वांस लेता है, उसका मुख प्रसन्न होता है; आखें बन्द रहती हैं। हाथ से छूने या बुलाने मात्र से उठ बैठता है, होश में आ जाता है। परन्तु मूर्च्छित पुरुष मूर्च्छावस्था में एक से साँस नहीं लेता कभी उसका साँस बिल्कुल बन्द हो जाता है। कभी वेग से चलने लगता है कभी धीरे–धीरे। आँखों को फाड़े रखता है या फटी हुई रहती हैं। कभी–कभी शरीर में कंपकँपी होने लगती है रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुख पीला (फ़क़) पड़ जाता है तथा अनेक भयानक लक्षण दिखाई देते रहते हैं, उसको चाहे सोटों से पीटों तो भी नहीं उठता, होश में नहीं आता। सोये हुए पुरुष को उठाने के लिए कोई भी वैद्य के पास भागा नहीं जाता, मूर्च्छित के लिए तो वैद्य को बुलाये बिना कल (चैन) नहीं पड़ती इत्यादि अनेक कारणों से सुषुप्ति अवस्था में भी मूर्च्छा को नहीं मान सकते। अतः **"मूर्च्छा"** एक स्वतन्त्र अवस्था है जो "आयुर्वेद" में प्रसिद्ध है। समस्त जगत् में प्रख्यात है। सो महाराज ? मूर्च्छित दशा में जीव के साथ कोई भी इन्द्रिय नहीं होती और मूर्च्छित पुरुष अपनी मूर्च्छा अवस्था से छूटकर कहता है कि– **"अन्धेतमस्यहमेतावन्तं कालं प्रक्षिप्तोऽभूवं न किञ्चिन्मया चेतितम्,-दुखमरवाप्सं गुरुणि मे गात्राणि भ्रमत्यनव, स्थितं मे मन : ..... इत्यादि"** यह अनुभव बिना इन्द्रियों के कैसे हो गया ? अतः स्वप्न, सुषुप्ति तथा मूर्च्छावस्था में जैसे बिना इन्द्रिय आदि के सुख दुःख का अनुभव हो जाता है, इसी प्रकार **"वृक्ष"** भी इन्द्रियों के बिना सुख आदि को भोग सकते हैं। अतएव मनु महाराज साफ लिखते हैं कि– **"अन्तः संज्ञा भवन्त्येते मुखदुः खसमन्विताः"** यदि कहा जाये कि वृक्षयोनि बुरे कर्मो का फल होने से सुषुप्ति के सदृश क्यों हुई ? सुषुप्ति में तो सुख होता है बुरे कर्मों का फल तो सर्वथा दुःख रूप होना चाहिए ? तो हम आपसे पूछते हैं कि पापी को निन्द्रा क्यों आती है ? निन्द्रा में सुख होता है–पापी उसका भागी क्यों कर हुआ ? सो जैसे पापी को निन्द्रा में भगवान करूणेकसिन्धु सुख देते हैं ऐसे ही वृक्षों को परमात्मा यदि सुख देते हैं तो क्या बुरा करते हैं ? एवं प्रलयकाल में पापी को दुखाभाव क्यों होता है ? **"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"** सूत्र पर शारीरिक भाष्य को आपने अपने पक्ष की पुष्टि में धरा था वह उलटा आपके लिए हानिकर हुआ ? जब आप कोई अन्य उपाय न पाकर सूत्र के मनमाने अर्थ करने लगे, और **"अधिष्ठित"** पद से बाग के अधिष्ठाता की सूझी पर आपकी यह तर्कना केवल असम्बद्ध है ? अच्छी बात ? चलिए ! हाँ क्या कहा चेतन का चेतन, भोग्य या **"भोक्ता"** नहीं हो सकता! भला क्यों ! लोक में नज़र नहीं आता ! वाह ! इतनी बात थी। आईये हम आपको दिखाते हैं। देखिये मनुष्य का भोग्य बैल आदि होते हैं अर्थात् मनुष्य उनसे काम लेते हैं। **"विशोऽन्नेराज्ञाम् नार्य्यो भोग्याः पुंसाम्‌ - ते च तासाम"** वैश्य या प्रजा के लोग राजाओं का भोग्य होते हैं। यह बात लोक में आबाल गोपाल अजाविपाल (पर्यन्त) प्रसिद्ध है। अतः **"विषय"** पद से जड़ ही भोग्य माने जायेंगे यह कुछ नहीं। **"अन्याधिष्ठितेषु"** सूत्र का प्रामाणिक अर्थ किसी आचार्य आदि का किया हुआ लाइये .... आप अपना अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते। **"द्वासुपर्णा......."** मन्त्र में वृक्ष, का प्रकृति के साथ जोड़ तोड़ लगाकर, **"जड़ता की समता"**

के बल पर आप ललकारते हैं कि "रूपक" नही बन सकता, पर महाराज ! तभी तो !! जब आप मनमानी करते हैं, आचार्यों के अर्थ से अकारण वैर। उस पर "रूपक" बन नहीं सकता। सबर कीजिए, बन जाएगा पहले ठीक अर्थ सुनिए अलंकार भी हो जाएगा।

"द्वा सुपर्णा........" का अर्थ है कि जैसे दो पक्षी पेड़ पर बैठे हों, एक फल खाता हो और दूसरा केवल उसे देखता हो, ऐसे ही (पक्षिस्थानीय) जीव और परमात्मा, "वृक्षस्थानीय" देह पर बैठे हैं और "जीव" देह में होने वाले (फलस्थानीय) सुख दुःख को (खाता है) भोगता है और परमात्मा केवल दृष्टामात्र है इत्यादि।

सो जैसे पक्षियों का आधार "वृक्ष" होता है और उसके फल भोग्य होते हैं वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार रुप "देह" है यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापी और स्वमहिम प्रतिष्ठित है, वह किसी के आधार पर नहीं रहता, तथापि यह शरीर परमात्मा का उपलब्धिस्थान है, इसमें ही परमात्मा के दर्शन होते हैं अतः कल्पित–गौण आधाराधेयत्व भाव देह तथा परमात्मा का मान कर, श्रुति देह को परमात्मा का आधार कहती है। एवं जीवात्मा शरीर में आत्माभिनिवेशता के कारण सुख दुःख का भोक्ता ही है। अतः उपमान और उपमेय का परस्पर आधाराधेयभावात्मक सम्बन्ध मानकर श्लिष्ट एकता सुतरां उपपन्न हैं। और आप प्रातः काल के अपने तृतीय भाषण में "द्वासुपर्णात्यादि" श्रुति में "वृक्ष" शब्द का अर्थ शरीर मान भी चुके हैं, पर अब अपने कथन के प्रतिकूल, आप वृक्ष के मुकाबिल असम्बन्ध प्रकृति को लाते हैं। और जड़चेतन की जुगल जोड़ी अपने सामने बिठाने का यत्न करते हैं। इसी प्रकार यदि आप समस्त धर्मो को मिलाने का प्रयत्न करेंगे तो दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक, उपमानोपमेय भाव का सर्वथा विलोप हो जाएगा अतः जैसे "वृक्ष" पक्षियों का आधार है वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार "देह" है – आधारता की अपेक्षा से रूपकालंकार ठीक हो सकता है यह बात वर्णन कर चुका हूँ और आपको भी, प्रकृति (वृक्षस्थानीया) मानकर यह "आधारता" अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी इसलिए "आधारता" पर ही सन्तोष करना ठीक है यदि आप आगे "जड़ता" आदि धर्मों को मिलाने लगेंगे तो हम शाखा, पत्ते, फूल, जड़े तथा परिमाण आदि जो भी वृक्ष में दिखाई देगा प्रकृति के साथ मिलाना आरम्भ करेंगे और उधर पक्षियों के पंख, चोंच, पञ्जे, अण्डे, बच्चे, घोंसला, जीवादि के साथ सब मिलाने पर बाध्य करेंगे पर आप नहीं मिला सकेंगे–अतः "आधारता" पर ही सबर करना ठीक है अन्यथा बताइए ? समान प्रकरण की "ऋत्तंपिवन्तो" श्रुति के, "गुहाँ प्रविष्टो" में ये "गुहा" पद से प्रकृति की क्या समता होगी ? अतः शास्त्र के स्वकपोलकल्पित अर्थो को छोड़ कर किसी प्रामाणिक अर्थ के बल पर बात कहिए। आप अपना ही अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते। अतः, प्रकृति जड़ है अतः "वृक्ष" भी जड़ हैं, यह बात सर्वथा निराधार है असप्रञ्जस है। एवं जो प्रकरण हमने "ऋतं पिवन्तौ एवं सुकृत्य लोके गुहां प्रविष्टो परमे परार्धे। छायातपो ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः, ऋतं, अवश्यं भावि कर्म फलं, पिवन्तो भु जानो, सुकृत्यस्य कर्मणो, लोके कार्य देहे परस्य ब्रह्मणो द्यं स्थान-महतीति पराध हृदयं परमं श्रेष्ठं तस्मिन्या गुहा तपोरूपा बुद्धिरूपा वा तां छाया प्रविष्टों स्थितो मिथः संवद्धो तोच ब्रह्म, विदः कर्मिणः वदन्ति त्रिर्नाचिकेतोऽग्निश्चितो यस्ते त्रिणाचिकेताः ते वदन्ती त्यर्थः। नाचिकेत वाक्यानामध्ययन तदर्थज्ञानं तदनुष्ठानं चेति त्रित्वंबोध्यम्। यह छान्दोग्योपनिषत् का पेश किया उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। तथा पारिभाषेन्दु शेखर की "सर्वोद्विन्द्वो विभाषयैकवद् भवति" - ३४ वीं परिभाषा के व्याख्यान में श्री नागोजी भट्ट लिखते हैं –

"तिष्यपुनर्वस्वोरितिसूत्रस्तं वहुवचनस्येतिग्रहणमस्या ज्ञापकं तदधीदं तिष्यपुनर्वरिवत्यत्र तद्व्यावृत्यर्थम् नचेवमप्यत्र जातिरप्राणिनामिति नित्येकवद्भावेन बहुवचनाभावादिदं सूत्र व्यर्थमिति वाच्यम्। आपामेयः प्राणइति श्रुतेरादिभर्विना ग्लायमान प्राणानामेव प्राणत्वात्-स्पष्टञ्चेदं तिष्यपुर्नवस्वोरिति सूत्रे भाष्ये"।

इस परिभाषा में श्रीमन्महामहोपाध्याय श्री नागों जी भट्ट "आपोमयः प्राणः" इस श्रुति का प्रमाण

देकर "**प्राण**" का लक्षण करते हैं कि– "**अद्भिर्विना ग्लायमानत्वं प्राणत्वम्**" जो जल के बिना मुरझा जावे या नष्ट हो जाये उन्हें "**प्राण**" कहते हैं सो वृक्षों को यदि जल न मिले तो सूख जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं अतः वे प्राणी हैं। प्राण बिना जीव नहीं रह सकते आगे देखिये– "**अथेनं क्रामन्तं सर्वे प्राण उत्क्रामन्ति**" और "**नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्**" तथा "**जानपदकुंड**" इत्यादि सूत्रस्थ "**नील**" शब्द पर "**प्राणिति च वार्तिक में मुखनासासञ्चारी**" वायु को "**प्राण**" माना है अतः "**तिष्यपुनर्वस्वोरित्यादि**" सूत्र से विरोध नहीं है अब यह बात सिद्ध हुई कि श्रीमन्महामुनि श्रीपतञ्जलि जी महाराज भी वृक्षों में अभिमानी जीव को मानते हैं।

सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विषय में आप जो जो कल्पनाएं करते रहे हैं उनका एक–एक करके खण्डन कर चुका हूं आप उसका कुछ परिहार नहीं करते। अतः स्वामी जी ! श्री स्वामी दयानन्द जी के लेख से वृक्षों में अभिमानी जीव का अभाव आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते "द्वेसृति" मन्त्र के प्रकरण को लेकर, जो आप पण्डित भीमसेन जी द्वारा की गई मिलावट बता रहे हैं इसमें क्या प्रमाण है कि पण्डित भीमसेन ने मिलावट की है ? ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश में जो कुछ लेख है वह अक्षरशः स्वामी जी का है, चाहे संस्कृत हो या आर्य भाषा हो। जब उनके नाम पर सब किताबें छपती हैं तो क्यों कर मान लिया जाये कि मिलावट है ? जो श्री स्वामी दयानन्द महर्षि तमाम अवैदिक मन्त्रों के जाल का समूलोच्छेदन करने वाले थे वे अपने रचित पुस्तकों में इतने ग़ाफिल थे कि लेखक लोग जो चाहें मिला दें–इस बात को कौन बुद्धिमान मनुष्य मान लेगा ? संस्कृत तथा आर्य भाषा में श्री स्वामी जी ही भाष्यकर्ता हैं। आवश्यक नहीं है कि जो अक्षर संस्कृत में लिखें वही हूबहू भाषा में भी लिखें। वे किसी स्थल में विशेष व्याख्यान की अपेक्षा से अधिक भी लिख सकते हैं तथा संस्कृत और आर्य भाषा के लेखक्रम भिन्न–भिन्न होने से नये ढंग पर भी बात लिखनी पड़ती है। हाँ जो, आप परस्पर विरोध दिखाते हैं उस सबका परिहार कर चुका हूँ। उसका प्रति परिहार आपके पास कुछ नहीं है। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के विवाद प्रसाद को किसी नई तर्क भूमिका पर उठाइये, बार बार वही बात आपके पक्ष को थोथा किये जा रही है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

अब के भाषण में भी सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विषय में कोई नई बात नहीं कही गई बस ! उसी पुरानी बात को कहा, केवल "**पूर्व तुनोक्तं अधुनापिनोक्तम्**" वाली बात थी।

"लेखक"

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

"**द्वासुपर्णा.........**" मन्त्र में जीव–ब्रह्म दो पक्षियों के समान हैं क्योंकि चेतनता समान धर्म से पक्षी तथा जीव ब्रह्मयुक्त हैं उधर वृक्ष तथा प्रकृति के जड़ होने से समता है अतः "**वृक्ष**", जड़ हैं। क्योंकि वेद "**पुनुरूक्ति**" आदि दोषों से रहित हैं यदि यहाँ वृक्ष को जड़ न मानेंगे तो "**प्रकृति**" से समता न हो सकेगी अतः "**जाति**" दोष वेद में आयेगा उसकी निवृत्ति के लिए वृक्षों को जड़ मानना चाहिए यह बात युक्तियुक्त भी है अन्यथा चेतनता की प्रतीति के न होने पर भी यदि आप वृक्षों में जीव मानेगें तो मेज आदि वस्तुओं में भी "जीव" मानना पड़ेगा। "**मूर्च्छा नाम मनसो विचलितावस्था**" अर्थात् **मन की विचलितावस्था** का नाम **मूर्च्छा है** परन्तु वृक्षों में मूर्च्छा नहीं है, क्योंकि मूर्च्छा जागरण आदि अपेक्षा से होती है, जब जागरण आदि अवस्थाएँ ही वृक्षों में नहीं तो "**मूर्च्छा**" भी नहीं हो सकती। जाग्रत् अवस्था से पृथक् मूर्च्छा कोई अवस्था नहीं है, यदि "**मूर्च्छा**" पृथक् कोई अवस्था होती तो जागरणादि के समान सब मनुष्यादिकों में नियमानुसार और प्रायः प्रतिदिन होती, परन्तु ऐसा है नहीं और वीतराग पुरुषों में तो मूर्च्छा होती ही नहीं। अतः वृक्षों में जब योनि ही नहीं तो मूर्च्छा कैसे हो सकती है ? अतएव "**मन की विचलितावस्था रूप-मूर्च्छा**" भी वृक्षों में नहीं हो सकती। एवं वेशेषिकदर्शन में वृक्षों को "**विषय**" अर्थात् भोग्य माना है और भोग्य भोक्ता नहीं हो सकते।

सत्यार्थ प्रकाश में, **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि.......................**" मन्त्र के अर्थ में वृक्षों की गणना **"जड़ों में"** की है।

"भोग्य" नाम चेतना वश का है, सो चेतनता के न होने से भोग्य हैं, भोक्ता नहीं हो सकते। भोग्य ही भोक्ता नहीं हो सकता, **"आत्माश्रय"** दोष होगा, आप ही अपने कन्धे पर कोई कैसे बैठ सकता है ? और न अपेक्षाकृत हो सकते हैं, क्योंकि वृक्षों को भोक्ता मान कर किसी अन्य पुरुष आदि का भोग्य मानने से **"जीव हिंसा"** जायज़ माननी पड़ेगी। जहाँ यह कहा जाता है कि न्यून बुद्धि वाले अधिक बुद्धि वालों के भोग्य होते हैं वहाँ गौणतया भोग्य में अभिप्राय है क्योंकि सेवा आदि कराते हैं। क्या स्वामी, दास को मुख्यतया ही निगल जाता है ? जैसे कि – **"अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि, हिंसाशनिर्हरसा हन्त्वेनम्। प्रपर्वाणि जात-वेदः शृणीहि मे, क्रविष्णुर्विचिनोतु वृक्णम्"**। में चिदवसान भोग्य (तथा उपचार प्रायेण) से तात्पर्य यह है। क्योंकि **"क्रव्याद"** उस अग्नि को कहते हैं जो मुरदे को खा जाता है अर्थात् जो शव को जला देता है क्योंकि मुख्यतया हमारे समान आग मुरदे को नहीं खाती।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

अथर्ववेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषत् के प्रमाण से यह बात कह चुका हूं कि वृक्षों में जीव है। **"द्वासुपर्णा"** इत्यादि श्रुति के यदि आप प्रामाणिक अर्थ नहीं मानते और स्वकल्पित अर्थों पर ही जिद करेंगे तो भी आपका अर्थ ही ठीक है, इसे हम क्यों कर मान लें ? में कहता हूं कि यहाँ **"तोता और मेना"** रूप दो पक्षियों से अभिप्राय है। आप इसका खण्डन कीजिए ? विना किसी प्रकरण आदि के अर्थ का निर्णय नहीं हो सकता, आप प्रकरणानुसार अर्थ की संगति ठीक कीजिये। और इस अर्थ में हेतु दीजिए। केवल पक्ष घोषणा से पक्ष सिद्धि नहीं हो सकती।

आप कहते हैं कि **"वृक्षों में जीव नहीं है क्योंकि शास्त्र आदि का प्रमाण नहीं है अतः मूर्च्छा भी नहीं हो सकती"**–मैं पूछता हूं–**"क्या अथर्ववेद और छान्दोग्य और मनुस्मृति शास्त्र नहीं है"** ? क्या आपने इन प्रमाणों का कुछ खण्डन किया ? यदि नहीं तो फिर क्यों कर आप कहते हैं कि **"शास्त्र का प्रमाण नहीं है"**। आप मूर्च्छा के लिए जागरण आदि की अपेक्षा को आवश्यक बतलाते हैं परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि वृक्षों में जन्म से ही मूर्च्छा है वह एक जन्म रोग के समान है। तथा **"मूर्च्छा"** को आप जागरण अवस्था के अन्दर मानते हैं अर्थात् जागरण अवस्था से भिन्न विशेष अवस्था उसे नहीं मानते पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जागरण काल में इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है, **"मूर्च्छा"** में नहीं होता। आप के पक्ष में कोई प्रमाण भी नहीं है अतः मूर्च्छा का जागरण में अन्तर्भाव नहीं हो सकता।

तथा वृक्षों का सजीव होना हम शास्त्र से सिद्ध कर चुके हैं और मूर्च्छा तो वृक्षों में स्पष्ट सी प्रतीत होती है जब अंधे या बहरे पुरुष मे एक या दो इन्द्रिय विषयक जागरणाद्यभाव साफ़ ज़ाहिर है और अंधे या बहरे में जीव के न होने या कम होने में आपको कोई शिकायत नहीं होती किन्तु जीव को आप मानते हैं तो फिर वृक्षों में समस्त इन्द्रियां भाव निमित्तक जागरणदयभाव दशा में क्यों नहीं जीव को मानते ?

यह कोई नियम नहीं है कि भोक्ता चेतन ही हो और भोग्य जड़ ही हो। देखिये स्वामी और सेवक दोनों चेतन हैं पर भोक्ता और भोग्य है शेर हरिणों को खाता है यहाँ भी भोक्ता चेतन हैं। पुरुष अन्न को खाता है यही भोक्ता चेतन और भोग्य जड़ हैं। मर्दु मखोर पेड़ मनुष्यों को खा जाते हैं यहाँ आपके मत से जड़ वृक्ष भी चेतन मनुष्य को खा जाते हैं। अतः आपके मतानुसार भोक्ता और भोग्य की व्यवस्था नहीं हो सकती।

शेष रहा कि यदि वृक्षों में जीव है तो उनके काटने से हिंसा होगी यह ठीक नहीं क्यों कि **"बाधना लक्षणों धर्मोहिंसा"** होती है—वृक्षों को काटने से बाधा (पीड़ा) नहीं होती यह बात प्रत्यक्ष है देखो ! अंगुली के कटने से सारे शरीर में दुःख होता है और अंगुली कटकर सूख जाती है अर्थात् जीते हुए शरीर से

सम्बन्ध रखते समय जो बात अंगुली में होती है वह कटने पर नहीं रहती किन्तु कली (कोरक-शिगूफा) को डण्डी से तोड़ कर अलग धर दो सायंकाल की तोड़ी हुई प्रातः तक खिल जायगी तथा पेड़ में कोई पीड़ा आदि की प्रतीति भी नहीं होती। यदि पीड़ा होती तो अन्य शाखाओं पर भी फूल न खिलते अतः कटने पर वृक्षों में दुःख नहीं होता दुःखाभाव से तात्पर्य वृक्ष रूपी-शरीर निमित्तक दुःखाभाव से ही है-"पूर्व जन्म **दुष्कृतकृतमनः सन्तापात्मकक्लेश**" तो होता ही है अतएव मनुजी ने "**सुखदुःखसमन्विताः**" कहा है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

वृक्ष को यदि योनि माना जायेगा तो वह बुरे ही कर्मों का फल होगी यदि वृक्षों को उनके शरीर सम्बन्ध से कोई दुःख नहीं होगा तो पाप का फल वृक्षों को दुःख भी न हो सकेगा अतः पाप का फल दुःख भी अवश्य आपको वृक्षों में मानना चाहिए ऐसी दशा में वृक्षों को काटंने से हिंसा अवश्य होगी। शास्त्रों से वृक्षों में जीव का बताना "**साध्यसम**" है-

न हि साध्यसमो हेतुः सिद्धो साध्यस्य जुज्यते-

(गौड़पादीय०)

आप कहते हैं कि "**जीव**" अविद्योपाध्यु पहित है किन्तु यह ठीक नहीं सबके मत में कार्योपाध्युपहित है। अतः वेदों में कार्योपाध्युपहित जीव माना गया है। अनुमान बिना दृष्टान्त के नहीं हो सकता देखिये-"**अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्त नास्ति वै**"-(गौड़पादीय०) किसी वृक्ष में जीव को पहले सिद्ध कर लीजिए तब शास्त्र के प्रमाण से सुख दुःख आदि का निर्णय कीजिये। जीव जैसे-जैसे कार्य करता है वैसे-वैसे शरीर को धारण करता है: इसमें कोई प्रमाण नहीं कि "**जीव किन्हीं कर्मो से वृक्षों में जन्म लेता है**"। तथा उनमें किसी ने आज तक मूर्च्छा नहीं देखी प्रत्यक्ष आदि का अभाव इस विषय में स्पष्ट है मूर्च्छा के होने का काल बताना चाहिए ? रोग में वृद्धि तथा हास भी तो होता है, मूर्च्छित मनुष्य में भी कभी मूर्च्छा बढ़ जाती है कभी घट जाती है परन्तु वृक्षों में ऐसा कहां है ? वृक्षों मे मूर्च्छा की वृद्धि तथा न्यूनता में कोई प्रमाण देना चाहिए "संखिया, **मनुष्य को नहीं मारता किन्तु "संखिया" का खाना मारता है** इसी प्रकार किसी मनुष्य को वृक्ष नहीं मारता किन्तु वृक्ष से गिरना मारता है अतः "**जड़**" भोक्ता नहीं हो सकता, भोग योनि के लिए नियम चाहिए। "**मूर्च्छा**", कोई पृथक् दशा नहीं है – "**आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा**" – (गौड़पादीय०) जिस वस्तु का आदि और अन्त नहीं होता वह वर्तमान में भी नहीं होती देखिये– "**मूर्च्छा**" अपने काल से पहले न थी किन्तु जागरणावस्था थी, स्वकाल के पश्चात् भी नहीं होती प्रत्युत जागरण अवस्था ही होती है अतः आद्यन्त में जागरणावस्था के होने से मध्य में भी "**जागरण**" अवस्था ही थी अब शेष रही यह शंका कि यदि मध्य में भी "**जागरण**" ही है तो अब के समान मूर्च्छा में ज्ञान-ज्ञान (इन्द्रियजन्य) क्यों नहीं होता ? सो साफ जाहिर है कि मन की "**चञ्चलता**" में ज्ञान नहीं हो, मूर्च्छा में भी मन चञ्चल होता है अतएव ज्ञानाभाव है, यह नहीं कि जागरणाभाव के कारण ज्ञानाभाव हो गया ! क्योंकि ऐसा प्रायः होता है कि जिस काल में मन पर कोई आभास नहीं होता तो "**मूर्च्छा**" हो जाती है शास्त्रों में "**मूर्च्छा**" कोई अलग अवस्था नहीं मानी गई। आयुर्वेद्यक में अवस्था नहीं मानी गई बल्कि "**रोग**" माना गया है। तथा वृक्षों में आप जन्म की मूर्च्छा बताते हैं ? यह ठीक नहीं हैं क्योंकि जन्मकाल में हर एक प्राणी जागता हुआ पैदा होता है। सोता हुआ या मूर्च्छित या स्वप्न दशा में कभी कोई पैदा नहीं होता। यह बात सुस्पष्ट है, फिर दृष्टान्ताभाव में आप "**अन्तः संज्ञ**" कैसे कह सकते हैं ? पहले युक्ति द्वारा वृक्षों में जीव की सत्ता सिद्ध कर लो तदनन्तर मनुस्मृति से "**अन्तः संज्ञत्व**" पर भी विचार हो लेगा अन्यथा मनुस्मृति आदि "**साध्यसम**" होने से किञ्चित्कर होंगे। और संसार के अन्दर वृक्षों में जीव के साथ व्याप्तिग्रह न होने से जीवाभाव सर्वसाधारण में प्रख्यात है। अतः वृक्षों में कोई जीव जाव नहीं है ! और असहाया मनुस्मृति कैसे प्रमाण मान ली जाये ? क्योंकि वेदमूलकस्मृति ही प्रमाण हुआ करती है। स्मृतियों में मिलावट हो सकती है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

जिस प्रकार मनुष्यों में वाह्यवुद्धि होती है अर्थात् वाहर की ओर इन्द्रियों के व्यापार से प्रत्यक्षादि का ग्रहण जैसे मनुष्य आदि करते हैं वैसे वृक्षों में नहीं किन्तु वृक्ष अन्तःकरण से सुख दुःख को अनुभव करते हैं अतः अन्तःसंज्ञ हैं। यह मनुस्मृति निर्मूल नहीं है, अथर्ववेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषद् से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध कर चुका हूँ तथा अन्तसंज्ञता वेदानुकूल होने से (परतः) प्रमाण है इस वात को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी मानते हैं। फिर भी आप युक्ति से सिद्ध हो तो शास्त्र को मानेंगे नहीं तो शास्त्र साध्यसम ही रहेगा इसके क्या मानी ? ऐसा मानने से वेदादिशास्त्र प्रत्यक्षानुमानादि के आधीन होने के कारण स्वतः प्रमाण न रहेंगे। वेद विरुद्ध आपका तर्क कुछ नहीं कर सकता, अतः वेदानुकूल तर्क हम कर रहे हैं आपको वह माननीय होना चाहिए। अतःकरणोपाधि से कार्योपाधि अभिप्रेत है। तथा प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियजन्यत्व होने का नियम नहीं हैं। इन्द्रियाभाव में परमात्मा को ज्ञान कैसे हो जाता है ? तथा छोटे वेटे के जन्म की खुशी किसी इन्द्रिय का विषय नहीं हैं पर प्रत्यक्ष अनुभूत है और सब किसी को होती है अंधेरे के प्रत्यक्ष विना इन्द्रियों के कैसे हो जाता है ! अंधेरा भावरूप नहीं क्योंकि वह प्रकाश के आने पर नहीं रहता वह अभाव रूप भी नहीं क्योंकि प्रतीत होता है। फिर आंख के अन्धे होने के कारण अन्धकार कैसे प्रत्यक्ष हो जाता है ! तथा भारीपन किस इन्द्रिय से ग्रहण होता है। भारीपने को सभी अनुभव करते हैं अतः विना इन्द्रियों के भी अनुभव हो सकता है, एवं भोक्ता भोग्यादि की भी कोई व्यवस्था नहीं है यह बात पहले स्पष्ट कर चुका हूँ। मूर्छा को जागरणावस्था नहीं मान सकते –"आदावन्ते च" इत्यादि सृष्टि के सम्बन्ध की वात है, यदि यही नियम है, तो सुषुप्ति भी जागरण है, क्योंकि सुषुप्ति के आदि और अन्त में जागरण होता है, तो मध्य में भी जागरण होना चाहिए एवं जागरण भी सुषुप्ति होना चाहिए यह क्या बात हुई ? सृष्टि से पूर्व भी प्रलय था, अन्त को भी प्रलय होगा, अतः अब भी प्रलय है ? इसे कौन मान लेगा ? ....श्रोतागणों में चारों ओर सन्नाटे का आलम ....। तथा मूर्छाकाल में मन विचलित नहीं होता इसे सव जानते हैं। प्रत्युत सुषुप्ति के समान विशेष बाह्य पदार्थो का ज्ञानाभाव होता है। "क्लोरोफ़ार्म" से मूर्च्छित कर तज़ुरवा किया जा सकता है। अतः मूर्च्छा में मन की चंचलता के विषय में कोई प्रमाण नहीं है। स्वतन्त्र तथा उच्छृंखल तर्कना को छोड़कर शास्त्रानुकूल तर्क कीजिए। "साध्य सम् है" इस बात पर विचार कीजिये –

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

जब आप वृक्षों को मूर्च्छित मानते हैं और मूर्च्छा दशा में ज्ञान का अभाव मानते हैं, तो वृक्षों को भी ज्ञान नहीं होना चाहिए, परन्तु आपके कथन में **"व्याघातदोष है"**। किसी वस्तु का प्रत्यक्षादि अनुभव, अंतःकरण तथा इन्द्रियों के बिना नहीं हो सकता। अंधेरे का प्रत्यक्ष भी चक्षु से होता है, देखिये– **"यद्गुणो येनेंछ्रियेण गृहयते तन्निष्ठाजातिस्तदभावश्चते नेव गृह् ते"** इस नियम के प्रकाशाभाव या तेजोऽभाव, अँधेरा आँख से ही ग्रहण होता है, क्योंकि प्रकाश को नेत्र ही ग्रहण करता है तथा मूर्च्छाकाल में मन चंचल ही होता है, क्योंकि मकान की छत से गिरते समय मन चंचल तथा विकल हो जाता है, अतः मूर्च्छा से पहले मन का चंचल होना अनुभव सिद्ध है तथा मूर्च्छा के पश्चात् भी मन की विकलता स्पष्ट है, अतः यह सिद्ध हुआ कि मूर्च्छाकाल में भी मन चंचल होता है। यह क्योंकर मान लें कि वृक्ष अन्तःकरणोपादि से युक्त हैं इसमें क्या दलील है ? युक्ति के बिना किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता–"मद्याजी" गीता का अर्थ युक्ति के बिना कैसे निर्णीत हो सकेगा ? मूर्च्छित वृक्ष अन्तः सुखादि को कैसे ग्रहण कर सकेगा ? क्योंकि मूर्च्छा में आप ज्ञानाभाव मानते हैं। यही **"विघात"** दोष है।

"हरकते-इरादी" चेतन का धर्म है, यदि वृक्षों में हरकते–इरादी (विशेष गति–इच्छापूर्वक प्रवृत्ति) हो तो वहां चेतन माना जा सकता है, परन्तु वृक्षों में केवल **"हरकते-इन्तजामी"**, (सामान्यगति) ही पाई जाती है अतः **"वृक्षों में जीव नहीं है"**। भाष्याचार्य पण्डित हरनामदत्त शास्त्री जी ने कहा कि–सामान्य बिना विशेष के हो नहीं सकता !

नोट –

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी ने झटपट उत्तर दिया कि– **"प्रलय में होता है"** इतने में परस्पर आग्रह बढ़ने लगा कि श्री प्रधान महोदय ने शर्मा जी को न बोलने की प्रार्थना की, वे चुप हो गये। खूब खिलखिला कर सभा में हंसी हुई। स्वामी जी ने फिर बोलना प्रारम्भ किया।

लेखक –

"रलाराम"

एक प्रकार की क्रिया सामान्यकारण की द्योतक है। यह वृक्षों में प्रसिद्ध है, अतः वृक्षों में हरकते–इन्तजामी है। हरकते–इरादी नहीं। अतएव वृक्ष जड़ हैं, क्योंकि ईश्वर की हरकते इन्तजामी से उनके उत्पन्न होने, बढ़ने और फूलफल कर सूख जाने का जैसा नियम बांधा गया है उसी के अनुसार उनकी अवस्थाएं बदल–बदल कर रह जाती हैं, कोई ऐसी बात वृक्षों में नहीं पाई जाती जिससे यह निर्णय किया जा सके कि वृक्षों में हरकते–इरादी भी है अतः वृक्ष जड़ हैं। दुःखादि स्वसंवेद्य हैं औरों को क्या ख़बर कि अमुक पुरुष को दुःख हो रहा है या नहीं **"जिस तन लागे सोई जाने"**। यह बात सर्व साधारण में प्रसिद्ध है–अतः **"वृक्षों को सुख दुःख होता है"**–इसमें क्या प्रमाण है ?

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी –

यदि मूर्च्छाकाल में, या मन की चंचलता में सुख या दुःख का होना आवश्यक है तो इसमें अनुभव का आकार आप बताएँ, मुझसे क्या पूछते हैं ? मैं तो मूर्च्छा में (बाह्य) ज्ञान का अभाव मानता हूँ। ज्ञान आप मानते हैं क्योंकि जागरणावस्था में ही मूर्च्छा का अन्तर्भाव करते हैं, प्रमाण उलटा मुझसे मांगते हैं, जब आप मूर्च्छा में ज्ञान मानते हैं तो आपको बताना चाहिए कि मुझे ? ऐसा पूछना आपका **"वदतोव्याघात"** है और मैं जो मूर्छा में ज्ञान का अभाव मानता हूँ, वह विशेष ज्ञान का अभाव मानता हूँ, अर्थात् मूर्च्छित को बाह्येन्द्रियों से होने वाला ज्ञान नहीं होता सामान्यज्ञान तो होता ही है क्योंकि मूर्च्छित पुरुष मूर्च्छा से छूट कर कहता है कि–''**अन्धे तमस्येतान्तम् कालं प्रक्षिप्तो भूवम्, न मया किंचिच्चेतितम्**'' इत्यादि स्मृति मूर्च्छाकाल के अनुभव की साधिका है। ऐसे ही वृक्षों को अनेक जन्म कृत–सुकृत दुष्कृतों के कारण से बहुत सन्तान तथा सुखलब होता ही रहता है। वृक्षों को शरीर नियमित्तक वेदना नहीं होती, यह बात युक्तिपूर्वक मैं पहले ही कह चुका हूँ। चेतन का लक्षण आप **"हरकते इरादी"** अर्थात् जो करने, न करने या अन्यथा करने में समर्थ हो, करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है मुक्तावस्था में जीव जड़ है या चेतन ? यदि जड़ मानोगे तो चेतन का जड़ होना असम्भव है। यदि चेतन है तो बताइये उसकी **"हरकते इरादी"** मुक्तावस्था में क्या काम करती है ? यदि केवल सुख भोगता है तो सुख को आप स्वसंवेद्य मानते हैं, **"परसंवेध"** तो सुख आपके मत में हो ही नहीं सकता, फिर क्या दलील है कि मुक्ति में सुख होता है ? हम तो यह मानते हैं कि स्वसंवैद्य भी चेष्टादि से परसंवैद्य हो जाता है। एक पुरुष दूसरे की ज्ञान इच्छादि को जान जाता है, योगी तो दूसरे के मनागत को दूर से जान जाते हैं, संसार में कोई बात भी केवल परसंवैद्य नहीं रह सकती, जब **"तिनके से लेकर ईश्वर तक के ज्ञान से मुक्ति होती है"**, तो स्व–पर–संवेद्य का क्या कहना ? ''**एकेन विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्**''। एक परमात्मा के ज्ञान से जैसा सबका ज्ञान हो जाता है ऐसे ही परसंवैध, स्वसंवैद्य हो जाता है। वेदविरुद्ध कणाद का प्रमाण कुछ नहीं कर सकता, हमने वेदों के तथा वेदानुकूल अन्यान्य प्रमाण दिये, उनका कुछ उत्तर आपने नहीं दिया। आगे देखिये –

आर्य धर्म्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतरः।।

(मनुस्मृति)

आस्तिकों के यहां वेदशास्त्रविरुद्ध किसी का वचन प्रमाण नहीं माना जा सकता, शास्त्रविरुद्ध तर्क हम प्रमाण नहीं मानेंगे–"**तर्काप्रतिष्ठानात्**" भोक्तृ–भोग्य–विषयक–व्यवस्था में जो विचार हमने दिए थे उनका कुछ उत्तर नहीं है, मूर्च्छाकाल में, मैं मनुष्य में दुःख मानता हूं। आपको दुःख नहीं तो सुख ही मानना चाहिए ! अन्यथा उभयाभाव में मूर्च्छित मनुष्य जड़वत् (पाषाण सा) आपको मानना होगा?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज –

"**पारिभाषेन्दु**" आदि के प्रमाण ठीक नहीं हैं, क्योंकि "**नागेश**" ऋषि नहीं थे। "**शेखर**" तो काकभाषा है छान्दोग्य के प्रमाण में "**वृक्ष**" शब्द का अर्थ "**शरीर**" है "**शाखा**" से अभिप्राय "**अवयव**" से है, क्योंकि वहां "**म्रियते**" पद आया है, "**मरना**" शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए नहीं आता। कालिदास तथा मल्लिनाथ का प्रयोग प्रमाण नहीं हो सकता "**कवयः किन्न जल्पन्ति**" ?

नोट –

.... इस वाक्य के सुनते ही सभा में ....हंसी .... आप लोग ध्यान से सुनें, लौकिक प्रयोग शास्त्र के अर्थ करने में निर्णायक नहीं हो सकते। किसी आर्य प्रमाण से सिद्ध कीजिए। "**अथर्ववेद**" के दोनों मन्त्रों का पण्डित भीमसेन का किया अर्थ प्रमाण नहीं माना जा सकता। किसी ऋषि का भाष्य उन मन्त्रों पर पेश कीजिए तो विचार किया जा सकता है। "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" तथा "**सत्यार्थप्रकाश**" में विरोध होगा, यदि वृक्षों में जीव माना जाएगा। आपने उस विरोध का कुछ परिहार नहीं किया, श्री कणाद महर्षि के प्रमाण का आपने कुछ समाधान नहीं किया। जागरण–दशा में अवश्यमेव सुख या दुःख का अनुभव हो, इस बात का नियम नहीं है। क्योंकि जब चित्त सर्वात्मना किसी वस्तु में आसक्त होता है तो उस समय सुख या दुःख कुछ नहीं होता एवं अत्यन्त चंचलता में भी कुछ ज्ञान नहीं होता, "**परसंवेद्य**" के "**स्वसंवेद्य**" होने में भी तो कोई प्रमाण चाहिए? वृक्षों को सुख या दुःख होता हैं, इस विषय में क्या प्रमाण है? अतः वृक्षों के मूर्च्छितावस्था में मानने से अन्तःसंज्ञता या सुख दुःख समन्वितत्व का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, और इन सबके अभाव में, वृक्ष सजीव हैं यह भी नहीं कह सकते। अतः वृक्षों में अभिमानी जीव का मानना भ्रान्तिमात्र है। तथा ईश्वर कनोरुप इन्द्रिय से जाना जाता है। गुण से गुणी का अनुमान किया जाता है, क्रिया से क्रियावान् का अनुमान किया जाता है, अतः सृष्टि के निरीक्षण से जो परमात्मा का अनुमान किया जाता है, वह मन से ही तो किया जाता है? अतः ईश्वरादि परसंवेद्य नहीं हैं। संसार में धोखा इसीलिए होता है कि मनुष्य परसंवेद्य को नहीं जान सकता, यदि परसंवेद्य, स्वसंवेदय हो जाया करे तो कभी कोई धोखा न खा सके। अतः वृक्षों, को ज्ञान होता है यह बात तब तक नहीं मानी जा सकती जब तक कहीं व्याप्तिग्रह न हो। बस ! वेद, स्मृति और युक्ति से किसी प्रकार भी वृक्षों में अभिमानी जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता।

नोट –

स्वामी जी के भाषण के अनन्तर ही एक ओर से झटपट यह शब्द सुनाई दिये कि– "**अब शास्त्रार्थ बन्द हो जाना चाहिए**"; बहुत सी खलकत काँगड़ी से यहां लौट कर आई है और स्वामी जी के व्याख्यान को सुनने के लिए समुत्कण्ठित हैं, बहुत "हाँ–हाँ, नाँ–नाँ" के कोलाहल के पश्चात् यह निश्चित हुआ कि अबकी बार पण्डित गणपति शर्मा जी बोल लें उसके पश्चात् (चूंकि भाषण का अन्त्यावसर स्वामी जी का था) यदि स्वामी जी चाहें तो उत्तर देकर यहीं से अपना व्याख्यान आरम्भ कर दें। परन्तु स्वामी जी ने पण्डित जी के पश्चात् व्याख्यान ही दिया। यह इसलिए नहीं कि उत्तर नहीं दे सकते थे, प्रत्युत इसलिए कि व्याख्यान सुनने के लिए लोग बहुत उन्मनस्क हो रहे थे, शास्त्रार्थ को भावी वर्ष पर बड़े समारोह से करने के लिए

मुलतवी (स्थगित) किया। परन्तु शोक ! की श्री पण्डित जी दागे मुफारकत दें गए। नहीं तो आगामी वर्ष श्री पण्डित आर्य मुनि जी आदि के साथ भी उनके शास्त्रार्थ होते जो कि बड़े मारके के होते। परन्तु शोक ! कि अब वह तर्क चूड़ामणि व्याख्यान वाचस्पति स्वर्ग में बुध और बृहस्पति की प्रतिभा–परीक्षा के लिए इस अवधमानवलोक को छोडकर सिधार गए !!

"रलाराम"

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी का स्वपक्षोपसंहार –

मेरी ओर से दो मन्त्र अथर्ववेद के छान्दोग्योपनिषद् (शंकर भाष्य) मनुस्मृति महाभाष्य, तथा ब्राह्मण प्रामाण्योपजीवक श्री नागेशरचित परिभाषेन्दु शेखर (काक भाषा) में अभिमानी जीव के प्रतिपादक पेश किये गये। एवं सत्यार्थप्रकाश तथा मल्लिनाथ के प्रमाण भी दिए गये। जो सब के सब वेदानुकूल होने के कारण उपादेय हैं। वेदमन्त्र जब तक कोई दोष नहीं बताया जाये, तब तक वह द्वेय नहीं हो सकता, सत्यार्थप्रकाश और जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का विरोधाभास दिखाया गया, उसका भी निराकार कर दिया। प्रमाण सम्बन्धी जो अन्याय प्रकरण प्रवाहपतित काकभाषा सम्बन्धी आक्षेप हुए उन सबका संक्षेप से विवरण पूर्वक तथार्थ परिक्षेप किया गया परिभाषेन्दु शेखर में नहीं है, हाँ ! यदि उसमें नवीन न्याय की फाकिकाओं का समावेश किया जाये तो बेशक काकभाषा हो जाती है। वस्तुतः यह ग्रन्थ महाभाष्यान्तः प्रतिपादित परिभाषाओं का एक गुटका है। जो नागेशभट्ट महामुनि पतण्जलिमहाराज की उक्ति के बिना एक शब्द भी प्रमाण नहीं मानते, उनके ग्रन्थ को काकभाषा कहना सज्जनजनविगर्हित है। फिर आप नियमानुसार जब तक उनकी उक्ति का खण्डन नहीं करते केवल काकभाषा कह कर टालने से विद्वत्तो आप नहीं कर सकते। प्राणी अप्राणी शब्द का निर्णय व्याकरण से ही होगा–"जीव" धातु प्राणनरूप अर्थ में आता है, इससे यह बात स्पष्ट है कि "प्राण" तथा "जीव" पर्यायवाची शब्द हैं, तो वेदों में, वृक्षों में, प्राण का कहना जीव की संज्ञा का निर्णायक होगा, इत्यादि सब युक्तिपूर्वक कहा जा चुका है। "वृक्ष" शब्द का अर्थ– **"विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च संध्या, वेदा शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् तस्मान्मूल यत्नतो रक्षणीयं, छिन्ने मूलेनैवशाखा न पत्रम्"**।।

इस (वृद्धचाण्क्य) के अनुसार सर्वत्र गौण नहीं किया जा सकता। नहीं तो **"द्वा सुपर्णा"** में आपका रूपकालंकार न बन सकेगा। अतः प्रकरण आदि की व्यवस्था से, लोक, व्याकरण, कोश आदि सब प्रमाण मानना पड़ेगा। मूर्च्छा में यदि सुख दुःख का अभाव होगा तो आत्मा, पाषाणवत् (जड़) हो जायेगा।

नोट –

अन्त में, इस प्रकार व्याख्यान के पश्चात्, हाथ जोड़कर बड़े आदरभाव से स्वामी जी महाराज की स्तुति तथा सभी का धन्यवाद कर श्री पण्डित गणपति शर्मा जी मौन हुए, **"और ऐसे मौन हुए कि अब ऐसे शास्त्रार्थ और व्याख्यान स्वप्न हो गये"**। इसके पश्चात् श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ, उसके आदि शब्द थे कि– **"आर्य लोगों का शास्त्रों को न समझना यह साबित करता है** कि आर्य लोग **स्वाध्याय नहीं करते ...."** इत्यादि, वह एक सारस्वत महानद था–कि अनेक युक्ति प्रमाणाख्यानों की तरंगों से समृद्धवेग बह रहा था। डेढ़ घन्टे तक व्याख्यान देकर स्वामी जी रात्रि को ११ बजे की गाड़ी में रावलपिण्डी को चले गये, क्योंकि उनको **"गुरुकुल पोठोहार"** के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना था।

लेखक–

"रलाराम"

।। इति।।

आवश्यक –

आगे आप इसी शास्त्रार्थ को पद्य बद्ध पढ़ेंगे जिसको महाविद्यालय ज्वालापुर के उपाचार्य **"श्री डाक्टर सत्यव्रत शर्मा"** अजेय जी ने "गागर में सागर" भरने का प्रयत्न किया है।

"सम्पादक"

इक्यावनवें शास्त्रार्थ का पद्यानुवाद

"स्थावर में जीव विषयक विचार" अपूर्व शास्त्रार्थ, आर्यसमाज के दो अप्रतिम तार्किक विद्वान पण्डित गणपति शर्मा एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के मध्य गुरूकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) की पुण्य भूमि में जो आठ अप्रैल सन् उन्नीस सौ बारह को पंडित पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता में हुआ था। जिसे तत्काल पण्डित रलाराम जी ने सुनकर लिपिबद्ध किया था, हिन्दी तथा संस्कृत भाषा के विद्वान, सुप्रसिद्ध साहित्यकार **"श्री डॉ० सत्यव्रत शर्मा-अज्ञेय"** उपाचार्य गुरूकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने अपने अप्रकाशित महाकाव्य दर्शनानन्द के नवम सर्ग में इसे **"खंडन-मण्डन"** शीर्षक से **"पद्यबद्ध"** किया है। पद्य में गद्य ज्यों का त्यों तो समा नहीं सकता, परन्तु कवि ने सागर को गागर में भरने का जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। पाठकों के मनोरंजन तथा ज्ञान वृद्धि के लिए यह शास्त्रार्थ प्रस्तुत है।

"सम्पादक"

पद्यानुवाद—

विभुपदाम्बुज की अनुरक्ति दे। हृदय में अपनी अभिव्यक्ति दे।
सुमति दे, यश दे, कृति शक्ति दे। विभव दे, भवमें, भव भक्ति दे।।१।।
जो अपरिमेय है अतुल, अजेय, नियन्ता। जनयिता सभी का है, वह सबका हन्ता।
तं इन्द्रं, मित्रं, वरुणं वा जल्पन्ति। एक सद्विप्रा बहुधा सदा वदन्ति।।२।।

कमलासन पर सद विराजित, सरस्वती माँ तुझे प्रणाम।
मेरा ही मुख कमल बनाले मातैश्वरि तू अपना धाम।।१।।
हृत्तन्त्री को कर दे झंकृत, मात अलंकृत करदे छन्द।
सार - सार दे देवी शारदे! दे प्रसार दे अगमानन्द।।२।।
अम्बे! मेरे हृदय - हंस को, तू अपना वाहन ले मान।
मेरी तुतली-तुतली रचना-वचनावली में भर दे प्राण।।३।।
गणपति शर्मा और दर्शनानन्द सुधी का शुभशास्त्रार्थ।
अब मैं चित्रित करूं सज्जनों! बिल्कुल ही निष्पक्ष यथार्थ।।४।।

सन् उन्नीस सौ बारह ईस्वी, तिथि थी श्रेष्ठ आठ अप्रैल।
सभा महाविद्यालय में थी, जुड़ी जहां विप्रों की गैल।।१।।
पंडित "पद्म सिंह जी शर्मा" सम्पादक थे बने प्रधान।
वादी-प्रतिवादी दोनों को समय बराबर किया प्रदान।।२।।
पंडित जी वादी, स्वामी जी थे प्रतिवादी, उग्र अतीव।
वाद विवाद विषय था निश्चित, "वृक्षों में अभिमानी जीव"।।३।।
धन्य-धन्य यह ज्वालापुर है, धन्य यहाँ का गुरुकुल धाम।
उर ज्वाला को जहाँ मिटाने, आते रहते विज्ञ सुनाम।।४।।

तर्क शिरोमणि, निरुपम वक्ता, महारथी दोनों विद्वान।
हृदयस्पर्शी, मर्मस्पर्शी, थे दोनों के वाणी बाण।।१।।
गुरूकुल का आँगन सुरम्य था, जिसमें शोभित बाग विशाल।
थल में भी थे "पद्म" सुविकसित कुदरत ने किया कमाल।।२।।
दुर्वादल की दरी बिछी थी, लम्बा चौड़ा था मैदान।
था कुदरती शामयाने सा, आसमान का तना वितान।।३।।
वागभट्टों का युद्ध देखने, हुए सहस्त्रों नर एकत्र।
पीतवस्त्र धारी वटु शोभित, जैसे उदयोन्मुख नक्षत्र।।४।।

सब प्रशान्त बैठे कतार में उत्कंठा से हो उत्कर्ण।
और दूसरी ओर विराजे थे सन्यासी गैरिक वर्ण।।१।।
थी विवाद - संगर - दिद्वक्षा, उर में सुश्रुषा के भाव।
हुए आसन्ननसीन साधुजन जीवन्मुक्त सुशील स्वभाव।।२।।
शेष, श्रौतृ मण्डल जमीन पर ड़टा, लिये अन्तस् में चाव।
खींच वहाँ लाया उन सबको, विद्वानों का पुण्य प्रभाव।।३।।
कोई कागज ढूंढ़ रहा है कोई पैन्सिल रहा तराश।
नोट कर सकें सार-सार को सबके मन में थी यह आश।।४।।

सरस सुधा रस निष्यन्दी उस भाषण नंद्र की धार अपार।
समा सके कैसे कागज में, विज्ञ वाचकों ! करों विचार।।१।।
किन्तु जृहनु सम वहां एक ऋषि "रलाराम" जी थे मौजूद।
हुए सफल भाषण लेखन में, मिली उन्हें मन्जिल मकसूद।।२।।
रोल - रोल कर उस प्रवाह से रत्न, रची वचनों की माल।
हुई प्रकाशित "भारतोदय" में पढ़ कर पाठक हुए निहाल।।३।।
उसकीं हीं आधार मान कर, लिखता हूं मैं यह अध्याय।
कैसा बना, बुरा या अच्छा, पढ़कर करें प्रज्ञजन न्याय।।४।।

तत् सद् ब्रह्म सुमर गणपति ने, भाषण किया प्रथम प्रारम्भ।
प्रतिभाशाली अद्‌भुत वक्ता, वह थे आर्य-जगत् के स्तम्भ।।१।।
वह बोले - मेरा मत है यह, "वृक्षों में अभिमानी जीव"।
श्रुति अथर्व के प्रथम कांड से, रखता हूं निज मत की नींव।।२।।
"इदं जनासो विदथ" मन्त्र का पूर्ण रूप से धरिए ध्यान।
और "यैन प्राणन्ति वीरूध" का आशय भी लीजै जान।।३।।
"जिससे लता जीव को धारण करती है" यह अर्थ विशिष्ट।
वृक्ष-जाति के अतंर्गत ही लता-आदि होती आविष्ट।।४।।

इससे यह पाया जाता है, वृक्षों में होता है जीव।
इसी भांति वेदों में मिलते हैं प्रमाण उत्कृष्ट अतीव।।१।।
श्रुति अथर्व के कांड आठ, अनुवाक् चार का षष्ठ सु-मन्त्र।
"जीवन्तीमोषधीमह्म" की, करे घोषणा सुखद स्वतन्त्र।।२।।
"जीवित औषधि" का मतलब है, औषधि में रहता है जीव।
बतलाता छान्दोग्य उपनिषत् भी वृक्षों को सतत सजीव।।३।।
सौम्य! अगर तुम महावृक्ष की जड़ काटो तो टपके क्षीर।
मध्य भाग काटो तो, तो भी टपके क्षीर, सुनो धर धीर।।४।।

अग्रभाग काटो तो, तो भी स्त्रवित क्षीर होता है सौम्य।
क्षीर-स्रवण से ऐसा लगता, मानों तरू रोता है सौम्य।।१।।
जीवात्मा से व्याप्त वृक्ष पैपीयमान रहता मुदवन्त।
जीव छोड़ दे जब शाखा को, मुरझा जाती वह हा हन्त।।२।।
तजे दूसरी शाखा को तो, वह भी मुरझाती तत्काल।
अगर तीसरी को तज दे तो, उसका भी हो ये ही हाल।।३।।
अगर छोड़ दे वह समग्र को तो! समग्र तरू जाता सूख।
जीव-रहित तुम इस शरीर को भी समझो बस सूखा रूख।।४।।

श्रुतियों के पश्चात् मनुस्मृति का भी करता हूं उल्लेख।
दस-श्लोक अध्याय प्रथम के, इकतालिसवें से लें देख।।१।।
यो मरीचि आदिक महात्म जन ने मेरी आज्ञा उर-धार।
तपोयोग से रचा सकल जग, स्थावर-जंगम, कृति अनुसार।।२।।
इससे होता सिद्ध, जीव यह अपने कर्मों के अनुसार।
भिन्न योनियां धारण करता, जीता, मरता बारम्बार।।३।।
कौन-कौन यह योनि धारता, किस किस कर्मधर्म-अनुसार।
तुम्हें बताता हूं यह सब मैं, श्रुतियों का लेकर आधार।।४।।

पशु, मृग, व्याल, पिशाच, रक्ष-जन, मनुज जरायुज है थल-जात।
पक्षी, सर्प, नक्र मीनादिक, कहलाते अंडज जल-जात।।१।।
दंश, मशक, यूकाएं, मक्खी, मत्कुण को लो स्वेदज जान।
बीजकाण्डरूह, स्थावर, वीरूध, वृक्ष, बैल, पुष्पित फलवान।।२।।
कहलाते उद्भिज्ज सभी यह, गुच्छ, गुल्म, तृणा लता-प्रतान।
अपने गुण-कर्मानुसार ही, इनमें जनमें जीव, सुजान।।३।।
शंका हो उत्पन्न यहां पर, कैसी है ये अद्भुत रीति।
जीव वनस्पतियों में तो क्या चेतनता की हो न प्रतीति।।४।।

वृक्षलतादिक तम-वैष्टित, सुख-दुःख समन्वित अन्तः संज्ञ।
करते सुख-दुःख का अनुभव हैं, समझो तुम मत इन्हें असंज्ञ।।१।।
पावस के पानी को छू कर, आनन्दित होते हैं वृक्ष।
महाराज मनु का यह मत है, रक्खा मैंने सभा समक्ष।।२।।
"जीवोत्पत्ति स्थान सभी है, ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त"।
इस प्रकार मनु ने भी माना वृक्षो में है जीवअनन्त।।३।।
वेद-विहित है ग्रन्थ मनुस्मृति, जिसमें श्रुति-संस्कृति-प्राधान्य।
श्रुति से, उपनिषदों से, स्मृति से, हमें जीव वृक्षों में मान्य।।४।।

इतनी सुनकर स्वामी बोले तथ्य रखो क्यों तोड़-मंरोड़।
इन अथर्व वैदिक मन्त्रों का, अर्थ लिया मनमाना जोड़।।१।।
पंडित भीमसेन-कृति व्याख्या, आर्यो ! हमें नहीं स्वीकार।
इन मन्त्रों का दयानन्द जी, सरस्वती कृत सुनिए सार।।२।।
दो प्रकार की गतियां होती, इक विशेष और इक सामान्य।
उर्दू, में "हरकते इरादी" और "इन्तजामी" ये मान्य।।३।।
अर्थ "येन प्राणन्ति वीरुधः" का सुजान यो लेवे जान।
जो परमात्मा की ताकत से धारण करें लताएं प्राण।।४।।

वह "हरकते इन्तजामी" सविशेष मानना है अययार्थ।
हैं अभिमानी जीव-रहित ये, जग के रवि शशि आदि पदार्थ।।१।।
जीव न होने से वह सब "हरकते इरादी" से लाचार।
घूम न सकते वे स्वेच्छा से, लता न सकती जीवन धार।।२।।
नर-शरीर में पाई जाने वाली गति है संकल्पीय।
उसको वैसे करता मानव, जैसें होती चाह तदीय।।३।।
मगर खून की हरकत तो हरकते इन्तजामी है नित्य।
प्रभु-प्रबन्ध से उदित अस्त हो, नभ-नक्षत्र, चन्द्र-आदित्य।।४।।

है हरकतें इन्तजामी ही, नर-निर्मित घड़ियों की चाल।
दीख रहा है जग-रचना में, स्रष्टा का ही हमें कमाल।।१।।
इसी तरह यदि लतिकाओं में, गति लख हो जीवन-अनुमान।
उसको बस "हरकते इन्तजामी" ईश्वर की लीजै मान।।२।।
"जीवन्तीमोषधीम्" मन्त्र में भी "सामान्य" गति अभिप्रेत।
वेद-विरुद्धास्मृति भी है यह, अप्रमाण मित्रों इस हेत।।३।।
ऋग्वेदादिकभाष्यभूमिका, पुरुष सूक्त का मन्त्र समर्थ।
"त्रिपादूर्ध्व" आदिक है, पद "साशनानशने" का ऋषिकृत अर्थ।।४।।

उसकी ही सामर्थ्य - शक्ति से, सर्वविश्व होता उत्पन्न।
एक जीव जंगम, चेतन है, जो खाता पीता है अन्न।।१।।
जीव दूसरा, करे न भोजन, "पृथिव्यादि" जड़, प्राण विहीन।
प्रभु की ताकत से ही हो उत्पन्न द्विविध जग, नित्यनवीन।।२।।
स्वामी दयानन्द ने "अनशन" पद का है यों लिखा अर्थ।
जो कि जीव सम्बन्ध रहित जग, पृथिव्यादि वह जड़ असमर्थ।।३।।
"पृथिव्यादि" में आदि शब्द का अर्थ "वृक्ष" हमको अभिप्रेत।
"जीव-रहित होती है" पृथिवी अतः वृक्ष निर्जीव, अचेत।।४।।

वेदों में भी वृक्षों में पाया जाता है जीवाभाव।
"यो विश्वस्य" आदि मन्त्रों में व्यक्त हुआ है ऐसा भाव।।१।।
इसमें "जगतः प्राणतस्पतिः" पद का अर्थ समझिये आप।
"प्राणवान् गतिशील विश्व का, स्वामी वह निर्जर निष्पाप"।।२।।
इसका मतलब जो कि प्राण धारण करता है वह गतिमान।
जो गतिमान नहीं होता है, वह न धार सकता है प्राण।।३।।
अतः सिद्ध होता इस सबसे, वृक्ष नहीं होते गतिमान।
उनमें जीव नहीं होता है, और न उनमें होते प्राण।।४।।

खंडन सुनकर गणपति बोले, सुनो सज्जनों, धर कर ध्यान।
भला "येन प्राणन्ति वीरुधः" में गतियों का कहां बखान।।१।।
है "हरकते-इन्तजामी" का जब न मन्त्र में आया जिक्र।
फिर क्यों ग्राह्य, वजह बतलायें, स्वामी जी बेशक बेफिक्र।।२।।
क्यों छोड़े मुख्यार्थ, और क्यों, गौण अर्थ कर ले स्वीकार।
प्राण प्राण हैं, उनका मतलब "हरकत" बेमानी बेकार।।३।।
"जीवन्तीमोषधीम्" वाक्य में, कहा उल्लिखित गति सामान्य।
जब तक दोष न दरसे तब तक भीमसेन-कृत टीका मान्य।।४।।

जो कि "साशनानशने" की व्याख्या में "पृथिवी-आदि" पदार्थ।
उससे "वृक्ष-लता" आदिक का अर्थ ग्रहण करना अयथार्थ।।१।।
वहां "आदि" पद से होता "जल-वायु" आदि का तात्त्विक बोध।
"वृक्ष" आदि यदि अर्थ करोगे, तो अपूर्ण रह जाये शोध।।२।।
दयानन्द के लेखों में हो, पूर्वापर - सम्बन्ध - विरोध।
वह वृक्षों में जीव मानते, निर्विरोध ननु निर्-अवरोध।।३।।
दो सौ पैतीस पृष्ठ, नवम संस्करण, लखो सत्यार्थ प्रकाश।
किसी जीव को मनुज जन्म देकर ईश्वर ने किया विकास।।४।।

सिंह आदि का क्रूर जन्म है, किया किसी को उसने दान।
हरिण, गाय, पशु आदि योनि में, जन्म किसी को किया प्रदान।।१।।
दिया किसी को जन्म उसी ने "वृक्ष-आदि" कृमि-कीट-पतंग।
यहां स्पष्टतः "वृक्ष-आदि" का, जन्म मान्य जीवों के संग।।२।।
इससे है यह सिद्ध, ब्रह्म जीवों को कर्मों के अनुसार।
वृक्ष आदि इन भिन्न योनियों में उपजाता बारम्बार।।३।।
जो प्रमाण रूपेण किये हैं, उपन्यस्त मैंने श्रुति-मन्त्र।
उनका छोड़ "प्रधान" अर्थ, क्यों "गौण" गहो, होकर निज तन्त्र।।४।।

जो कि "साशनानशने" पद की व्याख्या में वर्णित "पृथिव्यादि"।
आप "आदि" पद से उसके हैं गहते गौण अर्थ वृक्षादि।।१।।
होगा पूर्वापर विरोध यों, ऋषि के लेखों में भी आर्य।
अतः हमें "वृक्षादि पदार्थों की जड़ता है अस्वीकार्य"।।२।।
"चेतन" और "अचेतन" दोनों अर्थों में "जड़" शब्द प्रयुक्त।
जैसे "जाड्यं धियो हरति" में, हुई बुद्धि की जड़ता उक्त।।३।।
जबकि "बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानम्" इक पदार्थ के ही हैं नाम।
फिर मति-जड़ता कैसी बोलो, क्या प्रकाश में तम का काम।।४।।

जड़ता का है अर्थ "कुंठता", नृपति भर्तृहरि को अभिप्रेत।
यही लक्षणा और व्यंजना, शब्द-शक्तियों का संकेत।।१।।
"पृथिव्यादि" में भी जड़ता का, अभिप्राय नहि जीवाभाव।
अपितु अर्थ उसका है, केवल बाह्यज्ञान का सतत अभाव।।२।।
प्रकरणादि की करना अपेक्षा, उपर्युक्त हम कर लें अर्थ।
होगा क्या वह भला आपको, भी अभिष्ट स्वामिन् अव्यर्थ।।३।।
अगर नहीं तो, पक्ष हमारे में क्यों भला "गौण" अभिप्राय।
पक्ष आपके में "प्रधान" हो ! तजे "अर्द्ध जरतीय" न्याय।।४।।

श्री दर्शनानन्द जी बोले - आत्मा और प्राण में भेद।
सिर्फ प्राण ही हैं वृक्षों में, आत्मा नहीं कहें यह वेद।।१।।
किया "येन प्राणन्ति वीरुध" में प्राणों का जो उल्लेख।
जीवात्मा का नहीं, यहाँ लें परमात्मा का प्रकरण देख।।२।।
जिस परमात्मा की ताकत से, करे लताएं धारण "प्राण"।
"येन" शब्द का स्पष्ट अर्थ यह, जीवात्मा का यह न बखान।।३।।
"इदं जनासो विद्धं" मन्त्र में लो उस "महद् ब्रह्म" को जान।
जिस हर की "हरकते इन्तजामी" से लता धारती प्राण।।४।।

गौण अर्थ इस भाँति किया है, हमने प्रकरण के अनुकूल।
"जीवन्तीमोषधीम्" मन्त्र में, अर्थ व्याकरण के अनुकूल।।१।।
"जीव-प्राणने" धातु "जीव" का, मात्र "श्वासलेना" वाच्यार्थ।
"जीती हुई औषधी को" जीवन्तीम् पद का है शब्दार्थ।।२।।
अतः यहां भी "प्राण" का है प्रकट प्रकरण "आत्मा" का न।
है "हरकते इन्तजामी" औषध का धारण करना प्राण।।३।।
जो सत्यार्थ प्रकाश लिखित "वृक्षादि" शब्द को लेकर आप।
जीव मानते वृक्षों में यह "क्रम विरूद्ध" प्रक्षिप्त प्रलाप।।४।।

जिन शब्दों के पृथक्-करण से, या रहने से जिनके लिप्त।
भेद पड़े कुछ नहीं अर्थ में, उनको समझो तुम "प्रक्षिप्त"।।१।।
कोई फर्क नहीं पडता यदि, पद "वृक्षादि" करें पद-मुक्त।
प्रत्युत क्रम सम्यक् हो जाता, तथ्य-कथ्य से हो संयुक्त।।२।।
यदि रहने दें "क्रम-विरोध हो" और साथ ही "भाष्य विरोध"।
अतः यहां "वृक्षादि" शब्द प्रक्षिप्त मानियें सखे! सुबोध।।३।।
"प्रभु ने किसी जीव को मानव सृजा" किसी को सिंह मृगादि।
है वृक्षादि किसी को विरचा, रचा किसी को कृमि-कीटादि।।४।।

उपन्यस्त है यहां ईश की, जंगम - सृष्टि अनन्त अनादि।
पहले मनुज़ पुनः मृग आदिक फिर "वृक्षादि" पुनः कीटादि।।१।।
"क्रम-विरोध" है इस प्रकरण में, इसको लैवें जान सुजान।
जंगम रचना के वर्णन में, स्थावर का क्यों हुआ बखान।।२।।
जंगम मनुज, सिंह, कृमि आदिक, वृक्षादि-स्थावर संसृष्टि।
जंगम में स्थावर का आना, क्रम-विरोध की करता सृष्टि।।३।।
अतः यहाँ वृक्षादि शब्द प्रक्षिप्त, असंगत, तथ्य - विहीन।
इसे अलग कर देने से हो, क्रम-विरोध का दोष-क्षीण।।४।।

ऋग्वेदादिक भाष्य भूमिका से होता है यहाँ विरोध।
भ्वादि जीव-सम्बन्ध-रहित जड़, पृथिव्यादिकम् से हो बोध।।१।।
यदि सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में, छपा हुआ यह पद वृक्षादि।
मानेंगे प्रक्षिप्त नहीं, तो होंगे क्रम - विरोध दोषादि।।२।।
दोनों समकर्त्तृक ग्रन्थों में, पूर्वापर विरोध नहि ठीक।
पृथिव्यादि में आदि शब्द है वृक्ष आदि का स्पष्ट प्रतीक।।३।।
पद वृक्षादि पृथक करने पर ही दोषों का हो परिहार।
होते कीट सदृश सुमनो में, ऐसे पद प्रक्षिप्त असार।।४।।

वृक्षों में है मुख्य जीव नहीं, किन्तु गौण "अनुशायी" जीव।
यह वेदान्त शाङ्कर-सम्मत मत, जिसे मानते सुधी अतीव॥१॥
भूतल के स्थल में जो बीहि रहते, वे अनुशायी जीव।
अन्येषां यथा जीवत्व, है मुख्य - अनुशायी जीव॥२॥
नर - शरीर में मुख्य आदिक, हैं अनुशायी जीव अनेक।
यह शारीरिक भाष्य उल्लिखित है सिद्धांत, लखो सविवेक॥३॥
"व्रीहियवादिषु संसर्गं मात्रमनुशयिनस्तु प्रतिपद्यन्ते च"।
ब्रह्म सूत्र में अनुशयी संसर्ग मात्र, ज्यों पंकज - पंक॥४॥

है प्रमाण वेदान्त सूत्र यह, तथा भाष्य भी प्रमिति अतीव।
इससे यही सिद्ध होता है, वृक्षों में नहि अभिमानी जीव॥१॥
एवं वृक्षों में जीवत्व को न मानते मान्य कणाद।
वैशेषिक दर्शन में देखो - सुनो तदनु सूत्र - निनाद॥२॥
जिसका अर्थ कि पृथिवी आदिक कार्यद्रव्य है तीन प्रकार।
युक्त शरीरेन्द्रिय-विषयों से, जिसे जानता बुध-संसार॥३॥
इसी सूत्र पर जो प्रशस्तपाद-रचित भाष्याख्या प्राप्त।
वह शरीर, इन्द्रिय, विषयों को, पृथक् मानती है पर्याप्त॥४॥

किन्तु कहीं जीवों का भू के, भू जड़, जड़ इनको भी जान।
योगजधर्मं तथा शरीरत्व को साधन मान॥१॥
भोग्य वस्तु है 'विषय' कहाती, जीवों का अन्तर पहचान।
पृथिवी के विकार तृण आदिक, यह "स्थावर" कृतभाष्य महान्॥२॥
यदि विषयों को, जो कि भोग्य हैं, माने भोगायतन शरीर।
वैशेषिक दर्शन - विरोध हो, विकृत कथन की हो तस्वीर॥३॥
देखो, भोग्य भोग का आश्रय हो सकता है नहीं, कदैव।
जीवात्मा के विषय तथा वृक्षादि जीव से रहित सदैव॥४॥

पुनः किया पण्डित गणपति ने प्रस्तुत युक्ति - युक्त निज पक्ष।
कहे तत्त्वार्थ प्रकाश ग्रन्थ में, क्रमशः विषय निरूपण लक्ष॥१॥
होती क्रम की आवश्यकता वहीं, जहाँ क्रम का अनुरोध।
बिना विवक्षा ठीक नहीं है, क्रम विरोध का यह अवरोध॥२॥
"पुरुष-सूक्त" में तस्माद्यज्ञात्, सर्वं हुत में पशु-उत्पत्ति।
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत-ऋच में वेदों की फिर प्रतिपत्ति॥३॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् इसमें ब्राह्मणादि वर्णों का लेख।
पुनः चन्द्रमा मनसो जातः में चन्द्रोद्भव का उल्लेख॥४॥

उक्त सूक्त में क्रम-विरोध का आप बतावें अगर पुकार।
सूक्त-विटप का पता पता भिन्न-भिन्न होवे बेकार।।१।।
पहले पशु फिर वेद बाद में ब्राह्मण फिर शशि की उत्पत्ति।
क्या कोई विज्ञानी लेगा मान सृष्टि-क्रम यह आपत्ति।।२।।
क्रम विरोध के कारण वैदिक मन्त्र नहीं यदि वे प्रक्षिप्त।
तो "सत्यार्थ प्रकाश" ग्रन्थ भी क्रम विरोध से है निर्लिप्त।।३।।
नहीं किसी क्रम का प्रतिपादन है "वृक्षादि" कथन में दृष्ट।
मात्र योनि वैलक्षण्योपन्यसन प्रदर्शन यहाँ अभिष्ट।।४।।

वेद भाष्य के पृथिव्यादि-पद का वृक्षादि न अर्थ विधेय।
अपितु ग्राह्य अर्थ है यहाँ जल-वायु आदि ही सतत प्रमेय।।१।।
अतः मानना यही चाहिए दयानन्द अभिमत-अनुसार।
"वृक्षों में रहता अभिमानी जीव" प्रकृति का अति सुकुमार।।२।।
यदि साइंस मुताबिक तुमको "सोल" और "लाइफ" है मान्य।
तो पशुओं में केवल "लाइफ" मान लीजिए विज्ञ वदान्य।।३।।
क्योंकि मानते हैं नहि पशुओं में आत्मा को साइंटिस्ट।
और एतदनुसार मानिये, पशु-वध में कुछ भी न अनिष्ट।।४।।

आप मानने को ऐसा पर कभी नहीं होंगे तैयार।
अतः कह रहा हूं जो कुछ मैं, स्वामिन् उस पर करें विचार।।१।।
यदि साइंस मुताबिक मानें सिर्फ आप वृक्षों में प्राण।
बर खिलाफ साइंस, मान लें पशुओं में आत्मा श्रीमान्।।२।।
तो शोभा दे यह न आपको, अहो ! अर्ध जरतीय न्याय।
जीवाभाव मान वृक्षों में, प्राण मानना है अन्याय।।३।।
बिना जीव के प्राण नहीं हो सकता है सम्भव मतिमान।
सभी जगह परमात्मा की हरकतें इन्तजामी लें मान।।४।।

चलें नृ-तन में भी प्रभु की हरकतें इन्तजामी से प्राण।
जीवात्मा का वश चलता तो प्राण न करते महा प्रयाण।।१।।
मन्त्र "येन प्राणन्ति वीरुध" इसी अर्थ से है सम्पन्न।
लता आदि का प्राण धारणा, बिना जीव नहि हो उत्पन्न।।२।।
जीवात्मा का अर्थ यही है, वह धारण करता है प्राण।
"जीव प्राणने" कह पाणिनि ने किया जीव में प्राण-विधान।।३।।
मान रही साइंस आपकी वृक्षों में होते हैं प्राण।
"नाइट्रोजन" बिना सभी ये सूख जायें, निष्प्राण।।४।।

नहि वेदान्त सूत्र में वर्णित, "मुख्य"-"गौण" जीवादि विचार।
है पंचाग्नि विषय के प्रकरण पर उसमें तात्त्विक प्रस्तार।।१।।
मेरे द्वारा प्रस्तुत श्रुति पर किया आपने जो आक्षेप।
मैंने उसका निराकरण कर दिया बखूबी, अति संक्षेप।।२।।
अतः आपसे मैं स्वामी जी, करूं निवेदन नम्र अतीव।
मान लीजिए आप शास्त्र-सम्मत "वृक्षों मे होता जीव"।।३।।
आप अन्यथा सिद्ध करें यह मिथ्या सम श्रुति स्मृति प्रामाण्य।
न तो मान लें कैसे हम, प्रस्तुत मन्त्रों में "गति सामान्य"।।४।।

उत्तर में बोले स्वामी जी, ज्ञान-गिरा गौरव-गम्भीर।
उपनिषदों में लिखित वृक्ष का अर्थ "पेड़" नहि, अपितु शरीर।।१।।
"औव्रश्चू छेदने" धातु से, "वृक्ष" शब्द होता है सिद्ध।
जो कि तत्त्व ज्ञानादिक द्वारा, छेदन योग्य सदैव प्रसिद्ध।।२।।
लक्षण में भी गौण कल्पना होती नहीं कदापि विधेय।
सतत जीव सम्बन्ध रहित जड़ ऋषि कृत अर्थ सभी को प्रेय।।३।।
बौद्ध मतै स्थावराश्चेतनाः पर उनको जड़ कहें कणाद।
अतः कहा शंकराचार्य ने, असत् बोद्ध मत बेबुनियाद।।४।।

पण्डित जी ने कहा कि देखो, उपनिषदों में वर्णित वृक्ष।
वाचक मात्र वृक्ष का ही है, "तन" प्रतीक इसका नहि लक्ष।।१।।
मूल, मध्य, शाखा, टहनी सब तरु के ही होते हैं अंग।
"अनुशायी" पद नहीं "अनुशयी", जो कि रहे ब्रीहियादिक सँग।।२।।
शांकर भाष्य देखने से तो होता है यह स्पष्ट प्रतीत।
वृक्षों में वह जीव मानते, श्रुतियों के अनुकूल पुनीत।।३।।
और "शेष कर्मा" जीवों का, "ब्रीहि" आदि से केवल योग।
इसीलिए वह नहीं भोगते, सुख दुःखों का कोई भोग।।४।।

उचित नहीं प्रत्येक योनि में दशा-जागरण, स्वप्न, सुषुप्ति।
दृग अभाव से देख न पाते, कुछ भी जग में अन्धे व्यक्ति।।१।।
किन्तु नहीं है इसका मतलब, ऐसे प्राणी हों निर्जीव।
रहितेन्द्रिय होने पर भी यों, वृक्षों में होता है जीव।।२।।
जीवात्मा जैसे सुषुप्ति में, करता है सुख को अनुभूत।
अन्तः संज्ञ वृक्ष भी वैसे, पाते हैं सुख दुःख प्रभूत।।३।।
दोनों ही थे महामनीषी, दोनों के थे पक्ष यथार्थ।
अनिर्णीत रह गया किन्तु यह, विश्रुत वैज्ञानिक शास्त्रार्थ।।४।।

कारण समयाभाव बताकर किया सभापति ने एलान।
इन दोनों के दरमियान फिर होगा यह शास्त्रार्थ महान्।।१।।
आगामी उत्सव पर आवें सुनने को श्रोता विद्वान्।
क्योंकि कार्य वश स्वामी जी को करना है अन्यत्र प्रयाण।।२।।

।। दोहा ।।

सारस्वत-नद में नहा, पा कर हर्ष अपार।
गये दर्शनानन्द फिर गुरुकुल पोठोहार ।।

काल गति किन्तु अतीव कराल, न कोई इसको सकता टाल।
बनाया गणपति को निज ग्रास काल ने आकर हाय अकाल।।१।।
हुआ सब आशाओं का अन्त,न विकसा फिर वह वाक्-वसन्त।
नहीं आ पाया अगला पर्व, हन्त हा हन्त ! हन्त हा हन्त ! ।।२।।
कहाँ अब ऐसे तार्किक प्रज्ञ, मनीषी वाचस्पति, शास्त्रज्ञ।
दिखाई पड़ते हैं अब नहीं, कहीं भी वाणी के वह यज्ञ।।३।।
हमारा यह "अज्ञेय" विश्वास, उभय सुधियों का यह इतिहास।
रहेगा हृदय-पटल पर लिखा, करेगा जग का बुद्धि-विकास।।४।।

पद्यानुवादक–
"सत्यव्रत शर्मा —अज्ञेय"
(उपाचार्य, गुरूकुल महाविद्यालय)
ज्वालापुर

बावनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "सिकन्दराबाद" कम्पनी बाग, (जिला–बुलन्दशहर) उत्तर प्रदे

विषय : क्या वेद इलहामी किताब है?
दिनांक : सन् १६२४ ई० (समय दोपहर दो बजे) दिन बृहस्पतिवार
प्रधान : श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री
श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्याचार्य
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
शास्त्रार्थकर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी

नोंट –

प्रकाशित पुस्तक पर सन् छपा हुआ नहीं था, पूज्य अमर स्वामी जी महाराज इस शास्त्रार्थ में मौजूद थे। उनकी स्मृति के आधार पर ही यह उपरोक्त समय दिया गया है।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मौलवी अब्दुलहक विद्यार्थी –

बिस्मिल्लाहिर्रहमानर्रहीम .... । माननीय ! पण्डित जी महाराज ! तमाम खूबियाँ उस ही की ज़ात में हैं, जो सब आलिमों का आलिम परवरदिगार है, वह उन खूबियों में से दूसरों को भी देता है, लिहाजा जो किताब ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा करे वह उस ज़ात का आला इल्म दे जिसकी तरफ से वह आई है, और साथ ही मनुष्य जाति की तालीम और तरबियत के लिए हो, उस पुस्तक को यह भी बताना चाहिए, कि उस हस्ती का क्या नाम है ? और कि मैं इन्सानों की तरबियत के लिए आई हूँ। वेद किन लोगों को दिए गए उनका नाम बतलाईये ? सनातनधर्मी लोग वेदों का प्रकाश ब्रह्माजी पर हुआ मानते हैं। और आर्यसामाजिक लोग, अग्नि, वायु, आदित्य, अगिंरा पर, तथा इस सम्बन्ध में दोनों का एक मत नहीं है, श्री स्वामी विवेकानन्द जी का मत है कि, वेद ४१४ ऋषियों ने बनाये हैं, इसके सिवाय इन प्रश्नों का भी उत्तर दीजिए –

१ – वेदों की तादाद कितनी है जो नाजिल हुए हैं ?

२ – वेद ११३१ थे, कोई कहते हैं ११२७ थे, परन्तु आर्य, केवल चार ही वेद किस आधार पर बताते हैं ?

३ – वेद कहां नाजिल हुए ?

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

हमको स्वीकार है, कि सारी खूबियाँ ईश्वर की ज़ात में हैं। और वह उनमें से औरों को भी देता है। और आपके पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि वेद में परमात्मा के गुणों के वर्णन करने वाले सैकड़ों मन्त्र हैं, जिनमें से मैं केवल एक पढ़ता हूँ। देखिये –

स पर्यगान्छुक्रमकायम व्रण मस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः[1]।।

'आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर वेद मन्त्र से देता हूँ, गौर फरमाईये–

त्वामग्ने प्रथममायु मायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्यविश्पतिम्।
इडां कृण्वन्मनुष्यस्य शाशनी पितुर्यत्पुत्रोममकस्य जायते ।। ११।।

(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३१, मन्त्र ११,)

अर्थात् हे अग्नेः विज्ञान युक्त सभाध्यक्षः विद्वानों ने मनुष्य की विज्ञान वृद्धि के लिए इस (इलाम) वेद वाणी को प्रकाशित किया। हजरत ! इलहाम शब्द तक आपने वेद से लिया है। इस वेद मन्त्र में **"इलाम्"** शब्द जो आया है, उसी का रूपान्तर **"इलहाम्"** है। जिसका अर्थ है **"ज्ञान"** या **"विद्या"**, **"सरस्वती"**। उस परमात्मा का नाम यजुर्वेद के अध्याय ४० के[2] प्रथम मन्त्र में आया हुआ है, और **"ओ३म्"** जिसका नाम है उस परमात्मा का वर्णन **"खं ब्रह्म"** इन दो शब्दों से किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि, वह **"ब लिहाज़ मकाने ग़ैर महदूद[3]"** है क्योंकि आकाशवत् व्यापक है, और बलिहाज़ सिफात यानी गुणों से वह सर्वश्रेष्ठ है, इसलिए उसका नाम ब्रह्मा है। आपका यह कहना कि वेद के मुलहमान्[4] का नाम वेद में होना चाहिए, यह

टिप्पणी –

१ – वह परमात्मा सर्वव्यापक है, सर्व कार्य शीघ्रता से करने वाला शरीर रहित नसनाड़ी के बन्धन तथा छिद्र रहित, शुद्ध पवित्र, पापरहित है महान ज्ञानवान् और मननशील है सब और स्वयं सत्ता वाला सदा रहने वाली अनादि प्रकृति से जीवों के लिए सारे पदार्थों को ठीक–ठीक बनाता है।

२ – यजुर्वेद अध्याय ४० के प्रथम मन्त्र में नहीं अन्तिम मन्त्र में। ३ – स्थान की दृष्टि से असीम है। ४– जिनको वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ।

"अमर स्वामी सरस्वती"

आपकी भूल है, क्योंकि किसी पुस्तक में उसके प्रकाशक का नाम होना उसको तवारीखी[1] साबित करता है,
मुझे लगता है, हज़रत ! आपको कुरान के स्वप्न आ रहे हैं। जिसमें सिवाय कहानी किस्सों के और कुछ नहीं
है। ऋषियों ने वेदों द्वारा यह जानकर कि, "नाम" पहचान के लिए हुआ करता है, अपना नाम वेदों के प्रकाश
के अनन्तर रखा जो क़रीनेक़यास[2] हैं, वेद ब्रह्मा जी पर प्रकट हुए ! ऐसा सनातनी भाइयों का कहना हमारे
विरुद्ध कभी नहीं पड़ता, यह तो आपकी समझ का फेर है, देखिये गायत्र्युपनिषद में लिखा है- "वेदविद्
ब्रह्मा भवति" तो चारों ऋषियों को वेद ज्ञान होने के कारण "ब्रह्मा" कहना ही पड़ेगा, अतः चारों पर या एक
शब्द में ब्रह्मा पर वेदों का प्रकाश कह देना विरोध पैदा नहीं कर सकता। स्वामी विवेकानन्द जी भूल करते
हैं, यदि कहते हैं कि वेद ४१४ ऋषियों ने वनाये हैं, वे मन्त्रार्थ के द्रष्टा माने जाते हैं, मूजिद[3] नहीं आगे देखिये-
"[4]तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः............" इत्यादि मन्त्र से चारों वेदों के नाम का सवूत दिया, "वेद ११३१ थे", यह
कहना आपकी अज्ञानता है, सनातनी भाई वेद के व्याख्यानों को भी वेद नाम से पुकारते हैं, इस वास्ते आपको
भ्रम हुआ है, किन्तु क्या आप नहीं जानते हैं कि मय तर्जुमे के कुरान को भी तो कुरान ही कहा जाता है, क्या
आप उसको "तर्जुमा और कुरान" दो नाम से पुकारते है ? ११२७ सिर्फ वेदों की शाखायें है, जब इनमें चार
वेद और मिला दिये गए तव ११३१ हो गई, जैसे जड़ और शाखा दोनों का नाम "वृक्ष" ही है, इसी तरह वेद
और उनकी शाखाओं को भी सनातनी भाई "वेद" कह देते हैं। वेद कहां नाजिल हुए ? इसका उत्तर यह
है कि, "त्रिविष्टप[5]" में नाजिल हुए जो कि सवसे उन्नत स्थान है। और आवो-हवा के लिहाज से भी उत्तम
है। "त्रिविष्टप" का अर्थ है जहां ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड में मनुष्य जाति का प्रवेश हुआ हो।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

मेरा कहना है कि जाति[6] नाम में सारी सिफ़ात[7] होनी चाहिए, किन्तु "ओ३म" शब्द "अव" धातु से
वनने के कारण रक्षावाची है, इसलिए "उमू मियते मानवी" अर्थ-साम्य लाज़िम आता है। जो भी रक्षा करेगा
वह "ओ३म्" होगा, ज़ाति नाम "अल्लाह" शब्द की तरह विना धातु के मानना चाहिए, इसके सिवाय जबकि
सब वेद मन्त्रों पर उनके मुसन्नफ़ों[8] के नाम मौजूद हैं, और अथर्ववेद का नाम उस ही में कई जगह पर आया
है तब यह कहना कि वेदों में न तो कोई नाम है और न कोई तवारीख[9] है, यह कैसे ठीक हो सकता है ?
हाँ ! तीनों वेदों में अथर्ववेद के अर्थ में अथर्व शब्द कहीं नही आया, अपने आप खुद कहने से दावा सिद्ध नहीं होता,
इस वास्ते अथर्ववेद अपने वेद होने का प्रमाण यदि स्वयं दे तो माना नहीं जा सकता, यह कहना कि वेद "त्रिविष्टप"
में नाजिल हुए, इसलिए ठीक नहीं, क्योंकि "नार्थपोल"[10] दुनियां में सवसे ऊँची जगह है, अब आप इन प्रश्नों का
उत्तर दें कि, आपका ईश्वर कहता है कि-मुझे तृप्त कर, मुझे सुख दे और यकीनी इल्म दे, देखिये-ऋग्वेद
मण्डल १ सूक्त १६४ मन्त्र ३० को पढ़िये और ग़ौर फ़रमाईये वहां लिखा है कि-"ईश्वर पुष्ट होता है"।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

हम यह मानते है ज़नाव ! कि ज़ाति नाम में तमाम सिफ़ात आ जाती है, किन्तु "अव" धातु का अर्थ
केवल रक्षा ही करना है, ऐसा मानना यह आपकी भूल है, आपने अपने नाम के पूर्व पण्डित[12] लगाया हुआ
है, किन्तु आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं। नहीं तो क्या ऐसी मोटी भूल करते ? खैर ! सुनिये मौलवी साहब जी, "अव"
धातु के १९ अर्थ हैं। (शास्त्रार्थ में जल्दी के कारण १७ अर्थ वताये गए थे) जिनमें परमेश्वर के सव गुणों का

टिप्पणी –

[1]ऐतिहासिक, [2]बुद्धि के अनुकूल [3]बनाने वाले, [4]तस्माद यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद यजुस्तस्मादजायत।। (यजुर्वेद) उस परमेश्वर से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और (छन्दांसि) अथर्ववेद प्रकट हुए। [5]अब उसको तिब्बत कहा जाता है (अ. स्वा.) [6]मुख्य नाम, [7]गुण, [8]बनाने वालों, [9]इतिहास, [10]उत्तरी ध्रुव, [11]इस मंत्र में जीव का वर्णन है, [12]मौलवी अब्दुल एक विद्यार्थी जी अपने नाम के साथ "पण्डित अब्दुलहक़ विद्यार्थी" लिखते थे ! जिस पर पण्डित जी ने उपरोक्त बात कही, तो विद्यार्थी जी का चेहरा देखने लायक बन गया था। "अमर स्वामी सरस्वती"

समावेश हो जाता है, क्योंकि धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु आप बताइये, अल्लाह किस मसदर से बना है ? अगर यह शब्द बेमसदर है तो इसका अर्थ "मुस्तजमे जमी सिफाते कमालिया" अर्थात सर्वोत्कृष्ट गुणागार करना, आपका मनमाना और बेकायदा अर्थ है, यदि इसके मुकाबले में आपके अकीदे के मुवाफिक में खुदा का नाम "अल्ला" की जगह "पल्ला" रख दूं तो आप किस कायदे से इसे गलत सिद्ध करेंगे ? क्योंकि आप ही की तरह मैंने भी मनमाना शब्द खुदा के लिए मुकर्रिर कर लिया है। ख्याल कीजिए कि जैसे कि खुदा की ज़ात बामाना[1] है ऐसे ही खुदा के लिए बोला गया शब्द भी बामाना होना चाहिए अर्थात मसदरी हो-जिसमें कि सारे सिफाती नाम आ जायें, लेकिन आपका अल्लाह इन तमाम खूबियों से शून्य है, अगर मैं "अल्लाह" का मसादर "इल्लाह" बता दूं तो आप कैसे गलत सिद्ध कर सकते हैं ? एवं मिथले मानवी[2] तो धातु के एकार्थवाची होने से ही हो सकती है, अन्यथा नहीं, आपका यह कहना कि जिस-जिस मन्त्र पर जिस-जिस ऋषि का नाम है वह-वह उसने बनाया है, ऐसा कहना हजरत आपकी नावाकफियत को जाहिर करता है। ये तो वे ऋषि हैं जिन्होंने सबसे पहले बजरिये मुराकबे (समाधि) में अग्नि आदि ऋषियों के बाद उन-उन मन्त्रों के अर्थों को जाना, और जनाया, वे वेदों के मूजिद न थे, जैसा कि आपका ख्याल है। अथर्ववेद के अर्थों में अथर्व शब्द को प्रथम के तीनों वेदों में न बताना और ऐसा बड़ा दावा करना आपकी अज्ञानता है। ऋग्वेद मण्डल-६ सूक्त १५, मन्त्र १७ में अथर्व शब्द अथर्व के अर्थों में आया है। महर्षि दयानन्द का भाष्य देख लीजिए, और सदा के लिए इस ऐतराज को छोड़ दीजिए। आपके रसूल के मुवाफिक[3] अपने कहने से अपना दावा सिद्ध नहीं हो सकता, तो कुरान का अपने मुताल्लिक यह दावा करना कि "मैं खुदा की तरफ़ से हूँ" विश्वास योग्य न होगा। हम वेदों को स्वतः प्रमाण[4] मानते हैं, अतः वेद अपने प्रामाण्य के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं करते। आपका "नार्थपोल" को सबसे ऊँची जगह बताना तब तक विश्वास योग्य नहीं जब तक आप सप्रमाण इसे सिद्ध न करें, वेदों की "प्रकाश के लिए" सबसे ऊँची जगह ही केवल शर्त नहीं है, बल्कि उसके साथ यह भी लाज़िम है कि, वह स्थान आबो-हवा के लिहाज से मनुष्य जाति के सर्वथा योग्य हो, जहां वह अपनी शारीरिक और धार्मिक उन्नति पूर्ण रूप से कर सके। ईश्वर के इल्म हासिल करने का मन्त्र इस अर्थ को नहीं बताता बल्कि वहां गुरु-शिष्य का वर्णन है यदि आप संस्कृत का अन्वय देखते तो आपको भ्रम न होता परमात्मा की तृप्ति की बात उस परोपकारी के तुल्य है जो अपनी आज्ञा का पालन देखकर तृप्त होता है।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी —

अच्छा, पण्डित जी आप यह बताइये कि एक ऋषि मन्त्रों के अर्थों को कैसे देख लेता है ? वह कौन सा अजीब तरीक़ा है ? दूसरे यदि "अव्" धातु के अर्थ १७ ही होते हैं तो गोया खुदा की सिफ़ात भी महदूद हो गई[9], क्या इससे ज़ियादा सिफ़ात उसमें नहीं है ? मेरा दावा है कि "ओ३म्" का लफ्ज वेद में नहीं है, इसके सिवाय एक अरब छियानवें करोड़ वर्ष वेदों के प्रकाश को हुए तो उस वक्त से तो ऋषि-मुनियों के नाम ज़ाहिर नहीं हुए और चार-पाँच हज़ार वर्ष से मनुस्मृति बनने पर ज़ाहिर हो गये, यह बात कैसे मानी जा सकती है ? यदि वेद का ज्ञान मनुष्य मात्र के लिए है , तो बताईये वेदों के अनुयायी हिन्दुस्तान से बाहर कितने हैं ? इल्लाले ना.लिया के अर्थ ज़ाहिर करने के हैं, और इब्तिला के माने सिफ़ाते मख्फ़ी का ज़ाहिर[10] कर देना है। आपने ईश्वर की तृप्ति की बाबत खूब उत्तर दिया। यदि ज़नाब तृप्ति होती होगी तो वैदिक ईश्वर

टिप्पणी —

[1]धातु, [2]विश्वास के अनुकूल, [3]सार्थक, [4]धातुवाला, [5]अर्थ की समता, [6]दनानेवाले, [7]अनुसार, [8]अपने आप में [9]ईश्वर के गुण-सीमित हो गये, [10] छुपे गुणों को प्रकट करना।

मूल है। वेद का अर्थ ज्ञान है, अतः दुनियां में इल्म के मुआफिक जितने सिद्धान्त प्रचलित हैं उन सबका [1]मसदर व मखरज[2] वेद है। आप ऐसा कोई उसूल बतावें जो दुनियां के किसी हिस्से में माना जाता हो, परन्तु वेद में न हो, उसूल का मानना वेद का मानना है, न कि वेद कह के उसको मानना। वेद का मानना है इल्लेनालगा के अर्थ जाहिर करने के नहीं हैं ब्लकि जानने के हैं लुगत देखिये ! इब्तिला के माने सिफातेमक्फी का जुहूर है, जिसके मायने (अर्थ) है कि मुमतहिन पर इम्तिहान देने वाले की काबलियत का जुहूर हो जाता है, न कि वह जाहिर करने वाला होता है, ईश्वर की तृप्ति की बाबत तो हम पहले ही कह चुके हैं उसे बार–बार कहना ठीक नहीं।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

"अग्निः पूर्वेभिः............" इस मन्त्र से साबित होता है कि वेद सृष्टि के आदि में नहीं हुए ब्लकि बाद के हैं, गवाही के लिए सायणाचार्य कहता है कि **"पूर्वेभिः"** से मुराद, वसिष्ठ, वामदेव, वगैरा से हैं। तथा ओ३म् में तमाम खूबियां कहां से पाई जाती हैं ? जबकि वह रक्षार्थक है, आर्य्याभिविनय में लिखा है कि–**"खुदा चोरी करता है, हमल गिराता है। खुदा जानवरों में दाखि़ल हो जाता है"**। इनका तुम्हारे पास क्या उत्तर है ? वेद मन्त्रों को देखने से पता चलता है कि जिस गरज के लिए ऋषियों ने मन्त्रों को बनाया है वही उसका देवता है, रावण का भाष्य भी इसी प्रकार है। जाति नाम सारे सार्थक नामों का होता है, ओ३म् की तरह नहीं जो एक ही अर्थ को बतावे, आपने मान लिया है कि वेदों के अनन्तर भी इलहाम होता है।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

यह मन्त्र किसी भी पुरुष को वेदों से पूर्व उत्पन्न हुआ नहीं बताता परन्तु एक सदाक़ते अज़ली को बताता है, जो हर वस्तु और हर मनुष्य के साथ हर ज़माने में निस्बते ज़मानी को प्रकट करने वाली है, यानी हर वस्तु एक की अपेक्षा से पुरानी है, और एक की अपेक्षा से नई है इसलिए वेद ने नये और पुराने का ज्ञान देने के लिए इस मन्त्र का प्रकाश किया है। सायण ने वसिष्ठादि ऋषियों को **"पूर्वेभिः"** आदि से जो निर्देश किया है वह अपने निज की अपेक्षा से, क्योंकि ये लोग सायण से पूर्व हो चुके हैं, इसी प्रकार जो मनुष्य जिस समय उत्पन्न होगा उसके लिये पूर्वोत्पन्न मनुष्य पूर्वेभिः में शुमार होंगे। और ईश्वर उन ऋषियों अथवा मनुष्यों का उपास्य होगा। मराकवे का उत्तर हम पहले दे चुके, आप बार–बार उस ही को कह देते हैं, ओ३म् के सम्बन्ध में भी उत्तर दिया जा चुका है। खुदा के चोरी करने और हमल गिराने के सम्बन्ध में जो कि आर्याभिविनय मन्त्र ४६ में आया है, उसमें यह बताया है कि, ईश्वर हमारे भोगों को और गर्भादि को जाया[3] न होने दे और उनकी रक्षा करे, चोरी शब्द **"चुर"** से बनता है, जिसके अर्थ खण्डन करना, वन्चन करना और हरण करना है, जिनका अर्थ है कि हमारे ऐश्वर्य को हमसे दूर न कर अर्थात् नाश न कर क्योंकि, ईश्वर पापी के सारे सामान जो भी आराम के होते हैं उन्हें धीरे–धीरे पृथक (दूर) कर देता है, और मनुष्य मुफलिस[4] हो जाता है, इसलिए चोरी शब्द यहां आया है। यहां लौकिक चोरी से मुराद नहीं बल्कि यहां दण्ड से अभिप्राय है, जैसे कि राजा जबर्दस्ती पाप के कारण पापी का माल हर लेता है, यह चोरी नहीं कही जा सकती, क्योंकि राजा की तरफ से है, यह नियम राजा और प्रजा दोनों में एक सा नहीं होता, हम अपना माल भी जबर्दस्ती किसी से नहीं ले सकते, परन्तु राजा जबर्दस्ती लेते हुए भी चोर नहीं होता, क्योंकि वह दण्ड के रूप में यह कार्य कर रहा है, इसी प्रकार ईश्वर भी करता है। परमात्मा का जानवरों में दाखिल होना बेमानी बात है, यह प्रमाण कहीं नहीं मिला, शायद ईश्वर की व्यापकता प्रकट करने के लिए कहीं वर्णन होगा जिसको आप भली प्रकार अक्स[5] न कर सके। दिखाईये वह प्रकरण क्या है ? अगर इस्मजात के अर्थ होते हैं तो मसदर

टिप्पणी – [1]मूल, [2]भण्डार, [3]व्यर्थ, [4]निर्धन, [5]ग्रहण।

की होती होगी, हमारे खुदा की नहीं, चाहे तमाम दुनियां नेकी या बद आमाल करे, खुदा को उससे कोई आरा या तकलीफ़ नहीं होती, मगर आपके यहां यह बात आती है कि–हे ईश्वर ! आप सुख–दुःख के सहन कर वाले हैं, सो इससे पता चलता है कि आपका ईश्वर सुखी और दुखी भी होता है।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

ज़नाबेआला ! आपने पूछा कि ऋषि–मुनि मन्त्रों का अर्थ कैसे–कैसे देख लेते हैं ? सुनिये मौला साहब इधर गौर फरमाएं ! ऋषि–मुनि मन्त्रों का अर्थ इस तरह देख लेते हैं जैसे सूफी मुराकवे (समाधि) परमात्मा के आनन्द को प्राप्त कर लेते हैं। और उनको इसका इल्म भी होता है, **"ऋषि"** शब्द "ऋगतौ धातु से बना है, जिसके अर्थ ज्ञान गमन प्राप्ति के हैं, इल्म–हरकत हुसूल हैं जिससे विदित होता है कि ज्ञान द्वारा ईश्वर के ज्ञान को प्राप्त करते हैं, और औरों तक पहुंचा देते हैं। अब लीजिये "अव्" धातु व बात ! जनाब ! यह ठीक है कि **"अव्"** धातु के १६ अर्थ हैं, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि ईश्वर में सि १६ ही गुण हैं, ब्लकि इसका मतलब यह है कि, परमात्मा में जितने गुण हैं, वे सब इन्हीं में आ जाते हैं। आ अपने ज़हन से खुदा की कोई सी सिफ्त मुझसे पूछिये, मैं साबित करके बता दूँगा, सो हज़रत इतना जा नाम[१] **"ओ३म"** हैं, देखिये–**"ओ३म् खं ब्रह्म"** ४० वे अध्याय के अन्त में आता है, वहीं जरा गौर से देखिए आ तो अपने को वेदों का पण्डित बताकर,यह भी न जान पाये, महा आश्चर्य है। और आपका यह कहना कि एक अरब छियानवें करोड़ वर्ष से तो ऋषि–मुनियों के नाम ज़ाहिर नहीं हुए चार पाँच हजार वर्ष से जाहि हो गये, ठीक नहीं। वेद कोई इतिहास नहीं जो किन्ही खास मनुष्यों का नाम बतावे, यह तो कुरान ही है ज कहानी किस्सों से भरपूर है, और जो हमारी एक स्मृति से ज्यादा [२]वकअत नहीं रखती, वेद ने तो स्पष्ट का है कि–**"वेदो का इलहाम ऋषियों के हृदयों में हुआ"**, देखिये ऋग्वेद में कहा हैं–**"ऋषिषु प्रविष्टाम्..........** (ऋग्वेद मण्ड़ल १० सूक्त ७१) यहाँ **"ऋषिषु"** बहुवचन है, जिसके अर्थ तीन और तीन से अधिक होते हैं। औ हम चार पर वेदों का प्रकाश मानते हैं, इससे जितना कि वेद से प्रमाण मिलना चाहिए उतना तो सिद्ध है और बाकी की बात ? कि उनके नाम भी थे, यह एतिहासिक है, यह बाद की पुस्तकों ने साबित किया सामान्यतया सारे **"ऋग्वेद"** का देवता **"अग्नि"** है, **"यजुर्वेद"** का देवता **"वायु"** है। **"सामवेद"** का देव **"आदित्य"** और **"अथर्ववेद"** का देवता **"अंगिरा"** हैं। इससे भी ऋषि–मुनियों को मदद मिली कि वेदों इलहाम आने के बाद इस प्रकार वे अपना नाम रखें (ऋग्) के अर्थ स्तुति के हैं। अर्थात् वस्तुओं की प्रशं करे। अग्नि का कार्य हर कसीफ[३] वस्तु को लतीफ[४] करने का है, जिससे कि उस वस्तु की पहचान ताअर्रुफ़[५] होता है, इसलिए **"ऋग्"** के प्राप्त करने वाले का नाम **"अग्नि"** हुआ। यजुर्वेद जिस धातु से ब है, उसके अर्थ मिलाने के हैं, वायु भी दो या उससे अधिक वस्तुओं को मिलाता है, इसलिए उस ऋषि का ना **"वायु"** है,जो यजुर्वेद का प्रकाशक है, **"साम"** शब्द के अर्थ **"आनन्द"** के हैं, यह उपासना परक है, आदित्य अनेक वस्तुओं को परस्पर मिलाकर नवातात[६] और हैवानात[७] की शक्ल में बदल देता हैं, इसलिए उस ऋषि व नाम **"आदित्य"** हुआ। **"अथर्व"** शब्द के अर्थ **"निश्चल"** के हैं, यानी मुस्तकिल व क़ायम, अगिंरस का अ अंगों का पूर्ण करने वाला है, तकमील पर हर मनुष्य एक जगह जाकर ठहर जाता है, वहां उसके कार्य की समाप्ति होंती हैं। उसी का नाम **"अगिंरा"** है। वेदों में जगह–जगह **"अथर्वाङ्गिगर सोमुखम्"** वगैरा आता है, इससे ऋषिय को साफ यह सूचना मिलती है, कि **"अथर्व"** का लाने वाला **"अंगिरा"** है। आपका यह कहना कि वेदों व मानने वाले सिवाय हिन्दोस्तान के और कहीं नहीं, आपकी अनभिज्ञता को बताता है ? शायद आप समझते हों कि वेद किसी किताब का नाम है। और उसके मानने वाले ही उसके **"पैरोकार"** कहलाये जा सकते हैं, यह आपक

टिप्पणी – [१]मुख्य नाम, [२]महत्ता, [३]स्थूल, [४]सूक्ष्म, [५]परिचय, [६]वनस्पति–वृक्षादि, [७]मनुष्य और पशु–पक्षी।

इसी तरह हम भी अपने पूर्वों को पूर्वे कह सकते हैं। **"लाहुल उल............"** में कोई हमको एतराज नहीं सिवाय इसके कि– **"रऊफुर्रहीम"** कुरान में खुदा के और रसूल दोनों के लिए आया है। जिससे शिरकतें इल्मी साबित होता है, और [1]इस्मसिफात का नाम होता है, लिहाज़ा **"शिरकत फिस्सिफात"** सिद्ध होता है, और [2]वहदानियत का नाश हो जाता है। **"ओ३म्"** को गवैयों का प्रारम्भिक स्वर बताना आप ही जैसे मनुष्यों को शोभा देता है। यदि मैं भी **"अल्लाह"** को गवैयों का स्वर बता दूँ तो आपके पास क्या उत्तर है ? स्वामी दयानन्द जी को महर्षि हम आदरार्थ और सम्मानार्थ कहते हैं, यह निस्वती तौर पर नहीं बोला जाता, और जब आपके यहाँ मुहम्मद साहेब सैयदुल मुसिलीन (भेजे हुओं में सरदार) कहे जाते हैं, जो सबसे पीछे आये। तो फिर आपको महर्षि शब्द लगाने में हमारे ऊपर क्यों एतराज है ? ईश्वर कृत के अर्थ हैं कि वेद ईश्वर के बनाये हुए हैं, और ऋषियों कृत मन्त्र के अर्थ है कि ऋषियों ने विचारा या आपने ऋग्वेद मन्त्र १ और ७ का जो हवाला दिया उसमें पुराने और नये शब्द का यही अर्थ है; जो हम पूर्व कह चुके हैं। अथर्व के अर्थ अहिंसक और कायम मिजाज पूर्ण, और मनु का अर्थ ज्ञानी है, क्योंकि यह मन ज्ञाने से बना है।

नोट– अनेक बार दोहराने के कारण कई बार के प्रश्न एक जगह ही लिख दिए हैं।

श्री मौलवी अब्दुलहक विद्यार्थी –

मैं अरबी जुबान को खुदा की जुबान मानता हूँ, **"व्योमन्"** का अर्थ आकाश है और ईश्वर भी है, अतः ओ३म् नाम इसमें जाने से आकाश वाचक भी हुआ। अल्लाह में अलिफ़–लाम् इनसेपरेबिल (Inseperable) हैं। कण्व का नाम आठवें मण्डल में पचास दफ़ा आया है। **"जिनके खुदा का नाम पैदा उनका खुदा पैदा"** ऋषि ही पहुँचाने वाला और ऋषि ही प्राप्त करने वाला है। और हमारे यहाँ इसके लिए नबी और रसूल दो शब्द पृथक्–पृथक् आये हैं। वेद वहाँ उतरे हैं जहाँ, गंगा, यमुना, सरस्वती, मौजूद हैं। पहले गुणी का नाम होना चाहिए पीछे गुण का, एवं वामदेव ऋषि का नाम वेद में मौजूद है, हमारे यहां खुदा कुरान की खुद हिफाजत करता है, जैसा कि उसने कहा है– **"इन्नालहूलहाँफ़िज़ून"** ।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

मौलवी साहब सुनिये, अरबी जुबान को खुदा की जुबान मानना महज़ दावा ही दावा है, इसमें सबूत कोई नहीं, और ऐसा कहना कुरान के भी ख़िलाफ़ है, जरा खुदा की बात का तो ध्यान रक्खा करो। खुदा कहता है कि – **"इन्नमा यर्स्सनाहुबिलिसानेकैला अल्लहुँयतजक्करून्"** अर्थात् **"बस सहल कर दिया है हमने इसको तेरी जुबान में ताकि लोग समझें"** खुदा साफ फर्माता है कि, अरबी जुबान इन्सानी जुबान है, क्योंकि यहां पर **"तेरी जुबान में"** करके कहा गया है, न कि खुदा की जुबान में ! खुदा की जुबान तो वह है जिससे सहल करके कुरान दिया गया है। वह सिवाय देववाणी के और नहीं हो सकती, देववाणी का अर्थ ही **"अल्लाह की जुबान है"** अगर कुरानी खुदा सहल न करता तो आपसे कई जन्म में भी इसका शुद्ध उच्चारण न हो सकता था। **"व्योमन्"** का अर्थ जो आकाश किया गया है, वह बिल्कुल ठीक है, आप आकाश के अर्थ केवल आकाश नहीं लेते हैं, वेदान्त को देखिए जहाँ आकाश ईश्वर का वाचक है, जिसमें जीव और प्रकृति भी शामिल हो जाती हैं, ईश ऐश्वर्य धातु से ईश्वर शब्द बना है। जिसके अर्थ ऐश्वर्यवान् के हैं। जीव और प्रकृति, परमात्मा का ऐश्वर्य है और व्योमन् में वि० ओम् और अन् हैं, जिनका अर्थ है, जीव, ईश्वर और प्रकृति ! अतः सिद्ध है व्योमन् का अर्थ आकाश ठीक है जो ईश्वर वाचक है। अलिफ़–लाम् को अभेद्य बताना

---

[1]गुणों में एकता। [2]ईश्वर का एक होना।

उसका जरूर होना चाहिए, महज़ मनमाना नहीं माना जा सकता, मन्त्रों के देवता ऋषियों का विचार किया हुआ। मज़मून (विषय) है। न कि बनाया हुआ, यदि रावण का भाष्य हो तो पेश कीजिए, कथन मात्र से किसी वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। हमारे ईश्वर का ज़ाति नाम मुसलम्मा तमाम नामों का है यह सिद्ध कर दिया गया, किन्तु आपका अप्रसिद्ध है, वह धातु के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। वेदों के प्रकाश के अनन्तर भी इल्हाम (ज्ञान) होना आर्यसमाज का एक साधारण उसूल (नियम) है, उस पर आपको आश्चर्य क्या है ? किन्तु मौलवी साहब ! कहीं हिदायती इलहाम न ले लेना, मैं उस इलहाम का जिक्र करता हूँ जिसको हर मनुष्य समाधिस्थ होकर विचार करने से प्राप्त कर सकता है।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

पण्डित जी महाराज ! किसी भी शब्द के अर्थ मालूम करने के लिए उस भाषा का कोष देखना चाहिए, आपका यह कहना कि वेदों में जितने शब्द आये हैं, वे गुण, कर्म और स्वभाव को बताते हैं, न कि किसी विशेष व्यक्ति को ! यह माना नहीं जा सकता, क्योंकि निरुक्त प्रस्कण्व का अर्थ कण्व का पुत्र करता है। मैं वेद के कण्व उसका पिता और दादा तथा वशिष्ठ के बाप का नाम तक दिखाने को तैयार हूँ। देखिए वेद कहता है–**"हे ! तुम जो कण्व की बात को सुनते हो प्रस्कण्व की बात को भी सुनो"** (ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ४५ मन्त्र ३०) इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में कण्व के पुत्र का जिक्र है, **"अग्नि पूर्वेभिः........."** मन्त्र में आप सदाकते अज़ली बताते हैं, यदि हम यह भी मान लें कि हर वस्तु निस्वतन् नई और पुरानी भी हो सकती है तो भी बताइये–सायण ने भृगु और अंगिरा वगैरह को पूर्वेभिः में क्यों शुमार किया ? कुरान में आया है कि–**"लहुल अस्मा उल् हुस्ना"** यानी उसी ही के लिए तमाम अच्छे नाम होते हैं। इसलिए अल्लाह शब्द एक अंग्रेज ने भी अपनी डिक्शनरी में यही लिखा है कि–"COMPRISING ALL THE ATTRIBUTES OF PERFACTION" किन्तु **"ओ३म्"** हर मन्त्र के शुरू में नहीं बोला जाता, बल्कि गाने वाले शुरू में जैसे स्वर लगाते हैं, उसी प्रकार गाने के कारण इसका नाम "ओ३म्" रख लिया है। एक प्रश्न और है, **"अग्नि"** आदि तो सब ऋषि कहाये परन्तु ऋषि दयानन्द **"महर्षि"** क्यों हुए ? दूसरें यदि मन्त्र कृत के अर्थ विचार करने के हैं, अर्थात् मन्त्र का अर्थ विचार और उसको करने वाला मन्त्र कृत हुआ तो ईश्वर कृत भी वही हुआ, ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त २२ मन्त्र ६ में भी पुराने और नये ऋषियों का जिक्र है। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ८० मन्त्र १६ में अथर्व और मनु का जिक्र है इनका उत्तर सविस्तार दीजिए।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

हम भी मौलवी साहब ! इस बात को मानते हैं कि हर भाषा का कोष ही उनके अर्थों को ज़ाहिर (प्रकट) करता है। परन्तु हमने जिन शब्दों का अर्थ करके बताया है, वे सब व्याकरणानुकूल और लुगत के मुआफिक हैं। यदि आप कुछ विद्या बल रखते हैं तो हमारे किये अर्थों का खण्डन कीजिये, आपकी बात का खण्डन तो इतने से ही हो जाता है कि कण्व इत्यादि किन्हीं विशेष गुणों के वाचक हैं, संज्ञा शब्द नहीं है, क्योंकि हर विशेष से पहले सामान्य होता है, लकड़ी पहले होती हैं, कुर्सियाँ बाद में होती है, आप खुश तो बहुत होते हैं जब यूरोपियन लोगों के गले–सड़े एतराज को हमारे सामने पेश करते हैं, किन्तु आपको यह खबर नहीं कि–ऋषि दयानन्द के बताये हुए वेद भाष्य के तरीके में वे सब उड़ जाते हैं, सुनिये, **"कण्व"** के अर्थ **"मेधावी पुरुष"** के है। **"प्रस्कण्व"** के अर्थ उससे भी अधिक विद्वान के हैं, वसिष्ठ के अर्थ **"कायम मिजाज"** के हैं। **"प्रस्कण्व"** की आवाज सुनने का यह अर्थ है कि अत्यन्त मेधावी मनुष्य की बात पर ज्यादा अमल करो। कण्व के बेटे का अर्थ है मेधावी पुरुष के विद्यार्थी, देखो ऋषि दयानन्द का भाष्य मण्डल १ सूक्त ४५ मन्त्र ४ सायण ने तो भृगु और अंगिरा को **"अपनी अपेक्षा से न कि वेदों की अपेक्षा से"** पूर्वे में गिना है।

नहीं है, इनके अर्थ निरुक्तकार ने स्वयं किए हैं, कि– **"गंगा गमनात्"** इत्यादि। वहाँ देखिए तेज चलने वाली का नाम गंगा, धीरे चलने से यमुना, सैकड़ों जलवाली होने से शतुद्रि आदि। इस प्रकार के गुणवाचक शब्द वेदों में देखकर भारतवर्षीय लोगों ने उन–उन गुण वाली नदियों के नाम गंगा आदि रखे हैं, न कि गंगा नदी के बाद वेदों की उत्पत्ति हुई है।

सारी दुनियां की नदियां इन्हीं नामों में आ जाती हैं। क्योंकि प्रत्येक नदी का गुण इन मन्त्रों में वर्णित है। **"नवधा"** से आशय है **"नौ शाखायें"** देखिए महाभाष्य जरा समझकर पढ़िये, ज़नाब नकल के लिए भी अकल की जरुरत है। **"नबी"** का अर्थ जो कुरान ने किया है, वह मुवश्शरीन और मुंजरीन में भी लग जाते हैं, इसलिए कोई वैशिष्टय नबी में नहीं रहता, मैंने नबी का मसदर पूछा था जिसका आपने कोई उत्तर अभी तक नहीं दिया, सामवेद में ७२ मन्त्र विशेष हैं, यह ठीक है, परन्तु प्रकरणानुसार वहां पर सारे मन्त्रों का अर्थ भिन्न है **"शन्नो देवी** ...." का प्रथम पाठ यज्ञ के कारण भाष्यकार ने किया है। यमयमी सूक्त में स्त्री का वर्णन होने से स्त्रीलिंग शब्द है, न कि स्त्री के बनाए हुए हैं। कुरान में **"सीगामौंन्निसक"** आने से वह आयत क्या स्त्री ने बनाई होगी ? नहीं ! यह माना नहीं जा सकता। अब आपका कोई प्रश्न शेष नहीं रहा जिसका मैंने उत्तर न दिया हो, मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे इन प्रश्नों से अवश्य ही सन्तुष्ट हुए होंगे।

नोट –

इसके बाद मौलवी साहब जी ने उन्हीं अपनी पुरानी बातों को दोहराया और ये आज प्रथम दिन का शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। दोनों ही फिरकों की तरफ़ से कोई गड़बड़ी या हाय .... हुल्ला बिल्कुल नहीं हुआ।

"सम्पादक"

आपका महज मन माना है, क्योंकि आप कोई नियम पेश नहीं कर सकते, मैं कहता हूँ कि यह तारीफी है और यह शब्द इलह् मस्दर से बना है। जिसका अर्थ माबूद (उपास्य देव) के हैं।

ऋग्वेद मण्डल ८ में **"कण्व"** शब्द जो अनेक बार आया है, वह मेधावी मनुष्य का ही वाचक है। जहाँ भिन्न-भिन्न कामों की सिद्धि ऐसे मेधावी मनुष्य के उपदेश से ही हो सकती है। विशेष पुरुषों के नाम खयाल करना महज ज़हालत और नाफ़हमी का सबूत है। और आपने यह बात खूब कही कि- **"जिनके खुदा का नाम पैदा उनका खुदा पैदा"** इस भोलेपन पर हमको हंसी आती है, अगर आपकी दलील सही मानी जावे तो जिस जुबान का **"अल्लाह"** शब्द है, जब वही जुबान पैदाशुदा है तो अल्लाह भी पैदाशुदा हुआ। हज़रत ! इन दलीलों से परमात्मा में दोष नहीं आता, मसदर वह हकीकत हैं जो खुदा की ज़ात में तमाम कमालात का सबब है, न कि वह जो आपको बहम हो रहा है। ऋषि शब्द के **"ऋ"** गतौ धातु से दोनों अर्थ होते हैं, ज्ञान का प्राप्त करने वाला और पहुँचाने वाला, वेद मन्त्र के द्वारा वेदों का प्रकाश ऐसे मुल्क (देश) में बताना जहां गंगा आदि नदियां हों, केवल दावा ही दावा है, जो केवल जाहिलों में ही खप सकता है, विद्वानों में नही, अगर आप यह साबित कर दें तो मैं आपको बतौर इनाम एक हजार रुपए देने को तैयार हूँ। यह कहना कि पहले गुणी का वर्णन हो, पीछे गुण का ! यह सर्वथा अमान्य है, क्योंकि पहचान बज़रिये सिफात होती है। ज़ात कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल पृथक-पृथक वर्णन का नाम गुण है, और सम्पूर्ण गुणों का नाम ज़ात है, आप कुरान में **"बिस्मिल्लाह"** से लेकर बन्नास तक कोई ऐसी आयत पेश करें जिसमें खुदा की ज़ात का बयान हो। लेकिन यह याद रहे कि वह **"बशक्ले सिफ़ात"** न हो। **"फइल्लम् तफअलू वलं तफ़अलू"** पर अगर तुम पेश न कर सके (जैसा कि तुम पेश न कर सकोगे) मेरी ही बात सादिक़ रहेगी कि बयान सिफात ही का होता है, और उस ही से ज़ात पहचानी जाती है। वामदेव भी पूर्व की भांति किसी पुरुष विशेष का नाम नहीं, वामदेव ऋषि प्रशंस्त विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुष का वाचक है, कुरान की खुदा-खुद हिफ़ाजत करता है, अगर आपका यह कथन सत्य होता तो पहले वाली किताबों में तहरीफ (प्रक्षेप) न होता, और अगर वह हिफ़ाजत करना जानता था, और प्रक्षेप न हटा सका तो अब भी प्रक्षेप हो जावेगा। वेद के मुताल्लिक परमात्मा ने स्वयं कहा है कि- **"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"** अर्थात् परमात्मा के उस ज्ञान को देखो जो न नष्ट हुआ और न कमजोर होता है। यह ईश्वर के नियम की तरफ़ भी इशारा है, जो वेदानुकूल ही संसार में चल रहा है। अर्थात् ईश्वरीय नियम में न फ़र्क है, न कभी होगा। यानी परमात्मा के कौल (वचन) और फ़ेल (कर्म) दोनों लातगय्यर और लातब्दल हैं।

श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी –

यद्यपि वेद मन्त्र से, यह सिद्ध नहीं होता कि, वेद गंगा, यमुना वाले मुल्क में प्रकाशित हुए हैं, तथापि इनका नाम तो वेद में है, अब मैं वेद के मन्त्र का एक टुकड़ा बोलता हूँ आप उसका क्या अर्थ लेगें ? कृप्या बतलावें-**"नवधाऽथर्वणो-वेदः"** इससे नौ वेद सिद्ध होते हैं। **"नबी"** का अर्थ कुरान खुद बयान करता है, जिनको अल्लाहताला मबऊस करता है, देखिए-**"कानन्नास उम्मतन् वाहबतन् फ़ब असल्लाह हुन्नबीईन् मुबश्शरीन व मुंजरीन्"** और आपके सामवेद में केवल ७२ मन्त्र उसके अपने है, बाकी ऋग्वेद के हैं। अथर्व वेद का प्रथम मन्त्र-**"ये त्रिषप्ताः परियन्ति........"** है। किन्तु भाष्यकार ने **"शन्नो देवी रभिष्टये ...."** इत्यादि लिखा है। यमयमी सूक्त में जो स्त्रीलिंग के शब्द हैं, वे स्त्रियों के बनाये हुए हैं, और पुर्लिंग, यम के बनाए हुए हैं। इन सब बातों से भी पण्डित जी महाराज **"वेद इलहामी सिद्ध नही होता"**।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

आपने जो यह कहा है कि, मैं गंगा-यमुना की स्तुति करता हूँ, यह ठीक नहीं, गंगा आदि शब्द रूढ़ी

अलयुम वयुलिक अइन्नाहा ... अर्थात अल्लाह चाहता है कि तुम पर से बोझ हल्का करे और इन्सान कमजोर पैदा किया गया, इसलिए ऊपर की दोनों बातों से भी सिद्ध है कि—"कुरान इलहामी नहीं"। अब सुनिये मैं आपकी खातिर सच्चे इलहाम की शरायत भी यह बताये देता हूं। मैंने ऊपर दस कारण बताये जिनको मद्देनजर रखते हुए दुनियां का कोई भी आलिम कुरान को इलहामी सिद्ध नहीं कर सकता, यह मेरा दावा है। हां ! अब आप सच्चे इलहाम की शरायत भी सुनिये —

वह सृष्टि के आरम्भ में पाक मनुष्यों के पाक दिलों में दिया जावे ऐसे जाहिर किया जावे तो कुरान इब्तदायं (शुरू) दुनियां में पैदा नहीं हुआ यह तो सभी जानते हैं, मगर जिन पर कुरान नाजिल हुआ। वे भी कुरान गुनाह से खाली न थे देखिए आयत—"लियग्फिरा लकल्लाहु मातकद्दम मिन् जम्बिक व मा ताखरा" ताकि तेरे अगले और पिछले दोनों गुनाह माफ कर दिये जावें। इसलिए इन उपरोक्त हेतुओं ण "कुरान इलहामी पुस्तक नहीं है"।

ाना अस्मातुल्ला खाँ —

..........तपाक से उठकर.......... बोले ! वल्लाह !! आपने तो दस मिनट में ही इस कदर सवाल शायद मैं सारे वक्त में भी उनमें से थोड़ों का भी जवाब न दे सकूंगा, हाँ ! एक–एक सवाल का क्त में जवाब दूंगा। सुनिये — जब विषय "सच्चा इलहाम" रक्खा गया है, तो आप उसी के स करें, जनाब ! आपने तो शुरू में नींव की ईंट ही टेढ़ी रक्खी है, तो मकान सीधा क्या खाक ...जनता में हँसी.......... ।

लिए मुसलमानों ने पहले से ही बड़ा रोब डाला हुआ था कि बड़े पण्डित हैं, संस्कृत के बड़े ाहब कुरान के तो कहने ही क्या हैं ? आपने अपनी तकरीर में किसी भी प्रश्न का उत्तर ैर पढ़ते रहे, और आपकी बातों पर लोग हँसते रहे, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जी के क को भी छुआ तक नहीं। अन्त में सिर्फ आर्यसमाज पर दो–तीन ऐतराज कर दिये और ापको शैतान से इतनी मुहब्बत क्यों है ? आप जरा आर्याभिविनय तो उठा कर देखें जिसमें या भोजनानि मापरमोषि" यानि ऐ ओ३म् जी महाराज ! हमारे प्यारे–प्यारे बर्तनों को रके ओ३म् जी महाराज चोरी भी करते हैं —"मायोवधी" हमको मत मार, यहां आर्यों ो हैं। अब बताइये वेद इलहामी कैसे है ?

ह इधर उधर की बातें करके १० मिनट खतम किये, आप इतने घबड़ा गये कि तन करने लगे। आपको एक अक्षर भी संस्कृत का नहीं आता था, और न कुरान ान था। न मालूम मुसलमानों ने आपको क्या समझकर खड़ा कर दिया ? शास्त्रार्थ तो आपके प्रैजीडेन्ट (प्रधान) को यह नहीं कहना पड़ता कि शुरू में "अस्मतुल्ला" र जरूरत हुई तो बादे नमाज "मौलवी अब्दुलहक साहिब" खड़े होंगे।'

नवी —

ो खड़े हों तो आप सरीखे !! मजा आ गया तकरीर सुन कर, आपको खुद तो

क्यों किया गया है ?

नोट – .... बीच बीच में .... ऐसा कहने पर सारे मुसलमानों में खलबली सी मच गई, पेश के पास बैठे मौलवी कुरान के वर्क (पन्ने) पलट-पलट कर देखने लगे और देखने के बाद चुप बैठे रह गये, इसका कोई जवाब उनके पास न था।

४. कुरान में नमाजों की तादाद (गिनती) नहीं है, यानी नमाजें पांच है, यह कहीं नहीं लिखा और न उनके समय ही दिए गये हैं। हाँ ! सुबह और शाम की नमाज का जिक्र तो बहुत जगह है, जो हमारी संध्या की ही नकल है।

५. कुरान में कलमा इकटठा नहीं है, फिर उसको कैसे माना जावे ?

६. कुरान में शिर्क की तालीम है, खुदा ने खुद कहा है कि सिवाय खुदा के और किसी को सिजदा नहीं करना चाहिए, मुसलमान भी यही मानते हैं कि–"गैरल्ला" यानी अल्लाह से गैर को "सिजदा" करना हराम है, देखिये आयत– "वमिन आयाते हिल्लैलू वन्नहारुं वश्शम् सुवलकमर लातसजुदू लिश्शम् से वलालिल् कमरे वस्जुदू लिल्लाहिल्ल जी खलक हुन्नाइन्न् कुन् तुमईयाहू तावुदून"। अर्थात् उसी की निशानियों में से हैं। दिन-रात, सूरज और चाँद, सिजदा करो न सूरज को न चाँद को, "सिजदा" करो केवल अल्लाह ही को, कि जिसने इनको पैदा किया है। अगर तुमको उसकी इबादत करनी है। अतः सिद्ध है कि खुदा पैदाशुदा चीजों के सिजदे को मना करता है, लेकिन दूसरी जगह आदम के "सिजदे" के लिए फरिश्तों को हुक्म देता है, यह कुरान में शिर्क की तालीम है, शैतान इससे इन्कार करता है, और शिर्क से इन्कार की सजा खुदा की तरफ से यह होती है कि वह हमेशा के लिए लानती, गन्दाना जाना जाता है। इसलिए परस्पर विरोध होने से कुरान इलहामी नहीं हो सकता।

७. खुदा और शैतान के काम में फर्क नजर नहीं आता। खुदा और शैतान व रूए कुरान–दोनों बहकाते हैं। देखिये आयत–"अतुरी दूना अन् तह् दू मन् अज्लल्लल्लाह वमैं युज् लिलिल्लाह फलन् तजिदलहू सबीला" अर्थात् क्या तुम यह चाहते हो कि–राह दिखाओ उसको जिसको अल्लाह गुमराह करे, तुममें से कोई उसको राह रास्ता नहीं दिखा सकता। यहां खुदा और शैतान में कुछ भी भेद नहीं है इसीलिए व अकायदे इस्लाम खुदा के बन्दों की तादाद कम और शैतान की ज्यादा है, देखिये लिखा है कि–"वकलीलुन् मिन् इबादे यश्शकूर" अर्थात् मेरे बन्दों में बहुत कम शुक्रगुजार हैं। इसलिए भी ऐसी तालीम देने वाला कुरान इलहामी नहीं हो सकता।

८. शैतान के मुकाबले में खुदा आजिज नजर आता है इसी वास्ते जबकि वह आदम को सिजदा न करने के जुर्म में दर्गाह से रोका गया तो उसने खुदा से कयामत तक की मोहल्लत मांगी, खुदा ने बिना सोचे,समझे फौरन तब तक की छुट्टी दे दी। और खुदा की इज्जत की कसम खाकर कहा कि मैं तमाम लोगों को बहकाऊँगा। सिवाय उनके जो तेरे खालिस बन्दे हैं, यहाँ शैतान के रौब से खुदा मरऊब हो गया है जो ऐसे बदकार को हमेशा की छुट्टी देता है, इतना कमजोर "खुदा का कलाम" नहीं माना जा सकता।

९. वर्तमान कुरान की तरतीब व सूरतें इलहाम नहीं है। क्योंकि जो तरतीब इस समय कुरान की है वह हजरत उस्मान ने पलट कर छापा (प्रकाशित) की है पहले नुस्खे जला दिये गये और बहुत सी आयत व सूरतें इस असल कुरान से गायब है, जो खुदा की तरफ से नाजिल हुई थी, बहुत सी वकरीयां चर गई,

हूँ" इसके सिवाय आपके ओ३म् जी यह भी कहते हैं कि–**"योऽस्मान्द्वेष्टियं वयं द्विष्मस्तम्वो जम्भेदध्मः"**
यानी जिससे हम द्वेष करें उसे तू नष्ट कर दे। भाईयों ! क्या यह कभी खुदा का कलाम हो सकता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी —

मौलवी साहब ! कृप्या वेद मन्त्र अगर शुद्ध नहीं पढ़ सकते तो केवल उस मन्त्र का पता ही बोल दिया करें, मन्त्र हम पढ़ दिया करेंगे। पर आपके पाण्डित्य का रोब बेचारे मुसलमान भाइयों पर कैसे पड़ेगा ? उनकी नज़रों में आप तो पण्डित जो ठहरे, दूसरे मुझे आपके ऊपर निहायत अफ़सोस है कि आप ऐसे जलसे में खड़े होकर लोगों को बहकाने पर उतारु हो रहे हैं, अगर आप जवाब नहीं दे सकते, और महज़ सवाल ही करना चाहते हैं तो खैर ! सवाल ही कीजिये, मगर इस क़दर फ़रेब से क्यों काम ले रहे है ? क्या आप इस तरह इस्लाम को जिताने की आशा करते हैं ? और क्या इसी तरह इस्लामी दुनियां को आप अन्धेरे में रख के खुश करना चाहते हैं, यह बात आपके योग्य नहीं हैं, न मुनाज़रे के मुवाफ़िक है **"वाचंते शुन्धामि"** इस वेद मन्त्र का गलत उलटा तर्जुमा पढ़ने का आपको क्या अधिकार है ? क्या आप अभी झूठे सावित न होंगे फिर कहां मुहँ–छिपाओगे जनाब ? आपने जो कहा है कि, **"गुरू-शिष्य से, और शिष्य-गुरू से ...."** शेष वाक्य कह कर मैं अपनी जुबान गन्दी करनी नहीं चाहता वह तो तुम्हें ही मुबारिक हो........... मैं कहता हूँ कि आप दिखाइये यह कहां लिखा है ? अगर आप दिखा देगें तो मैं आपको एक हजार रुपया इनाम दूँगा। ....श्री देहलवी जी ने गुस्से से गर्ज कर कहा...........मौलवी साहब ! तर्जुमें को समझने के लिए भी अकल की जरूरत है, इसमें तो यह बयान है कि गुरू शिष्य से कहता कि, मैं विविध प्रकार की शिक्षाओं से तुझे पवित्र करता हूँ। देखिये–वेदमन्त्र **"वाचंते शुन्धामि"** का भाष्य, इसका आशय यह है कि मैं जलादि से बाह्य शुद्धि और उपदेश से आन्तरिक शुद्धि का उपदेश आदि तुझे देता हूँ। अर्थात् जल से इन्द्रियों को पवित्र रखना और इग़लाम तथा व्यभिचार आदि दोषों से बचना आन्तरिक शुद्धि है। वेदानुसार **"मातृमान्, पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"** अर्थात् बच्चे के माता–पिता और आचार्य तीनों गुरु हैं, जिस प्रकार छोटे बच्चे की इन्द्रियों की शुद्धि माता करती है, इसी प्रकार उसको पिता भी सिखाता है, किन्तु जो बातें उससे भी रह जाती हैं, उसका उपदेश आचार्य देता है, और स्वयं उसको सिखाता है कि प्रत्येक इन्द्रिय को शुद्ध और पवित्र इस प्रकार रखना चाहिये। अब बताइये ! मौलवी साहब इसमें क्या दोष है ? कौन सी ग़लत बात यहां कही है ? परन्तु दःख तो यह है कि आपको अपने घर का तो कुछ ज्ञान ही नहीं है। और दूसरों की भली बातें भी आपको बुरी लगती हैं। क्या आपको कुरानी जन्नत के लौंड़े याद नहीं हैं ? जो हमेशा लौंडे ही रहे चले जाते हैं। न कभी जवान होंगे न कभी बूढ़ें होंगे। भला इसका तो कोई जवाब दीजिए ? **"सहत्र शीर्षा..........."** इस वेद मन्त्र के अर्थ को कृपा कर एक बार पढ़ तो लिया होता। देखिये वहां सहस्र का अर्थ है असंख्य और पुरुष का अर्थ है **"पुरिशेते इति पुरुषः"** अर्थात् जो सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड में व्यापक है वह परमात्मा **"सहस्त्रशीर्षा"** यानी अत्यन्त ज्ञान वाला **"सहस्त्रक्षः"** अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, ओर **"सहस्त्रपात्"**– सर्वव्यापक है इसी तरह **"सहस्रबाहु"** का अर्थ भी अनन्त बलशाली है।

अब आपने जो हर्फ़मुकत्तियात की मिसाल पेश की है, बी.ए. या एम.ए. इसकी तरफ जनाब ग़ौर कीजिये, आपके यै सब अर्थ फ़र्ज़ी हैं, भला यदि मैं एफ. ए.,बी.ए.एम.ए., का अर्थ कर दूं **Fat ass, bad ass, mad ass**" यानि, मोटा, बुरा और बावला, गधा, तो बताइये आप क्या ज़वाब देंगे ? और किस क़ायदे से इसका खण्डन करेंगे ? हमारे यहां तो कोषानुसार एक अक्षर का भी अर्थ होता है किन्तु आपके यहां तो कोई अर्थ नहीं हो सकता। वेदे मुक्कद्दस झूठा इलहाम नहीं ब्लकि जो भी झूठे इलहाम हैं, वे अपने को सच्चा कहते हैं, इस ब्रास्ते यह इम्तियाजी सिफ़त इलहाम शब्द के साथ लगाई गई है। रसूल के गुनाहों की बाबत आपने

मेरा ख्याल है शर्म छू कर भी नहीं गई, मौलवी साहब जी मुझे एक बात बताइये अगर आप मेरे प्रश्नों का जवाब नहीं दे सकते थे तो खड़े क्यों हो गये ? मौलवी साहब ! मैंने तो सच्चे इलहाम के विषय में ही प्रश्न किये हैं। कुरान से इलहाम की तारीफ बतौर कुरान के इलहाम होने का सबूत मांगना, क्या विषय से बाहर की बातें हैं ? आपने अपना उत्तर तो दिया नहीं, उलटे आप मुझ पर सवाल करते हैं। इससे आप स्वयं गिरते जाते हैं, **"प्रिया भोजनानि"** को गलत सलत पढ़ कर और भोजनानि का अर्थ बरतनों आदि करके अपने नाम के आगे "पण्डित" लगाते हो। अफ़सोस ! महा अफ़सोस !! मौलवी जी मुझे देहलवी कहते हैं ! रामचन्द्र देहलवी !! तुम्हें आज छटी का दूध न याद दिलाया तो मुझे भी लोग कैसे देहलवी के नाम से याद करेंगे। आप इसी बलबूते पर पण्डित बने फिरते हों ! आज तुम्हारी सारी क़लाई खुल गई, **"अन्धों में काणा राजा"** आज देख लेंगे मुसलमान भाई भी हमारा मौलवी कितना बड़ा पण्डित है ? में पहले इसका ही अर्थ करता हूँ। और मौलवी जी से ख़ास तौर पर दर्ख़्वास्त करूँगा कि ग़ौर से सुनें !

नोट –

इतना सुनना था कि मुसलमानों में सन्नाटा छा गया, तथा मौलवी का तो **"काटो खूंन नहीं"** वाला हाल हो गया। सुनों ! गौर से इसका अर्थ सुनों–**"प्र"** पूर्वक **"मुष्"** धातु से **"प्रमोषी"** शब्द बनता है। जिसका अर्थ धीरे– धीरे किसी वस्तु को नष्ट कर देना है। यही **"चुर"** धातु का अर्थ है। **"चुर"*** धातु **"वञ्चने"** **"खण्डने"** और **"हृते"** इस प्रकार तीन अर्थों में आती हैं। सो यहां अपहरण अर्थ है, अर्थात् परमात्मा पापी मनुष्य की सारी सुख सामग्री को उसके कर्म के मुताबिक धीर–धीरे नष्ट कर देता है। यही यहां आशय है। हजरत आगे पढ़ो स्पष्ट लिखा है **"नष्ट न कर"** शैतान से हम इसलिए मोहब्बत करते हैं कि शैतान ही ने सबसे पहले खुदा के सामने शिर्क से इन्कार किया था। अब आपने और कुछ कहा ही नहीं, जवाब क्या दिया जावे ? अगर मौलवी साहब आप में ताक़त हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

श्री मौलाना अस्मतुल्ला खाँ –

देखिये ! आपके वेद में आता है– **"सहसर शरिसा पुरूषः सहसरक्षः सहसर पाद"**। यानी वह खुदा हजार सिर वाला, हज़ार टांगों वाला, और हजार आखों वाला है, वाह रे ओ३म् जी महाराज ! तुम तो कांणे भी हो तथा लगँड़े भी हो, ओ३म् जी को पता ही नहीं कि एक सिर में दो आंखे होती हैं। और दो टांगे होती हैं। आप शैतान पर ऐतराज़ करते हैं, मगर ज़रा थम जाइये मैं आपसे पूछूंगा कि आपके ईश्वर जी ने सांप क्यों पैदा किये ? आपने कहा कि–**"वर्रा लिखूना फ़िल इल्म"** पर वक्फ़ है। हर्फ़ मुक्तयात के अर्थ ऐसे हैं जैसे बी॰ए॰, एम॰ ए॰, अक्षरों में । उ़र्दू जुबान में लफ़ज कहहार और मुतकब्बिर ग़लत अर्थो में इस्तेमाल होते हैं। आपकी तरफ से **"सच्चा इलहाम"** शास्त्रार्थ का विषय रखना इस बात को साबित करता है कि कोई झूठा इलहाम भी होता है। तो क्या वेदे मुक़्कद्दस झूठा इलहाम है ? आपने जो रसूल के गुनाह बयान किये, वे रसूल के न थे, ब्लकि उन लोगों के थे जिन्होंने रसूल के इख़िलाफ़ किया था। इसके बाद आपने कहा कि–अथर्ववेद में एक मन्त्र और है जिसमें ओ३म् जी महाराज को हजार बाजू वाला कहा है। और यह भी लिखा है यथा–**"सं भूमिंश्च्सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्"** यानी ईश्वर जी महाराज ज़मीन से दश अंगुल ऊपर है, कहीं–कहीं खुदा को तीन पाद वाला कहा है, एक जगह वेद में आया है कि–**"उस्ताद शार्गिद से कहता है कि मैं तेरी गुदा को शुद्ध करता हूँ और शार्गिद कहता है कि मैं तेरी लिंगेन्द्रिय को पवित्र करता**

टिप्पणी –

* चुर धातु का अर्थ, वेद में अपहरण करना इसी तरह होता है जैसे कुरान में खुदा के लिए कहहार और मुतकब्बिर शब्द आते हैं जिनका अर्थ अरबी लुग़त में गालिब़ और बड़ाई वाले के हैं, लेकिन उर्दू में **"ज़ालिम"** और **"मग़रूर"** के हैं। "सम्पादक"

सकता इसे सिर्फ़ खुदा ही दे सकता है। "मुताशाबेहात" अलंकारों का नाम है जो मुँह कमाल के मातहत रहने चाहिए, जैसे खुदा की कोई बीवी नहीं है, पर मोहकमात है, लेकिन वेद में श्री और लक्ष्मी को उसकी बीवियों के तुल्य बताया गया है, यह अलंकार है इसी तरह कुरान में भी जानिये–"अलिफ-लाम-मीम" के अर्थ हैं– "अल्लह-आलमु" कि मैं "अल्लाह" जानने वाला हूं ये ही अर्थ इस्लाम के पूर्व पुरुषों ने किए हैं। नमाज के मुताल्लिक कुरान में "हाफिज़ अलस्यलवाते वस्वलातिल वुस्त" अर्थात् नमाजों का और बीच की नमाज़ का तक़ेंयद रखो, चूँकि स्वल बात बहुवचन है जिसमें तीन और तीन से ज्यादा नमाज़ आ जाती हैं, और इसके आगे "स्वलातिलवुस्ता" कहा है, यानि बीच की नमाज़ पांच में ही हो सकती है कम में नहीं। कलमा इसलिए मानना चाहिए क्योंकि हज़रत मौहम्मद साहब खुदा के रसूल हैं। और उन्हीं के ज़रिये से सदाकत का इज़हार हुआ है, अल्लाह बन्दे को गुमराह ठहराता है। करता है यह बात नहीं है। और शैतान तो इन्सानों में से भी होते हैं, और जिन्नों में से भी।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

आपने "ख़ालिकल" का अर्थ बिल्कुल गलत अर्थ किया है इससे पहले टुकड़ों को नहीं देखा, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि अल्लाह तुम पर से बोझ हलका करना चाहता है, अर्थात् पहले अहकामात की निस्वत अवसहल अहकामात नाज़िल करना चाहता है। क्योंकि क़ुरानी जमाने में इन्सान कमज़ोर पैदा किया गया, जनाब! यहाँ अहमदियों के ज़बरदस्त अक़ीदे असूले हूरतका (विकासवाद) की भी तरदीद होती है, जो कहते हैं कि दुनियां की हर चीज तरक्की करती जाती है, और इसी तरह इलहाम नाज़िल हुआ है, लेकिन कुरान से ही इसकी तरदीद कर दी गई है, इसको ज़रा विचारपूर्वक देखिये। जब मुतशाविहात के मुताल्लिक साफ़ लिखा है कि खुदा के सिवाय इनका अर्थ और कोई नहीं जान सकता, फिर आपका मनघड़न्त अर्थ कैसे मान लिया जाये ? दुःख की बात यह है कि आप कुरान पर भी पचोड़ा फेरे देते हैं। अलिफ़–लाम–मीम के अर्थ जब तक आप किसी लुग़त के आधार पर नहीं करते तो अन्य बिना किसी लुग़त के लगाये अर्थ हर्गिज नहीं माने जा सकते। मैं यदि यह मान भी लेता हूँ कि स्वलातिल बुस्ता का अर्थ बीच की नमाज़ है। तब भी मेरा प्रश्न तो हल नहीं होता, मैं पूछता हूँ कि आपने पाँच नमाज़ इससे क्यों ले ली ? तीन ही क्यों न ले ली ? तीन का भी तो बीच हो सकता है। उल्मा इस्लाम ने एक दर्जन से भी ज़ियादा तरीक़ पर इसके अर्थ किये हैं, यहाँ तक कि हर नुमाज़ को स्वलातिल बुस्ता कहा है, फिर मैं आपसे यह भी पूछता हूँ कि क़ुरान शरीफ़ में पाँच का हिन्दसां लिखने में क्या कुछ ख़राबी आती थी, इसका जरा उत्तर दीजिये ? अब क़लमें को लीजिए–आप यदि यह कहें कि मुहम्मद साहब की कलमें में शमुलियत का यही सबूत है कि वे रसूल थे, तो मैं पूछता हूँ कि उनसे पहले जिब्राईल रसूल थे उस्ताद और वाल्देन भी रसूल हुए इनका नाम भी क़लमे में आना चाहिए। खुदा की बाबत यह कहना है कि बन्दों को गुमराह ठहराता है, करता नहीं, यह आपकी वेबुनियादी तावील है। आप वहाँ का तर्जुमा देखिये उसमें भी करता है, यही शब्द लिखा है। मैं मानता हूँ कि शैतान ख़सलतन इन्सान भी होते हैं, लेकिन क़ुरानी शैतान इन्सान नहीं जिस पर मेरा ऐतराज है वह और है। आप ग़ोर कीजिये।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

पण्डित जी महाराज! आप खुदा और रसूल को ऐसा समझिये जैसे जार्जपंजम और उसका चपरासी। हिन्दुओं ने कृष्ण जी वगैरह को ईश्वर ही मान लिया था। किन्तु कहीं मुहम्मदसाहव को खुदा न मान लिया जावे इसलिए क़लमे में रसूल का नाम लिया जाता है। यह तो जनाब! शिर्कत की नफ़ी है, शिर्कत नहीं है. कहीं आप तो अग्नि, वायु आदि के पूजन का निषेध दिखावें ?

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी–

निस्संदेह! बादशाह के चपरासी भी होते हैं। किन्तु हर मौके पर ऐसा नहीं कहा जाता कि यह राज्य

कुरान के अर्थो के बिल्कुल विपरीत कहा है, इस वास्ते आपका कथन असत्य है। आप फिर कुरान को पढ़कर देख लीजिये। "सं भूमिंश्ठ" इस वेद मन्त्र का अर्थ भी आपने उल्टा किया है। इसका अर्थ तो साफ यह है कि, प्राकृतिक कार्य और कारणों में व्याप्त होता हुआ भी परमात्मा इस पंचभौतिक स्थूल और सूक्ष्म जगत से परे है। इस जगत के दस अंग हैं, परमात्मा उन सबमें व्यापक भी है। और उन सबसे परे भी है। यहां पर परमात्मा के प्राकृतिक होने का पूर्ण खण्डन किया गया है। अंगुल का अर्थ अंग अर्थात् अवयव है, त्रिपाद शब्द से उसके विराट् स्वरूप का वर्णन है। अर्थात् वह सत–चित्त–आनन्द, स्वरूप है। सत् जो उसके स्वरूप का प्रकृति रूप एक पाद है, वही सृष्टि प्रलय रूप है। और आप जिसका बयान कर रहे हैं। कि वह सबसे ऊपर है, वह उसका शुद्ध स्वरूप है। जो जीव और प्रकृति से परे हैं। **"योऽस्मान् द्वेष्टि"** इस वेद मन्त्र का यह आशय हैं कि हम जिससे द्वेष करते हैं, उनसे मुराद, दुष्ट और अधर्मियों से है। और जो द्वेष करते हैं उनसे मुराद धर्मात्मा पुरुष हैं, यानी धर्मात्मा सदा दुष्टों से नफ़रत करते हैं। और दुष्ट धर्मात्माओं से, उनको बाक़ायदा दण्ड देना भी आवश्यक है, अतः वेद ने बताया है कि जो हमसे द्वेष करते हैं, उनको हम तेरे जम्भ (दाढ़) अर्थात् तेरे काबू में रखते हैं। जैसे दाढ़ किसी वस्तु को पकड़ कर आवश्यकतानुकूल चबा डालती है। इसी तरह जो जितना दुष्ट हो उसको उसके अनुकूल दंड देना इस वेद मन्त्र का आशय है। यह मन्त्र राजा और ईश्वर परक है। आपके सारे प्रश्नों का मैं सविस्तार उत्तर दे चुका किन्तु आपने क्या उत्तर दिया ? इसको पब्लिक अच्छी तरह जानती है।

नोट–

मौलाना अस्मतुल्ला की हालत अब ऐसी न रही जैसी शुरु में थी, आपने पुरानी बातें दोहरा कर ही अपना सारा वक्त पूरा किया केवल आपकी जुबाने मुबारिक से सिर्फ़ दो बातें सुनाई पड़ी (क्योंकि अब आप बहुत धीमे बोलने लगे थे) एक तो यह कि **"पाद"** शब्द का अर्थ **"पैर"** है जैसा कि **"पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्"** से सिद्ध है। दूसरे आपने कहा कि महाशय जी आप यह तो बताइये कि ओ३म् जी महाराज ने सांप क्यों पैदा किये ? (इन दो प्रश्नों के सिवाय आपने उल्लेख योग्य कोई बात नहीं कही)। इसके अनन्तर मुसलमान लोग नमाज पढ़ने चले गये, वापिस आने पर अब आपको अयोग्य समझ कर बैठा दिया गया (मुसलमान लोग खुद ही कह रहे थे कि इन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया) खैर ! अलामान के लेख के मुताबिक पहिले इस्लामी पहलवान के एक तरफ बैठ जाने पर अब **"मौलवी अब्दुल हक़"** आपकी जगह पर मुबाहिसा करने को तशरीफ़ लाये।

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

मेरे मेहरबान दोस्त अब्दुलहक साहब ! चूंकि मेरे सुयोग्य दोस्त मौलाना अस्मतुल्ला साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया, अतः जब आप उनकी जगह आये हैं तो आपको लाज़िम (जरूरी)है कि पहले आप उन सवालात को हल करें जो पीछे किए जा चुके हैं, मौलाना अस्मतुल्ला साहब ने अन्त में यह कहा था कि–"पद् भ्यांशूद्रोऽजायतः" यहाँ **"पाद"** के अर्थ **"पैर"** के हैं। सो उत्तर यह है कि पद का अर्थ पैर भी होता है किन्तु यहाँ यह अर्थ नहीं है, अर्थ प्रकरणानुसार होता है। दूसरे मौलाना साहब ने सांप वाली बात कही थी। उसका उत्तर है कि परमात्मा ने सांपों को इसलिए पैदा किया कि सभी इंसानों की बदआमालियों की एवज़ खुदा ऐसी योनि उत्पन्न करे कि जिससे दोनों काम हो जावें, यानी जीव अपने पाप का फल भोग ले, और दूसरों को हवा में व्याप्त ज़हर से बचा ले कि जिसको वह अपने शरीर में पैदा कर देता है।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

"खालिकलु इन्सानुज्वईफ़ा" का अर्थ हैं कि इन्सान स्वयं अपने हिदायत की किताब तैयार नहीं कर

चौवनवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "सिकन्दराबाद" (जिला–बुलन्दशहर) उत्तर प्रदेश

@vaidicbooks

विषय : तनासुख (आवागमन)

दिनांक : सन् १६२४ ई. दिन के दो बजे (ईदगाह का खुला मैदान)
(तीसरा दिन शनिवार)

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

सहायक : श्री पण्डित शिवशर्मा जी
श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा
श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थकेशरी

शास्त्रार्थकर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलवी अब्दुल गफूर बी.ए.
(भूतपूर्व महाशय धर्मपाल बी.ए.*)

सहायक : १ श्री मौलाना अस्नतुल्ला खां साहब
२. श्री मौलवी अब्दुलहक विद्यार्थी

मुसलमानों की ओर से प्रधान : श्री जनाब शाह मुहम्मदखां साहिब,

---

* भूतपूर्व मौलवी अब्दुल गफूर बी.ए., हैड़मास्टर–इस्लामियाँ स्कूल, गुजराँवाला (वर्तमान पाकिस्तान) ने तारीख १४ जून सन् १६०६ ई को गुजराँवाला आर्यसमाज में वैदिक धर्म की दीक्षा लेकर जो "महाशय धर्मपाल बी.ए." कहलाये। परन्तु कुछ समय बाद अनेकों विपन परिस्थितियों के कारण वह पुनः इस्लाम मजहब को स्वीकार कर वापिस चले गये जहाँ पर – "मौलाना धर्मपाल बी.ए." के नाम से विख्यात रहे।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शहन्शाह जार्जपंजुम और उसके चपरासी का है। या यह हुकम जार्जपंजुम का है और इसे चपरासी लाया है। इसे बार–बार कोई आदमी नहीं कहता, यह तो ठीक है कि आपने कहने को जुबानी तौर पर मुहम्मद साहब को रसूल ही माना है मगर अमली तौर पर खुदा से भी ज्यादा बढ़ा दिया है इसके लिए "इस्लामी तौहीद का नमूना*" जो हमारे श्री पण्डित मुरारी लाल जी का बनाया हुआ है देखिए......... इसीलिए तो लोग यह कहते हैं कि–"मुहम्मद की जलवे नुमाई न होती। कराम खुदा की ये खुदाई न होती।। यहाँ खुदा साहब अपनी खुदाई को ही ज़ाहिर करने में क़ासिर और कमजोर बताये गये है, यह महज़ आपका दावा ही दावा है कि कुरान मजीद में तमाम मज़हबी किताबों का निचोड़ है, अगर आपमें कुछ दम–खम हो तो बताइये कि इल्म हिन्दसा कुरान में कहाँ है ? मनुष्य के विवाह का समय और उसकी हद दिखाइये। जबकि खुदा ने खुद रसूल को हिदायत की, कि आगे शादियाँ करना बन्द कर दो।

श्री. मौलवी अब्दुलहक विद्यार्थी –

तमाम पिछली बातों को दोहराते हुए कहा ....यदि मुहम्मदसाहब न होते तो मैं कहता हूं कि खुदा का नाम भी न आता। आप जो कहते हैं कि कुरान में सारी विद्या दिखाओ, मैं कहता हूं कि आप ही वेद में मोटर कार दिखा दो। दूसरे मुमतनेयात का वजूद ही मुहाल है आपको क्या दिखाऊँ ?

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

शाबास ! आपने सारे शांस्त्रार्थ (मुबाहिसें) में एक यही मार्के की बात कही है। आपका कहना ठीक है कि अगर मुहम्मदसाहब न आते तो खुदा का नाम भी न आता, मगर क्या हज़रत आदम, इब्राहिम, मूसा, दाऊद, ईसा अलेहेमुस्सलम ने खुदा के नाम को जाहिर नहीं किया ? अगर किया, जैसा कि आप मानते हैं तो आपका कथन बिल्कुल ग़लत है। और आज आपके इस खुदा से तमाम बुजुर्गो की तहकीर व तज़लील होती है। वेद में मोटर–कार लिखी हुई दिखाने का मुतालवा करना तो जनाव अक़ल को नुमाईश में रक्खे जाने की तहरीक करता है। **"बड़े मियां तो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह"** ! अब बेचारे मुसलमान भाई सोच रहे होंगे कि जिसे हमने अपना रहनुमा बनाया , उसने ही किश्ती को डुबो दिया, अब किसे आपकी जगह पर खड़ा करेंगे ? थोड़ा जनाब उन बेचारों की तरफ भी ग़ौर फ़रमाओ; जिनकी नज़र चारो तरफ से आप पर ही लगी हुई है। हज़रत ! मैंने तो कुरान में उसूल हिन्दसा पूछा था, न कि जोड़, तकसीम, गुणा, भाग। वेद ने भी उस उसूल को बता दिया है जो तमाम तरह की मशीनों में एक–सा काम करता है। आपको क्या खबर नहीं कि एक ही उसूल के मातहत कुट्टी काटने, आटा पीसने , दाना दलने वगैरह की मशीनें चल रही हैं। ज़रा सोच समझकर ऐतराज़ कीजिए।

नोट–

मौलाना ने इस बार ऊपर कही बातों को दुहराते हुए कहा कि आर्यो के यहां एक विषय के मुताल्लिक कोई कुछ कहता है कोई कुछ, इसलिए किसको सही माना जावे और किसको ग़लत माना जावे ? इस प्रकार अपना कोई सही उत्तर न देते हुए अब्दुल हक़ साहब ने जैसे–तैसे अपनी टर्न का समय काटकर आज का मुबाहिसा शान्तिपूर्वक समाप्त किया, वैदिक धर्म की अपने–पराये पर अमिट छाप पड़ी। सभी श्रोतागण देहलवी जी की प्रशंसा करते हुए चले गये।

---

* यह पुस्तक हमारे यहाँ प्रकाशन के विक्रय विभाग में मौजूद है, जिन सज्जनों को चाहिये वह प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित कर प्राप्त कर सकते हैं।

निवेदक –
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी.ए.–

मैं आर्य समाज से कुछ लेने आया हूँ देने नहीं, और मानिन्द एक रेगिस्तानी ज़मीन के और मान्निद एक शागिर्द के आपके सन्मुख खड़ा होता हूँ। किन्तु मैं यह खूब जानता हूँ कि जीत मेरी ही होगी। क्योंकि मैं हक़ पर हूँ। जैसाकि महाभारत के युद्ध में अर्जुन हक़ पर था और द्रोणाचार्य वातिल। मैं आपको समझाता हूँ–द्रोणाचार्य ने कौरवों का नमक खाया था, इस वास्ते वे अन्त तक अधर्म की तरफ से लड़ते रहे। किन्तु अर्जुन को आशीर्वाद देते रहे कि तेरी ही विजय हो और अन्त में उसकी ही विजय हुई। आप भी खाये हुए नमक की झूठी तरफ़दारी कर रहे हैं, इस वास्ते आशीर्वाद दीजिये कि मेरी विजय हो, मैंने आर्य समाज से ही बहुत कुछ सीखा है। मगर जब देखा कि आर्यसमाज के पास आत्मा की शान्ति के लिए कुछ नहीं है तब लाचार चोटी कटा कर फिर मुसलमान हो गया...............वीच में...............।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी –

प्यारे धर्मपाल ! आज की बहस मसले **"तनासुख"** पर थी और पब्लिक मुन्तजिर थी कि आप इसी विषय पर रोशनी डालेंगे, परन्तु आपने तो न मालूम कहाँ की कहानियां शुरू कर दी जो एकदम फ़िज़ूल हैं, खैर ! आप खुद कहते हैं कि मैं मानिन्द एक सूखे रेगिस्तान की तरह हूँ जिसे शान्ति के लिए शीतल जल चाहिए, दोस्त मैं पूछता हूँ कि आपको आर्यसमाज से निकले आठ साल हो गये क्या इस्लाम ने आपको अभी तक ऐसी कोई वस्तु नहीं दी ? जिससे आपकी प्यास बुझती और आपको आत्मिक शान्ति प्राप्त होती, मैं कहता हूँ कि वहाँ रक्खा ही क्या है ? यह और बात है कि किन्ही लोभ और लालच में फंसकर आप मुसलमान हो गये हैं। आपने कहा कि मानिन्द अर्जुन के मैं हक़ पर हूँ, आप आशीर्वाद दें, जैसे द्रौणाचार्य ने अपने शिष्य को दिया था, ठीक है, अगर मैं यह समझता हूँ कि आप हक़ पर हैं, तो मैं ही क्या तमाम दुनियां आपको आशीर्वाद देती। मगर मैं देखता हूँ कि आप हक़ पर नहीं हैं, जिसकी कलई अभी खुली जाती है, मैं अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता, आप निर्धारित विषय पर प्रश्न कीजिये पिछला रोना मत रोइये, क्योंकि इसका फल कुछ न होगा। इस खराब मौसम में ये जो हज़ारों की संख्या में जनता बैठी है ये कोई बेवकूफ़ नहीं है। इस बात का ख़याल करिये जनाब ! और प्रश्न करिये !!

नोट –

इतना कहने पर भी आपने पुनः ऐसी ही बातें पढ़नी शुरू कीं जिससे जनता में बड़ा कहकहा मचा, चारों तरफ़ बड़ा भारी हंगामा खड़ा हो गया। हम उस फ़िज़ूल के किस्से को न लिखकर केवल काम की बातें लिखते हैं। मौलाना धर्मपाल ने जब स्थिति बिगड़ती देखी तो दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा अच्छा भाइयों सुनो ! ध्यान देकर सुनो !!

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी.ए.–

मैं तनासुख को योनिचक्र के नाम से पुकारता हूँ, योनि का अर्थ है, स्त्री की उपस्थेन्द्रिय इस योनि चक्र को हिन्दू और आर्य दोनों ही मानते हैं और चूंकि यह उत्सव हिन्दू और आर्यो का मुश्तर्का है, इस वास्ते मेरे प्रश्न दोनों पर होंगे।

शास्त्रार्थ से पहले

आज रात्रि से ही घनघोर वर्षा हो रही थी, और बराबर आज ४ तारीख को भी होती रही। बाहर से आये हुए सैकड़ों हिन्दू और आर्य भाई इस कारण अत्यन्त दुःखी थे कि शास्त्रार्थ ऐसी मूसलाधार वृष्टि में नहीं हो सकेगा। किन्तु परमात्मा की दया से दिन के बारह बजे कुछ समय के लिए वर्षा रुकी, परन्तु सुबह का मौसम देखकर वर्षा के कारण श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी देहली को वापिस जा रहे थे, क्योंकि आज मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) होना असम्भव सा प्रतीत हो रहा था। और यही दोनों तरफ से निश्चय होने वाला था, किन्तु जब मुसलमानों ने सुना कि वे देहली चले गये तो उन्होंने हठ पकड़ ली और कहा कि हम आज ही शास्त्रार्थ करेंगे, बरसते हुए पानी में ही सबको जाना पड़ा एवं अगले स्टेशन पर ही श्री पण्डित देहलवी जी को टेलीफोन करके रोका गया, और वहां से ६–७ मील पैदल चलकर आपको वापिस आना पड़ा, गुरुकुल सिकन्दराबाद के ब्रह्मचारियों ने न दिन देखा न रात एवं न वर्षा देखी न धूप, बराबर बड़ी मुस्तैदी के साथ प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध करते रहे। श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी को लेने के लिए दस–दस, बारह–बारह वर्ष के बच्चे भी ६–७ मील पैदल गये एवं वापिस आये, इस गुरुकुल के जैसे बच्चे परमेश्वर सारे देश में पैदा करे। जिनको अपने देश और अपने समाज की उन्नति में ऐसी ही लगन हो जैसी इस गुरुकुल के बच्चों में दीख पड़ती है।

बारह बजे कुछ वर्षा कम हुई तो सारे नगर में शास्त्रार्थ का समाचार दिया गया आज स्थान परिवर्तन भी कर दिया गया था, उसकी भी सूचना दे दी गई कि आज ईदगाह के खुले मैदान में **"तनासुख"** विषय पर शास्त्रार्थ होगा। सारे नगर में यह खबर बिजली की तरह एकदम फैल गई एवं देखते ही देखते ८–१० हजार श्रोतागण मैदान में इकट्ठे हो गये। एक मजे की बात तो यह थी कि मुसलमानों ने तो अपने ऊपर शामियाना भी तनवा लिया था, मगर आर्य समाज के पण्डित बिना किसी छत्री और साये के ही शास्त्रार्थ कर रहे थे। क्योंकि लगभग आधे घण्टे बाद ही बारिश ने ज़ोर पकड़ लिया था।

आज मुसलमानों की तरफ से प्रश्न करने का दिवस था और विषय था **"तनासुख"** अर्थात् **"आवागमन"** इस्लाम की तरफ से **"श्री मौलाना धर्मपाल बी.ए."** प्रश्नकर्त्ता के रूप में आये, आपको जो कुछ कहना था वह सब लिखा हुआ था। और उन लिखे हुए वर्कों पर भी अपनी बनाई **"कुफ्रतोड़"** पुस्तक के वर्क चिपकाये हुए थे। उनको हाथ में लेकर पढ़ते हुए शास्त्रार्थ मंच पर प्रथम बारी में बोलने के लिए खड़े हुए।

यह शास्त्रार्थ बहुत ही दिलचस्प हुआ, आप भी आगे पढ़िये और लाभ उठाइये।

'लेखक'

नोट–

इसका खण्डन बीच ही में खड़े होकर श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा जी ने किया और इश्तहार का हवाला देकर बताया कि जलसा केवल आर्यो का है मुश्तर्का नहीं है। हिन्दू केवल इन्तज़ाम में शामिल हैं, मुसलमानों के प्रेसीडैन्ट ज़नाब शाह मुहम्मद खाँ ने बहुत हाथ पैर पीटे कि किसी तरह यह जलसा हिन्दु और आर्यो का मुश्तर्का साबित हो किन्तु शास्त्रार्थ के जो नियम तय हुए थे उनको दिखलाने पर खां साहब चुप हो गये।

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी.ए. –

योनिचक्र हिन्दू और आर्य दोनों मानते हैं और ये यह भी मानते हैं कि अपने–अपने किये हुए कर्मो के मुताबिक हरेक प्राणी मरने के बाद मां की योनि के द्वारा उसके पेट में आकर उलटा लटकता है। और फिर नौ माह बाद उसी रास्ते से बाहर आता है। ऐ मुसलमानों ! क्या तुम जानते हो यह क्या बात हुई ? समझो कि तुम आज खान बहादुर या अपने घर के अमीर या कोई सेठ हो, तो कल मरने के बाद इनके अक़ीदे (मान्यता) के मुताबिक अपने ही अस्तबल के घोड़े, गधे, खच्चर, कुत्ते, बिल्ली भी बन सकते हो, कल तुम मर्द थे आज औरत भी बन सकते हो। भला ऐसे फ़िजूल अक़ीदे को कौन सा शरीफ़ आदमी पसन्द करेगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी –

मौलवी धर्मपाल जी ! बस क्या इसी बलबूते पर आर्यसमाज से शास्त्रार्थ करने आये थे ? आप जानते हैं कि आज का विषय तनासुख है, क्या सचमुच आप तनासुख पर ही बहस कर रहे हैं ? अच्छा होता जो बजाये आपके कोई और आलिम खड़ा होता। खैर ! आपने योनि शब्द का बार–बार जो स्त्री की उपस्थेन्द्रिय अर्थ किया है और कहा है कि योनि शब्द का यही अर्थ है, यह आपकी नावाक़फियत (अज्ञानता) का नमूना है। नहीं तो आप बताइये **"शास्त्रयोनित्वात्"** इस वेदान्त सूत्र के योनि शब्द का क्या अर्थ है ? आपको समझना चाहिए कि योनि कारण और योनि उत्पत्ति स्थान का भी नाम है। अगर योनि के मुताल्लिक देखना हो तो सूरए तहरीम की पिछली आयत को देखिये कि बड़े–बड़े वर्गुज़ीदा शख्सों की रूह कौन से रास्ते से फूंकी गई थी ? आयत भी सुनिये - **"वमर्य मिब्नता इम्रानल्लती अहसनत् फर्जहा फनफखनाफीह मिर्रुहिना"** यानि मरियम बेटी इमरान की जिसने रोकी अपनी शहवत की जगह फिर हमने फूंक दी अपनी तरफ़ की जान, **"तर्जुमा शाह अब्दुल क़ादिर, देहली"** अब कहिये ! आपका मिज़ाज ठिकाने आया या नहीं ? कि बिना आमाल के नबी रसूल और पैग़म्बर इसी रास्ते से दाखिल किये गये और इसी से निकाले गये, फिर हमारे यहाँ तो सब कर्मानुसार होता है। जिस पर कोई ऐतराज नहीं हो सकता। अगर मसामात भी आपके नज़दीक योनियाँ ही हैं तो रोज़े के दिनों में जो मुसलमान फ़व्वारे से मसामातों के ज़रिये ठंडक पहुँचाते हैं वे अपनी योनियों के ज़रिये से ही पहुँचाते होंगे। क्योंकि अरबी में फ़र्ज के अर्थ शर्मगाह और सुराख दोनों के हैं। माँ के पेट में उलटा लटकना तो सभी के लिए है, क्या मौलाना आप सीधे लटके थे, या सभी मुसलमान सीधे लटकते हैं और क्या आप या सभी मुसलमान भाई किसी और रास्ते से पेट में प्रविष्ट हुए थे ? और बिना कर्म उधर से घुसना आपने कैसे पसन्द किया ? ....जनता में हंसी............. । हालांकि हमारे यहां तो अमैथुनी सृष्टि भी कर्मानुसार होती है। आपका यह कहना कि कर्मो के अनुसार मनुष्य गधे और खच्चर बन जाते हैं, बिल्कुल ठीक हैं, आज आप कैसी बातें करते हैं ? क्या यह मसले तनासुख पर शास्त्रार्थ हो रहा है ? आप सबको तो हज़रत आदम की तरह पैदा होना चाहिए था, गधा और खच्चर ही नहीं, मनुष्य पाखाने का कीड़ा तक बन जाता है, यह उसकी सज़ा भी मुकर्रर है। ख़याल कीजिये जो मुनष्य आज चोरी, ज़िनाकारी या और कोई बद ऐमाल करता है, सरकार उसको पकड़कर बन्द कर देती है। और उससे कहार,

धोबी, मेहतर वगैरह का काम लेती है। चाहे वह मौलवी खान बहादुर हो या अन्य कोई भी क्यों न हो। आप वहां क्यों नहीं बोलते कि, देखो जो आज इज्जतदार मौलवी है वह कल मेहतर बन रहा है। यह कैसा बुरा सिलसिला है ? जनाब धर्मपाल साहब ! आप हमको क्या कहते हैं ? कुरान शरीफ खुद बताता है कि खुदा ने बनीइस्राइल की एक कौम को हुकुमउदुली के ऐवज़ में बन्दर और सुअर बना दिया था देखिए आयत– **"मल्लानो हुल्लाहु वग़ज़िबअलैहि व जअला मिनहु मुल् किरदत वल् खनाज़ीर।"** अर्थात् जिन पर अल्लाह ने लानत की और अपना गज़ब नाज़िल किया उनमें से बहुत–सों को बन्दर और सुअर बना दिया.......... कहिये जनाब ! आपके पास इसका उत्तर क्या है ? दूसरे ख़ैर हम तो यह मानते हैं कि कर्मों के अनुसार फल मिलता है, किन्तु आप ही बतायें कि इन्हीं बैठे हुए मुसलमानों में कोई लगंड़ा, कोई अंधा, कोई काणा, कोई अमीर, कोई ग़रीब कोई मौलवी कोई बेवकूफ़ ! यह भेद क्यों है ? आपके खुदा साहिब ने बिना किसी वजह के इनमें यह इखतलाफ़ अर्थात् भेद क्यों पैदा कर दिया है ? और फिर अगर आपकी योनि के रास्ते पेट में जाने से शान घटती है तो क्यों नहीं और कोई रास्ता खुदा ने बताया ? धर्मपाल जी ! आप अपनी किताब (कुफ्रतोड़ आदि) ही बेचने आये हैं या कुछ मुबाहिसे की तैयारी भी करके लाये हैं ?

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी॰ ए॰ –

पण्डित देहलवी साहब ! आपको पता होना चाहिए कि औरत की योनि इस क़ाबिल नहीं होती जो इन्सान के आने–जाने को ठीक अन्ज़ाम दे सके, इसलिए उसे रायल रोड बनाने के लिए यजुर्वेद में आपके आचार्य महीधर ने घोड़े से सम्भोग करना लिखा है। ताकि वह स्थान वसीह हो जावे और हिन्दू तथा आर्यो का आवागमन भली प्रकार हो सके, इसीलिए उनके बुजुर्ग महादेव के लिंग की पूजा करने लगे थे, और इसीलिए यह माना गया था कि धोबिन से सोहबत (सम्भोग) करना अयोध्या के समान और चांडाली से सोहबत करना काशी के समान है, बल्कि किसी–किसी ने तो यहां तक भी लिखा है कि अपनी मां तक को भी नहीं छोड़ना चाहिए। वह सारा कुफ्र और यह सारी पूजा इस आवागमन के मसले से चली है, अब सोचिये कि यह कितनी गन्दी बात है ? ....जनता में शोरोगुल............भारी क्षोभ...............।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी –

मौलाना धर्मपाल ! क्या आप जानते हैं कि किसके सामने खड़े हो ? आपको आर्यसमाज पर ऐतराज करना चाहिए था। मगर ऐतराज करते हैं आप वाममार्गियों पर, जिनका खण्डन खुद आर्यसमाज करता है, ऋषि दयानन्द इन तमाम बातों का स्वयं खण्डन करते हैं, और आप फ़जूल उन्हीं को दोहरा कर वक़्त जाया कर रहे हैं। मेरी आदत नहीं है कि मैं एक सभ्य सोसायटी में खड़ा होकर आपके समान बकवास करूँ, और लोगों को झूठ–मूठ बहकाऊँ। मैं तो कहता हूँ कि आप भी आर्यसमाज का ही काम कर रहे हैं। केवल भेद यह है कि दूसरा प्लेटफार्म लगाकर और जरा असभ्य बनकर कर रहे हैं, आपने इसका उत्तर क्यों नहीं दिया कि आपके यहां सुअर और बन्दर कैसे बने ? अबकी बारी में इसका उत्तर अवश्य देना होगा। रही लिंगपूजा की बात ? सो जनाब ! सच पूछिये तो लिंग की सच्ची पूजा तो इस्लाम करता है सुनिये–

न में गर्दद मुसल्लाअतान में गर्दद मुसलमानी।
यकीनं शुद किवरकेस्त बुनियादे मुसलमानी।।

अर्थात् (कोई मनुष्य) नहीं होता है, मुसलमान तब तक जब तक कि नहीं होती है मुसलमानी यानी **"लिंग पूजा"** मुझे यक़ीन हो गया कि मुसलमानी की बुनियाद लिंगेन्द्रिय के ऊपर है, आप ख़याल करें कि ज़रा–सी खाल को काटने पर कितनी खुशियां मनाई जाती है, दावतें उड़ती हैं, और बाजे बजते हैं, यह लिंग

की खुली पूजा नहीं है तो और क्या है ? इसके सिवाय यहां तो हिन्दू लिंग पर पानी ही डालते हैं, और वह भी उस लिंग पर नहीं, बल्कि इस मूर्त्ति के द्वारा भगवान पर। किन्तु हज़रत तुम तो बताओ कि वह "संगे असवद" क्या है ? जो काबे की दीवार में लगा हुआ है। किताबें खोल कर पढ़ो यह वही महादेव का लिंग है जो हजरत के पेश्तर मक्के में पुजता रहा और अब भी पुज रहा है। और जिसको कि हर एक मुसलमान वहाँ जाकर (बोसा) चुम्बन देता है। अगर आपमें कुछ दम–खम हो तो साबित कर दें कि वह महादेव का लिंग नहीं है। सुनिये ! कान खोलकर सुनिये !! मिस्टर सैल क्या कहते हैं कि–"**काबा**" और "**संगेअसवद**" क्या है ?–

"THE KABA", IS ON OBLONG MASSIVE STONE BUILDING FIFTEEN PACES LONG, FOURTEEN BROAD AND ABOUT THIRTY FIVE PACES HIGH AT THE HAJRUT-ASWAD. THE BLACK STONE WHICH IS PROBABLY AREAEROLITE. ITS EXISTANCE IS AN OBJECT OF WORSHIP IN AN CONOCLOOLIC RELIGION IS AN ANOMALY A RELIC OF PAGANIOM IN THE VERY HEART OF ISLAM."

अर्थात् "**काबा**" एक मुस्ततील भारी पत्थरों की इमारत है, जो पन्द्रह क़दम लम्बी, चौदह क़दम चौड़ी और अनुमान पैंतीस फीट ऊँची है, इसके आग्नेय कोण में हजरेअस्वद् "**काला पत्थर**" है जो गालिबन् संगे साहब है। इसकी मौजूदगी एक बुतशिकन (मूर्ति पूजक) धर्म में एक पूजा की चीज है, और उनके सिद्धान्त के विरुद्ध है। वह एक पुरानी मूर्तिपूजा का निशान है जो खास इस्लाम के हृदय देश में मौजूद है। उपरोक्त कथन श्री मिस्टर सैल ने मौहम्मद साहब के जीवन चरित्र में लिखा है। .... मेरा ख़याल है अब कुछ मौलाना धर्मपाल जी ! आपके ज़हन में कुछ बात उतरी होगी। इसके सिवाय आपने वाममार्गियों के मुताल्लिक यह कहा है कि अपनी माता तक को भी नहीं छोड़ना चाहिए। इसका उत्तर आप आर्यसमाज से क्या चाहते हैं ? दुनियां में सैकड़ों मज़हब बुरे से बुरे मौजूद हैं, उनका उत्तरदायित्व आर्यसमाज पर क्या है ? आप आर्यसमाज से प्रश्न करते हैं, या वाममार्गियों से ? हमारा उत्तर है कि हम इन बातों को नहीं मानते, किन्तु साथ ही हम ये भी बता देना चाहते हैं कि – वाम मार्गी तो थे ही, परन्तु आपके यहां क्या कसर बाक़ी है ? जो कि उसी की एक शाख है। क्योंकि बहुत से काम आपके यहाँ वैदिकधर्म से बिल्कुल उलटे हैं, सबूत के लिए आदम और हव्वा की कथा को मुलाहजा फरमाइये, देखिये –

मुसलमान मानते हैं कि सृष्टि के आदि में हज़रत आदम को पैदा करके हव्वा को आदम की पसली से पैदा किया, इस वास्ते हव्वा आदम की बेटी हुई। अब हव्वा का आदम से विवाह हुआ इस वास्ते हज़रत धर्मपाल साहब ! बाप से बेटी का विवाह हुआ कि नहीं ? आगे देखो जनाब डाक्टर अब्दुल हकीम खाँ साहब मौलवी ने जो कि आपके फ़िरके अहमदिया से ही पहिले ताल्लुक रखते थे, उसी आयत से यह साबित किया है कि– सबसे पहिले हव्वा पैदा हुई। और उनसे आदम पैदा हुए इस लिहाज से मां से बेटे की शादी शाबित होती है। .... मुसलमानों में से चारों ओर से अवाजें आई ....लाहोल विलाकुव्वत............. और उन दोनों से दुनिया भर में तमाम मर्द और औरत फैला देना सगे बहन भाई की शादी को साबित करता है। जिससे किसी भी मुसलमान को इन्कार नहीं हो सकता, जनाब ! यह है असल वाममार्ग का सिद्धान्त !! जिसमें मुहरमतिअबदी भी यानी मां, बहन और बेटी भी बिना सोहबत के नहीं छूटती और जो माद्दा मुसलमानों की बुनियादी पैदाईश में पड़ा हुआ है। मैं आपसे फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप इन बातों में न जावें। नहीं तो याद रहे मैं भी इस्लाम की ढ़की हुई सारी गंदगी खोलने पर मज़बूर हो जाऊँगा, शास्त्रार्थ तनासुख (आवागमन) पर है, आप उसी नियत विषय पर बहस करें और हमारे मन्तव्यों पर दोष दें।

नोट —

मौलाना ने उठकर उन ऐतराज़ातों का जो उन पर किये गये थे कोई जवाब नही दिया और फिर आगे के वर्क पढ़ने शुरू कर दिये, हमारा खयाल है कि उन्होंने सारी **"कुफ्र तोड़"** नामक पुस्तक पढ़ डाली, और वाममार्गियों की बातें ले लेकर मुसलमानों को भड़काते रहे, उन्होंने कई दफ़ा उन्हीं बातों को दोहराया जिनको पेश्तर कह चुके थे। सिर्फ़ अबकी बार दो बातें नई कही जो यहां दी जाती हैं।

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी॰ए॰ —

मनुस्मृति में मनु जी महाराज ने बताया है कि जो मनुष्य अपने गुरु की स्त्री से ज़िना (सम्भोग) करता है वह वृक्ष बनता है और जो मनुष्य कोई नशीली वस्तु इस्तेमाल करता है वह भी इसी प्रकार की योनि प्राप्त करता है इत्यादि। प्यारे हिन्दु और आर्य भाईयों तुमको ये शाक, ये फल, ये घास जानते हो कब नसीब होते हैं? जब तक कि अपने गुरु की स्त्री से ज़िना न किया जावे तो एक तिनका भी घास का देखने को न मिले इस वास्ते अगर तुम, गाजर, मूली, बैंगन, आम, अमरूद खाना चाहते हो तो इनकी तालीम के मुताबिक अपने उस्ताद की ज़ोरु से ज़िना करो तब तुमको ये सब चीजें खाने को मिल सकती हैं इसका नाम **"आवागमन"** है, जिस पर हिन्दुओं को फ़खर है, इसके सिवाय स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी भंग पियी थी, इस वास्ते इनके मनु जी महाराज के अनुसार वे भी कीट पतंग आदि बनने चाहिए। बन्दर और सुअरों का उत्तर देते हुए आपने कहा कि वे तो इसी जन्म में तबदील कर दिये गये थे। दूसरें में नहीं जैसे लकवे से मनुष्य की सूरत और हो जाती है अर्थात् बदल जाती है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी —

मौलाना! आपने सिर्फ़ यही एक प्रश्न आर्यसमाज पर किया है, चलो गनीमत है, अच्छा सुनिये— अपने गुरु की स्त्री से ज़िना (बलात्कार) करने वाले मनुष्य यदि वृक्षयोनि में जाते हैं तो इसमें क्या बुराई है? लेकिन आपका यह कहना कि घास वगैरा इसी ज़िना की वजह से होती है यह ठीक नहीं, क्योंकि घास वगैरा पैदा होने का कारण सिर्फ़ यही तो नहीं है। और भी बहुत से कारण हैं। जैसे कोई कहे कि फलां काम करने से पांच रुपये मिलेंगे, इसका मतलब यह नहीं होता कि और किसी काम की एवज ५ रुपये नहीं मिलेंगे, जिस तरह एक बदफ़ैली की सजा एक साल की क़ैद है, तो क्या आप यह कहेंगे कि बस उसी बदफ़ैली से एक साल की क़ैद हो सकती है और किसी से नहीं। चोरी, जारी, जुआबाजी, ग़रज सैकड़ों ऐसे फ़ेल हैं, जिनसे एक साल की कैद हो सकती है, इसी तरह परमात्मा के नजदीक इस प्रकार के अनन्त कर्म हैं जिनका फल वृक्षादि की पैदाइश है, सिर्फ ज़िना नहीं है। आपका नीच योनियों को बुरे कर्मो का कारण बताना अर्थात् यह कहना कि नीच योनियों से बुरा कर्म कराती है, कतई गलत है, कर्म—कारण होते हैं, जनाब! अच्छे और बुरे फल के, न कि फल कारण होते हैं बुरे और अच्छे कर्मों के! इसलिए आपने अपने ऐतराज में यह बुनियादी गलती की है।

दूसरे जो भी पाप कर्म मनुष्य करते हैं वह उसके बुरे और दुखदाई फल को प्राप्त करने या भोगने की गरज़ से नहीं बल्कि बर्खिलाफ़ इसके हर मनुष्य पाप कर लेने के बाद उसके दुख रूपी फल से बचने का प्रयत्न करता है। जैसे चोर, चोरी करके जेल खाने से बचने के वास्ते छिप जाता या भाग जाता है। इससे साफ साबित होता है कि लोग दुनियावी लज्ज़ात और इन्द्रियों के मजे की खातिर पापकर्म करते हैं, जो दोनों सूरतों में होता है, यानी तनासुख के न मानने वाले भी इसी मजे के मारे पापकर्म करते हैं न कि आखिरत के अज़ाब को भोगने के वास्ते! तो यह कैसे कहा जा सकता है कि तनासुख या योनियों में जाना पापों का कारण है? जैसी यह मौजूदा दुनियां है उससे आप और मैं दोनों इन्कार नहीं करते हैं, बदी (बुराई) इसमें

ज्यादा है इससे भी आपको इन्कार नहीं है, मुसलमानों में हिन्दुओं से ज्यादा पाप करने वाले मौजूद हैं इससे भी किसी मुंसिफ को इन्कार नहीं हो सकता यानी तनासुख जैसे अकीदे के न मानने वाले भी पापों से बचे नहीं, परन्तु और ज्यादा फंसे हुए हैं। और फंसने का कारण दोनों अकीदे वालों में समान है यानी लज्ज़ाते दुनियां और इन्द्रियों की चाट भोगाना, तो आपका यह खयाल महज़ गलत नहीं तो और क्या हो सकता है ? जब आप कहते हैं कि योनियां पाप का कारण हैं, हाँ अगर हम यह कह दें कि खुदा का दोजख को पहले ही तैयार कर देना इस बात का कारण है कि लोग पापकर्म करें और उसमें दाखिल हों तो कुछ बेजां नहीं हो सकता, जबकि खुदा का कहना भी इनसे पूरा होता है देखो –**"व नम्मत् कलिमानो रब्बिकाल्ल अम्ला अन्ना जहन्नमा मिनल्जिन्नते वन्ना से अलमईन"** अर्थात्– और पूरा होकर रहेगा, मेरे रब का कहना कि हमको भरनी है दोजख जिन्नों और आदमियों से इक्टठा। यहां है तरगीब बुरे कार्यों की ताकि दोज़ख खाली न रहे, हमारे यहां कोई ऐसे नुकस (कमी) की बात नहीं हैं। जब हर सूरत में इन्सान बदी की तरफ़ ज्यादा मायल रहते हैं चाहे आवागमन के मामले होवें या न होवें। ईश्वर का ऐसी ऐवज में जो तीनों काल में इसी तरह के वाकये होने वाले थे, एक ऐसा तरीका मुकर्रिर करना था, जिससे जीव अपने पाप का फल भी भोग ले और (दरख्त) पेड़ वगैरा बन कर दूसरों को भी लाभ पहुंचा दे तो इसमें क्या हर्ज वाकै होता है ? आपको यह माकूल बात तो पसन्द नहीं, परन्तु बिना कर्म के दुख सुख वाली नामाकूल बात पसन्द है। यह वह असली जवाब है जो तुम्हारे आइन्दा होने वाले तमाम ऐतराज़ात को जो किसी भी नीच योनि के मुताल्लिक किया जावे हमेशा के लिए रदद् कर देता है।

ऋषि दयानन्द ने अज्ञान दशा में भंग पी थी उनको इसके गुण व दोषों का पता न था, इसलिए उन्होंने स्पष्ट तौर से स्वयं कहा है कि मैंने अज्ञान दशा में भंग पी है, अतः उनको इतना दोषी नहीं कहा जा सकता, और फिर भी हम स्वीकार करते हैं कि भँग जैसी मामूली चीज को अज्ञान दशा में पीने का भी यदि कोई प्रायश्चित है तो उनको भी करना पड़ेगा, लेकिन जरा आप तो बताइयेगा कि रसूले खुदा ने अंगूरी शराब पी और वह भी मस्जिद में पी, जिसका नाम मस्जिदें फजीख हुआ। फजीख के अर्थ अंगूरी शराब से हैं जिसका पीना इस नाम पड़ने का कारण हुआ। इसलिए कुरान में आया हुआ है कि–**"लातकर बुस्वलाता व अन्तं स्वकारा हत्ता ला अलममातकलून"** अर्थात् **"तुम नमाज के करीब न जाओ, जब तक नशे की हालत में हो, यहां तक कि जो कुछ कहते हो उसे समझने लगो"** यानी नमाज के वक्त को छोड़कर तुम नशा कर सकते हो। अब कहिये आप हजरत ! इस शराबनोशी का क्या फल पायेंगे। जबकि कुरान में खुद एक जगह शराब को हराम बताया गया है।

नोट–

अब मौलाना धर्मपाल जी के बोलने की अन्तिम बारी थी, उन्होंने वहीं पुरानी बातें कहना आरम्भ किया, जिनका किये गये प्रश्नों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता था। एवं वही **"कुफ्र तोड़"** नामक पुस्तक के पन्ने उलट–पलट कर पढ़ने लगे। उनसे बार–बार कहा गया कि, पहले प्रश्नों का उत्तर दो, पुस्तक बाद में पढ़ना, किन्तु आपने एक न सुनी, इसकी वजह यह थी कि धर्मपाल जी बहुत बड़ी तादाद में **"कुफ्र तोड़"** नामक पुस्तक यहां बेचने के लिए लाये थे और इस तरीके से उसका एडवरटाइजमेंन्ट (विज्ञापन) कर रहे थे। मगर उनको बहुत निराश होना पड़ा, क्योंकि यह पुस्तक बहुत थोड़ी तादाद में बिकी। खैर यह आपकी बोलने की अन्तिम बारी थी, तो भी आप उसी किताब को सुना रहे थे, आपने अपनी तकरीर में अपनी तरफ से इतने गन्दे शब्द इस्तेमाल किए जिनको शायद कोई सभ्य मनुष्य सुनना भी पसन्द नहीं करेगा मैंने उनको यहां देना उचित नहीं समझा इसलिए श्री लाजपत राय जी जब पुरानी छपी प्रति को सुधार कर करके

प्रेसकापी बना रहे थे, मैंने इस गन्दे मैटर को वहां से काट दिया था। यदि आर्य समाज की किसी माननीय पुस्तक का हवाला देकर कुछ पढ़ा जाता तो मैं उसे जरूर देता परन्तु मुझे अफ़सोस है कि आज के मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) में मौलाना धर्मपाल ने सिर्फ मुसलमानों को खुश करने के लिए गन्दे अश्लील और भद्दे शब्द ही इस्तेमाल किये। अन्त में मुझे देहलवी जी ने बोलने को कहा तो मैंने उपसंहार रूप में बोला–

मेरे प्यारे धर्मपाल जी आपने मुबाहिसे की न तो कोई तैयारी ही की थी, और न आर्यसमाज पर कोई प्रश्न ही किया, और न इधर से किये गये प्रश्नों का कोई उत्तर ही दिया, मेरा ख्याल है कि अगर बजाये आपके कोई और मामूली से मामूली मुसलमान भी खड़ा होता तो कुछ न कुछ अपने विषय पर अवश्य बोलता, परन्तु आपने इन बेचारे मुसलमानों की बड़ी मट्टी पलीद कराई, जो आपसे बड़ी–बड़ी उम्मीदें लगाये बैठे थे। और हाँ जनाब धर्मपाल जी ! आपको एक पाप और लगेगा जो सिर्फ़ तुम्हारी वजह से हुआ है। ....बीच में ही तड़क भड़क कर मौलाना धर्मपाल जी उठे और बोले...........,

श्री मौलाना धर्मपाल जी बी॰ए॰ –

सारे पाप और बुराई हम मुसलमान लोग ही करते हैं। पुण्य करने के लिए खुदा ने सिर्फ ठाकुर साहब आपको ही भेजा है।

श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केसरी –

ज़नाब ! ये देहलवी जी ही थे, जिनके सामने आपने अपनी पुस्तक बेमतलब पढ़ी है, वर्ना अगर मैं होता तो आपको मस्जिद में भेजता, यहां केवल मुबाहिसा ही होता, ये कोई बुकसेलर की दुकान नहीं थी। जब किताबें ही बेचनी थी तो किताबें ही बेचते, क्यों मुबाहिसे का सहारा लेकर इन बेचारे मुसलमानों का पैसा खींच रहे हो ? मैंने आपको पाप वाली बात कही थी। सुनो भाईयों गौर से सुनो ! आज जितने भी मुसलमान यहां मुबाहिसे में बैठे हैं उनमें से एक भी **"असर की नमाज"** पढ़ने नहीं गया, जो कि सब नमाजों में बढ़िया मानी जाती है। ....मुसलमानों में चारो तरफ कोलाहल, एवं हिन्दुओं में तालियों की गड़गड़ाहट...........जो सिर्फ मौलाना धर्मपाल जी की वजह से ही हुआ है, क्योंकि ये लोग समझे बैठे होंगे कि मौलानासाहब आज असर की नमाज से भी कहीं ज्यादा बढ़िया चीजें नोश करा देंगे। परन्तु परांठे के चक्कर में रोटी भी गई, ...जनता में हंसी............यह पाप किसे लगेगा ? इस वास्ते आप सब मुसलमानों को मौलाना सहित प्रायश्चित करना चाहिए, आज का मुबाहिसा समाप्त होता है। ....जनता में बुलन्द आवाज................बोलो वैदिक धर्म की ....जय! ....महर्षिदयानन्द की .... जय !! इन जयकारों से आकाश गूँज उठा, तथा आर्यसमाज का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा।
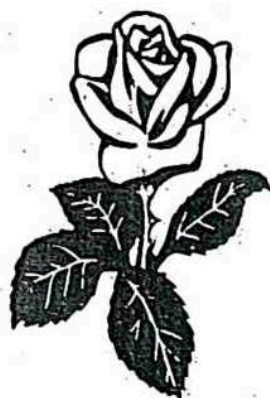
पचपनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : **"सिकन्दराबाद"** जिला–बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)

विषय	:	मुलाहिम की मासूमियत पर विचार अर्थात् हज़रत मौहम्मदसाहब के निष्पाप होने पर विचार
दिनांक	:	सन् १६२४ ई. (चौथा दिन–रविवार)
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा
सहायक	:	श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
मुसलमानों की तरफ से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री मौलवी अब्दुलहक् विद्यार्थी
सहायक	:	श्री मौलाना अस्मतुल्ला खां साहिब

नोट —

यह मूल कापी हमें **"श्री श्याम लाल जी (पटियाला), पंजाब"** निवासी द्वारा प्राप्त हुई, उनका हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं। छपी हुई पुस्तक से सन् आदि का पता नहीं चलता था **"पूज्य अमर स्वामी जी महाराज"** की स्मृति व उनके अति प्राचीन लेखों से ही सन्, माह व दिन का सही पता चल सका, क्योंकि वह भी इस शास्त्रार्थ में विद्यमान थे।

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

आज फिर सिकन्दराबाद की पुरानी ईदगाह में दो बजे से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, श्रीमान पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी का गला निरन्तर तीन दिन मेह (बारिश) में बोलने के कारण पड़ गया था, इसलिए आज आर्य समाज के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा वक्ता के आसन पर पधारे। जिस शुभ दिन के लिए पण्डित जी ने महीनों से अनथक परिश्रम किया था वह सुन्दर घड़ी आई देख कर उनके आनन्द का ठिकाना न रहा, उन्होंने अपने मुख़ालिफ को लक्ष्य करके कहा कि आज अन्त के दिन मैं बूढ़ा आपके सामने इस धर्म युद्ध के लिए उपस्थित होता हूँ, आप सब मौलवी मिल कर मेरे प्रश्नों का उत्तर दें, मुसलमानों ने कहा कि आज के लिए यह नियम किया जाए कि आधा-आधा घन्टे कई मौलवी और पण्डित परस्पर शास्त्रार्थ करें। पण्डित जी ने इस पर उत्तर दिया कि आपके लिए हम छुट्टी देते हैं कि चाहे कोई मौलवी उत्तर दे, किन्तु हमारी तरफ़ से एक ही पण्डित बोलेगा सर्वप्रथम केवल श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी दो आयते तमहीद (भूमिका)की प्रथम पढेंगे, पश्चात शेष प्रश्नोत्तर मुझसे होंगे, इस नियम के तय हो जाने पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, आज के शास्त्रार्थ का विषय था-**"मुलहिम की मासूमियत पर विचार"** अर्थात् **"हज़रत मुहम्मद साहब के निष्पाप होने पर विचार"** आज सभी मौलवी खुश थे कि हमारी तरफ़ से कोई भी मौलवी बोल सकेगा, परन्तु सामने से केवल एक ही पण्डित बोलेगा। ऐसा सोचकर कि आज हमारे सारे मौलवी मिलकर पण्डित की मट्टी पलीद कर देंगे मुसलमानों में चारों तरफ खुशी की लहर दौड़ रही थी। अन्य भी सभी श्रोतागण बड़ी ही दिलचस्पी से आँख व कान इस बूढ़े पण्डित की ओर एक टक लगाये बड़ी उत्सुकता के साथ बैठे थे। पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी भूमिका के रूप में जब बोलने के लिए खड़े हुए तो चारों तरफ सन्नाटे का आलम बन गया और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी –

मौवज्ज़िज़ हाज़रीन – मैं गला पड़ जाने के कारण अधिक नहीं बोल सकता हूं, केवल तमहीद (भूमिका) के तौर पर क़ुरान की दो आयते पढ़ कर यह साबित करना चाहता हूं कि मुलहिम यानि ज़िस पर इलहाम (परमेश्वरीय ज्ञान) हुआ हो वह बेगुनाह यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, वगैरा से पाक और पवित्र हो, उसका जीवन चरित्र शुद्ध हो, वह परमेश्वर का पूर्ण भक्त होना चाहिए, मैं हज़रत मौहम्मद साहब को बड़ी इज्जत की निगाह से देखता हूं, किन्तु उनको बेगुनाह हर्गिज़ नहीं मानता, और इसलिए क़ुरान की दो आयतें आपके सम्मुख पेश करता हूं –

नोट–

मूल कापी में आयतें नहीं दी गई हैं। जिनका अर्थ यह है कि **"ऐ नबी! तेरे अगले और पिछले गुनाह माफ़ कर दिये गये, और तुझको पाया हमने गुमराह पर हिदायत की"**। इन दोनों आयतों से सिद्ध है कि मुहम्मद साहब निष्पाप होते तो खुदा यह क्यों कहता कि–नबी होने से पहले और नबी होने के बाद के तेरे गुनाह माफ कर दिये गये, इस वास्ते स्वयं कुरान यह बताता है कि–**"मुहम्मदसाहब बेगुनाह नहीं थे"**।

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

आपने पण्डित जी से तमहीद के तौर पर दो आयतें सुनी, जिनसे साफ़ ज़ाहिर है कि हज़रत साहब गुनाहगार थे, मैं अब कुछ हदीसें पेश करता हूं। ध्यान से सुनों, हदीस सही मुस्लिम जिल्द ४ सफ़ा १४१८ को देखो जिसमें लिखा है कि– **"रसुल्लिलाहवलेहिअसलम यानी हज़रत मुहम्मद साहब की निंगाह पड़ी एक औरत पर, और आप अपनी बीबी जैनब (मुसलमानों की माँ) के पास तशरीफ़ लाये जो वहां एक चमड़े को दबाग़त देने के लिए मल रही थी, फिर आपने अपनी हाज़त उनसे पूरी की, और फिर अपने-यारों की तरफ़ निकले और फ़रमाया कि औरत जब सामने आती है तो शैतान की सूरत में आती है। और जब जाती है तो शैतान की सूरत में ही जाती है। फिंर जब किसी औरत को कोई देखे तो जरूर है कि अपनी बीवी के पास आवे यानी सोहबत करे कि उसके दिल का ख़याल जाता रहे"**। अब मैं पूछता हूं कि यहाँ मौहम्मद साहब ने मानसिक पाप किया या नहीं ? क्योंकि पाप– **"मनसा, वाचा, कर्मणा"** इस प्रकार तीन तरह से होता है। आप बताइये कि एक औरत को देखकर हज़रत की तबियत बिगड़ी या नहीं ? दूसरा प्रश्न यह है कि आपने यारों से जाकर कहा कि औरत जब सामने आती है तो शैतान की शक्ल में आती है, जब किसी औरत को देखे तो अपनी बीवी से जाकर सोहबत करें ताकि दिल का खयाल जाता रहे। मैं पूछता हूं कि यदि किसी के बीवी न होवे तो किसके पास जावे ? या ऐसे मौके पर क्या करे ? तीसरा प्रश्न यह है कि आपने तीसरे दिन वाले मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) में स्त्री और पुरुषों का हक़ (अधिकार) बराबर बताया था, और आज औरत को शैतान की सूरत बताते हो। और हाँ ! हज़रत साहब के ग्यारह बीवियाँ (पत्नियां) थी उनकी किन में शुमार होगी ? और क्या किसी मुसलमान को हक़ है कि वह किसी शैतानी से विवाह करे ?

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

हज़रात ! आज की बहस मुलहिम की मासूमियत को क़ुरान शरीफ से पेश करना था, किन्तु अफ़सोस है कि पण्डित जी ने क़ुरान से कोई आयत पेश नहीं की सिर्फ दो आयतें पण्डित रामचन्द्र जी ने पढ़ी हैं, मगर उनको ठीक नहीं विचारा है, यहाँ पहली और पिछली आयतों को देखने से यह मालूम होता है कि कुफ्फ़ारों के गुनाह माफ किये गये। मुहम्मद साहब के नहीं, कुफ्फारों ने मुहम्मद साहब को बहुत सताया, तब भी उन्होंने कुफ्फारों के गुनाह माफ़ कर दिये, अगर आप हदीस ही पेश क़रते हैं तो कीजिए, किन्तु वह क़ुरान के विरुद्ध न हो। औरत को देखकर रसूल की तबियत बिगड़ी, यह हदीस में कहीं नहीं लिखा है तबियत बिगड़ना तो नियोग के मसले में है वहाँ भी कोई नियोगन होगी हमारे यहाँ तो पर्दा था।

नोट–

विद्यार्थी जी ने शैतान का कोई जवाब नहीं दिया ऊपर के उत्तर का प्रत्युत्तर देते हुए पण्डित जी ने क़ुरान की आयतें पुनः पढ़ी और कहा –

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

विद्यार्थी जी ज़रा क़ुरान को हाथ में लीजिए, वहाँ का तर्जुमा देखिये, जहाँ पर साफ लिखा है कि **"तेरे गुनाह माफ़ किये गये, और कौन से गुनाह जो तूने नबी होने से पहले और पीछे किये थे"**। अब बताइये यहाँ कुफ़्फ़ार कहाँ से आ गये ? आपने जो पूछा है कि रसूल की तबियत बिगड़ी, यह हदीस में कहाँ है ? मैं पूछता हूं जब आँ हज़रत ने आकर ज़ैनब के साथ में हाज़त पूरी की तो क्या इससे दूसरी औरत को देखकर रसूल की तबियत का बिगड़ना साबित नहीं होता ? और जबकि तुम भी जब किसी औरत को देखो तो अपनी

बीवी के पास जाकर सोहबत करो, ताकि दिल का ख़्याल जाता रहे, क्या इससे यह साबित नहीं होता कि रसूल की तबियत बिगड़ी ? अब इसके सिवाय और दो हदीसे भी पेश करता हूं। **"उम्मे हातुल उम्मा"** जिसको की जनाब नज़ीर अहमद साहब एल॰ एल॰ बी॰ देहली ने बनाया है। खोल कर पढ़िये– इस वक्त बीवी, आयशा की उम्र ६ साल की थी और जनाब पैगेम्बर साहिब की ५० साल की, चूंकि इस वक्त बीवी आयशा की उम्र बहुत छोटी थी इस वास्ते वाल्देन (माता–पिता) ने इस वक्त उसको रूखसत (विदा) नहीं किया, जब उसके रूख़सत होने का वक्त आया तो उनकी वाल्दा (माँ) ने उसके बचपन के खिलौने भी साथ रख दिए थे, जब बीवी आयशा अपने घरेलू कामों से फारिग़ होती तो अपनी सहेलियों के साथ गुड़ियों से खेला करती, जब कभी इस खेल के वक्त पैग़म्बर साहिब आ निकलते तो लड़कियाँ इधर–उधर छिप जाती, मगर पैग़म्बर साहिब लड़कियों को पकड़–पकड़ कर बीवी आयशा के पास भेजते, और कहते कि–जाओ खेलो किसी बात का डर नहीं है, पैग़म्बर साहब कभी–कभी अपनी बीवियों से मिज़ाज खुश तबई भी किया करते थे और बीवी आयशा से ज्यादातर। एक मर्तबा का ज़िक्र है कि ज़नाब रसूल्लिलाह ग़ज़वए तबूक या शायद ग़ज़वये हुनेन से तशरीफ़ लाये बीवी आयशा के घर एक बड़ा ताक़ था जिस पर पर्दा पड़ा रहता था ताक़ में बीवी आयशा के गुड्डे–गुड़िया सम्भालें हुए रक्खे थे। इत्तफ़ाक से हवा चली और और पर्दा उठ गया, पैगम्बर साहब ने ताक़ की गुड़ियों की तरफ़ इशारा करके पूछा कि यह क्या है ? उन्होंने कहा कि ये मेरे खेलने की गुड़िया हैं, गुड़ियों में एक घोड़ा था, जिस पर कागज के दो पर लगे हुए थे, पैग़बर साहब ने घोड़े की तरफ़ इशारा करके पूछा कि यह क्या है ? जवाब दिया, घोड़ा है। फिर पूछा ओ हो घोड़े के पर भी हुआ करते है ? बीवी आयशा ने बरबस्ता जवाब दिया कि आपने सुनां नहीं ये सुलेमान अलेस्सलम के परदार घोड़े थे, यह सुनकर पैगम्बर साहब खिलखिला कर हंस पड़े। अब हदीस भी सुनिये, सही बुखारी ज़िल्द ३५५ पारा १३ किताब पैदाइश **"हज़रत आयशा"** कहती हैं कि मैंने रसूले खुदा के लिए एक तकिया भर दिया जिस पर तस्वीरें थी, वह छोटा सा था, बस आप दोनों दरवाजों के दरम्यान खड़े हो गये, और आपके चेहरे का रंग बदलने लगा, मैंने कहा कि या रसूल्लिलाह ! हमसे क्या क़सूर हुआ ? आपने फ़र्माया वह तकिया कैसा है ? मैंने कहा यह तकिया मैने आपके लिए बनाया है ताकि आप इस पर लेटें, आपने फ़र्माया कि क्या तुम नहीं जानती कि फ़रिश्ते उस घर में नहीं जाते कि जिसमें तस्वीर हो और जो शख़्स तस्वीर बनाता हो, कयामत के रोज उस पर अज़ाब होगा और अल्लाह उन लोगों से फर्मावेगा कि जो सूरतें (शक्लें) तुमने बनाई हैं उनको जिन्दा करो, अब बताइए कि इन दोनों से रसूले खुदा के घर में कुफ्र लाज़िम आता है या नहीं और बुतपरस्ती साबित होती है या नहीं ? औरों को नसीहत और खुदरा फ़जीहत वाला कथन साबित है। आपने रसूल होते हुए भी आयशा को गुड़ियों के खेलने से नहीं रोका, दूसरे तकिये पर तस्वीरें बनाने के कारण हजरत आयशा पर कयामत के रोज अजाब होगा या नहीं ? और अल्लाह इनसे कहेगा या नहीं कि तुमने जो सूरत बनाई है उनको जिन्दा करो। इस वास्ते खुदा के कौल (कथन) के मुताबिक आप गुनाहगार ठहरे, क्योंकि अपने घर में खिलौनों से खेलने पर मना नहीं किया, तथा इस हदीस के मुताबिक आपके घर फ़रिश्ते आ नहीं सकते, फिर **"वही"** अर्थात कुरान कैसे नाज़िल हुई इसका सही उत्तर दीजिये।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

चूंकि हदीस में लिखा है कि जब कोई तस्वीर आपके सामने आती थी तो आप तोड़ देते थे। यह खुद हज़रत आयशा कहती हैं, फिर इस तकिये पर ऐसी तस्वीरें नहीं थी, जिनकी पूजा होती है, हम नजीर अहमद की किताब नहीं मानते, सिर्फ कुरान और हदीस मानते हैं। (इस दफ़ा भी आपने पहिले प्रश्नों का उत्तर

दूसरे वक्त का मुबाहिसा आरम्भ

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

मौलवी साहब आपने इस हदीस का कोई उत्तर नहीं दिया तो खैर ! अब एक और हदीस सुनिये और रसूल की तरफ से मुसलमानों के दिल से हटती श्रद्धा को फिर से पैदा करने का प्रयत्न कीजिए। देखिए–**"सही मुस्लिम ज़िल्द सालिस सफ़ा ११५६"** यहाँ लिखा है कि–सब बीवीयां आपके साथ थी और उस रात आपने सबसे सोहबत की और अखीर में गुसल जनाबत किया। अब दूसरी हदीस को देखिये–**"सही मुस्लिम जिल्द चौथी सफ़ा १४६१"** ....मुसलमानों द्वारा शोर मचाना.............इसमें कहा है कि ऐसा निकाह भी तो किसी का नहीं हुआ जिसमें अल्लाहपाक काजी और ज़िब्राईल वकील और आसमान से परे बालाएं अर्श उक़्द हुआ हो, अब इन दोनों हदीसों पर प्रश्न थे कि–हज्ज के मौके पर सब बीवीयों से भोग करना किसी ज़ाहिद और खुदापरस्त का काम नहीं हो सकता, आप बताइये, रसूले खुदा ने खुदा की रात में कितनी देर इबादत की ? और किस–किस वक्त नमाज अदा की और ऊपर लिखे पाक कार्य को कितने वक्त तक करते रहे ? ....जनता में हंसी............तथा एक ही रात में सब बीवीयों से यानी ९ बीवीयों से सोहबत (सम्भोग) करना क्या किसी मुलहिम का काम हो सकता है ? जबकि एक मामूली आदमी भी ऐसा नहीं करता। दूसरी हदीस की बाबत में आपसे पूछता हूँ कि आपने अपने मुतबन्ने की बीवी से जिसका नाम "ज़ैनब" था आसमान पर बालायें अर्श निक़ाह किया, जिसमें खुदा क़ाजी, और ज़िब्राईल वकील बनें। इससे प्रथम तो खुदा मुजस्सिम साबित हुआ, क्योंकि उसने निक़ाह पढ़ा और आपने सुना, दूसरे अर्श भी साबित होता है जहाँ निक़ाह पढ़ा गया, तीसरे बताइये–जैनब के कबूल किए बिना निक़ाह कैसे हुआ ? और आप आसमान पर कैसे गये ?

नोट–

इस कथन से सारे मुसलमानों में खलबली मच गई, और घबराहट पैदा हो गई, चारों ओर कोहराम मच गया। मौलवी अब्दुल हक़ को भी अपना पीछा छुड़ाना भारी हो गया बड़ी मुश्किल से बीमारों की तरह खड़े हुए और बोलना शुरू कर दिया –

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

आँ हज़रत ने जहाँ बीबीयों से सोहबत की वहाँ सोहबत का अर्थ है संगत करना, जैसे कोई मनुष्य किसी आलिम की सोहबत करे।..................जनता में बेहद हँसी..................।

नोट–

मौलवी साहब ने कुछ इधर–उधर की लीपा–पोती की, ज़ैनब की बाबत कोई ज़वाब नहीं दिया सिर्फ यही कहा कि–पण्डित जी ! यहाँ खुदा और अर्श की बहस नहीं है, जो आप ले बैठे, और आप चुपचाप नीचे बैठ गये। (यहाँ पर शास्त्रार्थ में केवल ५–५ मिनट बोलने का नियम कर दिया गया था)।

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

मौलाना ! यहाँ सोहबत का अर्थ जो आपने किया वह कहाँ तक ठीक है ? यहाँ बैठे लोगों से पूछ

नहीं दिया) और कहा कि–तबियत बिगड़नी तो वहाँ देखिये जहाँ लिखा है कि पाराशर ऋषि ने मछोदरी के साथ ज़िना (बलात्कार) किया, और विश्वामित्र ने मेनका के साथ (यहाँ आपने सारी कथा पढ़ी और चुप हो गये)।

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

मौलाना साहब ! यदि हम यह भी मान लें कि वे तस्वीरें तोड़ देते थे, तो बताइये हज़रत आयशा का तस्वीरें तोड़ने का जिक्र कहाँ है ? बल्कि वहाँ तो आप खुश हुए हैं। अगर आप कहें कि तकिया फाड़ दिया था, तो फाड़ भी दिया हो लेकिन तस्वीरें बनाना तो साबित है, फिर हज़रत आयशा पर अज़ाब लाज़िम हुआ या नहीं ? आप यदि नज़ीर अहमद खाँ का लिखा नहीं मानते तो **"मदारिजुल नबव्वत"** देखिए–यह सब कुछ वहाँ भी लिखा है। और **"मदारिजुल नबव्वत"** पढ़कर सुनाई गई। आपने पाराशर और विश्वामित्र की जो लम्बी कथा कही, वह प्रथम तो हम मानते नहीं दूसरे बहस तो मुलहिम पर हैं, अगर आप ऐतराज करते हैं तो अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा (मुलहिम) पर करें, क्योंकि इन्हीं चारों पर वेद नाजिल हुए हैं, मैं फिर आपको याद दिलाता हूं कि हज़रत की तबियत बिगड़ी और उन्होंने सोहबत की इसका उत्तर क्या है ? इन प्रश्नों के सिवाय मैं फिर एक और हदीस पेश करता हूँ ज़रा ध्यानपूर्वक देखिए–**"सही मुस्लिम ज़िल्द एक ज़िक्र अलहैज़"** में लिखा है कि–बीवी आयशा से रिवायत है कि हममें से जब कोई रजस्वला होती है तो रसूल्लिलाह उसको हुकम करते तहमद बाँधने का, फिर उसके साथ मुबाशरत करते "नौवी" ने कहा है कि मुबाशरत एक तो ज़िना के माने हैं। वह हैज़ की हालत में हराम है और एक मुबाशरत यह है कि नाफ़ से ऊपर और घुटनों से नीचे मुबाशरत करें। ज़कर से या बोसे से या अलिंगन अर्थात् चुम्बनादि करे यह हैज़ (मासिक धर्म) की हालत में हलाल है। अब प्रश्न यह है कि रसूले खुदा होकर भी चार दिन अपनी तबियत को जो नहीं रोक सकता वह कैसे ज़ाहिद और बेगुनाह हो सकता है ? दूसरे नाफ़ से ऊपर और घुटनों से नीचे मुबाशरत करने के क्या अर्थ हैं ? और इस दशा में वीर्य स्खलित होना पाप है कि नहीं ? तीसरे हमारे हिन्दू भाइयों में अदने से अदना भाई भी रजस्वला की दशा में यह फ़ेल (कार्य) नहीं करता फिर इस्लाम धर्म का प्रवर्त्तक, नबी कहाने वाला रसूले खुदा यदि यह नापाक काम करता है तो वह पाक कैसे माना जा सकता है ? कृपा कर इन सब प्रश्नों का उत्तर नम्बरवार दीजिए क्योंकि टालने से काम नहीं चल सकता।

नोट –

मौलवी अब्दुलहक साहिब फिर उठे किन्तु उनका दिली जोश ठण्डा पड़ गया, पिछली हदीस के पेश करने से मुसलमानों और मौलवियों के चेहरे फीके पड़ गए, आपने कहा कि इस हदीस में मुबाशरत करना तो जरूर लिखा है, मगर उसका अर्थ सिर्फ़ प्यार करना है, विषयभोग का बताइये इसमें जिक्र कहाँ है ? पण्डित जी ने कहा कि मौलवी साहब ज़रा आँख खोल कर पढ़िये और देखिये यहाँ "ज़कर" शब्द आया है, जिसका अर्थ मनुष्य की उपस्थेन्द्रिय है । मौलवी साहब ने बड़े जोश में आकर कहा कि हदीस में "ज़कर" शब्द नहीं है, अगर हो तो दिखाइये। इस पर उनको पुस्तक दे दी गई, अपनी पुस्तक में ज़कर शब्द देखकर मौलवी अब्दुलहक को अत्यन्त दुःख हुआ क्योंकि अब इसका और उत्तर भी क्या होता ? मुसलमानों का हृदय भी अपने रसूल की इस हरकत से विचलित हुए बिना न रहा, ठीक इसी समय कहा गया कि नमाज़ का वक्त हो गया है। और कुछ थोड़े से मुसलमान नमाज़ पढ़ने को चले गये आधा घन्टे के बाद मुबाहिसा पुनः आरम्भ हुआ।

छप्पनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "भिवानी" (हरियाणा)

दिनांक : सन् १९३७ ई॰
विषय : क्या महर्षि दयानन्द जी का जीवन व उनके द्वारा रचित ग्रन्थ निष्कलंक थे ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप
शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्मियों की ओर से : श्री पण्डित भीमसैन जी

आभार —

यह अप्राप्य शास्त्रार्थ सामग्री भिवानी (हरियाणा) निवासी "श्री फूल चन्द जी शर्मा—निडर" द्वारा प्राप्त हुई है, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ सामग्री को अमर करने हेतु हमें प्रकाशनार्थ भेजा है।

"सम्पादक"

लीजिए। क्योंकि वहाँ लिखा है कि अखीर में आपने ज़नावत का गुसल किया, और फिर रात में ही सोहबत करने का क्या अर्थ हुआ ? और वह सोहबत की भी थी तो वह क्या थी ? ....जनता में हंसी........ इसका खुलासा कीजिए।

श्री मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी –

यदि सोहबत का अर्थ यह न होगा तो आप मुसलमान हो जाइयेगा अन्यथा मैं आर्या हो जाऊंगा।

श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा –

मौलाना ! खुदा न करे तुम्हें अव आपरेशन से आर्या वनना पड़े आपको पता होना चाहिए आर्या शब्द स्त्रीलिंग है। ....जनता में वेहद हंसी............आप आर्य ही वनें, आर्या नहीं ! हम मौलाना आपको तावान (इनाम) देगें अगर सोहबत का अर्थ आप ही सावित कर देंगे, अन्यथा आपकी शर्त हमें मन्जूर है, लीजिए–मैं कुछ हदीसें और सुनाता हूँ। ताकि आपकी पूरी तसल्ली हो जावे।

नोट –

पण्डित जी अपने पक्ष की पुष्टि के लिए मारिया, कुवतिया, लौंडी की हदीस पढ़ना शुरू ही करना चाहते थे कि मौलवियों ने हल्ला मचा दिया और शास्त्रार्थ से एक घन्टा पूर्व ही भाग निकले। मौलवियों की जैसे–तैसे जान वची, किन्तु स्थानीय (सिकन्दरावाद) एवं आये हुए आस–पास के मुसलमानों पर इनके भागने का वहुत ही वुरा असर पड़ा, और उनको अपनी कमज़ोरी खुद ही साफ ज़ाहिर हो गई। हम फिर अन्त में कहते हैं कि–यदि मुसलमानों को ज़रूरत हो तो इन हदीसों के रहते आँ हज़रत को वेगुनाह साबित करें।

वैदिक धर्म का –

"अमर स्वामी सरस्वती"

@vaidicbooks

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित भीमसैन जी –

उपस्थित सज्जनों ! स्वामी दयानन्द ने रमाबाई को मेरठ में बुलाया और उसे एक सौ रुपये तथा एक मलमल का थान दिया, और दयानन्द की एक जमींदार के लड़के से दोस्ती थी। ये सब बातें इनके गुरुदयानन्द को क्या कलंक रहित साबित करती हैं ?

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

रमाबाई एक ब्राह्मण वंश की विदुषी लड़की थी, वह एक कायस्थ से विवाह करना चाहती थी, अतः इसी बात पर उसके बाप ने उस लड़की को घर से निकाल दिया था। स्वामी जी ने उसकी विद्या की प्रसिद्धि सुनकर इस विचार से कि वह ब्रह्मचारिणी रह कर स्त्रियों में वैदिक धर्म का प्रचार करे। उससे पत्र व्यवहार कर उसे मेरठ में बुलाया, और उसके व्याख्यान मेरठ समाज में करवाये। जब उसने ब्रह्मचारिणी रहकर प्रचार करना स्वीकार न किया तो उसे सत्कारपूर्वक भेंट और मार्गव्यय देकर विदा कर दिया, इसमें आक्षेप की क्या बात है ? रमाबाई का आना ऐसे ही संदेहजनक नहीं है। जैसे सीता का दस महीने रावण के घर रहना संदेहजनक नहीं हैं जमींदार के लड़के की बात आर्यसमाज की किसी पुस्तक में नहीं लिखी। स्वामी जी महाराज के विषय में अन्य मतावलम्बियों का लेख आर्यसमाज के लिए कोई प्रामाणिक नहीं है। हम इस बात का चैलेन्ज करते हैं कि कोई मर्द मैदान आर्यसमाज के ग्रन्थों से स्वामी जी के बारे में कोई ऐसा लेख दिखावे जो स्वामी जी को कलंकित करता हो। वरना हम सनातनधर्म के मान्य ग्रन्थ पुराणों से शिवजी का वैश्यागमन, कृष्ण का शराब पीना, कुब्जा से व्यभिचार करना आदि दिखायेंगे जिनसे सिद्ध होता है कि सनातन धर्म अपने पूर्वजों को किस प्रकार कलंकित करता है ? कुछ संक्षेप रूप में उदाहरण देता हूं। ध्यान दीजिये–

कौशल्या का घोड़े से जोड़ना –

होताऽध्वर्यु स्थतोद्गाताध्येन समयोजयन्।।३५।।

(बाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड सर्ग, १४)

अर्थात्– तदनन्तर अध्वर्यु होता हुआ तथा उदगाता ने कौशल्या को घोड़े के साथ नियोजित किया।

गौ चर्म से नदी –

रन्ति देवस्य यज्ञेताः पशुत्वेनोपकल्पिताः।
अतश्चर्मण्वतीराजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता।।४२।।

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ६६)

अर्थात् – राजा रन्तिदेव के यज्ञ में उन गौवों को पशु वध में प्रयोग किया गया। इसलिए गौवों के चर्म से चर्मण्वती नदी बह निकली।

कुब्जा सम्भोग से मरी –

कुब्जामृता च संभोगाद्धास सारजकोमृतः।।२३।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड ४ अध्याय १०६)

अर्थात्— कृष्ण से सम्भोग के कारण कुब्जा मरी, और कपड़ों के कारण धोबी मरा।

शास्त्रार्थ से पहले

भिवानी शहर में एक शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया, जिसमें शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में सनातनधर्म की ओर से पण्डित भीमसैनजी तथा आर्यसमाज की ओर से मैं (पण्डित मनसाराम वैदिक तोप) निश्चित हुए। पौराणिकों ने शास्त्रार्थ आदि कुछ करना नहीं था, इसलिए उन्होंने आर्यसमाजियों को पीटने की योजना पहले से ही तैयार कर रखी थी और भारी संख्या में उपस्थित होकर तत्पश्चात् आर्यसमाज भिवानी में ठहरे हुए मुझे (मनसा राम) तथा अन्य कुछ आर्य सज्जनों को शास्त्रार्थ के लिए बुलावा भिजवा दिया। (उस शास्त्रार्थ में भिवानी निवासी श्री पण्डित फूलचन्दशर्मा जी "निडर" भी मौजूद थे।) मैं (पण्डित मनसा राम) बहुत से आर्य भाइयों के साथ शास्त्रार्थ मैदान में शास्त्रार्थ करने के लिए उपस्थित हो गया। वहां पर दो मंच पहले से ही तैयार थे, अपने पूर्व निश्चित मंच पर मैं तथा आर्यसमाजी लोग जाकर बैठ गये।

शास्त्रार्थ का प्रधान सनातनधर्मी था, जो बहुत ही धूर्त व झगड़ालू था, उसने कहा पहले हमारा पण्डित २५ मिनट बोलेगा। बाद में तुम लोग उत्तर देना तुम्हें भी २५ मिनट उत्तर के लिये दिये जायेंगे। इतना कहते ही पण्डित भीमसैन जी ने बोलना आरम्भ कर दिया। बार-बार कहने पर भी कि शास्त्रार्थ से पहले कोई नियम व विषय आदि तय कर लिये जावें, परन्तु उन लोगों ने एक न सुनी और बोलना आरम्भ कर दिया।

१ स्वामी दयानन्द ने रमाबाई को मेरठ में बुलाया और उसे सौ रूपये तथा एक मलमल का थान दिया और स्वामी दयानन्द की एक जमींदार के लड़के से दोस्ती थी।

२. सन्यासी को धन देना स्वामी जी ने लिख दिया।

३. विद्वानों का नाम स्वामी जी ने देवता लिख दिया।

४. शाखा ११२७ स्वामी जी ने मान ली वास्तव में ११३१ हैं।

५. स्वामी जी ने चार वेद, चार ऋषियों पर प्रकट हुए, यह बतलाया जो गलत है। वेद केवल ब्रह्मा जी पर ही प्रकट हुए थे।

६. आर्यसमाज वेद का क़तल कर रहा है। आदि-आदि

इस प्रकार कुछ और प्रश्न भीमसैन जी ने किये, और बहुत ही गन्दे तरीके से हाव-भाव दर्शा कर स्वामी दयानन्द व आर्यसमाजियों को बुरा-भला कहा हम उत्तर की प्रतीक्षा में बैठे थे, तो २५ मिनट समाप्त होने के बाद हमने प्रधान जी को समय समाप्ति की ओर इशारा किया, तो प्रधान जी ने कहा-आप चुप बैठे रहिये। हम पुनः बोले ! तो प्रधान ने खड़े होकर खुले शब्दों में आर्यसमाज व स्वामी दयानन्द जी महाराज को गालियां देना आरम्भ कर दिया, विवश होकर मैं उत्तर देने खड़ा हुआ ही था कि चारों ओर से पत्थर व लाठियां बरस पड़ी। हम लोग हाय-हाय करके बाहर को भागे, जैसे तैसे जान बची, कई हमारे व्यक्ति लहू-लुहान हो गये, किसी की टांग टूट गई, कोई किसी अंग से जख्मी हो गया। **"मुझे वो २५ मिनट जीवन भर याद रहेंगे"**। बाद में मैंने एक छोटा सा ट्रैक्ट जिसमें इन २५ मिनट में जो-जो प्रश्न हम पर किये गये थे, उनका उत्तर देकर छपवाया जिसका प्रकाशक **"आर्य समाज भिवानी"** है। एवं श्री के. ए. देसाई के प्रबन्ध से श्री अम्बिका प्रिंटिंग वर्क्स सिटी ब्रान्च भिवानी में सन् १९३७ ई. में ही छपा था। जिसकी २००० प्रतियां छपाई गई थीं एवं मूल्य दो पैसे था। उस ट्रैक्ट का नाम भी मैंने **"मेरे पच्चीस मिनट"** ही रखा था। जिसमें मैंने केवल यही बताया कि अगर मुझे समय दिया जाता तो मैं उनके प्रश्नों का क्या उत्तर देता ? आगे आप वही प्रश्नोत्तर **" मेरे पच्चीस मिनट"** के रूप में पढ़िये और लाभ उठाइये।

"मनसाराम"

मां-बहिन बेटी-भतीजी से विवाह करना –

स्वकीयांचसुतां ब्रह्मा, विष्णु, देवं स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठ तामगात्।।२७।।
इतिश्रुत्वायेद - मयं वाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां सज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठयान्भूत।।२८।।

(भविष्यपुराण प्रतिसर्ग॰ खण्ड अध्याय १८)

अर्थात् – अपनी पुत्री को ब्रह्मा, मां को विष्णु, और बहिन को महादेव, विवाह द्वारा ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त हो गये। इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर सूर्य ने भी अपनी भतीजी से विवाह कर लिया।

कृष्ण का शराब पीना –

तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तः पुरिकैर्जनैः ।
अनुभूय जल क्रीडां यान् मासे वते रहः।।१७।।
स्वभावतोऽलय सत्वानां जघनानि प्रसुस्त्रवः।।२७।।
भित्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेपु पतितानितु।।३४।।

(भविष्यपुराण ब्राह्मखण्ड अध्याय ७२)

अर्थात्– श्रीकृष्ण जी भी उस दिन अपनी स्त्रियों समेत जल क्रीड़ा का अनुभव करके एकान्त में शराब पी रहे थे। शाम्ब को देखकर जो स्त्रियां स्वभाव से ही अल्प सत्त्व वाली थी, उनकी जाँघे टपक पड़ी और खड़ा होने पर सारा मशाला कपड़ों मे से छन–छनकर घास और पत्तों पर गिर पड़ा।

राक्षसों का ब्रह्मा से मैथुन करने के लिए उनके पीछे भागना–

पाहिमां परमात्मंस्ते प्रेषणेना सृजं भजाः।
ता इमा यभितुं पापा उपक्रामंन्तिमां प्रमो।।२६।।

(भागवतपुराण स्कन्द ३ अध्याय २०)

अर्थात्– ब्रह्मा ने विष्णु से पुकार की, कि हे परमात्मन मेरी रक्षा करो। मैंने आपकी आज्ञा से ही, प्रजा पैदा की थी, किन्तु ये पापी मेरे साथ ही मैथुन करने के लिए मेरे पीछे भाग रहे हैं। इत्यादि–इत्यादि कथायें और लेख पौराणिक सनातन धर्म के मान्य ग्रन्थ महिधर भाष्य और अठारह पुराणों में विद्यमान है। परन्तु बिल्ली को स्वप्न में भी छिंछड़ें ही नजर आते हैं। इन पौराणिकों का अपना इतिहास व पूर्वज सभी कलकिंत है ही, इन्हें दूसरे के घर में भी वही गंदगी नजर आती है। अब मैं संसार भर के सनातनधर्मियों से पूछता हूं कि क्या इन उपरोक्त सप्रमाण बातों का कोई जवाब तुम्हारे पास हैं ? खुद कांच के महल में बैठ कर दूसरों पर पत्थर मारते हो, इसका परिणाम स्वयं सोचो। पण्डित भीमसैन का दूसरा प्रश्न था कि –

श्री पण्डित भीमसैन जी –

सन्यासी को धन देना स्वामी दयानन्द ने लिखा है।

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

इसमें स्वामी जी ने लिख कर क्या पाप कर दिया ? सन्यासी को परोपकारार्थ धन देना तो अथर्व वेद में साफ लिखा है, देखिये–**"येनयतिभ्यो मृगवेधने हिते"** (अथर्ववेद, २०–६–३) इसी का अनुमोदन मनुस्मृति ११–६ में किया है, यथा– **"धनानि तु यथाशक्ति"** जिसका भाव स्वामी दयानन्द जी महाराज ने

आगे देखिये –

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च।।६२।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड ४ अध्याय ११५)

अर्थात् – कृष्ण ने मथुरा में आकर कुब्जा को मैथुन से मार दिया।

राम से महर्षियों की भोगेच्छा –

पुरामहर्षयः सर्वेदण्डकारण्य वासिनः।
दृष्टवा रामम् हरिं तत्र भोकुमिच्छत्सु विग्रहम्।।१६६।।

(पद्मपुराण उत्तर खण्ड अध्याय २७२)

अर्थात् – पहले दण्डकारण्य में बसने वाले महर्षि, सब राम के साथ भोग करने की इच्छा से आपस में लड़ पड़े।

ब्रह्मा का पोती को देखकर वीर्यपात –

ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्प सती वक्त्रमहंमुने।
अवेक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनानतरात्मना।।२६।।
ममरेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद्द्रुतम्।।२८।।

(शिवपुराण रुद्रसहिंता सतीखण्ड अध्याय १६)

अर्थात्– ब्रह्मा ने कहा कि– तब मैंने कपड़ा उठाकर सती के मुख को देख लिया, मैं काम से आर्त हो उठा, और मेरा मन प्रसन्न हुआ। उसके मुख देखने से मेरा वीर्य शीघ्रता से निकल पड़ा।

महादेव का रण्डीबाजी करना –

नन्दी ग्रामे पुरा कश्मिन्महानन्देति विश्रुता।
बभूव वार वनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी।। २।।
एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिव स्वयम्।।१३।।
सातेन संगता रात्रौ वैश्येन विट धर्मिणा।
सुखं सुष्वाप पर्य के मृदु तल्योप शोभिते।।२०।।

(शिवपुराण शतरुद्रसहिंता अध्याय २६)

अर्थात – पहिले नन्दी ग्राम में महानन्दा नाम की रण्डी मशहूर थी। वह शिव की भक्तिन थी, और अति सुन्दर थी। एक दिन शिवजी महाराज स्वयं वैश्य (व्यपारी) बनकर उसके घर गए, वह वैश्या उस वैश्य रूप शिवजी से रात्रि में नर्म–नर्म पलंग पर सुख के साथ समागम करने के लिए सोई।

कृष्ण ने अर्जुन को अर्जुनी बनाकर सम्भोग किया–

समालोक्यार्जुनीयाऽसोमदनावेशविह्वला ।।१८८।।
तस्याः पांणिं गृहीत्त्वैव सर्व क्रीड़ा बनान्तरे।।१८६।।
यथा काम रुहोरेमेमहायोगेश्वर विभूः।।१६०।।

(पदमपुराण पातालखण्ड अध्याय ७४)

अर्थात् – कृष्ण ने अर्जुन को काम से व्याकुल अर्जुनी बना हुआ देख कर उसके हाथ को पकड़ कर वन में क्रीड़ा करते हुए इच्छा के अनुसार उससे रमण किया।

श्रीमान् जी ! मानते आप भी चारों वेदों का चार ऋषियों पर प्रकट होना ही है। केवल फर्क यह है कि, आपने चारों की पीठ को जोड़कर चार मुख वाले एक ब्रह्मा की कल्पना कर ली, जो कि असम्भव है। और हमने चारों को पृथक–पृथक माना, जो कि सृष्टिक्रम के अनुकूल और सम्भव है।

श्री पण्डित भीमसैन जी –

आर्यसमाज नास्तिकता का प्रचार कर वेदों का कतल कर रहा हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में नियोग आदि की ऐसी शर्मनाक बातें लिखी हैं जो सब वेद विरुद्ध हैं, आर्यसमाज गौरक्षक नहीं बल्कि गौ भक्षक हैं। इनकी सभी मान्यताएं वेद विरुद्ध हैं।

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

अब मैं कुछ उदाहरण देकर बताता हूं कि वेदों का कतल हम लोग करते हैं या सनातनधर्मी ? एवं नास्तिक हम हैं या वे सनातनधर्मी लोग ! आदि–आदि।

गर्भवती गौ को मार कर होम करना –

एक पदीमेकं पदं स्यात्तां वपयैकपद युताम्। द्विपदी वपया अङ्गैश्च द्विपदयुताम्। त्रिपदी त्रीणिपदानि यस्यास्तामु पयुड्ढोमै स्त्रिपदीं। चतुष्पदी पत्नी संयाजैश्चतुभिः पादैवचितुः पादयुताम्। अष्टापदीं स्वपादै गर्भपादैश्चाष्टपादयुताम् एवं भूतां वशां गणयित्वा। भूतान्यनु प्रथन्तामिति सम्बन्धः स्वाहा सुहुतमस्तु।

(यजुर्वेद, ८–३० पर महीधर भाष्य)

अर्थात् – चर्बी से एक पदी, चर्बी और अंगो से द्विपदी, होम से त्रिपदी, पत्नी संयाज से चतुश्पदी अपने पैर तथा गर्भ के पैर मिला कर अष्टपदी गौ होम करना चाहिये।

श्राद्ध में गौ मांस –

हे जात वेदः, जातं वेदो धनं यस्मात् स जात वेदाः तत्संबोधने हे।
जातवेदः पितृभ्योऽर्थाय त्वं वपां धेनु सम्बन्धिचर्म विशेषं त्वं वह मापय।।

(यजुर्वेद,३५–२० पर महीधर भाष्य)

अर्थात् – हे जात वेदः तू पितरों के लिए गाय की चर्बी प्राप्त कर।

रानी का घोड़े के साथ सोना–

महिषी अश्व समीपे शेते। हे अश्वगर्भधं गर्भधारकरेतः।
अहं आकृष्य क्षिपामी। तं चरेतः आकृष्य क्षिपसि।।

(यजुर्वेद, २३–१६, महीधर भाष्य)

अर्थात्– यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोती है, और कहती है कि हे घोड़े मैं तेरा गर्भ धारण कराने वाला वीर्य खीचकर अपने में डालती हूं। और तू भी उस वीर्य को खींचकर मेरे में डाल।

घोड़े के लिंग को योनि में डालना –

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्न माकृष्य स्वायोनौ स्थापयति।
वाजी अश्वो रेतोदधातु मयि वीर्य स्थापयतु।।

(यजुर्वेद, २३–२०, महीधरभाष्य)

अर्थात् – यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को स्वयं खींचकर अपनी योनि में स्थापित् करती है। और कहती है कि यह घोड़ा मेरे (शरीर) में वीर्य स्थापन करे।

अपने शब्दों में "विविधानि च रत्नानि" इत्यादि द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में दिया है, अतः स्वामी जी का लेख ठीक है। आपके मतानुसार सन्यासियों को धन देना तो मना है। किन्तु कान्फ्रैंसों के लिए ग्यारह सौ रुपये का लेना ठीक है ? और सन्यासियों का मठ बना कर रहना, हाथी पर चढ़ना, लाखों रुपये की सम्पत्ति का मालिक होना कैसे ठीक है ?

श्री पण्डित भीमसैन जी –

विद्वानों का नाम स्वामी जी ने देवता लिख दिया।

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

स्वामी जी का लेख ठीक है। इसमें आपके ही घर के प्रमाण इस प्रकार हैं। **"सत्यमेवदेवा अनृतं मनुष्याः"** (शतपथ १–१–१४) सत्य बोलने वाले देवता और झूठ बोलने वाले मनुष्य होते हैं।**"विद्वाꣳसोहदेवाः"** (शतपथ ३–७–३–१०) विद्वानों का नाम देवता हैं, **"एवं योगिनोऽपिदोपनाद्देवाः"** (महिधर भाष्य, यजुर्वेद ३१–६) इस तरह प्रकाशमान् होने से योगियों का नाम देवता भी हैं।

इस प्रकार विद्वानों का नाम देवता स्वामी जी महाराज ने ठीक ही लिखा है। और क्या इन तिलकधारी–छापामारों, निरक्षक भट्टाचार्यो को देवता लिखते ?

श्री पण्डित भीमसैन जी –

शाखा ११२७ स्वामी जी ने मान ली जबकि वास्तव में ११३१ शाखायें हैं।

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

मूल के बिना शाखा किसकी ? अतः चार मूल वेद हैं, और ११२७ उनकी शाखायें अर्थात् व्याख्याग्रंथ हैं, यही बात व्यास जी ने भी लिखी है। यथा– **एक विशंतिसाहस्त्रं ऋग्वेदं मां प्रचक्षते। सहसशाखंयत् सामये वै येद विदो जनाः।।६४।। पट्पंचाशतमष्टौच सप्तत्रिंशतमित्युत। यस्मिञ्छाखायजुर्वेदेसोऽह मध्वर्य्यवे स्मृतः।।६५।। पंचकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिवृंहितम्।।६६।।**

(महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३४२)

अर्थात् – ऋग्वेद की २१, सामवेद की १०००, यजुर्वेद की १०१, तथा अथर्ववेद की पांच यह कुल मिलाकर ११२७ शाखा अर्थात् वेदों के व्याख्यान हैं, ये मूल वेद नहीं हैं। स्वामी जी ने भी इनको शाखायें ही कहा है, वेद तो नहीं कहा ? क्या व्यास जी के इस उत्तम कथन को पढ़ते समय सनातनधर्मियों की आंखों मे मोतियाबिन्द तो नही उतर आता है ?

श्री पण्डित भीमसैन जी –

स्वामी दयानन्द ने चार वेद, चार ऋषियों पर प्रकट हुए बतलाये, यह गलत हैं, वेद सिर्फ एक ब्रह्मा जी पर ही प्रकट हुए थे।

श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

स्वामी जी का लेख ठीक है, जैसे कि आपके ग्रन्थों में प्रमाण मौजूद है यथा–**"अग्नअग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः"** (शतपथ; ११–५–८–३) तथा **"यदथर्वागिरसः सय एव"** (शतपथ; ११–५–६–७) व **"अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थ मृग्यजुः सामलक्षणम्।।** (मनुस्मृति, १–२३) तथा **"श्रुतिरथर्वाङ्गिरसीः"** (मनुस्मृति, ११–३३)। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि परमात्मा ने चार वेद श्री अग्नि, श्री वायु, श्री आदित्य तथा श्री अगिंरा इन चार ऋषियों पर प्रकट किये,तथा उन ऋषियों से ब्रह्मा ने पढ़े।

अर्थात् – भैंसे का मांस श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों की ग्यारह महिने तक की तृप्ति होती है। और गो का मांस श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों की एक वर्ष तक की तृप्ति होती है।

रन्तिदेव के यहां मांस भोजन–

अहन्या हनि वध्येते द्वे सहस्त्रे गवां तथा।
समांसं ददतोह्यन्नं रन्ति देवस्य नित्यशः।।६।।

(महाभारत वनपर्व अध्याय १०७)

अर्थात् – महात्मा रन्तिदेव के यहां हमेशा मांस वाला भोजन देने के लिए दो हजार गौवें मारी जाती थी।

श्राद्ध में गौ मारने से पुण्य –

पितृ प्रसादाद्युष्माभिस्संप्राप्तं सुकृतं भवेत्।
गां प्रोक्षपित्या धर्मेणापितृभ्यश्चोपकल्पिता।।५०।।

(शिवपुराण उमासहिंता अध्याय ४१)

अर्थात् – पितरों की कृपा से तुमको पुण्य प्राप्त हुआ, क्योंकि तुमने गौ का प्रौक्षण करके पितरों के निमित्त करके उसका मांस खाया है।

रुक्मणी के विवाह में गौ मांस –

गवांलक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम्।
एतोपांपकवपांसं च भोजनार्थचकारय।।६२।।
सजा संभृत संभारो वभूव सत्वरं मुदा।
निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार चसुताज्ञाया।।६६।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराणखण्ड ४, अध्याय १०५)

अर्थात् – रुक्मणी के विवाह पर रुक्मि ने तजवीज की, कि एक लाख गौ काटी जावें, और दो लाख हिरण काटे जावें, और इनका मांस भोजन के लिए पकाया जावे, राजा ने पुत्र की आज्ञा के अनुसार सारी तैयारी कर ली, और सबको निमन्त्रण दे दिया।

महादेव द्वारा अण्डकोष भोजनार्थ –

आस्वादितं न चान्यैस्तु भक्ष्यार्थेचददाम्यहम्।
अधो भागे चमेनाभेर्वतु लौफलसंनिभौ।।१२३।।
भक्ष्यध्वंहिंसहितालम्बौ में वृषणाविमौ।
अनेन चापि भोज्येनपरा तृप्तिर्वविष्यति।।१२४।।

(पदमपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय २६)

अर्थात् – महादेव ने देवदूति से कहा कि यह मेरी नाभि के नीचे फल के समान, किसी से भी न चखे हुए तथा मिले हुए दो अण्डकोष तुमको खाने के लिए देता हूँ। इस भोजन से तुम्हारी अत्यन्त तृप्ति हो जाएगी।

राज चैत्र द्वारा ब्राह्मणों को मांस भोजनार्थ –

पंचकोटिगवां मांस सां पूपंस्वन्न मेव च।।६८।।
एतेषां नदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मण मुने।।६६।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड अध्याय ६१)

लिंग का योनि में प्रवेश –

हे अश्व ! महिष्या गुदोपरि वीर्य धारय' लिंगंयोनौ प्रवेशय।।

(यजुर्वेद, २३–२१, महीधरभाष्य)

अर्थात् – हे घोड़े! तू यजमान की स्त्री की गुदा से ऊपर वीर्य डाल, अर्थात लिंग को योनि में प्रवेश कर।

कुमारी से मखौल –

अध्वर्य्वादयः कुमारी पत्नीभिः सहसोपहासं वदन्ते अंङ्गुल्या योनिंप्रदेशयन्नाह हले-हले इति शब्दयन्ती। स्त्रीणां शीघ्र गमने योनौ हलहला शब्दोभवतीत्यर्थः यदाभगे शिश्नमागच्छति तदा योनिर्नितरां वीर्यक्षरतिः।।

(यजुर्वेद, २३–२२, महीधरभाष्य)

अर्थात् – अध्वर्य, आदि कुमारी तथा पत्नियों से मखौल करते हैं, उंगलियों से योनि की शकल बनाकर इशारा कर–करके कि स्त्रियों के शीघ्र चलने में योनी के अन्दर हल–हल शब्द होता है। जब योनि में लिंग प्रवेश करता हैं, तो योनि निरन्तर वीर्य (रज़) झरने लगती है।

अण्डकोषों का कांपना –

होता परिवृक्तामाह यदा अस्याः परिवृक्तायाः ह्रस्वं स्थूलं च शिश्नं योनिं प्रतिगच्छेत्।
तदा वृष्णौ अस्याः योनिरुपरिकम्पेते यथा उदक पूर्णे गोः शफे पदे मतस्यौ कम्पेते।।

(यजुर्वेद,२३–२८, महीधरभाष्य)

अर्थात् – होता परिवृक्ता रानी को कहता है कि, जब तेरी योनि में छोटा और मोटा लिंग घुसता है तो दोनों अण्डकोश उसकी योनि पर कांपते हैं। जैसे पानी से भरे हुए गौ के खुर में दो छोटी मछलियां तड़फती हैं।

पौराणिक सनातनधर्म का नास्तिकपन –

न मांसभक्षणे दोषो, न मद्येन च मैथुने।
प्रवृत्ति रेषा भूतानां निवृत्तिरस्तु महा फला।।

(मनुस्मृति, ६–५६)

अर्थात् – न मांस खाने में कोई दोष है, न शराब पीने में, न व्यभिचार करने में। यह तो प्राणियों की प्रवृति ही है। यदि छोड़ दें तो महाफल है। यहां निवृत्ति को फलदायक बतलाया है। प्रवृत्ति को दोषजनक नहीं बतलाया परन्तु आगे मनुस्मृति में ही, "मांस न खाने पर" पाप बतलाया है, यथा–

नियुक्तस्तु यथा न्यायं योमासं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवाने कविंशतिम्।।

(मनुस्मृति, ५–३५)

अर्थात् – यज्ञ, मधुपरक और श्राद्ध में पकाये गये मांस को जो नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्म तक पशु योनि में जाता है।

श्राद्ध में गौ मांस –

मांसेनैकादश प्रीतिः पितृणांमाहिषेणतु।
गव्येनदत्तै श्राद्धेतु सम्वत्सर मिहोच्येते।।

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ८८)

सत्तावनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "नीमच" (मध्य प्रदेश)

दिनांक : २७ जून, सन् १६२६ ई. (प्रथमदिन)
विषय : सत्यार्थप्रकाश प्रभृतिग्रन्थ सर्वथा वेद विरुद्ध हैं।
शास्त्रार्थकर्त्ता पौराणिकों की ओर से : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती)
सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी
आर्यसमाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी
सभापतिं : श्री रायबहादुर ठाकुर देवीसिंह जी (जज) नीमच कैन्ट

नोट — यह शास्त्रार्थ लगातार चार दिन तक हुआ जो "श्री पण्डित फूलचन्द शर्मा जी—निडर" भिवानी (हरियाणा) निवासी द्वारा हमें प्राप्त हुआ, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाशन हेतु प्रदान कर प्रकाश में लाने का प्रयास किया—

"सम्पादक"

अर्थात् – पांच करोड़ गौवों को मांस, पूड़े और पापड़, राजा चैत्र ने यज्ञ में ब्राह्मणों को खिलाये।

सनातनधर्म में स्त्री को वश में करने का विलक्षण नुस्खा–

निज शुक्रं गृहीत्वां तु वाम हस्तेन यः पुमान्।
कामिनी चरणं वामं लिपेत्स स्यात्स्त्रियः प्रियः।।१४।।

(गरुडपुराण, आचार सहिंता अध्याय १८५)

अर्थात् – जो आदमी अपना वीर्य निकाल कर अपने बायें हाथ से जिस स्त्री के बायें पैर में लेप कर दे वह आदमी उस स्त्री का प्यारा हो जाता है। अर्थात् वह स्त्री उसके वश में हो जाती है।

सनातनधर्म में रण्डियों की मुक्ति का उपाय–

ततः प्रभृतियोऽन्योऽपि रत्यर्थ गृहमागतः।
स सम्यक् सूर्य वारेण समं पूज्यो यथेच्छया।।५५।।

(भविष्यपुराण उत्तर खण्ड अध्याय १११)

अर्थात् – यदि वेश्यायें इतवार (रविवार) के दिन ब्राह्मणों को बिना फीस सम्भोग के लिए खुली छुट्टी कर दें तो रण्डियों की मुक्ति हो जावेगी। और सीधे स्वर्गलोक को जावेंगी। अब आपने देख लिया उन सनातनधर्मी पण्डितों की महान शिक्षा! कि उनके मान्यग्रन्थ कितनी अच्छी शिक्षा देते हैं? जो मानवमात्र के लिए कितनी हितकर है? मुझे अगर वहाँ समय मिलता तो मैं कुछ कहता, यहाँ पर केवल संक्षेप में थोड़ा-सा बताया है। परन्तु इन लोगों का काम है, अपने घर की गन्दगी को तो कभी देखना नहीं, अन्यों पर कीचड़ उछालते रहना।

अब आप स्वयं निर्णय करेंगे कि आर्यसमाज नास्तिक है, या सनातनधर्म? वेदों का कतल आर्य समाज करता है या सनातनधर्म? गौ की रक्षा आर्यसमाज करता है या सनातनधर्म? आदि-आदि बहुत-सी बातें हैं। यह हैं मेरी वह **"पच्चीस मिनट"** की तकरीर जो कि मैंने भीमसैन की तकरीर के उत्तर में करनी थी।

विशेष निर्देश –

कहीं पर भी शास्त्रार्थ का आयोजन हो, भविष्य में हर विद्वान को चाहिए कि इन धूर्तों की सब गति-विधियों की अच्छी प्रकार छानबीन कर लें। कहीं कोई पण्डित भूल से मेरी तरह इन चाण्डालों की धूर्तता का शिकार न बने। जैसा कि मेरे साथ हुआ। –।। इति शम्।।

"मनसाराम"

६. इस शास्त्रार्थ में सनातनधर्मियों की जिम्मेदारी हम सनातन धर्मी लेगें, कि यदि कोई हमारी (सनातन धर्मियों की) तरफ से शास्त्रार्थ के मध्य में ताली बजावेगा या जय बोलेगा या किसी भी प्रकार का हुल्लड़ मचावेगा, उसे हम (सनातनधर्मी) रोकने के जिम्मेदार हैं। इसी प्रकार आर्यसमाजी श्रोताओं की जिम्मेदारी आर्यसमाज को लेनी होगी कि उनकी तरफ का कोई भी श्रोता शास्त्रार्थ के मध्य विघ्न न डालने पावे।

७. शास्त्रार्थ का स्थान सेठ बालचन्द जी का फड़ (चारों तरफ से घिरा हुआ मैदान) सदर बाजार नीमच होगा।

८. आर्यसमाज, छावनी नीमच के भद्रपुरुष, सनातनधर्मी भद्रपुरुषों को लेकर श्रीमान् माननीय रायबहादुर जज साहिब को विश्वास दिलाकर कि हम दोनों पक्ष दंगा नहीं करेंगे, शास्त्रार्थ की मंजूरी हासिल करें।

९. इस शास्त्रार्थ में किसी भी पक्ष की तरफ से कोई किसी भी प्रकार का कटु वाक्य या कटाक्ष नहीं होगा। इस कारण दोनों पक्ष जज साहिब या इन्सपेक्टर साहिब पुलिस से सभापति होने की प्रार्थना करें।

१०. शास्त्रार्थ के परचे तीन बनेंगे, एक सभापति को देना होगा दूसरा विपक्षी को, तीसरा पर्चा खुद को रखना होगा, जो सज्जन मूर्खता से शास्त्रार्थ के विषय को छोड़कर **"विषयान्तर"** में जावेगा उसकी हार समझी जावेगी, ऐसा न हो कि– **"कलकत्ते की मोटर पर जयपुर के राजमहलों का जवाब मिले।"** यह बात दोनों पक्ष अपने–अपने मन में विचार कर ही शास्त्रार्थ करेगें।

११. शास्त्रार्थ के छपवाने का अधिकार प्रत्येक पक्ष को स्वतन्त्र रूप से होगा, जो चाहे शास्त्रार्थ छपवावे, और जो चाहे न छपवावे।

हमने नियम आदि ऐसे बनाए हैं जिनमें आर्यसमाज को कोई उज्र (आपत्ति) न हो, नियमादि पढ़कर हमारी भांति प्रकाशित कर दे, यह मन्त्री, आर्य समाज से प्रार्थना है यदि मन्त्री जी तारीख २३–६–२६ तक इसका उत्तर न छापेंगे तो हम समझ लेंगे कि आर्यसमाज शास्त्रार्थ में कलई खुलने से घबराती है।

तारीख २२–६–२६

हस्ताक्षर –

"कालूराम शास्त्री"

(हाल–मुकाम, जावेद)

@vaidicbooks
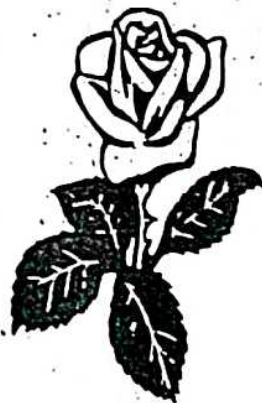
शास्त्रार्थ से पहले

श्री पण्डित कालूराम शास्त्री जी एवं आर्यसमाज नीमच छावनी के बीच जून, सन् १९२६ ई. में शास्त्रार्थ की भूमिका बनी। जिसके अन्तर्गत काफी लम्बा चौड़ा पत्राचार हुआ, जिसमें सनातनधर्मी पण्डितों की ओर से भरसक प्रयत्न किया गया था कि किसी तरह शास्त्रार्थ न होने पावे। परन्तु आर्य समाज के अधिकारियों ने पीछा न छोड़ा, और श्री पण्डित कालूराम जी की अनुचित शर्तों को भी मानते हुए तारीख २७–६–२६ से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दिनांक २७–६–२६ ई. को समय लगभग ६ बजे रात्रि से श्रीमान् रायबहादुर ठाकुर देवी सिंह जी जज–छावनी नीमच की अध्यक्षता में श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री की ओर से श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न एवं आर्यसमाज की ओर से श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार (जो बाद में स्वामी समर्पणानन्द जी के नाम से विख्यात हुए) के मध्य शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, **"प्रथम अपना-अपना पक्ष लिखित रूप में तैयार किया जाता था, और तत्पश्चात् सभा में सुना दिया जाता था।"** श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री ने निम्न नियम निश्चित करके भिजवाये जिनमें आर्यसमाज कुछ परिवर्तन करना चाहता था, परन्तु उस परिवर्तन पर सनातनधर्मी शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित शास्त्रार्थ करने को तैयार न थे, इसलिए उन्हीं नियमों को मानते हुए दोनों पक्षों के बीच शास्त्रार्थ करना तय हो गया।

शास्त्रार्थ के नियम –

१. तारीख २७–६–२६ को **"सत्यार्थ प्रकाश वगैरा ग्रंथ वेद विरुद्ध हैं"**। इस विषय पर शास्त्रार्थ होगा, सनातनधर्मी पण्डित स्वामी दयानन्द जी कृत ग्रन्थों को वेद विरुद्ध सिद्ध करेंगे और आर्यसमाज सनातनधर्मियों के प्रश्नों को वेदों से मिलाकर स्वामीजी के ग्रन्थों की वेदानुकूलता सिद्ध करेगी।

२. तारीख २८–६–२६ को सनातनधर्मी विद्वान यह सिद्ध करेंगे कि आर्यसमाज स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को पैरों के नीचे कुचल रहा है, और आर्यसमाज यह सिद्ध करेगी कि, वह स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को सर्वथा सत्य मानती है।

३. शास्त्रार्थ प्रत्येक दिवस रात्रि के ६ बजे से आरम्भ होकर १२ बजे रात्रि को समाप्त हो जाया करेगा, जिस दिन रात्रि को वर्षा हो जायेगी, उस दिन शास्त्रार्थ मुलतवी (कैन्सिल) होकर अगले दिन वहीं शास्त्रार्थ वर्षा खुलने पर होगा।

४. शास्त्रार्थों में पूर्वपक्ष सनातनधर्म का एवं उत्तरपक्ष आर्यसमाज का होगा।

५. प्रत्येक शास्त्रार्थ में हर पक्ष को ३० मिनट का समय मिलेगा, पहले ३० मिनट सनातनधर्म को फिर ३० मिनट आर्यसमाज को, इसी क्रम से ३ घण्टे तक शास्त्रार्थ होगा, प्रत्येक ३० मिनट में से २२ मिनट में शास्त्रार्थ का परचा लिखना होगा, और आठ मिनट में लिखा हुआ परचा ज्यों का त्यों जनता को सुनाना होगा।

कहा है–"राष्ट्री सङ्गमनी.........." अर्थात् राजसभा कहती है कि–"यङ्कामपे तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तं ऋषिं तं सुमेधाम्" अर्थात् मैं जिसे चाहूं ब्राह्मण उग्र ऋषि आदि उपाधि देती हूं। "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में जो "पुरुष सूक्त" की बात आई है सो ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य में देखने से स्पष्ट हो जाती है, वहां उन्होंने लिखा है "उस परमेश्वर की सृष्टि में मूर्खत्वादि गुणों से शूद्र उत्पन्न हुआ", यही अर्थ यहां भी समझना चाहिए। वेद में शरीर को स्वस्थ रखने का तथा उन औषधियों के प्रयोग का उपदेश है सो सालम मिश्री आदि सब उसमें आई, अथर्ववेद के "स्वर्ग सूक्त" में तो ग्रहस्थाश्रम का वर्णन है। जिसका तात्पर्य यह है कि, उत्तम ग्रहस्थियों के चारों ओर अनेक युवतियां घूमें तो भी उनकी इन्द्रियों को कामाग्नि दाह नहीं करता, यही बात वही – "नैनानृयमः परिमुण्णाति रेतः" कह कर स्पष्ट की है। आपके स्वर्ग का वहां वर्णन भी नहीं है।

(१) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जनगण ! आर्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण मानकर भी उसका प्रमाण न दे सका, इसका मुझे खेद है देखिये "शनोग्रहाश्चांद्रमसाः.............." इस मन्त्र में राहु और केतु "चान्द्रमसाग्रह" माने हैं तथा "तदेवाग्नि......" इस मन्त्र में राहु और केतु का नाम तक भी नहीं है। मैं अथर्ववेद का मन्त्र पेश करता हूँ समाजी उसको न छूकर यजुर्वेद का मन्त्र पेश करते हैं, बुद्धिमान इस बात पर विचार कर लें। "इमं स्तनमूर्जस्वतं.........."यह मन्त्र संस्कारविधि में, माता के स्तनपान में विनियुक्त है। सत्यार्थप्रकाश में उसके विरुद्ध धात्री स्तनपान में लगाया है। यह परस्पर विरुद्ध लेख ही दयानन्द का अवैदिक है। बेटे का आपस में परिवर्तन सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखा है, वहां राजसभा बतलाने वाला मन्त्र कदापि नहीं है। अन्य वर्ण का पुत्र अन्य वर्ण को प्राप्त हो, यह–"परिषद्यं........" इस वेद मन्त्र के विरुद्ध है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के मन्त्र में वेद भाष्य लिखते हुए मूर्खत्वादि गुण ईश्वर में माने हैं। दयानन्द का लेख परस्पर विरुद्ध होने के कारण कहीं पर भी मान्य नहीं है। एक मन्त्र पर दो प्रकार का भाष्य ही दयानन्द की योग्यता का परिचायक है। मुख से उत्पन्न होने पर ब्राह्मण गोल–माल होना चाहिए। यह बात योनिदेशोत्पन्न जनों के समक्ष में विपरीत पड़ती है। समाजी उपादान कारण के योग्य ही अपना आकार मानते हैं। स्वर्ग में जाना सनातन धर्म का सिद्धान्त है। "अनरथा पूताः..........." तथा "घृतह्रदोमधुकल्पाः.........." ये दो मन्त्र इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है। दयानन्द ने सुखाधिक्य को स्वर्ग मानकर वैदिक स्वर्ग का जो खंडन किया है वह हिन्दू धर्म के विपरीत है। "बाल ब्रह्मचारी दयानन्द" को योनिसंकोचन का क्या अनुभव था ? या इसमें कोई वैदिक प्रमाण हैं ? सालम मिश्री का प्रयोग किस वेद मन्त्र के आधार पर लिखा गया है ? "सन्यासी दयानन्द को –"ढीला हो करके वीर्य डालना चाहिए" यह बात कहां से मालूम हुई ? मैंने प्रत्येक बात पर वेद का विरोध उपस्थित किया है। आर्यसमाजी दयानन्द के लेख को वेदमूलक सिद्ध नहीं कर सकते हैं, केवल दयानन्द का उपहास जनता में कराते फिरते हैं।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

(२) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

"इममेरत्तन मूर्जस्वतं........" यह मन्त्र, माता के स्तनपान के समय में भी बोला जा सकता है और धाई के भी। आपने इसमें कोई इसका कारण नहीं दिखाया कि धाई के विषय में इसका प्रयोग क्यों नहीं हो सकता ? राहु–केतु के सम्बन्ध में आपने जो मन्त्र पेश किया है उसमें आए हुए चन्द्र–आदित्य आदि शब्दों का क्या अर्थ है ? सो मैंने यजुर्वेद के मन्त्रों से आपको दिखलाया, इसमें क्या अपराध हुआ ? "चान्द्रमसा ग्रह.........." का अर्थ है चन्द्रमा अर्थात् परमात्मा के ग्रहण अर्थात् ज्ञान को उत्पन्न करने वाले गुण इसी प्रकार आगे समझना। और सुपुत्र की प्रशंसा करने वाले मन्त्र से पुत्र परिवर्तन का खंडन कैसे हुआ ? हर एक मनुष्य

शास्त्रार्थ आरम्भ

(१) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

"श्री हरये नमः"

माननीय सज्जन गण ! आर्य समाज वेदों को मानता है। स्वामी दयानन्द ने जो–जो बातें अपने ग्रन्थों में लिखी हैं, उनकी वेदमूलकता समाजी सिद्ध करें यथा–सत्यार्थ प्रकाश के १–८–१८ में "राहु-केतु आदि नामों से ईश्वर का ग्रहण किया गया है"। वेद के "शंनोग्रहाश्वांद्रमसाः, १६-६-१०" इस मन्त्र से यह बात विरुद्ध हैं। समाजी उसकी वेदमूलकता सिद्ध करें। **"प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे, धाई दूध पिलावे"** यह दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का लेख भी वेद विरुद्ध है, क्योंकि यजुर्वेद में **"इमेमेरस्तनमूर्ज............"** तथा **"स्वपस्तेस्तनः..........."** इन दो मन्त्रों से माता के स्तन द्वारा दूध पिलाने का आदेश है। इसलिए दयानन्द का यह लेख विधिविरुद्ध हैं, समाजी इसकी वेदमूलकता सिद्ध करें। दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में **"पुत्र का परिवर्तन"** करना लिखा है। वेद में – **"परिषद्यंह्यणस्य........"** तथा **"नहिग्रभायारणः........."** ये दो मन्त्र इसका विरोध करते हैं। दयानन्द ने आपस में भिन्न वर्ण के पुत्र लेने का आदेश लिखा है समाजी इसकी वेद मूलकता सिद्ध करें। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ १३२ में दयानन्द ने – **"यत्पुरुष......"** इस मन्त्र का अर्थ करते हुए **"ईश्वर में मूर्खपन"** लिखा हैं। जिस ईश्वर ने – **"तस्माद्यज्ञात्........"** इस मन्त्र प्रमाण से वेद प्रकट हुए, उसको **"मूर्खत्वादि"** गुणवाला लिखना कहां तक उचित है ? इसकी वेदमूलकता समाजी सिद्ध करें। दयानन्द ने –**"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्........."** इस मन्त्र से सत्यार्थ प्रकाश में **"उपादान कारण के सदृश गोल-माल मुख का आकार होना"**–आक्षिप्त किया है। इसी प्रकार कुरान की एक आयत पर आक्षेप करते हुए **"स्वर्ग को अवैदिक"** माना है, इसी प्रकार–**"योनि संकोचन विधि"** तथा **"वीर्याकर्षण की विधि"** और **"सालम मिश्री का नुस्खा"** लिखा है। इन सब बातों की समाजी वेद मूलकता सिद्ध करें। वेद मन्त्र का ही प्रमाण वेदमूलकता माना जावेगा, क्योंकि समाजी वेद को ही प्रमाण मानते हैं। **"पंचशतानि"**–यह श्रुति वाक्य ब्राह्मण ग्रन्थों का है, देखिये **"ब्राह्मण योर्वेदनामधेयम्"**।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

(१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार–

आर्य समाज के पक्ष पर आक्षेप करते हुए अखिलानन्द जी ने आरम्भ से ही भूल की है। आर्यसमाजी केवल वेदों को ही प्रमाण मानते हैं, यह कथन अशुद्ध है। आर्यसमाजी वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं, और अन्य ग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण मानते हैं। आपने जो मन्त्र **"राहु-केतु"** के नाम का पढ़ा, उसमें राहु केतु नाम नक्षत्र का है, जिसमें आपने कोई प्रमाण नहीं दिया, बल्कि इसके विपरीत प्रमाण मैं उपस्थित करता हूं। यथा–**"एकंसत् विप्रांबहुधावदन्ति तदेवाग्नि स्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः"** अर्थात् उस एक परमात्मा को अनेक प्रकार से विद्वान् लोग वर्णन करते हैं। उसी का नाम **"अग्नि"** है, उसी का नाम **"आदित्य"** है, उसी का नाम **"वायु"** है, उसी का नाम **"चन्द्रमा"** है। प्रसूता स्त्री के सम्बन्ध में आपने जो मन्त्र पढ़ा है, वह दूध पिलाने वाली धाई के सम्बन्ध में भी वैसा ही संगत होता है, जैसे माता के ! इसमें माता का शब्द कहीं नहीं है। पुत्रों में परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रथम तो भिन्न वर्ण के पुत्र बदलने का वर्णन कहीं नहीं है, बल्कि उसका उलटा सत्यार्थ प्रकाश में तो यह लिखा है कि –**"यदि किसी पुरुष के घर में भिन्न वर्ण के गुणों वाला पुत्र हो तो उसको उसी वर्ण में भेज देना चाहिए"**, इसके लिए वेद का प्रमाण देखिए–अथर्ववेद

...नहिगर्भधारणः........." ५. अनस्याःपूताः..........." ६. घृतह्रदामधुकुल्या..........." इतने मन्त्र पेश किए हैं। ...मन्त्र दयानन्द के लेख को परस्पर विरुद्ध तथा वेद विरुद्ध सिद्ध करते हैं, समाजियों ने इन मन्त्रों को अभी ...क छुआ भी नहीं हैं। इस कारण दयानन्द का मत सर्वथा वेद विरुद्ध है।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

(३) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

१. ऋषि दयानन्द ने राहु–केतु नाम के नक्षत्र संसार में हैं, इसका खण्डन नहीं कियां, किन्तु इनकी पूजा का खण्डन किया है। सो आप प्रमाण से कहीं नहीं दिखा सके।
२. छः दिन माता दूध पिलावे फिर धाई, वही मन्त्र दोनों में पढ़ा जा सकता है। ऐसा नहीं हो सकता इसका क्या प्रमाण है ? फिर धाई रखना समर्थो के लिए लिखा है, सबके लिए नहीं।
३. "नहिगृभायादि.........." मन्त्र पराये पुत्र को अपना औरस कहने का निषेध करते हैं। न कि दत्तक का ! इस विषय में अथर्ववेद का प्रमाण मैंने दिया, उसका खण्डन आप नहीं कर सके।
४. ईश्वर की बेवकूफी वाले प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है।
५. आपने उपादानकारण और आधार में भी भेद नहीं समझा, योनि को उपादानकारण बताते हो ? विद्वान लोग हंसेंगे, कुछ सोच समझकर बोलो।
६. वेद से स्वर्ग के ऊपर होने का मन्त्र आपने पढ़ा नहीं, जब पढ़ोगे तो उतर भी दे दिया जावेगा।
७. दयानन्द जी महाराज की बात का चरक के आधार पर उत्तर दिया गया, इसमें क्या क्षति हुई ? वेदमन्त्र भी मैंने पढ़ दिया था, योनिसंकोचन में क्या बात वेद विरुद्ध है ? सो आपने नहीं बताई। शरीर रक्षा के लिए औषध प्रयोग वेद में बताया गया है। यह आप भी मानते हैं। फिर खास सालम मिश्री का नाम वेद में क्यों आवे ? यदि वेद में ब्राह्मण का आदर करना लिखा हो तो उसके साथ क्या आपका नाम आना आवश्यक है ? क्या आप दिखला सकते हैं कि वेद या पुराण या किसी स्मृति में कि–कहीं अखिलानन्द को "ब्राह्मण" लिखा है ? फिर आप किस आधार पर अपने आपको ब्राह्मण कहते हो ? ....जनता में हंसी........ वेंद में सब बात बीजरूपेण कहीं हैं। उनका विस्तार ऋषियों ने आयुर्वेद ग्रन्थों में किया है। फिर भला आपका क्या सालम मिश्री को ढूंढना कुछ युक्तिसंगत है ?
८. मैंने वेद विरुद्ध होने का उदाहरण "अकायं" इस वेद शब्द के विरुद्ध परमात्मा को शरीरधारी मानने वालों का दिया है। इसी प्रकार आप भी देते तो कुछ सिद्ध होता।
९. दूध–घी–शहद आदि का धरती पर होना तो प्रत्यक्ष से भी सिद्ध है। आपके अर्थ में कुछ प्रमाण नहीं, अन्तरिक्षलोक आदि का अर्थ प्रश्नोपनिषद में देखें वहां आश्रमों को ही लोक कहा गया है। इस प्रकार आप ऋषि के सिद्धान्तों का वेद से कहीं भी विरोध नहीं दिखा सके। हां ! कहते अवश्य रहे कि मैंने विरोध दिखाया है परन्तु यह सब विद्वान् लोग स्वयं समझ लेंगे।

हस्ताक्षर –

"बुद्धदेव"

नोट –

इस प्रकार ये प्रथम दिन का शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। बल्कि बीच–बीच में पण्डित अखिलानन्द जी ने नियोग के विषय को लेकर कुछ गलत बातें व्यंग्यात्मक ढंग से कही जिससे जनता में शोरोगुल हुआ, परन्तु अधिकारियों द्वारा उसे शान्त करा दिया गया था।

के लिए उसका और सुपुत्र यदि उसके गुणों वाला हो तो श्रेष्ठ है। परन्तु यदि इन गुणों वाला न हो तो राजसभा उससे छीन लेती है। गर्भाधान का प्रकरण लीजिए– **"रेतो मूत्रं द्विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रये"** क्या चरक आदि महर्षियों ने जो गोमांस का गुण वर्णन, किया वह स्वयं अनुभव करके किया था ? **"अनरथाः पूताः पवनेन शुद्धाः......."** आदि मन्त्रों का अर्थ यही है कि जब कोई ब्रह्मचर्यपूर्वक ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तो उसका ग्रहस्थाश्रम स्वर्ग बन जाता है। मुख से ब्राह्मण पैदा हुए तो मुख जैसे होने चाहिए। इसका सम्बन्ध तो आज के विषय से कुछ नहीं, तो भी इसका उत्तर देता हूं। ऋषि पूछते हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार की मानते हो ? क्या जैसे शाखा से शाखा फूटती है ? यदि इस प्रकार की उत्पत्ति मानोगे तो उसका रूप मुख जैसा ही होना चाहिए. दूसरी उत्पत्ति वीर्याधान से होती है। सो क्या विशुद्ध पुरुष के मुख में किसी ने वीर्याधान किया था ? इन सबके अन्त में मैं पुनः पूछता हूं कि आपने वेद विरोध कहां दिखाया ? वेदविरुद्धता तो इसको कहते हैं कि, जैसे वेद में परमेश्वर को **"अकाय"** अर्थात् कायारहित कहा है। तो कोई परमेश्वर को शरीरधारी कहे, तो यह वेदविरुद्ध कहलाता है। परन्तु आपने अभी तक कोई इस प्रकार का विरोध वेद में नहीं दिखाया। एक बात आपने और खूब कही कि सत्यार्थप्रकाश में पुत्र परिवर्तन के विषय में अथर्ववेद का प्रमाण नहीं दिया तो तुम क्यों देते हो ? सो महाराज आप मांगते हैं इसलिए देता हूं। आप मेरे किए हुए अर्थ का खण्डन करके दिखाइए, आप समझ रखिये कि पुत्र परिवर्तन की बात ऋषि की बुद्धि का चमत्कार दिखाती है। एक ओर वह लोग हैं जो सन्तान को किसी प्रकार का अधिकार नहीं देना चाहते, दूसरी ओर वह है जो अयोग्य पुत्र को भी सब अधिकार देना चाहते हैं। आप अभी कहते हैं कि योग्य को दो, और अयोग्य के छीन लो, वेदों में कहां लिखा है कि अयोग्य पुत्रों के अधिकार छीन लो ? मैंने अथर्ववेद का प्रमाण देकर बतला दिया कि राजसभा ही ऋषि, ब्राह्मण, उग्र, आदि पदवियां देती है। दूध की धारा का वर्णन भी उत्तम ग्रहस्थ का ही वर्णन करता है। इस प्रकार आपके सब..............समय समाप्त हो गया...............।

हस्ताक्षर–

"बुद्धदेव"

(३) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जनगण ! दयानन्द के समस्त ग्रन्थ परस्पर विरुद्ध तथा वेद विरुद्ध हैं। यह बात दो बार के लेख से मैं सिद्ध कर चुका हूं। समाजी मेरे प्रश्नों में से एक का भी उत्तर न दे सके, यह बात जनता को विदित है। मैंने प्रत्येक बात में वेद का विरोध दिखलाया है **"शंनोग्रह..........."** इस वेद मन्त्र में राहु और केतु इन दो उपग्रहों का वर्णन हैं यजुर्वेद के मन्त्र में ये दोनों ग्रह नहीं लिखे हैं, इसलिए **"तदेवाग्नि........ ..."** यह मन्त्र इस प्रसंग में अप्रासंगिक है। जो मन्त्र स्तनपान में विनियुक्त है, वह मात्र स्तनपान का ही संस्कार विधि में वर्णन करता हे। धात्री का नहीं, **"नहिगर्भधारणः.........."** इस मन्त्र में **"अन्योदर्योमनसामंतवाऊ... ...."** यह अन्य पुत्र के लेने में निषेध करता है। तब पुत्र परिवर्तन कैसे हो सकता है ? ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेख का अभी तक कोई उत्तर समाजी नहीं देते हैं क्या करें ? परस्पर विरुद्ध लेख का समर्थन कहां तक हो सकता है। मुख से उत्पन्न होने की बात योनि प्रदेश से उत्पन्न प्रसंग का उपहास करती हैं। दयानन्द का यह लेख सर्वथा शोचनीय है। स्वर्ग में जाना वेदमूलक है। जहां पर बहुत सी स्त्रियां और दूध दही की नहरे बहती हैं यह बात वेद बतलाता है। समाजी स्वर्गलोक को जमीन पर मानने में कोई मन्त्र नहीं दे सकते हैं, यहां पर प्रश्न दयानन्द का है। चरक ऋषि का नहीं, बाल ब्रह्मचारी दयानन्द स्त्री प्रसंग की बातों को कैसे जानता था ? क्या समाधि लगाकर **"योनि संकोचन"** ही देखा करते थे ? इस पर प्रमाण दीजिए नहीं तो उनको बाल ब्रह्मचारी कहना छोड़ दीजिए। सालम मिश्री वाला दयानन्द का लेख अभी तक खटाई में पड़ा हुआ है। यदि आपको वेद का प्रमाण नही मिलता है तो किसी अन्य ग्रन्थ का ही प्रमाण दे दीजिए। अभी तक मैंने अपने लेख में १. **"शंनोग्रहाश्चांद्रमसाः........."** २. **इमंरत्तनमूर्जरवतं........"** ३. **परिपद्यं ह्यरणस्मः..........."**

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

(१) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जन गण ! आर्यसमाज प्रवर्तक दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चौथे भाग में "विधवा विवाह" का खण्डन और "नियोग" का मण्डन लिखा है। और उसमें "अन्य मिच्छस्व............" का मन्त्र भी प्रमाण में दिया है। वेद के आधार पर जिस नियोग का आदेश दयानन्द ने लिखा है, क्या समाजी उसका पालन करते हैं ? यदि करते हैं तो उसका आफिस या आश्रम कहां पर खोला हुआ है ? कृपया उसका पता बतावें, और निषिद्ध विधवा विवाह का प्रचार वे क्यों करते हैं ? इन दोनों बातों का पालन न करना दयानन्द की आज्ञा का उल्लंघन नहीं है तो और क्या है ? दयानन्द ने लिखा है कि–"गर्भवती स्त्री के साथ एक वर्ष तक समागम न करने के कारण यदि किसी पुरुष या स्त्री से बिना सम्भोग किये न रहा जाये तो वह किसी अन्य स्त्री से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे।" क्या गर्भधारण करने पर दूसरा गर्भधारण हो सकता है ? समाजी उत्तर दें।

दयानन्द ने "प्रोषितभर्तृका के लिए ६-३-८ वर्ष बीतने पर नियोग का आदेश दिया है"। हम यदि ऐसे व्यक्ति बतावें कि जो इस अवधि से ऊपर हुए समय से बाहर गये हैं। तो क्या उनकी स्त्रियों के लिए समाजियों ने नियोग कराने का कुछ प्रबन्ध किया है ? लोक में यह प्रत्यक्ष है कि पशु भी एक सजातीय स्त्रीलिंग से जब नियुक्त होता है तब अन्य पशु उस स्त्रीलिंग का पीछा नहीं करते हैं। दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में एक स्त्री का एक साथ चार–चार पुरुषों के संग नियोग करना लिखा है। क्या समाजी ऐसा करते हैं ?

दयानन्द ने "उदीर्ष्वनारि......" मन्त्र का भाष्य लिखते हुए कहा है कि–"पति के मरने पर पहले नियोग करके और नियोग से पैदा हुए बच्चों को दायें भाग करके, तब उसका दाह करे"। क्या समाजी इस आज्ञा का पालन करते हैं ?

दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो तो अपने गोबर (विष्ठा) से चौका क्यों नहीं लगाते हो ?" यह प्रश्न दयानन्द ने क्यों उठाया है ? इसका आशय समाजी स्पष्ट करें।

दयानन्द लिखते हैं कि–"एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार नियुक्त पति के लिए सन्तान पैदा कर सकती है। और एक मृत स्त्री का पुरुष भी दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार विधवाओं के लिए पुत्र उत्पन्न कर सकता है"। इस बाँट (?) बारे में क्या–क्या मसले समाजी हल कर चुके है ? इन प्रश्नों का उत्तर स्वामी दयानन्द के ग्रंथों के आधार पर दें। अपनी ओर से मनमानी बातों के आधार पर नहीं।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

(१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

ऋषि दयानन्द ने विधवा विवाह का निषेध कहीं नहीं किया है, और न नियोग को आवश्यक धर्म बतलाया है। नियोग करने की जरूरत जिसे हो वह करे। और जिसमें नियोग के अतिरिक्त दूसरे समय में संयम से रहने की शक्ति हो वह नियोग करे। जैसे व्यास जी ने किया, और सहस्रों ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की स्त्रियों के साथ किया, जिसमें संयम की शक्ति न हो वह विधवा विवाह कर ले, आर्यसमाज में नियोग इसलिए नहीं होता कि बहुधा लोग अपने आपको इस संयम के योग्य नहीं पाते। और विधवा विवाह कर लेते हैं। और

अट्ठावनवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "नीमच" (मध्य प्रदेश)

दिनांक : २८ जून, सन् १६२६ ई॰ (दूसरा दिन)
विषय : क्या आर्यसमाजी स्वयं स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को जूतों से कुचलते हैं?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी आर्य
आर्यसमाज के प्रधान : श्री महाशय हीरालाल जी
सभापति : श्री रायबहादुर ठाकुरदेवी सिंह जी (ज़ज़) नीमच कैन्ट,

नोट — यह शास्त्रार्थ लगातार चार दिन तक हुआ जो **"श्री पण्डित फूलचन्द शर्मा जी–निडर"** भिवानी (हरियाणा) निवासी द्वारा हमें प्राप्त हुआ, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाशन हेतु प्रदान कर प्रकाश में लाने का प्रयास किया–

"सम्पादक"

(२) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार–

दायें भाग करके तथा नियोग करके दाह किया जावे, यह इबारत सारे सत्यार्थप्रकाश में से कहीं नहीं दिखाई गई, इसलिए यह झूठ है। दीर्घरोगी शब्द बराबर पुस्तक में उपस्थित है, मूल लिखित पुस्तक (Manucript) में भी है, यदि किसी संस्करण में भूल से रह गया हो तो उसके आधार पर आर्यसमाज को कोसना सरासर अन्याय है, नियोग का रजिस्टर खुला था जिसमें सबसे ऊपर नाम १८ पुराणों के कर्त्ता व्यासजी का लिखा हुआ है। यहीं तक नहीं बल्कि भीष्म जी ने पहिले फीस द्वारा नियोग करने को कहा था, पर व्यासजी ने यह काम (Honorary) तौर पर कर दिया। इसलिए फीस की जरूरत ही नहीं पड़ी। पति के बाहर जाने पर जो ब्रह्मचारिणी न रह सके उसे नियोग की आज्ञा मनु महाराज ने दी है। सो आप भी मानते हैं। हमारे पास किसी स्त्री ने प्रार्थना नहीं की। जो स्त्रियां संयम से रहें वह चाहे सारी आयु भर ब्रह्मचारिणी रहें। नियोग अवश्य करना चाहिए यह कहां लिखा हुआ है ? कुत्ता जब कुतिया के साथ समागम करता है, तो दूसरा कुत्ता कभी तो चण्डी पाठ करने लगता है, और कभी श्री गणेश कर बैठता है। परन्तु इसकी नकल पुरुषों को नहीं करनी चाहिए, और न ऋषि दयानन्द जी के लेख में इसकी कहीं गन्ध भी है। हां पुराणों के बृहस्पति ज़ी ने यह लीला अवश्य की थी। और कुत्ते के बराबर भी सभ्यता नहीं दिखलाई।.

हस्ताक्षर–

"बुद्धदेव"

(३) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जन गण ! विधवा विवाह शुद्रों के लिए हैं। यह बात समाजियों ने स्वीकार की। हम इसके लिए धन्यवाद देते हैं, परन्तु दयानन्द ने जिसको शूद्रों के लिए लिखा है। समाजी उसका द्विजों में प्रचार क्यों करते हैं ? दयानन्द की ओर से उत्तर न देकर व्यास जी का बार–बार नाम लेना प्रसंग के बाहर जाना है। महाभारत में **"प्रसूतिर्वरदानजा"** यह पाठ है। वहां नियोग नहीं बल्कि वरदान से उत्पत्ति का प्रकरण है, आज के पहले पर्चे में मैंने दयानन्द के लेख का उद्धरण दे दिया है। उसको न देखकर बार–बार लेख मांगना समाजियों की भूल है। महाभारत का मूल पाठ न पढ़कर केवल हिन्दी पढ़ना धोखा देना है। वहां पर यह प्रसंग नहीं है। मनु ने **"अयंद्विजैर्हि ...."** पद्य के द्वारा नियोग को साफ पशुधर्म बतलाया है। उन्होंने वर्णसंकरता का भय भी दिखाया है। दयानन्द ने जो लेख लिखा है और जो समापति महोदय श्री जज साहब को दिखाया भी गया है उसको न मानकर हर एडीशन में पाठ बदलना समाजी लज्जाजनक नहीं मानते, यह कितना अनर्थ है ? **"उदीर्ष्वनारी........"** मन्त्र का भाष्य लिखते हुए दयानन्द ने जो बाते नियोग के विषय में लिखी हैं, उसको समाजी बार–बार पूछने पर भी नहीं पढ़ते, यह जनता देख रही है और गर्भ पर गर्भ धारण करने वाली बात का जो जवाब समाजी दे रहे हैं, उस पर भी जनता ध्यान दे रही है। चार बार तक प्रेस की गलती होने पर भी पुस्तक बिकती रही, यह कितना अन्याय है ? प्रोषितभृर्तृका वाली बात का उत्तर समाजी अभी तक न दे सके। आठ, छः, तीन वर्ष बाद नियोग करना दयानन्द की साफ आज्ञा है। यदि समाजी चाहें तो हम फहरिस्त (सूची) दे सकते हैं, दो–दो अपने लिए और दो–दो अन्य पुरुषों के लिए कुल मिलाकर दस सन्तान नियोग से पैदा करे, यह दयानन्द की आज्ञा क्यों नहीं मानी जाती ? हमने विधवाश्रम की तरह नियोगाश्रम की फहरिस्त मांगी है। परन्तु समाजी उसको पाप समझकर छिपाते हैं, यदि समाजियों में दम हो तो हम चैलेन्ज करते हैं कि, वह इसको वैदिक धर्म सिद्ध करें, रही–गू–गोबर की बात ! उस पर हम फिर भी पूछ सकते हैं, आज के लेख में जो–जो बातें हमने दयानन्द ग्रन्थ खोलकर दिखा दी हैं। दयानन्दी उनमें से एक का भी उत्तर न दे सके। यह उनका घोर पराजय है।

हस्ताक्षर –

"अखिलानन्द"

कुछ लोग इसलिए नहीं करते कि वह उसकी आवश्यकता अनुभव ही नहीं करते। गर्भवती के विषय में अखिलानन्द जी ने कोरा झूठ बोला है। गर्भवती के साथ स्वामी दयानन्द जी ने कहीं पर भी समागम करने को नहीं लिखा। इसी प्रकार का कोरा झूठ "उदीर्ष्व-नारि..........." इस मन्त्र के विषय में बोला है। इसी प्रकार एक समय चार पुरुषों के साथ समागम के विषय में भी झूठ बोला है। यह इबारत (पाठ) पढ़कर सुनाते तो पता लग जाता। मेरा दावा है कि यह शब्द वह कदापि नहीं दिखा सकेंगे। आदमी के पाखाने के विषय में भी झूठ बोला है, इस प्रकार उनकी आज की स्थापना एक झूठों का सिलसिला है। नियोग को विधवाविवाह से श्रेष्ठ इसलिए बताया है कि विधुर अथवा विधवा को दण्ड देना अभीष्ठ है। जिससे भयभीत होकर स्त्री–पुरुष एक दूसरे के लिए सदा प्रेम का भाव रक्खें, किन्तु इसमें बड़े संयम की आवश्यकता है।

इसलिए जो ऐसा न कर सकें वह विधवा विवाह कर लें किन्तु इससे उनके द्विजत्व में बट्टा अवश्य लगेगा क्योंकि यह शूद्र धर्म है, परन्तु भ्रूण हत्या, गर्भपात आदि महापातकों से बचने के लिए लोग विधवा विवाह अथवा विधुर विवाह करते हैं। जिसको **"अधर्म"** ऋषि दयानन्द ने कहीं नहीं लिखा। आप अब उसमें प्रमाण देखिए जो व्यास जी ने नियोग किए हैं महाभारत में आदि पर्व के अध्याय १०६ में **"ब्राह्मणों ने क्षत्रिय स्त्रियों से नियोग किया"** देख लीजिए।

हस्ताक्षर –

"बुद्धदेव"

(२) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जन! दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में विधवा विवाह द्विजों में नहीं होना चाहिए, यह लिखा है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विधवाविवाह का स्पष्ट खण्डन है, शूद्र के अलावा द्विज, विधवाविवाह नहीं कर सकता है। नियोग की आज्ञा दयानन्द ने स्पष्ट शब्दों में विधवा और मृत स्त्री के पुरुष अर्थात् विधुर पुरुषों के लिए दी है। जिसका पालन समाजी नहीं करते हैं। यही उन पर लान्छन है। विधवाविवाह का प्रचार दयानन्द के लेख के विरुद्ध है। विधवाविवाह के बाद नियोग मण्डन स्पष्ट है। विधवा से न रहा जाये तो वह दूसरा गर्भ, गर्भवती होने पर भी धारण करे। यह लेख प्रत्यक्ष है। प्रोषित पति का ८/६/३ वर्ष के बाद नियोग करे। यह दयानन्द का आदेश सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट है। मृतभर्तृका स्त्री शव का दाह तब करे जब पहले नियोग की बातचीत तय हो जाए। यह आज्ञा दयानन्द की समाजी लोग पालते हैं या नहीं ? विधवाश्रम की तरह नियोगाश्रम का होना दयानन्द की आज्ञा का पालन करना है। इसका रजिस्टर, दफ्तर और नियोग संख्या का हिसाब रखना समाजियों का फर्ज है। लोक प्रत्यक्ष दृष्टान्त को न छू कर जो समाजियों ने उत्तर दिया है, वह प्रत्यक्ष में विस्पष्ट है। जिस आज्ञा को दयानन्द ने उपस्थित किया है उसका पालन न करना उनका अनादर है।

व्यास जी की बात उपस्थित करना नियोग का समर्थन नहीं है। वहां **"प्रसूतिर्वरदानजा........."** वाला प्रमाण वरदान से सम्बन्ध रखता है। यहां पर प्रसंग व्यासजी का नहीं बल्कि समाजियों का व दयानन्द के कथन का है। समाजी ऐसा क्यों नहीं करते ? यदि जरूरत नहीं है तब दयानन्द ने ऐसा आदेश क्यों दिया है ? मैंने जो बातें पूछी हैं उनका उत्तर न देकर केवल समयापन करना समाजियों को उचित नहीं है। १. नियोग का अनादर ,२. विधवाविवाह का प्रचार ३. मृतभर्तृका का शवदाह से पूर्व नियोग, ४. विधवा दो और अपने लिए दो–दो अर्थात् चार–बार अन्य नियुक्तों के लिए सन्तान पैदा करे, इत्यादि आज्ञाओं का पालन समाजी करते हैं या नहीं ? यही बातें आज के शास्त्रार्थ में द्रष्टव्य हैं।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

(न)सठवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "नीमच" (मध्य प्रदेश)

@vaidicbooks

दिनांक : २६, जून, सन् १६२६ ई॰ (तीसरा दिन)
विषय : क्या भागवत, आदि पुराण वेद विरुद्ध हैं ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
सहायक : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी आर्य
आर्यसमाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी
सभापति : श्री रायबहादुर ठाकुरदेवी सिंह जी, (ज़ज़) नीमच कैन्ट

नोट — यह शास्त्रार्थ लगातार चार दिन तक हुआ जो **"श्री पण्डित फूलचन्द शर्मा जी—निडर"** भिवानी (हरियाणा) निवासी द्वारा हमें प्राप्त हुआ, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाशन हेतु प्रदान कर प्रकाश में लाने का प्रयास किया—

"सम्पादक"

(३) श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार –

गर्भवती स्त्री के पति को नियोग की आज्ञा क्यों की गई ? यह देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की कथा से स्पष्ट है जरा गौर किजिये –

बृहस्पति जी के बड़े भाई की स्त्री गर्भवती थी, परन्तु वह कहने लगे कि मैं मैथुन तुम्हारे साथ ही करूंगा। उसने बृहस्पति जी को बहुत मना किया तथा समझाया पर वह बोले कि मैं तो मैथुन करके ही छोडूंगा। इस प्रकार कहकर वह उस पर पिल ही पड़े, इस पर गर्भ में पड़ा हुआ बालक चिल्लाया कि– **"भो ! रमात मैवं कापर्स्त्विंद्वयोर्नास्तीह सम्भवः"** हे चाचा ! ऐसा न करिए, यहां दो की गुंजाइश नहीं है। इस पर भी वह न माने, और गड़बड़ कर ही डाली, आखिर जब वीर्योत्सर्ग का समय आया तो बच्चे ने अन्दर की तरफ से टांग अड़ा दी और वीर्य बाहर ही गिर गया। इस प्रकार की लीला बृहस्पति को गुरु मानने वालों से होना अधिक सम्भव है। इसलिए नियोग का यह तरीका ऋषि दयानन्द ने विशेष करके सनातनधर्मियों के लिए लिखा हैं। दस बार केवल सन्तान के लिए समागम करने को आप धोखा कहते हैं, परन्तु **"अनावर्तो राजपुत्र रित्रया भर्ता पतिव्रते"** देखिये– महाभारत आदि पर्व अध्याय १२२ में, यह है सनातनधर्म की चांदमारी ! इसलिए विधवाविवाह शूद्रकर्म है किन्तु एक शूद्रकर्म करने से वह शूद्र नहीं हो जाता, कुछ दोषी अवश्य हो जाता है। हम शूद्रकर्म की अनुज्ञा भ्रूणहत्यादि महापातक से बचने के लिए देते हैं, परन्तु आपको तो व्यभिचार और भ्रूणहत्या ही पसन्द है विधवाविवाह नहीं। दाहकर्म से पहले नियोग आप कहीं नही दिखा सके। यह आपका घृणित झूठ है। शौक ! कि आपके पढ़ने पर भी इन शब्दों की गन्ध तक कहीं नहीं मिली, लेकिन **"बेशर्म की बला दूर, मारे वो और चढ़े नूर"** आपको इतना भी पता नहीं कि वेन पहले था कि मनु ! समागम का वर्णन महाभारत में स्पष्ट मौजूद है। एडीशन में पाठ शुद्ध करने के विषय में आप सभापति तक को मूर्ख कह गए, जनता क्या इतना भी नहीं जानती कि छापे में भूल हो सकती है। आपके पास किस–किसने कहा कि हम नियोग करना चाहते हैं ? आपको पता होना चाहिये कि नियोग इच्छा पर निर्भर है, कोई आवश्यक कर्म नहीं है, परन्तु जिसकी नियोग की इच्छा न हो उसे भी जबर्दस्ती नियोग कराना तो कहीं नहीं लिखा। इस प्रकार आज दूसरे दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

हस्ताक्षर –

"बुद्धदेव"

@vaidicbooks

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार–

क्या पण्डित जी आप स्वामी दयानन्द जी महाराज के मत को मानते हो ? जो आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों का हवाला दे रहे हो ? दिन–रात उनको गाली देने वाले, समय पड़ने पर कैसे उनकी आड़ (परदे) में छुपना चाहते हो ? ये भी खूब रही कि–"मीठा-मीठा गडप, कड़वा-कड़वा थू" दुनियां आपको तब ईमानदार समझे ? जब आप स्वामी दयानन्द के शेष सिद्धान्तों को भी मानने लगो। क्या हम आशा करें कि कभी आपके भीतर भी सत्य का प्रकाश होगा ? बाहर की आंखे तो आपके हैं नहीं, भीतर की आंखों से ही देख लीजिए। परन्तु सच बात तो यह है कि–**"मनस्यन्मद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यसद दुरात्मनाम"** है। आपका असली मतलब तो स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को पलटना है। पण्डित कालूराम जी आप स्वयं नहीं पढ़ सकते तो ठीक है किसी अन्य से ही पढ़वाकर देख लीजिए सत्यार्थ प्रकाश में इस सिद्धान्त पर ये प्रश्नोत्तर निम्न प्रकार हैं–

प्रश्न – क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा ?

उत्तर – नहीं,

प्रश्न – तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

उत्तर – उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न – क्या हैं ?

उत्तर – स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना का निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना, उपासना से परब्रह्म का मेल और उसका साक्षात्कार होना।

अब समझ गए, पण्डित जी, कि आर्यसमाज व दयानन्द जी महाराज क्या मानते हैं ? अब रही बात ! पाप निवृत्ति की प्रार्थना क्यों मौजूद हैं ? वह इसलिए है कि प्रत्येक जीव पुरुषार्थपूर्वक परमात्मा से यह कामना करे कि, मेरा पाप निवृत्ति कीजिए, अर्थात् मुझे पाप से हटाइए। अर्थात् भविष्य में मैं पाप न करूं। यह मतलब नहीं हैं कि मुझे पिछले पाप का फल नहीं मिलेगा इसके विरुद्ध पौराणिक लोग कृत पाप के फल की निवृत्ति कहते हैं। आर्यसमाज और वेद अनागत पाप से निवृति कहते हैं, इसमें कितना भारी अन्तर है ? ओंकार का जाप स्वस्ति तथा शान्ति पाठ का हेतु भी इसी प्रकार समझ लीजिए। आपने इसी प्रकार मेरे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, बल्कि उनकी लीपा–पोती कर उनको ऐसे ही उड़ाना चाहा है तथा आप उन्हें फिजूल की बातें कहते हैं। मैं फिर कहता हूं कि लिंग और योनि जब ये शब्द दोनों साथ आये हैं तो साहचर्य अभिधाशक्ति से लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय ही है। ये आप समझते हुए भी किनारा कर गये। क्या आप बतला सकते हैं कि महादेव जी के लिंग का बिजली वाला पावर हाऊस कहां है ? क्या कोई बिजली को हाथों में ले सकता है ? मेरे आरम्भ से अब तक सारे प्रश्न ज्यों के त्यों मौजूद हैं। सभी पर दृष्टिपात करके उत्तर दीजिए।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री –

पण्डित जी आज भी बिजली के तार को लोग हाथ में ले लेते हैं। देवी भागवत के– **"शम्भोः पपात भुवि लिंगम"** इसमें लिंग का अर्थ प्रकृति है तथा वहां कथा में कहा है कि बिजली का तार गिरा और अपने कारण में समा गया। वेद में मूर्तिपूजा उपस्थित है। हमने जो अर्थ किए हैं उनको काटा होता तो हम जानते, परन्तु आप उनको नहीं काट सके, पुराणों मे जुए का निषेध है। रही ब्रह्माजी की बात ! ब्रह्मा का विवाह पुष्य

शास्त्रार्थ से पहले

आज के दिन आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार थे, परन्तु सनातनधर्म वालों ने अपना वकील (शास्त्रार्थकर्त्ता) बदल दिया था ! उन्होंने सोचा था कि अखिलानन्द जी का जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा, शायद पण्डित कालूराम जी उनसे ज्यादा प्रभाव डाल सकें। प्रथम के दो दिनों में सनातनधर्म का पूर्वपक्ष था। परन्तु आज आर्यसमाज का पूर्वपक्ष था। पण्डित कालूराम शास्त्री जी प्रज्ञाचक्षु थे। इसलिए थोड़ा बहुत अन्य विद्वान से लिखवाया गया, शेष ज्यादातर मौखिक ही कहा गया, अब आप पण्डित कालूराम जी को भी देखिए कि उन्होंने सनातनधर्म के पक्ष की वकालत में कैसे कैसे और कितने तीर चलाये ?

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

उपस्थित भद्र जनों ! आज सनातनधर्म की नाव को बचाने के लिए माननीय पण्डित श्री कालूराम जी शास्त्री (प्रज्ञाचक्षु) उपस्थित हुए हैं। उनसे मेरी प्रार्थना है कि पूर्व निश्चयानुसार मेरे निम्न प्रश्नों का उत्तर दें।

१. पुराणों में देवताओं को अति छोटे यत्न से या भूल से भी याद कर लेने पर मुक्ति या अन्य बड़ा सुख देने वाला बताया है। यथा–अजामिल, चाण्डाल कन्या आदि–आदि, परन्तु इसके विरुद्ध वेद कहता है– **"विभक्तकारं हवामहे..........."** जबकि इस मन्त्र में यथा योग्य फल देने वाला लिखा है।

२. पुराणों में व्यभिचार का आदर्श व उपदेश है, यथा–दारूबन की कथा, ब्रह्मा का पुरौहित्य, अनूसूया के त्रिदेव की कथा, परन्तु वेद इसके विरुद्ध–**"सप्त मर्यादा............"** मन्त्र से इसका निषेध करता है।

३. पुराण द्यूत क्रीड़ा अर्थात् जुआ खेलने का उपदेश करता है। यथा–शिव पार्वती ने रात्रि में जुआ खेला, जबकि वेद इसका निषेध करता है।

४. पुराण, मुख, नासिका आदि में वीर्याधान करना बताता है, यथा–सूर्य ने किया। जबकि वेद ने योनि में बताया है।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री–

सज्जनों ! अजामिल ने मुसीबत में नारायण नाम का स्मरण किया, और वह यमपाश से छूट गया, इसी प्रकार चाण्डाल कन्या विप्लव पत्र से मोक्ष प्राप्त हुआ, हमारे यहां ही क्यों स्वामी दयानन्द ने आर्याभिविनय में ऐसा ही लिखा है। उपनिषदों में भी ऐसा ही मन्तव्य है, और वेद में भी इसी प्रकार कहा है फिर पुराणों में ही यह आक्षेप क्यों है ? अब रही बात ! लिंग और योनि की। सो दारूबन की कथा से इसका क्या सम्बन्ध है ? योनि –भग–वीर्य तो वेदों में भी आये हैं, कोई काम की बात कहो पण्डित जी ये फिजूल की बातें छोड़िये !

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार–

सज्जनों ! पण्डित जी का भी कमाल है, अपने पूर्वजों के अर्थों को एक तरफ रखकर अपने मन से सबका अर्थ अलंकारिक रूप में उपस्थित कर रहे हैं। क्या इनको माना जा सकता है ? जबकि पुराणों के टीकाकार स्वर्ग में से चिल्ला–चिल्लाकर कह रहे हैं कि कालूराम का अर्थ ठीक नहीं । हमारा अर्थ देखो। परन्तु पण्डित जी मान ही नहीं रहे। सत्य को न मानकर इस विषय में आर्यसमाज को ही पराजित वताना उनका स्वयं का पराजय है। क्यों न पण्डित जी अपने अलंकारिक भाष्यों से युक्त सभी पुराणों को छपवा डालें। स्वर्ग में जीव कर्म नहीं करता। वह भोग योनी है। वहां वे न खाते हैं न पीते हैं न कोई कर्म करते हैं। यह कथन पण्डित कालूराम जी का पुराण विरुद्ध है। जबकि पुराणों में देवता संधि विग्रह, स्त्री प्रसंग व अन्य कर्म भी करते हुए लिखे हैं।

यह उनका पुराण विरुद्ध कथन उनकी हार साबित नहीं करता है तो और क्या है ? पर उनका भी दोष क्या है ? अगर वास्तविकता को माने तो सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा। इसलिए उनका अर्थ बदलकर जनता को भ्रम में डालना तथा अपना पीछा छुड़ाना है। परन्तु आज के शास्त्रार्थ में जनता जान चुकी है कि पुराणों की शिक्षा क्या है ? तथा वह कहां तक मानने योग्य है ?

हस्ताक्षर–

"बुद्धदेव"

नोट–

आज के शास्त्रार्थ में पण्डित कालूराम जी से कोई उत्तर न बन पड़ा, जिसका प्रभाव पूरी जनता पर बुरा पड़ा, इस बारे में पौराणिक लोग स्वयं पण्डित जी को कह रहे थे। इस पर झुंझलाकर पण्डित कालूराम ने कहा कि ठीक है। अखिलानन्द जी मौजूद हैं। मैं कल से शास्त्रार्थ नहीं करूंगा तुम लोग अखिलानन्द से ही शास्त्रार्थ कराओ।

"लेखक"

नक्षत्र में हुआ था। इस कारण उनका वीर्य गिरा। यह मानसिक सृष्टि का वर्णन है। आपने अनुसूया की कथा, मां–वेटे, भाई–वहिन का व्याह कहा है। सौ वह प्रक्षिप्त है। इसलिए इस वारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

श्री पण्डित वुद्धदेव जी विद्यालंकार–

वाह ! पण्डित जी मान गए ! मैं विजली की वात कहता हूं और आपने विजली का तार कह दिया, क्या विजली में और उसके तार में कोई फर्क नहीं होता ? ....जनता में हंसी............ आप स्पष्ट करें कि महादेव के लिंग वाला विजली का पावरहाऊस कहां है ? वहां इन्जीनियर कौन हैं ? आदि। एक और वड़ी प्रसन्नता की वात है कि पहिले के पौराणिकों में और पण्डित कालूराम सनातनधर्मी में आकाश व पाताल का अन्तर दिखाई दे रहा है। पहिले जो भाषार्थ पौराणिक विद्वानों के किए हुए हैं, तथा हस्तलिखित भी मौजूद हैं और सनातनधर्मी प्रेसों में ही छपे हुए हैं। उन सव में तो महादेव के हाथ में मारकीनी कम्पनी के वने हुए विजली के तार को पकड़े हुए जाना, और तार के गिर पड़ने का जिक्र कहीं भी नहीं है। क्या पण्डित जी ने जो अपने मानमाने अर्थ किए हैं उनको कहीं पर लिखा हुआ दिखला सकते हैं ? इस प्रकार तो पण्डित जी सारे पुराणों के अर्थ अपने मन से कर देंगे जिनका न कोई सिर है ना पैर ! जैसे रात्रि में जुआ खेलना पद्म पुराण में मौजूद होते हुए भी यह कहना की जुए का निषेध है। यह धृष्टता नहीं तो और क्या है ? और पण्डित जी ने वेमतलव जिस विषय से आज का दूर का भी सम्वन्ध नहीं जिक्र कर दिया वह है मूर्तिपूजा। "मांगे आम, देवें वेर" वाह पण्डित जी ये भी खूव रही। क्या आपसे कोई पूछ सकता है कि आज इस विषय से इसका क्या सम्वन्ध है ? ....जनता में हंसी............., आज आपका काम उत्तर देना है। प्रश्न तो हमें करने हैं आपको नहीं। आपने व्रह्मा जी के विवाह की भी अनोखी वात कही। क्या नक्षत्र व्रह्माजी से भी प्रवल थे जिनके कारण उनका वीर्य गिरा । दूसरी वात ! व्रह्माजी ने ही सृष्टि रची, और सृष्टि के साथ–साथ नक्षत्र भी रचे गए, जव पुष्य नक्षत्र वन चुका होगा उसके वाद ही व्रह्मा का विवाह हुआ अर्थात् सृष्टि निर्माण के वाद, इसी नक्षत्र दोष से ही व्रह्मा का वीर्य गिरा। दूसरी तरफ कहते हैं कि यह मानसिक सृष्टि का वर्णन है। ये परस्पर विरोध क्यों ? या तो सृष्टि समय की सफेद वर्फ के ढेर की घटना कहिये या वाढ़ की। दोनों वातों का एक साथ परस्पर विरुद्ध कहना झूठ सावित करता है। अनुसूया व विवाह वाली वातों को प्रक्षिप्त मानकर पण्डित जी ने अपना पीछा छुड़वा लिया। पर आज इतनी आसानी से पीछा छुटने वाला नहीं है। मेरे सारे प्रश्न वैसे के वैसे ही रखे हैं।

हस्ताक्षर–
"वुद्धदेव"

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री –

मैं पण्डित जी के सव प्रश्नों का उत्तर वरावर देता आ रहा हूं। उस पर भी यह हठ पकड़ना कि कोई उत्तर नहीं मिला, जनता स्वयं जान लेगी। पण्डित जी ने एक वात सूर्य देवता के वीर्यधान की कहीं थी पण्डित जी को पता होना चाहिए कि भोग योनि वाले (देव) चाहे जिस स्थान पर भोग कर सकते हैं । सूर्य व उसकी स्त्री और अश्विनीकुमारों का ये सव वर्णन यहां आलंकारिक रूप में किया गया है। वल्कि देवी भागवत में शंकर जी की पूजा लिखी है इसको आर्यसमाजी छिपा गए। यह चोरी और सीना जोरी नहीं है तो और क्या है ? और आर्य पण्डित जी को पता होना चाहिए कि जीव स्वर्ग में जाकर कर्म नहीं करता। पर आर्यो को हठ तो वरदान रूप में मिला हुआ है। जिसे वे छोड़ नहीं सकते। अपनी ही अपनी कहें जोवेंगे। "अट्ट भी मेरी, पट्ट भी मेरी, और अन्टा मेरे वावा का" ....जनता में हंसी........... क्या कहें इन समाजियों की वुद्धि को ? मैंने सव प्रश्नों के उत्तर दे दिए हैं। कोई वात वकाया नहीं रही।

हस्ताक्षर –
"कालूराम"

वैदिक पुस्तकालय

शास्त्रार्थ से पहले

आज भी पूर्ववत् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, पूर्व तीन दिन सभापति श्री राय वहादुर ठाकुर देवीसिंह जी थे, परन्तु आज के सभापति श्रीमान सब इन्सपैक्टर पुलिस थे। पूर्वपक्ष आर्यसमाज का ही था। आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता पूर्ववत् ही रहे। परन्तु सनातनधर्मियों की ओर से पण्डित कालूराम जी को हटाकर श्री पण्डित अखिलानन्द जी को ही पुनः नियत किया गया। यह आज शास्त्रार्थ का अन्तिम दिन था। शास्त्रार्थ सुनने वालों की आज वड़ी भारी भीड़ थी। पिछले तीन दिनों की भांति आज भी नियत समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

सज्जन वृन्द ! आज हमें अपने सनातनधर्मी भाइयों से यह पूछना है, कि जो श्रीमद्भाग्वत् पुराण में लिखा है कि –

यस्यात्म बुद्धिः कुणपेत्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिसु भौमइज्य धीः।
यस्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्तः; ज्जिनेशुभिज्ञेपु सः एव गोखरः।।१३।।

(श्रीमद्भागवत पुराण स्कन्द १० अध्याय ८४, श्लोक १३)

अर्थात् मूर्ति को देवता मानने वाला, और जल को तीर्थ मानने वाला (मनुष्य) गधे के समान है। जब पुराण में मूर्ति पूजा की इतनी निन्दा की है तो आप मूर्ति पूजा क्यों करते हैं ? गौभिलगृह्यसूत्र में गऊ मारना लिखा है। हमारे भाई बहुत अच्छा करते हैं कि नहीं मारते; पर क्या वह कारण वता सकेंगे कि वह क्यों नहीं मारते ? देखिए–गौभिलगृह्यसूत्र अध्याय ३ खण्ड १० सूत्र १४ व २१, सनातनधर्मी वेद भाष्य में घोड़े का लिंग पकड कर रानी अपनी योनि में डाले ऐसा लिखा है देखिए– यजुर्वेद अध्याय २३, मण्डल २०, वहीं पर मारना भी लिखा है। बाल्मीकि रामायण में यह दोष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी की माता पर लगाया है। देखिए–

"..............कौशल्या तंदपं तंत्र परिचर्यसमग्रतः।
क्रियाणै विंशसासैनं त्रिभिः परभवा मुदा हयेन न समयोजयन्।।

(बाल काण्ड सर्ग १४ श्लोक ३३ से ३५ तक)

भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व अध्याय ७३, में महाराज श्री कृष्णचन्द्र जी का सुरापान करना लिखा है। क्या सब मद्यशाला सनातनधर्म सभा की शाखायें हैं ? और यह महिला अश्वसम्भोगाश्रम कहीं खुला हो तो उसका भी क्रम या पता बता दें। "यजुर्वेद अध्याय ६ श्लोक १५, यथा–"मनसा आप्यायता.........आप्यायताम्" आदि मन्त्रों में बकरे को मारकर फिर उसका मंगल मनाने की विचित्र कथा लिखी है तो अवश्यमेव सनातनधर्मी इस पर आचरण करते होंगे। परन्तु हम बहुधा देखते हैं कि–ऐसा नहीं होता। क्या पण्डित मण्डली ने ऐसे यज्ञ का कभी अनुभव किया है ?

"बुद्धदेव"

साठवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "नीमच" (मध्य प्रदेश)

दिनांक : ३०, जून, सन् १६२६ ई॰ (चौथा दिन)
विषय : सनातनीलोग सनातन सिद्धान्तों पर आचरण नहीं करते हैं।
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्मियों की ओर से : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी आर्य
आर्यसमाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी
सभापति : श्रीमान सबइन्सपैक्टर पुलिस (नीमच कैन्ट)

नोट – यह शास्त्रार्थ लगातार चार दिन तक हुआ जो **"श्री पण्डित फूलचन्द शर्मा जी–निडर"** भिवानी (हरियाणा) निवासी द्वारा हमें प्राप्त हुआ, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाशन हेतु प्रदान कर प्रकाश में लाने का प्रयास किया–

"सम्पादक"

बात कहीं है ? बिल्कुल उपादानकारण के जोड़ की हैं। मनुस्मृति के पांचवे अध्याय में लिखा है कि–

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसनाभि मानवः।
सप्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम।।

(मनुस्मृति)

इसके साथ ही तीसरे अध्याय में लम्बी लिस्ट भी दी है। जिसमें बकरे आदि के मांस को मृतक–श्राद्ध के निमित्त खिलाने पर पितरों की तृप्ति लिखी है। और वहां **"तत्वामिषेण कर्त्तव्यं"** यह विधिवाक्य स्पष्ट लिखा है।

हस्ताक्षर –
"बुद्धदेव"

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

विवेकी पुरुषों में जो पूज्य बुद्धि न माने वही गधा है। वह स्वयं वे मान चुके हैं। अबकी बार भूल भी गया। खाली हिन्दी पढ़कर ही जाफर जटल्ली वाला किस्सा गाया गया, **"छुग-ओखली-मूसल तथा खेत का पटेला"** पूजने वालों को ऐसा ही कहकर निर्वाह करना पड़ता है। विधिवाक्य ही कहा जाता है, ब्रह्मवाक्य नहीं। **"मादवतीतिमद्यं"** वेद वाक्य इस निर्वचन से अमृत का नाम ही मद्य है। चलिए–कहां चलते हैं। रोने की शकल दिखाकर रोइये नहीं। **"नियुक्त लुपथान्यायं"** इस पद्य का **"कुर्याछेदभपशु"** पद्य से सम्बध है। अबकी बार **"पञ्च कोटि गवामांसं"** – यहां पर मा–या–अंश इस विग्रह से तन्मूलक गोदान द्रव्य का ग्रहण है। मांस का नहीं। यहां तक तो हमने आपका उत्तर दिया, अब लीजिए अपनी घर की बातें–जो ऋषि महर्षि मान चुके हैं। नरमांस भक्षणविधि घर की देख लीजिए। और ऊपर से निराकार का वीर्यपान कर लीजिए। मन्त्र में मरे हुए घोड़े से समागम करने वाला एक पद भी दिखा दीजिए। जो बात मूल मन्त्र में नहीं है उसको पढ़कर जनता को धोखा देना उचित नहीं है। यहां ईट का जवाब पत्थर से दिया जाता है। अन्ध शिष्य मण्डली इस बात को ध्यान में धरे। इतिहास की बात हम फिर दुहरा देते हैं, इतिहास में उस–उस काल की सभी बातों का वर्णन मिलता है, कंस और कृष्ण एक ही समय में थे। दोनों का इतिहास भागवत् में है। आप कंस को अच्छा मानतें हैं या श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज को ? कहिए तो सही ! आज बोलती क्यों बन्द है ? ये होली के दिनों में पढ़ने लायक सत्यार्थप्रकाश नहीं है। ये सनातन धर्म के ग्रन्थ हैं। अबकी बार बकरा उड़ गया–क्यों ? धर्म शास्त्रों में, वेदों में, कहीं पर भी मांस खाने का विधिवाक्य नहीं है। गौ मांस का जिक्र करते हुए बार–बार आपको लज्जा आनी चाहिए। आप खुश हो रहे हैं। क्या इसी हिसाब से आप गौ रक्षक बनते हैं ? छूरे अर्थात् उस्तरे पर जूते लगाने से पहले कम से कम दयानन्द से तो पूछ लीजिए।

हस्ताक्षर –
"अखिलानन्द"

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

सज्जनों ! भविष्य पुराण उत्तर पर्व के अध्याय १११ में लिखा है कि–**"कृष्ण जी की पत्नियां वेश्या हुई। और फिर उनको मोक्ष का उपाय बताया गया कि रविवार के दिन ब्राह्मणों को भोजन करावें और बिना फीस सम्भोग करावें तो उनकी मुक्ति हो"**। पहले उस्तरे को मैं जूता मारने को तैयार हूँ। आप अपने देवताओं को मार कर दिखावें। नरमांस का कोई हवाला नहीं दिया, हमारी किसी पुस्तक में नहीं लिखा।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

माननीय सज्जन गण ! आज के प्रश्नों में व समाज ने भागवत के **"यस्यात्म बुद्धिः..........."** पद्य द्वारा मूर्तिपूजा पर आक्षेप किया है। परन्तु उस पद्य में (नं॰) पर ध्यान नहीं दिया। भावार्थ, प्रकृति पूजा का विरोध में नहीं हैं, किन्तु–विशिष्ट तत्वों की उपासना का विधिपूर्वक आचार न करने पर है। सनातनधर्मी वैदिक रुद्र की **"त्र्यम्बक............."** मन्त्र के आधार पर प्रकृति में वेद की उपासना करते हैं। गौभिलगृह्यसूत्र में जो अष्ट का प्रकरण है, वह नैमेत्तिक है। **...........अश्वालंगभगवालंभ...........** कलि काल में वर्जित है। इस कारण नहीं करते। गोमेद्य में गो शब्द इन्द्रियपरक है। गौ नाम कोष में इन्द्रियों का है। इसमें विधिवाक्य समाज ने पेश नहीं किया हैं। जिनमें नरमांस तक के खाने का आदेश हो वह भी गौ रक्षक होने का दावा करे। **"किमाश्चर्य मतः परम्"**। कौशल्या ने मृत घोड़े के साथ कैसे गमन किया ? क्योंकि– **"क्रियाणैर्शिसारैनं. ...."** इस पद्य से उसका काटना सिद्ध है। मरे हुए घोड़े से गमन करना असम्भव है। भविष्य पुराण में जो लिखा है। वहां सुरा का अर्थ शराब नहीं है। देखिये– **"सुरैरादीयतइतिसुरा.............."** इसी निर्वर्णन से **"अमृत"** को सुरा कहते हैं। यजुर्वेद के मन्त्र में बकरे का नाम तक नहीं है। **"अनुत्वामंच"** देखिए– हमने इन सब बातों का उत्तर लिख दिया है। इतिहास सर्वांश (सभी अंशों) में प्रमाण नहीं होती है। बुरी और भली सभी बातें इतिहास में रहती हैं। उनमें राम का आचरण करना, और रावण का न करना बुद्धिमानों को उचित है। आपने ऐसा कोई आक्षेप नहीं किया, जो देश के तरीके पर वेद अथवा पुराण कहता है, किसी ने आचरण किया हो। उसका सब पालन करें, यह नियम सब पर लागू नहीं है। सनातनधर्म में मांस खाना धर्म नहीं माना जाता है। और न शराब पीना, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि –**"निवृत्तिलुमहाफला..........."** अध्याय ५ श्लोक ५६ में ऐसा लिखा है। जब यह बातें लाजमी नहीं है तो उनके आचरण का न करना भी पाप नहीं है।

हस्ताक्षर–

"अखिलानन्द"

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार–

श्रीमद्भागवत की लीला ज्वालाप्रसाद जी के अनुवाद से खुल जाती है। **"जुहुयात्"** विधिवाक्य नहीं है तो और क्या है ? **"गौ"** नाम इन्द्रिय का है। यह कैसी लंगड़ी बात कही ? देखिये– बीसवें सूत्र में स्पष्ट पशु शब्द मौजूद है। आपको अश्वमेध की विधि का भी पता नहीं। घोड़ा मरने के पीछे मरे घोड़े का लिंग रानी स्वयं खींचकर अपनी योनी में डालती है। सुरा का अर्थ आपने **"अमृत"** खूब किया। अगला प्रकरण देखिए, वहीं पर आगे लिखा है कि–सुरापान से बेहोश स्त्रियों ने साम्ब को देखा और उनके जंघन चू पड़े। आपने न पुस्तक देखी है और न ही पढ़ी है। शास्त्रार्थ करने आ गए। पर आप यह ध्यान रक्खें कि इस प्रकार की मनमानी स्वरचित मनघडन्त बातों से जनता को धोखे में नहीं डाल सकते। ....श्रोताओं में सन्नाटे का वातावरण........ मैंने मन्त्र में बकरे का नाम नहीं कहा, मन्त्र भाष्य में कहा था, सो वहां साफ मौजूद है। क्यों भाईयों ! आपको याद होगा कि कल के शास्त्रार्थ में तो पुराण वेदों से भी पहिले इनके पण्डित जी ने कहे थे, परन्तु आज वे त्वारीख (इतिहास) में बदल गये। परन्तु मैं तो इतिहास में से इन्हीं के माननीय लोगों का ही उदाहरण दे रहा हूँ। आर्यसमाजी किसी मूर्ति की पूजा नहीं करते। मैं उस्तरे को दस जूते मारता हूँ। आप शिवलिंग को मार दें तो पता लग जाएगा। बार–बार उस्तरे की पूजा स्वामी दयानन्द ने की है ऐसा आप कह देते हैं। अब और लीजिए पुराण लीला पांच करोड़ गौवों का मांस–**"ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड अध्याय १११ के श्लोक १०५"** में साफ लिखा है जहां रुक्मिणी के विवाह का जिक्र है, वहां कहा है कि– **"५ लाख गौवों का वध किया गया"**, तथा **"जो देह को आत्मा न समझे वह गधा है"**। यह भी क्या दार्शनिक

ऊट-पटांग बातें कहकर अपनी विजय हासिल करना चाहते हो ? परन्तु सब जनता जान चुकी है कि आज शास्त्रार्थ के चौथे दिन आर्यसमाज ने सनातनधर्म का चौथा मना ही दिया।........................जनता में हँसी..........................।

सभापति –

मेरी प्रार्थना है कि यह श्री पण्डित अखिलानन्द जी महाराज की इस आज के शास्त्रार्थ में बोलने की अन्तिम बारी है। इसके बाद शास्त्रार्थ समाप्त ही है। इसलिए जैसे आरम्भ से शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक ढंग से चला आ रहा था, उसी प्रकार इसका समापन भी हो। आशा है दोनों ही शास्त्रार्थकर्त्ता मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देगें।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

समाजियों ने जितने सनातनधर्म पर प्रश्न किए थे। उन सबका यथाक्रम मैंने उत्तर दे दिया। अब केवल ग्रंथ पढ़नें के लिए एक मिनट का समय श्री प्रधान जी से मांगता हूँ जिससे समाजियों की पूर्ण तसल्ली हो जावें और जनता भी इनकी पोल को भलीभांति जान जावें।

सभापति–

समय दिया जाता है। आप पढ़कर सुना सकते हैं।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

सुनिये पहिले संस्करण का ३०३ पृष्ठ का लेख। सुरा के बारे में – "सुरापरिवाद्वि जो.........." यह मनु वाक्य देखिए, ब्राह्मणों पर आक्षेप जो आपने किया वह लेशमात्र भी नहीं घट सकता है। अब का लेख आपका कचूमर निकालने वाला है। अबकी बार जैसा घोर पराजय आपका हुआ यह जनता जान चुकी है। ....जनता में हँसी...........।

सभापति–

पण्डित जी महाराज समय समाप्त.................,

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

अच्छा–अच्छा ठीक है। मैं केवल एक मिनट..........,

सभापति–

बिल्कुल नहीं, एक बार मौका दिया जा चुका–बस !
ओ३म् शान्ती ! शान्ती !! शान्ती !!!
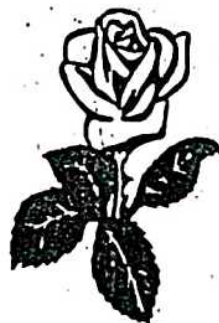
मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक २२ में **"पशु—पक्षियों का ब्राह्मणों द्वारा मारना लिखा है"**। हमने जो इतिहास दिखाया है वह आपके पूज्य गुरूओं का ही दिखाया है, रावण आदि का नहीं। **"गवां लक्षछेदनरय........"** ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्णार्जुन खण्ड, अध्याय १०५, इस मूल में तो सन्देह न था, बल्कि अर्थ में सन्देह था, सो पढ़कर सुना दिया कल्पसूत्रों के वाक्य, विधिवाक्य नहीं हैं। इसमें आपने फिर भूल की। आपको अपना सिद्धान्त भी ज्ञात नहीं। स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि गौभिल गृह्यसूत्र को हम नहीं मानते। या महिधर के भाष्य को नहीं मानते। मद्य पीने से उनकी बुरी हालत होना साफ बताता है कि यह अमृत नहीं बल्कि शराब है। आप पांच करोड़ गौवों का मांस खा गये, सोलह हजार रानियों का चूआ पी गए। उस पर शराब भी पी गए। मां का अंश आपने खूब कहा। आप तालव्य (श) तथा दन्तीय (स) में भी भेद नहीं मालूम। मरे पशु के साथ भोग आपके यहां लिखा है। और इसेलिए लिखा कि घोड़ा अपनी मर्जी से कहीं लिंग प्रवेश न कर दे। किन्तु रानी अपनी इच्छानुसार प्रवेश कर सके। इसीलिए मारा गया। पृष्ठ ३०३ पर कहीं भी नर मांस नहीं लिखा, शौक है कि आपके ग्रन्थ तो होली में भी पढ़ने लायक नहीं हैं। क्योंकि गौ मांस तो वहां भी नहीं खाया जाता, कवियों का दोष सिद्धान्तों पर नहीं आता यह मांसपार्टी का उत्तर है।

हस्ताक्षर—

"बुद्धदेव"

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न —

न खन्जर उठेगा, न शमशीर इनसे। ये बाजू मेरे आजमाये हुए हैं।।

.... अबकी बार वैश्या प्रसंग को छोड़कर बाकी कुछ नहीं कहा गया। जो कुछ हमने दूसरे नम्बर के पर्चे पर लिखा था उस पर कुछ नहीं कहा गया। कृष्ण जी ने अमृतपान किया, मद्यपान नहीं। गुरुकुलों में धर्मपाल ने जो लकारोपासना सिखाई उस पर भी तो ध्यान दीजिए। **"यज्ञार्थ पश्वः.........."** पद्य का उत्तर **"कुर्याद्घृतपशुं.........."** इस पद्य के साथ में दिया जा चुका है। मरे घोड़े का लिंग कभी आपने अपने हाथ में लेकर देखा? देखिए खड़ा होता है कि नहीं। **"नियोजित करे"** यह मूल पाठ का अर्थ नहीं। मांस शब्द में (स) और (श) का भेद **"श॰ सर्यो:"** पद्य पढ़ने पर मालूम होगा। बारहकड़ी भौंकने वाले गुरुकुलों के कुली इन बातों को क्या समझें? ....जनता में रोष का वातावरण.......... ब्राह्मण मांस नहीं खाते। यह बात जो आपने अपनी ओर से जोड़ दी है, आगे—पीछे के प्रकरण के विरुद्ध है। गृह्य और कल्पसूत्र, यज्ञ की प्रक्रिया बताते हैं, वे विधिवाक्य नहीं हैं। तुम कृष्ण को न मानों। इससे क्या कृष्ण अमान्य हो सकते हैं? उल्लू को अगर न दीखे तो क्या सूर्य उदय नहीं होता? दयानन्द ने छुरे को नमस्ते तक लिखा है देखिए—**"शिवोनामाशि........."** मन्त्र? हमने सत्यार्थप्रकाश का ३०३ पृष्ठ बताया। उसे क्यों नहीं पढ़ा? नर मांस का पाठ भी पूरा नहीं पढ़ा। अबकी बार पुरानी सब बातें भूल गये। एक का भी उत्तर न कहा गया। यह शुद्धि का बहाना करके पेट भरना, हिन्दू—मुसलमानों में दंगा कराना, विधवा बेचकर पेट भरना, फन्ड गायब करना, गुरुकुल से गधे निकाल कर, क्या पण्डिताई को धोखा देना नहीं है? ....शास्त्रार्थ के बीच में..............चारों ओर से हो—हल्ला मच गया, मारो कमीने को............. आदि—आदि गाली वाक्यों से अखिलानन्द जी का स्वागत हुआ.............. बड़ी मुश्किल से शान्ति स्थापित् की गई।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी महाराज! आप जुबान संभाल कर बोलिए। नहीं तो धज्जियां उड़ा दी जावेंगी! आपको जो भी कहना है उसे सिद्धान्त पर तथा सभ्यता व शिष्टाचार के अन्तर्गत ही कहिए, ये इस प्रकार की

शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि

पण्डित माधवाचार्य जी को एक बार एक सनातनधर्मी कहलाने वाले ग्रामीण संन्यासी ने ग्राम अरनियाँ जिला बुलन्दशहर (ठाकुर अमर सिंह जी का जन्म स्थान) में बुलाया। पण्डित माधवाचार्य जी ने दिल्ली से आते ही पूछा कि–ठाकुर अमर सिंह जी यहाँ हैं या नहीं ? उनको बताया गया कि–हैं तो जरूर परन्तु न होने के बराबर ही हैं। वह सख्त बीमार हैं। उठ बैठ भी नहीं सकते हैं, बहुत कमजोर हैं। दूसरे दिन श्री पण्डित माधवाचार्य जी का भाषण हुआ उसमें उन्होंने आर्यसमाज की बहुत निन्दा की। आर्य समाज को उन्होंने हिरणाकुश और रावण का वंश बतलाया। तथा ग्राम अरनियाँ को उन्होंने लंका कहा और अपने आपको लंका दहन करने वाला अर्थात् लंका को जलाने वाला महावीर (हनुमान) बताया। साथ ही शास्त्रार्थ के लिए चैलेन्ज कर दिया और कहा कि जिस किसी भी आर्यसमाजी में साहस हो वह कल या परसों तक शास्त्रार्थ कर ले– **"सनातनधर्म सच्चा वेदानुकूल धर्म है और आर्यसमाज वेद विरुद्ध मत है"**। उस समय आर्यसमाज अरनियाँ के मन्त्री **"श्री रामचन्द्र जी वर्मा"** (स्वर्णकार) थे । वह बहुत चिन्ता करते हुए चारपाई पर पड़े हुए श्री ठाकुर अमरसिंह जी के पास आये और कहने लगे कि–

श्री रामचन्द्र जी वर्मा –

माधवाचार्य जी ने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज दे दिया है, और कहा है कि–**"सनातन धर्म सर्वथा वेदानुकूल धर्म है और आर्यसमाज वेद विरुद्ध मत है"** कोई भी आर्यसमाजी दो दिन के अन्दर हमारे साथ शास्त्रार्थ कर ले, अब आप ही बताइए कि शास्त्रार्थ करने के लिए किसको बुलायें ?

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

मन्त्री जी ! शास्त्रार्थ करने वाला इतनी जल्दी और इतनी आसानी से कोई नहीं मिल सकता।

श्री रामचन्द्र जी वर्मा –

आप दिल्ली में से किसी का नाम बतलायें, तो मैं जाकर दिल्ली से किसी शास्त्रार्थकर्त्ता को बुलाकर ले आऊँ।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

दिल्ली में कोई शास्त्रार्थकर्त्ता नही है। अगर अन्यत्र कहीं हैं भी तो कोई जरूरी नही है कि वह आपको तुरन्त उपलब्ध हो ही जावें।

श्री रामचन्द्र जी वर्मा –

................बहुत ही दुखी हृदय के साथ बोले, ठाकुर साहब इस स्थिति में तो हम किसी को मुंह दिखलाने लायक भी नहीं रहेगें।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

मन्त्री जी ! आप दुखी न हों, तथा ना ही कोई किसी भी प्रकार की चिन्ता करो, आप किसी प्रकार मुझको उनके सामने ले चलिये, वह मुझको इस अवस्था में देखकर भी शास्त्रार्थ का चैलेन्ज देना भूल जायेंगे।

श्री रामचन्द्र जी वर्मा–

आप तो बिस्तर से उठने की स्थिति में भी नहीं हैं, इस स्थिति में आपको वहां ले जाने का पाप हम नहीं करेगें।

साठवां शास्त्रार्थ (टकराव) —

स्थान : "अरनियाँ" जिला—बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)
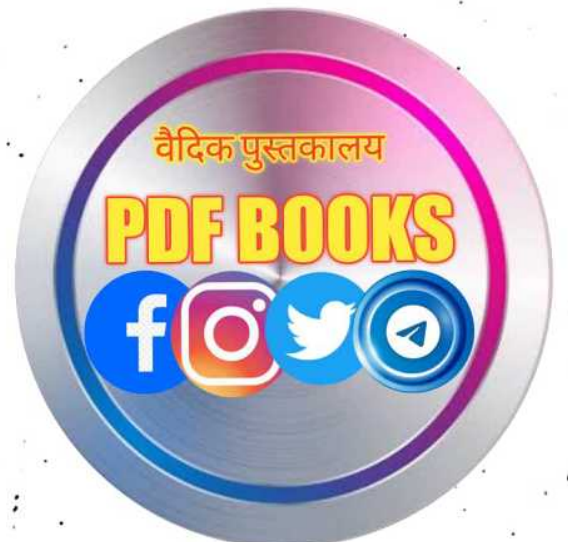
दिनांक : १८ व १६ मई सन् १६५७ ई०
विषय : सनातनधर्म वेदानुकूल है या आर्यसमाज ?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी
शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्म की ओर से : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री
आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामचन्द्र जी वर्मा (स्वर्णकार)

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

पण्डित जी महाराज ! अन्य कोई शंका भी नहीं करेगा, केवल मैं ही शंका करूंगा।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

आप सबके ठेकेदार हैं ?

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

हाँ मैं ! सबका ठेकेदार हूँ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री–

क्या ये जो सब आदमी बैठे हैं सभी आपके ही हैं ?

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

जी हाँ ! ये सब मेरे ही आदमी हैं।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

............श्रोताओं की ओर इशारा करते हुए............अरे भाई ! क्या कोई और शंका नहीं करेगा ? आप इतने व्यक्ति बैठे हैं आप भी तो शंका करो।

श्रोतागण –

............चारो तरफ से एक ही आवाज आई............ हम सबकी तरफ से केवल गुरुजी (ठाकुर अमरसिंह जी) ही शंका करेंगे उनके अलावा अन्य कोई भी शंका नहीं करेगा।

नोट –

सारे अरनियाँ ग्राम में श्री ठाकुर अमरसिंह जी को नाम लेकर कोई नहीं पुकारता, यहाँ तक कि ठाकुर साहब तक भी कोई नहीं कहता, केवल **"गुरुजी"** के नाम से ही जाने जाते हैं। कोई–कोई जो बहुत पुराने व्यक्ति हैं वे भले ही **"ठाकुर जी"** के नाम से पुकार लेते हैं।

"लेखक"

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

पण्डित जी की ओर ईशारा करते हुए .... भाइयो सुनो !

मैं जानता हूँ बुलबुल जो हैं तेरी हकीकत।
एक मुश्त उस्त्ख्वां पर दो पर लगे हुए हैं।।

पण्डित जी महाराज ! आपने यह कहा था कि–**"सनातन धर्म सर्वथा वेदानुकूल धर्म हैं और आर्य समाज सर्वथा वेद विरुद्ध मत है"**। सो मुझको समय दीजिए तो मैं वेदों में सौ बार **"आर्य"** नाम दिखाऊँ। आप वेदों में कहीं **"सनातन धर्म"** नाम दिखाइए ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

सज्जन पुरुषों ! हमें आपस में लड़ना नहीं चाहिए बल्कि मेल मिलाप से ही रहना चाहिए। ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जिससे आपस में बैर या वैमनस्व पैदा हो। ठाकुर साहब ने वेद में से सनातन धर्म शब्द दिखलाने की बात कही सो आप वेद मन्त्र सुनिए–**"सनातन मेन वाहु.................पुनर्णत्:"** ....बीच में........... ।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

अच्छा ठीक है, आप केवल यह बतलाइये कि उनका व्याख्यान अब आगे किस समय आरम्भ होगा?

श्री रामचन्द्र जी वर्मा –

अब तो दोपहर के बाद तीन बजे से ही आरम्भ होगा।

नोट –

मन्त्री श्री रामचन्द्र जी तो इतना कहकर बहुत ही दुखी मन से वापिस चले गये, परन्तु अब ठाकुर जी को चैन कहाँ ? ठाकुर जी के पास उस समय चार विद्यार्थी विद्यमान थे, उनको ठाकुर जी ने कहा कि तुम लोग पुस्तकों के अमुक–अमुक दो बक्से पौराणिकों के पण्डाल के पास कहीं छुपा करके सुरक्षित स्थान पर रख आओ, और साथ में एक आराम कुर्सी गद्दे सहित वहीं गुप्त रूप से रख आओ। विद्यार्थियों ने वैसा ही तत्काल कर दिया और आकर बता दिया कि –हम यह सब कर आये, अब क्या आदेश है ?

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

अब मुझको एक हलकी चारपाई पर लिटाकर आप लोग चारपाई सहित मुझको वहाँ पौराणिकों के पण्डाल के पास ले चलो।

नोट–

विद्यार्थियों ने वैसा ही किया। चारपाई पर ठाकुर जी को जाते देखा तो सारे गाँव में यह खबर बिजली की भाँति फैल गयी, और सारा ग्राम वहाँ इकट्ठा हो गया, चारपाई–पण्डाल से थोड़ी दूर छोड़कर श्री ठाकुर साहब को आराम कुर्सी पर बिठाकर पौराणिको के पण्ड़ाल में विद्यार्थियों तथा ग्रामवासियों ने यथास्थान पहुंचा दिया। उनको देखते ही पण्डित माधवाचार्य जी का भाषण ठाकुर ज़ी को देखते ही दूसरे रंग में होने लगा।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री–

भाइयों ! सनातन धर्म और आर्य समाज दोनों सहोदर भाई हैं, दोनों एक छाती पर लगी हुई दो भुजायें हैं, दोनों एक माथे में लगी हुई दो आँखे हैं। सनातनधर्म और आर्यसमाज एक कैंची के दो फलके हैं। दोनों फलकों को जोड़ने वाली एक कील होती है सो वेद की कील ने दोनों को जोड़ा हुआ है आदि–आदि।

नोट –

श्री ठाकुर अमरसिंह जी आर्यपथिक और श्री कुँवर सुखलाल जी आर्यमुसाफिर की भी बहुत प्रशंसा की, क्योंकि दोनों ही वहाँ उपस्थित थे जिनको पण्डित माधवाचार्य जी देख भी चुके थे। श्री पण्डित माधवाचार्य जी का व्याख्यान समाप्त होने पर आराम कुर्सी पर लेटे हुए ही श्री ठाकुर साहब ने कहा कि–

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सज्जनों श्री पण्डित माधवाचार्य जी ने कल आर्यसमाजियों को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज किया था, सो मैं शास्त्रार्थ करने के लिए आ गया हूँ। इसलिए अब विधिवत् शास्त्रार्थ हो जाना चाहिए।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

इस सभा के प्रवन्धकर्त्ताओं ने यह कह दिया है कि यहाँ शास्त्रार्थ नहीं होगा। हमको भी उन्होंने शास्त्रार्थ से रोक दिया है। इसलिए शास्त्रार्थ तो नहीं होगा। हाँ ! शंका कोई करना चाहे तो उनको पर्ची दे दी जावेगी। उस पर्ची पर अपनी–अपनी शंका लिख दे, हम समाधान कर देंगे।

श्री पत्नियों के आगे नंगे खड़े हो गये" तब उन्होंने शिवजी को शाप दिया कि –"तुम्हारा लिंग पृथ्वी पर गिर जावे"। सो गिर गया। वही यह गोल–मटोल सिर वाला "शिवजी" है, जिसे आप अक्सर शिवमन्दिरों में देखते हैं।.........................बीच में.......................।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

ठाकुर साहब ! वह लिंग उपस्थेन्द्रिय नहीं वल्कि झण्डा सदृश एक चिन्ह विशेष था।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

वहुत शोर सुनते थे, पहलू में दिल का।
जो चीरा तो एक कतरा खूँ न निकला।।

सज्जनों ! ये मेरे पास शिवपुराण धर्मसंहिता ग्रन्थ है, देखिए इसमें क्या लिखा है ? ....पुस्तक पढ़ते हुए.............. " **"ऋषियों ने कहा था कि इस (शिवजी) ने धर्म विरुद्ध काम किया है, इसलिए इसका यह लिंग काट दिया जावे, यहाँ लिंग का नाम "शिश्न" कहा है "सवृषणाम्" अण्डकोशों सहित काटने को कहा है।**

ब्रह्माण्ड में कोई सनातनधर्मी कहलाने वाला कोई भी पण्डित नहीं जन्मा है जो शिवलिंग को उपस्थेन्द्रिय के सिवाय कुछ और सिद्ध कर सके। ....श्रोताओं में चारों तरफ हर्ष का वातावरण व तालियों की गड़गडाहट............. ।

नोट–

इसी बीच ग्राम **"दशहरी"** के श्री ठाकुर भौमसिंह जी अपने आपको सनातनधर्मी कहा करते थे, वह सभा में हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। और बार–बार चिल्ला कर कहने लगे कि–**"भगवान के वास्ते इस प्रसंग को बन्द कर दीजिए"**। तभी तुरन्त माधवाचार्य जी व उनकी शिष्यमण्डली ने रामधुन आंरम्भ कर दी–श्री राम जयराम जय जय राम। श्री राम जयराम जय जय राम ....।

"बस खेल खतम्, पैसा हज़म"

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

पण्डित जी महाराज! यहाँ पर **"सनातन"** शब्द किसी धर्म का वाचक नहीं है। सनातन नाम यहाँ जीवात्मा का है **"पुनर्णवः"** कह कर जीव को यहाँ बार–बार जन्म लेकर, बार–बार नया सा होने वाला कहा गया है। **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** इस मन्त्र में आर्य शब्द गुण धर्म बताता है। इसमें सारे विश्व को **"आर्य"** बनाने की बात है। आपके अमरकोश में **"महाकुलकुलीनार्य श्रेष्ठ सज्जनसाधवः"** कह कर **"आर्य"** को उत्तम कुल, श्रेष्ठ, सज्जन, साधु, कहा है। आर्य बनाने का अर्थ धर्मात्मा बनाना है। परन्तु पण्डित जी महाराज महाभारत में **"सनातनधर्म"** का नाम **"व्यभिचार"** है देखिये–

उद्दालक की पत्नी को कोई व्यक्ति एकान्त में व्यभिचार के लिए पकड़ कर ले जाने लगा तो उसके बेटे स्वेतकेतु ने ले जाने वाले पर क्रोध किया तो उद्दालक ने कहा– **"मा तात कोपं कार्षोत्वं एप धर्म सनातनः"** बेटा क्रोध मत करो यह तो सनातनधर्म है। ....जनता में बेहद हँसी............ आर्य बनना श्रेष्ठ बनना है। आर्य बनाने अर्थात् धर्मात्मा बनाने का उपदेश वेद में हैं। सनातनधर्म, व्यभिचार का नाम है। वेद में इसका नामोनिशान तक भी नहीं है।

नोट–

श्री पण्डित माधवाचार्य शास्त्री जी ने यह कह कर कि–**"समय समाप्त हो गया है"** वाद बन्द कर दिया और घोषणा कर दी कि–कल को मैं अपने व्याख्यान में यह बताऊँगा कि– **"शिवलिंग"** ही **"ओंकार"** है। इस पर श्री ठाकुर अमरसिंह जी ने श्रोताओं से कहा कि –

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी–

भाइयों! आपने पण्डित जी की बात को सुना। अब मेरी भी सुनो! पण्डित जी तो **"शिवलिंग"** को **"ओंकार"** सिद्ध करेंगे। परन्तु मैं आप लोगों को बताऊँगा कि शिवलिंग–ओंकार नहीं बल्कि व्यक्ति विशेष की **"मुत्रेन्द्रिय"** और **"भोगेन्द्रिय"** है। आप लोग अधिक से अधिक संख्या में आवें! सभा समाप्त !!

दूसरा दिन

नोट –

दूसरे दिन भी श्री ठाकुर साहब जी बिमारी अवस्था में ही पूर्व दिन की भाँति चारपाई पर लेटे हुए ही सभा मण्डप में पहुँचे। रात्रि को उत्सव के प्रबन्धकर्त्ताओं ने आपस में माधवाचार्य जी के पास जाकर यह कहा कि–कल को या तो पण्डित जी आपका भाषण न हो और यदि हो तो किसी ईश्वरभक्ति आदि विषय पर हो। नहीं तो ठाकुर जी आयेंगे और सब किए कराए को चौपट कर देंगे। सब मामला गड़बड़ हो जाएगा। इस पर भी पण्डित माधवाचार्य जी ने कहा कि–आप लोग नहीं समझते अगर इस विषय को लेकर मेरा व्याख्यान न हुआ तो मेरा घोर अपमान है। मैं सारा व्याख्यान ईश्वर भक्ति पर करके अन्त में केवल यह कहूँगा कि **"शिवलिंग ही ओंकार का प्रतीक है"**। अगले दिन इसी प्रकार व्याख्यान हुआ, व्याख्यान के अन्त में यही वाक्य श्री शास्त्री जी ने कहा तभी तुरन्त श्री ठाकुर जी ने गर्ज कर कहा–पण्डित जी सुनिए! ध्यान से सुनो!!

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी –

सज्जनों! पण्डित जी का व्याख्यान बड़े ही शान्तिपूर्वक ढंग से हो रहा था हमें उस पर कोई आपत्ति नहीं थी। अन्त के वाक्य पर हमें अवश्य कुछ कहना है। देखिए शिवपुराण में लिखा है कि–**"शिवजी, ऋषियों**

शास्त्रार्थ से पहले

दिनांक ६-४-२६ प्रातःकाल साढ़े ६ बजे से साढ़े ११ बजे तक भिवानी की सनातनधर्म पाठशाला में, सनातनधर्म व आर्यसमाज के मध्य एक बड़ा ही मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज की ओर से मूर्ति पूजा, वर्ण व्यवस्था, तथा मृतकश्राद्ध इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ करने को ललकारा गया था, बड़ी कठिनता से पिण्ड छुड़ाने के लिए अपनी स्वाभाविक टाल-मटोल के बाद सनातनधर्मी भाई किसी तरह शास्त्रार्थ के लिए तैयार हुए और कहा कि हम केवल एक विषय पर ही शास्त्रार्थ करेंगे, आर्यसमाज ने कहा, चलो ! एक ही सही। शास्त्रार्थ में संस्कृत का लेख संस्कृत में सुनाया जाता था, फिर उसका भाषा (हिन्दी) में अनुवाद कर दिया जाता था, आरम्भ में आर्यसमाज की ओर से, प्रतिलिपि पत्र सभापति को देते हुए कहा गया कि, वे उस पर हस्ताक्षर कर दें, इस पर सभापति जी ने कहा कि मैं शास्त्रार्थ के अन्त में मूल का प्रतिलिपि से मिलान करके ही हस्ताक्षर करूँगा। मध्य में सनातनधर्मियों के ओर से शोर मचाया गया कि हमारे पत्र पर हमारे हस्ताक्षर हैं, आर्यसमाज के पत्र पर क्यों नहीं ? इस पर आर्य समाज की ओर से उत्तर दिया गया कि-जब सभापति जी हमारे पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे, उस समय हम भी कर देंगे। इस कोलाहल में स्वभावानुसार सनातनधर्मी पण्डित कालूराम ने खड़े होकर आर्यसमाज के लिए अपशब्द कहे। जिसके कारण फ़िसाद बहुत ज्यादा बढ़ जाने के कारण सभापति **"पण्डित श्रीदत्त जी आनरैरी मजिस्ट्रेट"** जी को सनातनधर्म सभा की ओर से क्षमा मांगनी पड़ी।

निवेदक –

"पण्डित मंगलदत्त आर्य्योपदेशक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

(१) यजुर्वेद अध्याय ३१ में कहा गया है–**"ब्राह्मणोस्य मुखम्..........."** इस छोटे से वाक्य में वेद ने इतनी बातें भर दी हैं। (क) जिस प्रकार मुख शरीर में सबसे ऊंचा है, इसी प्रकार ब्राह्मण समाज में सबसे ऊँचा है। (ख) जिस प्रकार मुख शीतोष्णादि द्वन्दों का संहारने वाला है, इसी प्रकार ब्राह्मण को तपस्वी होना चाहिए। (ग) जिस प्रकार मुख संपूर्ण ज्ञान का भंडार है, इसी प्रकार ब्राह्मण भी विद्या का भंडार होना चाहिए। (घ) जिस प्रकार मुख खाया हुआ भोजन पेट को दे देता है, इसी प्रकार ब्राह्मण को भी त्यागी होना चाहिए। (ङ) जिस प्रकार मुख का काम बोलना है, इस ही प्रकार ब्राह्मण का काम उपदेश देना है। इस प्रकार वेद भगवान ने इस छोटे से वाक्य में, ब्राह्मण के गुण कर्म तथा समाज में उसका पद क्या है ? यह सब बातें स्पष्ट कर दी हैं, यही वेद की गंभीरता है।

(२) सनातनधर्मियों की ओर से इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि **"ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से पैदा हुआ"** इसमें निम्न दोष हैं–(क) इस अर्थ से वेद मन्त्र केवल बाजीगर के तमाशे की कहानी रह जाती है, कि जैसे बाजीगर मुख से लोहे के गोले निकालता है ऐसे ही विराट पुरुष ने मुख से ब्राह्मण उगल दिए, इस उपहासनीय कथा से संसार को क्या लाभ हो सकता है ? (ख) यदि ब्राह्मण शब्द में अपत्य–प्रत्यय माना जावे और उसका अर्थ गौण न लेकर **"ब्राह्मणः अपत्यम्"** अर्थात् ब्राह्मण का बेटा ऐसा लिया जाये तो यह मानना पड़ेगा कि विराट् पुरुष के मुख में किसी ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने गर्भाधान किया। यह बातें महाराज जी ! न तो कोई सनातनधर्मी मानता

इकसठवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "भिवानी" सनातनधर्म पाठशाला (हरियाणा)

दिनांक : ६ अप्रैल सन् १६२६ ई॰ प्रातःकाल साढ़े नौ बजे से साढ़े ग्यारह बजे तक,

विषय : वर्णव्यवस्था ! गुण, कर्म, स्वभाव से है या जन्म से है ?

सभापति : श्री पण्डित श्रीदत्त जी, आनरेरी मजिस्ट्रेट भिवानी (हरियाणा)

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न

सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

शास्त्रार्थ के लेखक : श्री पण्डित मंगलदत्त जी आर्योपदेशक (स्नातक,वेद विद्यालय काशी)

नोट—

इस शास्त्रार्थ का संस्मरण आठ अप्रैल सन् १६२६ ई॰ का भिवानी से छपा हुआ श्री पण्डित "फूल चन्द जी शर्मा" (निडर) जी के सौजन्य से (मूल कापी के रूप में) प्राप्त हुआ, उनके हम हृदय से आभारी हैं।

"सम्पादक"

वाले स्वयं वेश्या पुत्र हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि– "वशिष्ठ, आदित्य ऋषियों में से थे", फिर वे वेश्या पुत्र कैसे हो सकते हैं ? वेद में प्रार्थना की गई है कि–"**हमें ऐसा ब्राह्मण मिले जिसके पिता व दादा भी ब्राह्मण हों**"। आर्यसमाज के वेद भाष्य में लिखा है कि, परमात्मा की मूर्खता से शूद्र उत्पन्न होता है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार –

(१) जाति भेद ईश्वर कृत इतने अंश में है कि ईश्वर ने ही चार वर्णो के बनाने का उपदेश किया है,परन्तु इतने अंश में मनुष्य कृत है कि कोन मनुष्य किस वर्ण के योग्य है। (यह बात सत्यार्थ प्रकाश के उस ही स्थल से पढ़कर सुना दी गई। जिस पाठ को सनातनधर्मी पण्डित पढ़ते थे, वे चालाकी से इस पंक्ति को नहीं पढ़ते थे)।

(२) मनुस्मृति में "**शूद्रत्व**" शब्द है–"**तस्य भावस्त्वतलौ**" इस सूत्र के अनुसार "**त्व**" प्रत्यय का अर्थ "**शूद्र जैसा**" कभी नहीं हो सकता।

(३) वशिष्ठ को "**वेश्यापुत्र**" हमने नहीं कहा, बल्कि भविष्य पुराण में लिखा होने के कारण आपके मतानुसार वेद व्यास जी ने कहा है। इसलिए पण्डित अखिलानन्द जी की गाली कथन के अनुसार वेद व्यास जी भी वेश्यापुत्र हुए ....जनता में हंसी.......... हमारी समझ में यदि कोई वेश्यापुत्र ऋषि बने तो वेश्यापुत्र होने के कारण उसके गौरव को कोई बट्टा नहीं लगता, अपितु उसका गौरव और भी बढ़ जाता है। क्योंकि यदि कोई करोड़पति का पुत्र करोड़पति बने तो उसकी अपेक्षा उसका गौरव और भी अधिक होगा कि दिवालिये का पुत्र होकर करोड़पति बने। पौराणिक पण्डित को इतना भी पता नहीं है कि, बाल्मीकी रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ५७ के कथनानुसार वशिष्ठ एक राजा के शाप से मर कर फिर वेश्या के गर्भ से दो देवता के वीर्य से उत्पन्न हुएं।

(४) हमें ऐसा ब्राह्मण मिले जिसके पिता व दादा ब्राह्मण हों, इस प्रार्थना से तो यह सिद्ध होता है कि ऐसे भी ब्राह्मण होते हैं जिनके पिता व दादा ब्राह्मण न हों। ....जनता में हंसी............।

नोट –

मूर्खता से शूद्र उत्पन्न होने के विषय में एक बड़ी ही मनोरंजक घटना हुई, वेदभाष्य सभापति जी के हाथ में दे दिया गया, और जब उन्होंने पढ़कर सुनाया तो वहाँ यह शब्द लिखे थे कि–"**ईश्वर की सृष्टि में मूर्खत्यादि गुणों से शूद्र पैदा होता है।**" इस पर ....जनता में तालियों की गड़गड़ाहट...........।

शास्त्रार्थ के अन्त में–

आर्यसमाज की ओर से पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार जी ने पण्डित अखिलानन्द जी को ललकार कर पूछा कि आप शेष विषयों पर भी शास्त्रार्थ करेंगे या नहीं ? जिसका उत्तर उन्होंने अपने स्वभावानुसार सनातनधर्म की जय के कोलाहल के साथ दिया। और उठ कर चले गये।

इस शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द जी की एक अभूतपूर्व विजय–

इस शास्त्रार्थ में एक मज़ेदार बात यह हुई कि, जब पौराणिक पण्डित जी से उर्वशी नामक वेश्या के गर्भ से वशिष्ठ पैदा हुए, प्रश्न किया गया तो उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा तो उन्होंने आर्यसमाज के भाष्यों की शरण लेकर कहने लगे कि–"**उर्वशी का अर्थ बिजली है**"। और यह अर्थ सायण भाष्य में लिखा है। ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्यों को सायण के नाम से उपस्थित करना इस बात को सूचित करता है कि–"**पौराणिक मण्डल को झख मारकर ऋषि दयानन्द की शरण लेनी पड़ती है**"। साथ ही इससे धूर्तता की भी खूब कलई खुलती है। सायण भाष्य में तो स्पष्ट ही वशिष्ठ का उर्वशी नाम की अप्सरा से उत्पन्न होना और मित्रा (तरूण) नामक दो देवताओं के वीर्य से उत्पन्न होना लिखा है। जिससे उसके "**वेश्या**" होने में कोई सन्देह नहीं रहता है। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ का आयोजन समाप्त हुआ।

है, और न उनके किसी पौराणिक गपोड़े में ही मिलती है। (ग) इससे पूर्व मन्त्र में, चार प्रश्न वाक्यों में चार प्रथमा विभक्ति हैं, उत्तर वाक्य में भी तीन प्रथमा है, सौ एक पञ्चमी सातों को कैसे बदल सकती है ? (घ) उपक्रम में – "कतिधा व्यकल्पयन्" ये शब्द पड़े हुए है, और मध्य में –"किं पादा उच्येते" अर्थात् कौन सी चीज पैर कहलाती है ये शब्द पड़े है उपसंहार में–"तथा लोकान् अकल्पयन्" शब्द पड़े हैं, जिससे सिद्ध होता है कि विराट पुरुष कोई शरीरधारी पुरुष विशेष नहीं, किन्तु केवल एक अलंकारिक कल्पना मात्र है। (ङ) यदि जो मुख से पैदा हुआ वह ब्राह्मण कहलाया, ऐसा मान लिया जाये तो केवल वह मनुष्य ब्राह्मण माना जावेगा जो विराट पुरुष से उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसके पीछे कोई मुख से उत्पन्न नहीं हुआ।

(३) यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र १५ में लिखा है–"धियाविप्रोऽजायत्" अर्थात् ब्राह्मण "धी" से पैदा हुआ। वेद के कोष निघण्टु में "धी" शब्द के दो अर्थ दिये हैं एक कर्म दूसरा बुद्धि। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण बुद्धि अथवा कर्म से पैदा होता है।

(४) जव ब्राह्मणत्व जैसा सर्वोत्तम पद बिना किसी प्रयत्न के प्राप्त हो तथा सहस्र दुराचार करने पर भी छीना न जा सके, दूसरी ओर अन्य लोग सैकड़ों प्रकार का तप करने पर भी उच्च पद न पा सकें। तो जाति में एक ओर हरामखोरी पैदा हो जाती है, और दूसरी ओर निराशा, ये दोनों ही आर्य जाति के सर्वनाश का कारण बन रही हैं।

(५) मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १६८ में लिखा है– **"कि जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता वह जीते जी अपने अनुयायियों सहित शूद्र हो जाता है"** और आगे अध्याय ७ श्लोक ४२ में लिखा है कि–**विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए"** मनुस्मृति का भाष्य करते हुए कुल्लुकभट्ट ने अपनी टीका में लिखा है कि–"विश्वामित्र इस ही जन्म में ब्राह्मण हुए न कि जन्मान्तर में"।

(६) भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व अध्याय १६ श्लोक ५८ में लिखा है कि–**"विश्वामित्र ने बड़ा तप किया, परन्तु ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त हुआ, फिर प्रतिपदा के उपवास करने से उसको उसकी देह से ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ"**। ब्राह्मपर्व में ही आगे अध्याय ४२ में लिखा है कि– **"व्यास जी झींवरी से, तथा व्यास के पिता पराशर चाण्डाली से, शुकदेव जी तोती से, कणाद उलूकी से, ऋषि शृंगी हिरणी से, मन्दपाल मल्लाही से, वशिष्ठ वेश्या से, माण्डव्य मेंढकी से, पैदा हुए"**। परन्तु अपने तप के बल से ब्राह्मण बन गए। ब्राह्मपर्व में ही अध्याय ४० श्लोक ३४ को देखिए, यथा–

तस्मान्नगोरश्व वत्कश्चिज्जाति भेदोऽस्ति देहिनाम्।
कार्य शक्ति निमित्तस्तु संकेतः कृत्रिमो भवेत् ।।

अर्थात्– मनुष्यों में गाय व घोड़े के समान जाति भेद नहीं है। कार्यशक्ति के निमित्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि संकेत "कृत्रिम" हैं।

(७) श्री मद्भागवतपुराण स्कन्द ५–४–१३ में लिखा है कि–**"राजा नाभि के सौ पुत्रों में से ८१ पुत्र कर्मों से शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गए"**।

(८) भविष्य पुराण प्रतिसर्ग, पर्व खण्ड ४, अध्याय २१, श्लोक १५ से १७, में लिखा है कि–**"सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि ने १०,००० मलेच्छ मिश्र देश से लाकर भारत में बसाये जिनमें से २००० वैश्य बने।**

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ पृष्ठ २४६ में लिखा है कि– **"जाति भेद ईश्वर कृत है"**। मनुस्मृति में कहा है कि–**"ब्राह्मण शूद्र नहीं होता है बल्कि शूद्र जैसा हो जाता है"**। वशिष्ठ मुनि को वेश्या पुत्र कहने

प्रकाशकीय

सज्जनों काफी समय से पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज मुझे कहते थे कि मेरे पास अपने ही पुस्तकालय में उर्दू में छपा हुआ एक जबलपुर का व एक मक्खनपुर का शास्त्रार्थ है, आप कुछ परिश्रम करें तो अवश्य मिल सकता है। मैंने एक–एक करके सारा पुस्तकालय ढूंढ़ मारा परन्तु वे प्राप्त नहीं हुए, ग्यारह दिन के बाद मक्खनपुर वाला शास्त्रार्थ तो मुझे मिल गया, जो श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर का मुसलमानों के साथ हुआ था। अब जबलपुर वाला शास्त्रार्थ रह गया। मैंने उसके लिए जबलपुर भी लिखा वहाँ से भी कोई उत्तर नहीं आया। मैं बड़ा चिन्तित था। एक दिन अचानक मैं आयुर्वेद के ग्रन्थ देख रहा था। तो एक पुस्तक मिली जिसमें जिल्द खोलते ही लिखा था, "सत्यार्थ विवेक निरीक्षणम्" जिसका प्रकाशन काल सन् १६०१ ई. था, मैंने मन में सोचा इस ग्रन्थ का आयुर्वेद से क्या सम्बन्ध ? तो उसे अन्दर से पन्ने पलट–पलट कर देखने लगा, तो बीच में एक ट्रेक्ट उसमें लगा हुआ मिला "आरा का अभूतपूर्व वृतान्त"। मैंने इस वृतान्त का बहुत बार जिक्र सुन रक्खा था, परन्तु अधिक प्राचीन होने के कारण मैंने सोच लिया था कि शायद ही वो वृतान्त मुझे कहीं मिले। उस दिन जो प्रसन्नता मुझे प्राप्त हुई, उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता जैसे मुझे एक अमूल्य खजाना प्राप्त हो गया हो। अब वही शास्त्रार्थ आपके समक्ष मौजूद है। जबलपुर का शास्त्रार्थ अभी नहीं मिला, हो सकता है वह भी कभी इसी तरह प्राप्त हो जाए। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज का पुस्तकालय अस्त–व्यस्त अवस्था में है। उसके कई कारण है। किसी योग्य शिष्य का उनके पास न होना ! आर्थिक समस्यायें !! आदि–आदि।

मेरा ये संकल्प है कि शास्त्रार्थ विषयक जो भी सामग्री प्राप्त होगी मैं उसे प्रकाशित करा कर जीवित कर दूँगा। इसलिए किसी भी सज्जन के पास कोई भी अप्रकाशित शास्त्रार्थसामग्री किसी भी भाषा में मिले, वह अवश्य भेजें, मैं उन्हीं के नाम से उनका आभार प्रकट करते हुए उसे प्रकाशित करूंगा। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज, व श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी, आदि विद्वानों के शास्त्रार्थ जिनका हमारे आर्यभाइयों को ज्ञान भी नहीं हैं, वो मुझे प्राप्त हो चुके हैं। उनको भी तीसरे भाग में प्रकाशित किया जावेगा। अब आप यह एक छोटा सा ऐतिहासिक वृतान्त पढ़िये और लाभ उठाइए !! मैंने मूल कापी को ज्यों का त्यों ही प्रकाशित किया है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि तारीख १२ जुलाई सन् १८६१ को श्री युत पण्डित तुलसीराम शर्मा, अध्यापक पाठशाला रियासत कुचेसर जिला बुलन्दशहर इस (आरा) नगर में पधारे और आकर १३,१४,१५, और १६ तारीख को अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये। किन्तु तारीख १६ के व्याख्यान में पण्डित हीरानन्द जी आदि कतिपय पौराणिक पण्डित भी कुछ शंकासमाधान वा प्रश्नोत्तर आदि की इच्छा से आये। परन्तु पण्डित तुलसीराम शर्मा के व्याख्यान को सुनकर, भीतर ही भीतर मन में ही कुछ समझकर स्वयं मौन साध कर बाबू रामानन्द जी को भाषा (हिन्दी) द्वारा कुछ कथन करने को सन्नद्ध (तैयार) किया। बाबू साहब कहने लगे कि देखो भाई– **"वेदों में बहुत मन्त्र मूर्ति पूजा प्रतिपादक हैं परन्तु हम उनको सभा में नहीं पढ़ते, क्योंकि हम संस्कृत नहीं जानते। और बिना इसके (संस्कृत) जाने उच्चारण अशुद्ध होगा। और अशुद्धोच्चारण में दोषापत्ति है"।** इत्यादि बहुत कुछ कहा। जबकि इसके पश्चात्त पण्डित तुलसी राम जी उत्तर देने को खड़े हुए तो पौराणिको

बासठवां शास्त्रार्थ –

स्थान : "आरा" (विहार)

दिनांक : १६ जौलाई, सन् १८६१ ई॰

विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदानुकूल है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी (शर्मा)

सनातनधर्म (वैष्णव सम्प्रदाय) की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित हीरानन्द जी शर्मा
२. श्री बाबू रामानन्द जी
३. श्री पण्डित देवकीनन्दन जी आदि

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री ब्रह्मानन्द जी

सनातनधर्म सभा के मन्त्री : श्री पण्डित भगवत्सहाय जी

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित हीरानन्द जी शर्मा –

।। श्री शो विजयतेतराम्।।

१८-७-६१

इदानीन्तत काले ये केचित्परमेश्वरादि मूर्त्ति पूजन वहिर्मुखा वस्तुतस्त्वनार्य्याष्किन्त्वार्य्य मानिनस्तेषां श्रुतिस्मृति विरुद्धां प्रज्ञां धिग्धिगिति मन्य महे यतो वेद विहितो धर्म्मस्तद्विरुद्धोऽधर्म्मस्तथा च वेदस्य पुरुषोत्तमस्य निश्वासतो जनिर्ज्ञायते तथा च पुरुषोत्तमस्य नाभिपङ् कणादव्रह्मणोऽपि जनिश्श्रूयते तेनैव परमेश्वरेण व्रह्मा वेदाँल्लब्धवान् तथा च श्रुतिः यो व्राह्मणं विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै इत्याद्याश्श्रुतय ईश्वरम्मूर्तिमत्त्वम्प्रतिपादयन्ति तथा च स्मृतिरपि प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सती स्मृति हृदीत्यादि तथान्या श्रुतिरेकोऽहं बहुस्यामित्यादि कथनेऽहङ्कारस्य निष्ठा मूर्तिमत्त्वे घटेत नत्वमूर्त्तिमत्त्वे तथा च स्मृतिरपि एक एव ही विश्वात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा दशधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्। तथान्या श्रुति–"ब्राह्मणोस्य मुखमासीतेत्यादि" कथने मुखस्य निष्ठा मूर्तिमत्वे घटेत नत्व मूर्त्तिमत्त्वे। तथा च "सहस्त्रशीर्षा पुरुषस्सहस्त्रा-क्षस्सहस्त्रपादित्याद्युपनिपद्वाक्यैर्मूर्त्तिमत्त्वमायाति"। अग्रे किम्बहुनालापेन वेदस्य षड़गंत्वात्षद् शास्त्राण्यापि वेदांगानि प्रसिद्धानि तेष्वापिमूर्त्तिपूजादिलक्षणं द्रष्टव्यमिति। अग्रे ये नास्तिका अनार्य्या आर्य्यमानिनोधूर्त्ताः परवञ्चनपरास्ते नियतदिवसे विद्वतसभायां स्ववलपौरुषम् दर्शयन्तु। एतदर्थमिदानीम्विज्ञापन पत्रं रचित मित्यलम्।।

सम्मतिरत्र–

"हीरानन्द पण्डित शर्म्मणः"

भावार्थ –

आजकल जो लोग कि, परमेश्वरादि मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, वे वास्तव में अनार्य हैं। किन्तु अपने को आर्य्य मानते हैं। हम उनकी श्रुति, स्मृति–विरुद्ध बुद्धि को धिक्कार मानते हैं। धर्माऽधर्म का ज्ञान वेद से होता हैं, और वेद परमेश्वर के श्वास से उत्पन्न हुए, और ईश्वर की नाभि से ब्रह्मा जी पैदा हुए। उसी से ब्रह्मा ने वेद पाये। "यो ब्राह्मण विदधा........." इत्यादि श्रुतियां (वास्तव में श्रुति नहीं है उपनिषद हैं) ईश्वर को मूर्ति प्रतिपादन करती है। ऐसे ही "एकोऽहं बहुस्याम्............" इत्यादि श्रुति वाक्यों में अहंकार मूर्त्त में घट सकता है, न कि अमूर्त्त में। तथा "एक एव हि वि............" यह स्मृति भी यही सिद्ध कर सकती है। तथा "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्............" इत्यादि श्रुतिवाक्य में मुख की निष्ठा, मूर्त्त में ही हो सकती है न कि अमूर्त्त में । तथा "सहस्त्रशीर्षा............" इत्यादि उपनिषद वाक्यों से ....बीच में ही श्री पण्डित तुलसीराम जी ने कहा..............।

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी –

वाह ! वाह !! ऊपर पहले तो उपनिषद को श्रुति लिखा अब श्रुति को उपनिषद कहते हैं, भाईयों ! विदित होता है कि पण्डित जी ने वेदों का दर्शन भी नहीं किया। अर्थ सहित पठित होना और तदनुसार शास्त्रार्थ करना तो दूसरी बात है। यद्यपि हम नहीं चाहते कि पत्रों की अशुद्धियों पर कुछ बात कहें परन्तु दिग्दर्शन मात्र इनका वैयाकरणत्व तो देखिए कि–"वस्तुतस्त्वनार्य्याष्किन्त्वार्य्य............"यहाँ "मूर्धन्य षकारादेश" तथा "श्रुयंते" यहाँ "ह्रस्व उकार" तथा "परमेश्वरेणं ब्रह्मा............" यहाँ उपादान में "तृतीय" तथा "ईश्वरन्मूर्तिमत्त्वं............" यहाँ ईश्वर शब्द से "द्वितीया षष्ठयर्थे" तथा "मुखमासीतेत्यादि" में "आसीत्" के स्थान में "सस्वर आसीत्" तथा "अनुस्वार को परमवर्ण" भी अनेक स्थलों में चिन्त्य है। और

ने हल्ला मचाया, और उत्तर बिना सुने खड़े होने लगे। और संस्कृतज्ञ पण्डित (हीरानन्द) ने कुछ भी संस्कृत में प्रश्नोत्तर देने का साहस न किया, लाचार सभा विसर्जित हुई।

अगले दिन लोगों ने बहुत कोलाहल मचाया, कि शास्त्रार्थ करेंगे। परन्तु करें तो भारत के सूधे दिन ही न आ जायें ! जब हरिद्वार में ही न किया जहाँ बड़े-बड़े पण्डित आये थे, तो यहाँ वाले क्या करेंगे ? अस्तु ! भय के मारे प्रथम जांच के लिए पण्डित जी को जो यहाँ के निवासी नहीं थे, किन्तु ग्रामान्तर के थे। श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी के पास भेजा, उन पण्डित जी का नाम पीछे विदित हुआ कि- वह वैष्णव सम्प्रदाय के आधीन शेखरान्त पण्डित देवकीनन्दन थे। और आते ही बोले कि - **"लशक्वतद्धिते" इत्यत्र शकारो पादानं किमर्थमृ सामर्थ्य श्रवेदुच्यताम्।।** इस पर श्री पण्डित तुलसीराम जी ने उत्तर दिया कि-**"यद्यपि भावादृशाय लिंगज्ञानाऽनभिज्ञाय 'सामर्थ्य' मिति नपुंसके वक्तव्ये सामर्थ्यश्रवेदिति पुर्लिंगतया भापमाणायेमां लध्वींशङ्कां कुर्वाणाय नोत्सहे प्रत्युत्तर मितुं यतः सुवोधेनैव शास्त्रार्थयितव्यं नाऽवोधेनेति तथापि अधीत शेखरान्तत्वस्य मानं माभूदिति कृत्वा प्रत्युत्तरयामि सुगमेयं शंका समाधानं चापि तथाहि "लशक्वतद्धिते" इत्यत्रशकारोपादानं हि करिष्यमाणादि पदेषु जशः शीत्यादि शिदादेशेपु च इत्सञ्ज्ञार्थमन्यथेत्संज्ञा कथं बोभूयादिति"।।** ऐसा उत्तर पाकर पण्डित देवकीनन्दन जी व्याकरण से निकल कर न्याय में चले, तब पण्डित तुलसी राम स्वामी ने पूछा कि यदि आपका नवीन न्याय पठित है तो **"अवच्छेदक"** अथवा **"अवच्छिन्न"** शब्द का तात्पर्य कहिये। जब इन शब्दों पर पण्डित देवकीनन्दन जी ने बोलना पसन्द न किया, तब पण्डित तुलसी राम जी ने कहा कि-यदि आपको गौतम कृत सूत्रों (न्याय) में कुछ पूछना हो तो पूछिये -

पण्डित देवकीनन्दन जी ने गौतमसूत्रों में तो कुछ न पूछा, परन्तु भागवत पुराण के दशम् स्कन्द का श्लोक-**"ब्रह्मन् ब्राह्मण्य निर्देश्ये................."** पढ़ कर बोले ! देखो-श्रुति में लिखा है कि-**"निर्गुणोपासना नहीं कर सकते इसलिए सगुणोपासना कर्त्तव्य है"**। पण्डित तुलसीराम जी ने कहा कि-जो श्रुति आप बोलते हैं वह तो हमारे याद है कि भागवत के दशम स्कन्द का श्लोक है, वह भला कभी श्रुति हो सकता है ? तथा आपके पक्ष की पुष्टि इसके अर्थ से नहीं होती, ईश्वर अपने सर्वशक्तिमत्वादि गुणों से सगुण तथा जरा-मरण-शौक-जन्म-दुःख आदि से रहित होने से निर्गुण भी कहाता है। इस पर पण्डित देवकीनन्दन जी बोले कि-**"जब शरीरी नहीं तो सगुण कैसे होगा"** ? पण्डित तुलसीराम जी ने उत्तर दिया कि-जैसे आकाश शब्द गुण विशिष्ठ है परन्तु शरीरी नहीं, ऐसे ही जानो। पण्डित देवकीनन्द जी बोले कि- **"आकाश के भी होने में अनुमान हैं, क्योंकि वह सगुण है।"** पण्डित तुलसीराम जी ने उत्तर दिया कि- धन्य हो ! अनुमान आपके कथन मात्र से ही है अथवा किसी हेतु से ? आपकी वही प्रतिज्ञा है और हेतु भी वही है। आप क्यों न्याय शास्त्र की धूल करते हैं ? इस पर पण्डित देवकीनन्दन जी उठ खड़े हुए और पौराणिक मण्डली में जाकर कहा कि-जब तक कोई पण्डित काशी आदि से न आवे तब तक यहाँ का कोई वैय्याकरण अथवा नैयायिक उस आर्य पण्डित से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। वह कोई मामूली पण्डित नहीं है।

इसके पश्चात पण्डित हीरानन्द जी की ओट में होकर सारे पौराणिक मण्डल ने शास्त्रार्थ का निश्चय किया, और नियम तय करके १८-७-६१ को समय निश्चित कर दिया। जिसमें विशेष नियम यह था कि शास्त्रार्थ संस्कृत में एवं लिखित रूप से होगा ! जनता को केवल उसकी भाषा बना कर सुना दी जाया करेगी।

अब आप वह मूल पत्र व भाष्य देखिए ! समझिए !! और स्वयं निर्णय करिए !!!

"ब्रह्मानन्द मन्त्री"

आर्यसमाज- आरा (बिहार)

आपने ईश्वर के श्वास से वेद, और नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिखी परन्तु इसमें कोई श्रुति वा स्मृति का प्रमाण नहीं लिखा और–"यो ब्राह्मणं वि........." इससे भी आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता वैसे भी यह श्रुति नहीं बल्कि उपनिषद का वचन है। नाभि से उत्पत्ति का अक्षर मात्र भी उसमें नहीं आया, इसलिए महाभाष्य का यह लेख मात्र उपहास योग्य है, कि– "अन्यद्भुक्तमन्यद्वान्तम्" अर्थात् प्रतिज्ञा कुछ और प्रमाण कुछ और खैर ! आपने उपनिषद को तो श्रुति कहा ही था, आगे भागवत् के आधे श्लोक को स्मृति कहा है। उस श्लोक का भी यह अर्थ नहीं कि–"नाभि से ब्रह्मा पैदा हुए"। बल्कि नाभि शब्द तक उसमें नहीं आया है। यह जो लिखा है कि अहंकार मूर्त्त में ही रहता है। इसमें भी कोई प्रमाण न्याय आदि का नहीं दिया, "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्........." इसका भी यह अर्थ नहीं कि ब्राह्मण मुख से हुए क्योंकि–"मुखात्" ऐसे पद वहां नहीं, यदि किसी क्लिष्ट कल्पना से यह अर्थ किया भी जायेगा तो निराकार प्रतिपादक वेदों के अन्य मन्त्रों से परस्पर विरोध आवेगा "सहस्त्रशीर्षा.........." इसका भी यदि आपका अर्थ माना जावे तो "स भूमिंछसर्व..........." इस उसी मन्त्र के उत्तरार्द्ध से विरोध आवेगा क्योंकि जो परिमित है वह व्यापक नहीं हो सकता और जबकि उत्तरार्द्ध मन्त्र में व्यापकत्व है। तो पूर्वार्द्ध में परिमितत्व कैसे ठीक होगा ? वेदों के अर्थ समझने को बुद्धि चाहिए। कि कहीं परस्पर विरोधादि दोष न आ जाये। और अशुद्धियों तथा गालियों का "अनार्य्य, धूर्त्त, ठग" इत्यादि का उत्तर तो हम क्षमा करके नहीं देते, क्योंकि "नीतिनिन्दतु.........."में लिखा है कि जो जिसके पास होता है सो ही देता है। शश, श्रृंग तो कोई किसी को नहीं देता, इसलिए आप गालियाँ दें, परन्तु हमारे पास तो शास्त्रीय प्रमाण वा युक्ति के अतिरिक्त गाली एक भी नहीं ! दे कहाँ से ? यदि सम्मुख होकर (मौखिक रूप से) शास्त्रार्थ की इच्छा हो तो नियम, स्थान और प्राप्ताधिकार राज पुरुष मजिस्ट्रेट को प्रबन्धकर्त्ता नियत कीजिए। हम केवल शास्त्रार्थ करेंगे।। ।। इति।।

श्री पण्डित हीरानन्द जी शर्मा –

"राम"

श्री मते रामानुजाय नमः २०–७–६१

भावत्ककरविरचितपत्रं न सुशोभनं यस्मिन्नैवं लिंखित्वा प्रेषितन्तदुच्यते तेषान्तत्तद्ग्रन्थानुसृत पाषण्डमतध्वंसनाय तत्प्रेषित पत्रस्यादउत्तरमाविष्क्रियते इति त्वदीय पत्रे या संस्कृतावली सा अशुद्धतरा तदुच्यते पातञ्जलिना पाषडेति पदं क्व लिखितन्तद्दर्शय मन्मानसे त्वितथम्प्रतिभाति भवान्भाष्यार्थविदुषाम्मन्यसे त्वं शिरोमणिम्। अतो निर्भयनापन्नो दूरदेशं समागतस्तन्नमन्तव्यम्। यतस्त्वत्स दृशो जन एकां लज्जां परिज्यन्य त्रैलोक्यविजयीभवेदिति लोक प्रसिद्धम् विचारदृश्ट्या भवानेव पाषण्डपथाश्रितो न तु वयन्तथा च भवता यल्लिखितम्पत्रे यौ ब्रह्माणं विदधातित्याद्युपनिषदुल्लिखिता सा तु न श्री मोतां पक्ष पोषण क्षमा मत्प्रार्थनया मत्पूर्व प्रेषितपत्रम्पुनर्द्रष्टव्यम् यो ब्रह्माणाम्विदधाति पूर्वमित्यत्र श्रुतावुपनिषत्पदन्नालेखि किन्तु सहस्त्रशीर्षेत्यादिविषये ह्युपनिषत्पदम्व्यलेखि तथा च कप्यास पुण्डरीकाक्षेणत्वया सम्यङ्नादर्शि इति मन्मनो मन्यते तथा च भवता पत्रेयद्विलिखितं ब्रह्मा पुरुषोत्तमस्य नाभिपङ्कजादुत्पन्न इत्यक्षर-मात्रमपि न दृश्यते तत्सत्यं तत्र हेतुरसाक्षात्त्वमेव वेदावतारोऽसि तथापि स्वनिष्ठज्ञान जन्यपदार्थ न वेत्सि यथा कश्चिन्नादर्शम्विना स्वशरीर स्थमपि नेत्रं न पश्यति तद्वद्भवान् नुमीयते। अथ च पत्र कुत्रापि श्रुतावजशब्दस्य पोठा दृश्यते तस्यायमर्थो ज्ञातव्य आद्वासुदेवाज्जायते इत्यजो ब्रह्मा अकारो वासुदेवश्चेत्यभिधानात् कुत्रचिदजशब्देन परमेश्वरस्य बोधो जायते तथा च अन्यद्भुक्तमन्यद्वान्तमिति वृत्तं त्वयि समक्षं घटते नत्वस्मदादिषु तथा मन्त्र शब्दस्य पाठो वेदविहितस्तत्र वेदस्यैव प्रामाण्यता वेद निष्ठ मन्त्रस्याप्रामाणयता इत्यत्र किम्प्रमाण्का श्रुतिर्वदति तद्विचार्यारम्प्रेषणीयम्। तथा च मुखेन मन्यते वेदं हृदि तस्यैव खण्डनम्। अतस्त्वाधमनुस्मृत्य

हाँ ! "यो ब्राह्मणं............" इस उपनिषद वाक्य को श्रुति का वाक्य कहते हैं तथा "सहस्त्रशीर्षा........" श्रुति वाक्य को उपनिषद कहते हैं, सज्जनों ! ऐसे ही वेदवेत्ता वेदों में मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का यत्न करने चले हैं। ....सारी सभा में सन्नाटा छा गया, एवं पौराणिक पण्डित का चेहरा पीला पड़ गया.........।

श्री पण्डित हीरानन्द जी शर्मा –

सज्जनों ! आपको इस तरह की बातें करके बहकाया जा रहा है। श्रुति वाक्य में.............बीच में ही श्री पण्डित तुलसीराम जी ने यजुर्वेद देते हुए कहा कि देखिए भाइयो............ इसी बीच पण्डित हीरानन्द जी बोले कि–यह कोई बड़ी भारी गल्ती नहीं हैं। भूल–चूक तो हो सकती है............ जनता में हँसी और तालियों की गड़गड़ाहट............पुनः पण्डित हीरानन्द जी बोलने खड़े हुए हां ! तो सज्जनों !! मैं कह रहा था, कि श्रुतिवाक्य में मुख की निष्ठा, मूर्त्त में हो सकती है, न कि अमूर्त्त में । तथा इस प्रकार श्रुति वाक्यों से भी मूर्त्त होना सिद्ध है। कहाँ तक कहें कि वेदों के अंग छः शास्त्रों में भी मूर्त्ति पूजा आदि लक्षण देखना चाहिए। आगे जो नास्तिक आर्याभिमानी, अनार्य्य और दूसरों के बहकाने वा ठगने वाले हैं, वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें।

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी –

।। ओ३म्।।

आरा
१६ जौलाई सन् १८६१ ई.

ये केचनेह जगति सच्चिदानन्दादिलक्षणलक्षितं परमात्मानं वेदविरुद्धान्स्वकपोलकल्पितेतिहास-पुराणाभासान् वेदानुकूलान्मन्यमाना मूर्तिमन्तं मन्यन्ते तेषां तत्तद्ग्रन्थानुसृतपाषण्डमतध्वंसनाय तत्प्रेषित पत्रस्याद उत्तरमाविष्क्रितेयद्भवद्भिः प्रमाणभूतां कामपि श्रुतिं स्मृतिं वाऽविन्यस्य-वाऽलेखि "वेदस्य पुरुषोत्तमस्य निःश्वासतो जनिर्ज्ञायते तथा च पुरूषोत्तमस्य नाभिपङ्कजाद् ब्राह्मणोऽपि जनिश्श्रूयत" इति च चाऽग्रे "यो ब्राह्मणं विदधाती" त्याद्युपनिषदुल्लिखिता सा तु न श्री मतां पक्ष पोषणक्षमा, यतस्तस्यां ब्रह्मा पुरूषोत्तमस्य नाभिपङ्कजादुत्पन्न इत्यक्षरमात्रमपि न दृश्यतेऽत एवान्यभुक्त्तम यद्यान्तमितिवदेव भवद भाषणमुपेक्ष्यते। अग्रेपि च "प्रचोदिते" त्यादि भागवतस्थश्लोकार्धो नैनमभिप्रायं पुष्यति तस्यापि तदर्थपरत्वाभावादिति। अहं कारस्य निष्ठा मर्तिमन्वे घटेतेत्यत्रापि प्रमाणाभावः एव ब्राह्मणोस्य मुखमासी- दित्यादावपि निराकारत्व प्रतिपादक मन्त्र विरोधात् न भवदभिप्रेतार्थस्साधुर्मुखादासीदित्यदर्शनाच्च। एव मेव सहस्त्रशीर्षेत्यत्रापि तन्मन्त्रपराऽर्धे सभूमिथंसर्वतस्स्पृत्वेत्पादितो विरोधापत्तेरियत्तावतः सर्व भूमिस्पर्शनाशक्यत्वात्। अग्रे या कुवाचोऽपशब्दाश्च ये विन्यस्ताः खलु भवद्भिर्न तत्तदुत्तरयितुमुत्सहामहे यतो-ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो वयमिह तदभावान्नैव दातुं समर्थाः। जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमान नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददातीति। अथ च परस्परमाभिमुख्येन शास्त्रार्थयिषा चेत्तर्हि नियमान्स्थानम् प्रवन्ध कर्त्तारञ्च प्राप्ताधिकारं राजपुरूषं "मजिस्ट्रेट" त्यमिधं स्वप्रवन्धेनैव नियोज्यतां वयं केवलं शास्त्रार्थं करिष्यामो नाऽन्यत्प्रवन्धकर्त्तृ नियोजनादि इति शम्।।

हस्ताक्षरः –
"तुलसीराम शर्म्मणः"

भाषार्थ–

जो लोग कि वेद विरुद्ध, अपने रचित इतिहास व पुराणदि को वेदानुकूल मानते हुए, सच्चिदानन्ददादि लक्षणों वाले ईश्वर को मूर्त्तिमान् मानते हैं, उनके उन–उन ग्रन्थों से प्रचरित पाषण्ड़मत के खण्डनार्थ उनके भेजे पत्र का उत्तर दिया जाता है –

कूदे ! ओहो !! बड़ी भारी अशुद्धि निकाली ? परन्तु महात्मा जी अपने पत्रों की बड़ी–बड़ी स्थूल व्याकरण की अशुद्धियाँ जिनको हमने संस्कृतपत्रों के नोट में लिखा है उनका समाधान तो करना था !! दूसरे धन्य हो आप जो इस पत्र में अपनी भूल को फिर से दृढ़ करते हो कि हां हमने "यो ब्रह्माणं........."इस उपनिषद को श्रुति तथा "सहस्त्रशीर्षा......." इस यजुर्वेद मन्त्र को उपनिषद लिखा था। भला श्रोतागण ! क्या आपको विश्वास होता है कि इन लोगों ने कभी वेदों का दर्शन भी किया है ? तिस पर आर्य्यों से शास्त्रार्थ ! इन्होंने पहले तो उपनिषद को श्रुति लिखा, खैर, !! उससे भी ईश्वर की नाभि का नाम निकला, फिर जहाँ "अज" शब्द ब्रह्मा का वाचक बतलाया तिस पर एकाक्षर कोष के प्रमाण से सिद्ध किया तब भी ईश्वर की नाभि का वर्णन "अज" शब्द में नहीं आया ! श्रोताओं अब आप ही स्वयं सोचो कि इससे अधिक परास्त होना किसे कहते हैं ? और फिर इनका तो गीत ही निराला है, भाईयों ! हमने कब कहा है कि हम वेदमन्त्र को नहीं मानते ? हमारे पत्रों को पुनः पढ़ कर देख लो। जबकि इनका कहना है कि वेद को मानना, परन्तु वेदमन्त्र को न मानना । वाह ! वाह !! क्या कहे इनकी बुद्धि को ?

।।ओ३म्।।

आरा

२१-७-१८९१

भो भोः पौराणिका !

यदुक्तमस्मान्प्रतिभवान्भाष्यार्थविदुपाशिरोमणिरित्यादितरत्तथास्तु-परमस्माभिः कृतानां प्रतिवादाना मुत्तराण्यददाना भवन्तो निरूत्तरीभूताः परास्ता इत्यसंशयं विदुपाम्।"श्लोका" अधीतशेखरान्ताश्शेच्छास्त्रार्थामैव नोद्यताः। व्याकरणस्याऽनभिज्ञानांका कथास्ति भवादृशाम्।।१।। प्रतिवादः कृतो यासामक्तीनां भवतां मया। न ता उद्धृत्य गर्ज्जन्ति मृपा निर्लज्जतां गताः।।२।। अशुद्धानि तुवर्त्तन्ते भवच्छ दपादनि च। परंतूपेक्षणं दृष्ट्वा मृषा यूपं प्रगर्विताः।।३।। श्रयते श्रयते यत्रासीतेत्यासीदिति स्थितौ। भवदीयेति भावत्कपदादीन्यशुमानि हि।।४।। स्पष्टा यमभटा यूयं प्रत्यक्षा दृष्टीगोचराः। साधुभिमौनमास्थेयं ताडकेपु भवत्सु वै।।५।। परन्तु ये नरावरा भवादृशाः सुपण्डिताः। समीक्ष्यते न तैर्नरैर्वरैः स्वकार्य्य साधने।।६।। पाडित्यं भवतां प्रशंस्यमनिजं ज्ञातं मया तत्त्वतो, मैरत्यन्तकुवाच्यवर्पणपरैर्लज्जोज्भयते दूरप्तः। नेरानी वयमुत्सहामह इति ण्यर्थ भवदभापणम् आश्चर्यन्त्विदमेव मन्मनसि यद्विद्वज्जना ईदृष्शाः।।७।।

ससंमतिश्त्र–

"तुलसीराम शर्म्मण"

भापार्थ–

भो भोः पौराणिकाः !

आपने जो हमको भाष्यवेत्ताओं का शिरोमणि..........इत्यादि लिखा, सो ऐसे ही सही ! परन्तु हमने आपके जिन पक्षों का खण्डन किया था, उनमें से एक का भी समाधान "सिवाय गाली प्रदान" के आपने नहीं किया, तब विद्वान लोगों में तो निस्संदेह आप निरूत्तर होकर परास्त हो गये। "श्लोकार्थ"–जबकि शेखरान्त व्याकरण पढ़े पण्डित ही शास्त्रार्थ को उद्यत्त नहीं हुए तो आपसे व्याकरणवेत्ताओं की तो बात ही क्या है ?।।१।। आपकी जिन उक्तियों का मैंने खण्डन किया था, बिना ही उनका समाधान किये आप गर्जते हैं तो कहिये लज्जा से दूर है वा नहीं ?।।२।। आपके पत्रों के पद तो अशुद्ध हैं ही परन्तु (हमारी ओर से) उपेक्षा देख कर आपको गर्व हो गया ?।।३।। "श्रुयते", "आसीत" और "भावत्क" आदि पद अशुद्ध हैं किन्तु "श्रूयते", "आसीत्", तथा "भवदीय", इत्यादि पद होने चाहिये।।४।। आपने यह जो लिखा कि यमदूत तुझे ताड़ना करेगे सो ताड़ना करने को तो आप लोग प्रत्यक्ष ही हैं कि जिनके सामने सत्पुरुषों को मौन ही श्रेष्ठ

भजस्व रघुनन्दनम्।।१।। नो चेद्यमभटारत्वां वै ताडयिष्यन्त्यसंशयः। ततो लज्जाम्परित्यज्य भजस्व रघुनन्दनम्।।२।। लोकस्य लज्जया किं स्याद्यतोऽधर्म्मः प्रणश्यति। इति मत्वा सुदुर्बुद्धे भजस्व रघुनन्दनम्।।३।। उदरम्भरणार्थाय धर्म्मन्त्यजसि वै मृषा। इति ज्ञात्वा स्थिरी भूत्वा भजस्व रघुनन्दनम्।।४।। यत्रस्य लेखने श्रद्धा यदिस्यात्तव मानसे। नेत्रद्वयं तद रामात्प्रार्थनीयं पुनःपुनः।।५।। यैराहुतो भवानत्र धर्म्ममूर्तिरसनातः। ते सभांकर्त्तमुद्युक्ता भवन्त्विह सुमेधसः।।६।। इत्यलम् !

पाषण्डमतोच्छेदक विद्वद्वर –

"हीरानन्दपण्डितशर्म्मणः"

भाषार्थ –

तुम्हारी चिट्ठी ठीक नहीं क्योंकि "पाषाण्ड........." यह संस्कृतावली अशुद्ध है, बताओं पांतञ्जली ने भाष्य में "पाषाण्ड" शब्द कहां लिखा है ? आप अपने को भाष्यवेत्ताओं का शिरोमणी समझ कर दूर देश में आकर निर्भय हो गया है ऐसा मत मान। तुझसा मनुष्य एक लज्जा को उतार कर त्रिलोकविजयी हो जावे। विचार दृष्टि से तो आपका ही पाषण्ड मत है न कि हमारा। और आपने जो "यो ब्राह्मणं......" इसको उपनिषद लिखा है, सो हमारा पत्र फिर देखो कि हमने "यो ब्रह्माणं........" को श्रुति और सहस्त्रशीर्षा.. ...."को उपनिषद लिखा है। तुझ कप्पास पुण्डरीकाक्ष ने अच्छे प्रकार नहीं देखा। यह जो लिखा कि ब्रह्मा के, नाभि से उत्पन्न होने को एक अक्षर मात्र से भी "श्रुति" का आशय नहीं, सो ठीक है। उसमें कारण तू ही साक्षात् वेदों का अवतार है। तो भी अपने ज्ञान जन्य पदार्थ को नहीं जानता जैसे कोई नहीं अपने में के शरीरस्थ नेत्र को भी नहीं देखता ऐसे ही आपका हाल है। श्रुतियों में जहाँ तहाँ ब्रह्मा को "अज" कहा है जिसका अर्थ यह है कि "अ" अर्थात् वासुदेव से जो उत्पन्न हुआ सो "अज" अर्थात् ब्रह्मा एकाक्षर कोश के प्रमाण से कहीं–कहीं अज शब्द ईश्वरवाचक भी है। महाभाष्य का उपहास तुझ पर घटता है। हम पर नहीं, मन्त्र का पाठ तो वेद ही का है, फिर वेद को मानना और उसके मन्त्र को न मानना इसमें कौन श्रुति प्रमाण है ? सो विचार कर पत्र भेजना।। "श्लोकार्थ"–तू केवल मुख से वेद को मानता है, परन्तु हृदय में उसी का खण्डन करता है। इससे अपने पाप को स्मरण करके राम को भज।।१।। नहीं तो यमदूत तुझे निस्सन्देह ताड़ेगें इससे लज्जा छोड़ राम को भज।।२।। लोक लज्जा से क्या जिससे धर्म का नाश होता है। हे सुदुर्बुद्धे ! ऐसा समझ कर राम को भज।।३।। तू वृथा पेट के कारण धर्म को छोड़ता है, स्थिर होकर राम को भज।।४।। यदि तेरे मन में पत्र लिखने की है तो राम से बार–बार दो नेत्र मांग।। ५।। जिन्होंने तुझ सनातनधर्म मूर्त्ति को यहाँ बुलाया हैं वे सभा को उद्यत होवें।। इत्यलम् !

पाषण्डमत को छेदन करने वाला महापण्डित–

"हीरानन्द पण्डित शर्मा"

नोट –

इस पत्र को सुनकर सभा में भयंकर रोष पैदा हुआ, पौराणिकों ने भी इसे अच्छा नहीं समझा। एक पौराणिक ने सभा में खड़े होकर कहा, पण्डित जी महाराज ! कुछ भी हो, ये पण्डित जी भी हमारे अतिथि हैं, हमे इनका इस प्रकार अपमान नहीं करना चाहिये ! बीच में ही पण्डित तुलसीराम शर्मा जी ने खड़े होकर कहा–

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी–

सज्जनों ! आप दुखी न होवो, जिसके पास जो होता है वह वही देता है। मैंने पहले भी इस बात को कहा था, अबं इनके पत्र में देखो ! आप तो "पतञ्जलि" को "पातञ्जलि" लिखना अशुद्ध नहीं समझते, और यदि हमारे पत्र में "पाषण्ड" का "पाषाण्ड" अर्थात् लेख भ्रम से एक रेखा अधिक खिंच गई तो ऐसे

उन पर सिद्धि के सूत्र वे लिखें या हम ? सफाई के गवाह तो मुद्दयी से कहीं नहीं मांगे जाते ! आपके तो अशुद्ध ! और प्रमाण हम दे !! धन्य हो !!! इस पत्र को लेकर "शास्त्रार्थ कमेटी" आर्यसमाज आरा (विहार) ने विचार किया कि–शास्त्रार्थ तो वास्तव में हो चुका, अब गालीगलौच का उत्तर हमारे पास क्या है ? अतः पण्डित तुलसीराम शर्मा के कुचेसर से बुलाने का प्रयोजन यथा सम्भव सिद्ध हो गया। अब पण्डित जी "दानापुर" नगर में भी हो आना चाहिये। यह भी विचारा गया कि, कदाचित पौराणिक लोग पण्डित जी के चले जाने पर चेतें तो अच्छा हो ! महाशय ! ऐसा ही हुआ कि पण्डित जी "दानापुर" पहुँचे और पौराणिक लोग "गेहेशूर" की भांति चट्ट सभा करके कहने लगे कि–"आर्य्य पण्डित भाग गया"।। महाशयों ! हम तो यही चाहते थे कि किसी प्रकार ये चेतें–सो पण्डित तुलसीराम शर्मा जी दानापुर से फिर आये और हमने और नोटिस दिया कि –

नोटिस आर्यसमाज की ओर से –

।। विज्ञापन नोटिस।।

आर्यसमाज–आरा
२७–७–१८६१ ई॰

विदित हो कि श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी के **"दानापुर"** चले जाने पर पौराणिकों ने जो हल्ला मचाया था कि–**"पण्डित जी भाग गये"**। यद्यपि पण्डित जी दस दिन तक रहे और किसी पौराणिक ने चूं तक नहीं की–किन्तु यह सुनकर पण्डित जी पुनः आरा नगर में आये हैं, अब यदि आज सायंकाल तक दो व्यक्ति आकर शास्त्रार्थ के नियम स्थिर न करेंगे तो पण्डित जी अधिक दिन नहीं ठहरेंगे। और पौराणिक परास्त समझे जायेंगे। इति।।

"ब्रह्मानन्द" मन्त्री–
आर्यसमाज **"आरा"** (बिहार)

नोट –

इस नोटिस पर रात्रि को दो–तीन पुरुष पौराणिकों की ओर से आये और नियमों में बहुत देर तक वादानुवाद रहा, अन्त को बाबू रामानन्द जी, धर्मसभा के बोले कि यदि तुम न्यायशास्त्र को मानो तो हम अपने दक्षिणी आचार्य जी को बुलावें। श्री तुलसीराम जी ने कहा कि–हाँ ! युक्ति विषय में न्याय मानेंगे, परन्तु आपके पण्डित दो दिन में आ जायें तो में ठहरा रहूँ। क्योंकि मुझे कुचेसर से चले २१ दिन तथा आरा में आये १६ दिन हो गए हैं, मैं १२ तारीख को यहाँ आया था, आज २७ तारीख हैं, मैं बहुत दिन नहीं ठहर सकता, बाबू रामानन्द ने कहा,–दो दिन में तो नहीं, परन्तु आयेंगे अवश्य। श्री पण्डित तुलसीराम जी ने कहा–अच्छा ! मैं लखनऊ में दस दिन ठहरूंगा यदि इन दस दिनों में आप अपने पण्डित के आने का समाचार देंगे, तो मैं तुरन्त उपस्थित हूंगा। तत्पश्चात श्री पण्डित तुलसीराम शर्मा लखनऊ में दस दिन रहे, और दो पत्र श्री बाबू भगवत्सहाय जी सनातनधर्म सभा के मन्त्री थे, उनके नाम भेजे, कि–बाबू रामानन्द जी के गुरु आये वा नहीं? परन्तु उत्तर **"ना"** का पाकर पण्डित जी कुचेसर चले गये। पौराणिक पण्डित जिनका बाबू रामानन्द ने वादा किया था, आज तक शास्त्रार्थ करते हैं ? उसके बाद कभी भी पौराणिकों ने सिर उठाने का प्रयास नहीं किया, और शास्त्रार्थ का तो नाम ही भूल गये ! **"यतोधर्मस्ततोजय"** ओ३म्, शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

"मन्त्री" –
आर्यसमाज "आरा" (बिहार)

है।।५।। ....जनता में हंसी...................." परन्तु जो महात्मा आपके समान पण्डित हैं वे स्वार्थ साधन में तत्पर हैं, और नहीं देखते।।६।। आपका पाण्डित्य जो रात दिन–प्रशंसा करने योग्य है, मैंने अच्छे प्रकार जान लिया, जो कि आपने अत्यन्त गाली वर्षा में तत्पर होकर लज्जा को दूर छोड़ दिया है। अब आपके साथ भाषण करना व्यर्थ है, किन्तु आश्चर्य यह है कि पण्डितों की जब यह दशा है तब मूर्खों का तो कहना ही क्या है ?।।७।।

"तुलसी राम शर्मा"

श्री पण्डित हीरानन्द जी शर्मा –

श्री सच्चिदानन्दविग्रहो रामः शं सन्तनोतुतराम्।।

भवदीयेतिभावत्कपदं सिद्धयति तद्धिते। तद् ज्ञानार्थ गुरोः पादपंकजं समुपैहि भोः।।१।। एतावच्चेन जानासि का कथा भाष्यदर्शने। अतस्तिरस्कृतो विद्भिश्शेखरजैर्दयालुभिः।।२।। यद्यशुद्धतरं दृष्टं पदम्पत्रविनिर्मितम्। प्रमाणन्तत्र वक्तव्यंकपोलकथनाभ्विना।।३।। कर प्रोत्साहितो वालो वालोमातुरग्रे प्रनृत्यति। तथानार्य्यसमामध्य गात्रं धुन्वन्प्रनृत्यसि।।४।। अंगीकृतं स्ववक्त्रैण स्वंनयं मत्पराभवं। नोचेद्वराटिका मात्रन्नैव दास्यन्त्यानार्य्यकाः।।५।। वेदो निष्ठा समज्यायां ह्रदी पैगेम्बर दृढ़ा। ज्ञायते तव चास्माभिः क्रुधा नः किंकरिष्यसि।।६।। वने जालं समिवतय व्याधो गृह्णाति पाक्षिणः। तथा त्वामभिजानीमः काग रूपं समागतम्।।७।। काकः काकस्य जानाति वाचं ह्यां मनोहराम (काकवागनभिज्ञश्चेदहमत्र) किमद् भुतम्।।८।। पञ्चाननस्य का कीर्त्तिर्माजारस्य निपातने। द्वयोर्वर्लकौ प्रसिद्धमज्ञाः सुज्ञा विदन्ति वै।।६।।

संमतिरत्र दुर्ज्जनमुखध्वंसक –

"हीरानन्द पण्डित शर्मणः"

भाषार्थ –

श्री सच्चिदानन्दविग्रहो रामः शं सन्तनोतुतराम्।।

"भवदीय" के स्थान में "भावत्क" पद, तद्धित में सिद्ध होता है। उसके समझने को गुरु चरणों में जा।।१।। जब इतना ही नहीं जानता तो भाष्य क्या देखा होगा ? इसलिये शेखरज्ञ दयालु पण्डितों ने तिरस्कार किया।।२।। यदि हमारे पत्र में अशुद्ध पद देखे हैं तो कपोलकथन को छोड़ कर उसमें प्रमाण देना चाहिए।।३।। जिस–जिस सूत्र से जो–जो पद सिद्ध नहीं होता उस–उस का दूषण देना कपोलकथन को छोड़ कर।।४।। जैसे माता हाथ बजाती है और बालक नाचता है वैसे तू अनार्य्यो की सभा में शरीर धुन कर नाचता है।।५।। अपने मुख से अपना जय और मेरा पराजय मान लिया। नहीं तो अनार्य्य लोग एक कौड़ी भी नहीं देंगे, ।।६।। सभा में वेद पर और मन में पैग़ाम्बर पर तेरी दृढ़निष्ठा को हम जानते हैं, क्रोध से हमारा क्या करेगा?।।७।। वन में जाल फैलाकर व्याध, पक्षियों को पकड़ता है। ऐसे ही काकरूपी तुझको आया हुआ हम जानते हैं।।८।। काक की मनोहर वाणी को काक ही जानता है। यदि मैं काकभाषा को न समझूं तो क्या आश्चर्य है ?।।६।। बिल्ली को गिराने में सिंह की क्या कीर्ति है ? दोनों का बल सबको–विदित है।।१०।।

संमतिरत्र गुर्ज़नमुखध्वंसक –

"हीरानन्द शर्मणः"

नोट–

इस पत्र को पाठकगण विचारें कि जिन–जिन पदों को हमारे पण्डित जी ने अशुद्ध ठहराया था,

शास्त्रार्थ से पहले

संगरूर (रियासत जीन्द) पंजाब में १२ सितम्बर से लेकर १५ सितम्बर सन् १६४० ई. सनातनधर्म महावीरदल का सालाना जलसा था। इस जलसे में आरम्भ से लेकर अन्त तक गोपालमिश्र हरियानवी और बाबा चमनलाल ने आर्यसमाज और महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज को भरपेट गालियाँ दी। और आर्य समाज व महर्षि दयानन्द जी के विषय में सैकड़ों भ्रान्तियाँ फैलाई। आर्यसमाज नहीं चाहता था कि मौजूदा नाजुक वक्त में छेड़छाड़ करके आपस के ताल्लुकात (सम्बन्धों) में दुश्मनी पैदा की जावे। मगर जब सनातनधर्मी पण्डितों ने सिवाय आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के खिलाफ ज़हर उगलने के और किसी विषय पर व्याख्यान ही नहीं दिया तो मज़बूरन स्थानीय आर्यसमाज ने उसकी सफाई के लिए पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप (उपदेशक आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब) को संगरूर में बुलाया, पण्डित जी ने आते ही ३० सितम्बर सन् १६४० ई. से अपने व्याख्यानों का सिलसिला आरम्भ किया, जिनमें से अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, एवं आर्यसमाज क्या है ? और वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डाला, और उनके सारे सवालों का जवाब दिया। इस पर सनातनधर्म महावीरदल की तरफ से दो अक्टूबर सन् १६४० ई. को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज आया, जो आर्यसमाज के द्वारा मन्जूर किया गया और सनातनधर्म महावीरदल के साथ मय शर्तों के शास्त्रार्थ करना तय हो गया। और सात अक्टूबर सन् १६४० ई. को दो शास्त्रार्थ हुए। जिनका पूर्ण विवरण यहाँ दिया जाता है।

निवेदक–

"भगवानदास"
(प्रधान, आर्यसमाज–संगरूर)

शास्त्रार्थ आरम्भ

७ अक्टूबर सन् १६४० ई. को प्रातःकाल साढ़े आठ बजे आर्य भाई, श्री पण्डित मनसाराम जी को साथ लेकर ठाकुरद्वारा, (नाभा दरवाजा के बाहर) में पहुंचे, और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जो ठीक बारह बजे शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। सनातनधर्म महावीरदल की तरफ से शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में "श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न" विद्यमान थे। शास्त्रार्थ का आरम्भ करते हुए "श्री पण्डित मनसाराम जी" ने यह प्रश्न मूर्त्तिपूजा पर किया कि–चारो वेदों के अन्दर से "मूर्त्तिपूजा" शब्द दिखलाओं ? जिसका उत्तर श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न ने शास्त्रार्थ के अन्त तक नहीं दिया, तथा पण्डित अखिलानन्द जी ने खड़े होकर कहा –

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

वेदों में "अर्चत-प्रार्चत"....................मन्त्र में लिखा है कि "पूजा" करो।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

महाराज जी ! इसमें यह कहाँ लिखा है कि परमात्मा की जगह पर "मूर्त्ति" की पूजा करो ? हम पूजा करने के विरूद्ध नहीं हैं। पूजा ही करनी है तो माँ की पूजा करो, बाप की पूजा करो, गुरु की पूजा

तरेसठवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "संगरूर" रियासत जीन्द (पंजाब)

वैदिक पुस्तकालय

विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदोक्त है ?
दिनांक : ७ अक्टूबर, सन् १६४० ई॰ (प्रातःकाल साढ़े आठ-बजे से दोपहर १२ बजे तक).
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पण्डित मनसाराम जी "वैदिक तोप"
शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्म (महावीर दल)—
की ओर से : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
आर्यसमाज के प्रधान : श्री भगवानदास जी

आभार—

हम आर्यसमाज "संगरूर" (पंजाब) के अधिकारियों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने यह उर्दू में छपी हुई अप्राप्य शास्त्रार्थसामग्री, प्रकाशनार्थ हमें भिजवाई।

"सम्पादक"

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

पण्डित जी इस मन्त्र का ये अर्थ नहीं है, और आपके जैसे दावे तो हमने बहुत देखे हैं। इस मन्त्र में क्या है ? ध्यान से सुनो इसका अर्थ है कि परमात्मा के कोई बराबर नहीं है, और न हो सकता है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

जब परमात्मा के बराबर ही कोई नहीं हो सकता, तो मूर्तियाँ कैसे परमात्मा के बराबर हो सकती हैं ? रही दावों की बात ! सो तो हम भी मानते हैं, आपने बहुत बड़े–बड़े दावे देखे होगें, पर आज जैसे दावा* शायद ही जीवन में देखने को मिलेगा ?........... कुछ बोलो तो सही,..........अभी तो शुरूआत है.......... जनता में हंसी.............. ।

नोट–

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न इस पर भी आखिर तक खामोश रहे।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ९ में लिखा है कि जो परमात्मा की जगह, प्रकृति की पूजा करता है, वह नरक में जाता है।

नोट–

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी ने अण्ड–बण्ड कुछ के कुछ अर्थ करने चाहे। जिस पर पण्डित मनसाराम जी ने महिधर और शांकरभाष्य पेश करके ललकार कर कहा, पण्डित जी ! खबरदार !! अगर हिम्मत है तो इसका कुछ और अर्थ करके दिखलाओ ? जिस पर पण्डित अखिलानन्द जी अन्त तक चुप रहे, और उसका जवाब नहीं बना।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

पुराणों में मूर्तिपूजा का खण्डन मौजूद है, चूनाचें भागवतपुराण स्कन्ध, १० अध्याय ८४, श्लोक १३, में लिखा है, कि जो लोग मूर्तिपूजा करते है वह गधे व बैल के बराबर हैं।

नोट–

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी ने इस श्लोक के कुछ और अर्थ पेश करने की कोशिश की, लेकिन पण्डित मनसाराम जी ने सनातनधर्म के पण्डितों का किया हुआ अर्थ पढ़कर सुनाया, जिससे पण्डित अखिलानन्द जी के होश उड़ गये, और वे उसका कोई अन्य अर्थ नहीं कर सके।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

शिवलिंग की मूर्ति मनुष्य को उसके चरित्र से गिराने वाली है। इसलिए उसकी पूजा नहीं करनी चाहिए। देखों शिवपुराण कोटिरूद्रसंहिता, अध्याय १२ में साफ लिखा हुआ है, कि–पार्वती की भग (योनि) में शिव के लिंग को कायम करके ये पूजा की जाती है।..........इसपर श्रोताओं में चारों तरफ शोरोगुल मच गया.............।

---

* नोट –

पण्डित मनसाराम जी का अपनी बात को पेश करने का तथा बोलने का ढंग ऐसा निराला व इतना प्रभावशाली होता था कि सामने बोलने वाले की बोलती वैसे ही बन्द हो जाती थी। परिणाम स्वरूप पण्डित मनसाराम जी से शास्त्रार्थ करने के लिए समस्त पौराणिक विद्वतमन्डल अत्याधिक भय खाता था, क्योंकि पण्डित जी–"शठे शाठ्यं समाचरेत्" अर्थात्– जैसे को तैसा वाला सिद्धान्त अपनाने को हमेशा तैयार रहते थे।

"सम्पादक"

करो, विद्वान् साधु–सन्यासी,महात्माओं की पूजा करो, जिनसे कोई फ़ायदा पहुँच सके, लेकिन इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का नामोनिशान भी मौजूद नहीं। ....इस पर अखिलानन्द जी खामोश हो गये, और आखिर तक भी मूर्तिपूजा शब्द चारों वेदों में से नहीं दिखला सके............।

पण्डित मनसाराम जी वैदिकतोप –

चारों वेदों के अन्दर से कोई ऐसा मन्त्र दिखाओं जिससे ये साबित हो सके कि परमात्मा की मूर्ति, लकड़ी, पत्थर या किस धातु की इतनी लम्बी, इतनी चौड़ी या इतनी मोटी और इस शक्ल की बनाकर परमात्मा की जगह पर रखकर उसकी पूजा की जावे। और उस मूर्ति के साथ रोटी खिलाना, पानी पिलाना, पंखा झलना और उसे स्नान करना वगैरा, प्राणधारियों का सा व्यवहार किया जावे।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

यजुर्वेद में कहा है कि मेरा सोना, मेरा ताँबा, मेरा पर्वत आदि–आदि इससे ये साबित है कि वेद में मूर्ति बनाने का ज़िकर है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

.............यजुर्वेद निकालकर बताते हुए कहा कि............. मेरे गेहूँ, मेरे चावल, मेरे तिल आदि क्या इनकी भी मूर्ति बनाने का ज़िकर है ? वास्तविक बात यह है कि इसमें तो परमात्मा ने यह बतलाया है कि– **"ऐ इन्सानों ! मैंने तुम्हारे लिए ऊपर लिखित चीजों को पैदा किया है"**। इसमें मूर्ति बनाने का ज़िकर तक भी नहीं है।

नोट–

इसके बाद पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न खामोश हो गये, और इस वारे में कुछ नहीं कहा।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में लिंखा है कि परमात्मा बिना मूर्ति वाला है, इसलिए इसकी मूर्ति नहीं बन सकती।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

परमात्मा का एक दिव्य यानि अजीबोगरीब शरीर होता है, जिसको आम लोग नहीं देख सकते, बल्कि ज्ञानी और योगी ही देख सकते हैं।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

पण्डित जी महाराज। यह यजुर्वेद पर महिधर और शांकर कृत भाष्य है, देखो इसमें कहा है कि परमात्मा का स्थूल, सूक्ष्म और लिंग इन तीनों ही प्रकार का शरीर नहीं होता, और फिर यह क्या बात है कि इसका शरीर आम लोगों को तो दिखाई देता नहीं लेकिन विद्वान व योगी लोगों को नजर आता है। इससे तो साबित है कि राम व कृष्ण दोनों ही परमेश्वर न थे। क्योंकि उनके शरीर को तो रावण, सुग्रीव, मारीच, कंस, शिशुपाल आदि–आदि सभी लोग देख सकते थे।

नोट –

इस प्रश्न पर भी पण्डित अखिलानन्द जी ने शास्त्रार्थ के आखिर तक एक भी लफ़ज नहीं कहा। तथा दबी दबी आवाज में इधर उधर की ही बातें कहते रहे तथा अपने बोलने का समय समाप्त कर बैठ गये।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप –

यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है कि–**"परमात्मा की मूर्ति नहीं बन सकती"**। ये मेरा भी दावा है।

जी ने कहा है, यहाँ तो सिर्फ ये लिखा है कि–"इन मन्त्रों का पाठ करके स्नान किया जाये", स्वामी जी ने इन मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं किया मैं पण्डित अखिलानन्द जी को सचेत किये देता हूँ कि अपनी तरफ से मनघड़न्त अर्थ करके एतराज करना, ईमानदारी के बाहर है।

नोट–

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी खामोश हो गये और आखिर तक इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके। एवं पण्डित मनसाराम जी की उपरोक्त बातों को श्रोताओं ने सुनकर सनातनधर्म को बड़ी गालियाँ दी, जिससे पण्डित अखिलानन्द जी पर ढेरों पानी पड़ गया, एवं सनातनी लोग सभी मुर्दों की तरह खामोश बैठे रहे।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

मूर्तियों के बहाने से शराब का पीना और मांस का खाना प्रचलित किया गया, इसलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड ४ अध्याय १०५ में मूर्ति पर बली चढ़ाकर, हिरण, बछड़े, बकरे, मैंढ़े और गऊ तक के मांस को प्रयोग करना लिखा है। इसलिए भाइयों ! ये सनतानी लोग शास्त्रों की दुहाई दे देकर बली के नाम पर मांस खाने की प्रथा को चालू रखते हैं।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

यह ब्रह्मवैवर्त पुराण में नहीं है। सन् १८७५ ई. के छपे सत्यार्थप्रकाश में बन्ध्या गऊ को मारना और उसके मांस को प्रयोग करना भी लिखा है।

नोट–

परन्तु जब पण्डित मनसाराम जी ने पुस्तक से पढ़कर सुनाया कि यह, रुक्मणी के विवाह की तैयारी का जिकर है, तो आप इतना कहकर चुप हो गये, कि–"यह राक्षसों के खाने के लिए प्रस्ताव किया गया था।" हालाँकि वहाँ पर राक्षसों की उपस्थिति का नाम तक भी नहीं है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण स्वामी जी की देखरेख में नहीं छपा, इसलिए इसमें बदमाश तथा धूर्त लोगों ने ऐसे ही मिलावट कर दी, जैसे कि रामायण और महाभारत आदि में कर दी गई है। जब स्वामी जी को पता लगा, तो स्वामी जी ने जितनी उस सत्यार्थप्रकाश की प्रतियाँ मिल सकी उन सबको इकट्ठा करके जला दिया, और शुद्ध करके दूसरा संस्करण छपवाया, और विज्ञापन द्वारा आम जनता को सूचित भी कर दिया कि, उसमें बहुत अशुद्धियाँ होने के कारण उसे जला दिया, अतः हम उस संस्करण को नहीं मानते हैं, और इसीलिए शुद्ध करके दूसरा संस्करण छपवा दिया हैं। इसलिए पहला संस्करण जलाने के योग्य है, मानने के योग्य नहीं। मूर्ति पूजा के बहाने से व्यभिचार फैलाया गया, इसलिये भविष्यपुराण उत्तरपर्व अध्याय १११ में लिखा है कि–"वैश्या को चाहिए कि रविवार के दिन ब्राह्मणों को बिना फीस सम्भोग करने की पूरी छूट दे दे" तो वह विष्णुलोक को सीधी चली जावेंगी और उनकी सद्गति हो जायेगी।

नोट–

इस प्रश्न पर पण्डित अखिलानन्द जी ने अन्त तक भी मुंह नहीं खोला। केवल इधर–उधर की बातें कर समय बर्बाद करते रहे।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

बुद्धि और दलील से भी मूर्ति पूजा साबित नहीं होती है, पत्थर के चुहे पर बिल्ली झपट्ठा नहीं मारती और ना ही पत्थर की बिल्ली पर कुत्ता झपट्टा मारता है। पर दुःख है कि बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

आपने जो जो प्रमाण दिये हैं, ये सभी गलत हैं। और मैं नवलकिशोर प्रैस–लखनऊ की छपी भाषा टीका वाली पुराण को नहीं मानता।............इस बात को लिखित रूप में देते हुए.......... दयानन्द ने जगह जगह पर अपने ग्रन्थों में मूर्तिपूजा को संकेत मात्र से माना है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

पण्डित जी देखिये यह मेरे पास असल पुराण जो वैंकटेश्वर प्रैस बम्बई का छपा हुआ मौजूद है, यह भविष्य पुराण है, अब कहिये क्या इन पर भी आपको मानने में कोई ऐतराज है ? भाईयों सुनों मैं इन्हीं को आप लोगों के सामने पढ़कर सुनाता हूँ।

नोट–

सभी लोगों के सम्मुख श्री पण्डित मनसाराम जी ने उस शिवपुराण तथा भविष्यपुराण को पेश करते हुए उसमें से शिवलिंग की कथा पढ़कर सुनाई तथा एक कथा महाभारत में से दिखलाई तो अखिलानन्द जी मौन साध गये।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

भाइयों "भग" और "लिंग" के अन्य भी अनेकों अर्थ हो सकते हैं या नहीं ? सिवाय इसके कि जो आप समझते हैं। क्योंकि संस्कार विधि के विवाहप्रकरण में **"ओ३म् भगाय स्वाहा"** लिखा हुआ है। क्या इसका भी भग के अर्थ में वही मानोगे ? स्वामी दयानन्द ने वर के लिए लिखा है कि– **"वर स्त्री की योनि को शहद लगा कर चाटे"** ....श्रोताओं में चारों ओर शोरोगुल...............।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

खामोश ! शान्ति से सुनों !! मेरी अर्ज केवल यही है। मुझे पता है कि अब पण्डित जी इस प्रकार की बातें करके अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। पर मैं आज इन्हें छोड़ूँगा नहीं। देखो ? अमरकोष में लिखा है कि **"भग"** शब्द के ६ अर्थ होते हैं। जिनमें १. मुकामें मखशूष (विशेष जगह) २. मरणीय सम्पत्ति ३. जलाहो जलाल (शानौ–शौकत) भी शामिल हैं। ४. योनि शब्द का अर्थ स्वरूप भी होता है, और शिवलिंग का अर्थ निशान भी हो सकता है। लेकिन जहाँ ये अकेला, भग और लिंग शब्द होगा वहाँ केवल यही अर्थ लिये जावेंगे। जैसे कि संस्कारविधि में **"भगाय स्वाहा"** का अर्थ ये है कि मैं अपना मर्तबा (रुतबा) और जाहोज़लाल (शानौ–शौकत) हासिल करने के लिए ये प्रण करता हूँ। मगर जहाँ पर लिंग–योनि या भग और लिंग इकट्ठे आवेंगे वहां पर मुकाम मखशूष के अलावा और कोई अर्थ हो नहीं सकता। इसके अलावा मौका व मुहाल (वक्त के अनुसार) भी देखना जरूरी है। मिसाल के तौर से भागवत में आता है कि–**"गोपिया दोनों हाथों से अपनी योनि को ढक कर पानी से बाहर आई"** और भविष्य पुराण में लिखा है कि **"जिसकी भग (योनि) पर बाल न हो वह राजा की बीवी होती है"**। गरुड पुराण में लिखा है कि–**"इन चीजों का लेप करने से लिंग लम्बा और मोटा हो जाता है"**। इन जगहों पर लिंग, भग और योनि का मुकाम मखशूष ही अर्थ होगा। इसके अलावा अन्य कोई अर्थ हो ही नहीं सकता। ऐसे ही शिवलिंगपूजा की कथाओं में भी लिंग और भग शब्द का अर्थ कुछ और नहीं हो सकता। आपके सामने शिवालय मौजूद है, इसके अन्दर गोल–गोल शकल बनाकर बीच में एक पत्थर का मूसल सा गाड रक्खा है, बताओ वह शिव के कौन से अंग का निशान है ? दोस्तों ये मुकाम मखशूष की पूजा ! बेशर्मी का निशान और मनुष्य को उसके चरित्र से गिराने वाली नहीं है तो और क्या है ? संस्कारविधि में योनि को शहद लगा कर चाटना कहीं भी नहीं लिखा, जैसे कि पण्डित

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

देखो ऋग्वेद ६–४७–१५ का मन्त्र–"रूपं रूपं प्रतिरूपोयभूव………" में कहा है कि इन्द्र अनेक रूप धारण करता है, इससे परमात्मा का अवतार व मूर्तिपूजा साबित होती है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

इस मन्त्र में "इन्द्र" नाम जीवात्मा का है, और वह जन्म जन्मान्तरों में अनेक शरीरों के द्वारा अनेक रूपों को धारण करता है। यहाँ पर परमेश्वर का जिक्र भी नहीं है।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

महाराज ! "इन्द्र" का अर्थ "जीवात्मा" नहीं हो सकता।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

…………निरुक्त का प्रमाण दिखाते हुए………… महाराज ! ये देखिए ! निरुक्त में कहा है कि–"जो कर्म को करता है वह "इन्द्र" है। इसलिए इन्द्र होने की वजह से जीवात्मा का नाम भी इन्द्र हुआ"। इस प्रकरण में इन्द्र का अर्थ, जीवात्मा ही ठीक है। क्योंकि परमात्मा निराकार और एकरस होने की वजह से अनेक रूपों को धारण नहीं करता।

नोट–

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी के मुँह पर चुप्पी की मोहर लग गयी, और यह पहला शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक ढंग से चल कर साढ़े तीन घण्टे के बाद समाप्त हो गया। और दोनों तरफ के श्रोताओं एवं शास्त्रार्थकर्त्ताओं का धन्यवाद करके जलसा समाप्त किया गया। इस शास्त्रार्थ का आम जनता पर आर्यसमाज के वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

वैदिक पुस्तकालय
PDF BOOKS

कुत्ते और बिल्ली के बराबर भी समझ नहीं रखता, वह असली और नकली को भी नहीं पहचान सकता, पत्थर की मूर्ति के मुंह में भोजन ठूसते हैं, पर इश्वरीय नियम को कौन बदल सकता है ? दुनियां में कोई प्राणधारी ऐसा नहीं है, जो रोटी तो खाता हो, और टट्टी न जाता हो। लेकिन ठाकुर जी को खाना तो रोज खिलाते हो, लेकिन टट्टी एक दिन भी नहीं ले जाते। फिर लिंग पर लड्डू को चढ़ाना भी कुछ समझ में नहीं आता। हिन्दुस्तान के चार करोड़ आदमी पेट पर हाथ रख कर सो जाते हैं, उनको यह पता नहीं कि पेट भर कर रोटी कैसे खाई जाती है ? और हजारों यतीम बच्चे कपड़े न होने की वजह से सर्दी व गर्मी में तकलीफ को महसूस करते हैं। परन्तु हम परमेश्वर की बनी जिन्दा मूर्ति (मनुष्य) को छोड़कर पत्थरों को रोटी खिलाते तथा कपड़े पहनाते हैं। जब सोमनाथ के मन्दिर पर महमूदगज़नवी ने चढ़ाई की तो आम राजपूत भी लडने को तैयार बैठे थे, परन्तु पण्डितों ने कहा कि–**"सोमनाथ जी अपनी सुरक्षा स्वयं करेंगे। तुमको लड़ने की कोई जरूरत नहीं है"**। आखिर ! राजपूत लोग पण्डितों के कहने में आकर शान्त बैठे रहे। और महमूद गज़नवी ने सोमनाथ के मन्दिर पर कब्ज़ा कर लिया, और मूर्ति को तोड़कर उससे करोड़ों ही नही अरबों रुपये के हीरे जवाहरात, सोना आदि ऊटों पर लाद कर गज़नी को चला गया। और हज़ारों की तादाद में मर्द, औरत व बच्चों को कैद करके अपने साथ ले गया, परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान का एक–एक बच्चा गज़नी में दो–दो रुपये में बेचा गया, और तब से हिन्दुस्तान के गले में ऐसा गुलामी का फन्दा पड़ा हुआ है कि आज़ाद होने में नहीं आता। जब तक हम इस मूर्तिपूजा की लानत को नहीं छोड़ेंगे, हमारा देश गुलामी से आजाद नहीं हो सकता। परमात्मा हमारे देश को इस बीमारी से जल्दी ही मुक्ति दिलावे।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

भाईयों आपने पण्डित जी का लम्बा चौड़ा भाषण सुना, जो बिल्कुल सार रहित था, ...जनता में हँसी......... हँसों मत ! देखो आर्यसमाज के ग्रन्थों में भी उस्तरे की पूजा, और ओखली व मूसल की पूजा तथा डण्डे व सुहागे की पूजा लिखी है, क्या मूर्ति इन चीजों से भी बुरी है ? पण्डित जी बतावें। ....श्रोताओं में सन्नाटा.......... और ऋग्वेद में यह भी लिखा है कि– **"ऐ इन्द्र ! तेरा पत्थर का शरीर हो"**। इससे मूर्ति पूजा साबित होती है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

यहाँ पर ऋग्वेद में इन्द्र से मुराद राजा है। और राजा के लिए परमेश्वर का ये आदेश है कि तुम्हारा शरीर पत्थर की तरह मजबूत होना चाहिए और संस्कारविधि अनुसार विवाह में जो लड़की का पांव पत्थर पर रखवाया जाता है, उससे भी यही मुराद है कि तुम पत्थर की तरह से अपने गृहस्थ आश्रम में मज़बूत रहना, इन दोनों जगहों पर परमेश्वर की मूर्ति का जिक्र तक भी नहीं है। आपने जो आर्यसमाज के ग्रन्थों में से मूर्तिपूजा साबित करने की फ़िजूल कोशिश की है, मैं आपको चैलेन्ज करता हूं कि आप आर्यसमाज के किसी ग्रन्थ में से ये शब्द निकालकर दिखावें कि–**"उस्तरे की पूजा करो"** या **"ऊखल (ओखली) मूसल की पूजा करो"** या **"सुहागे व डण्डे की पूजा करो"** हाँ ! आर्यसमाज उन चीजों का जायज़ इस्तेमाल मानता है। परमेश्वर की जगह पर उनकी पूजा नहीं मानता। और आर्यसमाज ने कहीं पर भी **"उस्तरे या ऊखल-मसूल वा सुहागे वगैरा का मन्दिर बनाकर पूजा शुरू कर रखी हो तो आप उस जगह का नाम बतलाने की कृपा करें"** वर्ना व्यर्थ में झूठ बोलकर जनता को सन्देह में व गलत रास्ते पर डालने की कोशिश न करें। वैसे भी मैं आपकी ये गलत कोशिश कामयाब नहीं होने दूँगा।

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

सज्जनों मैं वेदों के कुछ मन्त्र आपके सामने पेश करता हूँ जिनमें जबर्दस्त मृतकों का श्राद्ध करना लिखा हुआ है देखो–

"आधत्त पितरो गर्भ कुमारं..............." इत्यादि। **"अधामृताः पितृषु सम्भवन्तु..............."** इत्यादि। **"ये निखाता ये परोवत्ता ये दग्धा ये चोद्धिता..............."** इत्यादि। **"गच्छन्तु येऽमृता..............."** इत्यादि।

इन मन्त्रों में मृतकश्राद्ध का करना मौजूद है, और देखो संस्कारविधि में भी समावर्तनसंस्कार में स्वामी दयानन्द जी ने मृतकश्राद्ध का करना स्वीकार किया है। और विवाह के समय **"मधुपर्क विधि"** में जो मधुपर्क के चारों तरफ छींटे दिए जाते हैं, वो भी पितरों के लिए ही होते हैं, इससे साबित हुआ कि आर्यसमाज भी मृतकश्राद्ध को मानता है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

कविरत्न जी ने अगर्चे बहुत से वेदमन्त्र पेश किये, लेकिन उन मन्त्रों में से एक मन्त्र में भी **"मृतक-श्राद्ध"** शब्द मौजूद नहीं है। इन मन्त्रों का तो कहना ही क्या है, चारों वेदों मे से भी मृतकश्राद्ध शब्द नहीं दिखलाया जा सकता, फिर इन मन्त्रों में एक मन्त्र भी ऐसा मौजूद नहीं है, जिससे ये साबित हो कि मरे हुए पितरों की सेवा करनी चाहिए। और इन मन्त्रों में से एक मन्त्र से भी ये साबित नहीं होता कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से पितरों की तृप्ति होती है। हाँ! इन मन्त्रों में **"पितर"** शब्द मौजूद अवश्य है। जिसके सम्बन्ध में हमारा ये दावा है कि पितर शब्द जीवित मनुष्यों पर ही लागू होता है। मरे हुओं को पितर ही नहीं कहना चाहिए क्योंकि निरुक्त में पितर शब्द के ये अर्थ लिखे हैं कि–**"रक्षा करने वाला"**, **"परवरिश करने वाला"** एवं **"पैदा करने वाला"**, इन तीनों का नाम **"पितर"** है। एवं कविरत्न जी को याद होगा जिन्होने इनको शास्त्रार्थों में कई बार छटी का दूध याद दिलाया उनका नाम ठाकुर अमर सिंह जी है। उन्होंने एक पुस्तक **"जिवित पितर*"** नाम से ही लिखी है जिसमें पितर शब्द के १२४ प्रमाण दिये हैं जिसमें साफ साबित किया है कि पितर शब्द का अर्थ जीवित ही है, मरे हुए नहीं। इसलिए मेरा भी कहना यही है कि रक्षा करने का काम जीवित रहता हुआ ही कर सकता है। मरा हुआ कोई किसी की क्या? अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता। अगर मरा हुआ कोई किसी की रक्षा कर सके तो हिन्दुओं पर कभी मुसीबत ही नहीं आनी चाहिए, जब जरूरत पड़े तो श्री रामचन्द्र जी महाराज धनुष बाण लेकर हमारी रक्षा कर जाया करें। श्री कृष्ण चन्द्र जी अपना सुदर्शनचक्र लेकर हमारी इमदाद कर जाया करे और जब जरूरत पड़े तो भीमसैन जी अपनी गदा लेकर अपने दुश्मनों को बिल्कुल समाप्त कर जाया करें। लेकिन नहीं, भाईयो। मरे हुओ ने आज तक किसी की कोई रक्षा नहीं की, और ना ही कर सकते हैं। शायद कभी पण्डित जी ने अपनी रक्षा कराई हो! वह तो पण्डित जी ही जानें। ....जनता में हँसी..........और न ही मरे हुए बच्चों की परवरिस कर सकते। अगर मरे हुए बच्चों की परवरिश कर सकें तो यतीमखाने (अनाथालय) खोलने की जरूरत ही न पड़े, सबको मरे हुओं के हवाले कर देना चाहिए। तथा मरने के बाद कोई सन्तान भी पैदा नहीं कर सकता, अगर मरने के बाद कोई औलाद पैदा कर सके तो विधवाविवाह की कोई जरूरत ही न पड़े। इससे साफ ज़ाहिर है कि **"पितर"** शब्द मरे हुओं के लिए नहीं बल्कि जीवितों के लिए ही लागू होता है। मरे हुओं को पितर नहीं कहते, जो पण्डित जी ने ये दो मन्त्र पेश किये कि–**"गच्छन्तु येऽमृता.........."** इत्यादि तथा **"अधामृता**

* "जिवित पितर" नामक पुस्तक प्राप्त करने हेतु आप प्रकाशन से सम्पर्क कर सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

चौसठवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "संगरूर" रियासत जीन्द (पंजाब)

दिनांक	:	७ अक्टूबर, सन् १९४० ई. (दोपहर बाद)
विषय	:	क्या मृतकश्राद्ध वेदानुकूल है ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित मनसाराम जी "वैदिक तोप"
शास्त्रार्थकर्त्ता पौराणिकों की ओर से	:	श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
आर्यसमाज के प्रधान	:	श्री भगवानदास जी,

नोट—

हम आर्यसमाज "संगरूर" (पंजाब) के अधिकारियों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं। जिन्होंने यह उर्दू में छपी हुई अप्राप्य शास्त्रार्थ सामग्री प्रकाशनार्थ हमें भिजवाई।

"सम्पादक"

लगो तो अपने चारों ओर बैठे हुए लोगों को भोजन देकर याद में भोजन करो"। अकेले भोजन मत करो, इन दोनों जगहों में मृतकश्राद्ध का नाम तक मौजूद नहीं है। इसके अलावा हम पण्डित जी से पूछना चाहते हैं कि हमारे जो आपस में माता–पिता, भाई–वहन के रिश्ते हैं, क्या वे रिश्ते आपस में जीवों के हैं या शरीरों के? या जब तक जीव व शरीर मिला रहता है अर्थात् इन दोनों के मिश्रण के? तब तक वो ताल्लुकात कायम रहते हैं? अगर कहो कि जीवों के आपस में ताल्लुकात हैं, तो ये बात गलत है। जीव न किसी का माता–पिता और न भाई–वहन है, अगर कहो कि शरीरों के है। तो ये बात भी गलत है। क्योंकि जीव के निकलने के बाद मृत शरीर को हम चन्द घन्टे भी अपने घर में नहीं रख सकते। इससे साबित है कि जब तक जीव और शरीर का मेल है तभी तक हमारा उनका, माता–पिता, भाई–वहन का रिश्ता है। जब जीव व शरीर अलग–अलग हो जाते हैं तो जीव अपने कर्मानुसार दूसरे जन्म में चला जाता है। और शरीर को जला दिया जाता है। फिर हमारा उसके साथ, माता–पिता, भाई–वहन का कोई भी रिश्ता नहीं रह जाता। इससे साबित है कि पितर शब्द जीवितों के लिए ही है। मरे हुओं के लिए नहीं।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

भाइयों! स्वामी दयानन्द जी ने सन्यास लेते वक्त श्राद्ध किया था। और संस्कारविधि में समावर्तन संस्कार के समय यज्ञोपवीत बदल कर पितरों को जल देना लिखा है। इससे साबित है कि आर्यसमाज के स्वामी दयानन्द मृतकश्राद्ध को मानते हैं, और देखों कठ उपनिषद में श्राद्ध शब्द मौजूद है, और अथर्ववेद में ब्राह्मणों को भोजन कराने से यश व स्वर्ग की प्राप्ति लिखी है। सुनो मन्त्र भी सुनो। **"इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु**..............." इस मन्त्र में ब्राह्मणों को भोजन कराने से यश व स्वर्ग की प्राप्ति लिखी है, आप कैसे कहते हैं कि ब्राह्मणों को भोजन कराना नहीं लिखा?

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

पण्डित जी महाराज! कठ उपनिषद कोई वेद नहीं है। और इसमें भी मृतकश्राद्ध शब्द मौजूद नहीं है। अब आप कहेंगे कि इलाजुलगुर्बा में लिखा है। तनिक प्रश्न करने से पहले यह ज़रूर सोच लिया करो कि सामने कौन बैठा है? मैं आपकी ये हेरा फेरी बिल्कुल चलने नहीं दूँगा। बल्कि आपके कहने के मुताबिक श्राद्ध शब्द ही मौजूद है। जो कि जीवितों के लिए ही इस्तेमाल हो सकता है, मरे हुओं के लिए नहीं। रही स्वामी दयानन्द के सन्यास लेने की बात! आपको ये पता होना चाहिए कि स्वामी दयानन्द जी ने जब सन्यास लिया था तो वे सनातनधर्मी थे, इसलिए सनातनधर्म के अनुसार उन्होंने श्राद्ध किया हो तो हम उसके उत्तरदायी नहीं हैं। आप संस्कारविधि में से जनेऊ बदलता हुआ दिखावें, **"अपसव्य"** होने का अर्थ ये है कि खुद बाई तरफ और पितरों को दायी तरफ़ खड़ा करे, इसलिए **'अपसव्य'** का अर्थ जनेऊ बदलना नहीं होता। पर आपको पता कैसे चले? करी तो है केवल मध्यमा ही पास अर्थ करने चले शास्त्रों का!.............सनातन धर्मी श्रोताओं में खलबली...............पण्डित जी महाराज सुनो! देखो महाभारत में लिखा है कि जब दुर्योधन घर से निकला तो मृग उसके अपसव्य थे, तो क्या आपके ख्याल में भी मृगों ने जनेऊ बदला था? हम ब्राह्मणों को भोजन कराने के विरुद्ध नहीं हैं, अगर कोई वेद और शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण हों, और उनको भोजन करावें, और वह हमारे बच्चों को अच्छी शिक्षा दें, और हमको भी नसीहत करें तो इससे हमारा यश भी फैलेगा, और हमको स्वर्ग यानी सुख की भी प्राप्ति होगी। इसलिए हम ब्राह्मणों को भोजन कराने के विरुद्ध नहीं है। लेकिन अथर्ववेद के इस मन्त्र में भी यह बयान नहीं किया गया कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से मरे हुए पितरों की तृप्ति होती है। इसलिए हमारा दावा बदस्तूर कायम है। हम हैरान हैं कि ये अर्थ का अनर्थ क्यों किया जा रहा है?

पितृषु.........." इत्यादि। इन दोनों मन्त्रों में भी "मृता" शब्द नहीं है बल्कि "अमृता" शब्द है। "अ" का पूरा लोप हुआ-हुआ है। जिससे साबित है कि जीवितों को ही पितर कहते हैं। मरे हुओं को नहीं। इसके अलावा पण्डित जी ने जो ये मन्त्र-**"आधन्त पितरो गर्भ कुमार..............."** इत्यादि। देकर बतलाया कि-**"यजमान की स्त्री अगर पिण्ड हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़ते हुए पितरों से प्रार्थना करे कि हे पितरों तुम मेरे गर्भ धारण करो, जिसने कि फूलों की माला पहनी हुई हो, यह कहकर उस पिण्ड को खा जावे तो उस स्त्री के बड़ी अकलमन्द औलाद पैदा होगी"**। पण्डित जी का यह अर्थ बिल्कुल गलत है। पहली बात तो ये है कि पिण्ड खाने से क्या कभी औलाद पैदा हो सकती है? अगर पिण्ड खाने से औलाद पैदा हो जावे तो किसी को विवाह करने की जरूरत ही नहीं रहती। जिसने पिण्ड खाया उसके औलाद पैदा हो गई, फिर स्त्रियों को सम्भोग करने की क्या आवश्यकता है ? मैं पूछता हूं कि अगर कोई स्त्री अपने पति से प्रार्थना करे कि हे पति ! तुम मेरे अन्दर गर्भ धारण करो तो ये तो किसी हद तक ठीक भी है लेकिन पितरों से प्रार्थना करना तो तहज़ीब व धर्म के खिलाफ़ है। और वह भी ऐसी प्रार्थना कि- **"ऐसा गर्भ धारण करो जिसने कि फूलों की माला पहनी हुई हो, तो क्या गुलाब का बगीचा भी पेट में ही लग जायेगा ? जिससे कि लड़का फूलों की माला पहने हुए पैदा होगा।"** पण्डित जी कुछ तो होश की बात करो ....जनता में हंसी............. इससे साबित है कि ये मन्त्र पितृपिन्ड प्रमाण का नहीं है। बल्कि ये मन्त्र तो वेदारम्भसंस्कार का है, जब बच्चा आठ वर्ष का हो जाता है, तो माँ और बाप लड़के को जनेऊ पहनाकर और खुशी से उसके गले में फूलों की माला पहनाकर उसे गुरुकुल में ले जाते हैं। और गुरुकुल के अध्यापक जिनका नाम विद्या पढ़ाने की वजह से **"पितर"** है, उनसे प्रार्थना करते हैं कि हे पितरो ! तुम इस लड़के को अपने गुरुकुल मे ऐसी हिफ़ाजत के साथ रक्खो जैसे माता अपने बच्चे को गर्भ में हिफ़ाजत के साथ रखती है। जिससे ये बच्चा आदमी कहलाने के काबिल बने। क्योंकि बिना विद्या प्राप्त किये, बिना अच्छे संस्कारों के प्राप्त किये कोई भी आदमी, आदमी ही कहलाने के क़ाबिल नहीं बनता। पण्डित जी ने जो ये मन्त्र बोला कि-**"ये निखाता.........."** इत्यादि। इसका अर्थ है कि जो पितर खोदे गयें हैं, जो पितर बीझे गए हैं, जो पितर जलाये गये हैं, जो पितर निकाले गए हैं उनको हमारे मकान पर भोजन करने के लिए बुला लाओ। ये अर्थ भी पण्डित जी का ठीक नहीं है। क्योंकि खोदना, बींझना, जलाना और निकालना ये चारों कर्म शरीरों के साथ होते हैं, जीवों के साथ नहीं, क्योंकि जीव न खोदा जाता है, न बीझा जाता है, न जलाया जाता है न निकाला जाता है। फिर भला इस प्रकार के शरीर हमारे मकान पर भोजन करने को कैसे आवेंगे ? दरअसल इसका अर्थ ये हैं कि जो खोदने वाले हैं, यानी जो नमक, सोना, चाँदी की खानों को खोदते हैं और जो बीझने वाले हैं यानी खेती की विद्या को जानते हैं, और जलाने वाले हैं, यानी हमारे लिए विजली वगैरा को जलाते हैं। और जो निकालते हैं यानी समुद्र में से मोती-मूंगा आदि निकालते है, इस किस्म के जो इन्जीनियर हैं और देश की रक्षा करने की वज़ह से पितर कहलाते हैं, उनको हमारे मकान पर भोजन करने के लिए बुला लाओ। इस मन्त्र से भी यही साबित हुआ कि पितर शब्द जीवितों के लिए ही लागू होता है। मरे हुओं के लिए नहीं। अर्थात् **"अग्निस्वाता"** पितर अग्नि में जले हुओं का नाम नहीं है, क्योंकि अग्नि में शरीर जलता है, जीव नहीं जलता,और जले हुए शरीर का यज्ञ में आकर भोजन करना तथा उपदेश करना असम्भव है, पौराणिकों के मतानुसार शिवपुराण में ब्रह्मा के पसीने से और मनुस्मृति में मरीची ऋषि से अग्निस्वत पितरों की पैदाइश हुई है। लिहाजा **"अग्निस्वाता"** पितर से मुराद अग्निविद्या में माहिर इन्जीनियरों से है। पण्डित जी ने संस्कारविधि के समावर्तनसंस्कार का हवाला दिया है। वहां पर भी ब्रह्मचारी गुरुकुल से निकलता हुआ अध्यापक लोगों से प्रार्थना करता है कि-**"हे पितरों तुम मुझको अपने उपदेश से ऐसे पवित्र करो जैसे ये जल पवित्र है"**। और विवाह संस्कार में मधुपर्क को छींटे देने का अर्थ ये है कि लड़के व लड़की को ये शिक्षा दी जाती है कि-**"जब तुम भोजन करने**

लपक लेती है उसे नीचे नहीं गिरने देती। ....चारो तरफ हँसी का वातावरण.............. क्या यह बात कोई भी व्यक्ति मान सकता है ? क्योंकि अगर पेट में बैठे हुए पितर खीर को खा जावें तो उस खुराक से ब्राह्मणों की भूख दूर नहीं होनी चाहिए। दूसरा पक्ष ये है कि– **"पितर ब्राह्मणों के साथ बैठकर खाते हैं।"** इस पर सवाल ये है कि क्या पितरों के लिए अलग से भोजन परोसा जाता है या पितर ब्राह्मणों वाली थालियों में ही खा जाते हैं ? अगर कहो कि पितरों के लिए अलहदा थालियाँ परोसी जाती हैं तो ये बात प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। और अगर कहो कि ब्राह्मणों की थालियों में ही खा जाते हैं तो ये बताओं की पहले ब्राह्मण खाते हैं या पितर या दोनों एक साथ ? अगर कहो कि ब्राह्मण पहले खाते हैं तो क्या बाद में पितर ब्राह्मणों का झूठा खाते हैं ? अगर कहो कि पितर पहले खाते हैं तो ब्राह्मण पितरों का झूठा खाते हैं। अगर दोनों इकट्ठे खाते हैं तो दोनों ही एक दूसरे का झूठा खाते हैं, ...सभा में सन्नाटा .... झूठा खाना शास्त्रों के विरुद्ध है। अगर पितर खाने के लिए अपने पुत्र आदि के घर आते हैं तो श्राद्धों के दिनों में ऐसे दृश्य दिखाई देने चाहिए कि सैकड़ों जानवर और मनुष्य मर जायें, और दो घन्टे के बाद ही जीवित हो जायें, क्योंकि पितर अपनी योनि को छोड़कर ही तो भोजन करने आवेंगे, पर ऐसे दृश्य हमको आज तक कहीं नहीं दिखाई दिये, या सभा में से कोई खड़ा होकर बतावे कि किसी ने ऐसा दृश्य देखा हो। या स्वयं पण्डितजी बतावें। वर्तमान मनुस्मृति में यह लिखा है कि–जब ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया जाता है तो पितर भी उसके पीछे–पीछे लग जाते हैं, अगर ब्राह्मण बैठता है तो पितर भी बैठ जाते हैं। यदि ब्राह्मण खड़ा होता है तो पितर भी खड़ा हो जाता है। यदि ब्राह्मण चलता है, तो पितर भी चलने लग जाता है। यह बात भी बुद्धि के विपरीत है। भला अगर किसी के चार लड़के हों एक बम्बई में दूसरा कलकत्ते में तीसरा दिल्ली में तथा चौथा लाहौर में रहता हो, और चारों ने श्राद्ध तो एक ही दिन करना है, तो पितर बेचारे के लिए तो बड़ी भारी आपत्ति आ गई। बतलाओ वह बम्बई वाले ब्राह्मण के पीछे फिरेगा या कलकत्ते वाले के या दिल्ली के या लाहौर वाले ब्राह्मण के पीछे ? ....जनता में जबर्दस्त हँसी ....।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

श्राद्धों में पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन इस तरह पहुँचता है जैसे लैटरबक्स के द्वारा चिठ्ठी और मनीआर्डर पहुँचता है। ....जनता में हँसी......... इस तरह पितरों को सब कुछ मिल जाता है। देखो आर्यसमाजी लोग भी स्वामी दयानन्द का श्राद्ध करते हैं, आर्यपर्वपद्यति में दयानन्द के नाम की आहूती देनी लिखी है। **"दयानन्दाय स्वाहा"** इससे सिद्ध है कि मृतक श्राद्ध को आर्यसमाजी भी मानते हैं।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

वाह ! वाह !! खूब कही लैटरबक्स में तो ऊपर से चिट्ठी डाली जाती है। और नीचे से निकाली जाती है। क्या इसी तरह से ब्राह्मण जो ऊपर से खीर खाते हैं वह भी ब्राह्मणों के नीचे से निकल कर पितरों को मिलती है ? अब रही मनीआर्डर वाली बात ! वह तो सर्वथा असत्य है क्योंकि मनीआर्डर करते समय हमको पता लिखना पड़ता है, क्या श्राद्ध करने वाले को भी अपने पितरों का पता है कि वो कहां हैं ? और क्या कभी बिना पते के भी मनीआर्डर होता है ? और फिर मनीआर्डर की तो प्राप्ती वाली रसीद मनीआर्डर करने वाले के पास वापिस लौटकर आ जाती है। तो क्या तुम्हारी खीर पूड़ी की भी कभी कोई प्राप्ती वाली रसीद आई है ? कि वो यथा स्थान पहुँची भी है या नहीं ? या पार्सल रास्ते में ही लुट जाता है ? यह हमारे पास आर्यपर्वपद्यति है। इसमें कहीं भी **"दयानन्दाय स्वाहा"** नहीं लिखा है, अगर हिम्मत है तो इसमें से निकाल कर दिखाओ ?

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

लाइये मैं दिखाता हूँ, ...पुस्तक लेकर आधा घन्टे तक उलटते–पलटते रहे पर उसमें उन

ये सारी की सारी इस पापी पेट की लीला है जिसको आप मजबूरीवश साफ–साफ नहीं कह पा रहे हैं। तथा जिसके लिए लोगों को बहकाया जा रहा है। पण्डित जी महाराज आप सरीखे स्वार्थी लोगों ने धार्मिकग्रन्थों में यह लिख मारा कि पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्धों में ब्राह्मणों को अलग–अलग किस्म के जानवरों का माँस भी खिलाना चाहिए। देखों मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक २६८ में लिखा है कि–"**मछली का मांस ब्राह्मण को खिलाने से पितरों को दो माह तक तृप्ति होती है**"। ....सनातनधर्मियों की तरफ से जवर्दस्त शौरोगुल व हंगामा खड़ा करना..........और पण्डित अखिलानन्द जी द्वारा पण्डित मनसाराम जी को विषयान्तर वतलाना .... सुनों ! सुनो !! अभी क्या हुआ ? पण्डित जी, अभी से बिलबिलाने लगे, अभी तो मैंने पूरी तरह से तुम्हारी पोल खोलने की शुरूआत भी नहीं की, अभी ये हाल है तो आगे क्या होगा ? देखो मृतकश्राद्ध के न मानने में जहाँ और बहुत सी दलीलें मौजूद हैं, वहां एक दलील ये भी है कि श्राद्धों में पितरों की तृप्ति के निमित्त ब्राह्मणों को भिन्न–भिन्न जानवरों के मांस ही नहीं वल्कि गऊ के मांस तक के खिलाने का विधान मौजूद है। और ये वेद के विरुद्ध होने के कारण विल्कुल भी मानने के योग्य नहीं हैं।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न–

..............वीच में खड़े होकर............. पण्डित जी देखो मांस का पिण्ड वेद में नहीं है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

पण्डित जी देखो जव मांस का पिण्ड वेद में नहीं है और मनुस्मृति व शिवपुराण एवं रामायण व महाभारत में मौजूद है, तो इन किताबों में ये लेख वेद के विरुद्ध है। आप मेहरबानी करके यह लिखकर देवें कि –"**मांस का खाना वेद के विरुद्ध है**" तभी शास्त्रार्थ आगे चलेगा, तथा यह भी लिखें कि– "**इन किताबों के लेख वेद विरुद्ध हैं** "। जव तक आप यह लिखकर नहीं देगें तव तक आगे कुछ नहीं होगा।

नोट–

इस प्रकार पण्डित मनसाराम जी ने लिखवाने की जिद पकड़ ली, जिस पर सनातनधर्मियों की तरफ से वड़ा शोर मचाया गया, और इस शोरोगुल ने एक घण्टा खराव कर दिया, आखिर में अखिलानन्द जी ने यह कहा कि–पण्डित मनसाराम जी ने सुवह मूर्तिपूजा के शास्त्रार्थ में जो यह कहा था कि हम स्वामी दयानन्द और लाला लाजपत राय को धर्म नहीं मानते, अगर उनकी किताबों में भी कोई वात वेद के विरुद्ध हो तो हम उसे मानने को तैयार नहीं। अगर पण्डित मनसाराम जी ये बात लिखित रूप में देंगे तो मैं भी इस वात को लिखकर देने को तैयार हूँ। इस पर पण्डित मनसाराम जी ने अपनी इस वात को लिखकर पण्डित अखिलानन्द जी को दे दिया और पण्डित अखिलानन्द जी ने अपनी कही वात को लिखकर पण्डित मनसाराम जी को दे दी कि–"**श्राद में मांस का खाना वेद के विरुद्ध है और जहाँ-जहाँ मांस का खाना लिखा है वह वेद के विरुद्ध है।**" इस तहरीर (लेख) के मिलने पर पण्डित मनसाराम जी ने मांस के प्रकरण को छोड़ दिया, और अपनी तकरीर आगे आरम्भ की।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप–

देखों भाइयो ! तुम्हारे सामने ये वात तो मान ली, अब रही वात मृतकश्राद्ध की ? ये वात अकल और दलील दोनों के खिलाफ है। मैं पण्डित जी से पूछना चाहूँगा और वो नोट भी कर लें, कि पितर यहाँ खाने के लिए आते हैं या यहां पर खाया गया भोजन उनको वहीं पर मिल जाता है ? अगर ये कहो कि यहाँ आकर खाते हैं तो वहाँ कौन बैठकर खाते हैं ? गरूड़ पुराण का एक पक्ष ये है कि– "**पितर ब्राह्मणों के पेट में बैठकर खाते हैं**" जव ब्राह्मणों को न्यौता दिया जाता है तो पितर ब्राह्मणों के पेट में आकर बैठ जाते हैं। जव ब्राह्मण खीर खाता है तो पितर उस खीर को वीच में ही लपक लेते हैं तथा उसे ब्राह्मण के पेट तक पहुँचने ही नहीं देते जैसे चील और वाज़ आदि जमीन से ऊपर फेंके गए रोटी के टुकड़े को ऊपर से ऊपर

पैंसठवां शास्त्रार्थ —

स्थान : "येहट" जिला–सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

दिनांक	: १० व ११ जौलाई, सन् १६६६ ई.
विषय	: मोक्ष विचार
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से	: श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री "विद्याभास्कर"
सहायक	: श्री पण्डित शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी
शास्त्रार्थकर्त्ता ईसाईयों की ओर से	: श्री पादरी गुलाममसीह जी
सहायक	: श्री पादरी डीम साहब जी
अध्यक्ष	: श्री कृष्णलाल (एडवोकेट)
मध्यस्थ	: श्री पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड
प्रांगण	: जनता इन्टर कालेज–बेहट
शास्त्रार्थ के आयोजनकर्त्ता	: जिला आर्यप्रतिनिधिसभा (सहारनपुर) उत्तर प्रदेश
जिला सभा के मन्त्री	: श्री राजेन्द्र प्रसाद आर्य,

शब्दों को, बार-बार ललकारने पर भी नहीं दिखा सके................सभा में सन्नाटा ....।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप-

आपके पद्मपुराण में यह कथा आती है कि, एक ब्राह्मण व ब्राह्मणी थे, वे दोनों मर गए तो ब्राह्मणी तो मर कर कुतिया बनी और ब्राह्मण मर कर बैल बना और वे दोनों जन्म लेकर अपने पुत्र के घर में ही आ गए, जब उस पुत्र के माता-पिता का श्राद्ध आया तो उसने अपनी स्त्री को कहा कि मैं तो बैल को लेकर खेत में हल जोतने के लिए जाता हूँ, आज मेरे माँ-बाप का श्राद्ध है। तुम अच्छी प्रकार के भोजन बनाकर ब्राह्मणों को खिला देना। यह कह कर लड़का तो बैल लेकर खेत में चला गया। पीछे से स्त्री ने खीर बनाई, जब खीर बनकर तैयार हो गई तो उस स्त्री ने खीर का बर्तन चूल्हे से उतार कर चौके में रख दिया, स्त्री तो किसी काम के लिए बाहर गई, इतने में चौके में अचानक आये एक सांप ने खीर के बर्तन में मुंह डाल दिया, कुतिया बैठी हुई देख रही थी, उसने समझा कि खीर में सांप का विष गिर गया होगा, इस खीर को ब्राह्मण खायेंगे तो वो मर जायेंगे, मेरे बेटे को पाप लगेगा। इसलिए उसने अपनी पुत्रवधू के सामने उस खीर के बर्तन में मुँह डाल दिया, कि इस खीर को मेरी झूठी समझ कर, यह बहु ब्राह्मणों को न देवे। बहु ने यह देखते ही चूल्हे में से जलती-जलती लकड़ी निकाल कर कुतिया की पीठ पर ऐसे जोर से मारी कि उसकी कमर टूट गई, और वह कुतिया चिल्लाती हुई भाग खड़ी हुई, स्त्री ने वह खीर फेंक दी, फिर चौका-बर्तन शुद्ध करके भोजन बनाया, और ब्राह्मणों को खिला दिया। इसके बाद वह लड़का भी बैल को लेकर वापिस आ गया, आधी रात के समय वो कुतिया बैल के पास गई और कहने लगी कि देखो ! हमारे बेटे ने आज व्यर्थ ही श्राद्ध किया, मुझे तो आज झूठा टुकड़ा भी नहीं मिला एवं मेरी पीठ भी दर्द कर रही है। ....जनता में तालियों की गड़गड़ाहट........। बैल ने कहा मुझे भी लड़का प्रातः काल से खेत में ले गया, मेरा मुँह रस्सी से बाँध कर अब तक हल में चलाता रहा, एक तिनका भी मेरे पेट में नहीं गया। अब यह आपका ही श्राद्ध है ! और आपका ही पुराण है !! कहिए क्या कहना है पण्डित जी ये कथा झूठी हो या सच्ची ? हमको इससे कुछ मतलब नहीं , पर इससे यह सिद्ध है कि श्राद्ध का भोजन उसके माता-पिता को नहीं मिला, जो उसके घर में ही मौजूद थे, इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण का किया हुआ भोजन मृत पितरों को नहीं पहुँचता।

नोट-

पण्डित अखिलानन्द जी की ये अन्तिम बारी थी, तो वह अब बोलने को खड़े हुए और अपनी पुरानी बातों को हीं दोहराते रहे। नये प्रश्नों को छुआ तक नहीं और ना ही किसी बात का कोई उत्तर दिया, पण्डित मनसाराम जी की इनके बोलने के बाद अन्तिम बारी बोलने की थी। अतः ज्योंहि पण्डित मनसाराम जी बोलने को खड़े हुए त्योंहि पण्डित अखिलानन्द अपने पौराणिक दल के साथ अपनी पुस्तकें बाँधकर रफूचक्कर हो गये। हालांकि यह शास्त्रार्थ के नियमों में पहले ही निश्चय हो चुका था कि जो पक्ष अन्तिम भाषण समाप्त होने से पहले उसको बिना सुने भाग जायेगा या जयकारें आदि बोलेगा, उसकी हार मानी जायेगी। पर इस नियम की परवाह किये बिना ही वह भाग गये, और बाहर से किसी पौराणिक ने एक ईट का टुकड़ा पण्डित मनसाराम जी को दे मारा, जो उनको न लगकर उनके सामने मेज पर आकर गिरा, परमात्मा की कृपा से पण्डित मनसाराम जी बाल-बाल बच गये। फिर शेष रहे लोगों को बिठा कर आर्य समाज मन्दिर में ही पण्डित मनसाराम जी का अन्तिम भाषण जो शास्त्रार्थ विषय का उपसंहार रूप था कराया गया। पण्डित जी ने मृतक श्राद्ध की धज्जियाँ उखाड़ फेंकी, भाषण समाप्त करके शान्ति पाठ हुआ, उसके बाद वैदिक धर्म आदि नारों के साथ सभा विसर्जित की गई। इन दोनों शास्त्रार्थो का संगरूर निवासी व आस पास से आई जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, नगर में सनातनधर्मियों के विरूद्ध सिद्धान्तों पर यत्र-तत्र चर्चा होती रही। एवं आर्यसमाज का बहुत ही अच्छा प्रभाव रहा।

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य उपप्रतिनिधिसभा जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) की ओर से दिनांक १० व ११ जुलाई सन् १९६९ ई॰ को जनता इन्टर कालेज "बेहट" के प्राँगण में यह शास्त्रार्थ हुआ जिसे हजारों व्यक्तियों ने देखा था, ईसाई पादरियों द्वारा प्रचार में चैलेन्ज दिये जाने पर सभा ने उनका चैलेन्ज स्वीकार करते हुए विद्वानों को बुलवा कर शास्त्रार्थ का आयोजन कर वैदिकधर्म की दुन्दुभी बजाई। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की भारी विजय हुई, एवं ईसाईयों को मुंह छुपा कर भागना पड़ा, शास्त्रार्थ लिखित व मौखिक दोनों प्रकार से हुआ था, परन्तु काफी प्रयास करने के बाद मुझे केवल लिखित शास्त्रार्थ ही उपलब्ध हो सका जो इस ग्रन्थ में दे रहा हूँ। भाषा ज्यों की त्यों लिखी हुई है। उसमें एक शब्द की भी रद्दोबदल नहीं है। इस शास्त्रार्थ का इतना अच्छा प्रभाव रहा था कि आज भी उस इलाके के व्यक्ति इस शास्त्रार्थ को बड़ी प्रसन्नता के साथ याद करते हैं।

निवेदक —

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पादरी गुलाम मसीह जी–

– शास्त्रार्थसम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या १ –

१. आर्य समाज के सिद्धान्तानुसार "मोक्ष" की परिभाषा क्या है ?

२. जीवात्मा मुक्तावस्था को कब प्राप्त करता है ?

३. क्या जीवात्मा सनातन और अविनाशी है, तथा क्या वह जन्म और मरण रहित है ? और बदलता नहीं है और आत्मा हर बन्ध में बगैर किसी कमी और बढ़ाव में वही आत्मा है ?

४. मुक्तावस्था में जीवात्मा कितने समय तक रहता है ?

५. जब से संसार की उत्पत्ति हुई, तब से अब तक ऐसे मुक्ति के समय कितने बार पूरे हो चुके हैं अथवा कितने महाकल्प पूरे हुए हैं ?

६. जीवात्मा मुक्तावस्था में लीन होता है या नहीं ? अगर लीन होता है तो किस दरज़े पर पहुँच कर होता है, अगर लीन नहीं होता तो मुक्तावस्था में उसकी रहने की जगह कौन सी है ?

७. तमाम जीवात्मा आवागमन के द्वारा भले कर्मो के कारण कितनी बार "मुक्त" हो चुके हैं।

तारीख १०–७–१९६९ ई॰ हस्ताक्षर —

"गुलाम मसीह"

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री —

– शास्त्रार्थ सम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या १ –

१. तीनों प्रकार के दुःखों से जीव की अत्यन्त निवृति।

२. जब जीव मानव देह में आकर निष्पाप अर्थात् केवल पुण्य मात्र कर्म स्वाभाविक रूप से करने लगता है तब वह मोक्ष का पात्र बनता है।

३. हां, जीव स्वरूप से अनादि और अनन्त है। परन्तु स्वाभाविक रूप से चेतन और कर्म में स्वतन्त्र होने के कारण जो कर्म करता है उनके अनुसार परमात्मा की न्याय व्यवस्था से शरीरों में आता जाता रहता है, विभिन्न शरीरों में जन्म लेने पर भी जीव के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता है परन्तु शरीरों के साधनों के आधार पर उसकी शक्ति के इन्तजार में अन्तर अवश्य प्रकट होता है।

४. परान्त काल तक।

५. असंख्य बार जिन्हें परमात्मा ही जानता है।

६. इस प्रश्न को स्पष्ट करें आपका क्या भाव है ?

७. इस प्रश्न का उत्तर पूर्व प्रश्न के उत्तर में आ चुका है–यह अल्पज्ञ जीव के ज्ञान से बाहर है। केवल सर्वज्ञ परमात्मा ही जानता है।

तारीख १०–७–६६

हस्ताक्षर–

"ओमप्रकाश शास्त्री"

श्री पादरी गुलाम मसीह जी–

– शास्त्रार्थसम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २ –

८. जीवात्मा के बन्ध का क्या कारण है ?

९. क्या ईश्वर का स्वाभाविक गुण पैदा करना है या नहीं ?

१०. ईश्वर जन्म देने में स्वतन्त्र है या नहीं ? यदि स्वतन्त्र है तो जीव कर्मों के आधीन कैसे हो सकता है ? क्योंकि जीव का पाप परमेश्वर की पवित्रता के विरुद्ध है, इसलिए अपने विरुद्ध ही जीव पाप के आधीन होगा या नहीं ? यदि आधीन हैं तो यह बुद्धि और धर्म के विरूद्ध है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि मुकददम इल्ते फामली जीव होगा या परमात्मा ? सत्यार्थप्रकाश अध्याय आठ में स्वामी दयानन्द जी फरमाते हैं कि मुख्य निमित्तकारण परमात्मा है ?

११. जीव के जन्म के कारण कितने हैं और कौन–कौन से हैं ?

१२. आवागमन के चक्कर में अथवा योनियों में ईश्वर, जीव को किस अभिप्राय के लिए भेजता है ?

१३. आवागमन के सबूत में दलीलें दीजिए जिनसे सिद्ध हो सके कि आवागमन की शिक्षा ठीक है ?

१४. क्या ईश्वर पवित्र है या नहीं ? यदि पवित्र है तो पाप पर उसकी कभी विजय होगी या नहीं ?

१५. ईश्वर ने सृष्टि को पैदा किया तो उसको आज तक कितना समय हुआ है ? जिसमें जीवात्मा आवागमन में आता जाता रहता है ? कृपया जवाब दें।

१०–७–६६

हस्ताक्षर–

"गुलाम मसीह"

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री –

– शास्त्रार्थसम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या २ –

८. अविद्या और उसके तजन्य कर्म। इन्हीं कर्मों के कारण जीव बन्धन में डाला जाता है।

...उसका अन्त भी अवश्य होगा। एक किनारे की नदी कभी नहीं...

...की स्थिति में आ जाता है।

हस्ताक्षर –

"ओमप्रकाश शास्त्री"

(दूसरा दिन)

नोट–

शेष अधिकारी १० जौलाई वाले ही रहे। केवल अध्यक्ष के स्थान पर "श्री सेठ रामलाल जी अग्रवाल" को नियुक्त किया गया। तथा आज के दिन प्रश्न आर्यसमाज की ओर से एवं उनके उत्तर ईसाईयों की ओर से देने तय किये गये।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री –

– शास्त्रार्थसम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या १ –

सेवा में,

श्री पादरी साहिब ! कृपया आप निम्न प्रश्नों का समाधान करने की तकलीफ करें।

१. "मोक्ष" शब्द के आपके यहाँ लफ्जी मायने (अर्थ) क्या है ?

२. जीव को ही मोक्ष मिलता है तो आपके अकीदे में जीव की क्या तारीफ़ है ?

३. आया मोक्ष कर्मो पर मबनी है या ईश्वर की इच्छा या रहम पर ?

४. मोक्ष में जीव के क्या अहसासात होते हैं ?

११–७–१९६९ हस्ताक्षर –

"ओमप्रकाश शास्त्री"

श्री पादरी गुलाम मसीह जी –

– शास्त्रार्थसम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या १ –

१. मनुष्य ने जितने पाप किये हैं उनकी सजा से छुटकारे को पाना उसके पापों का क्षमा होना अथवा ईश्वर पापी के पापों को माफ कर दे और फिर कभी याद न करें। पापी मनुष्य की गुनाह कराने की आदत जाती रहे अर्थात् मनुष्य का पाप करने का स्वभाव जाता रहे। पहला युहन्ना अध्याय ३ जो कि खुदा से पैदा हुआ है वह गुनाह नहीं कर पाता क्योंकि उसका तुख्य उसमें बना रहता है बल्कि गुनाह ही नहीं कर सकता क्योंकि वह खुदा से पैदा हुआ है।

२. आत्मा ईश्वर की सृष्टि है।

३. मोक्ष कर्मो पर मबनी नहीं है क्योंकि ईश्वर प्रेम है और उसकी दया और अनुग्रह के द्वारा मोक्ष मिलता है जो यीशु मसीह में सिद्ध होता है।

४. मोक्ष में आत्मा ईश्वर के राज्य में ईश्वर की संगति का हज उठाता है।

११–७–६९ ई० हस्ताक्षर –

"गुलाम मसीह"

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री –

– शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २ –

५. आपके इस पत्र में ज्ञातव्य है कि पाप से छुटकारे का नाम मोक्ष है या पाप की सजा से ? क्या केवल पापों के ढ़ाप देने मात्र से कृत कर्म समाप्त हो सकते हैं ? यदि अशुभ कर्मफल बिना ढ़ाप कर व्यर्थ किये जा सकते हैं तो क्या शुभकर्म भी ढ़ाप कर व्यर्थ किये जा सकते हैं ? स्पष्ट करें।

६. क्या ईसामसीह पर केवल ईमान लाने मात्र से यह सम्भव है कि उसकी गुनाह करने की आदत जाती रहेगी या उसका स्वभाव नष्ट हो जायेगा। यदि हाँ तो फिर क्या ईसाईयों में क्रिमिनल व्यक्ति नहीं हैं ? और यदि नहीं तो फिर ईसा पर ईमान लाना व्यर्थ रहा।

७. यदि मोक्ष कर्मों पर मबनी नहीं है तो फिर निम्नलिखित इन्जील के वाक्य जिनमें शुभ कर्मों को करने का आदेश है तो वह क्यों है ? देखिये –

(अ) क्योंकि परमेश्वर की इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनों कि व्यभिचार से बचे रहो। और तुम में से हर एक पवित्रता और आदर के साथ अपने पात्र को प्राप्त करना जाने। और यह कामाभिलाषा से नहीं उन जातियों की नाई जो परमेश्वर को नहीं जानती कि इस बात में कोई अपने भाई को न ठग और न उस पर दांव चलायें क्योंकि प्रभु इन सब बातों का पलटा लेने वाला है जैसा कि हमने पहिले तुमसे कहा और चिताया भी था।

(थिस्सलुनीकियों ४-४ से -६ पृष्ठ संख्या १८२)

(ब) क्योंकि अध्यक्ष को परमेश्वर का भण्डारी होने के कारण निर्दोष होना चाहिए न हठी न क्रोधी न पियक्कड़ न मारपीट करने वाला और न नीच कमाई का लोभी। पर पहुनई करने वाला भलाई का चाहने वाला संयमी न्यायी पवित्र और जितेन्द्रिय हो और विश्वास योग्य वचन पर जो धर्मोपदेश के अनुसार है बना रहे कि खरी शिक्षा से उपदेश दे सके और विवादियों का मुहं भी बन्द कर सके।

(तितुस के नाम पौलुस प्रेरित की पत्री १-७-९ पृष्ठ संख्या १९१)

(स) क्योंकि सच्चाई की पहचान प्राप्त करने के पीछे यदि हम जान बूझ कर पाप करते रहें तो पापों के लिए फिर कोई बलिदान बाकी नहीं।

(इब्रानियों १०-२६ पृष्ठ संख्या १९६)

(द) पर जो कोई उसके वचन पर चले उसमें सचमुच परमेश्वर का प्रेम सिद्ध हुआ है। हम इसी से जानते हैं कि हम उसमें हैं। जो कोई यह कहता है कि मैं उसमें बना रहता हूँ उसे चाहिए कि आप भी वैसा ही चले जैसा वह चलता था।

(यूहन्ना की पहली पत्री २-५, ६ पृष्ठ संख्या २१२)

(य) वह हर एक को उसके कामों के अनुसार बदला देगा जो सुकर्म में स्थिर रहकर महिमा और आदर और अमरता की खोज में हैं उन्हें वह अनन्त जीवन देगा। पर जो विवादी हैं और सत्य को नहीं मानते वरन अधर्म को मानते हैं उन पर क्रोध और कोप पड़ेगा। और क्लेश और संकट हर एक मनुष्य के प्राण पर जो बुरा करता है आएगा पहिले यहूदी पर फिर यूनानी पर।

(रोमियों २-६-९ पृष्ठ संख्या १३३)

(र) तुम प्रभु मसीह के दास हो और जो बुरा करता है वह अपनी बुराई का फल पायेगा वहां किसी का पक्षपात नहीं।

(कुलुस्सियो ३-२५ पृष्ठ संख्या १८०)

टिप्पणी–

इस आयत में तो अध्यक्ष अर्थात् विशप तक को सच्चरित्र रहने और शुभ कर्म करने का आदेश देकर कर्मों के महत्व को स्पष्ट स्वीकार किया गया है।

८. आत्मा यदि सृष्टि है तो उसका उपादान कारण यानी इल्लतेमादी क्या है ? और खुदा ने उसे क्यों पैदा किया ?

दिनांक ११-७-६६ हस्ताक्षर -

"ओमप्रकाश शास्त्री"

श्री पादरी गुलाम मसीह जी -

– शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २ –

"जय मसीह की"

५. हमने अपने पहले पत्र में इस तरह से नहीं लिखा है जैसा कि आपने प्रश्न पत्र संख्या ५ में लिखा है कि–**"पाप के छुटकारे का नाम मोक्ष है या पाप की सजा से ?"** कृपया आप हमारा पहला पत्र पढ़ने का कष्ट करें उसमें क्या शब्द नहीं है और उस पर फिर प्रश्न करें। हम मानते हैं कि मसीहत में शुभ कर्मों को न करने की शिक्षा नहीं परन्तु यह मानते हैं कि मनुष्य अपने आप शुभ कर्म करने के योग्य नहीं, बल्कि शुभ और अशुभ कर्म अपने जीवन में दोनों कर्म करता है और यह उस समय तक ऐसा ही करता रहेगा जब तक नया जन्म अथवा पवित्रात्मा का जन्म प्राप्त न करे।

(युहन्ना ३ अध्याय पद ३ व ५)

मसीहत में शुभ कर्मों के फल का मुतालबा है

(कुलस्सियों अध्याय १ पद १०)

मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म तो करता है मगर शुभ कर्मों का फल उसको नहीं लगता जब तक वह मसीह यीशु में आत्मिक रीति से पायबन्द नहीं होता जैसे कि खट्टे आम का पेड़ मीठे आम में बन्ध होकर स्वाभाविक रीति से मीठा फल लगता है। इसी तरह आत्मिक जन्म पाये हुए मसीह में स्वाभाविक तौर से शुभ कर्मों का फल लगता है वह स्वाभाविक रीति से अशुभ कर्म नहीं करता।

(पहला युहन्ना ३-६)

मसीहत मानती है कि कोई मनुष्य पूर्ण रीति से पवित्र नहीं है बल्कि पापी है।

(रोमियो ३-६ से २२)

६. मसीहत मानती है कि मसीह पर केवल ईमान लाने से पाप करने का स्वभाव नहीं जाता रहता बल्कि पाप करने का स्वभाव उस समय जाता रहता है जब मनुष्य मसीह यीशु में पाबन्द होकर नई मखलूक बन जाता है जिसका पुराना स्वभाव अथवा पाप करने वाला स्वभाव जो कि बिगड़ा हुआ स्वभाव है न कि विरासती स्वभाव बिगड़े हुए स्वभाव का सुधार यीशु मसीह में जुड़ कर या पाबन्द होकर होता है जो मसीह कहलाये, फिलहाल भी हो वह मसीह में पाबन्द नहीं हुए इसलिए उनका बिगड़ा हुआ स्वभाव बदला भी नहीं। (बाइबल रोमियो ८-९) के अनुसार उनको ईसाई नहीं कहा जाता। बाइबिल का तो फैसला है कि मसीह वह है जिसमें मसीह की रूह है इसलिये जो मनुष्य इसका व्यक्तिगत अनुभव करना चाहे वह मसीह में रूहानी तौर पर पाबन्द होकर कर सकता है।

७. हम पहले भी लिख चुके हैं कि मसीहियत शुभ कर्मों का खण्डन नहीं करती बल्कि शुभ कर्मों के काम का मुतालबा करती है अर्थात् शुभ कर्मों का फल और वह शुभ कर्मों का स्वभाव मसीह में पाबन्द होकर प्राप्त करता है जिसका अनुभव बहुत से सच्चे मसीहियों ने अपने जीवन में किया है वह नये मखलूक बने हैं और शुभ कर्मों का फल लाते हैं।

८. आत्मा ईश्वरीय मखलूख है, ईश्वर ने अपनी शक्ति से नेस्त को हस्त किया है. बाईबिल में लिखा है– "ईश्वर अपनी आज्ञा से चीजों को ऐसे बुला लेता है जैसे मौजूद है ईश्वर ने आदम को बनाया उसने जीवन का दम फूँका कि खुदा जो मुहब्बत है अपना महबूब बनाया। मुहिब के लिए महबूब का होना जरूरी है।"

हस्ताक्षर –

दिनांक ११–७–६६

"गुलाम मसीह"

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री –

– शास्त्रार्थसम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या ३ –

९. प्रश्न यह था कि क्या ईसामसीह पर ईमान लाने मात्र से पाप की निवृत्ति जिसे आपने आदत या खसलत कहा था–वह खत्म हो जाती है ? इसका आपने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

१०. आदम को भी नेस्त (अभाव) से हस्त (भाव) नहीं किया गया बल्कि उसके लिए भी मिट्टी जो उसकी देह का इल्लतेमादी था उसे उसने इस्तेमाल किया तो फिर जीवों को पैदा करने के लिए कौन इल्लतेमादी अर्थात उपादानकारण था ? क्या यह मुमकिन है कि नेस्त से हस्त हो जावें और यदि जीव आपके अकीदे में पैदा होता है तो फिर वह अनन्त नहीं हो सकता जैसा कि आप मानते हैं, क्योंकि जो पैदा होता है वह फना (नष्ट) भी होता है। और जो पैदा नहीं होता वह फ़ना (नष्ट) भी नहीं होता। यह सिद्धांत है।

११. दो परस्पर विरोधी सिद्धांत नहीं माने जा सकते या तो मोक्ष आपके ईश्वर की कृपा पर मानना होगा या कर्मों के आधार पर। बाईबिल में जो परस्पर विरोधी सिद्धांत हैं उनका समन्वय आप कैसे करेंगे ?

१२. यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र ज्ञान स्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षण युक्त है उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्ति वाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं ? और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया ? जैसा कि बाईबिल में लिखा है – "जब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया। और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया।

२२–७–१९६६ (पर्व १ आयत २६–२८)

हस्ताक्षर –

"ओमप्रकाश शास्त्री"

नोट–

उपरोक्त प्रश्नों का पादरी साहब उत्तर न दे सके उनके साथ पादरी डीन साहब भी थे। सम्भवतः इस कारण घबराकर उठ भाग खड़े हुए। आर्य समाज की भारी विजय हुई आर्य समाज, व श्री स्वामी दयानन्द जी की जय जयकार से सारा आकाश गूँज उठा। और प्यारा 'ओ३म्' ध्वज लहराने लगा।

निवेदक –

"राजेन्द्र प्रसाद आर्य"

मन्त्री आर्य उपप्रतिनिधि सभा (सहारनपुर)

शास्त्रार्थ के अन्त में मध्यस्थ की घोषणा

१० और ११ जुलाई सन् १९६९ ई॰ को आर्य उपप्रतिनिधिसभा जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) की ओर से बेहट (जिला सहारनपुर) में ईसाई पादरी श्री गुलाम मसीह और आर्य समाज के सुप्रसिद्ध प्रचारक श्री पण्डित ओमप्रकाश शास्त्री के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ उसको आदि से अन्त तक सुनने और लिखित शास्त्रार्थ को भी देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ११ जुलाई को मध्यस्थता के लिए नियम पूर्वक मेरा नाम प्रस्तुत किया गया था। जो सर्वसम्मति से अनुमोदित हुआ। मैं श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री को जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रतिनिधि रूप से शास्त्रार्थ किया विजयी घोषित करता हूँ। क्योंकि उन्होंने बड़ी योग्यता प्रमाण और तर्क द्वारा अपने पक्ष को जनता के सम्मुख रखा। पादरी गुलाम मसीह जी ने अच्छी योग्यता और शिष्टता के साथ अपने पक्ष को रखने का प्रयत्न किया जिसके लिए में उनकी प्रशंसा करता हूँ। किन्तु पुनर्जन्म आदि न मानने और बुद्धि विरूद्ध ईसाई मन्तव्यों में विश्वास के कारण वे पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री के बहुत से प्रश्नों और प्रबल तर्को का कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं कर सके यह निष्पक्ष जनता को स्पष्ट प्रतीत हुआ।

हस्ताक्षर –

"धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड"

शास्त्रार्थ के अन्त में

ईसाईमत पर अनुसंधानात्मक भाषण !

श्री पण्डित शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी –

नक्कारा धर्म का बजता है, आये जिसका जी चाहे।
सदाकत वेद अकदस आजमाये, जिसका जी चाहे।।

आजकल ईसाई पादरी हर ग्राम और हर नगर में छा गए हैं। कई स्थानों पर उन्हें शास्त्रार्थ के लिए कहा गया। पता नहीं यहाँ इस बेहट (ग्राम) में लुके छिपे इन्होंने किस प्रकार चैलेन्ज किया ? और मैं आर्य उपप्रतिनिधि सभा जिला सहारनपुर के अधिकारियों को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार की और मुझे भी आपके दर्शन करने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ। इनकी शिक्षा यह है कि यदि तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। मैंने कहा कि यदि यह सत्य है तो इस दृष्टिकोण से योरुप और अमेरिका में ईसाइयत का दिवाला निकल चुका है क्योंकि वहां इस सिद्धान्त का नामोनिशान तक दिखाई नहीं देता। अमेरीका और योरुप की ईसाई जातियाँ युद्ध की तय्यारियों में वियतनाम में युद्ध में संलग्न होकर परमाणु बम तथा हाइड्रोजन बम से भी अधिक विनाश करने वाले हथियारों से सुसज्जित होकर संसार को सर्वनाश के मार्ग पर ले जाने में वेग के साथ भागी जा रही हैं। परन्तु अमेरिका आदि देशों मे रहने वाले ईसाई इस भारतवर्ष में आकर थप्पड़ खाने का उपदेश देना भी कोई अर्थ रखता है ? जिसके लिए करोड़ों डालर व्यय किये जा रहे हैं। यह सब दया के वश में होकर या भारत को मुक्ति दिलाने के कारण नहीं किया जा रहा है, अपितु इसमें भारत की शक्ति को जड़ से उखाड़ कर एशिया को साम्राज्यवाद के चंगुल में फिर से फँसाने की भावना काम कर रही है। यही भाव हजरत ईसा और उनके शिष्यों के दिल में विद्यमान थे जो उस समय के बादशाह ने असफल बना दिए। इन्जील से सिद्ध है कि हजरत ईसा मुक्तिदाता के रूप में सर्वसाधारण को बहका कर अपने पीछे चलाना चाहते थे, जिससे राज्य अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह किया जा सके।

मसीह ने शिष्यों को आदेश दिया कि वे हथियार खरीदें। अपने माल असवाब और अपने कपड़े बेचकर भी तलवारें खरीदें। शिष्यों ने आदेश का पालन पूर्ण रूप से किया। यह नहीं कहा कि हम शान्ति दूत हैं। संसार के मुक्तिदाता को तलवार से क्या काम ? तलवारें खरीदी गई, उनका उपयोग भी हुआ। किन्तु बादशाह को गुप्तचरों ने सूचित कर दिया था, जिससे मसीह को पकड़ने का निर्णय राज्यसत्ता को करना पड़ा। मसीह के प्यारे शिष्यों मे एक **"यहूदा"** नाम के शिष्य ने केवल तीस रूपये रिश्वत के लोभ में मसीह को पकड़वाने में कुछ भी संकोच न किया। वह सिपाहियों को वहाँ ले आया, जहाँ ईसा अपने शिष्यों समेत छिपे हुए थे। यहूदा ने मसीह के पैर पकड़ कर कहा–**"रे रढब्बी ! सलाम"**। सिपाही समझ गये कि यही ईसा है जो यहूदियों का बादशाह बनना चाहता है। मसीह के शिष्य लड़ने को उद्यत हो गए। एक ने तलवार भी चलाई और एक सिपाही का कान कट गया। किन्तु शिष्यों की हार हुई। ईसामसीह पकड़े जाकर अपराध सिद्ध होने पर फाँसी पर चढ़ा दिए गए। उनके शरीर पर एक तख्ती लटका दी गई कि–**"यह यहूदियों का बादशाह है"**। सिपाहियों, यहूदियों और जनता ने ईसा से कहा कि आप कल तक तो चमत्कार व करामात के दावेदार थे आज क्या हो गया ? यदि कोई चमत्कार है तो फाँसी से बचकर दिखाइए। तब हम जानें कि तू सच्चा ईश्वर का रसूल है। इस अवस्था में हम तुम्हें अपना बादशाह स्वीकार कर लेंगे। मसीह चिल्लाया और ईश्वर से प्रार्थना की कि–**"ऐली ऐली लिमा सबक तनी"** ऐ परमेश्वर ! ऐ खुदा !! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया। यह मौत का महादुःख मुझ से टाल दे। किन्तु कुछ न बन सका। न कोई चमत्कार ही दिखाया जा सका और न ही कोई करामात। आखिर फाँसी ने अपना काम किया और प्राण निकल गये। युसुफ ने लाश को कबर में दफना दिया। परन्तु दूसरी ओर ईसा के शिष्य उनकी लाश की ताड़ में थे उन्होंने मौका पाकर तुरन्त कबर उखाड़ फैंकी, लाश गुम कर दी गई और प्रसिद्ध कर दिया कि मसीह फाँसी पाकर फिर पुनः जीवित हो आकाश को चढ़ गया। वह संसार के पापों के बदले स्वयं फाँसी पर चढ़ कर संसार के लिए कुफ्फारा करके ईमानदारों को पापों से मुक्ति दिलवा गया। पादरियों को अवसर मिल गया कि वे मसीह के नाम का ढिंढोरा पीट कर लोगों को ईसाई बनावें, अपने सांसारिक तथा राजनैतिक स्वार्थो को पूरा करें कि मसीह तुम्हारे लिए मुक्तिदाता है। यदि तुम मसीह की भेड़ों में शामिल होकर ईसा पर विश्वास लाओंगे तो तुम्हारे पाप क्षमा कर दिए जायेंगे। तुम्हारी सिफारिश मसीह स्वयं करेंगे और तुम मुक्ति का अधिकार प्राप्त करोगे। जनता को बहकाने का यह ढंग खूब निराला है। यदि मसीह में करामात व चमत्कार होता तो फाँसी से बचने की करामात दिखा कर यहूदियों की शर्त पूरी करके उनके बादशाह बनते। मसीह से उनके देश के लोगों ने करामात देखनी चाही तो न दिखा सके और कह किया कि नबी अपमानित नही होता। किन्तु अपने देश में इसलिए आसरा छोड़ना पड़ा है। आज पादरी लोग अशिक्षितों के सामने भारत में करामात की डींग मार रहे हैं । यदि उन्हें अपने वचन का ध्यान है तो–**"साहस करके आयें और जहाँ चाहें आयें और जहाँ चाहें चमत्कार दिखायें या शास्त्रार्थ कर लें"** आर्यसमाज हर समय तैयार है। मसीह के जीवित हो आकाश पर जाने की कहानी को ठीक करके दिखायें अन्यथा ईश्वर से भय खाएं और भ्रमों से बचे । स्वर्ण, सुन्दरी तथा भूमि का लोभ देकर लोगों को ईसाइयत के चंगुल में न फंसायें। मैं भारतीय, अमेरिकन और यूरोपियन पादरियों को आर्य समाज की ओर से खुला चैलेन्ज देता हूँ कि वे ईसामसीह को मुक्तिदाता[1] सिद्ध करें। जबकि बाइबिल स्वयं इस बात का निषेध करती है। बाइबिल में कितने ही स्थानों पर शुभकर्मो से मुक्ति का

---

[1] **"ईसामसीह मुक्तिदाता नहीं था"** वैदिक विद्वान श्री डाक्टर श्रीराम आर्य कृत यह एक छोटा सा ट्रैक्ट हमारे द्वारा प्रकाशित हुआ, जो अत्याधिक लोकप्रिय होने के कारण लाखों की तादाद में छपा व वितरण हुआ, यह महत्वपूर्ण लघुपुस्तिका अब भी हमारे यहां मौजूद है, जो भी सज्जन चाहें वह प्रकाशन से पत्राचार कर मंगा सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

हालांकि स्वयं बाइबिल में फरिश्तों को भी **"खुदा के बेटे"** लिखा है। फिर शुभकर्मी तमाम के तमाम खुदा के बेटे है। सन्धि करने वाले खुदा के पुत्र हैं। दाऊद बादशाह, मसीह और खुदा का पहला बेटा कहलाया। सुलेमान का भी मरसह हुआ जिससे वह भी मसीह और खुदा का बेटा है। विशेष कर आदम को बिना माता पिता के सीधा खुदा से पैदा हुआ माना गया है। इसलिए हजरत ईसा के केवल खुदा का इकलौता बेटा होने की विशेषता और इस कारण से उसके द्वारा पापों की क्षमा की आशा का सिद्धांत समाप्त हो गया। ईसाईयों का यह प्रोपैगण्डा कि ईसा पर ईमान लाने से पाप क्षमा होकर स्वर्ग मिलता है और ईसा खुदा का बेटा है। वह स्वयं बाइबिल के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होने से भी अमान्य है।

फिर हजरत ईसा इब्नमरियम या मरियम के बेटे भी कहलाते हैं इसलिए यह स्वयं पाप से रहित थे, यह सिद्धान्त भी गलत है। क्योंकि आदम ने खुदा की अवज्ञा करके स्वर्ग के निषिद्ध वृक्ष से फल खाया और आदम के इस अपराध के कारण भूमि धिक्कृत हुई किन्तु आदम को बहकाया उसकी स्त्री हव्वा ने। इसलिए स्त्री क्यों कर पापों से पवित्र हो सकती है? ईसाईयों के सिद्धान्त के अनुसार यदि ईसामसीह बिना बाप का होने से निष्पाप थे तो स्त्री से पैदा होने के कारण कम से कम आधे पापी तो अवश्य मानने होंगे। फिर बाईबिल की स्वयं आज्ञा है कि–

१. कोई सत्कर्मी नहीं। एक भी नहीं। **–रोमियों**

२. कौन कह सकता है कि मैने अपने दिल को शुद्ध किया है और पाप से शुद्ध हूँ। **–अमसाल**

३. यदि हम कहें कि हम निष्पाप हैं तो हम झूठे हैं और अपने आपको धोखा देते हैं। **–युहन्ना**

४. कोई मनुष्य पृथ्वी पर ऐसा सत्यवादी नहीं कि नेकी करे और भूल न करे। **–वाअज़**

५. कोई मनुष्य जैसी जान तेरे हजूर में सत्यवादी नहीं ठहर सकती। **–ज़बूर**

हजरत ईसा भी पादरी के कथनानुसार स्त्री से पैदा होने के कारण बाइबिल के सिद्धान्त को सामने रखते हुए सच्चे न थे। हम यह स्वयं नहीं कहते अपितु बाइबिल कहती है। इसलिए ईसाई मित्रो को हमारे से नहीं अपितु बाइबिल से गिला होना चाहिए। और यदि ईसाई बाइबिल को सच्चा मानते हैं तो ईसा के मर्द से पैदा न होने का सिद्धान्त केवल इन्हें निष्पाप सिद्ध करने के लिए काफी नहीं है। जबकि स्त्री से पैदा होने पर भी निष्पाप होना बाइबिल से सिद्ध करना कठिन है। ईसाइयों का सिद्धान्त है कि ईसामसीह मरियम से बिना अपने पिता के द्वारा उत्पन्न हुए थे। मरियम पवित्रात्मा से बिना अपने किसी मानवीय साधन से, गर्भवती हुई जिससे ईसामसीह की उत्पति हुई यह भी चमत्कार के रूप में माना जाता है। किन्तु इस प्रकार की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। क्योंकि किसी भी मनुष्य की केवल माता से (पिता के बिना) उत्पत्ति असम्भव है। यह बात प्रकृति नियम के प्रतिकूल होने से बुद्धिमानों के निकट भी मानने योग्य नहीं है। सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कुँवारी से पैदा होने के सिद्धान्त पर भारी समालोचना की है। आज तक कोई ईसाई इसका उत्तर नहीं दे सका। फिर ईसाई ईसा को कुंवारी के पेट से पैदा शुदा मानते हैं। यह सबसे बड़ी भूल है, जिससे ईसाईयों को हर स्थान पर लज्जित होना पड़ता है। असली बाइबिल इबरानी भाषा में थी इसमें **"अलमा"** शब्द आया है जिसका अर्थ कुंवारी नहीं बल्कि युवती होता है। चाहे वह विवाहिता हो। केवल कुंवारी की शर्त इसके साथ नहीं।

मरियम की सगाई यूसुफ (CARPENTER) के साथ हुई जो यरूशलेम के अलील सूबा में नासरत के स्थान पर आबाद था। उस समय यहूदियों की रीति के अनुसार कुछ लोग सगाई के बाद अपनी मंगेतर से मेल जोल करने में आजाद समझे जाते थे। किन्तु अच्छे लोगों में यह बुरा भी समझा जाता था। फिर भी

प्राप्त होना लिखा है। देखिये—

१. इस प्रकार ईमान भी, यदि उसके साथ शुभकर्म न हो तो वह अपनी सत्ता से मुर्दा है।

—याकूब

२. तू इस बात पर ईमान रखता है कि खुदा एक है। खैर ! अच्छा करता है..........किन्तु ऐ निकम्मे आदमी ! क्या तू यह भी नहीं जानता कि ईमान शुभकर्मो के बिना बेकार है।

—याकूब

३. बस ! तुमने देख लिया कि मनुष्य केवल ईमान से नहीं अपितु शुभ कर्मो से रास्तबाज बनता है।

—याकूब

४. जो मुझसे, ऐ खुदावन्द ! ऐ खुदावन्द !! कहते हैं। उनमें से हर एक आकाश के साम्राज्य में न पहुँचेगा। किन्तु वही जो मेरे आसमानी बाप की इच्छा पर चलता होगा। —मती

५. तुम धोखे में न पड़ो। ईश्वर ठट्ठे में नहीं उड़ाया जाता क्योंकि मनुष्य जो कुछ बोता है वही कांटेगा। —गलेतों

६. तू अपनी बातों से ही पापी और अपनी बातों से ही निष्पाप ठहरेगा। —मती

७. फिर उसने कहा—होशियार हो कि तुम क्या सुनते हो ? जिस नाप से तुम नापते हो उसी से तुम्हारे लिए नापा जायेगा। —मती

८. कि हाकिम धर्मात्माओं को नहीं, पापियों को भय का कारण है। बस यदि तू चाहे कि हकूमत से न डरे तो नेकी कर। —रोमियों

९. क्योंकि प्रभु की आँखें धर्मी लोगों पर हैं और उसका कान उनकी प्रार्थनाओं पर किन्तु पापी खुदावन्द की दृष्टि में हैं। —वतरस

१०. क्योंकि इब्नेआदम अपने पिता के जलाल में अपने फरिश्तों के साथ आयेगा तब हर एक को उसके कर्मो के अनुसार बदला देगा।

—मती

बाईबिल के दस प्रमाण पेश किए गए हैं, कि मुक्ति ईमान पर नहीं अपितु शुभकर्मो से प्राप्त होती है। यहाँ वैदिक सिद्धांत है जो वेद के कितने ही मन्त्रों में बताया गया है। यहाँ केवल एक मन्त्र देना ही पर्याप्त होगा—

प किल्विषमत्त ना धारोरित्त न यन्मित्रैः सममान एति।
आनूनं पात्रं निहितं न एतत पक्तारं पकः पुनराविशगति।।

(अथर्ववेद)

इस मन्त्र का भाव यह है कि ईश्वर के न्याय में कोई भी दोष, कभी नहीं है। सिफारिश भी नहीं चल सकती और न कोई मनुष्य अपने किसी मित्र या पीर पैगम्बर की सहायता से स्वयं किए हुए पाप के बदले से चूक सकता है। ईश्वर ने हर रूह के साथ मन का पात्र लगाया है, दिल के बर्तन में जैसे भी अच्छे बुरे कर्मो के प्रभाव डाले जावें, उसी के अनुसार फल देना ईश्वर का नियम है। जैसा कोई बोता है वैसा ही काटता है, ईश्वरीय न्याय में रत्ती भर का अन्तर नहीं आता। बाइबिल के उपर्युक्त अन्तिम प्रमाण में आदम के बेटे को फरिश्तों के साथ आकर और कर्मो के अनुसार बदला देने का वर्णन है। इब्नआदम का अर्थ यहाँ ईसामसीह से है। बाइबिल के हिन्दी अनुवादों में इसके अर्थ मनुष्य के पुत्र किए गए हैं। जिससे स्पष्ट है कि ईसामसीह मनुष्य का पुत्र था। किन्तु ईसाईयों ने उसे खुदा का इकलोता बेटा कहना शुरू कर दिया।

कर लिया जाये। यह है ईसाईयत के सिद्धान्त का संक्षेप। हर सम्प्रदाय ने मुक्ति को सस्ता करने के अपने अपने नुस्खे बनाये हुए हैं। जिनका परिणाम पाप की बढ़ती हुई यह अवस्था है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इसी प्रकार ईसाई मित्रों ने ईसामसीह को पापों की क्षमा का साक्षी मानकर पुण्य की समाप्ति कर दी है। ईसामसीह पर विश्वास लाना अत्यावश्यक है। किन्तु खुदा और पवित्रात्मा पर भी ईमान लाने की शर्त है। अन्यथा तसलीस बेचारी अधूरी रहेगी। आज दिन तक समझदार लोगों को तसलीस का सिद्धान्त समझ में नहीं आया। बड़े बड़े तार्किक विद्वान व फिलास्फरों ने इसको समझने से कानों पर हाथ धरे हैं। तसलीस का एक भाग पवित्रात्मा हैं और यह क्या है ? उसे बाइबिल के शब्दों में ही पढ़िये-

"और ऐसा हुआ कि जब लोग बपतिस्मा (ईसाईयत की धर्मदीक्षा) पा चुके और यीसु भी बपतिस्मा पा कर प्रार्थना कर रहा था, तो आसमान खुल गया और पवित्रात्मा शरीर के रूप में कबूतर के समान यीसू पर उतरा।"

ईसाई मानते हैं कि ईश्वर ईसा से पवित्रात्मा के द्वारा बात करता और अपना इलहाम भेजता था। यह पवित्रात्मा कबूतर की शकल में ईसामसीह पर उतरता था ? यह बात विचारने योग्य है और आप सभी-दूर-दूर से आये हैं इस बेहट कस्बे में। भला भाइयों आप खुद ही सोचो क्या कबूतर मनुष्य की भाषा बोल सकता है ? ऐसी अवस्था में हजरत ईसामसीह को परमेश्वर के ज्ञान का अर्थ मालूम होना कैसे सम्भव हुआ ? कबूतर ईश्वरीयज्ञान, आज्ञाएं व इलहाम ईसामसीह पर कैसे पहुँचा और समझा सका ? इसका उत्तर ईसाई पादरियों को देना होगा। ये ईसाई पादरी यीसू के चमत्कारों के बारे में बतलाते फिरते हैं और यहाँ भी हरिजन भाइयों को इन्होंने ईसाई बनाया है तो सुन लो मसीही चमत्कारों की वास्तविकता क्या हैं ?

जनता में ईसाई लोग बड़ा प्रचार ईसाई चमत्कारों का कर रहे हैं किन्तु इनकी कुछ भी वास्तविकता नहीं। मसीह का पहला चमत्कार शराब के बढ़ा देने के बारे में हैं। पानी डालकर शराब को बढ़ा देना क्या बड़ी बात है ? फिर यह कौन सा शुभ कर्म था जिस पर इतनी डींग हाँकी जाये। लड़की को जीवित कर देने के बारे में स्वयं इंजील में लिखा है कि-**"वह मरी नहीं अपितु सोती है"**। यरूशलेम के एक तालाब का भी इंजील में वर्णन आता है कि-**"उससे कई रोग दूर हो जाते थे"**। यहीं से थोड़ी दूरी पर देहरादून में सहस्र धारा में गन्धक का जल प्रवाहित होता है जिसके कारण कई रोगों को दूर करने की शक्ति उस जल में है। इंजील के वचन के अनुसार ईसामसीह ने जबकि वह भूखे थे, अंजीर के वृक्ष से फल मांगा और उस फल का मौसम न होने के कारण अंजीर के वृक्ष ने फल नहीं दिया तो हजरत ईसा ने उसे श्राप देकर सुखा दिया। इसमें मसीह पर मौसम का ज्ञान न होने का दोषारोपण होता है। फिर खुदा की अवज्ञा भी की क्योकि अंजीर का पेड़ ईश्वरीय नियम के आधीन था वह बे मौसम कैसे फल देता ? चमत्कार तो यह होता कि हजरत ईसा की आज्ञा से उस अंजीर के पेड़ पर मौसम के बिना भी उस समय फल लग जाता, पक जाता और उससे मसीह अपनी भूख मिटा सकते । जब ईसामसीह अपनी भूख को वश में नहीं रख सके तो दूसरे चमत्कार वह क्या दिखा सकते थे ? इसलिए चमत्कार का वास्ता देकर अशिक्षितों को बहकाने की बात दूसरी है। अन्यथा इंजील यह क्यों लिखती ? देखिये -

यीसू ने उनसे कहा कि नबी अपने देश और सम्बन्धियों और घर के सिवाय कहीं अपमानित नहीं होता और वह कोई चमत्कार वहां न दिखा सका। (इंजील पृष्ठ ३६)

क्योंकि झूठे मसीह और झूठे नबी उठ खड़े होंगे और ऐसे बड़े निशान और विचित्र काम दिखायेंगे कि यदि सम्भव हो तो बड़ों को भी भ्रम में डाल देवें। (इंजील पृष्ठ २८)

इसका रिवाज था। इसलिएं ईसामसीह युसूफ के द्वारा मरियम से पैदा हुए क्योंकि विवाह से पूर्व और सगाई के बाद हजरत ईसामसीह पैदा हुए, इसलिए वह इब्नमरियम के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसमें खुदा का इकालौता बेटा होने की कोई भी बात नहीं। बाइबिल स्वयं हजरत ईसा के पिता का नाम यूसुफ बताती है जो बढ़ई (Carpenter) था। देखिए–

१. वह यूसुफ का बेटा यसूहनासरी है। (नया अहदनामा)

२. क्या वह बढ़ई का बेटा नहीं और इसकी माता मरियम नहीं कहलाती। (नया अहदनामा)

३. वह यूसुफ का बेटा था। (नया अहदनामा)

४. उसकी मां ने उसे कहा कि ऐ बेटे ! तूने हमसे क्यों ऐसा कियां और चला गया ? देख, तेरा पिता और मैं कुढ़ते हुए तुझे ढूंढ़ते थे। (इंजील)

५. और जिस समय माता पिता उस लड़के यीसू को अन्दर लाये। (इंजील)

मैं समझता हूँ ये पांच प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि ईसामसीह हजरत यूसुफ के पुत्र थे। जो दाऊद नबी के वंश में था। यह वंश अबीद से चला था, जिसको उसकी विधवा माता ने अपनी सास की आज्ञा से अपने मरे पति के लिए, पति के किसी निकट के सम्बन्धी के द्वारा पैदा किया था। इसलिए बाइबिल में हजरतमसीह को इब्नदाऊद बार–बार लिखा है। दाऊद के वंश में यूसुफ था, इसलिए हजरत ईसामसीह को खुदा का इकलौता बेटा सिद्ध करके उससे पापों की क्षमा, सिफारिश और स्वर्ग की प्राप्ति के सारे सिद्धान्तों की सफाई हो गई। नहीं तो बाकी मनुष्य खुदा के बेटे न मानकर शैतानों के बेटे मानने होंगे। जिसे ईसाई लोग भी किसी रूप में मानने को तैयार नहीं होंगे।

हजरत ईसा का स्वयं अपना कहा हुआ आदेश भी बताना अत्यावश्यक है कि उनके नाम का जप करने वाले ईसाई भाई होश करें और संसार को मनुष्य पूजा के गहरे गर्त में गिराने का कारण न बनें। लीजिए ! इंजील में स्वयं ईसामसीह का आदेश है कि –

"तू मुझे नेक क्यों कहता है ! नेक कोई नही, मगर एक अर्थात् खुदा है"।

"बाइबल पृष्ठ संख्या ६३८"

ईसाई तीन खुदा मानते हैं। इनका नाम तसलीस(त्रित्व) रखते हैं।[1]ईश्वर, [2]पवित्रात्मा और [3]यीसू मसीह। इन तीनों पर विश्वास लाये बिना ईसाइयत अधूरी है। जो इन तीनों में से एक पर भी ईमान न लाये उसकी मुक्ति न होगी। इन तीनों में से भी अधिक बल ईसामसीह पर ईमान लाने से मुक्ति सम्भव होने के सिद्धान्त पर अधिक है, देखिये–

१. तथापि यह जान कर भी कि आदमी शरीअत के कर्मो से नही अपितु केवल यीसू मसीह पर ईमान लाने से रास्तबाज ठहरता है..................क्योंकि शरीअत पर आचरण से कोई मनुष्य धर्मी न ठहरेगा। (गलीतो)

२. काम करने वालों की मजदूरी दान नहीं अपितु अधिकार समझी जाती है। किन्तु जो व्यक्ति काम नहीं करता अपितु अधर्मी को धर्मी ठहराने वाले पर ईमान लाता है उसका ईमान इसके लिए रास्तबाज गिना जाता है। (रोमियो)

शरीअत की भी छुट्टी हो गई। केवल मसीह पर विश्वास करो और रास्तबाज कहलाओ। न आचरण की आवश्यकता का और न शरीअत का झंझट। कितना सस्ता नुस्खा है ? केवल ईमान से रास्तबाज कहलाकर संसार में मौज उड़ाई जाये। पाप किए जायें और परलोक में इमान के जोर से स्वर्ग भी प्राप्त

चमत्कार दिखला सके ? जब कोई नहीं है तो क्यों मसीह का ढोल पीट पीटकर लोगों को ईसाई बनाया जाता है ? जबकि सच्चाई तो ये है कि योरुप में कोई मसीही नहीं हैं।

७. धर्म के लक्षण करो फिर, बाइबिल को उस पर घटाओ।

८. मसीह जब खुद सूली पर चढ़कर अपने को नहीं बचा सका वह हमको कैसे बचा सकता है ? इससे तो प्रहलाद अच्छा है जो सब परीक्षाओं से बच गया।

९. जब ईश्वर में परिवर्तन नहीं होता तो उसके ज्ञान में परिवर्तन कैसे हो गया ? अतः सिद्ध करो कि बाइबिल ईश्वरीय ज्ञान है।

१० जब मसीह के निकट सब मनुष्य बराबर हैं फिर योरुप वाले, एशिया वाले व अफ्रिका वाले ईसाइयों से नफरत क्यों करते हैं ? और इनको अपने होटलों में जगह नहीं देते और वहाँ के पादरी उसका क्या इलाज करते हैं ?

११. मसीह के पढ़े होने का क्या प्रमाण है ? कोई पुस्तक उसकी लिखी हुई दिखलाओ जबकि सब इंजील उसके शिष्यों की लिखी हुई हैं।

१२. जो पढ़ा ना हो तो वह कैसे पैगम्बर हो सकता है ? सम्भव है उसने वह पुस्तक दूसरों से लिखा ली हो।

१३. इस भाषा को समझाओ कि–"एक वह स्त्री जो कई पति कर चुकी थी उसने (मसीह) से रहस्यमय बातचीत की।" (योहन्ना, अध्याय ७ आयत ७ से १७)

१४. बाइबिल उत्पत्ति की पुस्तक में लिखा है खुदा आदम को बनाकर रोया वा पछताया। क्या सारे संसार के पादरी इसे बाइबिल के रोने वाले ईश्वर को वास्तविक ईश्वर सिद्ध कर सकते हैं ? देखिये –

एक नौजवान लड़के को प्रेम के साथ गोद में बिठाया और छाती से लगाया।

(योहन्ना अध्याय १३ आयत २३ से २६)

मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या ६ वर्ष की आयु वाले कृष्ण को मक्खन चुराने वाला वा गोपियों के साथ विषयभोग का कलंक लगाकर हँसने वाले पादरी वा सती सीता को कलंक लगाने वाले बड़े बड़े पादरी तीस वर्ष की आयु में ऐसे कामों के करने वाले मसीह की पोजीशन कैसे पवित्र कर सकते हैं ? यद्यपि मेरे दिल में मसीह की पवित्रता का गहरा असर है। अब आगे देखिये –

१५. जिसको फाँसी दी जाती है वह खुदा का लानत किया हुआ है। अब ईसाई पादरी बतलावें कि मसीह जो फाँसी पा गए उनको क्या कहें ?

(पुस्तक इस्तना अध्याय २१ आयत २३)

१६. मसीह ने कहा है कि शरीयत का मानने वाला लानती है फिर मसीह ने खतना कराया पोहन्ना से दीक्षा ली उसको क्या कहें ?

(पुस्तक मिती अध्याय ५ आयत १७)

१७. मनुष्य ईश्वर के निकट क्योंकर सच्चा है ? और वह भी औरत से पैदा हो तब क्योंकर पवित्र हो ? इसी प्रकार मसीह मरियम से पैदा होकर सच्चा क्योंकर हो सकता है ?

(मा. अदज अध्याय २० आयत ४)

झूठे नबियों से सावधान रहो। जो तुम्हारे पास भेड़ों के वेश में आते हैं किन्तु अन्दर से फाड़ने वाले भेड़िये हैं।

(इंजील पृष्ठ १०)

मुर्दा से जीकर जीवित आसमान पर जाने की वास्तविकता भी कुछ ऐसी ही हैं। इंजील ने दावा किया है कि –

इसके बाद तुम इब्नआदम को कादिरेमुतल्लिक की दाई ओर बैठे और आकाश के बादलों पर आते देखोगे।

(इंजील पृष्ठ ३२)

यदि खुदा की दाई और है तो बाई ओर भी होगी। फिर वह खुदा शरीरधारी होने से जन्म मरण के चक्कर में फँसाने से कोई मनुष्य ही होगा जिसे खुदा समझ लिया गया। जब आसमानों की सत्ता वर्तमान विज्ञान व फिलासफी में नहीं है तो ईसामसीह का वहाँ जाना कैसे ? कबर से चौथे दिन जी उठना और आसमान पर जाने की गाथा नितान्त झूठी व भ्रमपूर्ण और अमान्य है। इसलिए ईसाई मित्रों ! इस भ्रम जाल से पीछा छुड़ाकर पवित्र वेद की शरण में आओ। हम आपको गले लगाने को तैयार हैं। ईश्वरीयसेना में शामिल हो जाओ और ईश्वरीयधर्म वेद के प्रकश से अपने ह्रदयों को प्रकाशित करो। पोपों से किनाराकशी करके जितनी शीघ्रता की जा सके उतना अच्छा है। कुछ हमें अपनी सरकार से भी कहना है। वह कब तक यह तमाशा देखती रहेगी ? जनता लुट रही है। उसके धर्म पर सस्ती मुक्ति के बहाने से दिन दहाड़े डांका डाला जा रहा है। धर्मप्रचार की स्वतन्त्रता के रहते हुए भी धोखे या छल से प्रचार का निषेध करने की आवश्यकता है। आज मुझे भी उक्त शब्द आपके सम्मुख यहाँ आकर कहने पड़े। मैं आप सबका तथा जिला सहारनपुर के जिला आर्यप्रतिनिधि सभा के अधिकारियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ साथ ही यह भी आवश्यक है कि समझदार लोग जनता को ईसाईयों के छल कपट से बचाने का पक्का निश्चय कर लें। सारे भारत के आर्यसमाजी निश्चय कर लें कि भारत को ईसाईयों के पंजो से मुक्त करा कर इसको और दूसरे विभाजन से बचाया जाये। बस यहीं पर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं, मेरे ईसाईयों से कुछ प्रश्न हैं, उन्हें ध्यान से सुनों, सुनिये अगर कोई ईसाई भी बैठा हो तो कान खोलकर सुन ले तथा मेरे प्रश्नों का उत्तर दे –

विश्व के समस्त ईसाइयों से मेरे प्रश्न हैं जिनका ठीक और सन्तोषजनक उत्तर देने पर पाँच सौ रूपये नकद पुरस्कार दूँगा –

१. ईश्वर का लक्षण करो।
२. ईश्वर को किसी वस्तु की क्या आवश्यकता है ? यदि है तो वह ईश्वर नहीं, फिर उसके बेटा कैसा ?
३. ईश्वर एक है तो बाइबिल में पिता, पुत्र, और पवित्रात्मा यह तीन क्या हैं ?
४. खुदा की रूह मसीह पर कबूतर के आकार में मसीह के ऊपर प्रकट हुई क्या यह ठीक है ? यदि ठीक है तो तीनों में से कौन सा कबूतर है, बताइए ? सिद्ध करो कि वह ईश्वर है।
५. नबी, रसूल का जीवन पवित्र होना चाहिए, फिर शराबी, कबाबी, व्यभिचारी, पुत्रियों तथा बहिनों से कुकर्म करने वाले कैसे अच्छे और ईश्वरभक्त कहाये जा सकते हैं ?
६. सच्चे मसीही का लक्षण यह है कि वह साँप से डसा ले, संखिया खा ले तो उसे कोई हानि न हो व पहाड़ को हिला दे। क्या कोई पादरी तमाम योरुप के अन्दर ऐसा मौजूद है जो ऐसा

प्रस्तुत ग्रन्थ पर प्राप्त सम्मतियाँ

श्री पं० जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती–

पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, (दिल्ली)

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप पूज्य अमर स्वामी परिव्राजक जी के समस्त शास्त्रार्थों को अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। आप इस अत्यन्त आवश्यक बहुमूल्य पुस्तक को प्रकाशित कर रहे हैं। मेरी सम्मति में यह शास्त्रार्थों का संग्रह आर्य जगत में अपना उच्च कोटि का स्थान प्राप्त करेगा। इस पवित्र कार्य के लिए आप यश प्राप्त करेंगे, परमेश्वर आपको इस प्रयोजन के लिए सामर्थ्य देवे।

"जगदेव सिंह सिद्धान्ती" (सांसद)

प्रा० श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु–

दयानन्द कॉलिज–अबोहर, (पंजाब)

आर्य समाज के पहली व दूसरी पीढ़ी के सब प्रमुख नेता सिद्धान्तों के जानने वाले, विद्वान व शास्त्री थे। यथा–महात्मा मुन्शीराम, पं० लेखराम, पं० कृपाराम, पं० गुरूदत्त, मास्टर आत्माराम, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महात्मा नारायण स्वामी आदि, महात्मा मुन्शीराम आर्य शास्त्रार्थी थे, जिनका जन्म ब्राह्मण कुल में नहीं हुआ था। परन्तु अपने तपोबल से ब्राह्मण बने, तब यह एक विचित्र सी घटना थी कि क्षत्रिय कुलोत्पन्न विद्वान् शास्त्रार्थ करता है। इसी परम्परा में श्रीमान् अमर स्वामी जी ने अपनी ज्ञान प्रसूता वाणी व लेखनी से जीवन में अवैदिक मतों के विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ करके एक इतिहास बनाया है। उनके गहन अध्ययन प्रतिभा व सूझ की अपनों, बेगानों सभी पर अमिट छाप पड़ी, सिंह समान चुनौती स्वीकार करके किरानी, कुरानी, जैनी, पुराणी, मिर्जाई लोगों से लोहा लेने वाले इस महाविद्वान के शास्त्रार्थों का यह संग्रह सबके लिए पठनीय है।

"राजेन्द्र जिज्ञासु"

श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री (संसद सदस्य)–

केनिंग लेन–नई दिल्ली

श्रीमान् लाजपत राय जी, !

आप आर्य समाज के उद्‌भट विद्वान और शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी वर्तमान (महात्मा अमर स्वामी जी) व अन्य सभी शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थों का संकलन प्रकाशित कर रहे हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई, यह संकलन अगली पीढ़ियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। इस महत्वपूर्ण योजना को हाथों में लेने के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

"प्रकाशवीर शास्त्री" (संसद सदस्य)

३-४-१९७६

१८. **"मसीह ने गाली दी"** गाली देने वाला कभी ईश्वरभक्त नहीं हो सकता। कहाँ खुदा का बेटा ? और कहाँ गाली ?

(पुस्तक मिती अध्याय २३ बालूका तथा अध्याय १२ मरकस अध्याय १२)

१६. पौलुस कहते हैं चोर, शराबी गाली देने वाला, स्वर्ग में नहीं जा सकता फिर मसीह ने शराब पी, गाली दी वा गधी खुलवा ली। बिना मालिक की आज्ञा के इसको स्वर्ग कैसे मिलेगा ? जब मसीह को स्वर्ग नहीं तो फिर यह पादरी लोग क्यों पब्लिक को धोखा देते फिरते हैं ? जब गुरू ही स्वर्ग के योग्य नहीं है ? तब वह अपने शिष्यों को स्वर्ग कैसे दिलवा सकता है ?

(पुस्तक कुनन्थेन प्रथम अध्याय ६ आयत १०)

२०. खुदा उस बुर्ज को जिसको आदम के बेटे बनाते थे, देखने उतरा क्या ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर है ? सिद्ध करो कि ईश्वर चढ़ता या उतरता भी है।

(उत्पत्ति की पुस्तक अध्याय ११ आयत ५)

२१. पौलुस लिखता है कि खुदा का झूठा होना असम्भव है, किन्तु –

(ईसाइयों की पुस्तक अध्याय ६ आयत १८)

ऐ खुदा तूने निश्चय रूप से इस कौम को और यरूशलेम को यह कहकर धोखा दिया कि तुम सलामत रहोगे यद्यपि तलवार उनकी जान पर लगी।

(यरमियाँ की पुस्तक अध्याय ४ आयत १०)

२२. खुदा ने इस्राइल के पुत्रों से कहा कि वे अपने मकानों पर खून का निशान लगा दें ताकि लहू के निशान को देखकर तुमको छोड़ दूँ।

(निकास की पुस्तक अध्याय १२ आयत १६)

नोट –

भाइयों ! अब आप ही खुद सोचिये कि क्या ईसाईयों के ईश्वर को इतनी भी बुद्धि नहीं है कि वह वैसे ही जान सके। खून के निशानों की उसको क्या आवश्यकता हुई ? क्या यह ईश्वर सर्वज्ञ हो सकता है ? पादरी लोगो ! अमरीका के दीवानों ! बोलो कौन सच्चा है और तुम्हारा ईश्वर कितना झूठा है ? मेरे और भी बहुत से प्रश्न हैं। पहले इन्हीं प्रश्नों के उत्तर दें, अगर साहस हो तो आयें मैदान में।

।। इति शम्।।

निवेदक–

"पण्डित शान्तिप्रकाश"

गुडगावां (हरियाणा)

नोट–

इस प्रकार यह इस शास्त्रार्थ श्रृंखला का द्वितीय भाग समाप्त होता है, शेष शास्त्रार्थ अगले तृतीय भाग में दिये जायेगें।

"लाजपतराय अग्रवाल"

जाते हैं, जो कि उनके सामने विपक्ष के रूप में शास्त्रार्थ के लिए खड़े होते थे। महात्मा अमर स्वामी जी ने सन्यास लेकर भ्रमण नहीं छोड़ा, निरन्तर प्रचार कार्य में लगे हुए हैं, मेरे हृदय में उनके लिए अगाध प्यार है। बेटे, लाजपत राय को भी मैं उनके परिवार सहित जानता हूं, उन्हें इस कार्य को संभालने के लिए आशीर्वाद देता हूँ।

"आनन्द स्वामी सरस्वती"

श्री प्रेम चन्द जी शर्मा–

पूर्व प्रधान–आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश (लखनऊ)

तथा

(पूर्व स्वास्थ्य मन्त्री–उत्तर प्रदेश सरकार)

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि, श्री लाजपत राय जी अमर स्वामी प्रकाशन विभाग की ओर से पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के जीवन के समस्त शास्त्रार्थों का संकलन "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। मैं स्वामी जी महाराज के जीवन से पूर्ण परिचित हूं, तथा उनके अनेकों शास्त्रार्थ भी पढ़े हैं। आर्य जगत में ऐसी प्रतिभा के धनी एवं वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ शास्त्रार्थ महारथी कम ही हैं, मैं भगवान से उनकी दीर्घायु होने की प्रार्थना करता हूँ।

"प्रेमचन्द शर्मा"

श्री डॉ0 स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती–

(इलाहाबाद)

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि आर्य समाज के वयोवृद्ध, तपस्वी सन्यासी पूज्यपाद श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संकलित विवरण प्रकाशित होने जा रहा है, श्री अमर स्वामी जी के इन शास्त्रार्थों का आर्य समाज के इतिहास में गौरव पूर्ण स्थान है, पं0 लेखराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी और पण्डित श्री रामचन्द्र जी देहलवी की परम्परा में अपनी अलग विशेषता रखते हुए अमर स्वामी जी महाराज के ये शास्त्रार्थ हैं। श्री अमर स्वामी जी के पास जो प्राचीन उद्धरणों और प्रमाणों की सामग्री है, वह अन्यत्र कम ही मिलेगी, वे चलते फिरते इस विषय के विश्वकोष हैं, मुझे उनका स्नेह प्राप्त है, यह मेरे लिये बड़े काम की वस्तु है। मैं सदा उनके आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

सस्नेह–

"स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती"

श्री डॉ0 भवानीलाल जी भारतीय एम0ए0–

मन्त्री–आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, अजमेर,

व

सम्पादक– "परोपकारी" मासिक (अजमेर)

"निर्णय के तट पर" आर्य जगत के सुप्रसिद्ध, शास्त्रार्थ महारथी विद्वान महात्मा अमर स्वामी सरस्वती व समाज के अन्य उदभट शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थों का अद्वितीय संग्रह आर्य समाज के स्वाध

श्री ओम प्रकाश जी त्यागी (संसद सदस्य)
(नई दिल्ली)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महात्मा अमर स्वामी जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का संकलन एक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होने वाला है। यह आयोजन वरेण्य है।

प्रभु से इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

ओमप्रकाश त्यागी "पुरुषार्थी" (संसद सदस्य)

श्री डॉ0 गोविन्द सहाय जी गुप्त–
६६७, लक्ष्मीबाई नगर,
नई दिल्ली–२४

आप यह एक बड़ा ही पुण्य एवं यश का कार्य कर रहे हैं, जो समाज के अनेकों उद्‌भट विद्वानों के विचारों को संकलित करके एक ग्रन्थ के रूप में संसार के सामने ला रहे हो, इस ग्रन्थ से संसार में अज्ञान का नाश होगा, हर आदमी को सत्यासत्य की परख करने हेतु एक उच्च कोटि की कसौटी मिल जायेगी, तथा यह ग्रन्थ "निर्णय के तट पर" संसार में एक पारसमणि का कार्य करेगा यह जिस भी अज्ञान रूपी गड्ढे में पड़े हुए लोहेरूप सज्जन को छुएगा वही ज्ञान रूपी स्वर्ण के समान हो जावेगा। एवं भविष्य में यह ग्रन्थ एक उत्तोलक का कार्य करेगा, जिसके द्वारा भारी से भारी अज्ञान रूपी भार को भी उठाकर ज़ीवन से दूर किया जा सकेगा। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, इस पुस्तक के प्रकाशन पर मैं प्रकाशक को हार्दिक बधाई देता हूँ, परमेश्वर आपको सफलता प्रदान करें।

वैदिक धर्म का सेवक–
"डॉ0 गोविन्द सहाय गुप्त"

श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती–
आचार्य, गुरुकुल झज्जर
जि0 रोहतक (हरियाणा)

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि, पूज्य अमर स्वामी जी महाराज व अन्य शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थों का यह संकलन प्रकाशित हो रहा है पूज्य स्वामी जी के प्रति, मेरी क्या सम्पूर्ण आर्य जगत की अपार श्रद्धा है। स्वामी जी महाराज जैसा शास्त्रार्थ में निपुण, विद्वान तार्किक सन्यासी आर्य जगत में अन्य कोई नहीं है, स्वामी जी महाराज की शास्त्रार्थ शैली कमाल की है, इसके प्रकाशन पर मैं श्री लाजपत राय जी को बधाई देता हूँ, जिन्होंने ऐसा पुण्य कार्य हाथ में लिया। "ओमानन्द सरस्वती"

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज–
महात्मा अमर स्वामी जी से मेरा चिरकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध चला आ रहा है आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, लाहौर के चोटी के विद्वानों में से ठाकुर अमर सिंह जी एक थे। जो कि अब "अमर स्वामी परिव्राजक" बन गये हैं, उनकी विद्या, उनकी स्मरणशक्ति और शास्त्रार्थ शैली के गुण वो लोग भी

श्री रविकान्त जी शास्त्री, एम0ए0–

राजकीय इण्टर कॉलेज,
शाहजहांपुर–उ0प्र0

विविधविद्या विलासोल्लसितान्ता, गीवार्णवाणी वन्दनविधान विदग्धा, स हृदयदयानुरञ्जन क्षमा, वैदिक धर्म प्रचार विचार सरणी समारोहण चतुराः विद्वासः गुरुवर पूज्यामर स्वामि महात्मनः महान्तोऽयम् प्रयासः। यत् तैः पाण्डित्यप्रवरै सकला शास्त्र प्रमाणै अज्ञान सरोवरे निमज्जतानां नराणां हृदय पटलेनिर्णय तटे विज्ञानदीपं प्रकाशितम्।

अयं महात्मप्रवर गुरुवर पूज्यामरस्वामि परिव्राजकरूपेण सहर्ष सप्रत्ययं नक्षत्रमध्ये शिशिरांशुरिव विद्वन्मण्डले भासमानानाम ज्ञान रूपविषवृक्षारोहणावलोकिताशान्तानाँ शास्त्र विद्याजल प्रक्षालित मानसोत्तरीयाणां जनानां प्रकाशाभावं दूरी करोति। महात्मप्रवर श्री अमरस्वामि विश्व विदुषांमध्येमणिरिव स्वकीयं वैशिष्टयं बिभर्ति भारत वर्षेऽस्मिन् न कोऽपि एवं विद्योऽस्ति मन्दभाग्यः पुमान् यो पूज्यामर गुरुवरं नैव वेत्ति। असंख्याता हि अन्तेवासिनः ऐतेषां सकाशात् शास्त्रमधीत्य सुविज्ञायन्तः एतेषां पाण्डित्यं प्रकटयन्तः सर्वत्र कीर्ति प्रसारयन्ति, यत्रापि भवान् गमत् यस्यामपि सभायामृभवानृभाषत् तत्संस्थानं सा सभा तजत्याश्च जना प्रतिष्ठापितभवत्प्रभावा अजायन्तः। भवन्ति ये पुण्यकर्माणों वस्तुतस्तेषां वस्तुतस्तेषां रसनामधिवसतीदृशी सरस्वती। शास्त्रार्थ न सुसाध्यं कार्यम्। शास्त्रार्थः कः ? शास्त्राणां य सम्यगर्थः स शास्त्रार्थः। द्वयोः पक्षयोः यस्य पक्षे निर्णयो भवतिः सैव मानव जीवनस्य नौकाया पथ प्रदर्शकः भवति। न केवलं शास्त्राणि वांगमयस्य वेद–शास्त्र–पुराण–स्मृति–आयुर्वेद–काव्यालंकारादि विषयिणी विद्वता च काङक्ष्यते। नीति शास्त्रार्थ शास्त्रादि सम्बन्धिनी अभिज्ञता च वाञ्छयते। अथ च लोकानुभवः काम्यते, जनता भवतः शास्त्रार्थमाकर्ण्य कथा सुधां च निपीय सर्वथैव स्वां कृतार्थां मन्यते। भजनोपदेश कथावाचन माधुर्यन्तु जनान् मोहति एव। श्री अमर स्वामी प्रकाशन विभागस्यँ पधान प्रबन्धककस्यापि महत् परिश्रमः, य एतादृशं ग्रन्थं प्रकाश्यमानवा जीवनोन्नति प्रकाशनोन्नतिञ्च वर्द्धयति। अतः "निर्णय के तट पर" नाम्नाग्रन्थेन सर्वे जना सदसत्मार्गविचार्य, अज्ञान पथं च विहाय ज्ञानमार्गे व्रजन्तः अवश्यमेव स्वात्यामंसफली करिषयन्ति इति में निश्चयः।

"रविकान्त शास्त्री"
एम0ए0, बी0एड0

महापण्डित जी पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक–

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़
सोनीपत (हरियाणा)

श्री माननीय अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संकलन "निर्णय के तट पर" नाम से छाप रहे हैं, यह कार्य आर्य समाज के इतिहास में अमर रहेगा। श्री माननीय अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व श्री पण्डित अमर सिंह जी) महोपदेशक एवं शास्त्रार्थ महारथी हैं। आपका स्वाध्याय अत्यन्त गम्भीर है, विशेष कर पुराणों के सम्बन्ध में आपके शास्त्रार्थों के संकलन माध्यम से शास्त्रार्थ सम्बन्धी अनेक स्थितियां व प्रमाण संग्रहीत हो जावेंगे, जो आर्य समाज के भावी विद्वानों शास्त्रार्थियों के मार्गदर्शक बनेंगे। प्रिय लाजपत राय जी इस कार्य के बधाई के पात्र हैं।

"युधिष्ठिर मीमांसक"

यायशील पुरूषों के लिए अतीव रूचिकर होगा, अमर स्वामी जी ने अपने सुदीर्घ कालीन, उपदेशक जीवन में पौराणिकों तथा अन्य मतावलम्बियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये हैं। उन्होंने वैदिक धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की पुष्टी में "आर्य सिद्धान्त सागर"[1] जैसा अद्धितीय ग्रन्थ भी लिखा था, स्वसिद्धान्त पोषण में अमर स्वामी जी एक सिद्धहस्त तार्किक एवं शास्त्रार्थकर्त्ता विद्वान हैं। आशा है आर्य जनता इस ग्रन्थ को अपना कर लाभ उठाएगी।

"डॉ0 भवानीलाल भारतीय"

पं0 प्रकाश चन्द्र जी "कविरत्न"–

पहाड़गंज, अजमेर (राजस्थान)

प्रिय लाजपत राय जी !

अतीव हर्ष है कि आर्य जगत के सुप्रसिद्ध, महोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी परिव्राजक अज्ञेय अमर स्वामी जी महाराज के जिन प्रभावोत्पादक, मनोरंजक शास्त्रार्थों के संग्रहीत ग्रन्थ की आर्य जनता बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी, वह आपने अपने अथक परिश्रम से प्रकाशित करा दिया, एतदर्थ आप धन्यवाद के भाजन हैं। जब मैं स्वस्थ था, तब मुझे अनेकों आर्य समाजों के उत्सवों में स्वामी जी महाराज के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होता था, उनकी आर्य समाज की सेवा की अमिट लग्न, वैदिक सिद्धान्त तथा अन्य मत मंतान्तरों के गहन अध्ययन, अनुशीलन एवम् चतुर्मुखी परम प्रभावशाली प्रखर प्रतिभा के क्या कहने ?

महोपदेशक कहूँ उन्हें या शास्त्रार्थ निष्णात कहूँ में,
कवि, लेखक, गायक या वैदिक विद्वद्वर विख्यात कहूँ मैं।
या स्नेही अलिदल हित उनको मधुदानी जल जात कहूँ मैं,
पूज्य अमरस्वामी परिव्राजक कहूँ या कि गुरू तात कहूँ मैं।।१।।

वेद संस्कृति की रक्षा हित वे अति कष्ट उठाते देखे,
ब्रिटिश, निजाम क्रूर शासन की जेलों में वे जाते देखे।
शास्त्रार्थ जब कभी हुए तब स्मरणीय जय पाते देखे,
विपक्षियों के हृदयों पर पर्याप्त प्रभाव जमाते देखे।।२।।

उनके अनुपम शास्त्रार्थों का संग्रहशुचि "निर्णय के तट पर",
किया प्रकाशित अथक परिश्रम से है, ग्रन्थसत्य, शिव, सुन्दर।
पहुँचे यह सब आर्य समाजों, आर्य बन्धुओं के शुभ घर–घर,
आग्रह है यह लाभ उठावें सब आबाल वृद्ध नारी नर।।३।।

प्रकाश चन्द्र "कविरत्न"
(अजमेर)

---

[1] इस महान ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना भी चल रही है, जो शीघ्र ही क्रियान्वित होने की आशा है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री आचार्य पण्डित महेन्द्र प्रताप सिंह जी शास्त्री (एम०ए०)—
कन्या गुरुकुल हाथरस (उ०प्र०)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आदरणीय श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित किया जा रहा है, श्री स्वामी जी का अध्ययन अत्यन्त विपुल व गहन है। उनकी युक्तियाँ, विपक्ष पक्ष को भी स्वीकार्य होती हैं, व विरोधी पक्ष का खण्डन बड़ी प्रबलता से करते हैं। उनके ये सब गुण उनके शास्त्रार्थों में परिलक्षित होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी इन विशेषताओं के कारण उनके शास्त्रार्थों का संग्रह सब दृष्टियों से उपादेय होगा, वह मनोरंजक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी होगा, मैं इस स्तुत्य प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

"महेन्द्र प्रताप शास्त्री"

श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी—
सुभाष नगर—कुरुक्षेत्र कैन्ट (हरियाणा)

माननीय श्री अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के शास्त्रार्थी, विद्वान, प्रभावशाली वक्ता, सिद्धहस्त लेखक, अन्वेषक (रिसर्च स्कालर) तथा महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त, मनीषी, कवि, धर्मोपदेष्टा हैं। इनका समस्त जीवन वैदिक धर्म प्रचार में व्यतीत हुआ है। वे सदा ही ऐसे रहेंगे। मेरा इनसे साथ शास्त्रार्थों, यात्राओं एवं उत्सवों में सदा-सदा स्नेह होता रहता है। परमेश्वर की कृपा से यह चिरञ्जीव रहकर वैदिक नाद गुंजाते रहें।

"शान्ति प्रकाश"

श्री पण्डित आचार्य रामानन्द जी शास्त्री—
बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना (बिहार)

नमस्ते, श्री लाजपत राय जी !

मुझको यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है, कि आप अमर स्वामी जी के जीवन सम्बन्धी शास्त्रार्थों का संकलन प्रकाशित करने जा रहे हैं यह पुस्तक वैदिक धर्म के लिए अभेद्य दुर्ग (किला) सिद्ध होगी। तथा महर्षि स्वामी दयानन्द जी की कल्याणमयी वाणी के प्रचारकों के लिए शस्त्र (कवच) बनेगी। आर्य उपदेशक इसे साथ लेकर [illegible] होकर विचरेंगे। मैं शीघ्र इसका प्रकाशन तथा घर-घर में इसका प्रसारण चाहता हूँ।

"रामानन्द शास्त्री"

श्री पण्डित जयप्रकाश जी शास्त्री, एम०ए०—
आर्य समाज, सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर)—उ०प्र०

सरस्वती पुत्र आर्य समाज के कर्मठ, कर्मयोगी, शिरोमणि, सुविख्यात, सुवक्ता, गुरुवर श्री अमर स्वामी जी महाराज द्वारा प्रणीत "निर्णय के तट पर" शास्त्रार्थ संग्रह अति उच्च कोटि का संग्रह है, जिसके स्वाध्याय से प्रत्येक मनुष्य का जीवन उज्ज्वल होगा, श्री लाजपत राय जी को मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने ऐसा अत्यावश्यक कार्य हाथों में लिया।

"जयप्रकाश शास्त्री"

परम् विदुषी, बहन प्रज्ञा देवी–

व्याकरणाचार्या, पी.एच.डी., वाराणसी ५,

पूज्यपाद अमर स्वामी जी सरस्वती जी की गहरी विद्वत्ता एवं वाक्पाटव की धाक उनके अनुयायियों पर ही नहीं उनके विरोधी विभिन्न मतावलम्बियों पर भी है यह उनके गहरे पाण्डित्य की खरी कसौटी है। इस वार्धक्यावस्था में भी वैदिक धर्म की सेवार्थ आपकी लेखनी तथा वाणी इतने उत्साह एवं निर्बाध गति से चलती है कि किसी नवयुवक को भी लज्जित होना पड़ेगा–इस समय आपका उत्तम ग्रन्थ "निर्णय के तट पर" छपकर लगभग तैयार है जिसमें पुष्कल प्रमाणों के संगत के साथ–साथ विधर्मियों को परास्त करने के लिये शास्त्रार्थ व्यूह रचना कला का भी निर्देशन पाठकों को मिलेगा, जो स्वाध्याय–प्रिय लोगों के लिये परम उपयोगी सिद्ध होगा अतः मेरा सभी आर्य बन्धुओं से आग्रह है कि वे इस उत्तम ग्रन्थ को अवश्य अपने–अपने घरों में रख कर उनका स्वाध्याय कर उससे लाभान्वित हों। "प्रज्ञा देवी"

माननीय श्री चन्द्रभानु जी गुप्त–

(कोषाध्यक्ष–जनता पार्टी)

(लखनऊ) उ0प्र0

प्रिय लाजपत राय जी !

आपके प्रयास द्वारा माननीय महात्मा अमर स्वामी ज़ी के शास्त्रार्थों का संग्रह "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित हो रहा है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा है इससे जन मानस को मार्गदर्शन मिलेगा। शुभकामनाओं सहित।

आपका–

"चन्द्रभानु गुप्त"

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री–

३ कृष्णा टोला, अलीगढ़–उ0प्र0

आदरणीय अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के उन उज्जवल रत्नों में से एक हैं। जिन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा आर्य समाज के गौरव की रक्षा की है, आप श्री ठाकुर अमर सिंह जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के उन मूर्धन्य विद्वानों में से गिने जाते थे, जिनके कार्य व योग्यता एवं भाषणों की धूम थी। मैं उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर में उपदेशक था पंजाब की कुछ आर्य समाजें दोनों सभाओं के योग्य उपदेशकों को उत्सवों पर बुलाती थी। प्रायः हम दोनों वहां मिलते थे। हमारे अति स्नेह का कारण अलीगढ़–बुलन्दशहर का सम्बन्ध भी था। उन दिनों शास्त्रार्थों की धूम थी पौराणिकों से शास्त्रार्थ करने के लिये पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार श्री बुद्धदेव जी मीरपुरी, पण्डित लोकनाथ जी, पण्डित मनसाराम जी, ठाकुर अमर सिंह जी, की युक्ति, धारा प्रवाह प्रमाणों की झड़ी, सूझ–बूझ और वाणी की कड़क के आगे विपक्षियों के होश उड़ जाते थे।

श्री अमर स्वामी बनकर आपके गौरव में और भी चार चांद लग गये हैं। यह संकलन आने वाले उपदेशकों के लिये अनोखा रत्न होगा।

"राम दयालु शास्त्री"

श्री राय बहादुर चौ० प्रताप सिंह जी–

माडल टाउन, करनाल (हरियाणा)

श्री अमर स्वामी जी को सारा आर्य जगत जानता है। बतौर शास्त्रार्थ महारथी और बतौर लेखक के उनकी पुस्तकें अमूल्य हैं। स्वामी जी तो (ENCYCLOPAEDIA) हैं। उनका सारा साहित्य छपना चाहिए, ताकि नवयुवकों व आने वाले विद्वानों को सामग्री मिल सके।

"प्रताप सिंह चौधरी"

श्री ओमप्रकाश जी वर्मा "संगीताचार्य"–

यमुना नगर अम्बाला (हरियाणा)

मान्यवर पूज्य अमर स्वामी जी महाराज को कौन नहीं जानता ? अर्थात् "ठाकुर अमर सिंह" यह तो वों हस्ती है जिसने अपने जीवन में सहस्रों शास्त्रार्थ अनेकों मतावलम्बियों से किये हैं स्वामी जी अपने आप में एक चलती फिरती लायब्रेरी हैं, विकट आर्य समाज के शत्रु तो स्वामी जी के नाम से ही भाग जाते हैं। पुराने शास्त्रार्थ मैंने स्वामी जी के देखे, जैसे डेराबसी के पास "पतरेड़ी" करनाल में "फरल" आदि शास्त्रार्थों में आर्य समाज की बड़ी जीत हुई, यह सब स्वामी जी के प्रमाण, युक्ति, दलील और मन्तकों का ही प्रभाव हैं। प्रकाशक महोदय धन्यवाद एवं साधुवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अथक परिश्रम करके यह ग्रन्थ छपवाकर, एक अच्छा कार्य किया।

"ओमप्रकाश वर्मा"

श्री पण्डित दीनानाथ जी शास्त्री–

अध्यक्ष सनातन धर्मालोक महाविद्यालय बी–१६, लाजपत नगर,
नई दिल्ली–२४,

स्वामी श्री अमर स्वामी जी ने आर्य समाज की अच्छी सेवा की है। अब आपके शास्त्रार्थों का संग्रह छप रहा हैं। यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। आपने कई नये शिष्यों को इस विषय में दीक्षित किया है। भगवान आपको चिरायु करे।

"दीनानाथ शास्त्री सारस्वत"

श्री स्वामी इन्द्रवेश जी महाराज–

महर्षि दयानन्द साधु आश्रम, गुरुकुल सिंहपुरा,
सुन्दरपुर, जिला रोहतक (हरियाणा)

मान्यवर श्री लाजपतराय जी !

आप अमर स्वामी जी महाराज के द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का संग्रह "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। पूज्य अमर स्वामी जी शास्त्रार्थ युग के महान योद्धा एवं विजेता रहे हैं। वैदिक धर्म के लिए की गयी उनकी सेवाओं के लिए समस्त आर्य जगत श्रद्धान्वित है। आपके इस प्रकाशन से युवा पीढ़ी को आर्य समाज के भूतकालिक संघर्ष का परिचय मिल सकेगा। तथा आर्य सिद्धान्तों में आस्था पैदा हो सकेगी। इस सम्भावना के साथ मैं आपके इस पवित्र प्रयास का अभिनन्दन करता हूँ।

"इन्द्रवेश"

श्री पण्डित गंगाधर जी शास्त्री (व्याकरणाचार्य)–

महोपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना (बिहार)

मुझे बड़ी प्रसन्नता हैं कि पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थो के संग्रह को पुस्तकाकार निकाल रहे हैं। पूज्य स्वामी जी ने अपने जीवन में हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयों से दक्षतापूर्ण शास्त्रार्थ कर वैदिक धर्म की मर्यादा की रक्षा की है। वह वैदिक धर्मावलम्बियों के लिए प्रस्तुत हैं। आशा है इस पुस्तक द्वारा आर्य बन्धुओं को महान लाभ होगा।

पूज्योयतिवरोधीमान सर्व शास्त्र विशारदः। विजेता सर्व शास्त्रार्थे वाग्मी नम्रो यशोधरः।।१।।
आबालाज्जीवनं येन दत्तं धर्मस्य रक्षणे। वने ग्रामे नगर्यावा प्रचारं चरितंमुदा।।२।।
आर्यधर्मस्य रक्षार्थ दुखं सोडुं महामुनिः। अद्यापि ह्यमर स्वामी तिष्ठति स दिवा निशम्।।३।।
लेखेन वचसा नित्यं पाखण्डस्य च खण्डनम्। सत्यस्य दर्शनं स्वामी कारयन परिराजते।।४।।
शशि दिवाकरौ यावत् स्थास्यति गगने विभौ। कीर्तिस्तु स्वामिनस्तावत् स्थास्यति धरणीतले।।५।।
निर्णय के तट परम् (नाम) पुस्तकं सर्व बोधकम्। सत्यासत्य विचाराय मानवानां भविष्यति।।६।।
इतिमहेश्वरं याचे सर्व लोकस्य पालकम्। आयुश्च स्वामिनो भूमौ बर्धयेत्स जगत्पतिः।।७।।

"गंगाधर शास्त्री"

श्री आचार्य ओंकार मिश्र "प्रणव" जी शास्त्री, एम०ए०–

उपाचार्य–डी०ए०वी० कॉलिज–फीरोजाबाद (उ०प्र०)

आप पूज्य अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थो का संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं, यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ, वस्तुतः पूज्य स्वामी जी महाराज अपनी अप्रतिम, वाग्मिता, विद्वत्ता, एवं तर्क शालीनता से शास्त्रार्थ रणांगन के विख्यात् विजेता रहे हैं। उनकी पावन प्रतिभा ने वैदिक सिद्धान्तों का जय केतु धरातल पर सदैव लहराया है। महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी असीम श्रद्धा है। निश्चित ही उनके शास्त्रार्थों का संग्रह–"निर्णय के तट पर" आर्य जनिधि की अनुपम निधि सिद्ध होगा। मेरी मंगल कामनाएं, सदैव आपके साथ हैं।

"ओंकारमिश्र "प्रणव" शास्त्री एम०ए०"

श्री श्रद्धेय स्वामी अभेदानन्द जी सरस्वती–

प्रधान–आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार (पटना)

मैं राजधनवार (बिहार) के दोनों शास्त्रार्थों में उपस्थित था, श्री पण्डित अमर सिंह जी (अमर स्वामी सरस्वती) की शास्त्रार्थ शैली मुझको बहुत अच्छी लगी, उनकी योग्यता एवं उनके पास प्रमाणों की प्रचुरता और उनका प्रबल तर्क, प्रशंसा के ही योग्य है। उनके धैर्य और उनकी शान्ति की भी मैं प्रशंसा करता हूं। सनातन धर्मी कहलाने वाले दोनों पण्डितों ने उत्तेजना उत्पन्न करने वाले पर्याप्त शब्दों का प्रयोग किया, पण्डित अखिलानन्द जी तो सभ्यता की सीमाओं का भी उल्लंघन ही करते रहे, पर पण्डित अमर सिंह जी आर्य पथिक ने सभ्यता, शिष्टाचार और शान्ति के साथ ही अपनी प्रबल युक्तियों और अपने प्रचुर पुष्ट प्रमाणों से ही पौराणिक मत को पराजय और आर्य समाज को प्रबल विजय प्राप्त कराई। मैं पण्डित जी को बधाई और अनेक साधुवाद देता हूँ।

"अभेदानन्द सरस्वती"

श्री के० नरेन्द्र जी (सम्पादक)–

दैनिक वीर अर्जुन, प्रताप भवन
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली–१

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का एक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। मैं इस प्रयास में आपकी सफलता का इच्छुक हूं। स्वामी जी की निःस्वार्थ भावना और वैदिक सिद्धान्तों के प्रति उनकी निष्ठा एक ऐसी बात है, जिस पर उनकी जितनी प्रशंसा की जाये कम हैं। गलत न होगा अगर यह कहा जाये कि, उन्होंने तन, मन और धन से आर्य समाज के कार्यों को सफल बनाना अपने जीवन का लक्ष्य बना रक्खा है। ऐसे त्यागी, तपस्वी सन्त हमें कहीं–कहीं ही देखने को मिलते हैं।

"के० नरेन्द्र"

श्री लाला राम गोपाल जी शालवाले–

(भू० पू० संसद सदस्य)
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
रामलीला मैदान, दयानन्द भवन, नई दिल्ली–२

प्रिय लाजपत राय जी !

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि, अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संग्रह "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित करने का आयोजन हो रहा है। स्वामी जी महाराज का वैदिक एवं अवैदिक सभी ग्रन्थों का गहन अध्ययन है। उन्हीं से चुन–चुन कर जो संग्रह उन्होंने तैयार किये हैं, वे "निर्णय के तट पर" नामक पुस्तकाकार में छप कर आर्य समाज के प्रचारकों व उपदेशकों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होगी–ऐसी आशा करता हूं।

मैं इस संग्रह के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूं।

"स्वामी आनन्द बोध सरस्वती"
(पूर्व–रामगोपाल शालवाले)

श्री महामहिम ब० दा० जत्ती–

उपराष्ट्रपति–भारत सरकार
(नई दिल्ली)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप अमर स्वामी प्रकाशन विभाग की ओर से महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का एक संकलन "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित करने जा रहे हैं, मैं इस संकलन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजता हूं।

आपका–

"ब० दा० जत्ती"

श्री बिन्दा प्रसाद जी–

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
मुनीश्वरानन्द भवन–पटना–४

हमें यह जानकर हार्दिक आनन्द हुआ कि आप महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संकलन "निर्णय के तट पर" नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। वस्तुतः उनके शास्त्रार्थ प्रेरणाप्रद रहे हैं, और आशा है कि यह पुस्तक भी लोगों को सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करेगी, हमारी सभा पुस्तक की सफलता की कामना करती है।

भवदीय–

"बिन्दा प्रसाद"
कृते (विद्या भूषण प्रसाद) पटना (बिहार)

श्री पण्डित शिवराज सिंह जी शास्त्री, अरबी फाजिल–
(बम्बई)

संसार में सर्वप्रथम मानव सृष्टी भारत में हुई, यह अब निर्विवाद सत्य संसार के सभी देशी विदेशी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया हैं धर्म व धर्मशास्त्र की कल्पना व रचना भी भारत में हुई, लाखों वर्ष तक मनुष्य, मात्र एक ही धर्म के अनुयायी रहे। कालान्तर में व्यक्तिगत हितों को लेकर धर्म, सम्प्रदायों के रूप में विभाजित हो गया, और आज यह अवस्था हैं कि जहां ईंट उखाड़ो नीचे कोई न कोई धर्म सम्प्रदाय उससे लिपटा हुआ मिलेगा, परिणाम स्वरूप वास्तविक धर्म को छोड़ मनुष्य अरबों की संख्या में मनमाने धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त हैं। मानव मात्र को एकता का मार्ग दिखाते हुये ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की, अधिक मिथ्या मत मतान्तरों पर प्रहार भी किये। आर्य समाज का गत १०० वर्ष से अधिक का इतिहास अनेक शास्त्रार्थों व शास्त्रार्थ महारथियों के महाकौशल का इतिहास है। धर्मवीर पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर को तो इस महाभारत में अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ी। आर्य मुसाफिर जी की इस महान परम्परा के श्रेष्ठतम् उत्तराधिकारी महामुनि महात्मा अमर स्वामी जी का सारा ही जीवन शास्त्रार्थों में बीता है। वे आर्य समाज के अजेय महारथी रहे हैं, उनके अकाट्य तर्क प्रत्युत्पन्न मतित्व व प्रगाढ़ पांडित्य नें आर्य समाज की ध्वजा पताका सर्वत्र लहराई है। राजनीति के क्षणिक प्रवाहों में आर्य समाज के विपथगामी होने से पुनः नये–नये सम्प्रदायों तथा नये–नये भगवानों की नवीनतम् रचनाएं हो रही हैं। इधर स्वामी जी जीवन के अन्तिम चरण में प्रवेश कर चुके हैं। काश ! कि जो संग्रह श्री लाजपत राय जी प्रकाशित कर रहे हैं। उसे शिरोमणि सार्वदेशिक सभा प्रकाशित करती ! फिर भी लग्नशील, महान परिश्रमी **"श्री लाजपत राय जी के इस स्तुत्य प्रयास को जितना भी सराहा जाये कम है।"** अगर महर्षि के साहित्य को आर्य समाज के अन्दर से निकाल दें तो आर्य समाज में रक्खा ही क्या है, ? आर्य समाज मन्दिरों से तो मूल्यवान मस्जिदें, गिरजाघर एवं अन्य मन्दिर हैं, काश ! कि आर्य समाज इस स्थाई सत्य को समझने की क्षमता वाला होता ? पर क्या किया जाये। "तेरी महफिल भी गई, चाहने वाले भी गये" परम श्रद्धेय श्री स्वामी जी तो प्रशंसा–सराहना के व्यक्तिगत भावों से परे एक महानात्मा के रूप में हैं। प्रभु उन्हें हमारे बीच बनाये रक्खे जिससे उनकी प्रतिभा का अधिक से अधिक लाभ मानव मात्र को प्राप्त हो सके।

"शिवराज शास्त्री"

श्री शिवकुमार जी शास्त्री–

(संसद सदस्य)
सी–२ (३५-३) मलकागंज–दिल्ली

पूज्य अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के शास्त्रार्थ समर के उन अद्वितीय सेनानियों में से हैं जिनकी अदभुत प्रतिभा का सिक्का प्रतिपक्षी विद्वानों ने भी सदा स्वीकार किया है। यद्यपि वे पादरी, मौलवी और सनातनधर्मी विद्वानों से, सभी से शास्त्रार्थ करते रहे हैं किन्तु विशेष रूप से पौराणिक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ में तो सरस्वती उनकी जिह्वा पर आ विराजती है। शास्त्रकारों ने उस वाणी को सभा के योग्य बताया है जिसका प्रभाव अपने पराये, विद्वान और मूर्ख पर जादू का सा होता चला जाये। "तास्तुवाचः सभायोग्या याश्चित्ताकर्षणक्षमाः। स्वेषां परेषां विदुषां द्विषामविदुषामपि"।। यह उक्ति पूज्य स्वामी जी के शास्त्रार्थ में उन पर अक्षरशः घटती रही। सनातनधर्मी शास्त्रार्थी विद्वान श्री पण्डित माध्वाचार्य जी ने जो पूज्य स्वामी जी के प्रति उद्‌गार प्रकट किये हैं वे सूचित करते हैं कि उनके हृदय में श्री स्वामी जी की योग्यता का क्या स्थान हैं ? मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि पूज्य स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है। निश्चित रूप से यह सामग्री स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिये बड़े काम की होगी और शास्त्रार्थ के अखाड़े में उतरने वालों के लिए एक शिक्षक का काम करेगी। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक आर्य समाज इस उपयोगी महत्वपूर्ण संग्रह को अपने पुस्तकालयों की श्रीवृद्धि के लिये क्रय करके रक्खेगी।

"शिव कुमार शास्त्री"
(संसद सदस्य)

श्री डा0 पुरुषोत्तम दत्त जी गिरिधर–

अद्वितीय नेत्र चिकित्सक, नेत्र चिकित्सालय, भिवानी
(हरियाणा)

पूज्य श्री अमर स्वामी जी महाराज की अमर पुस्तक "निर्णय के तट पर" स्मरण होते ही मस्तिष्क में आर्य समाज का वह समय चित्रवत् उभर आया, जब मैं लाहौर में १९२१ ई0 से १९२५ ई0 तक पढ़ता था, वह दिन आर्य समाज के जोश और जीवन के थे, नित्य ही चारों और शास्त्रार्थों की धूम रहती थी, कभी सनातनधर्मी भाइयों से तो कभी ईसाइयों से ! और मुसलमानों से तो नित्य ही मुबाहिसे होते रहते थे। उन दिनों की स्मृति मन में ताजा हो गयी। उन्हीं दिनों ही तो महाशय राजपाल जी शहीद हो गये थे, उन दिनों जुबानी ही नहीं प्रत्युत लिखित मुबाहिसे मुसलमानों एवं अन्य मतावलम्बियों के साथ होते थे, दैनिक पत्र दोनों ओर से निकलते थे, जिनमें तर्क, दलीलें–उत्तर–प्रत्युत्तर दिये जाते थे। बल्कि मुझे स्मरण आ रहा है, कई बार तो दिन में दो–दो बार दोनों ओर से जोशीले नौजवान पत्रांक छाप–छाप कर जनता में बांटते। और जनता भी चाह और शौक से उनके छपने की प्रतीक्षा में रहती थी। बड़ी रोचक और अकाट्य दलीलें और तर्क दोनों ओर से दैनिक छपती थीं, जनता बड़ी उत्सुकता और उत्साह से उनको पढ़ती थी, और धार्मिक जोश से बावली हो उठती थी। हमारे आर्य समाज के नौजवान "गुरुघण्टाल" और "शैतान" नामक दैनिक पत्र निकालते थे। उधर मुसलमानों की ओर से भी बदले में ऐसे ही पत्र निकाले जाते थे, आशय कहने का यह है कि उन दिनों हर व्यक्ति बच्चा, बूढ़ा, नवयुवक शास्त्रार्थी समझा जाता था। हर आदमी स्वाध्याय करता

था। इसी का परिणाम था कि उन दिनों आर्य समाज का इतना प्रचार बढ़ सका था, परन्तु वर्तमान युग में शास्त्रार्थ बन्द होने से वह समय केवल एक यादगार सा बन कर रह गया है। आज स्वार्थी लोग सिद्धान्तों पर पर्दा डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं जिसके कारण समाज की यह दशा बन गई है, अगर हम उस युग को देखना चाहते हैं तो सिद्धान्तों को सामने लाना होगा, जब तक सत्य असत्य पर विचार विमर्श नहीं होगा तब तक सत्य का पता संसार को नहीं लग सकता, उसकी कसौटी केवल "शास्त्रार्थ" ही है, अंग्रेजी में कहावत है कि–"OFFENCE IN THE BEST DEFENCE" (अपनी सत्यता की रक्षा के लिए दूसरों की असत्यता पर प्रहार करो) और यह तभी सम्भव है जब शास्त्रार्थ हो। श्री पूज्य अमर स्वामी जी की इस पुस्तक से कुछ दिनों के शास्त्रार्थों का दिल में स्वाद ताजा हो जाता है, और हृदय गर्व से भर जाता है, छाती फूल उठती है, और जी कहता है कि काश ! वह दिन फिर भी आ सकें। वह भी क्या समय था ? जब हर आर्य समाज के स्कूल, कन्या पाठशालाओं एवं कालिजों में धर्म शिक्षा तथा सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाता था, परन्तु आज तो वह सब स्वप्नवत् सा लगता है, आज जिस रफ्तार से आर्य समाज के कर्णधार चल रहे हैं, उससे तो पता चलता है, कि डी.ए.वी. के नाम पर केवल डी.वी. अर्थात् राष्ट्र, "**वैदिक**" शब्द ही आर्य संस्थाओं के नाम से हटा दिया जायेगा, और अब भी यह केवल नाम मात्र के डी.ए.वी. हैं। प्रैक्टीकल में केवल शून्य हैं, "**कृणवन्तो विश्वमार्यम्**" आर्य समाज का यह स्वप्न केवल स्वप्नवत् ही रह जायेगा, जब तक कि वह शास्त्रार्थों वाला युग, उत्साह जनक समय फिर नहीं आ जाता, श्री पूज्य अमर स्वामी जी की यह पुस्तक पिछले शास्त्रार्थों की स्मृति ताजा करती है, हृदय में जोश भरती है, जो वातावरण अनुकूल न होने के कारण अन्दर ही घुट कर रह जाता है, पर फिर भी इस पुस्तक की आवश्यकता है, और इसको केवल सजावट की दृष्टि से रखने की नहीं बल्कि उसे पढ़ने की आवश्यकता है, जिससे यदि गुड़ खाने को नहीं मिलेगा तो गुड़ का नाम लेने से ही मन में गुड़ का सा स्वाद तो आ ही जावेगा। श्री स्वामी जी की इस पुस्तक को प्रत्येक युवक एवं वृद्ध नर एवं नारियों को पढ़ना चाहिए, ताकि समय पड़ने पर हम विरोधियों को मुंह तोड़ जवाब दे सकें। वह समय दूर नहीं है, जब यह पुस्तक संसार में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। श्री लाजपत राय जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस महान ज्ञानयज्ञ की शुरूआत की।

"डॉ0 पुरुषोत्तम दत्त गिरिधर"

श्री पण्डित आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री, एम0ए0–

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय (हिसार) हरियाणा,

आज के तथा कथित वैज्ञानिक कहते हैं, कि सृष्टि के आदि काल में सूर्य तीव्र गति से घूमता था, कालान्तर में उसके कुछ टुकड़े उससे पृथक् हुए, जो कि चन्द्र पृथ्वी एवं नक्षत्रों के रूप में विद्यमान हैं। तत्त्वज्ञों की दृष्टि से उनके इस कथन को आलंकारिक मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है, इसे हम यों कह सकते हैं, कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इस भारत भूमि पर देव दयानन्द के रूप में वेद ज्ञान के एक सूर्य का उदय हुआ, जो बड़ी तीव्र गति से घूमा। उसी सूर्य का ज्ञान (प्रकाश) लेकर–लेखराम, दर्शनानन्द, गणपति शर्मा, धर्म भिक्षु, स्वामी योगेन्द्र पाल, रामचन्द्र जी देहलवी, भोजदत्त आर्य मुसाफिर, बुद्धदेव मीरपुरी, ठाकुर अमर सिंह जी, बुद्धदेव विद्यालंकार, मनसाराम वैदिक तोप, पण्डित व्यास देव, देवेन्द्रनाथ शास्त्री इत्यादि नक्षत्रों ने देव दयानन्द रूपी सूर्य के अस्त होने के पश्चात् वैदिक धर्म के अन्तरिक्ष को प्रकाशित किया। इनमें सभी एक से एक बढ़कर रहे, इस इन्द्र वृत्तासुर संग्राम में सभी इन्द्र सदृश पराक्रमी सिद्ध हुए इनमें सभी की

अपनी–अपनी विशेषतायें थीं। इन महारथियों के उस शास्त्रार्थ युग के अपूर्व पराक्रमों को सुनकर आज की पीढ़ी आश्चर्य चकित एवं गौरवान्वित हो जाती है। वैदिक संस्कृति के भव्य भवन के निर्माण में अपने को उसकी नीव में खपा देने वाली इन दिव्य विभूतियों के दर्शनों को आज का आर्य युवक उत्कण्ठित हो उठता है, सौभाग्य से उस युग की स्मृतियों में से श्री श्रद्धेय अमर स्वामी जी महाराज (पूर्व श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी) हमारे मध्य में विराजमान हैं। श्री श्रद्धेय स्वामी जी की अपनी कुछ निराली ही विशेषताएं रही हैं। प्रमाणों के तो आप सागर ही हैं। किसी भी विषय पर हजारों प्रमाणों की झड़ी लगा देते हैं। यदि आपको चलता–फिरता पुस्तकालय कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं है, शास्त्रार्थ काल में, आपके मुख से असंख्य प्रमाण प्रवाह को देख कर श्रोता चकित रह जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि, आपका चहुंमुखी ज्ञान है। शास्त्रार्थ समर में आप चतुर्दिक लड़ने की योग्यता रखते हैं। जब कि हमारे अन्य महारथी एक–एक मोर्चे के विशेषज्ञ रहे हैं। जैसे पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप, पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी पुराणों के विशेषज्ञ थे। देहलवी जी तथा धर्म भिक्षु यवनों का मुंह तोड़ उत्तर देने में सफल एवं सक्षम थे। इसी प्रकार कोई क्रिश्चियनों का विशेषज्ञ था, और कोई जैनियों का ! परन्तु आज किसी भी मोर्चे पर आवश्यकता पड़े तो आर्य जगत बड़े विश्वास के साथ पूज्य स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिए भेज देता है। और स्वामी जी भी चुटकी बजाते–बजाते विजय प्राप्त कर लेते हैं, तीसरी विशेषता वैदिक धर्म के प्रचार में प्रगाढ़ निष्ठा है, मुझे याद आता है कि, शायद आपके गांव में ही जब थोथेश्वर माधवाचार्य ने शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की तब आप १०४ डिग्री ज्वर में पड़े हुए थे, यह सुनते ही, हितैषी जनों के मना करने पर भी और अपनी मृत्यु की परवाह न करते हुए आपको चारपाई पर लिटाकर चार आदमी उठाकर शास्त्रार्थ करने को लाये थे। और उस अवस्था में भी आपने दम्भी दुश्मन को नाकों चने चबवा दिये थे। आज लगभग ८५ वर्ष की आयु में भी जबकि चलने फिरने तथा देखने में भी असमर्थ हो गये हैं। तो भी आप प्रचार कार्य में व्यस्त हैं। अभी–अभी पीछे ही आपने दिल्ली सब्जी मण्डी आर्य पुरा समाज में शास्त्रार्थ किए, जिसमें विरोधी छोकरे के छल–कपट करने के बावजूद भी उस बेचारे को पराजित तथा लज्जित होना पड़ा, अभी दो मास भी नहीं हुए थे कि, मेरठ के समीपस्थ ग्राम (बदरखा) में आपकी अपने पुराने प्रतिद्वन्दी माधवाचार्य से जोरदार टक्कर हुई, और लोगों ने देखा कि, इस बूढ़े शेर की गर्जना से वह युद्ध के बहाने से दक्षिणा प्राप्त कर भागा जा रहा है। जहां आप वाणी द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे हैं। वहां आपने आर्य जगत को मौलिक साहित्य भी दिया है। जिसमें–"आर्य सिद्धान्त सागर" एक अनुपम कृति है। इसी प्रकार जीवित पितर, हनुमानादि बानर बन्दर थे या मनुष्य ?, कौन कहता है द्रोपदी के पांच पति थे ?, क्या रावण वध विजय दशमी को हुआ था'? इत्यादि ग्रन्थ आपके मौलिक ज्ञान, गम्भीर पाण्डित्य तथा विस्तृत स्वाध्याय एवं गहन चिन्तन के परिचायक हैं। अंग्रेजी राज्य में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए आपने अनेक बार जेल यात्राएँ की, हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी रक्षा आन्दोलन, तथा गौरक्षा सत्याग्रह में भी आपने जेल यात्रायें की, वैदिक धर्म के प्रचारक तैयार करने के लिए मोहन आश्रम हरिद्वार में संचालित उपदेशक विद्यालय के आप आचार्य रहे, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय में भी आपने अध्यापन कार्य किया है। स्वामी जी के प्रिय एवं योग्य शिष्य, **"श्री लाजपत राय जी"** ने पूज्य स्वामी जी के नाम से प्रकाशन विभाग आरम्भ किया है। जिसके माध्यम से उत्तमोत्तम ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। आर्य जगत् की नई युवा पीढ़ी की यह इच्छा रही कि शास्त्रार्थ युग के रोचक संस्मरण प्रकाश में आने

'यह सभी पुस्तकें छप कर तैयार हैं, आप प्रकाशन से सम्पर्क कर मंगवा सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

चाहिए, जिससे कि वर्तमान पीढ़ी प्रेरणा प्राप्त कर सके, मुझे यह जानकर अतीव हर्ष है कि, प्रिय लाजपतराय जी–अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के अन्तर्गत पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संग्रह "निर्णय के तट पर" नाम से एक विशाल प्रकाशन करने जा रहे हैं। मैं इनके इस शुभ कार्य का अभिनन्दन करता हुआ उनकी सफलता का प्रार्थी हूँ।

तथा साथ ही अन्तर्यामी जगदीश्वर से श्री श्रद्धेय अमर स्वामी जी महाराज के उत्तम स्वास्थ्य दीर्घायुष्यनैरोग्य एवं सबलता की याचना करता हूँ। जिससे कि वे हमारे मध्य में रहते हुए हमें उचित दिशा का संकेत करते रहें। भूयश्च शरदः शतात्,.........

"सत्यप्रिय शास्त्री, एम०ए०"

श्री प्रो० रामप्रसाद जी वेदालंकार–

उपकुलपति–गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

प्रियवर, श्री लाजपत राय जी !

यह सुखद वृतान्त जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि शास्त्रार्थ समर के योद्धाओं द्वारा विभिन्न अवसरों पर किये गये ऐतिहासिक शास्त्रार्थों का विस्तृत एवं प्रमाणिक इतिवृत्त आप प्रकाशित करने जा रहे हैं, आपका यह कार्य निःसन्देह स्पृहणीय एवं स्तुत्य है, युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द से लेकर शास्त्रार्थ केशरी महात्मा अमर स्वामी जी तक विद्वत्ता एवं तर्कपूर्ण शास्त्रार्थों की इस सुदीर्घ परम्परा का सत्य की गवेषणा में धर्म की प्रतिष्ठापना में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रकाशयमान यह ग्रन्थ "निर्णय के तट पर" भविष्य में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार में आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकाश स्तम्भ सिद्ध होगा। इस शुभ कार्य के लिए मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें।

"रामप्रसाद वेदालंकार"

श्री बालक राम जी कमल–

(बम्बई)

गये सप्ताह आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "निर्णय के तट पर" (प्रथम भाग) प्राप्त हुई, थी मैं तो उसे घोट कर पी गया, बहुत ही स्वादिष्ट लगी, वास्तव में ज्ञान का भण्डार है।

"बालक राम कमल"

श्री शम्भूमल्ल मित्तल आर्य–

तालड़ा (मुजफ्फरनगर) उ०प्र०

आपके द्वारा प्रकाशित "निर्णय के तट पर" (प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह) पढ़ा, परन्तु मन ये चाहता है कि इसे बार–बार पढ़ता ही रहूं, आपकी कर्मठता एवं ओजिस्वता ने आर्य समाज में जान डाल दी है। ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"शम्भूमल्ल मित्तल आर्य"

@vaidicbooks

श्री राजवीर जी शास्त्री–

सम्पादक–दयानन्द सन्देश (दिल्ली)

श्री युत लाजपत राय जी अग्रवाल !

आपके द्वारा प्रेषित "निर्णय के तट पर" ग्रन्थ का (द्वितीय भाग) प्राप्त हुआ तदर्थ अतिशय धन्यवाद। और समाचार यह है कि पुस्तक का यह भाग मुझे तो प्रत्यु प्रयुक्तालय आर्य. पुरूषों को एक तरह से एक संग्रहीत प्रमाण संग्रह ही मिल गया है जिसके आश्रय से विपक्ष की पोल तथा स्व पक्ष का मण्डन आर्य पुरुष स्वयं भी कर सकते हैं।

"राजवीर शास्त्री"

श्री श्यामलाल जी आर्य–

अमौली (फतेहपुर) उ0प्र0

मान्यवर, महोदय ! "निर्णय के तट पर" ग्रन्थ के सभी खण्ड निःसन्देह उत्तम हैं। और जो आपका अथक–प्रयास रहा है वह निश्चय ही सराहनीय है, मैं समझता हूं इस प्रकार के ठोस कार्यों पर ही समाज की सेवा, सुरक्षा और उन्नति सम्भव है।

"श्यामलाल आर्य"

श्री उत्थान मुनि जी–

(दिल्ली)

आप द्वारा प्रेषित "निर्णय के तट पर" पुस्तक को मैं बड़े मनोयोग से पढ़ रहा हूं, आपने यह पुस्तक प्रकाशित कर आर्य समाज के १०० वर्षों के बुलन्द इतिहास को अमर बना दिया है जिससे अनेक पीढ़ियाँ आपकी ऋणी रहेंगी एवं आपके इस पुरुषार्थ से मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकेंगी। इस पुस्तक के माध्यम से आपने भावी शास्त्रार्थ महारथियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

"उत्थान मुनि"

श्री वैद्य कुन्दन लाल जी आर्य–

(अवकाश प्राप्त चिकित्सा अधिकारी) लखनऊ

आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "निर्णय के तट पर" को शीघ्रता में पढ़ना आरम्भ कर दिया, ज्यों–ज्यों इस ग्रन्थ को पढ़ता जाता, त्यों–त्यों नित्य नयास्वाध्याय योग्य मसाला विवरण सहित मिलता रहा, एक बार पूर्ण पढ़ चुका हूं, परन्तु मन नहीं भरा पुनः आरम्भ कर दिया है। "पुस्तक क्या है ? वास्तव में ज्ञान का भण्डार है" यह ग्रन्थ प्रकाशित कर वास्तव में आपने आर्य जगत पर महान उपकार किया है। आने वाली स्वाध्यायशील पीढ़ी के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त मार्ग दर्शक सिद्ध होगा।

"वैद्य कुन्दन लाल आर्य"

श्री ज्ञानेन्द्र जी शर्मा (आर्योपदेशक)–

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

"निर्णय के तट पर" (भाग–२) की प्रति मिली, ग्रन्थ अवलोकन कर अत्यन्त हर्ष हुआ, आपने जो इसके संकलन एवं प्रकाशन में घोर परिश्रम इस अल्प आयु में किया वह वास्तव में आश्चर्यजनक है, प्रभु आपको सदा साहस व स्वास्थ्य प्रदान करे। यह ग्रन्थ प्रत्येक आर्य समाजी के लिए एक अमूल्य निधि तो है ही, परन्तु हम उपदेशकों के लिए तो वास्तव में यह ग्रन्थ एक अमूल्य शस्त्र एवं अमर कृति, समाज के लिए आपकी देन है, आपका यह उपकार समाज के ऊपर हमेशा रहेगा।

"ज्ञानेन्द्र शर्मा आर्योपदेशक"

श्री डॉ० ओ३म् प्रकाश जी– (M.B.B.S.)–

भू० पू० मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा (बर्मा)

प्रिय श्री लाजपत राय जी नमस्ते !

"निर्णय के तट पर" मिलते ही मैं उन्हीं दिनों २५० पृष्ठ पढ़ गया ग्रन्थ बहुत ही अच्छा बना है, पढ़ने में अत्यन्त रोचक है, सिद्धान्तों का विवेचन जिस प्रकार शास्त्रार्थों के माध्यम से हुआ है वह विद्वत्ता पूर्ण है, में आपको बहुत ही साधुवाद देता हूं कि ऐसा ग्रन्थ आपने प्रकाशित करा दिया, यह साहित्य अमर रहेगा, और भविष्य में Reference "सन्दर्भ ग्रन्थ" का स्थान ग्रहण करेगा। प्रत्येक उपदेशक एवं प्रचारक को इसका अध्ययन करना अत्यावश्यक है।

"डॉ० ओ३म् प्रकाश (M.B.B.S.)"

श्री कृष्ण लाल आर्य (प्रधान)–

आर्य प्रतिनिधि सभा–हिमाचल प्रदेश

सुन्दर नगर (हि० प्र०)

श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह आर्य समाज के साहित्य का एक अमूल्य अंग है, यह उनके दीर्घकालीन, स्वाध्याय, उनकी विद्वत्ता तथा उनके घोर तप और त्याग के परिणाम स्वरूप हैं, जो उनकी पावन स्मृति को सदैव के लिए बनाये रक्खेगा।

"कृष्णलाल आर्य"

श्री महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी–

आर्य कुटिया, धूरी (पंजाब)

आप द्वारा प्रकाशित "निर्णय के तट पर" (शास्त्रार्थ संग्रह भाग–२) मिला, पढ़ कर सेर भर खून बढ़ गया, तथा ऐसे लगा जैसे पुनः विश्व में आर्य समाज की जय–जयकार हो रही है, मुझे तो यह पुस्तक नहीं अपितु एक ऐसा अवैतनिक आर्य समाज का पुरोहित लगता है, जो वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों, गीता, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अर्थात् भारत भर में कही जाने वाली सभी धर्म पुस्तकों का विद्वान हो तथा

तुलनात्मक और वैज्ञानिक ढंग से वैदिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है, मैं इसी रूप में इस ग्रन्थ को देख रहा हूं, मैं चाहूंगा कि सभी आर्य समाजों के सत्संगों में इस पुस्तक की कथा अवश्य हुआ करे जिससे हम सबको सिद्धान्तों की जानकारी हो सके। आपके इस पवित्र प्रयास का फल तब तक विद्वानों को अपेक्षित रहेगा जब तक सूर्य व चाँद जगमगाते रहेंगे।

"महात्मा प्रेम प्रकाश" (वानप्रस्थी)

श्री नरेन्द्र जी आर्य–

ओ३म् भण्डार (मैनपुरी)

"एक शास्त्रार्थ महारथी महात्मा का अवसान"

खिदमते धर्म में जो कि मर जायेंगे। नाम दुनियां में अपना अमर कर जायेंगे।।

उपर्युक्त पंक्तियां आर्य जगत के प्रसिद्ध एवं स्वर्गीय भजनोपदेशक श्री कुंवर सुखलाल जी "आर्य मुसाफिर" के एक गीत की है। कुंवर सुखलाल जी, स्वर्गीय श्री अमर स्वामी जी महाराज जिनका पूर्व नाम ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी था इनके तायरे भाई थे। ये उपर्युक्त शब्द स्वामी जी के ऊपर शतप्रतिशत घटित होते हैं, जिनका सारा जीवन केवल वैदिक धर्म की सेवा करने में ही व्यतीत हुआ और अपने नाम के अनुरूप वास्तव में अमर हो गये। आर्य जगत में आपका एक विशिष्ट स्थान था और जिन शीर्षस्थ विद्वानों पर आर्य समाज को गर्व है उनमें महात्मा अमर स्वामी जी का नाम भी सर्वदा स्मरण किया जावेगा। यद्यपि आज भी शास्त्रार्थ महारथी, तर्क शिरोमणि वा तर्क वाचस्पति बोले जाने वाले विद्वान किन्हीं अंशों में उपलब्ध हैं, पर यह कहना कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी कि स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ महारथियों की परम्परा में अन्तिम कड़ी थे।

स्वामी जी में तर्क और प्रमाणों का प्राकट्य करने की अपूर्व क्षमता थी और जिन ग्रन्थों का आधार उनको प्राप्त था उनका निजी भण्डार भी विपुल मात्रा में उनके पास था। स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी ने आर्य जगत को यह परामर्श दिया था कि–"आर्य समाज में तहरीरी व तकरीरी अर्थात् (लेखन व भाषण) का कार्य वा शास्त्रार्थ कार्य बन्द नहीं होने चाहियें" इस परामर्श का पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने जीवन भर निर्वहन किया। जिसके लिए प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्वयं भी बहुत कुछ लिखा और जीवन भर प्रवचन व शास्त्रार्थ करते रहे, साथ ही अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के माध्यम से प्रयाप्त साहित्य सर्व साधारण तक पहुंचाते रहे और अब उनकी मृत्योपरान्त उनके योग्य शिष्य श्री लाजपत राय जी अग्रवाल इस कार्य को पहले की ही भांति पूर्ण मनोयोग से संभाले हुए हैं। एवं उन्होंने जीवन पर्यन्त इस प्रकाशन को चलाने का संकल्प लिया है। स्वामी जी चिन्तित थे कि नई पीढ़ी में स्वाध्याय करने का तथा योग्य उपदेशक बनने का अभाव बढ़ता ही जा रहा है और आर्य समाज के कार्य में दिनानुदिन शैथिल्य आता जा रहा है। अतः अब तक आर्य समाज की ओर से हुए सभी न सही पर जितने भी उपलब्ध हो सके उन सबको अधिक से अधिक शास्त्रार्थों का संग्रह सुरक्षित किया जाये। इस कार्य के लिए "निर्णय के तट पर" शीर्षक से प्राचीन शास्त्रार्थों के तीन भाग तो प्रकाशित हो चुके हैं, चौथा भाग भी लगभग पूरा हो चुका है। एवं तीन आगे के भाग भी छपाने का पूर्ण निश्चय श्री लाजपत राय जी कर चुके हैं। इन चारों भागों में एक सौ से अधिक शास्त्रार्थ संग्रहीत हो चुके हैं। शेष शास्त्रार्थ अगले भागों में आ जायेंगे।

स्वामी जी महाराज ने गाजियाबाद के कवि नगर प्रभाग में रेलवे लाइन के निकट "वेद मन्दिर" की भी स्थापना की थी, और उनकी योजना थी कि यहां योग्य उपदेशक तैयार किये जायें। अब वेद मन्दिर का दायित्व जिन सज्जनों को स्वामीजी महाराज सौंप गये हैं वह उसे कितना पूरा करते हैं ? यह उन पर निर्भर है। पूज्य स्वामी जी महाराज के देहावसान पर मैंने एक छोटा सा छन्द लिखा है जो प्रस्तुत है–

हा ! अमर स्वामी जी !!

हारे न कभी श्रीमान खड़े रहे सीना तान, अमर हुए धीमान विरोधी के मारे मान।
मनीषी तुम्हारे ज्ञान पै था हमें अभिमान, रसना पै गुणगान सभी के ही हैं समान।।१।।

स्वल्प था न स्वाभिमान, कभी न था अभिमान,
वाणी पै रहा प्रधान वेद धर्म का ही ज्ञान।
मीत "नरेन्द्र" महान आर्य जगत के प्राण,
जी में भरा यशगान धन्य धन्य थे महान।।२।।

"नरेन्द्रार्य" (मैनपुरी)

पौराणिक पण्डित श्री माधवाचार्य जी शास्त्री (शास्त्रार्थ महारथी)–

धर्मधाम कमला नगर (दिल्ली)

श्रीमानार्यसमाजलब्धसुयशः व्याख्यातृष्वग्रणीः
सिद्धान्तादव रणकलासु निपुणः सामाजिकः प्राड्विवाक।
बद्दोमल्ली पुरीय वाद दिवसाद् अद्यापि वादान् ...
शास्त्रार्थे ख्यातिनन्दितोऽयममर स्वामी चिरं जीवतु ॥१॥
परलोके यदीच्छास्ति पायसापूप भक्षणे।
तदा प्रयाणात् प्राङ् मित्र! सेव्यो धर्मः सनातनः॥२॥

धर्मधाम–
१०३ए. कमलापुर
दिल्लीस्थः

इत्यभिलषति–
माधवाचार्यः

उपरोक्त संस्कृत के मूल पत्र का हिन्दी अनुवाद–

अमर स्वामी जी दीर्घायु हों, श्रीमान (अमर स्वामी) जो आर्य समाज में बहुत सुयश प्राप्त, व्याख्यान दाताओं में अग्रणी, सिद्धान्तों के शास्त्रार्थ युद्ध की शत कलाओं में निपुण, आर्य समाज के प्राड़विवाक (वकील) हैं। बद्दोमल्ली नगर के शास्त्रार्थ वाले दिन से अब तक शास्त्रार्थों में अभिनन्दन प्राप्त करने वाले "अमर स्वामी" लम्बी आयु तक जीवित रहें। परलोक में यदि खीर पुड़ी खाने की इच्छा हो तो मृत्यु से पहले सनातन धर्मी हो जाइये।

धर्मधाम
१०३, कमला नगर (दिल्ली)

ऐसी अभिलाषा करने वाला–
"माधवाचार्य"

श्री पन्नालाल जी आर्य–
(जौनपुर)

"निर्णय के तट पर" ग्रन्थ क्या है ? एक "हीरा" है, जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। प्रकाशक एवं सम्पादक का प्रयास सराहनीय है।

"पन्नालाल आर्य"
(जौनपुर)

श्री राजर्षि कुंवर रणञ्जय सिंह जी (महाराजा–अमेठी)–
भूपति भवन, अमेठी
जनपद–सुलतानपुर (उ0प्र0) २२७४०५

प्रिय लाजपत राय जी !

"निर्णय के तट पर" ग्रन्थ का तृतीय भाग प्राप्त हुआ, तदर्थ बहुत–बहुत धन्यवाद। परम पूजनीय अमर स्वामी सरस्वती महाराज जी का सेवा भाव हम लोगों के हृदय में हैं, तदनुसार आप सराहनीय कार्य कर रहे हैं, शास्त्रार्थ महारथी स्वामी जी महाराज के रचित ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

वैदिक धर्म के ग्रन्थों में उनके ग्रन्थ मेरे विचार से महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपरान्त सर्वाधिक स्थान रखते हैं, श्री स्वामी जी के बारे में क्या लिखा जाये ? वे आदर्श सन्यासी थे, उनके अनुपम गुणों की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखलाने के समान हैं। आप उनके नाम पर खोले गये इस प्रकाशन को दत्तचित्त होकर चला रहे हो, यह बहुत हर्ष की बात हैं जिसके निमित्त मेरी शुभ कामनाएं हमेशा आपके साथ हैं।

भवदीय–
"रणञ्जय सिंह"
(अमेठी)

नोट – "निर्णय के तट पर" ग्रन्थ हेतु वैसे तो अनेकों पत्र इसकी प्रशंसा में देश व विदेशों से प्राप्त हुए, परन्तु हमने मुख्य–मुख्य सम्मतियां उद्धृत कर दी हैं, इन्हीं से आप अनुमान लगा सकते हैं। वैसे तो पकते हुए चावलों में से एक चावल के मसलने पर सारे चावलों की स्थिति का पता चल जाता है कि वह किस स्थिति में हैं ? तो भी हमने यहां कुछ सम्मतियां छपवा दी हैं। जिन सज्जनों के इस ग्रन्थ से सम्बन्धित **"सम्मति रूप"** पत्र हमें मिले उनके न छपने पर हम उनसे क्षमा चाहते हैं। धन्यवाद।

उपरोक्त सम्मतियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ के आरम्भिक काल में प्राप्त हुई थी, जिसमें केवल अमर स्वामी जी महाराज के द्वारा किये गये शास्त्रार्थों के संकलन करने की ही योजना थी, परन्तु बाद में पूज्य स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा यही हुई कि–**"हमारे समस्त पूर्वज शास्त्रार्थकत्ताओं के शास्त्रार्थ जितने भी उपलब्ध हो जायें उन सबका छपना अनिवार्य है"** मैंने उनको यह आश्वासन दिया था कि मैं अपने जीवन काल में आपकी इस अन्तिम इच्छा को अवश्य पूर्ण करूँगा, उनका आशीर्वाद एवं प्रभु की कृपा ऐसी रही कि मैं इस कार्य को करने में यहां तक सफल हो पाया, आगे भी शेष शास्त्रार्थ अगले भाग में पूर्ण किये जा रहे हैं।

विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

आर्य समाज की पुकार आधुनिक आर्य समाजियों से

हो चुकी आपस की, बस ! तकरार रहने दीजिये।
आये दिन की जूतियों पैज़ार रहने दीजिये।।

क्यों पड़े हो हाथ धोकर जान के पीछे मेरी।
मुझको जिन्दा ऐ मेरी सरकार रहने दीजिये।।

हो चुकी हिकमत तुम्हारी बस करो रहने भी दो।
हज़रते ईसा मुझे बीमार रहने दीजिये।।

अपने घर में तो हज़ारों तीर तुम बरसा चुके।
दुश्मनों के लिए भी दो चार रहने दीजिये।।

आपकी हालत पे दुश्मन हँस रहे हैं देख लो।
कुछ तो नीचा ही सरे अग़यार रहने दीजिये।।

वह "अमर" पद पा गया जिसने दिया मुझको फ़रोग।
इसलिए किस्मत मेरी बेदार ही रहने दीजिये।।

"अमर स्वामी सरस्वती"

नोट- आगे आप प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या ४४५ पर उद्धृत अमर स्वामी जी महाराज कृत- "अमर सूत्र" अवश्य पढ़ें !

"लाजपत राय अग्रवाल"

अमर स्वामी जी महाराज के अमर सूत्र

१. पुराने आर्य नेताओं ने अपने घरों को उजाड़कर आर्य समाज को बनाया था, नये आर्य समाजी नेता, आर्य समाज को उजाड़ कर अपने घरों को बना रहे हैं।

२. पौराणिकों में पुरोहित अपने यज्ञमान को ठगता है, आर्य समाजी यज्ञमान अपने पुरोहित को ठगता है।

३. पौराणिकों में ज्ञानी अज्ञानियों को अपनी आज्ञा में चलाते हैं। आर्य समाजी अज्ञानी–ज्ञानियों को अपनी आज्ञा में चलाते हैं।

४. पौराणिकों में अपूज्यों की पूजा होती है, आर्य समाज में पूज्यों का अनादर होता है।

५. पौराणिकों में सन्यासी सबसे बड़ा माना जाता है, आर्य समाज में सन्यासी का कोई महत्व नहीं है।

६. पौराणिकों में सन्यासी जीवन निर्वाह के लिए निश्चिन्त होता है, आर्य समाजी सन्यासी को जीवन निर्वाह की चिन्ता तो निरन्तर रहती ही है, मरने के लिए भी चिन्ता रहती है कि कहाँ मरूँ ?

७. आर्य समाज में एक ओर यज्ञ और योग के नाम पर पाखण्ड प्रबल वेग से बढ़ रहा है, दूसरी ओर राजनीति का राक्षस आर्य समाज को जिन्दा ही खा जाना चाहता है।

८. पहले आर्य समाजों के भवन कच्चे होते थे, मगर आर्य समाजी पक्के होते थे। अब आर्य समाजों के भवन पक्के और विशाल होते हैं परन्तु आर्य समाजी कच्चे और बेकार मिलते हैं।

९. आर्य समाज को क्षति पहुँचाने वाला आर्य समाजी ही हो सकता है।

१०. आर्य समाज वह अस्पताल है, जिसमें मरीज आदमी भर्ती होते हैं, तथा फिर इसमें से पारसमणि बनकर बिल्कुल स्वस्थ निकलते हैं।

११. आर्य समाजी अगर खुश हो जाये तो धन्यवाद कर देता है। अगर नाराज हो जाये तो जीना भी हराम कर देता है।

१२. आर्य समाजी वही है, जो न खुद चैन से बैठे और न किसी को बैठने दे।

१३. आर्य समाजी वही है, जो खुद ही अपनी बात को न माने तथा दूसरों से मनवाना चाहे।

१४. दुनिया के बिगड़े हुओं का सुधार आर्य समाज करता है। परन्तु बिगड़े हुए आर्य समाजी का सुधार कोई नहीं कर सकता।

१५. आर्य समाज मन्दिरों में "स्कूल" नामक वह "अमर बेल" है जो आर्य समाज मन्दिर को जिन्दा ही खा जाती है, जिसकी अपनी कोई जड़ नहीं होती।

कहा बातिल को बातिल और सच को सच कहा हमने।
जो इतने पर भी न समझे तो उन्हें परमात्मा समझें।।

नोट—उपरोक्त आधुनिक आर्य समाजियों के लक्षणों से आर्य समाज के सिद्धान्तों पर कोई भी प्रतिकूल असर पड़ने वाला नहीं है, वह पहले भी अकाट्य थे, आज भी अकाट्य व सत्य सिद्ध हैं !

वैदिक धर्म का सेवक—
"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ करने व कराने के सामान्य नियम

सर्व पाठकों को सूचित करना है कि **''शास्त्रार्थ के सामान्य नियम''** जिन्हें अमर स्वामी जी महाराज ने संक्षेप में **''निर्णय के तट पर भाग प्रथम''** के पृष्ठ संख्या १३ से १७ में तथा आर्य जगत के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ जी ने **''शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के लिए आवश्यक नियम व निर्देश''** नाम से एक विस्तृत जानकारी सम्बन्धी लेख **''निर्णय के तट पर भाग ५ के पृष्ठ संख्या ११ से १३ पर''** उद्धृत किया है। पाठकों से निवेदन है कि उपरोक्त विषयक स्वामीजी महाराज व श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ जी का लेख अवश्य पढ़ें जिससे शास्त्रार्थ करने व कराने सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

''सम्पादक''

सूचना

सभी पाठकों को सूचित किया जाता है कि प्रस्तुत श्रृंखला के ग्रन्थ **''निर्णय के तट पर''** के पांच भाग प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें १४५ प्राचीन शास्त्रार्थों का समावेश हो चुका है। छटा भाग तैयारी में चल रहा है। इच्छुक सज्जनों के पास अगर उक्त ग्रन्थ का कोई भी भाग न हो वह उसे प्राप्त करने हेतु प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें। धन्यवाद !!

निवेदिका–

''अजीता मुरली''

(कार्यालय सहायक)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद